ओ३म्

ऋग्वेद-संहिता

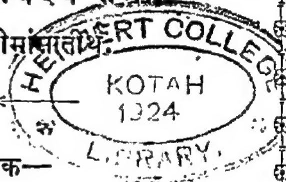
भाषा-भाष्य

(पञ्चम खण्ड)

भाष्यकार—

श्री पण्डित जयदेव शर्मा,

विद्यालङ्कार, मीमांसातीर्थ।



प्रकाशक—

आर्य साहित्य मण्डल लिमिटेड्, अजमेर

प्रथमावृत्ति	सन् १९३५ ई०	मूल्य
२०००	संवत् १९९२ वि०	४) रुपये

मुद्रक—
दी फ़ाइन आर्ट प्रिंटिंग प्रेस, अजमेर.

ओ३म्

ऋग्वेद विषय-सूची

पञ्चमाष्टके पञ्चमोध्यायः

सप्तमे मण्डले चतुर्थोऽनुवाकः

(एकषष्टितमसूक्तादारभ्य)

सू० [६१]—मित्र और वरुण। परस्पर वरण करने वाले स्त्री-पुरुषों को उपदेश। उनके प्रति सूर्यवत् तेजस्वी विद्वान् का कर्त्तव्य। (२) उत्तम जीवन व्यतीत करने का उपदेश। (३) राज्य में प्रजापालक, दुष्टवारक मित्र, वरुण दोनों वर्गों के कर्त्तव्य। (४) मित्र, वरुण का महान् सामर्थ्य। (५) दोनों विद्वानों के वचन, उत्तम ज्ञान से पूर्ण हों। (पृ० १–४)

सू० [६२]—(१–२) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष के कर्त्तव्य। सब का भार अपने पर ले, समान रूप से देखे, उत्तम कर्म करे। किरणोंवत् सज्जनों सहित उदय को प्राप्त हो। (३) विद्वान् स्नेही, शासक जन प्रजाओं को नाना सुखजनक सम्पदाओं से पूर्ण करें। (४) आकाश-भूमिवत् माता पिता का कर्त्तव्य। प्रजा का हित। (५) बाहुओंवत् स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। (६) विद्वान् शासकों के कर्त्तव्य। (पृ० ४–७)

सू० [६३]—(१–५) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष के कर्त्तव्य। (२) यन्त्रचक्र में लगे अश्व या एंजिनवत् वा राशिचक्र के बीच स्थित सूर्यवत् विद्वान् का सर्वसंञ्चालन। (४) सर्वप्रेरक सूर्यवत् ज्ञानी से प्रेरित जनों की सदर्थ-प्राप्ति। (५) सूर्यवत् सन्मार्ग में गति, मित्र और वरुण का आदर। (पृ० ७–११)

सू० [६४]—सूर्यवत् राजा के कर्त्तव्य । (२) राजा रानी, राजा सेनापति के कर्त्तव्य (३) वायु मेघवत् राजाओं के प्रजापतिवत् कर्त्तव्य । (५) वायुवत् श्रेष्ठ जन का कर्त्तव्य । (पृ० ११–१४)

सू० [६५]—मित्र और वरुण, राजा-प्रजा वर्ग के कर्त्तव्य । (२) उन के गृहपति-गृहपत्नीवत् कर्त्तव्य । (पृ० १४–१६)

सू० [६६] (१–३)—मित्र, वरुण, स्त्री-पुरुषों के परस्पर कर्त्तव्य । (४–११) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुषों के कर्त्तव्य । (१२–१३) उनसे ज्ञानैश्वर्य की याचना । (१४) सूर्यवत् तेजस्वी शासक का वर्णन, उसके कर्त्तव्य । (१७–१९) उत्तम स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य । (पृ० १६–२३)

सू० [६७]—दो अश्वी, राजा-रानीवत् स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य । (२) सूर्य-उषा दृष्टान्त से गुरु-शिष्य के कर्त्तव्य । अध्यात्म में आत्मा और बुद्धि का वर्णन । (३) जितेन्द्रिय नर-नारियों के कर्त्तव्य । (४) उन का आचार्य के अधीन वास, भैक्ष्य, मधुकरी वृत्ति । (५) अश्वी, जितेन्द्रिय शिष्य-शिष्या जनों का गुरु से ज्ञान-याचना का कर्त्तव्य । उन के उद्देश्य और कर्त्तव्य । विद्याध्ययनशील जनों को उपदेश । (पृ० २३–२९)

सू० [६८]—अश्वी, रथी-सारथिवत् स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य । शिष्य-शिष्याओं के कर्त्तव्य । (७) दुर्मित्रों से त्यक्त, निःसहायों का सहाय करना कर्त्तव्य है । अश्वियों का भुज्यु को समुद्र से पार करने का रहस्य । (८) स्त्रियों, कन्याओं की रक्षा का कर्त्तव्य । (९) विद्वान् का कर्त्तव्य उपदेश करना, ज्ञान बढ़ाना । (पृ० २९–३३)

सू० [६९]—दो अश्वी, (१) राजा और विद्वान्, गृहस्थ के कर्त्तव्य । रथवत् गृहस्थाश्रम । (२) रथी-सारथिवत् पति-पत्नी के कर्त्तव्य । (३) राजा-प्रजा आदि सहयोगी जनों को उपदेश । मधुमान् निधि का रहस्य । (४–८) वर-वधू के कर्त्तव्य । (७) अश्वियों का

मुज्यु को समुद्र से पार करने का गृहस्थ वर-वधूपरक स्पष्टीकरण। (पृ० ३३–३८)

सू० [७०]—गृहाश्रम की श्रेष्ठता। परस्पर वरण करने वाले स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य। वर और राजा के समान कर्त्तव्य। (४–७) वर-वधू दोनों को उत्तम उपदेश। (५) ज्ञान प्राप्त्यर्थ प्रेरणा। (पृ० ३८–४१)

सू० [७१]—'अश्वी' उत्तम स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। रात्रि-सूर्यवत् स्त्री-पुरुषों के व्यवहार-निदर्शन। (२) विद्वान् स्त्री-पुरुषों, शिक्षकों के कर्तव्य। (३) रथवत् गृहस्थसंचालन का आदर्श। (४) रथ की पुरुष से तुलना। उत्तम स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। 'नासत्य' का स्पष्टार्थ। (पृ० ४२–४५)

सू० [७२]—विद्वान् स्त्री-पुरुषों के कर्तव्य। (पृ० ४५–४७)

सू० [७३]—उत्तम स्त्री-पुरुषों का वर्णन। उन के कर्तव्य और उपदेश। (पृ० ४८–४९)

सू० [७४]—अश्वी, सभापति, सेनापति, वा राजा-रानी। उन के कर्तव्य। (२) उत्तम नायकों, स्त्री-पुरुषों के कर्तव्य। (३) उत्तम नृपालों का वर्णन। (पृ० ४९–५२)

सू० [७५]—उषा के नाना दृष्टान्तों से उत्तम स्त्री वा वधू के कर्त्तव्यों का उपदेश। (४) पत्नी के कर्त्तव्य। (५) पक्षान्तर में सभा, सेनादि का वर्णन, (६) उत्तम विवाह-विधि द्वारा स्त्री को स्वीकार करके पुत्रोत्पादन का उपदेश। गृहस्थों के कर्त्तव्य। पुरुषों के कर्त्तव्य। (८) स्त्रियों के कर्त्तव्य। (पृ० ५२–५६)

सू० [७६]—उषा रूप से परमेश्वरी शक्ति का वर्णन। सविता प्रभु। पक्षान्तर में गृहपति सविता। (३) दिन-रात्रि विज्ञान के साथ साथ सूर्य उषा के दृष्टान्त से वर-वधू के कर्त्तव्यों का वर्णन। (४)

षष्ठोऽध्यायः

सू० [८२]—इन्द्र-वरुण, शत्रुहन्ता. श्रेष्ठ पुरुष का प्रजा के प्रति कर्त्तव्य। (२) इन्द्र-वरुण का स्वरूप एक वसुपति दूसरा प्रजापति। सम्राट् और साम्राज्य। (३) उन के कर्त्तव्य। नाना मार्ग निर्माण, और प्रजा की समृद्धि-वृद्धि। (५) आधिदैविक दृष्टान्त से इन्द्र-वरुण का रहस्य। सूर्य-मेघवत् कोश और दण्ड के अध्यक्षों के कर्त्तव्य। (६) इन्द्र, वरुग, दण्डकर्त्ता और दण्डपति। (७) पाप, दुराचार, पीड़ा, संताप से रहित उनका शासन। (८) दोनों प्रजा के बन्धु हों। (९) दोनों अग्रयोद्धा (१०) और प्रजा को उत्तम बलदाता हों। (पृ० ७५–८१)

सू० [८३]—इन्द्र, वरुण, वायु, विद्युत् वत् शत्रुहन्ता और शत्रुवारक अध्यक्षों के कर्त्तव्य। कृषकों वत् सैन्यों के कर्त्तव्य। (२) संग्राम के दो नायक इन्द्र, वरुण। (३) युद्ध आदि संकट के विकट अवसरों में उन के कर्त्तव्य। (४) भेदनीति और सदुपाय का उपदेश। (५) प्रजा की त्राण की प्रार्थना। उन दोनों का महान् सामर्थ्य। दश राजा, सुदास, तृत्सु उनका रहस्य, सभा-सेनाध्यक्षों के कर्त्तव्य। (पृ० ८१–८८)

सू० [८४]—स्त्री पुरुषवत् प्रजा और राजा का परस्पर सम्बन्ध। (२) सम्पन्न राष्ट्र में प्रजा का कर्त्तव्य। उत्तम शासकों के कर्त्तव्य। (पृ० ८६–८८)

सू० [८५]—इन्द्र, वरुण—उत्तम शासक तथा वायु जल और स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्यों का वर्णन। इन्द्र, वरुण राजा के कर्त्तव्य। (पृ० ८९–९१)

सू० [८६]—वरुण, परमेश्वर का वर्णन। परमेश्वर की भक्तिपूर्वक प्रार्थनोपासना। (३) बन्धन की जिज्ञासा। मोक्ष की प्रार्थना। (४) पाप-मोचन की प्रार्थना। (५) बन्धन-मोचन की प्रार्थना।

(६) दुःख मार्ग में जाने के कारणों की विवेचना। (७) सन्मार्ग पर नायक प्रभु (पृ० ९१–६५)

सू० [८७]—वरुण परमेश्वर के महान् दर्शनीय कार्य। प्रभु परमेश्वर का व्यवस्थित शासन। (४) प्रभु की व्यवस्था में विद्वान् का कर्त्तव्य। (५) जगत्स्रष्टा की अद्भुत सृष्टि। (६) परमेश्वर का वर्णन। (७) दयालु प्रभु। (पृ० ६५–१००)

सू० [८८]—वरुण परमेश्वर का वर्णन। निष्पक्षपात प्रभु। (२) श्लेष से अन्नवत् प्रभु का वर्णन। (३) शिष्य-गुरु, भक्त-उपास्य के स्नेह की पति-पत्नी के स्नेह से समता। (४) वाणी रूप प्रभु का निष्ठ भक्त को तारना। शिष्य के लिये तीर्थ गुरु किस प्रकार है। (५) भक्त-उपास्य का सखाभाव। (६) हम पापी हो कर ईश्वर के दिये धन का भोग न करें। (७) कर्मबन्धन को काटने हारा प्रभु। कर्म-बन्धन के छेदन का प्रकार। (पृ० १००–१०३)

सू० [८९]—देह-बन्धन से मुक्ति की प्रार्थना। (२) दुःखी जीव की विनीत प्रार्थना। (४) भवतृष्णा से मोचन की प्रार्थना। (पृ० १०४–१०५)

सू० [९०]—बलवान् सेनापति के कर्त्तव्य। (३) सभापति के कर्त्तव्य। प्रजाजन स्त्री-पुरुषों के भव्य कर्त्तव्य। (४) विद्वानों के कर्त्तव्य। (५) स्वामियों, शासकों के कर्त्तव्य। (६) ब्रह्मचारियों के कर्त्तव्य। (पृ० १०५–१०६)

सू० [९१]—बलवान् का स्थापन। (२) बलवानों के कर्त्तव्य। (४–६) विद्युत्-वायुवत् दो नायकों के कर्त्तव्य। (पृ० १०७–११२)

सू० [९२]—वायुवत्, विवेकी विद्वान् - निर्णायक के कर्त्तव्य।

सू० [१००]—विष्णु, व्यापक प्रभु की स्तुति-उपासना। (पृ० १४१–१४४)

सप्तमोऽध्यायः

सू० [१०१]—पर्जन्य। मेघवत्-विद्वान् के कर्त्तव्य। उसका शिष्य को वत्सवत् ज्ञान रस से वर्धन। (२) मेघ सूर्यवत् जगत् के स्वामी से वेदमय ज्ञान और सुखद देह की प्रार्थना। त्रिवर्त्तु ज्योति और त्रिधातु शरण का रहस्य। (३) मेघ के अप्रसूता और प्रसूता गौ के तुल्य रूप। उस के साथ सम्बद्ध भूमि सूर्यवत् प्रभु के दो रूप और प्रकृति पुरुष के विज्ञान का स्पष्टीकरण। (४) मेघविज्ञान। प्रकृति-परमाणुओं का तीन प्रकार की गति। तीन कोशों का वर्णन, अध्यात्म तत्त्व। (६) गौ वृषभ के दृष्टान्त से जगत्-स्रष्टा के आधार पर समस्त जगत्। (पृ० १४४–१४८)

सू० [१०२]—पर्जन्य। मेघवत् सर्वोत्पादक प्रभु के गुणों का वर्णन। अग्निहोत्र-यज्ञ से प्रभु की प्रार्थना और मेघोत्पत्ति। (पृ० १४८–१४९)

सू० [१०३]—मण्डूकों के दृष्टान्त से ब्रह्मज्ञानी, तपस्वी और नाना विद्याओं के विद्वानों के कर्त्तव्यों का वर्णन। (पृ० १४९–१५४)

सू० (१०४)—दुष्टों का दमन। राजा और पुरोहित के कर्त्तव्य। दण्डविधान का आदेश। (४) दुष्टों के दमन के नाना साधनों का उपदेश। (५) दण्ड योग्य अपराधियों का निर्देश। (१२) सत्यासत्य का विवेक करने का उपदेश। (१३–१४) सत्यवादी को दण्ड न देकर पापी को दण्ड देने का उपदेश। (१५) पीड़ादायियों को दण्ड। असत्यारोपी को दण्ड। (१७) दुष्ट स्त्रियों को दण्ड। (१८–१९) दुष्टों को कठोर दण्ड। दण्ड के लिये आग्नेय अस्त्रों का प्रयोग।

(२१–२४) कुटिलाचारी जनों पर दण्डपात। (२५) इन्द्र सोम, राजा और न्यायपति के कर्त्तव्य। (पृ० १५४–१६५)

अष्टमं मण्डलम्

सू० [१]—एक मात्र उपास्य प्रभु का वर्णन। उस के अनेक गुण (५) उपास्य को धन के लिये न त्यागें। (६) ईश्वर का मातृसम पद। (८) पुरन्दर ईश्वर बन्धनमोचक। वीर सेनापति से तुलना। (१०) प्रभु की दुधार गौ से तुलना। (११) सेनापतिवत् प्रभु की स्तुति। (१२) अद्भुत कारीगर प्रभु। (१३–१६) प्रभु से उत्तम २ प्रार्थनाएं। (१७) उत्तम कर्त्तव्योपदेश। (१८–२४) प्रभु से प्रार्थनाएं। (२५) सेनापति के कर्त्तव्यों का भी वर्णन। (२६) प्रभु से प्रार्थनाएं। सत्पुरुषों के कर्त्तव्य। (३२–३४) आसङ्ग प्लायोगि का रहस्य। (पृ० १६६–१८०)

सू० [२]— प्रजापति, राजा और गृहपति के कर्त्तव्य। (२) राजा के प्रति प्रजाओं के कर्त्तव्य। (४) अद्वितीय स्वामी इन्द्र। (६) उस की उपासना। (७) प्रभु की राजा से समानता। (९) अभिषेक का अभिप्राय। (१०) आश्रय-याचना। (११–१७) राजा के कर्त्तव्य। प्रजा की प्रार्थना। प्रभु के प्रति भक्त की याचनाएं और कर्त्तव्य। (१७–३६) प्रभु परमेश्वर से बल ऐश्वर्य की याचना (३७) स्तुत्य प्रभु। उससे प्रार्थनाएं। (पृ० १८०–१९५)

सू० [३]—प्रभु से प्रार्थना और उस की स्तुति। पक्षान्तर में राजा के कर्त्तव्य। (पृ० १९५–२०४)

सू० [४]—इन्द्र, प्रभु परमेश्वर का वर्णन। पक्षान्तर में राजा के कर्त्तव्यों का वर्णन। (३) आत्मा का वर्णन। (८) राजा प्रजा का गृहस्थवत् व्यवहार। राजा के राष्ट्र के प्रति कर्त्तव्य। (पृ० २०४–२१५)

उत्पादक, पालक प्रभु। (११) सर्वविघ्नहारी प्रभु। (१४) सर्वोपरि सर्वोपास्य। (पृ० २१५—२२०)

सू० [१६]—परमेश्वर का स्तवन। (३) ज्येष्ठराज प्रभु। (५) सर्वाध्यक्ष का वर्णन। (६) सर्वैश्वर्य स्वामी का वर्णन। स्तुति-योग्य प्रभु के गुणों का वर्णन। (पृ० २२०—२२४)

सू० [१७]—प्रभु की स्तुति। उस का हृदय में आह्वान और धारण। (५) गुरु का शिष्य को दीक्षित करना। उसको वेदोपदेश। आचार्य शिष्य के कर्त्तव्य। वृत्रघ्न इन्द्र का वर्णन। विघ्नविनाशक परमेश्वर। (९) जगत् का स्वामी। (१०—१५) उपास्य उपासक में गुरु शिष्य का सा भाव। (१२) शक्तिशाली प्रभुवत् राजा। (१४) वास्तोष्पति शासक इन्द्र। (पृ० २२४—२३०)

सू० [१८]—विद्वानों से उत्तम ज्ञान की याचना। आदित्य विद्वानों का वर्णन। (४—७) विदुषी माता के कर्त्तव्य। (८) चिकित्सकों के कर्तव्य। (८—९) रोगनाशक पदार्थ अग्नि वायु और सूर्य। (१०) विद्वानों से अज्ञान और पापनाश की प्रार्थना। (२०—२२) विद्वानों से नाना कल्याण-प्रार्थनाएं। (पृ० ३३०—३३७)

सू० [१९]—प्रभु-स्तुति का उपदेश। (२) अग्निवत् ज्ञान-प्रकाशक की स्तुति और आदर करो। अग्नि के दृष्टान्त से परमेश्वर का वर्णन। (५—६) उपासक यज्ञकर्त्ता को सत्फल की प्राप्ति। (७) सेनापति के कर्तव्य। प्रकारान्तर से स्वामी, राजा और प्रभु का वर्णन। (१०) अग्रणी वीर नायक के कर्त्तव्य। (११) विद्वान् का वर्णन। उस के संस्कार का विधान। (१४) नेता के कर्त्तव्य। (१८) यज्ञ आदि द्वारा उपासकों को उत्तम फल। (१९) दान आदि का फल। (२०) नायक वा प्रभु से प्रार्थना। (२१) प्रभु की स्तुति। (२२) आहुत अग्निवत्

विद्वान् का रूप। (२३) अग्नि विद्युत् वा सूर्य के तुल्य नायक, विद्वान् प्रभु का रूप और उस के कर्त्तव्य। उत्तम यज्ञकर्त्ता का सदाचारमय लक्षण। (२५) उपास्य-उपासक की अनन्यता की भावना। (२६) पाप के निमित्त भगवान् का परित्याग न हो, स्तोता वा शास्ता मूर्ख और पापी न हो। (२७) पितावत् प्रभु। भगवान् की भक्ति। (३०) सखा प्रभु। (३१) प्रभु के अग्निरूप की व्याख्या। (३२) सम्राट् प्रभु। (३३) परम अग्नि प्रभु। (३४) आदित्य विद्वानों का वर्णन। उनके कर्त्तव्य। (३६–३७) पौरुकुत्स्य का दान। पुरुकुत्स सेनापति। उसका वर्णन। अध्यात्म रहस्य। (पृ० २३७–२५२)

सू० [२०]—मरुतों अर्थात् वीरों, विद्वानों के कर्त्तव्य। वायु और जल लाने वाले वायु-प्रवाहों के वर्णन। (२२) उत्तम अध्यक्ष मरुद्-गण। (२५) देह में मरुद्गण प्राणगण। (पृ० २५२–२६४)

द्वितीयोऽध्यायः

सू० [२१]—स्वामी के अद्भुत गुणों का वर्णन। आत्मा, प्रभु और विद्वान् का वर्णन। (४) वन्धुमान् प्रभु की शरण। (५) आश्रय वृक्षवत् प्रभु का आश्रय। (६) ईश-विनय के प्रयोजन। सर्व-प्रद प्रभु। (१०) प्रभु का परमैश्वर्य। (११) सदा सहयोगी और सहायक प्रभु। (१२) प्रभु या राजा की सहायता से दुष्टों को दण्डित करने का संकल्प। (१४) व्यसनी, धनाभिमानी का प्रभु मित्र नहीं। भक्तों का पिता प्रभु। (१५) भक्तों की चरम इच्छा। (१६) न्यायप्रद प्रभु। (१७) प्रभु का सरस्वती-रूप। (१८) मेघवत् दाता, महाराज प्रभु। (पृ० २६५–२७२)

सू० [२२]—सेनापति और वैद्यवत् स्त्री-पुरुषों का वर्णन। (२) गृहस्थ रथ का वर्णन। (४) गृहस्थ-रथ के दो चक्र। (५)

जितेन्द्रिय स्त्रीपुरुषों के कर्त्तव्य । (६) कृपकवत् उत्तम गृहपति और गृह- पत्नी के कर्त्तव्य । कृषि का उपदेश । (६) उत्तम नायक की स्थापना । (९) वेगवान् यान आदि साधन सम्पन्नों के कर्त्तव्य । (१०) रोगी की सेवा का उपदेश । (११–१२) अन्यान्य नाना कर्त्तव्य । (पृ० ३७२–३८०)

सू० [२३]—अग्नि-उपासना के साथ २ अध्यात्म उपासना । प्रभु परमेश्वर की अग्निवत् स्तुति । पक्षान्तर में अग्निवत् राजा और विद्वानों का वर्णन । उस के कर्त्तव्य । उसके प्रति प्रजा जनों का कर्त्तव्य । अग्नि तुल्य गुणों वाले प्रभु से प्रार्थनाएं । (पृ० ३८०–३९१)

सू० [२४]—सर्वशक्तिमान् प्रभु के गुणों का वर्णन । (२) दुष्टहन्ता प्रभु । (४) ऐश्वर्यप्रद प्रभु । (६) परम शरण प्रभु । (७) शास्ता प्रभु । (९) सर्वसंचालक प्रभु । (१०) उसकी नाना प्रकार से उपासनाएं वा भक्तिप्रदर्शन और स्तुति । (२४) सर्वज्ञ प्रभु की स्तुतियां । (२५–२७) दुष्टों के नाश की प्रार्थना । (२८) सत्पात्रों में दान देने वाले को प्रभु भी देता है । (२९) सत्पात्र में दान का उपदेश । सब से परे अगम्य प्रभु । (पृ० ३९१–४०१)

सू० [२५]—उत्तम, आदरणीय, स्त्रीपुरुषों का वर्णन । उनके कर्त्तव्य । उत्तम माता पिता से रक्षा की प्रार्थना । (१२–१५) उत्तम पुरुषों के कर्त्तव्य । विश्पति राजा के प्रभु और सूर्यवत् कर्त्तव्य । (१७–१८) महान् सम्राट् । विश्वपति वरुण, प्रकाशस्वरूप ईश्वर । (२१–२२) प्रभु की स्तुति । (२२–२५) सत्पुरुषों से प्रार्थना । (पृ० ४०१–४०९)

सू० [२६]—उत्तम नायक, राजा प्रजा, वा पति-पत्नी जनों के गुणों और कर्त्तव्यों का वर्णन । राजा-सचिव (४) माता-पिता, गुरु जनों के कर्त्तव्य । (५) सैन्य-सैन्यपति के कर्त्तव्य ऐश्वर्ययुक्त सत्यवान्

स्त्री-पुरुषों के कर्त्तव्य। जितेन्द्रियों के कर्त्तव्य। (१२) दिन-रात्रिवत् पति-पत्नी जनों के कर्त्तव्य। (२१–२२) भावी जामाता के प्रति आदर। (२२–२७) प्रभु से ऐश्वर्य की याचना। (पृ० ४०९–४१९)

सू० [२७]—ज्ञानी पुरुष का पुरोहित पद पर स्थापन। विद्वान् से ज्ञान की याचना। नाना प्रकार के उत्तम वीर विद्वान् पुरुषों के कर्त्तव्य। (११) राजा के कर्त्तव्य। (१२) विद्वानों के कर्त्तव्य। (१८) राष्ट्र के प्रति उनके कर्त्तव्य। (पृ० ४१९–४२८)

सू० [२८] –३३ देवगण। राष्ट्र के ३३ प्रमुख शासक। (२) वरुण, मित्र, अर्यमा। तीन प्रधान पद। उन के कर्त्तव्य। (पृ० ४२८–४२९)

सू० [२९]— विश्व के एक, अद्वितीय अध्यक्ष का वर्णन। उसके महान् अद्भुत कर्म। (८–९) जीव और प्रभु का प्रकृति के साथ वर्णन। (पृ० ४२९–४३२)

सू० [३०]—राष्ट्र में प्रजा जनों के सदृश जीवों का वर्णन। (२–४) राष्ट्र-शासक रूप ३३ देवों का वर्णन। उनसे रक्षा की प्रार्थना। (पृ० ४३२–४३४)

सू० [३१]—यज्ञ और यजमान की प्रशंसा। उस के कर्त्तव्य। (२–७) पक्षान्तर में राजा के प्रजा के प्रति कर्त्तव्य। (४) प्रजावती स्त्री की अग्नि से तुलना। (५) पति-पत्नी के कर्त्तव्य। (१०–११) पूषा परमेश्वर से प्रार्थना। (१२–१४) विद्वानों से प्रार्थना। (१५– १८) उत्तम प्रभु भक्त का प्रभाव। यज्ञशील का वैभव, बल और सामर्थ्य। (पृ० ४३४–४४०)

तृतीयोऽध्यायः

सू० [३२]—विद्वान् पुरुषों के कर्त्तव्य का उपदेश। (२) शासक के गुण। (३) विद्युत्वत् सेनापति वा राजा के कर्त्तव्य। शत्रु-विजय का आदेश। (६) व्यापार का उपदेश। राजा प्रजा को समृद्ध करे।

पक्षान्तर में आचार्य और आत्मा का वर्णन। (१२) माता के तुल्य राजा का कर्त्तव्य। बड़े भारी पालक प्रभु की स्तुति। (१३–१५) नियन्ता सर्वविजयी सखा। बड़ा दानी है। (१६) उत्कर्ण जन। (१७) उपास्य का स्तवन। (१८) स्तुति योग्य के लक्षण। बन्धन-मोचक प्रभु। (१९–२०) जीव को कर्मफल भोग का उपदेश। (२१) राजा को वा उत्साही को आदेश उपदेश। (२६–२९) बलवान् इन्द्र के लक्षण। (२७–३०) विद्वानों को उपदेश। (पृ० ४४१–४५०)

सू० [२३]—उत्तम प्रजाओं के जलधारावत् कर्त्तव्य। (२) प्रभु ईश्वर की उपासना। (३) राजा और विद्वान् के कर्त्तव्यों का वर्णन। (५–६) पुरुषोत्तम के लक्षण। प्रभु के गुण-स्तवन। (१०) समस्त सुखवर्षी प्रभु। (११) वीर योद्धा रथीवत् प्रभु का वर्णन। (१२) बलवान् विद्वान् पुरुषों के कर्त्तव्य। (१७–१९) उत्तम स्त्री के कर्त्तव्य। (पृ० ४५१–४५८)

सू० [२४]—ज्ञानवान्, ज्ञानेच्छुक पुरुषों को उपदेश। उनके कर्त्तव्य। (१३) राजा के प्रति प्रजा की याचना। (पृ० ४५९–४६५)

सू० [२५]—जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। ऐश्वर्य प्राप्ति और उन्नत होने के उपदेश। रथी-सारथी, राजा-सचिव आदिवत् उनके कर्त्तव्य। (४) उषा-सूर्यवत् उनके कर्त्तव्य। (७) हारिद्रव नाम जलपक्षी, वा वनमहिष के दृष्टान्त से उन के कर्त्तव्य। (८) दो हंसों के समान उनके कर्त्तव्य। (९) दो श्येनों के तुल्य उनके कर्त्तव्य। (१०–१२) पान, तृप्ति, गमन, प्रजा, धन आदि धारण, विजय, रक्षा और शत्रुहनन का उपदेश। (१३–१५) धर्मवान्, तेजस्वी, ज्ञानी, सत्यवान् पुरुषों के सत्संगी होकर जीवनभर व्यतीत करने का उपदेश। (१६–१८) ज्ञानवृद्धि, कर्मवृद्धि, रक्षोहनन, दुष्टनाशन, क्षत्रविजय, गोवृद्धि, प्रजावृद्धि का उपदेश। (१९–२२) वेद-श्रवण, सन्तानोत्पत्ति, यज्ञ,

देहसंयम का उपदेश। (२३) परस्पर आदर करो। (२४) अन्न-यज्ञ द्वारा सन्तुष्ट होवो। (पृ० ४६५–४७३)

सू० [२६]—ऐश्वर्यवान् विद्वान् वा राजा के कर्त्तव्य। प्रभु की उपासना और उससे प्रार्थना। (पृ० ४७३–४७६)

सू० [२७]—माध्यंदिन के समान प्रजापालक राजा का व्यवहार। एकराट् राजा के कर्त्तव्य। (पृ० ४७६–४७९)

सू० [२८]—इन्द्र अर्थात् विद्युत् और अग्नि के तुल्य विद्वानों राजा और अमात्यों के कर्त्तव्य। उनके तुल्य परस्पर सहायकों और विद्वानों के कर्त्तव्य। (पृ ४७९–४८२)

सू० [२९]—अग्नि, ज्ञानी और अग्रणी नेता पुरुष के कर्त्तव्य। उसके ज्ञान-प्रकाश द्वारा क्रम से विघ्नों और दुष्टों का नाश। (६–१०) देहाग्निवत् विद्वान् के कर्त्तव्य। (पृ० ४८३–४८९)

सू० [४०]—इन्द्र, अग्नि, वायु, आग के समान विद्वानों के ज्ञान और तेजस्वी नायक के तेज, पराक्रम से दुष्टों का नाश। (२) इन्द्र और अग्नि दो अध्यक्षों का वर्णन। उनके आदर का उपदेश। (५) विद्युत् और अग्नितत्वों को वश करने का उपदेश। (६) दुष्ट के धनादान और वश करने की आज्ञा। (७) दुष्टों के नाश का उपदेश। (८) सूर्य, अग्निवत् व्रतपालकों के कर्त्तव्य। (१०–१२) सूर्यादि के तेज से रोगों के तुल्य दुष्टों का नाश। (पृ० ४८९–४९५)

सू० [४१]—श्रेष्ठ पुरुषों के आदर का उपदेश। राजा के कर्त्तव्य। (२) राजा के नाशार्थ उद्योग, पालक पुरुषों का नियोजन। (३) राजा का सैन्य-रक्षण। राष्ट्रस्थापन। (४) देह में प्राणों वा राजा का प्रजाओं को पालन करने का कर्त्तव्य। (५) सूर्यवत् लोकधारण के तुल्य राष्ट्रधारण। (६) चक्र में नाभि के तुल्य प्रभु वा विद्वान् के कर्त्तव्य। गोशाला में पशुओं के तुल्य इन्द्रियों का संयम। (७) सर्वोपरि वरुण। (८) समुद्रवत् राजा। (९) त्रिलोकाधिपति वरुण

परमेश्वर। राजा के सात अश्वोंवत् प्रभु का सब स्थावर जंगमों पर शासन। (१०) सर्वशासक की अद्भुत शक्तियां। (पृ० ४९५–५००)

सू० [४२]—वरुण परमेश्वर का वर्णन। सर्वोपास्य प्रभु। नौकावत् वेदवाणी का आश्रय लेने का उपदेश। (४–६) स्त्री पुरुषों को उपदेश। (पृ० ५००–५०२)

सू० [४३]—प्रभु की वेदवाणियों द्वारा स्तुति। (३) सर्व पापनाशन प्रभु, अग्नि। (४) अग्निवत् प्रभु की विभूतियां। इसी प्रकार स्वतन्त्र जीवगण की सत्ता का वर्णन। (५) नाना स्वतन्त्र जीवों का अग्नियों के तुल्य निरूपण। (६) साधक जीव के मार्ग की बाधाएं। (७) अग्नि से जीवनधारी आत्मा की तुलना। (८) पुनः उत्पन्न होने वाले जीव की अग्नि से तुलना। (९) अग्निवत् जीव का जन्म। (१०) अग्नि-ज्वाला के तुल्य गर्भ में स्थिर जीव की वृद्धि। (११) जीव और परम-आत्मा का स्वरूप। (१२) प्रकाशमय, दुःखनाशन, पापनिवारक प्रभु की उपासना। (१४) उसके प्रकाशित होने का प्रकार। (१५) सहस्र-ऐश्वर्यप्रद प्रभु। (१६) भ्रातृवत् शुद्धहृदय प्रभु। (१७) मातृवत् प्रभु का वरण। (१८) मुख्य प्राणवत् प्रभु। (१९) सर्वाध्यक्ष प्रभु। (२०–२१) समदर्शी प्रभु। (२२) प्रकाशस्वरूप प्रभु। (२३) द्वेषनाशक प्रभु। (२४) साक्षी, अध्यक्ष प्रभु। (२५) सब को भयप्रद सर्वसञ्चालक प्रभु। (२६) दण्ड दाता प्रभु। (२७) अग्निवत् प्रभु। (२८) आत्मा के तीन रूप। (३२) बलवान् दुष्टनाशक प्रभु। (३३) अविनाशी ऐश्वर्य का स्वामी प्रभु। (पृ० ५०२–५१४)

सू० [४४]—अग्नि - परिचर्या के तुल्य गुरु और प्रभु की उपासना। (४) अग्नि और सूर्यवत् ऊर्ध्वरेता तेजस्वी का वर्णन। अग्नि की प्रभु से श्लिष्ट समताएं। (६–७) स्तुत्य अग्नि, विद्वान् और प्रभु। (८) यज्ञ का नेता अग्नि। (११) विजिगीषु तेजस्वी नायक अग्नि।

(१२) विद्वान् अग्नि। (१३–१४) नायक अग्नि। (१५–१६) ब्रह्मचारी विद्वान् अग्नि। (१७-२१) ज्ञानी, स्तुतियोग्य प्रभु। (२३) भक्त की अनन्यता उपास्यमयता। (२४) सर्वपालक प्रभु। (२५–२७) स्तुत्य प्रभु। (२८) उपास्य में लय। (२९) ब्रह्माण्डदीपक प्रभु। (३०) मोक्ष की प्रार्थना। (पृ० ५१४–५२२)

सू० [४५]—इन्द्र अग्नि। प्रभु के उपासकों का महान् ऐश्वर्य। (४) राजा का भूमि-माता के प्रति कर्त्तव्य। (५) बलवान् यशस्वी नेता अग्नि। (६–७) महारथी अग्नि, उसके कर्त्तव्य। (९–११) उत्तम सेनापति अग्नि। उसके कर्त्तव्य। (१२) दानशील। गृहपतिवत् अग्नि प्रभु। (१४) ऐश्वर्यवान् प्रभु। उस से नाना प्रार्थनाएं, शरण-याचना। (२३) उत्तम नेताओं के कर्त्तव्य। (३०–४२) श्रेष्ठ राजा, उससे प्रजा की न्यायानुकूल नाना अभिलाषाएं। (पृ० ५२२–५३४)

चतुर्थोऽध्यायः

सू० [४६]—उत्तम शासक, नेता, स्वामी शासक के कर्त्तव्य। प्रभु का वर्णन। उससे अनेक प्रार्थनाएं। (२८) स्वराष्ट्र-शासक। उसका वैभव। (पृ० ५३५–५४६)

सू० [४७]—आदित्यों, मासों के तुल्य विद्वान्, तेजस्वी पुरुषों के कर्त्तव्य। (२–३) चूज़ों पर पक्षीवत् उनकी प्रजा पर पक्षच्छाया। (७) उनकी उत्तम रक्षा का आदर्श। (८) कवचवत् रक्षकों का स्वरूप। (९) रक्षा शान्तिप्रद हो। (१०) देह से गृह और राष्ट्र की तुलना। (११–१८) उन के निष्पाप सुखदायी रक्षा-कार्यों का विवरण। (पृ० ५४६–५५३)

सू० [४८]—सोम। उत्तम अन्न, ओषधि-सेवनवत् परमानन्दमय प्रभु का सेवन। (२) सोम शिष्य, उपासक के कर्त्तव्य। पक्षान्तर में विद्वान् और देह में वीर्य का वर्णन। (३–५) सोम, ओषधि-रस के पान के समान ऐश्वर्य, वीर्य, पुत्र शिष्यादि का पालन। (६) विद्वान्

सोम से ज्ञान की प्रार्थना। सोम तेजस्वी प्रभु से दीर्घ जीवन की याचना। (९) सोम का व्रत पालन। (१०) सोम, राजा से प्रार्थना। (११) सोम अभिषिक्त राजा। (१२) सोम, व्यापक प्रभु की परिचर्या। (१४) विद्वानों से प्रार्थना। (पृ० ५५३–५६०)

वालखिल्यम्

सू० [४९]—ज्ञानप्रद, सर्वदाता, सर्वरक्षक प्रभु की स्तुति। (२) मेघ वा पर्वत से झरते जलों के तुल्य प्रभु के ऐश्वर्य। (३) जलाशय के जलों के तुल्य उसके पूरक ऐश्वर्य। (४) मधुवत् उसके मधुर सुख। (५) गोरसों के तुल्य सुखद उसके दान। ऐसे प्रभु की उपासना का उपदेश। (७) राजा से प्रजा की प्रार्थनाएं। (पृ० ५६०–५६४)

सू० [५०]—इन्द्र परमेश्वर की स्तुति का उपदेश। प्रभु का अपार ऐश्वर्य। (३) प्रभु और उपासक जन। (पृ० ५६४–५६८)

सू० [५१]—उत्तम राजा का वर्णन। (३–४) ज्ञानमय प्रभु एवं उपदेश से ज्ञान की याचना। (४) इन्द्र-प्रभु विषयक उपदेश। सहस्रशीर्षा अश्व। (५) प्रभु का ज्ञान। इस एक जन्म में करने की प्रार्थना। (६–८) दाता प्रभु से याचना। सर्वस्वामी और स्तुत्य प्रभु। (पृ० ५६४–५७२)

सू० [५२]—शक्तिशाली, राजा, विद्वान् और परमेश्वर का वर्णन। (३) इन्द्र का स्वरूप। महान् शासक परमेश्वर इन्द्र। उसकी स्तुति प्रार्थनाएं।

सू० [५४]—परमेश्वर की स्तुति प्रार्थनाएं। (पृ० ५७९–५८२)

सू० [५५]—प्रस्कण्व की दानस्तुति। परमेश्वर के जीव जनों पर अपार दान। (पृ० ५८२–५८४)

सू० [५६]—तेजस्वी परम पुरुष का विशाल बल और ऐश्वर्य। (२) वेदज्ञान का दाता प्रभु। विद्वानों को अनेकविध दान। (पृ० ५८४–५८६)

सू० [५७]—सदाचारी स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य । जीवन का तृतीय सवन । (पृ० ५८६–५८८)

सू० [५८]—यजमान और ऋत्विजों के कर्त्तव्य । (२) सूर्य, अग्नि, उषावत् सर्वप्रकाशक प्रभु । (३) विराट् रथ का वर्णन । (पृ० ५८९–५९०)

सू० [५९]—विद्युत् , जल, मित्र वरुण । उन के समान सेनापति और राजा के कर्त्तव्य । (४) गुरु और आचार्य के कर्त्तव्य । (पृ० ५९०–५९४) इति वालखिल्यम् ।

सू० [६०]—प्रकाशस्वरूप, उत्तम अग्नि तुल्य, नायक प्रभु की प्रार्थना । अग्निवत् परमेश्वर के गुणों का वर्णन । (९) ज्ञानी व गुरु का वर्णन । (१०) रक्षोघ्न राजा के कर्त्तव्य । (११) पावन प्रभु का वर्णन । (१२–१४) राजा का पराक्रम । (१५) अरणियों में अग्नि के तुल्य तेजस्वी की प्रजाओं में स्थिति । (१६) यज्ञाग्निवत् सात प्रकृति वाले राजा का स्वरूप । उसके कर्त्तव्य । (पृ० ५९४–६०२)

सू० [६१]—सत्य-निर्णायक न्यायाधिकारी के कर्त्तव्य । (२) धिषणा नाम दो सभाओं को अपना रक्षक चुनने का अधिकार । (३) राजा के कर्त्तव्य । (४) राजा के प्रति प्रजा के कर्त्तव्य । (५) ऐश्वर्यवान् प्रभु का पद, उस का कर्म । परमेश्वर के ध्यान ज्ञान से कर्म करने वाला पवित्र हृदय होता है । (१२) उत्तम रथीवत् प्रभु की उपासना । (१३–१८) प्रभु से अभय की याचना । (पृ० ६०२–६०९)

सू० [६२]—ईश्वर की स्तुति । प्रभु के मङ्गलकारी दान । (२) एक अद्वितीय, अविनाशी (३) सर्वजीवन प्रद है । प्रभु के दिये अनेक सुखकारी दान । (७) विश्व का पालक प्रभु । (८) प्रभु का आदर्श बल । (९) युगल का घटक प्रभु । (१०–१२) उपास्य के प्रति भक्तिपूर्ण भाव । (पृ० ६०९–६१३)

सू० [६३]—शासक, विद्वान् ज्ञानी के माता पितावत् कर्त्तव्य ।

प्रभु वा शासक का सर्वोपरि पद । (३) सर्वोपरि ज्ञानप्रद गुरु, परमेश्वर । (६) सर्वाश्रय परमेश्वर । (७) सर्वपूज्य स्वामी ईश्वर । (८) जगत् का प्रवर्त्तक ईश्वर । (९) सुखार्थी जीव का प्रभु के आनन्द की ओर झुकाव । (१२) त्यागी जनों से प्रार्थना । (पृ० ६१४–६१८)

सू० [६४]—परमेश्वर की स्तुति । (२) महान् प्रभु । (३) सर्वप्रभु राजा । (४) सर्वोपरि ईश्वर । (५) विद्वान् के कर्त्तव्य । (७) सर्वोपास्य, अज्ञेय प्रभु । (८–१०) प्रभु के विरल भक्त । (११–१२) राजा का अभिषेक-रहस्य । (पृ० ६१८–६२२)

सू० [६५]—सर्वव्यापक प्रभु की स्तुति और उपासना । (पृ० ६२२–६२५)

सू० [६६]—परमेश्वर की स्तुति । (२) सर्वोपरि बलशाली प्रभु । (३) गोरूप वाणियों के आवरण को दूर करने वाला इन्द्र प्रभु । (४) सन्मार्ग-प्रवर्त्तक जगन्निर्माता प्रभु । (६) सर्वोत्तम दाता प्रभु । (७) नित्य (८) सिंहवत् वा चन्द्रवत् प्रभु और राजा का वर्णन । (९) प्रकृति से जगत् का स्रष्टा सर्वोपरि श्रवणीय है । (१०) अपार बली प्रभु । (११) भोजनवत् नियमानुसार भक्ति का विधान । (१२) सर्वोपरि दयालु प्रभु (१३–१४) मोक्ष की याचना (। १५) अभय-आश्वासन । (पृ ६२६–६३२)

सू० [६७]—आदित्य सदृश तेजस्वी, धनवान् बलशाली लोगों के कर्त्तव्य । (२) वे प्रजा को पाप से मुक्त करें और प्रजा का पालन करें । (७) उत्तम शासक स्वयं अपराध से रहित हों । (९) प्रजा को नाश होने से बचावें । (१०–११) विदुषी माता के कर्त्तव्य । (१२) उग्रपुत्रा माता भूमि । (१३) उरुव्रजा, उरूची वैश्य सभा । (१३–२१) तेजस्वी विद्वान् पुरुषों के कर्त्तव्य । पृ० ६३२–६३८)

पञ्चमोऽध्यायः

सू० [६८]—ईश्वराराधना, उसकी स्तुति और प्रार्थना। सृष्टिकर्त्ता का पुनः पुनः मनन। (२) विश्व का विस्तारक परमेश्वर। (३) बलशाली। (४–५) राजा का वर्णन। (६) सर्वलोकपति प्रभु। (७) प्रजाओं का स्वामी प्रभु। (८) अपार शक्तिशाली प्रभु। (९–१३) उसकी स्तुति और प्रार्थनाएं। (१४) आत्मा के ६ नर ६ इन्द्रिय गण। (१५) अश्वमेध-राष्ट्र-शासनवत् देहव्यवस्था। (१६) राष्ट्र में उत्तम वीरों की नियुक्ति। ६ सेनापतियों की नियुक्ति। वधूमान् अश्वों का रहस्य। अध्यात्म व्याख्या। देह में वाणीवत् राष्ट्र में राजसभा का रूप। (१९) नियुक्त जनों को उपदेश कि कोई भी निन्दनीय कर्म न करें। (पृ० ६३८–६४४)

सू० [६९]—राष्ट्र के प्रजाजनों के कर्त्तव्य। (३–४) प्रजाओं द्वारा उत्तम शासक की स्थापना। (६) वेदवाणियों द्वारा प्रतिपादित परमेश्वर मधुर रसवत् रूप। प्राप्त पद सखावत् प्रभु का मोक्ष सुख का पद। सखा प्रभु। (८) प्रभु की अर्चना का उपदेश। (९) विद्वान् का प्रजाजनों को उपदेश। (१०) गौओंवत् प्रजाओं का रूप। राजा का प्रजा के प्रति कर्त्तव्य। वरण योग्य राजा वरुण। (१२) वरुण आचार्यवत्। उत्तम नायकवत् भवबन्धन मोचक प्रभु। (१४) पक्व ओदन के तुल्य शिष्य का गुरु से ज्ञान ग्रहण। राजकुमार के रथारोहणवत्। राष्ट्रशासन पद का आरोहण, और जीव का ब्रह्मपद-आरोहण। (१६) गृहपति का गृहस्थ रथ पर आरोहण। राजा-राष्ट्र का 'दम्पति भाव'। (१७) राजतन्त्रवत् अध्यात्मस्वराट् की उपासना। खेती करने के तुल्य देह से कर्मफल प्राप्ति। (पृ० ६४५–६५३)

सू० [७०]—सर्वोपरि नायक शासक का वर्णन। प्रभु परमेश्वर की गुण-स्तुति। (५) पक्षान्तर में वीर पराक्रमी शासक का वर्णन। उसके कर्त्तव्य। (१०) पितावत् प्रभु। दुष्ट दमनकारी वा राजा।

(१२) राजा के कर्त्तव्य और बन्धनमोचक प्रभु। (१५) सेना वशकारी राजा के कर्त्तव्य। (पृ० ६५३–६५९)

सू० [७१]—तेजस्वी अग्रणी नायक के कर्त्तव्य। उस के आवश्यक गुणों का वर्णन। (११) नायक के दो प्रकार के रूप। (१२–१५) देववत् पूज्य अग्नि परमेश्वर का वर्णन। (पृ० ६५९–६६२)

सू० [७२]—यज्ञ प्रतिपादन। ब्रह्मयज्ञ। अध्ययन-अध्यापन का प्रकार। (२) गुरु का सप्रेम शासन। (३) विद्युत्वत् जिह्वा का स्वरूप। (४–५) विद्युत् का रथयान में प्रयोग। तद्वत् देह में आत्माग्नि का संयोग। (७) देह का अद्भुत यन्त्र। (८) अन्तरिक्ष रचनावत् देह-रचना का चमत्कार। (९) त्रिगुणात्मक देह की रचना। उस में यज्ञ। (१०) क्षेत्रसेचक कूप-ढेंकी यन्त्र से देह की रचना का आश्चर्यकारी वर्णन। इसी प्रकार राज्यतन्त्र का वर्णन। मेघ के तुल्य राजतन्त्र के कर्त्तव्य। (१२) प्रजा का योग्य पालक का आश्रय ग्रहण। (१३) अभिषेक योग्य व्यक्ति के लक्षण। (१४) प्रजाओं के परस्पर योग्य व्यवहार। (१५) देह के तुल्य राष्ट्र की स्थिति। देह में वीर्यवत् राजा की स्थिति। वायुवत् स्वामी का कर्त्तव्य। (१८) अग्निवत् नायक विद्वान् का कर्त्तव्य। (पृ० ६६२–६७०)

सू० [७३]—विद्वान् जितेन्द्रिय सत्पुरुषों के कर्त्तव्य। स्त्री-पुरुषों को उत्तम उपदेश। (पृ० ६७०–६७५)

सू० [७४]—विद्वान् का आदर करने का उपदेश। उत्तम विद्वान् के लक्षण, उस की उपासना। पक्षान्तर में परमेश्वर की उपासना का उपदेश। परमेश्वर का स्वरूप उस से नाना प्रार्थनाएं। (१३–१५) उत्तम राजा की दान स्तुति। राजा का कर्त्तव्य ज्ञानसेवियों का पालन। राजा की बलवती सेना 'पल्गी' का वर्णन। (पृ० ६७६–६८१)

सू० [७५]—रथ में अश्व के तुल्य उत्तम विद्वान् कर्मकर्त्ताओं की नियुक्ति। प्रधान शासक के कर्त्तव्य। ज्ञान, बल और धन इन का त्रिविध पति अग्नि। (५) चक्रधारा के तुल्य राष्ट्रचक्र-नीति को वश

करने का उपदेश। (६) प्रभु स्तुति के लिये नित्य वाणी का प्रयोग। (७-८) नायक के प्रति अधीन प्रजाओं का कर्त्तव्य। (९) बुरे लोगों का पापसंग हमें पीड़ित न करे। (१०) राजा को शत्रुपीड़न का उपदेश। (११) उस से धन-सम्पदा की प्रार्थना। (१२) संकट में भी राजा प्रजा का साथ न छोड़े। (१३) सेनापति के कर्त्तव्य। (पृ० ६८१-६८६)

सू० [७६]—उत्तम सेना नायक के कर्त्तव्य। उस की सूर्य से तुलना। (४) विजयी स्तुत्य सेनापति। पक्षान्तर में परमेश्वर का निर्देश। महान् शासक के गुण। (६) प्रभु की प्रार्थना। (७) नाना वीरों के नायक का राष्ट्र-पालन का कर्त्तव्य। अध्यात्म में आत्मा मरुत्वान् का वर्णन। (८) विद्वानों बलवानों का आदर। पराक्रमी के कर्त्तव्य। (१०) तृप्त राजा। (११) शास्य-शासक दोनों बलवान् होते हैं। (१२) अष्टापदी वाणी का वर्णन। (पृ० ६८६-६९०)

सू० [७७]—राजा के प्रजा के प्रति कर्त्तव्य। (४) चन्द्र सूर्यवत् राजा के व्यवहार का वर्णन। (५) सूर्यवत् राजा के कर्त्तव्य। (६) मेघ-छेदन-भेदन वत् शत्रु पर भेद नीति का कार्य। (७) राजा का सहायक शस्त्रबल। (८) प्रजा के सुख के प्रति राजा का ध्याना-कर्षण। वायु-मेघ के व्यवहारों के समान राजा और राजपुरुषों के कर्त्तव्य। (११) शस्त्रबल। (९) राजा वा प्रभु के अनेक बल, उनकी श्लिष्ट तुलना कैसे हो। (पृ० ६९०-६९६)

सू० [७८]—ऐश्वर्यवान् प्रभु और स्वामी के कर्त्तव्य। उनसे भोजन, वस्त्र, आभूषणादि की प्रार्थना। राजा, विद्वान् तत्वदर्शी का वर्णन। इन्द्र-पद। (६) उसका अविनाशी पद। (७) सर्वैश्वर्य स्वामी प्रभु। (९) प्रभु और राजा के लिये प्रजा के प्रति नाना कर्म। (पृ० ६९६-७००)

सू० [७९]—जगत्कर्त्ता और सञ्चालक प्रभु का वर्णन। पक्षान्तर में शासक राजा के कर्त्तव्य। उन के अद्भुत कर्म। (२)

विशाल गृह के तुल्य राजा की स्थिरता। उत्तम सञ्चालक। (५) दानार्थियों का एक मात्र शरण। विद्यार्थियों का शरण गुरु। (६) विद्यादान पुनर्जीवन है। (७) दयाशील शासक का रूप। (८) राजा वा शासक सत् प्रजा को भय का कारण न हो। प्रजा को उद्विग्न न करे और हृदय को पीड़ित न करे। (९) दुष्टों को दूर करे। (पृ० ७००-७०३)

सू० [८०]—राजावत्‌दयालु प्रभु का वर्णन। उत्तम रक्षक के कर्त्तव्य। (५-६) राजावत् प्रभु से प्रार्थनाएं। (७) राजा वा प्रभु की दुर्ग से तुलना। (९) प्रभु का तुरीय पद। सर्वानन्दप्रद उपास्य प्रभु। (पृ० ७०३-७०६)

सू० [८१]—प्रभु की स्तुति और प्रार्थनाएं। प्रभु (२) सर्वैश्वर्यवान्। (३) वेरोक दानशील उद्यमार्थ प्रेरक प्रभु। (७) स्नेही प्रभु। सर्व मनोरथ-पूरक प्रभु। (पृ० ७०६-७०९)

षष्ठोऽध्यायः

सू० [८२]—धनसम्पन्न व्यापारी वर्ग के कर्त्तव्य। (२) राजा की राष्ट्र-पालनार्थ शासकों की नियुक्ति। (३) अन्न सर्वोत्तम भोजन। (४) अशत्रु राजा। (५-९) अन्नादिवत् ऐश्वर्यादिक। ऐश्वर्य आदि का पात्र राजा। उस के अधिकार और कर्त्तव्य। (पृ० ७०९-७१२)

सू० [८३]—विद्वान् तेजस्वी, व्यवहारकुशल विद्वान् जनों के कर्त्तव्य। (पृ० ७१२-७१४)

सू० [८४]—अग्रणी नायक के गुण और कर्त्तव्य। (२) नायक की दीपक वा अग्निवत् दो प्रकार की स्थिति। (६) नायक वा प्रभु के प्रति अधीनों के कर्त्तव्य। (पृ० ७१४-७१७)

सू० [८५]—विद्वान् जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। (पृ० ७१७-७२०)

सू० [८६]—उत्तम स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। (पृ० ७२०-७२२)

सप्तमोऽध्यायः

इत्यष्टमं मण्डलम्

शुद्धाशुद्ध-पत्रम्

पृ०	पं०	अशुद्धम्	शुद्धम्
४	२	अमृता	अनृता
२२	१०	पातम्	यातम्
३२	२०	समुद्र में (भुज्युम्)	समुद्र में (जहुः) त्याग देते हैं उस (भुज्युम्)
५५	२०	देखी जावें	देखे जावें
७२	१६	अश्व गो	अश्व गौ
९५	१७	तुझे	हमें
१७१	२	करती	करता
२८३	६	वहुत सेनानो	वहुत से नामों
३७०	१७	रवन्त	रेवन्तं
३६८	१३	शम् आ	सम् आ
३९४	२५	हृहय	हृद्य
४८१	१३	विद्युत्	विद्युत्
५५३	१७	(परिवोवित्तरस्य)	(वरिवोवित्तरस्य)
५६७	१०	(मनुष्यः)	(मनुपः)
६०७	५	(रथीतम)	(रथीतमः)
६१४	१४	स्रव	स्रव
६५५	२	॥ ७ ॥	॥ ४ ॥
६५८	२२	युक्त करे	मुक्त करे
६८३	१४	पाले	वाले
६९३	८	पत्र	पात्र
७०२	२१	तृप्त	लुप्त
७१६	२०	(पृष्ट सं०) ७१६, ७१९, ७१८, ७१७, ७२०	पृष्ट सं० ७१६, ७१७ ७१८, ७१९, ७२०
७६६	१९	२१ सौ	२१ सो
७६८	७	जजान	(जजान)
८१०	२३	श्रमपूर्वक	भयपूर्वक

उपदेश करता है (सः) वह (मर्त्येषु) मनुष्यों में (मन्युम्) मनन करने योग्य उत्तम ज्ञान भी (आ चिकेत) प्रदान करता है। अर्थात् परमेश्वर ही मनुष्यों में सूर्य के समान ज्ञान का प्रकाश देता है। इसी प्रकार तेजस्वी विद्वान् भी मनुष्यों में ज्ञान का दान करे।

प्र वां स मित्रावरुणावृतावा विप्रो मन्मानि दीर्घश्रुदियर्ति।
यस्य ब्रह्माणि सुक्रतू अवाथ आ यत्क्रत्वा न शरदः पृणैथे ॥२॥

भा०—हे (मित्रा वरुणा) सब के स्नेही और सब से वरण करने योग्य श्रेष्ठ स्त्री पुरुषो ! (यस्य) जिसके (ब्रह्माणि) उत्तम ज्ञानों और धनों की आप दोनों (सु-क्रतू) उत्तम कर्मवान् होकर (अवाथ) रक्षा करते हो और (यत्) जिसके (क्रत्वा न) यज्ञवत् कर्म और ज्ञान सामर्थ्य से (शरदः पृणैथे) जीवन के समस्त वर्षों को सुखपूर्वक व्यतीत करते हो। (सः विप्रः) वह विद्वान् पुरुष (ऋतावा) न्याय और सत्य ज्ञान से युक्त और (दीर्घ-श्रुत्) दीर्घ काल तक वेदादि सत्य शास्त्रों का श्रवण करने वाला, बहुश्रुत होकर (वां) आप लोगों के प्रति (मन्मानि) मनन करने योग्य ज्ञानों को (इयर्त्ति) उपदेश प्रवचन आदि करे। *

प्रोरोर्मित्रावरुणा पृथिव्याः प्र दिव ऋष्वाद् बृहतः सुदानू।
स्पशो दधाथे ओषधीषु विक्ष्वृधग्यतो अनिमिषं रक्षमाणा ॥३॥

भा०—हे (मित्रावरुणौ) 'मित्र' प्रजाजनों को मृत्यु आदि के कष्टों से बचाने वाले और 'वरुण' और उनके दुखों को दूर करने वाले दोनों प्रकार के वर्गो ! हे (सु-दानू) उत्तम ज्ञान सुखादि के दाता आप दोनों (उरोः पृथिव्याः) विशाल पृथिवी और (बृहतः) बड़े भारी (ऋष्वात्) महान् (दिवः) प्रकाशयुक्त सूर्य से (स्पशः) नाना प्रकार के ग्रहण करने योग्य पदार्थों को (प्र प्र दधाथे) प्राप्त किया करो। (ओषधीषु) ओषधियों

* अत्रयावन्महर्षिदयानन्दभाष्यमुपलभ्यत।

और (विक्षु) प्रजाओं में भी (अनिमिषं) विना प्रमाद के, विना पलक झपके (ऋधक्) सत्य के बल से (रक्षमाणा) प्रजाओं की रक्षा करते हुए भी (यतः) यत्नशील (स्पशः प्र दधाथे) उत्तम गुप्तचरों और दूतों को अच्छी प्रकार नियुक्त करो।

शंसा मित्रस्य वरुणस्य धाम शुष्मो रोदसी बद्बधे महित्वा।
अयन्मासा अयज्वनामवीराः प्र यज्ञमन्मा वृजनं तिराते॥४॥

भा०—हे (मित्रस्य) प्राणवत् वा जल व सर्वप्रिय, सर्वस्नेही, शान्तिदायक और (वरुणस्य) दुःखों और अज्ञानों के वारण करने वाले जन के (धाम) तेज और स्थान को (शंस) प्रशंसा कर। जिसके (महित्वा) बड़े सामर्थ्य से (शुष्मः) शत्रुशोषक, बलवान् पुरुष वा जिसका महान् सामर्थ्य (रोदसी बद्बधे) सूर्य के समान आकाश पृथिवीवत् (रोदसी) दुष्टों को रुलाने वाली सेना और प्रजाजना दोनों को सुबद्ध कर व्यवस्थित करता है। (अयज्वनाम्) यज्ञ, सत्संगादि से रहित लोगों के (मासः) महीनों पर महीने (अवीराः) वीर पुत्रादि रहित वा विना विशेष विद्याध्ययन ज्ञान प्राप्ति के ही (अयन्) व्यतीत होते हैं और (यज्ञमन्मा) पूज्य प्रभु का मनन, सत्कर्म, गुरु और राजादि के मान्य करने वा सत्संगादि ज्ञान प्राप्त करने वाला जन (वृजनं) अपने ज्ञान और बल को (प्र तिराते) खूब बढ़ाने में समर्थ होता है।

अमूरा विश्वा वृषणाविमा वां न यासु चित्रं ददृशे न यक्षम्।
द्रुहः सचन्ते अनृता जनानां न वां निण्यान्यचिते अभूवन्॥५॥

भा०—हे (अमूरा) अमूढ़, मोह में न पड़ने वाले! हे (विश्वा) विविध विद्या में प्रवेश करने हारो! हे (वृषणौ) बलवान्, सुखों की वर्षा करने वाले मेघ सूर्यवत् उपकारी पुरुषो! (इमाः) ये (वां) आप लोगों की ऐसी उत्तम वाणियां हैं (यासु) जिनमें (चित्रं) अद्भुत और (यक्षम्) विशेष स्तुति योग्य (न न ददृशे) कुछ नहीं दिखाई

देता ऐसा नहीं, प्रत्युत आपकी वाणियों में सर्वत्र अद्भुत और ग्राह्य, स्तुत्य पदार्थ ही विद्यमान है। (जनानां) मनुष्यों के बीच में (द्रुहः) द्रोही पुरुष ही (अनृता) असत्य २ बातों को (सचन्ते) सेवन करते हैं, वे हरेक बातों का उल्टा मतलब लगाया करते हैं। वस्तुतः (वां) आप लोगों के (निण्यानि) छुपे हुए रहस्य मर्म (अचिते न अभूवन्) अज्ञानी पुरुष के लिये नहीं प्रकट होते हैं। अर्थात् उत्तम स्त्री पुरुषों के वचन सरल और स्पष्ट होने चाहियें। द्रोही लोग उनका कुछ का कुछ ही झूठ मतलब लगाते हैं अज्ञानी लोग उनकी यथार्थता नहीं जानते।

समु वां यज्ञं महयं नमोभिर्हुवे वां मित्रावरुणा सबाधः।
प्र वां मन्मान्यृचसे नवानि कृतानि ब्रह्म जुजुषन्निमानि ॥ ६ ॥

भा०—हे (मित्रावरुणा) सर्वस्नेही और सबसे गुरु आदि रूप से वरण करने योग्य स्त्री पुरुषो! (सबाधः) विशेष अज्ञानादि की बाधा वा पीड़ा से युक्त होकर (वां यज्ञं) आप लोगों के सत्संग की मैं (नमोभिः) अति विनययुक्त वचनों से (महयम्) स्तुति करता हूँ और (वां हुवे) आप दोनों की भी स्तुति करता हूं। (वाम्) आप लोगों के (नवानि) नये से नये स्तुत्य (कृतानि) सम्पादित किये (इमानि ब्रह्म) ये नाना अन्नादि, धन और उपदिष्ट (मन्मानि) मनन करने योग्य ज्ञानादि को लोग (ऋचसे) सेवन करने के लिये (जुजुषन्) प्रेमपूर्वक प्राप्त करें।

इयं देव पुरोहितिर्युवभ्यां यज्ञेषु मित्रावरुणावकारि।
विश्वानि दुर्गा पिपृतं तिरो नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥३॥

भा०—व्याख्या देखो सू० ६० । म० १२ ॥ इति तृतीयो वर्गः ॥

[६२]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १—३ सूर्यः । ४—६ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ६ विराट्त्रिष्टुप् । ३, ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

उत्सूर्यो॑ बृहद॒र्चींष्य॑श्रेत्पु॒रु विश्वा॒ जनि॑म॒ मानु॑षाणाम् ।
स॒मो दि॒वा द॑दृशे॒ रोच॑मानः॒ क्रत्वा॑ कृ॒तः सुकृ॑तः क॒र्तृभि॑र्भूत् ॥१॥

भा०—(बृहत् सूर्यः पुरु अर्चींषि उत् अश्रेत्) बड़ा भारी सूर्य जिस प्रकार बहुत से किरणों और तेजों को अपने में धारण करता है इसी प्रकार (सूर्यः) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष (बृहत्) बड़ा होकर (मानुषाणाम्) मनुष्यों के (विश्वा जनिम) समस्त जन-संघों को (उत् अश्रेत्) अपने ऊपर धारण करे, उनका भार अपने कन्धे ले । और (पुरु अर्चींषि) बहुत से सत्कारों को भी (उत् अश्रेत्) उत्तम रीति से प्राप्त करे । वह सूर्यवत् (रोचमानः) तेजस्वी एवं सबको प्रिय लगता हुआ (दिवा) कान्ति, न्याय, व्यवहार आदि से (समः) सब के प्रति समान (ददृशे) दीखे । वह (क्रत्वा) उत्तम बुद्धि से (कृतः) सम्पन्न होकर (कर्तृभिः) उत्तम कार्यकर्त्ताओं द्वारा (सु-कृतः) उत्तम कार्य करने में समर्थ (भूत्) हो ।

स सू॑र्य॒ प्रति॑ पु॒रो न॒ उद्गा॑ ए॒भिः स्तोमे॑भिरेत॒शेभि॒रेवैः॑ ।
प्र नो॑ मि॒त्राय॒ वरु॑णाय वो॒चोऽना॑गसो अ॒र्य॒म्णे अ॒ग्नये॑ च ॥ २ ॥

भा०—हे (सूर्य) सूर्य के समान तेजस्विन् ! जिस प्रकार (एतशेभिः एवैः स्तोमेभिः पुरः प्रति उद्गच्छति) सूर्य शुक्ल किरण-समूहों से पूर्व दिशा में प्रति दिन उदय को प्राप्त होता है उसी प्रकार हे राजन् ! विद्वन् ! तू भी (एतशेभिः) उन अश्वों से (एभिः स्तोमैः) इन स्तुत्य जन संघों सहित वा (एतशेभिः एवैः स्तोमेभिः) शुक्ल, शुद्ध, ज्ञानदायक, स्तुति-योग्य मन्त्रसमूहों सहित (प्रति) प्रतिदिन (नः पुरः) हमारे समक्ष उदय को प्राप्त हो । वा (नः पुरः) प्रति (उद् गाः) हमारे नगरों के प्रति आ । और (नः) हमारे में से (मित्राय) स्नेहवान् (वरुणाय) दुःखों के वारक, श्रेष्ठ, (अर्यम्णे) न्यायकारी, दुष्ट जनों के नियन्ता और

(अग्नये) अग्रणी नेता जन के हित (नः) हम (अनागसः) निरपराध जनों को (प्र वोचः) उत्तम उपदेश कर।

वि नः सहस्रं शुरुधो रदन्त्वृतावानो वरुणो मित्रो अग्निः।
यच्छन्तु चन्द्रा उपमं नो अर्कमा नः कामं पूपुरन्तु स्तवानाः ३

भा०—(वरुणः) श्रेष्ठ जन (मित्रः) स्नेहवान् पुरुष (अग्निः) अग्निवत् ज्ञानों का प्रकाशक विद्वान् ये सब (ऋतावानः) सत्य ज्ञान और उत्तम ऐश्वर्य को धारण करने वाले (सहस्रं शुरुधः) हजारों शोक दुःखादि के रोकने वाली सुख सम्पदाओं को (नः) हमें (वि रदन्तु) विशेष रूप से प्रदान करें। वे (चन्द्राः) आह्लादकारी जन (नः) हमें (उपमं) उत्तम (अर्कं) ज्ञान और अन्न (यच्छन्तु) प्रदान करें। वे (स्तवानाः) स्तुति या उपदेश करते हुए, (नः कामं) हमारे अभिलाषा को (पूपुरन्तु) पूर्ण करें।

द्यावाभूमी अदिते त्रासीथां नो ये वां जज्ञुः सुजनिमान ऋष्वे।
मा हेळे भूम वरुणस्य वायोर्मा मित्रस्य प्रियतमस्य नृणाम् ॥४॥

भा०—हे (द्यावाभूमी) आकाश और पृथिवी के समान ज्ञान-प्रकाश और आश्रय देने वाले (अदिते) अदीन, माता पिता जनो ! आप दोनों (नः त्रासीथाम्) हमारी रक्षा करो। हे (ऋष्वे) गुणों में महान् आप दोनों (ये) जो (सु-जनिमानः) उत्तम जन्म प्राप्त होकर (वां) तुम दोनों को (जज्ञुः) उत्तम पूज्य करके जानते हैं वे आप दोनों हमारी रक्षा करें। हम लोग (वरुणस्य हेळे मा भूम) श्रेष्ठ पुरुष के क्रोध या अनादर के पात्र न हों। (नृणाम्) सर्वसाधारण मनुष्यों के और (प्रियतमस्य मित्रस्य) प्रियतम मित्र के और (वायोः) वायु के समान उपकारक बलवान् पुरुष के भी क्रोध या अनादर में (मा भूम) न रहें।

प्र बाहवा सिसृतं जीवसे न आ नो गव्यूतिमुक्षतं घृतेन।
आ नो जने श्रवयतं युवाना श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमा ॥ ५ ॥

भा०—हे (मित्रावरुणा) सूर्य और मेघ वा वायुजल के समान उपकारक स्त्री पुरुष वर्गो ! आप लोग (बाहवा) दो बाहुओं के समान (नः जीवसे) हमारे जीवन के सुख के लिये (प्र सिसृतम्) आगे बढ़ो। (नः गव्यूतिम्) हमारे मार्ग को (घृतेन) जल से (आ उक्षतम्) सेचन करो। (युवाना) आप दोनों युवक गण (नः) हमें (जने) मनुष्यों के बीच में (आ श्रवयतम्) प्रसिद्ध करो। (मे इमा हवा) मेरे ये उत्तम वचन (श्रुतं) श्रवण करो।

नू मित्रो वरुणो अर्यमा नुस्त्मने तोकाय वरिवो दधन्तु।
सुगा नो विश्वा सुपथानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥६॥४

भा०—(नु) अवश्य, शीघ्र ही (मित्रः) स्नेहवान् और मरने से बचाने वाला सर्वमित्र विद्वान् (वरुणः) श्रेष्ठ पुरुष और (अर्यमा) न्यायकारी, दुष्टों का दमन करने हारा पुरुष (नः) हमारे (त्मने) अपने लिये (नः तोकाय) हमारे पुत्र के लिये भी (वरिवः) उत्तम धन, और सेवाकार्य (दधन्तु) प्रदान करें। जिससे (नः) हमारे (विश्वा) सब कार्य (सुगा) सुगम और (सु-पथानि) उत्तम मार्ग युक्त (सन्तु) हों। हे विद्वान् जनो ! (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) आप लोग हमारी सदा उत्तम कल्याणकारी साधनों से रक्षा करें। इति चतुर्थो वर्गः॥

[६३]

वसिष्ठ ऋषिः॥ १—५ सूर्यः। ५, ६ मित्रावरुणौ देवते॥ छन्दः—१, ६ विराट् त्रिष्टुप्। २, ३, ४, ५ निचृत्त्रिष्टुप्॥ षडृचं सूक्तम्॥

उद्वेति सुभगो विश्वचक्षाः साधारणः सूर्यो मानुषाणाम्।
चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्य देवश्चर्मेव यः समविव्यक्तमांसि॥१॥

भा०—जिस प्रकार (सूर्यः) सूर्य (देवः) प्रकाशयुक्त होकर (तमांसि चर्म इव) अन्धकारों को चर्म के समान (सम् अविव्यक्)

और (समानं चक्रं) एक समान राजचक्र को भी (परि आ विवृत्सन्) यथार्थ रीति से चलावे। (स्यः सूर्यः) वह सूर्य के समान वा (अर्णवः) समुद्र के समान तेजस्वी, गम्भीर और (जनानां) मनुष्यों के बीच में (केतुः) ध्वजा के समान ऊंचा, (महान्) गुणों में बड़ा और (केतुः) स्वयं ज्ञानी, अन्यों को जनाने वाला, वह (प्रसवीता) उत्तम मार्ग में चलाने हारा पुरुष (उत् एति उ) उत्तम पद को प्राप्त हो। उसी प्रकार नायक स्वप्रकाशकस्वरूप होने से 'एतश' सर्वप्रकाशक होने से 'सूर्य' है वह समस्त ब्रह्माण्ड-काल-चक्र को चलाता, सबका उत्पादक ज्ञानवान्, महान् है। (सूर्यस्य) सूर्यः। विभक्तिव्यत्यय इति सायणः। सूर्यः स्यः इति वा पदच्छेदः। उभयत्र विभक्तेर्लुक् आदेशः।

विभ्राजमान उषसामुपस्थाद्रेभैरुदेत्यनुमद्यमानः।
एष मे देवः सविता चच्छन्द यः समानं न प्रमिनाति धाम॥३॥

भा०—जिस प्रकार (देवः सविता) प्रकाशमान् सूर्य, (उषसाम् उपस्थात्) उषाओं में से (विभ्राजमानः) विशेष रूप से चमकता हुआ, (रेभैः) शब्दकारी वायुओं, स्तुतिकर्त्ता जीवों से (अनुमद्यमानः) वार २ स्तुति किया जाकर (उदेति) उदय को प्राप्त होता है वह (समानं धाम न प्रमिनाति) सबके प्रति प्राप्त होने वाले तेज को नष्ट नहीं करता, सबको समान रूप से प्रकाश देता है उसी प्रकार (यः) जो महापुरुष, (समानं धाम) अपने एक समान, अनुरूप तेज, नाम स्थान, पद को (न प्र-मि-नाति) नष्ट नहीं करता तो भी (उषसाम्) प्रभात वेलाओं के समान उत्तम अनुराग से युक्त प्रजाओं के बीच में (रेभैः) उत्तम विद्वानों द्वारा (अनु-मद्यमानः) प्रतिदिन स्तुति एवं उपदेश किया जाकर (उद् एति) निरन्तर विद्या प्रकाश तथा बल दीप्ति से उदय को प्राप्त होता, उन्नति के पदपर गति करता है, (एषः) वह (मे) मेरा (देवः) ज्ञानदाता पुरुष वा ऐश्वर्यप्रद राजा (सविता) उत्पादक पितावत् (चच्छन्द)

गृहीत स्तम्भ दे। (२) इसी प्रकार प्रकाशस्वरूप प्रभु सबसे स्तुत या उपदिष्ट होकर हमारे हृदय में उदित हो।

दि॒वो रु॒क्म उ॑रु॒चक्षा॒ उदे॑ति दू॒रेअ॑र्थस्त॒रणि॒र्भ्राज॑मानः।
नू॒नं जनाः॒ सूर्ये॑ण॒ प्रसू॑ता॒ अय॒न्नर्था॑नि कृ॒णव॒न्नपां॑सि ॥ ४ ॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार (दिवः रुक्म) विशाल आकाश में सुवर्ण के आभरण के समान देदीप्यमान (उरु-चक्षाः) बड़े २ विशाल आकाश और लोकों को प्रकाशित करता हुआ (तरणिः) आकाश पार करने वाला, (भ्राजमानः) चमकता हुआ (दूरे-अर्थः) दूर २ तक स्वयं प्रकाश फैलाता हुआ (उदेति) उदय होता है। और (जनाः) मनुष्य जन्तुगण (सूर्येण प्रसूताः) सूर्य द्वारा प्रेरित होकर (अर्थानि अयन्) प्राप्तव्य पदार्थों को प्राप्त करते और (अपांसि कृणवन्) नाना कर्म करते हैं। उसी प्रकार (तरणिः) नौका के समान प्रजाजनों, जीवों को समस्त दुःखों से पार करने वाला, (भ्राजमानः) प्रकाशमान् तेजस्वी, (दूरे-अर्थः) दूर २ तक जाने वाला, उत्साही दूर देश से भी धन को प्राप्त करने वाला, (उरु-चक्षा) विशाल चक्षु, बहुदर्शी पुरुष (दिवः रुक्म) कामनावान् प्रजा के बीच सुशोभित, उनको प्रिय लगने वाला होता है। और (जनाः) सब जन, ऐसे (सूर्येण) सूर्यवत् ज्ञान और तेज से युक्त पुरुष से (प्रसूताः) प्रेरित, उत्पादित, और शिक्षित होकर (अर्थानि अयन्) अपने प्राप्य पदार्थों को प्राप्त हों और (अपांसि कृणवन्) नाना कर्म करते हैं। (२) परमात्मा सबको भवसागर से पार उतारने से 'तरणि' (दूरे-अर्थः) सर्वव्यापक, सर्वद्रष्टा है, उसी से (प्रसूताः) उत्पादित सब जन अपने अभिलाषित फल पाते और कर्म करते हैं।

यत्रा॑ च॒क्रुर॒मृता॑ गा॒तुम॑स्मै श्ये॒नो न दीय॒न्नन्वे॑ति॒ पाथः॑।
प्रति॑ वां॒ सूर॒ उदि॑ते विधेम॒ नमो॑भिर्मित्रावरुणो॒त ह॒व्यैः ॥ ५ ॥

भा०—पूर्व आधी ऋचा का सूर्य देवता है। (दीयन् श्येनः न)

वेग से गति करता हुआ बाज पक्षी जिस प्रकार (पाथः अन्वेति) अन्तरिक्ष मार्ग में अपने शिकार के पीछे २ वेग से जाता है उसी प्रकार (श्येनः) प्रशस्त मार्ग से जाने वाला, सुचरित विद्वान् पुरुष (दीयन्) सन्मार्ग पर गति करता हुआ उस (पाथः) सन्मार्ग का (अनु एति) सदा अनुगमन करे। (यत्र) जिससे जाते हुए (अमृताः) अमर आत्मा, दीर्घायुयुक्त, जन (अस्मै) इसको (गातुं चक्रुः) ज्ञान का उपदेश करते हैं।

उत्तरार्ध ऋचा के देवता मित्र और वरुण हैं। हे (मित्रावरुणा) दिन रात्रि के तुल्य स्नेहयुक्त और श्रेष्ठ गुरुजनो! (सूरे उदिते) सूर्य के उदय होने पर (हव्यैः नमोभिः) देने और स्वीकार करने योग्य उत्तम अन्नों और विनयादि सत्कार युक्त वचनों से (वां) आप दोनों की (प्रति विधेम) प्रति दिन सेवा करें अथवा, (वां प्रति उदिते सूरे नमोभिः हव्यैः विधेम) आप दोनों के प्रति उत्तम रीति से प्राप्त सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष के आने पर उसकी उत्तम वचनों, अन्नों से सेवा करें।

नू मि॒त्रो वरु॑णो अ॒र्य॒मा न॒स्त्मने॑ तो॒काय॒ वरि॑वो दधन्तु ।
सु॒गा नो॒ विश्वा॑ सु॒पथा॑नि सन्तु यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥६॥५॥

भा०—व्याख्या देखो सू० ६२। मं० ६ ॥ इति पञ्चमो वर्गः ॥

[६४]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ मित्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ३, ४ त्रिष्टुप्। ५ विराट् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

दि॒वि क्षय॑न्ता रज॑सः पृथि॒व्यां प्र वां॑ घृ॒तस्य॑ नि॒र्णिजो॑ ददीरन् ।
ह॒व्यं नो॑ मि॒त्रो अ॒र्य॒मा सु॒जातो॒ राजा॑ सु॒क्ष॒त्रो वरु॑णो जुषन्त ॥१॥

भा०—(अर्यमा) अर्यमा सूर्य जिस प्रकार (दिवि रजसः पृथिव्यां क्षयन्ता) आकाश, अन्तरिक्ष और पृथिवी में रहते हुए और मेघों को

और सूर्य की किरण (घृतस्य निर्णिजः) जल और तेज के नाना शुद्ध रूपों को (प्र दद्रीरन्) अच्छी प्रकार से देते, प्रकट करते हैं। उसी प्रकार (दिवि) ज्ञान, व्यवहार और विजिगीषा में विद्यमान (रजसः) प्रजाजनों और (पृथिव्यां क्षयन्ता) पृथिवी में ऐश्वर्यवान् होकर रहने वाले (मित्रावरुणा) स्नेही एवं श्रेष्ठ जनो! (वां) आप लोगों को (निः-निजः रजसः) शुद्ध पवित्र आत्मा वाले उत्तम जन (घृतस्य प्र दद्रीरन्) तेजोयुक्त ज्ञानप्रकाश को प्रदान करें। (मित्रः) स्नेहवान् (अर्यमा) दुष्ट शत्रुओं का नियन्ता, (सु-जातः) उत्तम पूज्य पद पर प्रसिद्ध, (राजा) देदीप्यमान, तेजस्वी (सु-क्षत्रः वरुणः) उत्तम बल, धन का स्वामी, स्वयं वरणीय श्रेष्ठ राजा ये सब (नः हव्यं) हमारा दिया पदार्थ (जुषन्त) सेवन करें। अर्थात् ये सब लोग प्रजा को मनमाना न लूटें खसोटें प्रत्युत सर्वसाधारण प्रजाजन जितना प्रेमपूर्वक दें उसका ही उपभोग करें।

आ राजाना मह ऋतस्य गोपा सिन्धुपती क्षत्रिया यातमर्वाक्।
इळां नो मित्रावरुणोत वृष्टिमव दिव इन्वतं जीरदानू ॥ २ ॥

भा०—हे (राजाना) राजा रानी वा राजा सेनापति के समान प्रजाओं के बीच चमकने वाले, (महः ऋतस्य गोपा) बड़े भारी धनैश्वर्य और ज्ञान के रक्षक, (सिन्धु-पती) वेग से जाने वाले अश्वों, समुद्रवत् विशाल प्रजाजनों और सैन्यों तथा प्राणों के पालक, (क्षत्रिया) वीर, बलशाली होकर तुम दोनों (अर्वाक् यातम्) आगे बढ़ो। हे (जीर-दानू) जलप्रद मेघ और वायु के समान संसार को वेग, जीवन, और प्राण के देने वाले! (मित्रावरुणा) स्नेहयुक्त और वरण करने योग्य श्रेष्ठ जनो! जिस प्रकार वायु और मेघ वा विद्युत् और सूर्य दोनों ही (दिवः वृष्टिम् इन्वतः) आकाश से वृष्टि को लाते हैं, और (दिवः इळाम् इन्वतम्) भूमि से अन्न को उत्पन्न करते हैं इसी प्रकार आप उक्त दोनों भी (दिवः) व्यापार आदि से (वृष्टिम् अव इन्वतम्) धन संमृद्धि की वृद्धि प्राप्त

कराओ (उत) और (नः) हमें (इडां अप इन्वतम्) उत्तम वाणी और अन्न सम्पदा प्राप्त कराओ।

मित्रस्तन्नो वरुणो देवो अर्यः प्र साधिष्ठेभिः पथिभिर्नयन्तु।
ब्रवद्यथा न आदरिः सुदास इषा मदेम सह देवगोपाः॥ ३॥

भा०—(मित्रः) स्नेहवान् (वरुणः) वरण करने योग्य (देवः) दानशील (अर्यः) स्वामी, (नः) हमें (तत्) वे सब जन (साधिष्ठेभिः पथिभिः) अति उत्तम २ मार्गों से (प्र यन्तु) अच्छी प्रकार ले जावें, चलावें। (आत्) अनन्तर (यथा) यथोचित रीति से (नः) हम में से (सु-दासे) उत्तम दानशील के हितार्थ (अरिः) स्वामी राजा (नः ब्रवत्) हमें उपदेश करे। हम सब (देव-गोपाः) विद्वानों से सुरक्षित और विद्वानों की रक्षा करते हुए (इषा मदेम) अन्न से खूब तृप्त प्रसन्न हों।

यो वां गर्तं मनसा तक्षदेतमूर्ध्वां धीतिं कृणवद्धारयच्च।
उक्षेथां मित्रावरुणा घृतेन ता राजाना सुक्षितीस्तर्पयेथाम्॥४॥

भा०—(मित्रावरुणा राजाना घृतेन उक्षाथां) मित्र, वरुण, वायु, मेघ वा विद्युत् और सूर्य, दोनों जिस प्रकार दीप्ति युक्त होकर जल और तेज का वर्षण करते और (सु-क्षितीः तर्पयेथाम्) उत्तम भूमियों को खूब तृप्त करते हैं उसी प्रकार हे (मित्रावरुणा) प्रजा के प्रति स्नेहवान् और दुःखों के वारक (राजाना) तेजस्वी राजा जनो! आप दोनों (घृतेन) जल और तेज से (सु-क्षितीः) उत्तम भूमियों और प्रजाओं को (उक्षेथाम्) सींचो, उनको पुष्ट करो। (ता) वे आप दोनों प्रजाजनों को (तर्पयेथाम्) खूब तृप्त करें। और (यः) जो प्रजाजन (वां गर्त्त) आप दोनों के रथ, सभाभवन और कृपि, स्तुति, उपदेश आदि भी (मनसा तक्षत) ज्ञानपूर्वक करे, (ऊर्ध्वाम्) ऊपर जाने योग्य (धीतिम्) कर्म (कृणवत्) करे (धारयत् च) वहां ही स्थापित करे, आप दोनों (एतम्) उसको भी तृप्त, प्रसन्न करो।

एषः स्तोमो वरुण मित्र तुभ्यं सोमः शुक्रो न वायवेऽयामि।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरंधीर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥५॥६॥

भा०—(वायवे शुक्रः न) वायु के लिये जिस प्रकार (शुक्रः) शीघ्र काम करने का सामर्थ्य प्राप्त है, उसी प्रकार हे (वरुण) श्रेष्ठजन ! हे (मित्र) स्नेहयुक्त जन (तुभ्यम्) तेरे लिये (एषः) यह (स्तोमः) स्तुति वचन और (सोमः) यह ऐश्वर्य भी (शुक्रः) कान्तियुक्त होकर विद्यार्थी के समान तेरी वृद्धि को (अयामि) प्राप्त हो। आप दोनों (धियः अविष्टं) उत्तम कर्मों की रक्षा करो और (पुरन्धीः जिगृतम्) बहुत से ज्ञान को धारण करने वाली उत्तम बुद्धियों वा ज्ञानों का उपदेश करो। (यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः) आप हमें सदा उत्तम सुख-कारक उपायों से पालन किया करें। इति षष्ठो वर्गः॥

[६५]

वसिष्ठ ऋषिः॥ मित्रावरुणौ देवते॥ छन्दः—१, ५ विराट् त्रिष्टुप्
२ त्रिष्टुप्। ३, ४ निचृत्त्रिष्टुप्॥ पञ्चर्चं सूक्तम्॥

प्रति वां सूर उदिते सूक्तैर्मित्रं हुवे वरुणं पूतदक्षम्।
ययोरसुर्य१मक्षितं ज्येष्ठं विश्वस्य यामन्नाचिता जिगत्नु॥१॥

भा०—(ययोः) जिनका (अक्षितम्) कभी नाश न होने वाला, (असुर्यम्) प्राणों में रमण करने वाले, 'असुर' अर्थात् जीवों के हित-कारक, (ज्येष्ठं) सबसे श्रेष्ठ बल (विश्वस्य) सबको (जिगत्नु) जीतने वाला, सबसे अधिक है वे दोनों (यामन्) राज्यादि शासन, राज्यप्रबन्ध के कार्य में (आचिता) आदर प्राप्त करने योग्य हों। (सूरे उदिते) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष के (उदिते) उदय होने वा सर्वोपरि प्रधान पद प्राप्त कर लेने पर मैं (वाम्) आप दोनों नर नारी वर्गों और राजा प्रजा वर्गों में से (पूत-दक्षं) पवित्र बल और आचारवान् (मित्रं) सर्व

स्नेही और (वरुणं) श्रेष्ठ जन को (सूक्तैः) उत्तम वचनों से मैं प्रजाजन (प्रति हुवे) प्रत्यक्ष रूप से स्वीकार करूं। अर्थात् तेजस्वी राजा के अधीन रहकर भी प्रजा अति बलशाली, प्रजास्नेही, सर्वविजयी बलवान् पुरुषों का सदा आदर करती रहे।

ता हि देवानामसुरा तावर्या ता नः क्षितीः करतमूर्जयन्तीः।
अश्याम मित्रावरुणा वयं वां द्यावा च यत्र पीपयन्नहा च ॥२॥

भा०—(यत्र) जिस राष्ट्र या देश में हे (मित्रा वरुणा) प्रजा के स्नेही, प्राण वायुवत् प्रिय और वरण योग्य श्रेष्ठ स्त्री पुरुषो ! (द्यावा) सूर्य और भूमिवत् विद्वान् और अविद्वान् जन और (अहा च) दिन रात्रिवत् स्त्री पुरुष सभी (वां पीपयन्) आप दोनों को पुष्ट करते हैं उसी देश में हम भी (अश्याम) नाना सुख समृद्धि प्राप्त करें। वे मित्र और वरुण दोनों ही (देवानाम्) विद्वान् मनुष्यों के बीच, प्राणों में प्राण उदान के समान (असुरा) बलवान् जीवनधारक, (तौ अर्या) वे दोनों ही स्वामी स्वामिनी के समान गृहपालक और (ता) वे दोनों ही (नः क्षितीः) हमारी भूमियों और मानव प्रजाओं को (ऊर्जयन्तीः) उत्तम अन्न और बल सम्पादन करने वाला (करतम्) बनावें।

ता भूरिपाशावनृतस्य सेतू दुरत्येतू रिपवे मर्त्याय।
ऋतस्य मित्रावरुणा पथा वामपो न नावा दुरिता तरेम ॥३॥

भा०—हे (मित्रावरुणा) परस्पर के मित्रवत् स्नेही और एक दूसरे को रक्षकवत् चुनने वाले राजा प्रजा, स्वामी-भृत्य, स्त्री पुरुष जनो ! (ता) वे आप दोनों (भूरि पाशा) बहुत से बन्धनों से सुबद्ध होकर (अनृतस्य) असत्याचरण को पार कराने के लिये (सेतू) बन्धे पुल के समान होओ। और (रिपवे मर्त्याय) शत्रुभूत पापी पुरुष के नाश के लिये आप दोनों (दुर्-अत्ये तू) दुःख से अतिक्रमण करने योग्य अलंघनीय शासन वाले होओ। (वाम्) आप दोनों के (ऋतस्य पथा) सत्याचरण के मार्ग

से चलकर हम भी (नावा आपः न) नाव से जलों के समान (दुरिता तरेम) सब दुःखों, पापों को पार कर जावें।

आ नो मित्रावरुणा हव्यजुष्टिं घृतैर्गव्यूतिमुक्षतमिळाभिः ।
प्रति वामत्र वरमा जनाय पृणीतमुद्नो दिव्यस्य चारोः ॥ ४ ॥

भा०—(मित्रावरुणा) सूर्य मेघ वा वायु मेघ के समान सर्वप्रिय सर्वश्रेष्ठ जनो ! आप दोनों (नः) हमारे (हव्य-जुष्टिं) प्रेम से स्वीकार करने योग्य अन्न आदि को प्रेम से स्वीकार करो । (घृतैः गव्यूतिम्) जलों से भूमि भाग के समान (इडाभिः) उत्तम वाणियों से वाणी के उत्तम पात्रों को (उक्षतम्) सेचन करो, उनमें ज्ञान की वृद्धि करो । आप दोनों (वाम्) अपने (दिव्यस्य) ज्ञान से पूर्ण, प्रकाश युक्त (चारोः) उत्तम (उद्नः) जलवत् शान्तिदायक वचन का (वरम्) श्रेष्ठ प्रयोग (जनाय) समस्त प्रजाजन के हितार्थ (प्रति) प्रतिदिन (आ पृणीतम्) किया करो ।

एष स्तोमो वरुण मित्र तुभ्यं सोमः शुक्रो न वायवेऽयामि ।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरन्धीर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥५॥७॥

भा०—व्याख्या देखो सू० ६४ । मं० ५ ॥ इति सप्तमो वर्गः ॥

[६६]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १—३, १०—१६ मित्रावरुणौ । ४—१३ आदित्याः । १४—१६ सूर्यो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४, ६ निचृद्गायत्री । ३ विराड् गायत्री । ५, ६, ७, १८, १६ आर्षी गायत्री । १७ पादनिचृद् गायत्री । ८ स्वराड् गायत्री । १० निचृद् बृहती । ११ स्वराड् बृहती । १३, १५ आर्षी भुरिग् बृहती । १४ आर्षीविराड्बृहती । १६ पुर उष्णिक् ॥

प्र मित्रयोर्वरुणयोः स्तोमो न एतु शूष्यः ।
नमस्वान्तुविजातयोः ॥ १ ॥

भा०—(तुवि-जातयोः) बहुत सी विद्याओं में प्रसिद्ध एवं स्नातक वा प्रवीण, (मित्रयोः) परस्पर स्नेही और परस्पर (वरुणयोः) गुरु शिष्य रूप से वरण करने वाले दोनों का (नमस्वान्) उत्तम विनययुक्त व्यवहार वाला, बलशाली (शूष्यः) अति सुखकारी, (स्तोमः) स्तुति योग्य उपदेश, बल-वीर्य और अधिकार (नः एतु) हमें प्राप्त हो। अथवा (नः मित्रयोः वरुणयोः) हम लोगों में से परस्पर मित्र, परस्पर वरण करने वाले, बहुत से गुणों और विद्याओं में प्रसिद्ध स्त्री-पुरुषों को (शूष्यः एतु) सुखकारी स्तुत्य पद प्राप्त हो।

या धारयन्त देवाः सुदक्षा दक्षपितरा। असुर्याय प्रमहसा॥२॥

भा०—(देवाः) विद्वान् मनुष्य (या) जिन दोनों को (धारयन्त) व्रत आदि धारण कराते हैं वे आप दोनों (सु-दक्षा) उत्तम कर्म-कुशल (दक्ष-पितरा) बल वीर्य के पालक, (प्र-महसा) उत्तम तेजस्वी होकर (असुर्याय) बलवान् पुरुषों में श्रेष्ठ उच्च पद के योग्य होते हैं। अर्थात् तेजस्वी, उत्तम बलवान्, वीर्य पालक ब्रह्मचारी उनको ही देव, विद्वान् गण (असुर्याय) बलवान् योग्य प्रधान पद के ग्रहण के लिये व्रतादि धारण करावें।

ता नः स्तिपा तनूपा वरुण जरितॄणाम्। मित्र साधयतं धियः॥३॥

भा०—(ता) वे दोनों और (नः) हमारे (स्तिपा) संघों की रक्षा करने वाले और (तनूपा) शरीरों की रक्षा करने वाले हों। हे (वरुण) श्रेष्ठ, वरणीय जन! हे (मित्र) स्नेहवन्! विद्वन् आप लोग (जरितॄणाम्) उपदेष्टा विद्वान् पुरुषों की (धियः) कर्मों, उत्तम बुद्धियों और विचारों को (साधयतम्) सिद्ध, सफल करो। ष्ट्यै संघाते। स्तयो संघास्तान् पातः इति स्तिपाः॥

यदद्य सूर उदितेऽनागा मित्रो अर्यमा। सुवाति सविता भगः॥४॥

भा०—(उदिते सूरे) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष के उदय होने

पर (यत्) जो (अनागाः) अपराधादि से रहित (मित्रः) स्नेहवान् (अर्यमा) न्यायकारी, (सविता) सबका प्रेरक शासक और (भगः) ऐश्वर्यवान् है वह (अद्य) आज के समान सदा ही (सुवाति) हम पर शासन करे।

सुप्रावीरस्तु स क्षयः प्र नु यामन्त्सुदानवः।
ये नो अंहोऽतिपिप्रति ॥ ५ ॥ ८ ॥

भा०—(ये) जो (नः) हमें ((अंहः) पाप कर्म से (अतिपिप्रति) पार करते हैं ऐसे (सु-दानवः) उत्तम ज्ञान का उपदेश करने वाले विद्वान् धर्मात्मा पुरुषो ! आप लोगों से प्रार्थना है कि (यामन्) राज्य के नियन्त्रण और शत्रु पर चढ़ाई के कार्य में (सः) वह (क्षयः) शत्रुओं का नाशकारी पुरुष (नु) निश्चय से (नः क्षयः) हमारे गृह के समान ही (सुप्रावीः अस्तु नु) हमारी उत्तम रीति से रक्षा करने हारा भी हो। (यामन्) विवाह बन्धन का कार्य हो चुकने पर (सः क्षयः) वह ऐश्वर्य युक्त, बसने वाला गृहपति (सु-प्रावीः प्र अस्तु) उत्तम गृह-रक्षक होकर रहे। इत्यष्टमो वर्गः॥

उत स्वराजो अदितिरदब्धस्य व्रतस्य ये। महो राजान ईशते ॥६॥

भा०—(स्व-राजः) स्वयं अपने तेज से प्रकाशित होने वाले (स्व-राजः) धनैश्वर्य से चमकने वाले, धनी और स्वराट् निज-भृत्य मित्र बन्धु प्रजा-जनों के राजा और (अदितिः) अखण्ड शासनकर्त्री, सभा वा सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष, (ये) जो (अदब्धस्य) अखण्डित (व्रतस्य) कर्म को करने में (ईशते) समर्थ होते हैं वे (महः-राजानः) बड़े ऐश्वर्य के राजा, स्वामी, तेजस्वी होते हैं।

प्रति वां सूर उदिते मित्रं गृणीषे वरुणम्। अर्यमणं रिशादसम् ७

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! (वाम्) आप दोनों में से (सूरे प्रति उदिते) सूर्य के समान तेजस्वी होकर प्रत्येक के उत्तम पद पर प्राप्त होजाने

पर प्रत्येक को मैं (मित्रम्) सर्वस्नेही और (वरुणं) श्रेष्ठ जन को (अर्यमणम्) न्यायपूर्वक सबका स्वामिवत् नियन्ता और (रिशादसम्) दुष्टों का नाशक कहकर (गृणीषे) स्तुति करूं।

राया हिरण्यया मतिरियमवृकाय शवसे। इयं विप्रा मेधसातये ८

भा०—हे (विप्राः) विद्वान् लोगो! (अवृकाय) अचौर, अदाम्भिक निश्छल और (अवृकाय) जिसका ज्ञान का प्रकाश प्राप्त नहीं हुआ ऐसे पुरुष के लिये उसके (शवसे) ज्ञान और बल वृद्धि के लिये (राया) ऐश्वर्य के साथ २ (हिरण्यया) हित और रमणीय, मनोहारिणी (इयं मतिः) यह उत्तम बुद्धि वा ज्ञान (मेध-सातये) उत्तम अन्न, यज्ञ फलादि के प्राप्त करने के लिये सदा बनी रहे।

ते स्याम देव वरुण ते मित्र सूरिभिः सह। इषं स्वश्च धीमहि ९

भा०—हे (देव वरुण) सुखदाता, जगत्प्रकाशक! सर्व दुःखवारक! हे (मित्र) सर्वप्रिय! हम (ते स्याम) तेरे ही होकर रहें। (सूरिभिः सह) वे विद्वानों के साथ मिलकर (ते) तेरी (इषं) इच्छा और (स्वः च) तेरे ज्ञान, प्रकाश, आनन्द और सुख को भी (धीमहि) धारण करें और उसी का ध्यान करें।

बहवः सूरचक्षसोऽग्निजिह्वा ऋतावृधः।
त्रीणि ये येमुर्विदथानि धीतिभिर्विश्वानि परिभूतिभिः ॥१०॥९॥

भा०—(ये) जो (त्रीणि विदथानि) तीनों प्रकार के ज्ञान, कर्म, यज्ञ और प्राप्तव्य पदार्थों और तीनों प्रकार के ज्ञातव्य वेदों को और (विश्वानि) तीनों विश्वों को (धीतिभिः) कर्मों, बुद्धियों, वाणियों और अध्ययन, स्मरण आदि द्वारा और (परिभूतिभिः) उत्तम सामर्थ्यों से (येमुः) अपने वश करते हैं वे (बहवः) बहुत से (सूर-चक्षसः) सूर्य के समान सब पदार्थों के ज्ञानोपदेष्टा, सर्वप्रकाशक (अग्निजिह्वाः)

अग्नि के समान ज्ञान प्रकाशक वाणी के बोलने वाले (ऋत-वृधः) सत्य ज्ञान के बढ़ाने वाले हों। इति नवमो वर्गः॥

वि ये द॒धुः श॒रद॒ं मास॒मादह॑र्य॒ज्ञम॒क्तुं चादृच॑म्।
अ॒ना॒प्यं वरु॑णो मि॒त्रो अ॑र्य॒मा क्ष॒त्रं राजा॑न आशत॥ ११॥

भा०—(ये) जो (शरदं) वर्ष, (मासम्) मास और (अहः अक्तुम्) दिन रात्र, (आत्) भी (ऋचं) स्तुति योग्य वेद मन्त्रों से अर्चना योग्य (यज्ञम्) उपास्य परमेश्वर वा यज्ञ को अथवा (यज्ञम् ऋचं) यज्ञयोग्य, उपास्य, वेद-वेद्य प्रभु की (वि दधुः) विविध प्रकार से उपासना करते, वेद को विविध प्रकार से धारण करते हैं वे (वरुणः) श्रेष्ठ, (मित्रः) सर्वस्नेही (अर्यमा) न्यायकारी शत्रु-नियन्ता जन (राजानः) राजाओं के समान तेजस्वी होकर (अनाप्यं) अन्यों से प्राप्त न होने योग्य वा बन्धु जनों से न विभाग करने योग्य (क्षत्रं) धन, ज्ञान मय वेद को (आशत) प्राप्त करते हैं।

तद्वो॑ अ॒द्य म॑नामहे सू॒क्तैः सूर॒ उदि॑ते।
यदोह॑ते॒ वरु॑णो मि॒त्रो अ॑र्य॒मा यू॒यमृ॒तस्य॑ र॒थ्यः॥ १२॥

भा०—(वरुणः) वरण करने योग्य, (मित्रः) स्नेहयुक्त (अर्यमा) स्वामिवत् वशी हे विद्वान् जनो! (यूयम्) आप सब लोग (ऋतस्य) सत्य ज्ञान के (रथ्यः) महारथियों के समान होकर (यत्) जिस ज्ञान को (ओहते) धारण करते हो हम (उदिते सूरे) सूर्य उदय होने पर (वः तत्) आप लोगों के उस ज्ञानैश्वर्य की (अद्य) आज (मनामहे) याचना करते हैं।

ऋ॒तावा॑न ऋ॒तजा॑ता ऋ॒ता॒वृधो॑ घो॒रासो॑ अनृत॒द्विषः॑।
तेषां॑ वः सु॒म्ने सु॑च्छ॒र्दिष्ट॑मे नरः स्याम॒ ये च॑ सू॒रयः॑॥ १३॥

भा०—(ये च) और जो (सूरयः) विद्वान् लोग (ऋत-वानः) यज्ञ, तेज, सत्य ज्ञान का सेवन करने और अन्यों को देने वाले (ऋत-

जाताः) सत्य ज्ञान में प्रसिद्ध (ऋत-वृधः) सत्य को बढ़ाने वाले, (घोरासः) तेजस्वी, (अनृत-द्विषः) असत्य व्यवहार के द्वेषी, सत्य का कभी विरोध न करने वाले हैं हे (नरः) नायकवत् उत्तम पुरुषो ! (तेषां वः) उन आप लोगों के (सुच्छर्दिस्तमे) उत्तम रक्षा-गृह से युक्त (सुम्ने) सुखप्रद शरण में सदा (स्याम) रहें।

उदु॒ त्यद्द॑र्श॒तं वपु॑र्दि॒व ए॑ति प्रतिह्व॒रे ।
यदी॑मा॒शुर्वह॑ति दे॒व एत॑शो॒ विश्व॑स्मै॒ चक्ष॑से॒ अर॑म् ॥ १४ ॥

भा०—जिस प्रकार (दिवः प्रतिह्वरे) आकाश में प्रत्यक्ष प्रतीयमान चक्राकार वृत्त मार्ग में (त्यत् दर्शतं वपुः उत् एति उ) वह दर्शनीय रूप वाला सूर्यमण्डल उदय होता है। और (यत्) जो (ईम्) सब तरफ़ से (आशुः) वेग से गतिमान् (देवः) तेजस्वी, प्रकाशप्रद, (एतशः) शुक्ल वर्ण होकर (विश्वस्मै चक्षसे अरं) समस्त संसार को दिखाने के लिये पर्याप्त होता है उसी प्रकार (त्यत्) वह (दर्शतं वपुः) दर्शनीय शरीराकृति धारण करने वाला तेजस्वी पुरुष (प्रतिह्वरे) प्रत्येक कुटिल व्यवहार के ऊपर (दिवः) अपने तेज के कारण (उत् एति उ) उत्तम होकर विराजता है, उस पर शासन करता है, (यत्) जो (ईम्) सब ओर (आशुः) शीघ्रकारी, अश्व के समान बलवान्, (देवः) विद्वान् (एतशः) शुक्लकर्मा, सदाचारी होकर (विश्वस्मै चक्षसे) सबको ज्ञान-मार्ग दिखाने और सत् उपदेश करने के लिये (अरं वहति) बहुत अधिक ज्ञान और बलको, रथ को उत्तम अश्व के समान अपने कन्धे उठाकर चलाने में समर्थ होता है।

शी॒र्ष्णःशी॑र्ष्णो॒ जग॑तस्त॒स्थुष॒स्पतिं॑ स॒मया॒ विश्व॒मा रजः॑ ।
स॒प्त स्वसा॑रः सुवि॒ताय॒ सूर्यं॒ वह॑न्ति ह॒रितो॒ रथे॑ ॥ १५ ॥ १० ॥

भा०—(जगतः तस्थुषः) जंगम और स्थावर (शीर्ष्णः-शीर्ष्णः) प्रत्येक शिर के (पतिम्) पालक (सूर्यम्) सबके प्रेरक को (विश्वं रजः

समया) समस्त प्राकृतिक संसार के बीच में (सप्त हरितः) सातों दिशाओं के वासी प्रजाजन (स्वसारः) उत्तम भगिनियों के समान स्वयं उसकी शरण आकर (रथे वहन्ति) रथ पर बैठाकर लेजाते हैं। जिससे वह (सुविताय) उत्तम मार्ग से ले चले। इसी प्रकार सातों (स्वसारः सु-असारः) उत्तम रीति से शस्त्रास्त्र फेंकने वाली (हरितः) नर-वीर सेनाएं उस तेजस्वी को सन्मार्ग पर चलने के लिये स्थावर, जंगम, अर्थात् स्थिर चल सम्पदा और प्रजा के प्रत्येक शिष्य के स्वामी को सब लोकों के बीच रथ में जुड़े अश्वों के समान धारण करती हैं।

तच्चक्षुर्देवहितं शुक्रमुच्चरत्।
पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतम् ॥ १६ ॥

भा०—(तत्) वह (देव-हित) समस्त विद्वानों और इन्द्रियों, प्राणों के बीच (हितम्) विद्यमान, सर्व कल्याणकारी (शुक्रम्) शुद्ध, सूर्यवत् तेजस्वी (उत्-चरत्) उत्तम पद को प्राप्त करे और हम उसके अनुग्रह से (शरदः शतं पश्येम) सौ बरस तक देखें। (शरदः शतं जीवेम) सौ बरस तक जीवें। इति दशमो वर्गः ॥

काव्येभिरदाभ्या यातं वरुण द्युमत्। मित्रश्च सोमपीतये ॥१७॥

भा०—हे (वरुण) सर्व श्रेष्ठ जन! आप और (मित्रः च) सर्व स्नेही, आप दोनों (सोमपीतये) ओषधि रसवत् राष्ट्र-शरीर की रक्षा और उपभोग के लिये (काव्येभिः) विद्वान् कवि जनों की वाणियों द्वारा (अदाभ्याः) अहिंसाकारी, स्वयं भी अहिंसा व्रतचारी, होकर दोनों (आयातं) आइये और (द्युमत्) ऐश्वर्य से पूर्ण देश को प्राप्त करो।

दिवो धामभिर्वरुण मित्रश्चा यातमद्रुहा। पिबतं सोममातुजी १८

भा०—हे (वरुण मित्रः च) वरुण और मित्र, रात्रि दिन के तुल्य, आप स्त्री पुरुषो! (अद्रुहा) परस्पर द्रोह न करते हुए (आतुजी) शत्रुओं का

नाश और प्रजाओं का पालन करते हुए (दिवः धामभिः) सूर्य के प्रकाशमय तेजों से प्रभावित होकर (सोमं पिबतु) ऐश्वर्य को प्राप्त हों।

आ यातं मित्रावरुणा जुषाणावाहुतिं नरा।
पातं सोममृतावृधा ॥ १९ ॥ ११ ॥

भा०—हे (मित्रावरुणा) दिन रात्रि वा सदा परस्पर स्नेही और परस्पर के वरण करने वाले (ऋतवृधा) सत्य से बढ़ने और अन्यों को बढ़ाने वाले होकर (सोमम् पातम्) प्रजावर्ग और शिष्यवर्ग सबको (पातं) पालन करो। और आप दोनों (नरा) उत्तम स्त्री पुरुष (आहुतिम्) जुषाणा) आदरपूर्वक दिये दान को प्रेमपूर्वक स्वीकार करते हुए, (आ पातम्) हमें प्राप्त हूजिये ॥ इत्येकादशो वर्गः ॥

६७]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ६, ७, ८, १० निचृत् त्रिष्टुप् । ३, ५, ९ विराट् त्रिष्टुप् । ४ आर्षी त्रिष्टुप् । दशर्चं सूक्तम् ॥

प्रति वां रथं नृपती जरध्यै हविष्मता मनसा यज्ञियेन।
यो वां दूतो न धिष्ण्यावजीगरच्छा सूनुर्न पितरा विवक्मि॥१॥

भा०—हे (नृपती) राजा रानी के समान, सब मनुष्यों के पालक सबके नायक प्राणों के पालक ! हे (धिष्ण्यौ) स्तुति योग्य ! उत्तम आसन के योग्य वा उत्तम बुद्धि सम्पन्न स्त्री पुरुषो ! (यः) जो (दूतः न) दूत, संदेशहर के समान (वां) आप दोनों को (अजीगः)' सचेत करता, जगाता है, ज्ञान देकर प्रबुद्ध करता है वह मैं विद्वान् जन (वां प्रति) आप दोनों के प्रति (हविष्मता) उत्तम ग्रहण योग्य भावों से युक्त, (यज्ञियेन) पूज्य सत्संग योग्य (मनसा) मन वा ज्ञान से (जरध्यै) उपदेश करने के लिये (सूनुः पितरा न) माता पिताओं के प्रति बालक के

समान (रथम्) रमणीय वचन और उत्तम व्यवहार का (अच्छ विवक्मि) उपदेश करता हूं।

अशोच्यग्निः समिधानो अस्मे उपो अदृश्रन्तमसश्चिदन्ताः ।
अचेति केतुरुषसः पुरस्ताच्छ्रिये दिवो दुहितुर्जायमानः ॥ २ ॥

भा०—(समिधानः) अच्छी प्रकार देदीप्यमान (अग्निः) अग्नि, यज्ञाग्नि, ज्ञानाग्नि, और सूर्य, एवं अग्निवत् तेजस्वी ज्ञानी विद्वान् (अस्मे अशोचि) हमारे हितार्थ चमकता है। (तमसः अन्ताः चित्) अन्धकार अज्ञान के परले सिरे तक (उपो अदृश्रन्) स्पष्ट दिखाई देते हैं। (दिवः दुहितुः उषसः) देदीप्यमान सूर्य की कन्या के समान उषा से ही (पुरस्तात् श्रिये) पूर्व दिशा की शोभा के लिये जिस प्रकार सूर्य उत्पन्न होता है उसी प्रकार (दिवः दुहितुः) ज्ञानप्रकाश का दोहन करने वाले, (उपसः) पापों और अज्ञान के दग्ध करने वाले मातृवत् गुरु से (जायमानः) उत्पन्न होता हुआ शिष्यरूप पुत्र (पुरस्तात्) आगे शोभा के लिये ही (केतुः अचेति) पूर्ण ज्ञानवान् होकर प्रबुद्ध होता है। इसी प्रकार अध्यात्म में—(दिवः दुहितुः) प्रकाशस्वरूप आत्मा की पुत्री के समान जो (उपसः) कान्तिमती विशेष प्रज्ञा है उसकी (पुरस्तात् श्रिये) और अधिक शोभा वृद्धि के लिये (केतुः) ज्ञानवान् आत्मा (अचेति) ज्ञान का विषय होता है। विशेष प्रज्ञा के उदय के अनन्तर प्रकाशरूप आत्मा का साक्षात् होता है।

अभि वां नूनमश्विना सुहोता स्तोमैः सिषक्ति नासत्या विवक्वान् ।
पूर्वीभिर्यातं पथ्याभिरर्वाक्स्वर्विदा वसुमता रथेन ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्विना) उत्तम अश्व रूप इन्द्रियों के स्वामी जितेन्द्रिय, ब्रह्मचारी, नर नारी वर्गो! हे (नासत्या) कभी भी असत्य भाषण और असत्य व्यवहार न करने वाले जनो! वा (न-असत्-यौ) कभी असत् अर्थात् कुमार्ग पर पैर न रखने वाले जनो! (सुहोता) उत्तम ज्ञान

देने वाला, (त्रि वकान्) विविध विद्याओं का उपदेष्टा पुरुष (स्तोमैः) उत्तम वेद मन्त्रों और उपदेशों से (नूनम्) अवश्य (वां) तुम दोनों को (अभि सिषक्ति) अपने साथ एक सूत्र में बांधता है, आप दोनों (वसुमता रथेन) धन अन्नादि सामग्री से सम्पन्न रथ से यात्री जिस प्रकार उत्तम २ मार्गों से सुख से देशान्तर चला जाता है उसी प्रकार (वसु-मता) अन्तेवासि शिष्यों से युक्त, (रथेन) रथ, उपदेष्टा, वा स्थिर भाव के विद्यमान, (स्वविदा) ज्ञान के प्रकाश और उपदेश को स्वयं प्राप्त और अन्यों को प्राप्त कराने वाले आचार्य की सहायता से (पूर्वीभिः) पूर्व विद्वानों से उपदिष्ट, (पथ्याभिः) हितकारी धर्म युक्त मार्गों से (अर्वाक् यातम्) आगे बढ़ो।

अवो॒र्वां नू॒नम॑श्विना यु॒वाकु॑र्हु॒वे यद्वां॑ सु॒ते मा॑ध्वी वसू॒युः ।
आ वां॑ वहन्तु॒ स्थवि॑रासो॒ अश्वाः॒ पिबा॑थो अ॒स्मे सुषु॑ता॒ मधू॑नि॥४

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय नर नारियो ! (नूनम्) अवश्य मैं (युवाकुः) तुम दोनों को हृदय से चाहता हुआ, (वसूयुः) नाना अन्तेवासी शिष्य ब्रह्मचारियों की कामना करता हुआ आचार्य (सुते) उत्तम ज्ञानैश्वर्य को प्राप्त कराने के निमित्त (अवोः) व्रत नियम ब्रह्मचर्यादि का पालन करने वाले आप दोनों में से (वां) तुम दोनों को (माध्वी) मधु अर्थात् मधुर, ऋग्वेद, मधु विद्या, उपनिषत् ज्ञान, और 'मधु' आनन्दप्रद अन्नादि के योग्य जानकर (हुवे) प्राप्त करूं। (स्थविरासः) ज्ञानवृद्ध (अश्वाः) नाना विद्याविचक्षण पुरुष (वां) तुम दोनों को उत्तम अश्वों के समान (आ वहन्तु) आगे सन्मार्ग पर ले चलें। आप लोग (अस्मे) हमारे (सु-सुता) उत्तम रीति से बनाये, (मधूनि) ज्ञानों और अन्नों का (पिबाथः) उपभोग और पालन करो। मधु के समान नाना ज्ञानवृद्ध पुरुषों के सत्संग से एकत्र करने योग्य

होने से ज्ञान और नाना गृहस्थों से भिक्षा रूप में संग्रह करने योग्य अन्न 'मधु' है। ब्रह्मचारी वर्गों का उसको संग्रह करना 'मधुकरी' वृत्ति है॥

प्राचीमु देवाश्विना धियं मेऽमृध्रां सातये कृतं वसूयुम्। विश्वा अविष्टं वाज आ पुरन्धीस्ता नः शक्तं शचीपती शचीभिः॥५॥१२॥

भा०—हे (देवा अश्विना) जितेन्द्रिय और विद्या की अभिलाषा करने वाले शिष्य, शिष्याजनो! आप दोनों (मे) मेरी (प्राची) उत्तम, ज्ञान से युक्त, पूज्य (अमृध्राम्) कभी नाश न होने वाली और (वसूयुं) धनैश्वर्य से युक्त (धियं) बुद्धि और कर्म को (सातये) प्राप्त करने के लिये (कृतम्) यत्न करो। उसी प्रकार हे (देवा अश्विना) जितेन्द्रिय ज्ञान देने वाले गुरु गुरुआनी जनो! आप दोनों (वाज-सातये) मुझ शिष्य को देने के लिये अपनी (प्राचीम्) अति उत्कृष्ट, पूज्य, (वसू-युं) वसु, शिष्य को प्राप्त होने वाली (अमृध्रां) अविनाशी, शिष्य को कष्ट न देने वाली (धियं) बुद्धि और वाणी का (कृतम्) उपदेश करो। आप दोनों (वाजे) संग्राम और ज्ञान प्राप्त करने के अवसर में (विश्वाः पुरन्धीः) समस्त प्रजाओं के समान बहुत ज्ञानधारक बुद्धियों, वाणियों की (आ अविष्टं) सब प्रकार से रक्षा करो। आप दोनों (शची-पती) वाणी और शक्ति के पालक होकर (नः) हमें (शचीभिः) अपनी वाणियों से (ताः) वे नाना बुद्धियें (शक्तं) देकर हमें शक्तियुक्त करो। इति द्वादशो वर्गः॥

अविष्टं धीष्वश्विना न आसु प्रजावद्रेतो अह्रयं नो अस्तु।
आ वां तोके तनये तूतुजानाः सुरत्नासो देववीतिं गमेम॥६॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो! आप लोग (आसु धीषु) इन कर्मों और ज्ञान बुद्धियों के बीच, (नः अविष्टं) हमारी रक्षा करो। और (नः) हमारा (रेतः) वीर्य, (प्रजावत्) प्रजा उत्पन्न करने वाला, और (अह्रयम्) कभी नष्ट न होने वाला, अमोघ (अस्तु) हो। हम लोग (तोके तनये) पुत्र पौत्रादि के निमित्त (वां) आप

दोनों को (तूतुजानाः) रक्षा करते हुए, (सुरत्नासः) उत्तम ऐश्वर्यों और गुणों से युक्त होकर (देववीतिं) विद्वानों की संगति को (आ गमेम) प्राप्त हों।

एष स्य वां पूर्वगत्वेव सख्ये निधिर्हितो माध्वी रातो अस्मे।
अहेळता मनसा यातमर्वागश्नन्ता हव्यं मानुषीषु विक्षु ॥ ७ ॥

भा०—हे (माध्वी) मधुर अन्न वा अन्न और ज्ञान का मधुवत् सञ्चय करने और सेवा करने वाले विद्याध्ययनशील जनो! (एषः स्यः) यह वह (निधिः) ज्ञानैश्वर्यों का खजाना, विद्याओं का अगाध सागर गुरुजन (पूर्वगत्वा इव) पूर्वगामी आदर्श पुरुष के समान (वां सख्ये) आप दोनों के मित्र भाव में (हितः) स्थापित है, वह (अस्मे) हम प्रजाजनों के हितार्थ (रातः) आप लोगों के हितार्थ आप लोगों को और हमको भी दे दिया गया है। आप लोग (मानुषीषु विक्षु) मनुष्य प्रजाओं में (हव्यं अश्नन्ता) उत्तम अन्नादि का उपभोग करते हुए (अहेडता मनसा) क्रोध और अपमान से रहित चित्त होकर (अर्वाक् यातम्) हमारे पास आया करें। अध्यात्म में—अन्न भोक्ता प्राणापान 'माध्वी' हैं। उनके सख्य में पूर्वगन्ता आत्मा सबको प्राप्त है।

एकस्मिन्योगे भुरणा समाने परि वां सप्त स्रवतो रथो गात्।
न वायन्ति सुभ्वो देवयुक्ता ये वां धूर्षु तरणयो वहन्ति ॥ ८ ॥

भा०—हे (भुरणा) समस्त प्रजाओं का भरण पोषण करने वाले, जितेन्द्रिय नर नारियो! (एकस्मिन्) एक ही (समाने) एक समान आदर से युक्त (योगे) परस्पर के मिलने पर (वां रथः) आप दोनों के रथ के समान सन्मार्ग पर ले जाने हारा उपदेष्टा पुरुष (सप्त स्रवतः) प्रवाह से निकलने वाली सातों छन्दोमय वाणियों को (परि गात्) प्राप्त करे, करावे। (ये) जो (वां) आप दोनों के (धूर्षु) धुराओं में लगे, धुरन्धर विद्वान् (तरणयः) वेगवान् अश्वों के समान वेग से संकटों से

पार उतारने वाले विद्वान् जन (वां वहन्ति) आप दोनों को सन्मार्ग पर ले जाते हैं वे (सुभ्वः) उत्तम सुखजनक, उत्तम सामर्थ्यवान्, (देव-युक्ताः) विद्वानों से नियुक्त होकर (न वायन्ति) कभी सत्पथ से विचलित नहीं होते। अध्यात्म में—एक ही योग में (रथः) रन्ता, आत्मा (सप्त स्रवतः) मुखगत सात प्राणों पर वश करता है, प्राणगण सुख, शक्ति से युक्त होकर (न वायन्ति) कभी नाश को प्राप्त नहीं हों, यदि वे विद्वानों द्वारा ज्ञान-पूर्वक सन्मार्ग में चलाये जावें।

असश्चता मघवद्भ्यो हि भूतं ये राया मघदेयं जुनन्ति।
प्र ये बन्धुं सूनृताभिस्तिरन्ते गव्या पृञ्चन्तो अश्व्या मघानि॥९॥

भा०—हे जितेन्द्रिय नर नारियो! (ये) जो लोग (राया) अपने ऐश्वर्य के बल से, (मघ-देयं) दातव्य, ऐश्वर्य, (जुनन्ति) प्रदान करते हैं उन (मघवद्भ्यः) उत्तम दातव्य ज्ञान-धन शाली पुरुषों के उपकार के लिये आप लोग (असश्चता हि भूतम्) दुर्व्यसनों में असक्त होकर रहो। (ये) जो लोग (अश्व्या) अश्वों से युक्त और (गव्या) गौवों से समृद्ध (मघानि) नाना धनों को (पृञ्चन्तः) प्राप्त करते हुए (सूनृताभिः) उत्तम वाणियों और अन्नों से (बन्धुं) अपने बन्धुजन को (प्र तिरन्ते) अच्छी प्रकार बढ़ाते हैं उनके लिये भी आप लोग विषयादि में न फंसकर सदा सेवा में तत्पर रहो।

नू मे हवमा शृणुतं युवाना यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत्।
धत्तं रत्नानि जरतं च सूरीन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥१०॥१३

भा०—हे (अश्विना) सब ऐश्वर्यों और ज्ञानों को प्राप्त करने वाले स्त्री पुरुषो! हे अश्वादि सैन्यों के स्वामियो! आप लोग (युवाना) दोनों युवा युवति होकर (मे) मुझ विद्वान् के (हवम् आ शृणुतम्) ग्राह्य उपदेश को आदरपूर्वक श्रवण किया करो। आप लोग (इरावत् वर्त्तिः) जल अन्न से युक्त मार्ग के समान, गृह को और (इरावत् वर्त्तिः) उत्तम प्रेरणा

से युक्त व्यवहार को (आ यासिष्टं नु) अवश्य प्राप्त होओ। (रत्नानि धत्तम्) उत्तम रत्नों के तुल्य रम्य गुणों को धारण करो। (सूरीन्) विद्वान् पुरुषों को (जरतं च) प्राप्त होकर विद्या का लाभ किया करो। हे विद्वान् पुरुषो! (यूयं) आप लोग (स्वस्तिभिः नः सदा पात) उत्तम सुखदायक साधनों से हमारी रक्षा करें। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[६८]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ६, ८ साम्नी त्रिष्टुप्। २, ३, ५ साम्नी निचृत् त्रिष्टुप्। ४, ७ साम्नी भुरिगासुरी विराट् त्रिष्टुप्। निचृत् त्रिष्टुप् ॥ नवर्चं सूक्तम्

आ शु॑भ्रा यातमश्विना स्वश्वा गिरो॑ दस्रा जुजुषाणा युवाकोः॑।
हुव्यानि॑ च प्रति॑भृता वी॒तं नः॑ ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विना) उत्तम अश्वों के स्वामी, रथी सारथीवत् इन्द्रियों को वश करने वाले स्त्री पुरुषो! आप दोनों (दस्रा) दुःखों का नाश करने में तत्पर होकर (युवाकोः) तुम दोनों को चाहने वाले मुझ विद्वान् की (गिरः) उपदेश वाणियों को (जुजुषाणा) प्रेम से सेवन करते हुए (शुभ्रा) उत्तम गुणों, आभरणों से सुशोभित और (सु-अश्वा) उत्तम अश्वारूढ़ वीरवत्, उत्तम अश्ववत्, उत्तम विद्या में गतिशील, सुदृढ़ शरीर होकर (आ यातम्) आओ। (नः) हमारे (प्रति-भृता) एवज़ में दिये भरण पोषणार्थ (हव्यानि) उत्तम अन्नों का (वीतम्) भोजन करो। इसी प्रकार गृहस्थी लोग नवशिक्षित, स्नातक स्नातिकाओं और नवविवाहितों का आदर किया करें।

प्र वा॒मन्धां॑सि मद्या॒न्यस्थु॒ररं॑ गन्तं ह॒विषो॑ वी॒तये॑ मे।
ति॒रो अ॒र्यो हव॑नानि श्रु॒तं नः॑ ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वान्, स्त्री पुरुषो! (वां) आप दोनों को (मद्यानि) उत्तम आनन्द देने वाले (अन्धांसि) जीवन धारण कराने वाले उत्तम

अन्न (प्र अस्थुः) आपके लिये अच्छी प्रकार रक्खे हैं आप दोनों (मे) मेरे (हविषः) उत्तम अन्न को (वीतये) खाने के लिये (अरं गन्तं) अवश्य आइये । (अर्यः) शत्रु के (हवनानि) आह्वानों को (तिरः) तिरस्कार करके (नः हवनानि) हमारे उत्तम वचनों को (श्रुतं) श्रवण करो । इस प्रकार उत्तम स्त्री पुरुषों का भोजन, वचनादि से सत्कार करना चाहिये ।

प्र वां रथो मनोजवा इयर्ति तिरो रजांस्यश्विना शतोतिः ।
अस्मभ्यं सूर्यावसू इयानः ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्विना) विद्वान्, जितेन्द्रिय पुरुषो ! (रथः) उपदेश (मनोजवाः) मन को प्रेरणा करने वाला (शत-ऊतिः) सैकड़ों ज्ञानों से युक्त और सैकड़ों संकटों से बचाने वाला होकर (वां) आप दोनों के (रजांसि) तेजों को सूर्य के समान, राजस आवरणों को (तिरः इयर्त्ति) दूर करता है । हे (सूर्यावसू) सूर्य के समान तेजस्वी गुरु जनो, विद्याओं के प्रकाशक गुरु जनों के अधीन ब्रह्मचर्य पूर्वक वास करने वाले ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी जनो ! वह सदा (अस्मभ्यं इयानः) हमारे हितार्थ आता हुआ भी हमारे राजस आवरणों को भी (तिरः) दूर करे । (२) हे (सूर्यावसू) सूर्य और सूर्यावत् पति पत्नी होकर गृहस्थ में वसने वाले वर वधू जनो ! (अस्मभ्यं इयानः) हमारे तक पहुंचने के लिये आता हुआ आप दोनों का रथ (शत-ऊतिः) सैकड़ों मील तक या प्रति घंटा १०० मील जाने वाला और (मनोजवाः) मन के संकल्पमात्र से वेग से जाने वाला वा मन के समान तीव्रगति से जाने वाला होकर (रजांसि तिरः इयर्त्ति) धूलि समूह को इधर उधर फेंकता है । (३) हे स्त्री पुरुषो ! (वां रथः) आप दोनों का रमण साधन 'देह', रमणकर्त्ता आत्मा, (शत-ऊतिः) शत वर्ष तक सुरक्षित रहकर अनेक ज्ञान प्राप्त करके (रजांसि तिरः इयर्त्ति) राजस आवरणों या पार्थिव भौतिक अंशों को दूर करता है, हे सूर्यवत्

तपस्या का अभ्यास करने वाले जनो, ऐसा देह और रथ (अस्मभ्यं इयानः) हमें भी प्राप्त हो।

रथः—रंहतेर्गतिकर्मणः। स्थिरतेर्वा विपरीतस्य। रममाणोऽस्मिंस्तिष्ठति इति वा। रपतेर्वा। रसतेर्वा। निरु० ९। २। १॥

अ॒यं ह॒ यद्वां॑ देव॒या उ॒ अद्रि॑रू॒र्ध्वो विव॑क्ति सोम॒सुद्यु॒वभ्या॑म्।
आ व॒ल्गू विप्रो॑ ववृतीत ह॒व्यैः॥ ४॥

भा०—(देवयाः) विद्वानों और विद्याभिलाषी जनों को अन्नों और ज्ञानों का दान करने वाला, उनका पूजा सत्कार करने वाला पुरुष (अयं ह) वह है (यत्) जो (अद्रिः) मेघ के समान उदार होकर (सोम-सुत्) उत्तम अन्न ओषधियों के रसवत् ज्ञान को देने वाला होकर के (ऊर्ध्वः) उत्तम पद पर स्थित होकर (युवभ्याम्) तुम दोनों के लाभ के लिये (विवक्ति) विविध प्रकार से स्तुति-वचन और उपदेश कहे। (विप्रः) विद्वान् पुरुष (वल्गू) उत्तम वाणियें बोलने वाले आप दोनों को (हव्यैः) दान योग्य उत्तम ज्ञानों और अन्नादि पदार्थों से (ववृतीत) उनका आदर सत्कार व्यवहार करे।

चि॒त्रं ह॒ यद्वां॒ भोज॑नं॒ न्वस्ति॒ न्यत्र॑ये॒ महि॑ष्वन्तं युयोतम्।
यो वा॑मो॒मानं॒ दध॑ते प्रि॒यः सन्॥ ५॥ १४॥

भा०—(यः) जो (वाम्) आप दोनों का (प्रियः सन्) प्रिय होकर (महिष्वन्तं) बहुत उत्तम परिणाम जनक (ओमानं) उत्तम ज्ञान और रक्षण सामर्थ्य (दधते) स्वयं धारता और आप दोनों को धारण कराता है, उस (अत्रये) त्रिविध तापों से रहित, और तीन ऋणों से मुक्त विद्वान् पुरुष के लिये (यद् वा चित्रं भोजनं नु अस्ति) जो आपका नाना प्रकार का भोजन है वह (नि युयोतम्) अवश्य पृथक् करो। उपकारी, चतुर्थाश्रमी, ज्ञानप्रद परिव्राजक के अर्थ पति पत्नी अपने भोजन का उत्तमांश अवश्य पृथक् रख दिया करें। उससे वे अतिथि यज्ञ किया करें। इति चतुर्दशो वर्गः॥

[६९]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ४, ६, ८ निचृत् त्रिष्टुप् । २, ७ त्रिष्टुप् । ३ आर्षी स्वराट् त्रिष्टुप् । ५ विराट् त्रिष्टुप् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

आ वां रथो रोदसी बद्बधानो हिरण्ययो वृषभिर्यात्वश्वैः ।
घृतवर्तनिः पविभी रुचान इषां वोळ्हा नृपतिर्वाजिनीवान् ॥१॥

भा०—जिस प्रकार (रथः हिरण्ययः) लोह सुवर्णादि धातु का बना उत्तम रथ (वृषभिः अश्वैः याति) बलवान् अश्वों या वेगवान् बैलों से चलता है, वह (घृतवर्तनिः) जल से सिंचे मार्ग पर चलने हारा और (पविभिः रुचानः) चक्रधाराओं से सुशोभित और (इषां वोढा) अभिलषित अन्नादि सामग्री का वहन करने वाला, और (वाजिनीवान्) उत्तम बलवती शक्ति से युक्त होकर (नृ-पतिः) मनुष्यों का रक्षक होता है उसी प्रकार (वाजिनीवान्) उत्तम बलवती सेना, उत्तम ज्ञान ऐश्वर्य से सम्पन्न वाणी और भूमि का स्वामी, (नृ-पतिः) मनुष्यों का पालक राजा, (रथः) रमणीय स्वभाव वाला, उत्तम विद्या का उपदेष्टा, प्रजा को रमाने हारा (हिरण्ययः) हितैषी और सुखप्रद, (बद्बधानः) दुष्टों को बाधा, और बन्धनादि करता हुआ, (वृषभिः अश्वैः) उत्तम बलवान्, विद्याओं में पारंगत वीर पुरुषों सहित (रोदसी वां) सूर्य भूमिवत् सम्बद्ध आप दोनों राज प्रजावर्गों और गृहस्थ स्त्री पुरुषों को (आ यातु) प्राप्त हो। वह (घृत-वर्त्तनिः) तेजो युक्त स्निग्ध मार्ग से जाने वाला उत्तम व्यवहारवान् और (पविभिः रुचानः) पवित्र आचरणों से युक्त, उत्तम हथियारों से सुशोभित गृहस्थ (इषां वोढा) अभिलषित दाराओं से विवाह करने हारा हो और राजा (इषां वोढा) सेनाओं को अपने ज़िम्मे लेकर चलने हारा हो।

स पप्रथानो अभि पञ्च भूमा त्रिवन्धुरो मनसा यातु युक्तः ।
विशो येन गच्छथो देवयन्तीः कुत्रा चिद्याममश्विना दधाना ॥२॥

भा०—जिस प्रकार रथ (त्रिवन्धुरः) सारथि आदि के बैठने के योग्य तीन स्थानों से युक्त, होता है जिनसे (कुत्र चित् याम दधाता) कहीं भी जाना चाहते हुए रथि सारथी जा सकते हैं उसी प्रकार हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! (सः) वह विद्वान् और वीर पुरुष (भूमा) महान् सामर्थ्य से युक्त, (पञ्च असि) पांचों जनों के समस्त ज्ञान और बल का विस्तार करता हुआ (त्रिवन्धुरः) तीनों वेदों को धारण करने वाला, और तीन प्रकार के बल का आश्रय, होकर (मनसा) ज्ञान और प्रबल चित्त से युक्त होकर (अभि यातु) आगे आवे । (येन) जिसकी सहायता से आप दोनों विद्वान्-स्त्री पुरुष राजा रानी, (देवयन्तीः विशः) कामना युक्त प्रजाओं को (गच्छथः) प्राप्त होते और (कुत्र चित्) जहां चाहे कहीं भी (याम दधाना) गमन प्रयाण, परस्पर वैवाहिक बन्धन और राज्य प्रबन्ध को धारण करते हुए (गच्छथः) प्राप्त होते हो ।

स्वश्वा॑ य॒शसा॒ या॑तम॒र्वाग्दस्रा॑ नि॒धिं मधु॑मन्तं पिबाथः ।
वि वां॒ रथो॑ व॒ध्वा॒३ याद॑मा॒नोऽन्ता॒न्दिवो॑ बाधते वर्त॒निभ्या॑म् ॥३॥

भा०—जिस प्रकार (रथः वर्त्तनिभ्यां दिवः अन्तान् बाधते) रथ चक्र धाराओं से भूमि के प्रान्त भागों को पीड़ित करता है उसी प्रकार हे स्त्री पुरुषो ! राजप्रजाजनो ! हे रथी सारथिवत् सहयोगियो ! (वां) आप दोनों में (रथः) वेगवान् रम्य व्यवहारवान् वा स्थिर दृढ़ पुरुष (वध्वा) अपनी सहयोगिनी वधू वा कार्य भार को वहन करने वाली शक्ति के साथ (यादमानः) यत्नवान् होता हुआ (वर्त्तनिभ्याम्) अपने ऐहिक और पारमार्थिक व्यवहारों या देवयान पितृयाण मार्गों से (दिवः अन्तान् बाधते) ज्ञान के सिद्धान्तों का अवगाहन करे । हे (स्वश्वा) उत्तम अश्वों, इन्द्रियों से युक्त ! हे (दस्रा) अज्ञानादि नाशक जनो ! आप दोनों (यशसा) यश से यशस्वी होकर (अर्वाग् यातम्) आगे बढ़ो और (मधुमन्तं निधिं) मधुर ज्ञानों से युक्त, वेदमय निधि या खज़ाने का (पिबाथः) पालन और उपभोग करो ।

युवोः श्रियं परि योषावृणीत सूरो दुहिता परितक्म्यायाम् ।
यद्देवयन्तमवथः शचीभिः परि घ्रंसमोमना वां वयो गात् ॥४॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! (युवोः) तुम दोनों में (सूरः दुहितः) सूर्य की कान्ति वाली उषा के समान सुन्दरी (योषा) पुरुष को प्रेमपूर्वक सेवन करने की अभिलाषा वाली स्त्री (परि-तक्म्यायाम्) कामाग्नि युक्त, यौवन दशा में, वा 'तक्म्या' उष्ण रजोधर्म की दशा के उपरान्त (श्रियं) आश्रय योग्य सेवनीय पुरुष को (परि वृणीत) स्वीकार करे । आप दोनों (शचीभिः) उत्तम कर्मों और वाणियों से (देवयन्तम्) विद्वान्वत् अपने प्रिय कामनावान् सहयोगी को अवश्य (अवथः) प्राप्त हुआ करो । और (वां घ्रंसम्) आप दोनों में अति तेजस्वी पुरुष को ही (ओमना) रक्षण योग्य बल सहित (वयः) उत्तम, दीर्घायु और अन्न बलादि भी (परि गात्) प्राप्त हो ।

यो ह स्य वां रथिरा वस्त उस्रा रथो युजानः परियाति वर्तिः ।
तेन नः शं योरुषसो व्युष्टौ न्यश्विना वहतं यज्ञे अस्मिन् ॥ ५ ॥

भा०—हे (रथिरा) रथ पर विराजमान रथी सारथी के समान सहयोगी स्त्री पुरुषो ! (वां) आप दोनों में से (यः) जो प्रत्येक (रथः) स्थिर भाव से रहने वाला और गृहस्थ में रमण करने वाला, दूसरे को सुख देने वाला हो वह (उस्राः वस्ते) किरणों को सूर्य के समान उज्ज्वल वस्त्रों को धारण किया करे । वही (युजानः) जुड़े रथ के समान स्वयं भी (युजानः) संयुक्त होकर ग्रन्थि जोड़कर (वर्त्तिः परियाति) गृहस्थ आश्रम को प्राप्त हो । वा (वर्त्तिः परियाति) वेदि में फेरे फिरे, परिक्रमा करे । (उषसः) प्रभात वेला के समान कान्तिमती, कन्या की (व्युष्टौ) विशेष विवाह की कामना होने पर (तेन) उस पुरुष से ही (नः) हमें (शं योः) शान्ति सुख और दुःख का नाश हो । हे (अश्विना) उत्तम जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! (अस्मिन् यज्ञे) इस यज्ञ में, अर्थात् परस्पर की संगति और

दान-प्रतिदानमय सद्‌व्यवहार में आप दोनों (नि वहतम्) निश्चय से एक दूसरे का भार अपने ऊपर धारण करो और विवाहित होकर रहो।

नरा॑ गौ॒रेव॑ वि॒द्युतं॑ तृषा॒णास्माक॑म॒द्य सव॒नोप॑ यातम्।
पु॒रु॒त्रा हि वां॑ म॒तिभि॒र्हव॑न्ते॒ मा वा॑म॒न्ये नि य॑मन्देव॒यन्तः॑ ॥६॥

भा०—(गौरा इव तृषाणा सवना) जिस प्रकार प्यासे दो मृग जलों को प्राप्त करते हैं उसी प्रकार हे (नरा) स्त्री पुरुषो ! हे नर नारी जनो ! (अस्माकं) हम में से (गौरा) विद्या वाणी में निष्णात होकर (विद्युतम् उप यातम्) विशेष कान्ति को प्राप्त करो और (तृषाणा) कामनावान् या अत्युत्सुक होकर (अद्य) आज (सवना) यज्ञों, ऐश्वर्यों और पुत्र प्रसवादि गृहोचित कार्यों को (उप यातम्) प्राप्त होओ। विद्वान् पुरुष (वां) आप दोनों को (पुरुत्रा) बहुत से कार्यों में (हवन्ते हि) स्तुति करते हैं। (अन्ये) दूसरे विपरीत भाव वाले शत्रुजन (देवयन्तः) द्यूतक्रीड़ा या व्यवहार करते हुए (वाम् मा नियमन्) आप दोनों को न बांध लें, न फंसालें।

यु॒वं भु॒ज्युमव॑विद्धं समु॒द्र उदू॑हथु॒रर्ण॑सो॒ अस्नि॑धानैः।
प॒त॒त्रिभि॑रश्र॒मैर॑व्य॒थिभि॑र्दं॒सना॑भिरश्विना पा॒रय॑न्ता ॥ ७ ॥

भा०—(समुद्रे अवविद्धं भुज्युम् यथा अश्विना अस्त्रिधानैः पतत्रिभिः अर्णसः पारयतः) समुद्र में फंसे नाना भोग्य ऐश्वर्य की कामना करने वाले व्यापारी को जिस प्रकार वेगयुक्त नौका यन्त्रादि के अध्यक्ष जन पतवारों से जल से पार करते हैं उसी प्रकार हे (अश्विना) उत्तम जितेन्द्रिय एवं अश्व अर्थात् विद्यापारंगत आचार्य के उत्तम शिष्यो ! एवं (अश्विना) रथी सारथिवत् एक ही गृहस्थ रथ में स्थित (युवम्) आप दोनों (समुद्रे अवविद्धं) उत्तम उत्साह युक्त कामनामय समुद्र में अव-पीड़ित, (भुज्युम्) एक दूसरे की भुजा का अवलम्बन चाहने वाले या

सांसारिक भोग वा संसार में रक्षा चाहने वाले सहचर को (अर्णसः) पितृ-ऋण से (अस्त्रिधानैः) नाश न होने वाले और (अश्रमैः) न थकने वाले, (अव्यथिभिः) कभी पीड़ित न होने और अन्यों को पीड़ा न देने वाले (पतत्रिभिः) गमन करने योग्य तीन आश्रमों से और (दंसनाभिः) उत्तम कर्मों से (पारयन्ता) पार करते हुए (उत् ऊहथुः) उत्तम मार्ग से ले जाओ।

नू मे हवमा शृणुतं युवाना यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत्।
धत्तं रत्नानि जरतं च सूरीन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥८॥१६

भा०—व्याख्या देखो सू० ६७। मन्त्र १०॥ इति षोडशो वर्गः॥

[७०]

वसिष्ठ ऋषिः॥ अश्विनौ देवते॥ छन्दः—१, ३, ४, ६ निचृत् त्रिष्टुप्। २, ५, ७ विराट् त्रिष्टुप्॥ सप्तर्चं सूक्तम्॥

आ विश्ववाराश्विना गतं नः प्र तत्स्थानमवाचि वां पृथिव्याम्।
अश्वो न वाजी शुनपृष्ठो अस्थादा यत्सेदथुर्ध्रुवसे न योनिम्॥१॥

भा०—गृहाश्रम की श्रेष्ठता। हे (विश्ववारा अश्विना) सबसे वरण करने योग्य उत्तम जितेन्द्रिय पुरुषो! आप दोनों (नः) हमें (आगतम्) प्राप्त होओ। (वां) आप दोनों का (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (तत् स्थानम्) वह स्थान, गृहस्थाश्रम (प्र अवाचि) बड़ा उत्तम कहा जाता है, (यत्) जिसमें (वाजी) बलवान् पुरुष (शुन-पृष्ठः) सुखप्रद पीठ वाले अश्व के समान (शुन-पृष्ठः) समस्त सुखों का आश्रय होकर (अस्थात्) रहता है और आप दोनों पति पत्नी भी (ध्रुवसे) स्थिर होकर रहने के लिये (योनिम् सेदथुः) एक ही गृह में विराजते हो।

सिषक्ति सा वां सुमतिश्चनिष्ठातापि घर्मो मनुषो दुरोणे।
यो वां समुद्रान्त्सरितः पिपर्त्येतग्वा चिन्न सुयुजा युजानः॥२॥

भा०—(दुरोणे घर्मः) जहां तक कोई व्यक्ति बढ़ नहीं सकता ऐसे ऊंचे आकाश देश में तेजस्वी सूर्य के समान (मनुषः) मनुष्य (दुरोणे) घर में और राजा राज्य वा राष्ट्र में उच्च पद पर विराज कर (अतापि) खूब तप करे। इसी प्रकार ब्रह्मचारी (घर्मः) ज्ञान जल से सिक्त होकर, स्नातक होकर (मनुषः दुरोणे) मननशील आचार्य के गुरुगृह में अग्नि के समान (अतापि) तप करे। राजा राष्ट्र में उच्चपद पर विराज कर सूर्यवत् तपे और दुष्टों को पीड़ित करे और उस समय (वां) तुम दोनों को (चनिष्ठा) अति श्रेष्ठ व गुरुवचनमय (सुमतिः) शुभमति (सिपक्ति) अवश्य प्राप्त हो। (घृतन्वा चित्) अश्व के समान एक गृहस्थ रथ में नियुक्त आप दोनों (सुयुजा) उत्तम सहयोगी जनों को (युजानः) जोड़ता हुआ, सत्कर्म में नियुक्त करता हुआ (यः) जो (समुद्रान् सरितः) समुद्रों को नदियों के समान, वा नदी समुद्रों को मेघ के समान (पिपर्त्ति) पूर्ण करे वह उत्तम ज्ञानी गुरुजन सूर्यवत् तेजस्वी हो।

यानि स्थानान्यश्विना दुधाथे दिवो यह्वीष्वोषधीषु विक्षु ।
नि पर्वतस्य मूर्धनि सदन्तेषं जनाय दाशुषे वहन्ता ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्विना) उत्तम अश्वों के स्वामी, एवं इन्द्रियों के स्वामी, उत्तम स्त्री पुरुषो! (दिवः ओषधीषु) सूर्य के ताप को धारण करने वाली (विक्षु) प्रजाओं में दिन रात्रि के समान आप दोनों भी (दिवः) इस पृथिवी के (यह्वीषु) बड़ी २ (ओषधीषु) ताप, शत्रु संतापक तेज को धारण करने वाली सेनाओं और (यह्वीषु विक्षु) 'यह्व' अर्थात् सन्तानवत् पालन करने योग्य प्रजाओं के बीच में (यानि) जितने भी (स्थानानि) मान आदर के पद हैं उन सब पदों पर आप लोग (पर्वतस्य मूर्धनि) पर्वत के शिरोभाग पर सूर्यवत् तेजस्वी होकर (सदन्ता) विराजते हुए, (दाशुषे जनाय) करादि व वस्त्र भूषणादि दे देने वाले (जनाय) प्रजाजन की वृद्धि के लिये (वहन्ता) कार्य भार को अपने

कन्धों पर लेते हुए (दधाथे) धारण करो। (२) इसी प्रकार युवा युवति भी तेजस्वी प्रजाओं में उत्तम स्थान प्राप्त करें, वे प्रजा की उत्पत्ति के लिये विवाह करें।

चनिष्टं देवा ओषधीष्वप्सु यद्योग्या अश्नवैथे ऋषीणाम्।
पुरूणि रत्ना दधतौ न्य१स्मे अनु पूर्वाणि चख्यथुर्युगानि ॥४॥

भा०—हे (देवा) विद्वान् व्यवहारज्ञ, एवं परस्पर के इच्छुक तेजस्वी स्त्री पुरुषो! (ओषधीषु) ओषधियों में और (अप्सु) जलों में भी (यत्) जो ओषधियां और जलवत् द्रव पदार्थ, (ऋषीणां योग्या) मन्त्रद्रष्टा ऋषियों के वा प्राणों के पोषण योग्य हों उनकी ही आप दोनों (चनिष्टं) कामना किया करो और उनको ही (अश्नवैथे) प्राप्त कर खाया पिया करो। आप दोनों (पुरूणि रत्ना) बहुत से रत्न और रम्य गुणों को (दधतौ) धारण करते हुए (अस्मे) हमारे आगे (पूर्वाणि) पूर्व के प्रसिद्ध (युगानि) पति पत्नी के अनुकरणीय जोड़े का (अनु) अनुकरण करके (नि चख्यथुः) आदर्श रूप से होकर बतलाओ।

शुश्रुवांसा चिदश्विना पुरूण्यभि ब्रह्माणि चक्षाथे ऋषीणाम्।
प्रति प्र यातं वरमा जनायास्मे वामस्तु सुमतिश्चनिष्ठा ॥ ५ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुष, युगल जनो! आप दोनों (चित्) ही (ऋषीणां) मन्त्रों का साक्षात् दर्शन करने वाले विद्वान् पुरुषों के साक्षात् किये हुए (पुरूणि) बहुत से (ब्रह्माणि) वेद मन्त्रों को (शुश्रुवांसा) श्रवण मनन करते हुए (अभि चक्षाथे) उनके तत्त्व ज्ञान का साक्षात् अनुभव प्राप्त किया करो। आप लोग (जनाय) मनुष्य मात्र के उपकार के लिये (वरम्) उत्तम उद्देश्य को (प्रति यातम्) लक्ष्य करके चलो। (वरम् प्र यातम्) उत्तम ज्ञान और उत्तम फल प्राप्त करो, (वरम् आ यातम्) वरण करने योग्य श्रेष्ठ पुरुष और स्थान को ही

जाओ। (अस्मे) हमारे उपकार के लिये (वाम्) आप दोनों की (वनिष्ठा) अति उत्तम, प्रशंसनीय (सुमतिः अस्तु) शुभमति हो।

यो वां यज्ञो नासत्या हविष्मान्कृतब्रह्मा समर्यो॒ भवाति।
उप प्र यातं वरमा वसिष्ठमिमा ब्रह्माण्यृच्यन्ते युवभ्याम्॥ ६॥

भा०—हे (नासत्या) कभी असत्याचरण न करने वाले, सदा सत्य व्यवहार के पालक और नासिकावत् मुख्य स्थान पर विराजमान स्त्री पुरुषो! (यः) जो (यज्ञः) पूजा सत्संग-योग्य (हविष्मान्) उत्तम ज्ञान अन्न से सम्पन्न (कृत-ब्रह्मा) वेदाध्ययन में कृतश्रम और धनादि में समृद्ध (वां) आप दोनों के प्रति (समर्यः) नाना पुरुषों सहित (भवति) होता है आप दोनों ऐसे (वरम्) वरण करने योग्य (वसिष्ठं) सर्वोत्तम 'वसु', विद्वान् वा राजा को (उप आ यातम्) प्राप्त होओ, उसके पास और उसी के गृह पर आया जाया करो। हे स्त्री पुरुषो! (युवभ्याम्) आप दोनों के हितार्थ ही (इमा ब्रह्माणि) ये नाना वेदोक्त ज्ञान, अन्न नाना धन (ऋच्यन्ते) ऋचाओं के रूप में प्रकट होते हैं, आदरपूर्वक प्रस्तुत किये जाते हैं।

इयं मनीषा इयमश्विना गीरिमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम्।
इमा ब्रह्माणि युवयून्यग्मन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ७।१७।४

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो! (इयं) यह (मनीषा) मन की उत्तम इच्छा, बुद्धि और (इयं गीः) यह उत्तम वाणी है। आप दोनों (इमां) इस (सु-वृक्तिं) उत्तम स्तुति उपदेश योग्य वाणी को (वृषणा) बलवान् होकर (जुषेथाम्) प्रेम से सेवन करें। (इमा ब्रह्माणि) ये वेद-वचन, धन और अन्न (युवयूनि) आप दोनों के ही हितार्थ हैं। (यूयं) हे विद्वान् लोगो! आप सब लोग (स्वस्तिभिः नः सदा पात) उत्तम २ साधनों से हमारी रक्षा किया करो। इति सप्ततितमं सूक्तम्॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः॥

[७१]

वासिष्ठ ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ५ त्रिष्टुप् । २, ३, ४, ६ विराट् त्रिष्टुप् ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

अप स्वसुरुषसो नग्जिहीते रिणक्ति कृष्णीरुपाय पन्थाम् ।
अश्वामघा गोमघा वां हुवेम दिवा नक्तं शरुमस्मद्युयोतम् ॥१॥

भा०—(नक् उषसः अप जिहीते) जिस प्रकार उषाकाल से रात्रि हट कर दूर चली जाती है उसी प्रकार (उषसः) प्रभात वेला के तुल्य कान्ति-युक्त पति की याचना करने वाली (स्वसुः = स्व-सुः) स्वयं अपने वरण योग्य पति को प्राप्त करने वाली वरवर्णिनी कन्या से (नक्) उससे सम्बन्धी जन उसके माता पिता भाई आदि (अप जिहीते) दूर होजाते हैं । वह माता पिता से छूटकर पति की होकर रहती है । (कृष्णीः) कृष्णवर्णा रात्रि जिस प्रकार (अरुपाय पन्थाम् ऋणक्ति) तेजस्वी सूर्य के लिये मार्ग छोड़ती और आप नष्ट होजाती है उसी प्रकार (कृष्णीः) हृदय को आकर्षण करने वाली मनोरमा स्त्री (अरुपाय) तेजस्वी, पुरुष के लाभ के लिये ही (पन्थाम्) मार्ग (रिणक्ति) रिक्त करती है । आप आगे २ चलती और पीछे पति को लेकर चलती है । हे स्त्री पुरुषो ! हे (अश्वामघा गोमघा) अश्वों और गौओं आदि धन से समृद्ध स्त्री पुरुषो ! हम लोग (वाम् हुवेम)आप लोगों से प्रार्थना करते हैं कि आप लोग (अस्मत्) हमसे (शरुम्) हिंसाकारी को (युयोतम्) दूर करो ।

उपायातं दाशुषे मर्त्याय रथेन वाममश्विना वहन्ता ।
युयुतमस्मदनिराममीवां दिवा नक्तं माध्वी त्रासीथां नः ॥ २ ॥

भा०—हे (अश्विना) विद्वान् स्त्री पुरुषो ! वा विद्वान् अध्यापक और आचारशिक्षक गुरुजनो ! आप लोग (दाशुषे मर्त्याय) अपने को आप लोगों के प्रति समर्पण कर देने वाले के हितार्थ (उप आयातम्)

समीप आइये और (रथेन वामम् वहन्ता) रथ या गाड़ी आदि साधन से जिस प्रकार उत्तम धन सम्पदा लाई जाती है उसी प्रकार आप लोग (रथेन) उत्तम उपदेश से (वामम्) सुन्दर श्रवण करने योग्य ज्ञान को (वहन्ता) प्राप्त कराते हुए (अस्मत्) हमसे (अनिराम्) अन्नादि के दारिद्र्य, (अनिराम्) 'इरा' अर्थात् विद्योपदेशमय वाणी के अभाव को तथा (अमीवाम्) रोग-दुःखजनक दशा को (युयुतम्) दूर करो। और (दिवा-नक्तम्) दिन और रात (माध्वी) सदा मधुर प्रसन्न चित्त रहकर वा 'मधु' अन्न जल वा ज्ञान से युक्त होकर (नः त्रासीथाम्) हमारी रक्षा करो।

आ वां रथ॑मव॒मस्यां॒ व्यु॑ष्टौ सुम्ना॒यवो॒ वृष॑णो वर्तयन्तु।
स्यूम॑गभस्तिमृत॒युग्भि॒रश्वै॒राश्वि॑ना॒ वसु॑मन्तं वहेथाम् ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार रथ को बलवान् अश्व चलाते हैं और (ऋतयुग्भिः अश्वैः स्यूमगभस्तिं, वसुमन्तं रथं वहन्ति) ज्ञान पूर्वक लगे अश्वों से, सिलें रासों वाले और धनादि सम्पन्न रथको लेजाते हैं उसी प्रकार हे (अश्विना) विद्या में व्यापक विद्वान् स्त्री पुरुषों के स्वामी जनो ! (वां) आप दोनों के (रथं) रमणीय गृहस्थोचित कर्त्तव्य तथा उपदेश आदि को (अवमस्यां व्युष्टौ) आगामी समीपतम प्रभात वेला में (सुम्नायवः) सुखाभिलाषी (वृषणः) बलवान् पुरुष (वर्त्तयन्तु) सम्पादित करें। और आप दोनों अपने (स्यूम-गभस्तिम्) सुखकारी रश्मियों या रासों से युक्त, सुप्रबद्ध (वसुमन्तं रथं) उत्तम बसने वाले वा वसु ब्रह्मचारियों से वा सुऐश्वर्य से युक्त इस गृहस्थाश्रम रूप रथ को (ऋतयुग्भिः) सत्य के बल से जुड़े हुए, (अश्वैः) विद्वानों की सहायता से (वहेथाम्) धारण करो, सन्मार्ग पर ले चलो।

यो वां॒ रथो॑ नृपती॒ अस्ति॑ वो॒ळ्हा त्रि॑वन्धु॒रो वसु॑माँ उ॒स्रया॑मा।
आ न॑ ए॒ना ना॑सत्योप॑ यात॒म॒भि यद्वां॑ वि॒श्वप्स्न्यो॒ जिगा॑ति ॥४॥

भा०—हे (नृपती) मनुष्य पति पत्नी ! विवाहित स्त्री पुरुषो ! जिस प्रकार (रथः वोढा, त्रि-वन्धुरः) रथ अपने में मनुष्यों को उठाकर लेजाने से 'वोढा' और तीन दण्डों से बने पीढ़े से युक्त होता है, उसी प्रकार (यः) जो पुरुष (वां) आप दोनों में से (रथः) रम्यस्वभाव का वा स्थिर होकर (वोढा) गृहस्थ के भार सहन करने वाला, विवाह करने हारा (त्रि-वन्धुरः) तीन ऋणों से बद्ध, (वसु-मान्) ऐश्वर्यवान् , (उस्र-यामा) सूर्यवत् तेजस्वी होकर जाने हारा है और (यत् वां) जो तुम दोनों में से (विश्व-प्स्न्यः) विशेष उत्तम रूपवान् होकर (अधि जिगाति) प्राप्त होता है हे (नासत्या) कभी असत्य धारण न करने हारे स्त्री पुरुषो ! (एना) उस व्यक्ति के बल से ही (नः आ उपयातम्) हमें प्राप्त होओ।

युवं च्यवा॑नं ज॒रसो॑ऽमुमुक्तं॒ नि पे॒दव॑ ऊहथुरा॒शुमश्व॑म् ।
निरंह॑स॒स्तम॑सः स्पर्त॒मत्रिं॒ नि जा॑हु॒षं शि॑थि॒रे धा॑तम॒न्तः ॥ ५ ॥

भा०—हे विद्वान् जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! हे (अश्विना) अश्ववत् वेग युक्त रथों, अश्वों, वाहनों और विद्यावान् पुरुषों के स्वामी जनो ! सभा-सेनापतियो ! (युवं) आप दोनों (च्यवानं) सन्मार्ग से जाने वाले पुरुष को (जरसः) वृद्धावस्था वा आयु के नाश से (अमुमुक्तम्) दूर करो। (पेदवे) दूर देश में जाने वाले के लिये (आशुम् अश्वम्) शीघ्र-गामी अश्ववत् दूरयायी साधन को (नि ऊहथुः) निरन्तर चलाओ। और (अत्रिम्) तीनों प्रकार के दोषों से रहित वा इस लोक में विद्य-मान पुरुष को (अंहसः) पाप और (तमसः) अज्ञान अन्धकार से (निः स्पर्त्तम्) पार करो, (जाहुषम्) त्यागी निःसंग, निस्वार्थी पुरुष को (शिथिरे) शिथिल राष्ट्र में (अन्तः नि धातम्) भीतर के केन्द्र स्थान पर नियुक्त करो।

इ॒यं म॑नीषा इ॒यम॑श्विना॒ गीरि॒मां सु॑वृ॒क्तिं वृ॑षणा जुषेथाम् ।
इ॒मा ब्रह्मा॑णि युव॒यून्य॑ग्मन्यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒ः सदा॑ नः ।६।१८॥

भा०—व्याख्या देखो सू० ७० । मं० ७ ॥ इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[७२]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ३, ४ निचृत् त्रिष्टुप् । ५ विराट् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

आ गोम॑ता नासत्या रथे॒नाश्वा॑वता पुरुश्च॒न्द्रेण॑ यातम् ।
अ॒भि वां॒ विश्वा॑ नि॒युतः॑ सचन्ते स्पा॒र्हया॑ श्रि॒या त॒न्वा॑ शुभा॒ना ॥१॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! हे (नासत्या) नासिकावत् प्रमुख स्थान पर विराजने वाले प्रतिष्ठित जनो ! आप दोनों (गोमता) उत्तम बैलों वाले वा (अश्वावता रथेन) घोड़ों वाले (पुरु-चन्द्रेण) बहुत धनादि सम्पन्न वा बहुतों को आह्लादित करने वाले (रथेन) रथ से (आ यातम्) आओ । (विश्वा नियुतः) सब उत्तम प्रजाएं, सेनाएं वा नियुक्त भृत्यादि प्रजाएं (वाम् अभि सचन्ते) आप दोनों की ही, सेवा करती हैं । आप दोनों (स्पार्हया) स्पृहा करने योग्य, मनोहर (श्रिया) शोभा से और (तन्वा) उत्तम स्वस्थ शरीर से (शुभाना) शोभित होकर हमें प्राप्त होओ ।

आ नो॑ दे॒वेभि॒रुप॑ यातम॒र्वाक्स॒जोष॑सा नासत्या॒ रथे॑न ।
यु॒वोर्हि नः॑ स॒ख्या पित्र्या॑णि समा॒नो बन्धु॑रु॒त तस्य॑ वित्तम् ॥२॥

भा०—हे (नासत्या) असत्याचरण न करने हारे विद्वान् और तेजस्वी स्त्री पुरुषो ! आप लोग (देवेभिः) विद्वान् पुरुषों के साथ और (स-जोषसा) प्रीति से सेवने योग्य (रथेन) रथ से, वा स्थिर, रम्य व्यवहार से (नः आयातम्) हमें प्राप्त होओ । (युवोः हि नः) आप दोनों के (पित्र्याणि सख्या) पिता पितामहादि से चले आये सौहार्द भाव हमारे साथ बने रहें । (युवोः नः बन्धुः समानः) हमारे और तुम्हारे बन्धु भी समान हों (उत) और आप दोनों (तस्य) उस बन्धु को (वित्तम्) भली प्रकार जानें ।

उदु स्तोमा॑सो अ॒श्विनो॑रबुध्रञ्जा॒मि ब्रह्मा॑ण्यु॒षस॑श्च दे॒वीः ।
आ॒विवा॑स॒न्रोद॑सी धिष्ण्ये॒मे अच्छा॒ विप्रो॒ नास॑त्या विवक्ति ॥३॥

भा०—(स्तोमासः) वेद के सूक्त और (अश्विनोः स्तोमासः) विद्वान् स्त्रियों पुरुषों वा अध्यापक उपदेशकों के स्तुत्य उपदेश और (ब्रह्माणि) वेद के मन्त्रगण (जामि) बन्धुवत् (उषसः) उत्तम ज्योति या प्रकाश से युक्त (देवीः) दानशील, विद्याभिलाषी प्रजाओं का भी (उत्-अबुध्रन्) उत्तम रूप से प्रबुद्ध करें, सबको ज्ञान युक्त करें। (विप्रः) विद्वान् पुरुष (नासत्या अच्छ) प्रमुख, सदा सत्याश्रयी स्त्री पुरुषों की (आविवासन्) सेवा करता हुआ (इमे) इन दोनों को (रोदसी) सूर्य चन्द्रवत्, माता पितावत् (विवक्ति) बतलाता है और इनको ही वह (धिष्ण्ये) उत्तम बुद्धि युक्त, स्तुत्य और पूज्य आसन के योग्य भी (विवक्ति) कहता है।

वि चेदु॒च्छन्त्य॑श्विना उ॒षासः॒ प्र वां॒ ब्रह्मा॑णि का॒रवो॑ भरन्ते ।
ऊ॒र्ध्वं भा॒नुं स॑वि॒ता दे॒वो अ॑श्रेद्बृ॒हद॒ग्नयः॑ स॒मिधा॑ जरन्ते ॥४॥

भा०—हे (अश्विना) विद्वान् स्त्री पुरुषो ! (चेत्) जिस प्रकार (उषासः) प्रभात वेलाएं (वि उच्छन्ति) विशेष रूप से प्रकाश करें तब (कारवः) स्तुतियों के करने वाले विद्वान् जन (ब्रह्माणि) उत्तम २ स्तुति मन्त्रों का (प्र भरन्ते) उच्चारण करते हैं और जब (सविता देवः) प्रकाशमान सूर्य (ऊर्ध्वं) ऊपर (भानुम् अश्रेत्) कान्ति धारण करे तो (अग्नयः) यज्ञाग्नियें (समिधा) उत्तम समिधा सहित होकर (बृहत्) अच्छी प्रकार (जरन्ते) स्तुति को प्राप्त होते हैं, यज्ञ किये जाते हैं उसी प्रकार जब (उषसः) कमनीय कान्ति से एवं गृहस्थ कामना से युक्त विदुषी स्त्रियें और प्रजाएं (वि उच्छन्ति) विविध प्रकार की अभिलाषाएं प्रकट करती हैं तब (कारवः) विद्वान् पुरुष और उत्तम शिल्पी जन

(वां) वर वधू एवं राजा रानी दोनों का लक्ष्य कर (ब्रह्माणि) वेद मन्त्रों और नाना ऐश्वर्यों को (प्र जरन्ते) प्रकट करें। (देवः सविता) उन दोनों में से दानशील, ऐश्वर्यवान् पुरुष ही (ऊर्ध्वभानुं) सर्वोपरि कान्ति को (अश्रेत्) धारण करता है और (अग्नयः) तेजस्वी अग्निवत् विद्वान् जन (समिधा) अति तेज से (बृहत्) वृद्धिकारी, आशीर्वाद आदि वचन का (जरन्ते) उपदेश करते हैं।

आ पश्चातान्नासत्या पुरस्तादाश्विना यातमधरादुदक्तात्।
आ विश्वतः पाञ्चजन्येन राया यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ५।१९

भा०—हे (नासत्या) कभी असत्य व्यवहार न करने हारे, सत्पुरुषों के हित के विरुद्ध कभी न करने वाले जनो ! (पश्चातात् पुरस्तात् अधरात् उदक्तात्) पश्चिम, पूर्व, उत्तर और दक्षिण से भी आप लोग (पाञ्चजन्येन राया) पांचों जनों के हितकारी धन सहित (विश्वतः आ यातम्) सभी ओर से आया जाया करो। (यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात) हे विद्वान् जनो ! आप लोग हमें उत्तम साधनों से रक्षा करो। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[७३]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ५ विराट् त्रिष्टुप्। २, ३, ४ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति स्तोमं देवयन्तो दधानाः।
पुरुदंसा पुरुतमा पुराजामर्त्या हवते अश्विना गीः ॥ १ ॥

भा०—हम लोग (देवयन्तः) उत्तम विद्वानों और शुभ गुणों को अपनाना चाहते हुए और (स्तोमं) स्तुति और स्तुत्य कार्य को (प्रति दधानाः) प्रत्येक दिन धारण करते हुए (अस्य) इस (तमसः)

अज्ञान और दुःख के (पारम् अतारिष्म) पार हो जायें। हे (अश्विना) उत्तम जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! (गीः) उत्तम विद्वान् पुरुष (पुरुदंसा) बहुत से उत्तम कर्मों को करने वाले, (पुरुतमा) बहुतों में उत्तम, (पुरुजा) सब के आगे अग्रणीवत् चलने वाले, (अमर्त्या) साधारण मनुष्यों से विशेष आप दोनों की (हवते) प्रशंसा करता है।

न्युं प्रियो मनुषः सादि होता नासत्या यो यजते वन्दते च ।
अश्नीतं मध्वो अश्विना उपाक आ वां वोचे विदथेषु प्रयस्वान् २

भा०—हे (नासत्या) प्रमुख, सत्यनिष्ठ, (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! (यः) जो (प्रियः) प्रिय (मनुषः) मननशील, (होता) ज्ञान का देने वाला, पुरुष (यजते) यज्ञ करता, (वन्दते च) भगवान् की स्तुति करता या ज्ञान देता, सत्संग करता और प्रणाम और उपदेशादि करता है और जो (विदथेषु) यज्ञों और संग्रामों में (प्रयस्वान्) प्रयत्नशील होकर (वाम् आ वोचे) तुम दोनों की अभ्यर्थना करता है आप उसके (उपाके) समीप (मध्वः अश्नीतं) मधु, ज्ञान और अन्नादि प्राप्त करो।

अहेम यज्ञं पथामुराणा इमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।
श्रुष्टीवेव प्रेषितो वामबोधि प्रति स्तोमैर्जरमाणो वसिष्ठः ॥ ३ ॥

भा०—हम लोग (यज्ञम् उराणाः) बहुत २ यज्ञ करते हुए (पथा) अपने जीवन के मार्ग की (अहेम) वृद्धि करें । हे (वृषणा) बलवान् स्त्री पुरुषो ! आप लोग इस (सुवृक्तिम्) सुखदायिनी सुमति का (जुषेथा) प्रेम पूर्वक सेवन करो। (जरमाणः वसिष्ठः) उपदेश करने हारा सर्वोत्तम वसु, पूर्ण ब्रह्मचारी विद्वान् पुरुष (स्तोमैः) नाना उपदेश योग्य वचनों से (प्रेषितः श्रुष्टीवा इव) भेजे दूत के समान, (प्रेषितः) उत्तम इच्छा से युक्त (श्रुष्टीवा) श्रुति वचनों का ज्ञाता होकर (वाम् प्रति अबोधि) आप दोनों को ज्ञानवान् करे।

उप त्या वह्नी गमतो विशं नो रक्षोहणा सम्भृता वीळुपाणी ।
समन्धांस्यग्मत मत्सराणि मा नो मर्धिष्टमा गतं शिवेन ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (रक्षोहणा) विघ्नकारी दुष्ट पुरुषों का नाश करने वाले, (संभृता) अच्छी प्रकार परिपुष्ट, (वीडुपाणी) बलवान् हाथों वाले होकर (त्या) वे दोनों आप (वह्नी) कार्य-भार को वा गृहस्थ को अच्छी प्रकार उठाने में अश्वों के समान दृढ़, अग्नियों के समान तेजस्वी होकर एवं विवाहित होकर (नः विशं उप गमतः) हमारे प्रजा वर्ग में प्राप्त होवो । (नः) हमारे (मत्सराणि) उत्तम, तृप्ति-कारक (अन्धांसि) अन्नों को (सम अग्मत) प्रेमपूर्वक मिलकर प्राप्त करो । (शिवेन) कल्याणकारक, सुखप्रद रूप से (नः आगतं) हमें प्राप्त होवो, (नः मा मर्धिष्टं) हमें पीड़ा मत दो ।

आ पश्चातान्नासत्या पुरस्तादाश्विना यातमधरादुदक्तात् । आ विश्वतः पाञ्चजन्येन राया यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।५।२०

भा०—व्याख्या देखो सू० ७२ । मं० ५ ॥ इति विंशो वर्गः ॥

[७४]

वासिष्ठ ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ३ निचृद् बृहती । २, ४, ६ आर्षी भुरिग् बृहती । ५ आर्षी बृहती ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

इमा उ वां दिविष्टय उस्रा हवन्ते अश्विना ।
अयं वामह्वेऽवसे शचीवसू विशंविशं हि गच्छथः ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विना) उत्तम अश्वों, अश्व अर्थात् राष्ट्र, और अश्वादि-सैन्य के स्वामी, सेनापति सभापति जनो, राजदम्पति युगल ! आप दोनों (उस्रा) उत्तम पदार्थों को देने वाले, ऊर्ध्व पदकी ओर जाने वाले, एवं गृह और राष्ट्र में स्वयं बसने और अन्यों को बसाने वाले, तेजस्वी (वां) आप दोनों को (इमा दिविष्टयः) उत्तम ज्ञान, व्यवहार और कान्ति चाहने

वाली प्रजाएं (हवन्ते) बुलाती हैं। और (अयं) यह विद्वान् वर्ग भी हे (शचीवसू) शक्ति और वाणी के धनी युगलो ! (वां) आप दोनों को (अवसे) रक्षा और ज्ञान के लिये (अह्वे) पुकारता और प्रार्थना करता है, आप दोनों (विशं विशं हि) प्रत्येक प्रजावर्ग में (गच्छथः) जाया करो।

युवं चित्रं ददथुर्भोजनं नरा चोदेथां सूनृतावते।
अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतं पिबतं सोम्यं मधु॥ २॥

भा०—हे (नरा) उत्तम नायक जनो, उत्तम स्त्री पुरुषो ! (युवं) आप दोनों (सूनृतावते) उत्तम सत्य वाणी, और अन्नसम्पत्ति से युक्त मनुष्य के हितार्थ (चित्रं) अद्भुत, आश्चर्यकारक, और नाना प्रकार का (भोजनं) पालन करने का सामर्थ्य और भोगयोग्य उत्तम ऐश्वर्य (ददथुः) प्रदान करो, और (अर्वाक् रथं चोदेथां) अपने रमणीय व्यवहार, उत्तम उपदेश को रथ के समान आगे प्रेरित करो, उसको (समनसा नियच्छतम्) परस्पर एक चित्त होकर नियम में रक्खो और एक दूसरे के प्रति प्रदान करो। और (सोम्यं मधु) 'सोम' अर्थात् ओषधिरस से मिले मधु के समान अति गुणकारी, रोगनाशक, अन्न के समान पुष्टिकारक, (सोम्यं मधु) सोम अर्थात् राजपद के योग्य, ऐश्वर्यानुरूप मधुर भोगों तथा सोम जीव, वा प्रभु के 'सोम' प्राण, वीर्य, 'सोम' पुत्र शिष्यादि तदनुरूप मधुर सुख का (पिबतम्) उपभोग करो और अन्यों को भी उस सुख का अनुभव कराओ।

आ यातमुप भूषतं मध्वः पिबतमश्विना।
दुग्धं पयो वृषणा जेन्यावसू मा नो मर्धिष्टमा गतम्॥ ३॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! हे उत्तम नायको ! हे (जेन्यावसू) बसने वाले अन्य सब प्रजा वर्गों, गृहस्थों और ऐश्वर्यों, समीप बसने वाले शिष्यों, पर विजय करने वाले, उन सब से उत्कृष्ट आप

लोग (आ यातम्) आदर पूर्वक आइये। (उप भूपतम्) समीप होइये, विराजिये (मध्वः पिबतं) गुरु-गृह में मधुमय ज्ञानरस, वेद को, (दुग्धं पयः) दुहे हुए पुष्टिकारक दूध के समान (पिबतम्) पान करिये। हे (वृषणा) मेघ के समान ज्ञान-सुखों की वर्षा करने वालो, हे बलवान् पुरुषो ! (नः मा मर्धिष्टम्) हमारा नाश न करो, हमें मत मारो।

अश्वा॑सो ये वा॒मुप॑ दा॒शुषो॑ गृ॒हं यु॒वां दीय॑न्ति॒ बिभ्र॑तः।
म॒क्षु॒युभि॑र्नरा॒ हये॑भिरश्विना॒ देवा॑ यातमस्म॒यू ॥ ४ ॥

भा०—हे (अश्विना) उत्तम अश्वों, इन्द्रियों और विद्वानों के स्वामी जनो ! हे (नरा) नायकवत् स्त्री पुरुषवर्गो ! (ये) जो (वाम्) आप लोगों के (अश्वासः) अश्व, वेग से जाने वाले साधन वा विद्यावान् पुरुष (युवां बिभ्रतः) आप दोनों को धारण करते हुए, (दाशुषः गृहं) उस देने वाले प्रभु के घर तक (दीयन्ति) पहुंचा देते हैं उनही (मक्षूयुभिः हयेभिः) शीघ्रकारी अश्वों, साधनों वा विद्वानों से हे (देवा) स्त्री पुरुषो ! हे (नरा) नायक जनो ! आप (अस्मयू) हमें चाहते हुए (यातम्) आओ जाओ, जीवन यात्रा करो।

अधा॑ ह॒ यन्तो॑ अ॒श्विना॒ पृक्षः॑ सचन्त सू॒रयः॑।
ता यं॑सतो म॒घव॑द्भ्यो ध्रु॒वं यशः॑श्छ॒र्दिर॒स्मभ्यं॒ नास॑त्या ॥ ५ ॥

भा०—हे (अश्विना) रथी सारथिवत् एक आश्रम रूप रथ पर स्थित, आचार्य शिष्य, स्त्री पुरुष तथा विद्वान् और सामान्य जनो ! (अध ह) निश्चय से (यन्तः सूरयः) जाते हुए, आगे बढ़ते हुए, विद्वान्, परिव्राजक जन (पृक्षः सचन्त) सर्वत्र अन्न और स्नेह सम्पर्क को प्राप्त करते हैं। हे (नासत्या) सत्पुरुषों के प्रति कभी असत्य, असभ्य व्यवहार न करने वाले जनो ! (ता) वे आप दोनों (अस्मभ्यम् मघवद्भ्यः) हम ऐश्वर्य और पूज्य ज्ञान वाले पुरुषों को (ध्रुवं) स्थिर

(यशः) यश और अन्न, और (छर्दिः) आवास के लिये घर (यंसतः) प्रदान करो ।

प्र ये य॒युर॑वृ॒कासो॒ रथा॑ इव नृपा॒तारो॒ जना॑नाम् ।
उ॒त स्वेन॒ शव॑सा शूशुवु॒र्नर॑ उ॒त क्षि॑यन्ति सुक्षि॒तिम् ॥६॥२१॥

भा०—(ये) जो (अवृकासः) चोर-स्वभाव से रहित, सत्यनिष्ठ, निश्छल (रथाः) रथों के समान (स्वेन शवसा) अपने ज्ञान सामर्थ्य और प्रबल पराक्रम से (प्र ययुः) आगे जाते हैं और जो (नरः) नेता जन (शुशुवुः) खूब बढ़ते हैं, उन्नति को प्राप्त होते हैं (उत) और (सुक्षितिम्) उत्तम भूमि को (क्षियन्ति) प्राप्त कर उसमें रहते और उसको ऐश्वर्य युक्त करते हैं वे ही (जनानां नृपातारः) सब मनुष्यों को पालन करने में समर्थ, नृपति होते हैं। इत्येकविंशो वर्गः ॥

[७५]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१, ८ निचृत् त्रिष्टुप् । २, ४, ५ विराट् त्रिष्टुप् । ३ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप् । ६, ७ आर्षी त्रिष्टुप् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

व्यु१॒षा आ॑वो दिवि॒जा ऋ॒तेना॑विष्कृण्वा॒ना म॑हि॒मान॒मागा॑त् ।
अप॒ द्रुह॒स्तम॑ आव॒रजु॑ष्टमङ्गि॒रस्त॑मा प॒थ्या॑ अजीगः ॥ १ ॥

भा०—(दिविजाः उषाः) सूर्य के आश्रय रह कर प्रकट होने वाली प्रभात वेला जिस प्रकार (आवः) विशेषरूप से खिलती (ऋतेन महिमानम् आविष्कृण्वाना आगात्) तेज से महान् स्वरूप को प्रकट करती हुई आती है, (तमः अप आवः) अन्धकार को दूर करती और (पथ्याः अजीगः) मार्गों वा मार्गवर्त्ती प्रजाओं को जगाती, प्रकाशित कर देती है, उसी प्रकार (दिवि-जाः) सूर्यवत् तेजस्वी गुरु के अधीन जन्म लाभ करके वा (दिवि-जाः) उत्तम शुभ कामना में विद्यमान (उषाः) कान्तियुक्त

युवति (वि आवः) अपने विविध गुणों को प्रकट करे, वह (ऋतेन) सत्य व्यवहार, ज्ञान से अपने (महिमानम्) महान्, आदरणीय मातृ-सामर्थ्य को (आविः कृण्वाना) प्रकट करती हुई, (आगात्) आवे। (अजुष्टम्) न सेवन करने योग्य (तमः) अज्ञान, शोकादि को अन्धकारवत् और (द्रुहः) द्रोह, अप्रीति के भावों को भी (अप आवः) दूर करे। वह (अङ्गिरस्तमा) प्राणों में भी सर्वश्रेष्ठ, प्राणवत् अतिप्रियतमा वा ज्ञानवती विदुषी होकर (पथ्याः) उत्तम पथ योग्य, धार्मिक, शिष्टाचारों को (अजीगः) जागृत करे।

म॒हे नो॑ अ॒द्य सु॑वि॒ताय॑ बो॒ध्युषो॑ म॒हे सौभ॑गाय॒ प्र य॑न्धि।
चि॒त्रं र॒यिं य॒शसं॑ धेह्य॒स्मे देवि॒ मर्ते॑षु मानुषि श्र॒व॒स्युम्॥ २॥

भा०—हे (मानुषि देवि) मननशील, मनुष्य जाति के शुभ गुणों से युक्त स्त्रि! तू (नः) हमें (अद्य) आज, (महे सुविताय) बड़े भारी सुख प्राप्त कराने के लिये (बोधि) हो। हे (उषः) प्रभात वेलावत् कान्तियुक्त एवं पति को प्रेम से चाहने वाली स्त्रि! तू भी (महे सौभगाय) बड़े भारी सौभाग्य प्राप्त करने के लिये (प्र यन्धि) उत्तम रीति से विवाह के बंधन में बंध। (अस्मे) हमारे (चित्रं रयिं) आश्चर्यकर नाना एवं संग्रह योग्य ऐश्वर्य और (मर्तेषु) मनुष्यों के बीच (यशसं) यशस्वी (श्रवस्युम्) ज्ञानी पुत्र (धेहि) धारण कर।

ए॒ते त्ये भा॒नवो॑ दर्श॒ताया॑श्चि॒त्रा उ॒षसो॑ अ॒मृता॑स॒ आगुः॑।
ज॒नय॑न्तो॒ दैव्या॑नि व्र॒तान्या॑पृ॒णन्तो॑ अ॒न्तरि॑क्षा॒ व्य॑स्थुः॥ ३॥

भा०—(दर्शताः उषसः भानवः) दर्शनीय उषा वेला के किरण जिस प्रकार आते हैं, वे (दैव्यानि व्रतानि जनयन्तः अन्तरिक्षा वि तिष्ठन्ति) देव, सूर्य वा किरणों के योग्य प्रकाशादि कार्यों को करते हुए अन्तरिक्ष में विराजते हैं, उसी प्रकार (दर्शतायाः) रूप गुणादि में दर्शनीय, अतिमनोहर, (उषसः) पति की कामना करने वाली, कान्तिमती कन्या वा विदुषी

स्त्री से ही (त्ये) वे नाना (एते) ये (अमृतासः भानवः) कभी नाश न होने वाले, दीर्घायु, (चित्राः) आश्चर्यकारी बलवान् वीर्यवान् होकर (आगुः) हमें प्राप्त होते हैं। वे (दैव्यानि) देव, विद्वान् पुरुषों से करने योग्य (व्रतानि) कर्त्तव्य कर्मों को (जनयन्तः) प्रकट करते हुए, (अन्तरिक्षा) अन्तरिक्ष में वायु के समान (आ पृणन्तः) सबको पालन पूर्ण, तृप्त, सन्तुष्ट करते हुए (वि अस्थुः) विविध रूपों में विराजें। उत्तम स्त्री से उत्पन्न हुए पुत्र दीर्घजीवी, तेजस्वी, देव, व्रतपालक और सुखकारी हों।

एषा स्या युजाना पराकात्पञ्च क्षितीः परि सद्यो जिगाति।
अभिपश्यन्ती वयुना जनानां दिवो दुहिता भुवनस्य पत्नी ॥४॥

भा०—(एषा) यह (स्या) वह (दिवः दुहिता) सूर्य की पुत्रीवत् उषा काल के समान तेजस्वी पुरुष की कामनाओं को पूर्ण करने में समर्थ (पराकात् युजाना) दूर देश से विवाह बन्धन में संयुक्त होकर विदुषी स्त्री शासक शक्ति के समान (सद्यः) अति शीघ्र ही अपने गुणों से (पञ्च-क्षितीः) पांचों प्रकार के निवासियों, पञ्चजनों को (परि जिगाति) मात करती है, सबको अपने वश करती है। वह (जनानां) मनुष्यों वा जन्म लेने वाली प्रजाओं के (वयुना) ज्ञानों और कर्मों को न्यायपूर्वक (अभि-पश्यन्ती) देखती हुई और (भुवनस्य) भुवन, जन समूह का (पत्नी) पालन करने वाली हो।

वाजिनीवती सूर्यस्य योषा चित्रामघा राय ईशे वसूनाम्।
ऋषिष्टुता जरयन्ती मघोन्युषा उच्छति वह्निभिर्गृणाना ॥ ५ ॥

भा०—(सूर्यस्य) सूर्य की (योषा) स्त्री (उषा) प्रभात वेला (वह्निभिः) यज्ञाग्नियों से (गृणाना) स्तुति की जाती हुई, (जरयन्ती) रात्रि का नाश करती हुई, (ऋषि-स्तुता) विद्वानों की भगवत्-स्तुति से युक्त होती है उसी प्रकार (सूर्यस्य) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष

की (योषा) स्त्री, (उषा) कान्ति से युक्त होकर (वह्निभिः) विवाह करने के योग्य उत्सुक पुरुषों द्वारा (गृणाना) स्तुति की जाती है। वह ज्ञानधारक विद्वान् पुरुषों से उपदेश की जावे। वह (मघोनी) उषावत् पूज्य धन से युक्त, (वाजिनीवती) बलयुक्त और ज्ञानयुक्त क्रिया करने वाली (जरयन्ती) अपने गुणों से अवगुणों, अज्ञान शोक मोहादि को नाश करती हुई, (ऋषि-स्तुता) विद्वानों द्वारा उपदेश प्राप्त कर (उच्छति) अपने गुणों का प्रकाश करे। (२) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष की शक्ति, सेना और सभामयी है। वह बल, विजय युक्त होने से 'वाजिनी', नाना धन सम्पन्न होने से 'चित्रा-मघा' वह सब बसने वाले प्रजाजनों की स्वामिनी है, ऋषिगण, मन्त्रद्रष्टा ज्ञानी पुरुष उसको उपदेश करते, वह शत्रुओं का नाश करती, दुष्टों को सन्तप्त, पीड़ित करने से 'उषा', राज कार्य भार वहन करने वाले तेजस्वी पुरुषों से प्रशस्त है।

प्रति द्युतानामरुषासो अश्वाश्चित्रा अदृश्रन्नुषसं वहन्तः।
याति शुभ्रा विश्वपिशा रथेन दधाति रत्नं विधते जनाय ॥ ६ ॥

भा०—(अश्वाः) अश्वों के समान दृढ़, बलवान् अंग वाले, (चित्राः) पूजनीय, अद्भुत २ आश्चर्यजनक बलविद्या और गुणों से सम्पन्न, (अरुषासः रोषरहित, सौम्य स्वभाव वाले तेजस्वी, (उपसः) स्वयं भी उत्तम काम्य पदार्थों की कामना करने वाले पुरुष (द्युतानां) कान्तिमती, (उषसम्) कामनावान् उत्तम वधू का (वहन्तः) विवाह द्वारा ग्रहण करते हुए (प्रति अदृश्रन्) नित्य देखी जावें। वह वधू (शुभ्रा) उत्तम आभूषणों से सुभूषित, शुभगुणों से युक्त, वधू (विश्वपिशा) नाना रूप के (रथेन) रथों से (याति) जावे। और (विधते जनाय) विशेष प्रेम से धारण करने वाले प्रिय, पुरुष के लिये (रत्नं दधाति) देह पर उत्तम रत्न, गृह में उत्तम धन, जीवन में उत्तम व्यवहार, मन में उत्तम गुण, गर्भ में उत्तम पुत्र-रत्न (दधाति) धारण करे।

सत्या सत्येभिर्महती महद्भिर्देवी देवेभिर्यजता यजत्रैः ।
रुजद्दृळ्हानि ददंदुस्रियाणां प्रति गाव उषसं वावशन्त ॥ ७ ॥

भा०—वह (सत्येभिः) सत्य गुणों, कर्मों और व्यवहारवान् (महद्भिः) बड़े, गुणवानों से (महती) पूज्य, (देवेभिः) उत्तम गुणों और विद्वानों और (यजत्रैः) पूजनीय, दानशील पुरुषों के साथ (सत्या) सत्य शील-वती, सभ्य, (महती) गुणों में महान्, (यजता) दानशील (देवी) विदुषी कन्या सत्संग लाभ करे । वह (दृढानि) दृढ संकटों को भी (रुजत्) नाश करती हुई (ददत्) सुख प्रदान करे । (गावः) वृषभ, जिस प्रकार (उस्रियाणां मध्ये उषसं वावशन्त) गौवों के बीच में से कामनावती कपिला गौ को ही चाहते हैं उसी प्रकार (गावः) विद्वान् एवं बलवान् जन भी (उस्रियाणाम्) घर बसाने की इच्छुक कन्याओं में से भी (उषसं) अपने प्रति विशेष कामनावान् वधू के प्रति (प्रति वावशन्त) कामना करें ।

नू नो गोमद्वीरवद्धेहि रत्नमुषो अश्वावत्पुरुभोजो अस्मे ।
मा नो बर्हिः पुरुषता निदे कर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ८।२२

भा०—हे (उषः) कान्तिमति, प्रिय, कामना वाली ज्ञानवती विदुषि! वधू ! तू (नः) हमारे (गोमत्) गौओं से युक्त, (वीरवत्) वीर पुत्रों से युक्त (रत्नं) उत्तम धन, उत्तम रम्य व्यवहार, पतिसंगादि गृहस्थोचित कर्म, पुत्र आदि (धेहि) धारण कर । तू (अस्मे) हमारे हितार्थ, (अश्वा-वत्) अश्वों से युक्त और (पुरु-भोजः) बहुतों को पालने और बहुतों से भोगने योग्य ऐश्वर्य को भी (धेहि) धारण कर । (नः बर्हिः) हमारा यज्ञ और वृद्धिशील राष्ट्र, पद (Position) आदि (पुरुषता) पुरुषों में (निदे मा कः) निन्दा करने योग्य मत बना । हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (नः सदा स्वस्तिभिः पात) हमें सदा उत्तम साधनों से पालन करो । उषा सूक्तों के प्रायः सब मन्त्र राजशक्ति और विशोका प्रज्ञा, तथा परमेश्वरी शक्ति युक्त पदार्थों में भी लगते हैं । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[७६]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । २ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ४, ५, ६, ७ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

उदु ज्योतिर॒मृतं॑ वि॒श्वज॑न्यं वि॒श्वान॑रः सवि॒ता दे॒वो अ॑श्रेत् ।
क्रत्वा॑ दे॒वाना॑मजनिष्ट॒ चक्षु॑रा॒विर॑क॒र्भुव॑नं॒ विश्व॑मु॒षाः ॥ १ ॥

भा०—उषा रूप से परमेश्वरी शक्ति का वर्णन करते हैं । (सविता) समस्त संसार का उत्पादक, (देवः) सब सुखों का दाता, सूर्यादि लोकों का प्रकाशक, (विश्वानरः) समस्त विश्व का और समस्त जीवों का नायक, सञ्चालक परमेश्वर (विश्व-जन्यम्) समस्त जनों के हितकारी, सब जनों में विद्यमान, समस्त विश्व को उत्पन्न करने वाले, (अमृतं) अमृत, अवि-नाशी, (ज्योतिः) परम प्रकाशमय ज्योति को (उत् अश्रेत् उ) सर्वोपरि होकर धारण करता है । वह (क्रत्वा) समस्त विश्व का बनाने वाला, अथवा (क्रत्वा) कर्म और ज्ञान सामर्थ्य से (देवानां) समस्त पृथिवी, सूर्यादि लोकों और विद्वान् पुरुषों के बीच (चक्षुः) सब को आंखवत् देखने वाला, अथवा (देवानां चक्षुः क्रत्वा) विद्वानों के ज्ञान दिखाने वाले ज्ञानमय वेद का कर्त्ता, (उषाः) सब पापों का दाहक, उषाकाल के समान कान्तियुक्त, (भुवनं) समस्त भुवन को (आविः अकः) प्रकट करता है । गृहस्थ पक्ष में—(सविता देवः विश्वानरः) प्रजोत्पादक विद्वान् सबका नायकवत् होकर (विश्व-जन्यं) आत्मा के देह के उत्पादक (अमृतं ज्योतिः उत् अश्रेत्) अमृत, चिन्मय, अविनाशी ज्योतिः रूप, वीर्यमय तेज, ज्ञानमय प्रकाश को उत्तम रीति से धारण करे । वह ज्ञान, और कर्म से मनुष्यों का चक्षुवत् मार्गदर्शी हो, उसी प्रकार (उषाः) विदुषी स्त्री (भुवनं आविः अकः) लोक को उषावत् ब्रह्माण्ड के समान अपने गृह को प्रकाशित करे ।

प्र मे पन्थां देवयानां अदृश्रन्नमर्धन्तो वसुभिरिष्कृतासः।
अभूदु केतुरुषसः पुरस्तात्प्रतीच्यागादधि हर्म्येभ्यः॥ २॥

भा०—जिस प्रकार उषा के प्रकट होने पर (वसुभिः इष्कृतासः पन्थाः देवयानाः प्र अदृश्रन्) मनुष्यों से बनाये और मनुष्यों से चलने योग्य मार्ग दिखाई देते हैं। वह (उषसः केतुः अभूत्) तेजस्वी सूर्य का ज्ञापक होती और (अधि हर्म्येभ्यः पुरस्तात् प्रतीची आ अगात्) बड़े २ महलों के ऊपर से पूर्वदिशा से पश्चिम की ओर आती है, इसी प्रकार वर के लिये वधू और वधू के लिये वर दोनों ही उत्सुक, एवं कामनायुक्त होने से दोनों ही 'उषा' हैं, अतः ऐसे (उषसः) कामना, प्रेमोत्सुकता से उत्सुक पुरुष के (पुरस्तात्) आगे (केतुः) ज्ञानवती, उसकी ध्वजा के समान गुणों को दर्शाने वाली विदुषी वधू (अभूत् उ) होवे। वह (प्रतीची) प्रत्यक्ष में पूज्यादृत होती हुई, (हर्म्येभ्यः अधि आगात्) बड़े महलों में रहने के लिये अधिष्ठात्री रानी होकर आवे। इसी प्रकार (उषसः) कान्तिमती, कामनावती प्रिय वधू का (केतुः) ध्वजा के समान ज्ञानवान् तेजस्वी पुरुष हो, वह भी पूर्व से पश्चिम को आने वाले सूर्य के समान (हर्म्येभ्यः अधि आगात्) हर्म्यों को आये। (वसुभिः) विद्वानों द्वारा (इष्कृतासः) सुशोभित और (देवयानाः) विद्वानों द्वारा चलने योग्य (मे पन्थाः) मेरे समस्त धर्ममार्ग, किरणों से प्रकाशित मार्गों के समान मेरे लिये (अमर्धन्तः) कभी पीड़ादायक न होते हुए मुझे (प्र अदृश्रन्) उत्तम रीति से दृष्टिगोचर हों।

तानीदहानि बहुलान्यासन्या प्राचीनमुदिता सूर्यस्य।
यतः परि जार इवाचरन्त्युषो ददृक्षे न पुनर्यतीव॥ ३॥

भा०—(सूर्यस्य या प्राचीनम् उदिता) जिस प्रकार सूर्य के पूर्व दिशा में उदय होने पर जो प्रकट होते हैं (तानि इत् अहानि) वे ही दिन कहाते हैं (उषा जारः इव परि अचरन्ती) उषा भी रात्रि को जारण

करने वाले सूर्य के समान ही आचरण करती हुई (न पुनः यती इव दृदृक्षे) फिर नहीं लौटती सी दीखती है उसी प्रकार हे (उषः) पति की कामना करने वाली वधू! (या) जो तू (सूर्यस्य प्राचीनम् इव) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष के पूर्व भाग में आकर आगे आती है (तानि इत् बहुलानि अहानि) वे ही बहुत दिन उत्तम हैं। यतः क्योंकि उन दिनों में तू (जारः इव) तेरी आयु को अपने साथ पूर्ण व्यतीत करने वाले वा रात्रि व्यतीत करने वाले सूर्यवत् तेजस्वी पति के समान ही तू भी (आचरन्ती) उसकी सेवा शुश्रूषा और धर्माचरण करती हुई (न पुनः यती इव) उसे फिर भविष्य में कभी भी न त्यागती सी (परि दृदृशे) सदा उसके संग दिखाई दे। अथवा (या) जिन दिनों (सूर्यस्य प्राचीनम् उदिता) सूर्यवत् तेजस्वी पति के पूर्व, प्राङ्मुख खड़े रहते, तू भी (जार इव आचरन्ती यतः परि दृदृशे) पति के समान ही विवाहादि कृत्य उसके समीप करती दिखाई देवे (न पुनः यती इव) उसे छोड़ती सी न दिखाई देवे (तानि इद् अहानि बहुलानि) ऐसे ही सहयोगी जीवन के दिन बहुत (आसन्) होवें। 'जारः इव' इति पदपाठः। 'जारे-इव' इति सायणाभिमतः॥

त इद्देवानां सधमाद आसन्नृतावानः कवयः पूर्व्यासः।
गूळ्हं ज्योतिः पितरो अन्वविन्दन्त्सत्यमन्त्रा अजनयन्नुषासम्॥४॥

भा०—जो (ऋतावानः) सत्य ज्ञान और वेद, तप आदि का सेवन करने वाले (पूर्व्यासः कवयः) पूर्व के विद्वानों से शिक्षित, क्रान्तदर्शी ज्ञानी पुरुष हैं (ते इत्) वे ही (देवानां) विद्वान् पुरुषों के (सधमादः आसन्) साथ आनन्द, सुख प्राप्त करने वाले होते हैं। वे ही (पितरः) माता पितावत् पालक बनकर (गूढं ज्योतिः) अपने भीतर छिपे ज्योतिर्मय तेज को (अनु अविन्दन्) प्राप्त करते हैं। जो (सत्य-मन्त्राः) सत्य, मननशील होकर (उषासम् अजनयन्) कान्तिमती, ज्योतिष्मती, अज्ञान और पाप को दूर करने वाली विशोका प्रज्ञा को प्रकट करते हैं। (२)

उसी प्रकार सत्यज्ञानी, ऐश्वर्यवान्, विद्वान् सहयोग का सुख पाते हैं जो माता पिता होकर सन्तान वा वीर्यरूप गूढ ज्योति को प्राप्त करते हैं, सत्य-मन्त्र होकर (उपासं अजनयन्) कामनायुक्त वधू को प्राप्त कर उससे उत्तम सन्तान उत्पन्न करते हैं।

समान ऊर्वे अधि सङ्गतासः सं जानते न यतन्ते मिथस्ते ।
ते देवानां न मिनन्ति व्रतान्यमर्धन्तो वसुभिर्यादमानाः ॥ ५ ॥

भा०—जो पुरुष (समाने) एक समान (ऊर्वे) समूह या वर्ग में (अधि) एक अध्यक्ष के अधीन (संगतासः) एकत्र मिलकर (सं जानते) सम्यक् ज्ञान और परिचय कर लेते हैं (ते) वे (मिथः) परस्पर का हिंसन या नाश करने की (न यतन्ते) चेष्टा नहीं करते। (ते) वे (देवानां व्रतानि) विद्वानों के कार्यों का (न मिनन्ति) नाश नहीं करते। और वे (वसुभिः) धनों द्वारा (यादमानाः) यत्नवान् होते हुए (अमर्धन्तः) और हिंसा न करते हुए संगत होकर जीवन व्यतीत करते हैं।

प्रति त्वा स्तोमैरीळते वसिष्ठा उषर्बुधः सुभगे तुष्टुवांसः ।
गवां नेत्री वाजपत्नी न उच्छोषः सुजाते प्रथमा जरस्व ॥ ६ ॥

भा०—हे (सुभगे) उत्तम भाग्यवति ! विदुषि ! (तुष्टुवांसः) स्तुति करने हारे, (उषर्बुधः) प्रभात वेलामें जागने वाले (वसिष्ठाः) उत्तम वसु, विद्वान् गृहस्थ, ब्रह्मचारी गण, (त्वा) तेरी (स्तोमैः) उत्तम स्तुत्य वचनों से (इळते) स्तुति करते हैं। हे (उषः) पापनाशिके ! तू (वाज-पत्नी) ऐश्वर्य और ज्ञान का पालन करने वाली (गवां नेत्री) गौओं के समान सौम्य वाणियों को प्रस्तुत करने वाली होकर (नः) हमारे बीच (उच्छ) गुणों और ज्ञान का प्रकाश कर। हे (सु-जाते) उत्तम माता पिता की उत्तम पुत्रि ! तू (प्रथमा) सर्वश्रेष्ठ गिनी जाकर (जरस्व) अपने प्रिय पुरुष के गुणों का वर्णन कर।

एषा नेत्री राधसः सूनृतानामुषा उच्छन्ती रिभ्यते वसिष्ठैः।
दीर्घश्रुतं रयिमस्मे दधाना यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥७॥२३॥

भा०—(एषा) वह (उषा) कान्तिमती, वधू (राधसः नेत्री) धन को प्राप्त कराने वाली और वह (सूनृतानां नेत्री) अन्नों उत्तम ज्ञान-मय वचनों और सत्य विद्याओं को प्राप्त कराने वाली होकर (उच्छन्ती) स्वयं उत्तम गुणों का प्रकाश करती हुई (वसिष्ठैः) उत्तम वसु, ब्रह्मचारियों और सन्तान के उत्तम माता पिताओं द्वारा (रिभ्यते) स्तुति की जाती है, वह (अस्मे) हमारे (दीर्घ-श्रुतं) दीर्घ काल तक श्रवण किये जाने योग्य (रयिम्) ज्ञान ऐश्वर्य को (दधाना) धारण करने वाली हो। हे विद्वान् पुरुषो! आप लोग (नः सदा स्वस्तिभिः पात) हमें सदा उत्तम सुखकारी साधनों से पालन करो। इति त्रयोविंशो वर्गः॥

[७७]

वसिष्ठ ऋषिः॥ उषा देवताः॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप्। २, ३, ४, ५ निचृत् त्रिष्टुप्। ६ विराट् त्रिष्टुप्॥ षड्च सूक्तम्॥

उपो रुरुचे युवतिर्न योषा विश्वं जीवं प्रसुवन्ती चरायै।
अभूदग्निः समिधे मानुषाणामकर्ज्योतिर्बाधमाना तमांसि॥ १॥

भा०—जिस प्रकार (उषा) प्रभात वेला (उप रुरुचे) पतिवत् सूर्य के समीप स्त्रीवत् शोभित होती है। वह (विश्वं जीवं चरायै प्रसुवन्ती) समस्त जीव संसार को निद्रा से उठकर विचरने के लिये प्रेरित करती है। (समिधे) प्रकाश करने के लिये (अग्निः अभूत्) सूर्य रूप अग्नि प्रकट होता है, (मानुषाणां) मनुष्यों के लिये (तमांसि बाधमाना ज्योतींषि) अन्धकारों को दूर करने वाले प्रकाशों को (अकः) प्रकट करता है, उसी प्रकार वह परमेश्वरी शक्ति भी (युवतिः योषा न) युवति स्त्री के समान (विश्वं जीवं) समस्त विश्व को और समस्त जीव संसार

को (चरायै प्रसुवन्ती) नाना कर्म फलों के उपभोग के लिये उत्पन्न करती हुई (उप उ रुरुचे) सर्वत्र शोभा दे, (अग्निः) वह परमेश्वर अग्नि के समान प्रकाशस्वरूप (समिधे) ज्ञान प्रकाश करने के लिये (अभूत्) हो। और वही (मानुषाणाम्) मनुष्यों के हृदय के (तमांसि) अज्ञानान्धकारों को (बाधमाना) दूर करता हुआ (ज्योतिः) वेदमय ज्ञानद्योतक प्रकाशों को (अकः) उपदेश करता है। (२) इसी प्रकार गृहपत्नी, युवति स्त्री जीव बालक को उसको कर्म भोग और स्वतः सुखप्राप्ति के लिये उत्पन्न करती है। 'अग्नि' रूप तेजस्वी विद्वान् विवाहाग्निवत् प्रज्वलित होता है, वह सब के अज्ञानों को दूर करने वाले विद्याप्रकाशों को प्रकट करता है।

विश्वं प्रतीची सप्रथा उदस्थाद्रुशद्वासो बिभ्रती शुक्रमश्वैत्।
हिरण्यवर्णा सुदृशीकसन्दृग्गवां माता नेत्र्यह्नामरोचि ॥ २ ॥

भा०—(अह्नां नेत्री) उषा, प्रभात वेला जिस प्रकार दिनों की प्रारम्भक नायिका, (गवां माता) सूर्य की किरणों को अपने में से माता के समान पैदा करती है, वह (हिरण्य-वर्णा) सुवर्ण के समान चमकती हुई (सुदृशीक-सन्दृग्) आंखों को सब पदार्थ अच्छी प्रकार दिखला देती है, वह (प्रतीची) प्रत्यक्ष होती हुई, (स-प्रथा) विस्तृत होकर (रुशद् वासः बिभ्रती) मानो चमकीला वस्त्र पहने (विश्वं शुक्रम् अश्वैत्) समस्त संसार को दीप्तियुक्त कर चमका देती और बढ़ती है उसी प्रकार परमेश्वरी शक्ति और नव वधू माता भी (अह्नां) न नाश होने वाले, नित्य, जीवों, न मरने योग्य बालक जीवों की (नेत्री) नायिका, प्राप्त कराने वाली, (गवां) लोकों, वाणियों और गौ आदि पशुओं की भी (माता) माता के समान पालन करने वाली। (सुदृशीक-संदृग्) दर्शनीय सम्यक् दृष्टि से युक्त, निष्पक्षपात, सौम्यनयनी, (हिरण्य-वर्णा) उज्ज्वल, हित रमणीय वर्ण वाली हो। वह (प्रतीची) प्रत्येक की दृष्टि में

पूजनीय, (रुशद्-वासः) उज्ज्वल वस्त्रादि को (बिभ्रती) धारण करती हुई, (सप्रथा) समान रूप से विख्यात होकर (उत्-अस्थात्) उत्तम स्थिति प्राप्त करे और (शुक्रम् अश्वैत्) शुद्धरूप, शुद्ध आचरण और वीर्योत्पन्न सन्तति की वृद्धि करे।

देवानां चक्षुः सुभगा वहन्ती श्वेतं नयन्ती सुदृशीकमश्वम्।
उषा अदर्शि रश्मिभिर्व्यक्ता चित्रामघा विश्वमनु प्रभूता ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार (उषा) उषा, प्रभात वेला की सूर्य की कान्ति (रश्मिभिः व्यक्ता अदर्शि) किरणों से विशेष प्रकाशित दिखाई देती है, वह (चित्रामघा विश्वम् अनु प्रभूता) समस्त विश्व में प्रकट होती, चित्र विचित्र वर्ण युक्त प्रकाशों से मानों पूज्य धन युक्त होती है। वह (सुभगा) उत्तम भद्रवर्ण युक्त होकर (देवानां चक्षुः) मनुष्यों की आंखों को (श्वेतं वहन्ती) श्वेत प्रकाश देती हुई, और (सुदृशीकम् श्वेतं अश्वम् नयन्ती) उत्तम दर्शनीय, श्वेत, व्यापक प्रकाशवान् सूर्य को प्राप्त कराती है उसी प्रकार (उषा) पति की कामना से युक्त नववधू, (सु भगा) उत्तम ऐश्वर्य से युक्त, सौभाग्यवती, (देवानां) विद्वान् पुरुषों के बीच (चक्षुः) सौम्य दृष्टि करती हुई और (श्वेतम्) शुद्ध चरित्रवान् (सु-दृशीकम्) उत्तम दर्शनीय, (अश्वम्) अश्ववत् सुदृढ़ शरीर वाले विद्यावेत्ता पुरुष के प्रति अपनी चक्षु को (नयन्ती) पहुंचाती हुई, उसे प्रेम से वरण करती हुई, (चित्रा-मघा) उत्तम नाना प्रकार के पूज्य धनों से युक्त और (रश्मिभिः व्यक्ता) किरण-कान्तियों से सुशोभित, (विश्वम् अनु प्रभूता) सबके समक्ष प्रकट होकर (अदर्शि) दीखे।

अन्तिवामा दूरे अमित्रमुच्छोर्वीं गव्यूतिमभयं कृधी नः।
यावय द्वेष आ भरा वसूनि चोदय राधो गृणते मघोनि ॥ ४ ॥

भा०—हे (मघोनि) ऐश्वर्य, धन की स्वामिनि राजशक्ते! हे विदुषि! तू (अन्ति-वामा) अपने समीप नाना प्रकार के भोग्य पदार्थों

और उत्तम ऐश्वर्यों को रखती हुई (अमित्रम् दूरे) शत्रु को दूर करती हुई (उच्छ) अपने आप चमक। तू (उर्वीं) बड़ी भूमि और विशाल (गव्यूतिम्) मार्ग को (नः) हमारे लिये (अभयं कृधि) भय से रहित कर। (द्वेषः यवय) हमारे में से द्वेष भावों और द्वेष करने वालों को दूर कर। (वसूनि आभर) नाना ऐश्वर्य हमें प्राप्त करा, (गृणते) स्तुति, उपदेश करने वाले पुरुष को (राधः चोदय) ऐश्वर्य प्रदान कर। (२) इसी प्रकार स्त्री भी, समीप रहकर भोगने योग्य, एवं नाना धन समीप रखने वाली होने से 'अन्तिवामा', (अमित्रम्) स्नेहरहित पुरुष से दूर रहे, संसार के बड़े भारी मार्ग को भयरहित करे, द्वेष को दूर करे, धनों का संग्रह करे, उपदेष्टा विद्वान् को धन प्रदान करे।

अ॒स्मे श्रेष्ठे॑भिर्भा॒नुभि॒र्वि भा॒ह्युषो॑ देवि प्रति॒रन्ती॑ न॒ आयुः॑।
इषं॑ च नो॒ दध॑ती विश्ववारे॒ गोम॒दश्वा॑व॒द्रथ॑वच्च॒ राधः॑ ॥ ५ ॥

भा०—हे (उषः देवि) प्रभात वेला के समान शुभगुणों से युक्त विदुषि ! तू (श्रेष्ठेभिः) अति उत्तम किरणों के समान श्रेष्ठ गुणों से (वि भाहि) विशेष रूप से चमक। तू (नः) हमें (आयुः प्रतिरन्ती) दीर्घ जीवन प्रदान करती हुई, और हे (विश्ववारे) विश्व अर्थात् हृदय में प्रविष्ट पतिद्वारा एकमात्र वरण करने योग्य ! (नः) हमारी (इषं) अन्न और (गोमद् अश्वावत् रथवत् च) गौओं, अश्वों और रथों से समृद्ध (राधः) धन समृद्धि को (दधती) धारण करती हुई, स्वामिनी होकर (वि भाहि) विशेष रूप से चमक।

यां त्वा॑ दिवो दुहितर्व॒र्धय॒न्त्युषः॑ सुजाते म॒तिभि॒र्वसि॑ष्ठाः।
सास्मासु॑ धा र॒यिमृ॒ष्वं बृ॒हन्तं॑ यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ६।२४

भा०—हे (उषः) प्रभात वेला, उषा के समान कान्तिमति ! हे (सुजाते) शुभ गुणों सहित, उत्तम जन्म वाली ! हे (दिवः दुहितः) तेजस्वी सूर्यवत् विद्वान् और वीर पुरुष की पुत्रि ! एवं पति की नाना

कामनाओं को पूर्ण करने हारि! (वसिष्ठाः) उत्तम २ वसु, ब्रह्मचारी एवं गृहस्थ, पिता जन (यां त्वा वर्धयन्ति) जिस तुझ को बढ़ाते हैं, तेरी मान, आदर, प्रतिष्ठा करते हैं (सा) वह तू (अस्मासु) हमारे बीच (ऋष्वं) बड़े भारी (बृहन्तं) महान् (रयिम्) ऐश्वर्य को (धाः) धारण कर और हममें भी धारण करा। हे विद्वान् लोगो! (यूयम्) तुम लोग (नः सदा स्वस्तिभिः पात) हमारी सदा उत्तम उपायों से रक्षा करो। इति चतुर्विंशो वर्गः॥

[७८]

वसिष्ठ ऋषिः॥ उषा देवता॥ छन्दः—१, २ त्रिष्टुप्। ३, ४ निचृत् त्रिष्टुप्। ५ विराट् त्रिष्टुप्॥ पञ्चर्चं सूक्तम्॥

प्रति केतवः प्रथमा अदृश्रन्नूर्ध्वा अस्या अञ्जयो वि श्रयन्ते।
उषो अर्वाचा बृहता रथेन ज्योतिष्मता वाममस्मभ्यं वक्षि॥१॥

भा०—(अस्याः) उस उत्तम विदुषी स्त्री के (प्रथमाः केतवः) सर्वश्रेष्ठ ज्ञापक गुण रश्मिवत् (प्रति अदृश्रन्) प्रत्यक्ष दिखाई दें। (अस्याः) इसके (अञ्जयः) उत्तम गुण प्रकाशवत् (वि-श्रयन्ते) विविध प्रकार से प्रकट होते हैं। हे (उषः) कान्तिमति! उषा के समान सुन्दरि! तू (ज्योतिष्मता) तेजस्वी, ज्ञानी (बृहता) बड़े (अर्वाचा) अश्व से जाने वाले (रथेन) रथ के समान दृढ़ एवं रम्य, व्यवहारज्ञ, विद्वान् पति के साथ मिलकर (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (वामम् वक्षि) उत्तम ऐश्वर्य, सुखादि धारण कर, हमें भी सुख प्रदान कर।

प्रति षीमग्निर्जरते समिद्धः प्रति विप्रासो मतिभिर्गृणन्तः।
उषा याति ज्योतिषा बाधमाना विश्वा तमांसि दुरिताप देवी २

भा०—(उषा ज्योतिषा विश्वा तमांसि अप बाधमाना याति) उषा अर्थात् प्रभात की सौरी प्रभा जिस प्रकार प्रकाश से सब अन्धकारों को दूर करती हुई व्यापती है उसी प्रकार (देवी) विदुषी स्त्री (ज्योतिषा),

अपने तेजःप्रभाव से (विश्वा दुरिता) सब प्रकार के दुःखों और दुष्ट आचारों को (अप बाधमाना) दूर करती हुई (याति) प्राप्त होती है। (समिद्धः अग्निः) प्रातः प्रज्वलित अग्नि के समान प्रकाशमान विद्वान् (सीम् प्रति जरते) सब प्रकार से और सर्वत्र उपदेश करे, और (मतिभिः) ज्ञानों से युक्त (विप्रासः) विद्वान् बुद्धिमान् पुरुष भी (गृणन्तः) उपदेश करते हुए (प्रति जरन्ते) प्रश्न किये जाने पर उत्तर द्वारा उपदेश करते हैं।

एता उ त्याः प्रत्यदृश्रन्पुरस्ताज्ज्योतिर्यच्छन्तीरुषसो विभातीः।
अजीजनन्त्सूर्यं यज्ञमग्निमपाचीनं तमो अगादजुष्टम् ॥ ३ ॥

भा०—(एताः त्याः) ये वे (विभातीः उषसः) चमकती उषाओं, प्रभातिक सूर्य की कान्तियों के सदृश उज्ज्वल, (ज्योतिः यच्छन्तीः) कान्ति प्रदान करती हुई नव-वधुएं (प्रति अदृश्रन्) दीखें। वे (सूर्यम्) सूर्य के समान तेजस्वी (यज्ञम्) पूजनीय (अग्निम्) अग्रणी नायक को (अजीजनन्) अपने पीछे आता प्रकट करती हैं। (अजुष्टम्) न सेवन करने योग्य (तमः) शोक आदि दुःख (अपाचीनं अगात्) दूर चला जाता, अर्थात् उनके आने पर घर २ खुशियां विराजती हैं।

अचेति दिवो दुहिता मघोनी विश्वे पश्यन्त्युषसं विभातीम्।
आस्थाद्रथं स्वधया युज्यमानमा यमश्वासः सुयुजो वहन्ति ॥४॥

भा०—(दिवः दुहिता) सूर्य की पुत्री के समान कान्तिमती (मघोनी) बड़ी ऐश्वर्य की स्वामिनी, सौभाग्यवती, सुभगा (अचेति) जानी जाती है। उसको (विभातीम्) विविध प्रकार से चमकती (उषसम्) प्रभात वेला के समान ही अनुरागवती को (विश्वे पश्यन्ति) सब देखते हैं। (यम्) जिसको (अश्वासः) बहुत विद्याओं में निष्णात जन अश्वों के समान उत्तम सहयोगी होकर सन्मार्ग पर लेजाते हैं उस (रथम्) रथवत् सुदृढ़ शरीर वाले, और (स्वधया) अपने आपको वा अपने सर्वस्व को

धारण करने वाली स्त्री के साथ (युज्यमानम्) योग प्राप्त करने वाले (रथम्) रमणकारी, पति को (आ अस्थात्) प्राप्त करे अपना आश्रय बनावे।

प्रति॑ त्वा॒द्य सु॒मन॑सो बुधन्ता॒स्माका॑सो म॒घवा॑नो व॒यं च॑ ।
ति॒ल्वि॒ला॒यध्व॑मुषसो विभा॒तीर्यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः॥५।२५

भा०—हे विदुषि ! (सु-मनसः) उत्तम चित्तवाले (अस्माकासः) हमारे सम्बन्धी जन और (मघ-वानः) उत्तम ज्ञानैश्वर्यवान् और (वयं च) हम लोग सभी (अद्य) आज के दिन (त्वा प्रति बुधन्त) तेरे साथ उत्तम परिचय प्राप्त करें। हे (विभातीः उषसः) उज्ज्वल रूप से चमकने वाली प्रभात वेलाओं के समान कुलवधुओ ! आप लोग (तिल्विलायध्वम्) तिलों से सुशोभित भूमि के समान स्नेह की उत्पादक भूमि के समान होवो। (यूयं) आप सब लोग (नः सदा स्वस्तिभिः पात) हमें सदा उत्तम सुखप्रद शान्तिजनक उपायों से पालन करो। इति पञ्चविंशो वर्गः॥

[७९]

वसिष्ठ ऋषिः॥ उषा देवता॥ छन्दः—१, ४ निचृत्त्रिष्टुप्। २, ३ विराट् त्रिष्टुप्। ५ आर्ची स्वराट् त्रिष्टुप्॥ पञ्चर्चं सूक्तम्॥

व्यु१॒॑षा आ॑वः प॒थ्या॒३॒॑ जना॑नां॒ पञ्च॑ क्षि॒तीर्मानु॑षीर्बो॒धय॑न्ती ।
सु॒स॒न्दृग्भि॑रु॒क्षभि॑र्भा॒नुम॑श्रे॒द्वि सूर्यो॒ रोद॑सी॒ चक्ष॑सावः ॥ १ ॥

भा०—(जनानां पथ्या) मनुष्यों को अपने प्रकाश से सत्पथ बतलाने वाली (उषा) प्रभात वेला के समान (पथ्या) धर्म-पथ बतलाने में हितकारिणी, और (पथ्या) संग आदि से रोग, शोकादि दूर करने वाली वधू (वि-आवः) विविध गुणों का प्रकाश करे। वह (मानुषीः पञ्च क्षितीः बोधयन्ती) मनुष्यों के पांचों प्रकार के प्रजाजनों को ज्ञान बोध कराती हुई, (सु-सं-दृग्भिः) उत्तम सम्यग् दर्शन युक्त, (उक्षभिः) पुरुष-पुंगवों

द्वारा (भानुम् अश्रेत्) विशेष दीप्ति को धारण करे। और (सूर्यः) आकाश और भूमि को प्रकाश से सूर्य के समान पुरुष (रोदसी) माता पिता दोनों के कुलों को (चक्षसा) सम्यग् दृष्टि से, (वि-आवः) विशेष रूप से उज्ज्वल करता है।

व्यंञ्जते दिवो अन्तेष्वक्तून्विशो न युक्ता उषसो यतन्ते।
सं ते गावस्तम आ वर्तयन्ति ज्योतिर्यच्छन्ति सवितेव बाहू॥२॥

भा०—(उषसः) प्रभात वेलाएं जिस प्रकार (दिवः अन्तेषु) आकाश के प्रान्त भागों में (अक्तून् वि अञ्जते) रात्रि-भागों या प्रकाशों को प्रकट करती हैं उसी प्रकार (उषसः) कामनायुक्त नववधुएं (अन्तेषु) प्रान्त भागों में विद्यमान (विशः न) राजा की प्रजाओं के समान (दिवः अन्तेषु) दिन के अन्त में रात्रि के कालों में (अक्तून्) अपने विशेष उज्ज्वल गृह के दीपकों को प्रकाशित करती हैं। और (युक्ताः यतन्ते) नियुक्त भृत्यजनों के समान नववधुएं भी (युक्ताः) पति की आज्ञा में रहकर (यतन्ते) गृह-कार्य करती हैं। हे नववधू! जिस प्रकार (गावः तमः आवर्त्तयन्ति) किरणें अन्धकार को दूर कर देती हैं और (ज्योतिः यच्छन्ति) प्रकाश देती हैं, वे (सूर्यस्य बाहू इव) सूर्य की बाहुओं के समान होते हैं उसी प्रकार हे नववधू! (ते) तेरी (गावः) वाणियां भी (तमः सम् आ वर्त्तयन्ति) शोकादि दुःख को अच्छी प्रकार दूर करें और (ज्योतिः) प्रकाशवत् स्फूर्त्ति, उत्साह को प्रदान करें। हे (उषः) नववधू! तू भी (सविता इव) प्रजा-उत्पादक पति के समान ही होकर (बाहू) एक शरीर में दो बाहुओं के समान तुम दोनों मिल कर रहो।

अभूदुषा इन्द्रतमा मघोन्यजीजनत्सुविताय श्रवांसि।
वि दिवो देवी दुहिता दधात्यङ्गिरस्तमा सुकृते वसूनि॥३॥

भा०—यदि (उषा) उषा के समान कान्तिमती कन्या (इन्द्र-तमा)

अति अधिक ऐश्वर्यवती, रानी के समान सम्पन्न और (मघोनी) उत्तम धनैश्वर्य से युक्त (अभूत्) हो तो वह (सुवित्ताय) और भी अधिक ऐश्वर्य प्राप्ति करने वा (सुविताय) जगत् का उत्तम कल्याण करने के लिये ही (श्रवांसि) नाना अन्न, यशों और धनों को (अजीजनत्) और भी उत्पन्न करे। वह (दिवः दुहिता) तेजस्वी सूर्य की पुत्रीवत् प्रभा के समान उज्ज्वल कान्तियुक्त (दिवः दुहिता) कामनावान् पति के मनोरथों को पूर्ण करने वाली वा (दिवः) व्यवहारों, व्यापारादि तथा ज्ञान विज्ञानों का दोहन करने वाली, वार्त्ताचतुर वा ज्ञानवती स्त्री (अंगिरस्तमा) अति विदुषी होकर भी (सुकृते) शुभ कर्म, पुण्यादि की वृद्धि के लिये ही (वसूनि) समस्त नाना ऐश्वर्यों को (दधाति) धारण करे।

तावदुषो राधो अस्मभ्यं रास्व यावत्स्तोतृभ्यो अरदो गृणाना।
यां त्वा जज्ञुर्वृषभस्या रवेण वि दृळ्हस्य दुरो अद्रेरौर्णोः ॥४॥

भा०—जिस प्रकार 'उषस्' अर्थात् अति कान्तियुक्त विद्युत् को (वृषभस्य रवेण) वर्षणशील मेघ के घोर गर्जन के साथ ही (जज्ञुः) जानते हैं, और वह (दृढस्य अद्रेः दुरः वि और्णोत्) दृढ मेघ या पर्वतादि के भी जलावरोधक मार्गों को खोल देती है उसी प्रकार हे विदुषि! वधू! (यां त्वा) जिस तुझको (वृषभस्य) उत्तम पुरुष के (रवेण) उपदेश या नाम शब्द से लोग (जज्ञुः) जान लेते हैं और जो वह तू (दृढस्य अद्रेः) दृढ 'अद्रि' अर्थात् पर्वतवत् विशाल भवन के (दुरः) नाना द्वारों को (वि और्णोः) उद्घाटन कर, तू बड़े गृहपति की स्वामिनी हो। और (यावत्) जितना तू (गृणाना) स्तुतियुक्त होकर (स्तोतृभ्यः अरदः) स्तोता, विद्वानों को देवे (तावत् राधः) उतना ही धन (अस्मभ्यं) हमें भी प्रदान कर। अर्थात् स्त्री विद्वानों और बन्धु बान्धवों का बराबर सत्कार किया करे।

देवंदेवं राधसे चोदयन्त्यस्मद्र्यक्सूनृता ईरयन्ती ।
व्युच्छन्ती नः सनये धियो धा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥५।२६॥

भा०—हे विदुषि ! सौभाग्यवति ! तू (देवं-देवं) प्रत्येक विद्वान् पुरुष को (राधसे) प्रदान योग्य धन को (चोदयन्ती) स्वीकार करने की प्रार्थना करती हुई और (अस्मद्र्यक्) हमारे प्रति (सूनृता) उत्तम वचन देती, कहती हुई, (वि उच्छन्ती) विशेष गुणों को प्रकट करती हुई (नः सनये) हमें दान देने के लिये (धियः धाः) नाना लौकिक वैदिक कर्म और शुभ संकल्प किया कर । हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! (यूयं नः स्वस्तिभिः सदा पात) आप लोग हमारी नाना उत्तम २ उपायों से सदा रक्षा किया करो । इति षड्विंशो वर्गः ॥

[८०]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१ त्रिष्टुप् । २ विराट् त्रिष्टुप् । ३ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ तृचं सूक्तम् ॥

प्रति स्तोमेभिरुषसं वसिष्ठा गीर्भिर्विप्रासः प्रथमा अबुध्रन् ।
विवर्तयन्तीं रजसी समन्ते आविष्कृण्वतीं भुवनानि विश्वा ॥१॥

भा०—जिस प्रकार (रजसी समन्ते) आकाश और भूमि के प्रान्त भागों तक (वि-वर्तयन्तीं) व्यापती हुई और (विश्वा भुवना आविः कृण्वतीं) समस्त पदार्थों को प्रकट करती हुई (प्रति उषसं) प्रत्येक प्रभात वेला को प्राप्त कर (विप्रासः) विद्वान् लोग (स्तोमेभिः गीर्भिः) स्तुतियुक्त मन्त्रों, सूक्तों और वाणियों से (अबुध्रन्) विशेष ज्ञान प्राप्त करते और अन्यों को ज्ञान प्रदान करते हैं उसी प्रकार (वसिष्ठाः) उत्तम वसु, ब्रह्मचारी वा पितावत् (प्रथमाः) प्रथम कोटि के, उत्तम, वा विस्तृत ज्ञान वाले (विप्रासः) विद्वान् पुरुष, (समन्ते) समीपस्थ (रजसी) मातृ-पितृ-पक्ष के बन्धुजनों को वा (समन्ते) अति समीपस्थ (रजसी) गर्भ में

प्राप्त शुक्र और रज दोनों के अंशों को (विवर्त्तयन्ती) विशेष या विविध रूपों में व्यापारयुक्त करती हुई और (विश्वा भुवनानि) सब गर्भगत अङ्ग के नाना रूपों को प्रकट करती हुई (उसे) सन्तान की इच्छुक माता को (प्रति) लक्ष्य कर (स्तोमेभिः) स्तुति योग्य वचनों और व्यवहारों और (गीर्भिः) वेद वाणियों से (अबुध्रन्) उसको ज्ञान प्रदान करें, जिससे सन्तति का पोषण उत्तम और उस पर संस्कार भी उत्तम पड़ें। जो दशा गर्भग्रहण-समर्थ एवं पति-संगता उपात्तगर्भा युवति की होती है वही दशा ब्रह्म बीज को अपने में धारण करने वाली हिरण्य-गर्भा प्रकृति की होती है। इस मन्त्र में उस प्रकृति को 'उषा' कहा है। उस दशा से युक्त प्रकृति को वसिष्ठ विप्र, ब्रह्मचारी ऋषि गण वेद के नाना सूक्तों तथा मन्त्रों से जानते हैं। वह प्रकृति भी (समन्ते रजसी विवर्त्तयन्ती) संयुक्त दो सत् तत्व वा अविकृत प्रकृति और अविक्रिय ब्रह्म दोनों को (रजसी) राजसभाव, में (वि-वर्तयन्ती) विविध विकृतियों में बदलती हुई और (भुवनानि विश्वा आविष्कृण्वन्तीम्) समस्त लोकों को प्रकट करती हुई उसको जानते हैं।

एषा स्या नव्यमायुर्दधाना गूढ्वी तमो ज्योतिषोषा अबोधि।
अग्र एति युवतिरह्रयाणा प्राचिकितत्सूर्यं यज्ञमग्निम् ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार (उषा) प्रभात वेला, (ज्योतिषा तमः) प्रकाश से अन्धकार को दूर करती, (नव्यम् आयुः दधाना) सब प्राणियों को नया जीवन देती, जगाती, (अग्रे) सूर्य के आगे आती फिर सूर्य, यज्ञ और यज्ञाग्नि को प्रबुद्ध कराती है उसी प्रकार (एषा स्या युवतिः) वह यह युवति, वधू (नव्यम् आयुः दधाना) अपनी नयी आयु धारण करती हुई (ज्योतिषा) अपनी कान्ति से (गूढ्वीतमः) गहरे शोक मोहादि को दूर करके (अबोधि) जागे और पति को जागृत करे। वह (अह्रयाणा) लज्जा वा निद्रा को त्यागकर (युवतिः) नवयुवति गृहिणी, (अग्रे एति)

आगे आवे (सूर्यम्) सूर्यवत् अपने पति को (प्राचिकितत्) जगावे, (यज्ञम् अग्निम्) और बाद वही यज्ञ अर्थात् पूज्य देव परमेश्वर और अग्निहोत्र की अग्नि को भी जागृत करे।

अश्वा॑वती॒र्गोम॑तीर्न उ॒षासो॑ वी॒रव॑तीः॒ सद॑मुच्छन्तु भ॒द्राः। घृ॒तं दुहा॑ना वि॒श्वतः॒ प्रपी॑ता यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥३।२७।५॥

भा०—(अश्वावतीः) उत्तम अश्वों अर्थात् विद्यादि में निष्णात उत्तम पुरुषों से युक्त, (गोमतीः) उत्तम वेदवाणियों से युक्त, (वीरवतीः) उत्तम पुत्रों से युक्त, (भद्राः) कल्याण देने वाली (उषासः) पति पुत्रादि को चाहने वाली देवियां (नः सदम् उच्छन्तु) हमें और हमारे घरों को सदा प्रकाशित करें। वे सदा (घृतं दुहानाः) घृतवत् स्नेह, जल आदि पुष्टिकारक पदार्थों की (दुहानाः) वृद्धि करती हुई स्वयं भी (विश्वतः) सब प्रकार से (प्रपीताः) सुख तृप्त, सन्तुष्ट, एवं हृष्ट पुष्ट होकर रहें। हे उत्तम देवियो ! (यूयं स्वस्तिभिः सदा नः पात) आप सब हमारी सदा उत्तम साधनों और शान्तिदायक यज्ञादि से रक्षा करो। इसी प्रकार राष्ट्र में सेनायें, शत्रुओं और दुष्टों को दग्ध करने से उषाएं हैं और प्रजाएं राजा की प्रिय होने से उषाएं हैं। वे अश्वगों, भूमि, वीर पुरुषों से युक्त, ऐश्वर्यवान् हो के तेज को बढ़ाती हुई सब प्रकार से प्रसन्न, तृप्त हों। इति सप्तविंशो वर्गः ॥ इति पञ्चमोऽध्यायः ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

[८१]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१ विराड् बृहती। २ भुरिग्बृहती। ३ आर्षी बृहती। ४,६ आर्षी भुरिग् बृहती, निचृद् बृहती ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

प्रत्यु॑ अदर्श्याय॒त्यु१॒च्छन्ती॑ दुहि॒ता दि॒वः।
अपो॒ महि॑ व्ययति॒ चक्ष॑से॒ तमो॒ ज्योति॑ष्कृणोति सू॒नरी॑ ॥१॥

भा०—जिस प्रकार (दिवः दुहिता) सूर्य की पुत्री के समान

प्रकाश से जगत् को पूर्ण करने वाली, प्रकाश की देने वाली उषा (आयती) आती हुई, और (उच्छन्ती) प्रकट होती हुई (प्रति अदर्शि उ) सब को स्पष्ट दिखाई देती है, वह (महि तमः) बड़े अन्धकार को (अपो-व्ययति उ) दूर करती है, और (चक्षसे) सब को दिखलाने के लिये (ज्योतिः कृणोति) प्रकाश करती है उसी प्रकार (सूनरी) उत्तम नायिका विदुषी स्त्री, (दिवः दुहिता) सब कामनाओं और व्यवहारों को पूर्ण, सफल करने वाली, (आयती) आती हुई, (उच्छन्ती) अपने गुणों को प्रकट करती हुई, (प्रति अदर्शि) प्रतिदिन दिखाई दे। वह (चक्षसे) सम्यग् दर्शन करने और अन्यों को उपदेश करने के लिये (महि तमः अपो व्ययति) बहुत अन्धकार अज्ञान को दूर करे और (ज्योतिः कृणोति) ज्ञान प्रकाश का सम्पादन करे।

उदुस्रियाः सृजते सूर्यः सचाँ उद्यन्नक्षत्रमर्चिवत्।
तवेदुषो व्युषि सूर्यस्य च सं भक्तेन गमेमहि ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार (अर्चिवत्) तेज से युक्त (नक्षत्रम्) नक्षत्र रूप (सूर्यः) सूर्य भी (उस्रियाः सचा उत्सृजते) किरणों को एक साथ ऊपर फेंकता है, हे (उषः) उषा! (तव इत् सूर्यस्य उषि) तेरे और सूर्य के उषा काल में जिस प्रकार (भक्तेन सं गमेमहि) हम भजन करने योग्य प्रभु से संगति लाभ करें, उसी प्रकार हे (उषः) कान्तिमति, उत्तम विदुषि नववधु! जब (उत्-यत्) उगता हुआ (अर्चिवत्) अन्यों के आदर सत्कार योग्य (नक्षत्रम्) नक्षत्र के समान (नक्षत्रं) व्यापक राज्य के पालने में समर्थ बल हो और (सचा) साथ ही (सूर्यः) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष (उस्रियाः) उन्नतिशील प्रजाओं को किरणों के समान (उत्सृजते) उन्नति की ओर ले जाता है, तब (तव इत् वि-उषि, सूर्यस्य च वि-उषि) तेरी और तेरे पति तेजस्वी पुरुष की विशेष इच्छा और प्रताप होने पर (भक्तेन सं गमेमहि) हम उत्तम सेवनीय ऐश्वर्यादि का लाभ करें।

प्रति त्वा दुहितर्दिव उषो जीरा अभुत्स्महि ।
या वहसि पुरु स्पार्हं वनन्वति रत्नं न दाशुषे मयः ॥ ३ ॥

भा०—हे (दिवः दुहितः) सूर्यवत् तेजस्वी की समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली, हे (उषः) तेजस्विनि ! पापी पुरुषों को भस्म कर देने वाली ! हम लोग (जीराः) अति शीघ्रकारी होकर (त्वा प्रति) तुझे (अभुत्स्महि) ऐसा जानते हैं कि हे (वनन्वति) उत्तम सेव्य धन की स्वामिनि ! (या) जो तू (पुरु स्पार्हं) बहुत अधिक, चाहने योग्य ऐश्वर्य (वहसि) धारण करती है वह तू (रत्नं न) रमणीयवत् और (मयः) सुखकारी पदार्थ (दाशुषे) दान देने वाले के लिये ही (वहसि) धारण करती है ।

उच्छन्ती या कृणोषि मंहना महि प्रख्यै देवि स्वर्दृशे ।
तस्यास्ते रत्नभाज ईमहे वयं स्याम मातुर्न सूनवः ॥ ४ ॥

भा०—(या) जो तू हे (देवि) दानशीले ! कमनीयकान्ते ! हे (महि) पूजनीये ! जिस प्रकार उषा (प्रख्यै) सब पदार्थों को बतलाने और (दृशे) देखने के लिये (स्वः उच्छन्ती) स्वयं प्रकट होती हुई, सूर्य को प्रकट कर देती है उसी प्रकार तू भी (उच्छन्ती) गुणों को प्रकाशित करती हुई (प्रख्यै) उत्तम ख्याति लाभ करने और (दृशे) दर्शन करने के लिये (मंहना) अपने पूज्य व्यवहार से ही (स्वः) आदित्यवत् तेजस्वी पुरुष, या पुत्र को भी (कृणोषि) उत्पन्न करती है । (रत्नभाजः) पुत्रादिरत्न को धारण करने वाली तुझ से ही हम (ईमहे) अन्नादि याचना करें और (वयम्) हम लोग (मातुः सूनवः न) माता के पुत्रों के समान (स्याम) तेरे कृपापात्र बने रहें ।

तच्चित्रं राध आ भरोषो यद्दीर्घश्रुत्तमम् ।
यत्ते दिवो दुहितर्मर्तभोजनं तद्रास्व भुनजामहै ॥ ५ ॥

भा०—हे (उषः) पापों को जला देने हारी ! हे कान्तिमति विदुषि

हे प्रभुशक्ते ! तू हमें (तत्) वह (चित्रम्) अद्भुत, संग्रह योग्य, (राधः) ऐश्वर्य (आ भर) प्रदान कर (यत् दीर्घ-श्रुत्तमम्) जो सब से अधिक दीर्घ काल तक श्रवण करने योग्य हो। हे (दिवः दुहितः) सूर्य की पुत्री उषावत् तेजस्वी पिता की कन्ये ! एवं तेजस्वी पुरुष की कामना पूर्ण करने हारी ! एवं दूर देश में विवाहिता होकर हितकारिणि ! (यत् ते मर्त्तभोजनम्) जो तेरा मनुष्यों को पालन करने वाला सामर्थ्य है (तत्) वह तू हमें (रास्व) प्रदान कर, (भुनजामहै) हम उसी का भोग करें।

श्रवः सूरिभ्यो अमृतं वसुत्वनं वाजाँ अस्मभ्यं गोमतः।
चोदयित्री मघोनः सूनृतावत्युषा उच्छदप स्रिधः॥ ६॥ १॥

भा०—हे (सूनृतावति) उत्तम ऋत ज्ञान और धन की स्वामिनि ! तू (सूरिभ्यः) विद्वान् पुरुषों के लिये (अमृतम्) कभी नाश न होने वाला, अमृतमय (श्रवः) श्रवणयोग्य ज्ञान और आयुप्रद अन्न तथा (वसुत्वनं) ऐश्वर्ययुक्त कीर्ति, और (गोमतः वाजान्) भूमिसम्पन्न ऐश्वर्य प्रदान कर। तू (मघोनः) ऐश्वर्य वालों को भी (चोदयित्री) अपने अधीन चलाती हुई (स्रिधः) हिंसक दुष्टों को (अप उच्छत्) दूर कर। यहां प्रभुशक्ति का वर्णन स्पष्ट है। इति प्रथमो वर्गः॥

[८२]

वसिष्ठ ऋषिः॥ इन्द्रावरुणौ देवते॥ छन्दः—१, २, ६, ७, ९ निचृज्जगती। ३ आर्ची भुरिग् जगती। ४, ५, १० आर्षी विराड् जगती। ८ विराड् जगती॥ दशर्चं सूक्तम्॥

इन्द्रावरुणा युवमध्वराय नो विशे जनाय महि शर्म यच्छतम्।
दीर्घप्रयज्युमति यो वनुष्यति वयं जयेम पृतनासु दूढ्यः॥ १॥

भा०—हे (इन्द्रा वरुणा) इन्द्र, शत्रु के हनन करनेहारे ! हे (वरुण) वरण करने योग्य सर्वश्रेष्ठ ! (युवम्) आप दोनों (अध्वराय)

हिंसा से रहित (नः) हमारे (विशे जनाय) प्रजाजन को (महि शर्म) बड़ा भारी सुख शरण (यच्छतम्) प्रदान करो। (दीर्घ-प्रयज्युम्) दोर्घ काल से उत्तम संगति वाले, एवं चिरकाल से कर, वृत्ति, आदि देने वाले पुरुष की (यः) जो अति (वनुष्यति) मर्यादा का अतिक्रमण करके हिंसा करे या उससे अपने अधिकार से अधिक मांगे उसको और (दूढ्यः) दुष्ट बुद्धि और दुष्ट कर्म करने वालों को (वयं) हम (पृतनासु) संग्रामों या मनुष्यों के बीच में (जयेम) विजय करें, उन्हें नीचा कर हम उनसे ऊंचे हों।

सुम्राळ॒न्यः स्व॒राळ॒न्य उ॑च्यते वां म॒हान्ता॒विन्द्रा॒वरु॑णा म॒हाव॑सू।
विश्वे॑ दे॒वासः॑ पर॒मे व्यो॑मनि॒ सं वा॒मोजो॑ वृषणा॒ सं बलं॑ दधुः॥२॥

भा०—इन्द्र और वरुण का स्वरूप स्वयं वेद कहता है। (इन्द्रा वरुणा) इन्द्र और वरुण दोनों (महान्तौ) गुणों और बलों में महान् सामर्थ्यवान् और दोनों (महावसू) बड़े भारी वसु अर्थात् धन और अधीन बसे प्रजा के स्वामी हैं। अर्थात् एक अपार धन का स्वामी है और दूसरा अनेक बसे प्रजाजनों का स्वामी है। एक के पास धनबल दूसरे के पास जनबल है अर्थात् एक कोशवान् और दूसरा दण्डवान्, एक अर्थपति दूसरा बलाध्यक्ष है। (वाम्) आप दोनों में से (अन्यः सम्राट्) एक तो 'सम्राट्' और (अन्यः स्वराट्) दूसरा 'स्वराट्' (उच्यते) कहलाता है। अच्छी प्रकार देदीप्यमान होने से सम्राट् और 'स्व' धन और 'स्व' अपने जन से राजावत् प्रकाशमान होने से 'स्वराट्' है। (वाम्) आप दोनों के (परमे) सर्वोत्कृष्ट (वि-ओमनि) विशेष रक्षण और प्रजा को तृप्त, सन्तुष्ट वा अनुरक्त कर देने के प्रधान पदाधिकार के अधीन रहते हुए (विश्वे देवासः) सब विद्वान्, वीर और व्यवहारवान् मनुष्य (ओजः सं दधुः) अपना पराक्रम या तेज एक साथ संयोजित करें और (बलं सं दधुः) अपना बल एक साथ लगावें।

अन्वपां खान्यतृन्तमोजसा सूर्यमैरयतं दिवि प्रभुम् ।
इन्द्रावरुणा मदे अस्य मायिनोऽपिन्वतमपितः पिन्वतं धियः॥३॥

भा०—आप दोनों (अपां) प्राप्त अधीनस्थ प्रजाओं के यातायात के लिये (खानि) जलों के मार्गों के समान ही नाना मार्ग (अनु अतृन्तम्) उनके अनुकूल रूप से बनाते हो, और (दिवि) शासन और व्यवहार क्षेत्र में (प्रभुम्) अधिक सामर्थ्यवान् (सूर्यम्) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष को (ऐरयतम्) प्रेरित करते हो । (अस्य) इस (मायिनः) प्रज्ञावान् और शिल्पशक्ति के स्वामी के (मदे) प्रसन्न, तृप्त वा सन्तुष्ट रहने पर ही (इन्द्रा वरुणा) पूर्व कथित इन्द्र और वरुण, अर्थ और बल के अध्यक्ष जन (अपितः) अरक्षित प्रजाओं को भी (अपिन्वतम्) सींचते बढ़ाते और (धियः पिन्वतम्) नाना कर्मों और शिल्पों को भी सींचते, पुष्ट करते हैं ।

युवामिद्युत्सु पृतनासु वह्नयो युवां क्षेमस्य प्रसवे मितज्ञवः ।
ईशाना वस्व उभयस्य कारव इन्द्रा वरुणा सुहवा हवामहे॥४॥

भा०—हे (इन्द्रा-वरुणा) इन्द्र ऐश्वर्यवन् ! हे (वरुण) शत्रु जनों और दुष्टों और विघ्नों को दूर हटाने वाले दोनों अध्यक्ष जनो ! (वह्नयः) नाना कार्यों को अपने ऊपर वहन करने वाले प्रधान तेजस्वी पुरुष (युत्सु) युद्धों और (पृतनासु) सेनाओं और मनुष्य प्रजाओं के बीच में (युवाम्) तुम दोनों को (हवन्ते) बुलाते हैं । और (मित-ज्ञवः) मित ज्ञान वाले वा ज्ञानी वा विनय से गोडे सिकोड़ कर बैठने वाले, सभ्य, वा परिमित, कदम बढ़ाने वाले जन (क्षेमस्य प्रसवे) अप्राप्त धन को प्राप्त करने के लिये (युवाम्) आप दोनों को ही याद करते हैं । (कारवः) क्रिया कुशल, शिल्पी जन और वेद मन्त्रों के द्रष्टा हम विद्वान् जन (उभयस्य वस्वः ईशाना) ऐहिक और पारमार्थिक वा चर और अचर

दोनों प्रकार के धन के स्वामी आप दोनों (सु-हवा) सुख से पुकारे जाने योग्य, शुभ नाम वाले, सुगृहीतनामधेय वा सुखदाताओं को (हवामहे) पुकारते हैं। आप दोनों को हम अपना प्रमुख बनावें।

इन्द्रावरुणा यदिमानि चक्रथुर्विश्वा जातानि भुवनस्य मज्मना।
क्षेमेण मित्रो वरुणं दुवस्यति मरुद्भिरुग्रः शुभमन्य ईयते॥५॥२॥

भा०—आधिदैविक दृष्टान्तों से इन्द्र वरुण का रहस्य। जिस प्रकार (मित्रः) प्राणवत् प्रिय, सबका मित्र सूर्य (वरुणं) आकाश को आच्छादन करने वाले मेघ को (क्षेमेण दुवस्यति) प्रजा के पालन-सामर्थ्य अन्न जलादि से युक्त करता है और (अन्यः) दूसरा (उग्रः) प्रबल वायु (मरुद्भिः) मध्यस्थानीय अन्तरिक्षस्थ वायुओं से (शुभम् ईयते) जल को प्राप्त कराता है और इस प्रकार वे दोनों सूर्य और वायु या विद्युत् (मज्मना) अपने बल से (भुवनस्य इमा विश्वा जातानि) संसार के इन समस्त प्राणियों को (चक्रथुः) उत्पन्न करते हैं इसी प्रकार (यत् इन्द्रा वरुणा) जो इन्द्र और वरुण ऐश्वर्य और दण्ड के अध्यक्ष जन (मज्मना) अपने धन और सैन्य बल से (इमानि विश्वा जातानि) इन समस्त जनों को (चक्रथुः) अपने अधीन करते और सुखपूर्वक समृद्ध करते हैं, वे कैसे करते हैं? (मित्रः) सबको मरने या नाश होने से बचाने वाला, सर्वस्नेही, न्यायाध्यक्ष ब्राह्मण वर्ग (वरुणं) दुष्टों के वारण करने वाले दण्डवान् पुरुष को (क्षेमेण) प्रजा के योग क्षेम या रक्षा या प्राप्त धन के सामर्थ्य से (दुवस्यति) युक्त करता है उसको प्रजा की रक्षा और अन्नादि से पालन का सर्वाधिकार सौंपता है और (अन्यः) दूसरा (उग्रः) अति बलवान् पुरुष (मरुद्भिः) वीर, शत्रुमारक सुभटों से युक्त होकर (शुभम् ईयते) सुशोभित पद को प्राप्त करता है। इति द्वितीयो वर्गः॥

महे शुल्काय वरुणस्य नु त्विष ओजो मिमाते ध्रुवमस्य यत्स्वम्।
अजामिमन्यः श्नथयन्तमातिरद्दभ्रेभिरन्यः प्र वृणोति भूयसः ६

भा०—(अस्य वरुणस्य) इस 'वरुण' का (यत्) जो (ध्रुवम् स्वम्) स्थिर धन सम्पदा है उस (महे शुल्काय) बड़े भारी ऐश्वर्य की वृद्धि करने और (त्विषे) तेज की वृद्धि करने के लिये (नु) भी 'इन्द्र और वरुण' दोनों ही (ओजः) बल और पराक्रम करते हैं। कैसा पराक्रम करते हैं कि—(अन्यः) एक तो (अथयन्तम् अजामिम्) हिंसा करने वाले शत्रु को (आ अतिरत्) सब ओर से नाश करता है और (अन्यः) दूसरा (वव्रेभिः) हिंसाकारी साधनों शस्त्रास्त्रों से (भूयसः प्र वृणोति) बहुत से शत्रुओं को आच्छादित करता, घेरता और उनको दूर से ही वारण करता है। अर्थात् एक का कर्म है आक्रमणकारी को दण्ड देना, दूसरे का कार्य है दूर से ही उसको वारण करना। 'आ अतिरत् इति इन्द्रः प्रवृणोति इति वरुणः। इति वेदोक्तनिर्वचनम्।'

न तमंहो न दुरितानि मर्त्यमिन्द्रावरुणा न तपः कुतश्चन।
यस्य देवा गच्छथो वीथो अध्वरं न तं मर्तस्य नशते परिह्वृतिः॥७

भा०—हे (देवा) दानशील, हे तेजस्वी, हे विजय की कामना करने वाले (इन्द्रा-वरुणा) शत्रुहन्ता और विघ्ननिवारक अध्यक्ष जनो! आप दोनों (यस्य मर्तस्य अध्वरं) राष्ट्र या मनुष्य प्रजा वर्ग के 'अध्वर' अर्थात् हिंसा से रहित प्रजा पालन के कार्य या यज्ञ को (गच्छथः) जाते हो और (वीथः) जिसके यज्ञ की रक्षा करते हो (तम् मर्तम्) उस मनुष्य तक (न अंहः नशते) न पाप पहुंचता है (न दुरितानि) न बुरे, कष्टदायी फल प्राप्त होते हैं, (कुतः चन न तपः) न किसी से या किसी प्रकार उसे सन्ताप या पीड़ा होती है, (तं न परिह्वृतिः नशते) और न उसको किसी की कुटिल चाल ही सताती है।

अर्वाङ्नरा दैव्येनावसा गतं शृणुतं हवं यदि मे जुजोषथः।
युवोर्हि सख्यमुत वा यदाप्यं मार्डीकमिन्द्रावरुणा नि यच्छतम्॥८

भा०—हे (इन्द्रा-वरुणा) ऐश्वर्यवन्! हे शत्रुवारक श्रेष्ठ जनो!

हे (नरा) उत्तम नायको ! (यदि) यदि आप दोनों (मे जुजोषथः) मुझ से प्रेम करते हो तो (मे हवं शृणुतम्) मेरा वचन श्रवण करो। और (दैव्येन) देव, विद्वान् और वीर पुरुषों से बने और मनुष्यों के हितकारी (अवसा) रक्षा आदि सहित (अर्वाङ् आगतम्) हमारे समीप आओ। (युवोः) आप दोनों का (हि) निश्चय से (यत्) जो (सख्यम्) मित्रता और (मार्डीकम् आप्यम्) अति सुखकारी बन्धुता है आप दोनों उस मित्र और बन्धुता का हमें (नि यच्छतम्) प्रदान करो।

अ॒स्माक॒मिन्द्रा॑वरुणा॒ भरे॑भरे पुरोयो॒धा भ॑वतं कृष्ट्योजसा।
यद्वां॒ हव॑न्त उ॒भये॒ अध॑ स्पृ॒धि नर॑स्तो॒कस्य॒ तन॑यस्य सा॒तिषु॑ ९

भा०—हे (कृष्ट्योजसा इन्द्रावरुणा) 'कृष्टि' अर्थात् शत्रु के कर्षण, पीड़ा करने वाली सेनाओं, पराक्रम करने वाले इन्द्र और वरुण, शत्रुहन्ता और, शत्रुवारक अध्यक्षजनो ! आप दोनों (अस्माक भरे भरे) हमारे प्रत्येक संग्राम में (पुरोयोधा भवतम्) आगे रहकर लड़ने वाले होवें। (यत्) जो (नरः) मनुष्य (उभये) सबल और निर्बल दोनों हो (तोकस्य तनयस्य सातिषु) पुत्र पौत्र तक के सेवन करने योग्य स्थायी भूमि आदि सम्पदा को प्राप्त करने के निमित्त (स्पृधि) परस्पर वृद्धि में (वां हवन्ते) तुम दोनों को आश्रय रूप से प्राप्त करते हैं।

अ॒स्मे इन्द्रो॒ वरु॑णो मि॒त्रो अ॑र्य॒मा द्यु॒म्नं य॑च्छन्तु म॒हि शर्म॑ स॒प्रथः॑।
अ॒व॒ध्रं ज्योति॒रदि॑तेर्ऋता॒वृधो॑ दे॒वस्य॒ श्लोकं॑ सवि॒तुर्म॑नामहे १०।३

भा०—(इन्द्र) ऐश्वर्यवान् जलप्रदाता, सूर्यवत् तेजस्वी (वरुणः) मेघवत् उदार, वरण करने योग्य, (मित्रः) सर्वस्नेही, (अर्यमा) शत्रुओं का नियन्त्रण करने में कुशल पुरुष (अस्मे) हमें (महि द्युम्नं) बड़ा ऐश्वर्य और (सप्रथः शर्म) विस्तारयुक्त शरण, गृह आदि (यच्छन्तु) प्रदान करें। ये सब (ऋतावृधः) सत्य, न्याय, धन आदि को बढ़ाने और उनके बल पर स्वयं बढ़ने वाले होकर (अदितेः) अखण्ड शासन

कर्त्ता, प्रजा के माता पिता एवं पुत्रवत् प्रिय पालक के (अनर्घं) न नाश होने वाले (ज्योतिः) ज्ञान और प्रताप का प्रदान करें। हम भी उसी (देवस्य) सर्वदाता (सवितुः) सर्वैश्वर्यवान् प्रभु की (श्लोकं) वाणी वेद तथा आज्ञा का (मनामहे) आदर से मान तथा मनन करें। इति तृतीयो वर्गः ॥

[८३]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, ३, ६ विराड् जगती । २, ४, ९ निचृज्जगती । ५ आर्ची जगती । ७, ८, १० आर्षी जगती ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

युवां नरा पश्यमानास आप्यं प्राचा गव्यन्तः पृथुपर्शवो ययुः ।
दासा च वृत्रा हतमार्याणि च सुदासमिन्द्रावरुणावसावतम् ॥१॥

भा०—जिस प्रकार प्राचा पूर्व दिशा से (आप्यं पश्यमानासः) 'आपः' जलों के आगमन के लक्षण देखते हुए (गव्यन्तः) भूमि के कर्षणादि के इच्छुक (पृथु-पर्शवः) बड़े हल, फावड़े आदि लेकर भूमि खोदने के लिये जाते हैं उसी प्रकार हे (नरा) उत्तम नायक जनो ! (प्राचा) सन्मुख से परस्पर (आप्यं) बन्धुभाव वा प्राप्तव्य लक्ष्य को (पश्यमानासः) देखते हुए (गव्यन्तः) भूमि के विजय की कामना करते हुए (पृथु-पर्शवः) बड़े २ परशु आदि शस्त्रास्त्र हाथ में लिये (ययुः) आगे बढ़ें। जिस प्रकार वायु और विद्युत् दोनों (वृत्रा हतम्) मेघस्थ जलों पर आघात करते हैं उसी प्रकार (युवां) हे इन्द्र और वरुण ! शत्रुहनन और शत्रु वारण करने वालो ! आप दोनों (दासा) विनाशकारी और (आर्याणि) 'अरि' अर्थात् शत्रु-पक्ष के (वृत्रा) बढ़ते हुए शत्रु-सैन्यों को (हतम्) मारो और (दासा च) भृत्यादि तथा (आर्याणि) 'आर्य' स्वामी वा वैश्यों के उपयोगी (वृत्रा) नाना धनों को भी (हतम्) प्राप्त करो। हे (इन्द्रावरुणा) ऐश्वर्यवन् ! हे श्रेष्ठ पुरुष ! तुम

दोनों (सु-दासम्) उत्तम दानशील, धनी तथा उत्तम भृत्य आदि की भी (अवसा अवतम्) रक्षादि साधनों द्वारा रक्षा करो।

यत्रा नरः॑ स॒मय॑न्ते कृ॒तध्व॑जो॒ यस्मि॑न्ना॒जा भव॑ति॒ किं च॒न प्रि॒यम्।
यत्रा॒ भय॑न्ते॒ भुव॑ना स्व॒र्दृश॒स्तत्रा॑ न इन्द्रावरु॒णाधि॑ वोचतम् ॥२॥

भा०—(यत्र) जिस संग्राम में (कृत-ध्वजः नरः) झण्डे हाथ में लिये नाना नायक जन (सम् अयन्त) एक साथ प्रयाण करते हैं और (यस्मिन् आजा) जिस संग्राम में (किं चन प्रियं भवति) शायद कुछ ही प्रिय होता हो अर्थात् (किं च प्रियं न भवति) कुछ भी प्रिय नहीं होता, (यत्र) जहां (स्वर्दृशः) सूर्यवत् तीव्र तीक्ष्ण दृष्टि वाले तेजस्वी पुरुष से (भुवना) समस्त लोक, प्राणी (भयन्ते) भय करते हैं (तत्र) ऐसे संग्राम के अवसरों में (इन्द्रा वरुणा) इन्द्र, वरुण नाम पदाधिकारी जन (नः अधि वोचतम्) हम लोगों के अध्यक्ष होकर आज्ञा, शासन आदि किया करें।

सं भूम्या॒ अन्ता॑ ध्व॒सि॒रा अ॑दृक्ष॒तेन्द्रा॑वरुणा दि॒वि घोष॒ आरु॑हत्।
अस्थु॒र्जना॑ना॒मुप॒ माम॒रात॑यो॒ऽर्वाग॑व॒सा ह॑वनश्रुता॒ ग॑तम् ॥३॥

भा०—जब (भूम्याः अन्ताः) भूमि के प्रान्त भाग (ध्वसिराः सम् अदृक्षन्त) सब नष्ट भ्रष्ट दिखाई देवें (दिवि घोषः आरुहत्) आकाश या पृथ्वी भर में बड़ा कोलाहल गूंज रहा हो और (अरातयः) शत्रु लोग (जनानाम् उप) राष्ट्रवासी मनुष्यों के पास तक और (माम् उप अस्थुः) मुझ प्रजा वर्ग तक आ पहुंचें ऐसी दशा में भी हे (इन्द्रा-वरुणा) शत्रु के नाशक और वारक जनो (हवन-श्रुता) आह्वान पुकार सुनने वाले आप दोनों दयार्द्र-भाव होकर (अवसा आगतम्) रक्षा-सामर्थ्य सहित प्राप्त होओ। अथवा—भूमि के अन्त दिगन्त पराजित दीखें, आकाश भूमि भर में (घोषः) जयघोष उठे। (जनानाम् अरातयः) राष्ट्रवासी जनों में विद्यमान अराति, दुष्ट, दूसरों का लेकर न देने वाले अपराधी

लोग मेरे पास उपस्थित हों, पकड़ कर हाज़िर किये जावें, तब हे (हवन-श्रुता) जनता की पुकार, उनके वचनों का श्रवण करते हुए (अवसा) न्याय रक्षा द्वारा (अर्वाक् आ गतम्) आप दोनों सब के सन्मुख आओ।

इन्द्रा॑वरुणा व॒धना॑भिरप्र॒ति भे॒दं व॒न्वन्ता॒ प्र सु॒दास॑मावतम् ।
ब्रह्मा॑ण्येषां शृणुतं॒ हवी॑मनि स॒त्या तृत्सू॑नामभवत्पु॒रोहि॑तिः ॥४॥

भा०—हे (इन्द्रावरुणा) शत्रु का हनन करने और वारण करने वाले वीर पुरुष वर्गों ! आप दोनों (वधनाभिः) शत्रु को दण्ड देने और नाश करने वाली नीतियों से और सेनाओं से (अप्रति) अप्रत्यक्ष रूप से (भेदं) शत्रु को छिन्न भिन्न और फूट फाट (वन्वन्ता) करते हुए वा (भेदं वन्वन्ता) राष्ट्र भेदकशत्रु को नाश करते हुए (सु-दासम्) शुभ दानशील, उत्तम भृत्यादि से युक्त राजा की (प्र अवतम्) अच्छी प्रकार रक्षा करो। (हवीमनि) परस्पर प्रतिस्पर्द्धा करने योग्य संग्राम में (एषां) इन विद्वान् प्रजाजनों के (ब्रह्माणि) उत्तम ज्ञान-वचनों को (शृणुतं) श्रवण करो। (तृत्सूनां) शत्रुओं को मार गिराने वाले इन वीर सैन्यों की और संशयोच्छेदी विद्वानों की (पुरोहितिः) सबसे आगे स्थिति और अग्रासन पदपर विराजना (सत्या अभवत्) सत्य, सफल और सज्जनों के लिये हितकारी हो।

इन्द्रा॑वरुणाव॒भ्या त॑पन्ति मा॒घान्य॒र्यो व॒नुषा॒मरा॑तयः ।
यु॒वं हि वस्व॑ उ॒भय॑स्य॒ राज॒थोऽध॑ स्मा नोऽवतं॒ पार्ये॑ दि॒वि ॥५॥४॥

भा०—हे (इन्द्रावरुणा) इन्द्र, शत्रुहन्तः ऐश्वर्यवन् ! हे वरुण शत्रुओं के वारक एवं प्रजा द्वारा वरणीय ! (अर्यः) शत्रु के किये (अघानि) पापाचार और (वनुषाम्) हिंसक जनों या मांग कर ले लेने वालों में से भी (अरातयः) दूसरों का सर्वस्व या अधिकार हर कर न देने वाले जन ही (मा) मुझ राष्ट्र वासी जन को (अभि आ तपन्ति) सब ओर से सताया करते हैं। (युवं हि) आप दोनों निश्चय से (उभयस्य) मुझ प्रजाजन और मुझे सताने वाले (वस्वः) राष्ट्र में बसने वाले दोनों के

अपर (राजथः) राजावत् शासन करो (अध) इसलिये आप दोनों (पार्ये दिवि) पालन करने वाले शासन व्यवहार के पद पर स्थित होकर (नः अवतं स्म) हमारी रक्षा किया करो।

युवां हवन्त उभयास आजिष्विन्द्रं च वस्वो वरुणं च सातये।
यत्र राजभिर्दशभिर्निबाधितं प्र सुदासमावतं तृत्सुभिः सह॥६॥

भा०—(यत्र) जिन संग्रामों में (दशभिः राजभिः) दशों राजाओं वा तेजस्वी पुरुषों से (नि बाधितम्) अति पीड़ित (सुदासं) उत्तम दानशील पुरुष को (तृत्सुभिः) शत्रु को काट गिरा देने वाले वीर नरों के साथ (प्र अवतम्) अच्छी प्रकार रक्षा करते हो उन (आजिषु) युद्धों में (इन्द्रं च) ऐश्वर्यवान् और (वरुणं च) श्रेष्ठ (युवां) आप दोनों को (वस्वः सातये) धनैश्वर्यादि के लाभ के लिये (उभयासः) वादी प्रतिवादी दोनों पक्ष के लोग (हवन्ते) पुकारते हैं, दोनों आप से न्याय देने की प्रार्थना करते हैं।

दश राजानः समिता अयज्यवः सुदासमिन्द्रावरुणा न युयुधुः।
सत्या नृणामद्मसदामुपस्तुतिर्देवा एषामभवन्देवहूतिषु॥७॥

भा०—(अयज्यवः) दान न देने वाले, परस्पर सत्संग देव-पूजा और संगति न करने वाले (दश राजानः) दश तेजस्वी पुरुष भी (सम् इताः) एक साथ आकर (सुदासम् न युयुधुः) उत्तम दानशील तथा उत्तम रीति से शत्रु का नाश करने में कुशल राजा के साथ युद्ध नहीं कर सकते। (अद्मसदाम्) एक समान अन्न के आश्रय पर स्थित (नृणाम्) मनुष्यों की (उपस्तुति) समीप २ बैठ कर की हुई प्रार्थना भी (सत्या) सत्य फलजनक होती है। (एषाम्) इनके (देवहूतिषु) विद्वान् वीरों को आह्वान करने योग्य अवसरों, यज्ञों और संग्रामों के अवसरों पर (देवाः) विद्वान् और वीर पुरुष (अभवन्) सहायक होते हैं।

दाशराज्ञे परियत्ताय विश्वतः सुदासं इन्द्रावरुणावशिक्षतम् ।
श्वित्यञ्चो यत्र नमसा कपर्दिनो धिया धीवन्तो असपन्त तृत्सवः ॥ ८ ॥

भा०—(परियत्ताय) सब तरफ से नियन्त्रित, (दाश-राज्ञे) दशों राजाओं के बीच प्रबल होकर विद्यमान (सुदासे) उत्तम दानशील राजा को हे (इन्द्रावरुणा) ऐश्वर्यवन् हे शत्रुवारणकारी मनुष्य वर्गों ! वा अध्यक्ष जनो ! (अशिक्षतम्) आप दोनों ज्ञान, बल प्रदान करो (यत्र) जिसके अधीन (श्वित्यञ्चः) श्विति अर्थात् उज्वल यश या समृद्धि को प्राप्त (कपर्दिनः) उत्तम जटाजूट वाले वा उत्तम धन सम्पन्न और (धीवन्तः) बुद्धिमान् और कर्मकुशल (तृत्सवः) शत्रु नाशकारी, संशयछेदी, त्रिविध ऐश्वर्यों के स्वामी लोग (नमसा) आदर पूर्वक अन्न और वज्र शस्त्रादि सहित (असपन्त) समवाय बनाकर रहते हैं। [कपर्दिनः—कपर्दः—जटा-जूटः अथवा कपर्दः धनम् । कौड़ी इत्युपलक्षणम् । तद्वन्तः] पैसे वाले । अर्थात् जिसके अधीन धनाढ्य, कीर्त्तिमान, समृद्ध, बुद्धिमान और वीर पुरुष सब एकत्र हो जायं उसी प्रकार उत्तम वृत्तिदाता, राजा 'इन्द्र वरुण' पदाध्यक्ष बलैश्वर्य दें। अध्यात्म में—देह में दश प्राण, दश इन्द्रियगण दश राजा हैं, वे दस स्थानों पर पृथक् विद्यमान हैं। परस्पर उनका कोई सीधा सम्बन्ध या संगति नहीं होने से 'अयज्यु' हैं। एक ही साथ वे हमें प्राप्त (सम्-इताः) हैं। आत्मा 'सुदास' है प्राण अपान इन्द्र-वरुण हैं। सुखप्रद ज्ञान तन्तु गण तृत्सु हैं। वे सुखपूर्वक होने से 'कपर्दि' हैं। वे 'नमसा धिया' अन्न और बुद्धि के बल से आत्मा के अधीन रहते हैं।

वृत्राण्यन्यः समिथेषु जिघ्नते व्रतान्यन्यो अभि रक्षते सदा ।
हवामहे वां वृषणा सुवृक्तिभिरस्मे इन्द्रावरुणा शर्म यच्छतम् ९

भा०—हे (इन्द्रा-वरुणा) ऐश्वर्यवन् वा शत्रुहन्तः ! हे वरुण ! दुष्ट और दुष्ट स्वभावों को वारण करने हारे ! आप दोनों में से (अन्यः)

एक तो (समिथेषु) संग्राम और उपकारक कामों वा यज्ञों में (वृत्राणि जिघ्नते) बढ़ते, विघ्नकारी पुरुषों को दण्ड देता है और (अन्यः) दूसरा विद्वान् आचार्य—(सदा व्रतानि अभि रक्षते) सदा व्रतों की रक्षा करता है। हम लोग (सुवृक्तिभिः) उत्तम, आदरपूर्वक वरण क्रियाओं और स्तुतियों से (वां हवामहे) आप दोनों को बुलाते हैं, अपनाते हैं और धन, मान आदि प्रदान करते हैं। हे इन्द्र ! हे वरुण ! सेना-सभाध्यक्षो ! (अस्मे) हमें आप दोनों (शर्म यच्छतम्) सुख प्रदान करो। 'सुवृक्तिः'—अत्र ककारोपजनश्छान्दसः ॥

अस्मे इन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा द्युम्नं यच्छन्तु महि शर्म सप्रथः।
अवध्रं ज्योतिरदितेर्ऋतावृधो देवस्य श्लोकं सवितुर्मनामहे १०।५

भा०—व्याख्या देखो सू० ८२। म० १०॥ इति पञ्चमो वर्गः ॥

[८४]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ४, ५ निचृत् त्रिष्टुप्। ३ त्रिष्टुप्॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

आ वां राजानावध्वरे ववृत्यां हव्येभिरिन्द्रावरुणा नमोभिः।
प्र वां घृताची बाह्वोर्दधाना परि त्मना विषुरूपा जिगाति ॥१॥

भा०—हे (इन्द्रावरुणा) 'इन्द्र' ऐश्वर्यवन् हे 'वरुण' सर्वश्रेष्ठ ! (राजानौ वां) दीप्तियुक्त राजावत् शासन करने वाले आप दोनों को मैं (हव्येभिः नमोभिः) अन्नों और शस्त्रों तथा उत्तम वचनों और आदर युक्त विनय कार्यों से (ववृत्यां) वरण करता हूं। (विषु-रूपा घृताची) बहुत प्रकार की तेजस्विनी वा स्नेहयुक्त प्रजा (वां) आप दोनों को (बाह्वोः प्रदधाना) अपनी बाहुओं के समान शत्रुओं को बाधन या पीड़ा देने वाले प्रधान पदों पर स्थापित करती हुई, पुरुष को स्त्री के समान (परिजिगाति) सब प्रकार से प्राप्त होवे। जैसे स्त्री (वि-सु-रूपा)

विशेष सुन्दरी, (घृताची) घृताक्त, अंगप्रत्यंग स्नातानुलिप्त होकर पुरुष को (बाह्वोः प्रऊर्वाना) अपने बाहुपाशों में लेती हुई उसे (त्मना) स्वयं आत्मा से (परि जिगाति) सब प्रकार अपनाती है उसी प्रकार से प्रजा भी अनुरक्त होकर उक्त इन्द्र-वरुण दोनों को बाहुवत् सैन्यादि के अध्यक्ष पद पर नियुक्त कर सर्वात्मना अपनावे । घृताचीबाहुविपुलपादि पदानि क्लिष्टानि ।

युवो राष्ट्रं बृहदिन्वति द्यौर्यौ सेतृभिररज्जुभिः सिनीथः ।
परि नो हेळो वरुणस्य वृज्या उरुं न इन्द्रः कृणवदु लोकम् ॥२॥

भा०—(यौ) जो आप दोनों (अरज्जुभिः) बिना रस्सियों के (सेतृभिः) बन्धन करने वाले राज नियमों और व्रत बन्धनों से (सिनीथः) बांध लेते हो (युवोः) उन आप दोनों का (राष्ट्रम्) राष्ट्र (बृहत्) बड़ा होकर (द्यौः) सूर्य के समान देदीप्यमान होकर (इन्वति) सुख समृद्धि से सब को प्रसन्न करता है । (वरुणस्य हेडः) श्रेष्ठ जन का हमारे प्रति अनादर या क्रोध का भाव (नः परि वृज्याः) हम से दूर रहे । (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष राजा वा सेनापति (नः) हम प्रजाजन के लिये (उरुं लोकं कृणवत्) रहने के लिये विशाल लोक करे, नाना भूमियों को बसने योग्य बनावे ।

कृतं नो यज्ञं विदथेषु चारुं कृतं ब्रह्माणि सूरिषु प्रशस्ता ।
उपो रयिर्देवजूतो न एतु प्र णः स्पार्हाभिरूतिभिस्तिरेतम् ॥३॥

भा०—हे विद्वान्, ऐश्वर्यवान्, श्रेष्ठ और दुःखादि वारण करने वाले जनो ! आप दोनों (नः विदथेषु) हमारे गृहों में (चारुं यज्ञं कृतं) उत्तम यज्ञ सम्पादन करो । और (सूरिषु) विद्वानों के निमित्त (प्रशस्ता ब्रह्माणि कृतम्) उत्तम २ धन प्रदान करो । (नः) हमें (देवजूतः रयिः) विद्वानों से उपदेश किया और उनके सेवन योग्य धनैश्वर्य (नः उपो

एतु) हमें सदा प्राप्त हो । आप दोनों (स्पार्हाभिः) चाहने योग्य उत्तम २ रक्षाओं द्वारा (प्र तिरेतम्) बढ़ाओ ।

अस्मे इन्द्रावरुणा विश्ववारं रयिं धत्तं वसुमन्तं पुरुक्षुम् ।
प्र य आदित्यो अनृता मिनात्यमिता शूरो दयते वसूनि ॥ ४ ॥

भा०—(इन्द्रा वरुणा) हे ऐश्वर्यवन् ! हे वरण करने योग्य ! आप दोनों (अस्मे) हमें (पुरु-क्षुम्) बहुत से अन्नसम्पदा से युक्त और (वसुमन्तं) बहुत सुवर्णादि ऐश्वर्य से युक्त (विश्ववारं) सब से वरने योग्य सब कष्टों को दूर करने में समर्थ (रयिं) ऐश्वर्य (धत्तं) प्रदान करो । (यः) जो (आदित्यः) सूर्य के समान तेजस्वी और 'अदिति' अखण्ड शासन नीति में कुशल और 'अदिति' भूमिका पुत्रवत् प्रिय वा शासक होकर (अनृता) प्रजा के 'ऋत' अर्थात् वेद से विपरीत और असत्य व्यवहारों को (प्र मिनाति) नष्ट करता है वह (शूरः) शूरवीर पुरुष (अमिता वसूनि दयते) अमित धन-सम्पत्ति देता और उसकी रक्षा करता है ।

इयमिन्द्रं वरुणमष्ट मे गीः प्रावत्तोके तनये तूतुजाना ।
सुरत्नासो देववीतिं गमेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥५॥६॥

भा०—(मे) मेरी (इयं गीः) यह वाणी (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान्, शत्रुनाशक और (वरुणं) श्रेष्ठ पुरुष को (अष्ट) लक्ष्य करके हो । वह (तूतुजाना) ज्ञान का बराबर प्रदान करती हुई (तनये तोके) पुत्र पौत्रादि तक को (प्र अवत्) प्राप्त हो । (वयम्) हम (सु-रत्नासः) शुभ रत्नों और रम्य गुणों को धारण करते हुए (देववीतिं गमेम) विद्वानों के ज्ञान प्रकाश, रक्षा और उनकी सत्कामना को (गमेम) प्राप्त करें । हे विद्वान् लोगो ! (यूयं नः सदा स्वस्तिभिः पात) आप लोग हमें सदा उत्तम आशीर्वादों और सुखजनक उपायों से रक्षा करें । इति षष्ठो वर्गः ॥

[८५]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्रावरुणौ देवते ॥ छन्दः—१, ४ आर्षी त्रिष्टुप् । २, ३, ५ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

पुनीषे वामरक्षसं मनीषां सोममिन्द्राय वरुणाय जुह्वत् ।
घृतप्रतीकामुषसं न देवीं ता नो यामन्नुरुष्यतामभीके ॥ १ ॥

भा०—हे इन्द्र ! वरुण ! हे ऐश्वर्यवन् ! हे श्रेष्ठ जन ! मैं (इन्द्राय वरुणाय) इन्द्र और वरुण, ऐश्वर्यवान् श्रेष्ठ पुरुष के लिये (सोमं जुह्वत्) ऐश्वर्य प्रदान करता हुआ (वाम्) आप दोनों की (अरक्षसं मनीषाम्) दुष्ट पुरुषों के संग से रहित बुद्धि को (पुनीषे) पवित्र करूं। राजा और सेनापति को प्रजा पर्याप्त धन देकर उसके चित्त से प्रजा को लूटने खसोटने की राक्षसी प्रवृत्ति को दूर करे। (घृत-प्रतीकाम्) स्नेह से सब को उत्तम प्रतीत होने वाली (उषसं देवीं) शत्रु को दग्ध करने और विजय की कामना करने वाली उस मन की प्रज्ञा को मैं स्वच्छ करूं। (ता) वे दोनों (अभीके यामन्) युद्धप्रयाण काल में (नः उरुष्यताम्) हमारी रक्षा करें, आधिदैविक पक्ष में इन्द्र वायु, वरुण जल इनको पवित्र करने के लिये मैं यजमान पुरुष 'सोम' ओषधि समूह को अग्नि में आहुति देकर, हे स्त्री पुरुषो ! आप दोनों की दुष्ट संग से रहित बुद्धि को पवित्र करूं। घृत से प्रदीप्त दाह करने वाली 'उषाः' अग्नि शिखा के समान उज्ज्वल करूं। आप दोनों (अभीके यामन् उरुष्यताम्) परस्पर समीप के प्रेम-विवाहबन्धन में बंधकर परस्पर की रक्षा करो।

स्पर्धन्ते वा उ देवहूये अत्र येषु ध्वजेषु दिद्यवः पतन्ति ।
युवं ताँ इन्द्रावरुणावमित्रान्हतं पराचः शर्वा विषूचः ॥ २ ॥

भा०—(अत्र) इस (देव-हूये) मनुष्यों के परस्पर स्पर्धा और ललकार के अवसर रूप संग्राम में लोग (स्पर्धन्ते उ वा) परस्पर

संहार करते हैं तब (येषु ध्वजेषु) जिन ध्वजाओं पर (दिद्यवः पतन्ति) चमकती विजुलियों के समान हमारे शस्त्र पड़ते हैं हे (इन्द्रा वरुणा) शत्रुहन्तः हे शत्रुवारक ! (युवं) तुम दोनों (तान् अमित्रान्) उन शत्रुओं को (हतम्) मारो और (विषूचः पराचः शर्वा) विरुद्ध पक्ष के शत्रुओं को शत्रुहिंसक शस्त्रसेना से दूर मार भगा।

आपश्चिद्धि स्वयशसः सदःसु देवीरिन्द्रं वरुणं देवता धुः।
कृष्टीरन्यो धारयति प्रविक्ता वृत्राण्यन्यो अप्रतीनि हन्ति ॥३॥

भा०—(स्व-यशसः) अपने धनैश्वर्य के द्वारा यश प्राप्त करने वाली (देवीः) दानशील, (देवता) मानुष प्रजाएं (सदःसु) सभा-भवनों वा उत्तम २ पदों पर (इन्द्रं वरुणं धुः) ऐश्वर्यवान् और श्रेष्ठ पुरुष को अच्छी प्रकार मान-आदरपूर्वक स्थापित करें। उन दोनों में से (एकः) एक इन्द्र नाम अध्यक्ष (प्रविक्ताः) अच्छी प्रकार सुविभक्त (कृष्टीः धारयति) बलवान् हलाकर्षित भूमियों को वृषभ या मेघ के समान प्रजाओं को धारण करता है और (अन्यः) दूसरा वरुण शत्रुवारक अध्यक्ष (अप्रतीनि वृत्राणि) अप्रत्यक्ष शत्रुओं को भी दण्डित करे। अर्थात् इन्द्र, वरुण दोनों में से एक का काम प्रजा को विभक्त कर शासनव्यवस्था करना और दूसरे का काम दुष्टों का दमन करना है। १. दीवानी, २. फौजदारी विभाग।

स सुक्रतुर्ऋतचिदस्तु होता य आदित्य शवसा वां नमस्वान्।
आववर्तदवसे वां हविष्मानसदित्स सुविताय प्रयस्वान् ॥ ४ ॥

भा०—हे (आदित्याः) अदिति, अखण्ड राजनीति और भूमि के हितैषी जनो ! (यः) जो (होता) दानशील पुरुष (शवसा) अपने बल से तुम दोनों के प्रति (नमस्वान्) उत्तम अन्नादि सत्कार से युक्त होता है (सः) वह (सुक्रतुः) शुभ कर्म करने हारा और (ऋतचित् अस्तु) सत्य ज्ञान और पुण्य ज्ञान को उपार्जन करने वाला हो। और जो (अवसे) अपनी रक्षा के लिये (वां आववर्त्तत्) तुम दोनों को प्राप्त

होता है, वह (प्रयस्वान्) प्रयत्नशील होकर (सुविताय इत् आव०) सुख प्राप्त करने में समर्थ (हविष्मान्) उत्तम अन्नसम्पन्न हो। इसी प्रकार वो आहुतिदाता ज्ञान और बल से अन्नवान् होकर उत्तम यज्ञ का कर्त्ता और (ऋत-चित्) वेद द्वारा यज्ञचयन करता है सूर्य, वायु और वेद से हविष्मान् हो उत्तम फल प्राप्त करने में समर्थ और यत्नशील होता है।

इयमिन्द्रं वरुणमष्ट मे गीः प्रावत्तोके तनये तूतुजाना।
सुरत्नासो देववीतिं गमेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥५॥७॥

भा०—व्याख्या देखो सूक्त ५। ४ ॥ इति सप्तमो वर्गः ॥

[८६]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ वरुणो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ५, ८ निचृत् त्रिष्टुप्।
२, ७ विराट् त्रिष्टुप्। ६ आर्षी त्रिष्टुप् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

धीरा त्वस्य महिना जनूंषि वि यस्तस्तम्भ रोदसी चिदुर्वी।
प्र नाकमृष्वं नुनुदे बृहन्तं द्विता नक्षत्रं पप्रथच्च भूम ॥ १ ॥

भा०—वरुण परमेश्वर का स्वरूप । (अस्य महिना) इस के महान् सामर्थ्य से (जनूंषि) जन्म लेने वाले समस्त प्राणि वर्ग (धीरा) बुद्धि और कर्म द्वारा प्रेरित होते हैं। (यः) जो (चित्) पूजनीय (उर्वी रोदसी) विशाल सूर्य या आकाश और भूमि दोनों लोकों को (तस्तम्भ) थामे हुए है, वह ही (बृहन्तं) बड़े भारी (ऋष्वं) महान् (नाकम्) सुखस्वरूप परमानन्द को (प्र नुनुदे) प्रदान करता है, वही बड़े भारी सूर्य को भी चलाता है। वह ही (भूम नक्षत्रं च) बहुत से नक्षत्र गण को (पप्रथत्) विस्तृत करता है।

उत स्वया तन्वा३ सं वदे तत्कदा न्व१न्तर्वरुणे भुवानि।
किं मे हव्यमहृणानो जुषेत कदा मृळीकं सुमना अभि ख्यम् ॥२॥

भा०—(उत) और (स्वया तन्वा) मैं अपने इस देह से (तत्) उसकी (कदा) कब (संवेद) स्तुति करूं, उसके साथ साक्षात् संवाद करूं और (कदा नु) कब मैं (वरुणे अन्तः) उस वरण करने योग्य श्रेष्ठ पुरुष के हृदय में भीतर, वरणीय पति के बीच वधू के समान (भुवानि) एक हो सकूंगा। वह प्रभु, नाथ (अहृणानः) मेरे प्रति अनादर वा कोप से रहित होकर (मे हव्यं) मेरे स्तुतिवचन भेंट को (किं जुषेत) क्यों-कर प्रेम से स्वीकार करेगा। और मैं (कदा) कब (सुमनाः) शुभ चित्त होकर उस (मृडीकं) परम सुखप्रद, दयालु आनन्दमय को (अभि ख्यम्) साक्षात् करूंगा।

पृच्छे तदेनो॑ वरुण दि॒दृक्षूपो॑ एमि चिकि॒तुषो॑ वि॒पृच्छ॑म्।
स॒मा॒नमिन्मे॑ क॒वय॑श्चिदाहुर॒यं ह॒ तुभ्यं॒ वरु॑णो हृणीते ॥ ३ ॥

भा०—हे (वरुण) वरण करने योग्य! सर्वश्रेष्ठ प्रभो! मैं (दिदृक्षु) दर्शन करने का अभिलाषी होकर (तत् एनः पृच्छे) तुझ से वह पाप पूछता हूं जिसके कारण मैं यहां बंधा हूं। मैं (उप-ऽ एमि) जिज्ञासु दर्शनाभिलाषी होकर तेरे समीप आया हूं। और मैं (चिकितुषः) ज्ञानी पुरुषों से भी (वि-पृच्छम्) विविध प्रकार से पूछता रहा हूं। (कवयः चित् ये समानम् इत् आहुः) पूज्य विद्वान् गण सभी मुझे एक समान ही उपदेश करते रहे हैं कि निश्चय से (अयं वरुणः) यह वरुण, सर्वश्रेष्ठ प्रभु ही (तुभ्यं हृणीते) तुझ पर रुष्ट है, तेरा आदर नहीं करता।

किमाग॑ आस वरुण॒ ज्येष्ठं॒ यत्स्तो॒तारं॒ जिघां॑ससि॒ सखा॑यम्।
प्र तन्मे॑ वोचो दूळभ स्वधा॒वोऽव॑ त्वाने॒ना नम॑सा तु॒र इ॑याम् ॥४॥

भा०—हे (वरुण) सर्वश्रेष्ठ! दुष्टों के वारण करने हारे प्रभो! (किम् आगः आस) वह क्या अपराध है? (यत्) जिसके कारण (ज्येष्ठं स्तोतारं) अपने बड़े से बड़े उत्तम स्तुतिकर्त्ता (सखायं) स्नेही मित्र को भी (जिघांससि) दण्ड सा देना चाहता है। हे (दूळभ) दुर्लभ!

हे न नाश होने हारे अविनाशिन्! हे वरुण! सदा दूर २ विद्यमान! हे अन्न-पते, जीवन के स्वामिन्! (मे तत् प्रवोचः) मुझे वह उपाय बतला जिस-से (अनेनाः) निष्पाप होकर (नमसा) भक्तिभाव से विनीत होकर (तुरः) अति शीघ्र चलकर (त्वा अव इयाम्) तुझ तक पहुंच जाऊं। तुझे भली प्रकार जान जाऊं।

अव॑ द्रुग्धानि॒ पित्र्या॑ सृजा॒ नोऽव॒ या व॒यं च॑कृ॒मा त॒नूभिः॑।
अव॑ राजन्पशु॒तृपं॒ न ता॒युं सृ॒जा व॒त्सं न दाम्नो॒ वसि॑ष्ठम् ॥५॥

भा०—हे (राजन्) राजन्! प्रकाशस्वरूप स्वामिन्! प्रभो! तू (नः) हमारे (पित्र्या) पालक माता पिता वा गुरुजनों के दोष के कारण प्राप्त हुए (द्रुग्धानि) तेरे प्रति किये द्रोह आदि अपराधों को (अव सृज) हम से दूर कर। और (वयं) जिन अपराधों को हम (तनूभिः चकृम) इन देहों से करते रहे हैं उनको भी (अव सृज) हम से दूर कर। (तायुं न पशु-तृपं) चोरी करने की नियत से पशु को घासादि खिलाने वाले सन्देह मात्र में बांध लिये गये चोर के समान बन्धन में बंधे मुझ (पशु-तृपं) अपने इन्द्रियरूप पशुओं को भोग विलासों से तृप्त करते हुए (तायुं) तेरे ऐश्वर्य को तेरे बिना पूछे भोगने वाले चोरवत् मुझ (वसिष्ठं) अति उत्तम 'वसु' तुझमें ही बसने वाले तेरे भक्त को तू (दाम्नः वत्सं न) रस्से से बछड़े के समान दयालु पशुपालकवत् (अव सृज) मुझे बन्धन से मुक्त कर।

न स स्वो दक्षो॑ वरुण॒ ध्रुतिः॒ सा सुरा॑ म॒न्युर्वि॒भीद॑को॒ अचि॑त्तिः।
अस्ति॒ ज्याया॒न्कनी॑यस उपा॒रे स्वप्न॑श्च॒नेदनृ॑तस्य प्रयो॒ता ॥६॥

भा०—हे (वरुण) न्यायानुसार सुख दुःख, ऐश्वर्य-अनैश्वर्यादि के विभाजक! न्यायकारिन्! प्रभो! (अनृतस्य) 'ऋत' अर्थात् सत्य, ज्ञानमय, विवेकरहित, असत्य और अविवेकमय दशा को (प्रयोता) ला

देने वाला (सः स्वः दक्षः न) केवल वह अपना कर्म ही नहीं है प्रत्युत और बहुत से कारण हैं जिनसे प्रेरित होकर जीव सत्य सुखों से रहित अनृत, पाप दुःखादि मार्ग में जाता है। वे कारण कौन २ से हैं ? जैसे (१) अपने किये काम तो हैं ही, या (सः स्वः दक्षः) वह स्वयं स्वस्वरूप कर्मकर्त्ता आत्मा। (२) (सा ध्रुतिः सुरा) वह द्रुतगति से जाने वाले जल के समान आत्मा की 'सुरा' अर्थात् सुख से रमण करने की ध्रुति प्रवृत्ति अर्थात् रजोगुणी काम भी एक कारण है। (३) (विभीदकः मन्युः) वह मन्यु, क्रोध जिससे सब प्राणि भय खाते हैं वह भी एक कारण है। (४) (अचित्तिः) चेतना, ज्ञान का न रहना, मोह भी एक कारण है। (५) (कनीयसः उप-आरे) छोटे, अल्पशक्ति वाले जीव के समीप (स्वप्नः चन इत्) अज्ञान में सोते के समान (ज्यायान् अस्ति) बड़ा भी अज्ञानी ही रहता है वह भी उसका बड़ा माता पिता, भाई बन्धु आदि भी स्वयं अज्ञान वा पाप में मूढ़ रहने से दूसरे को मार्ग दिखाने में असमर्थ होता, उसके साथ २ छोटा भी संग दोष से उसी ओर जाता है। कोई भी (अनृतस्य प्रयोता न) असत्य, अज्ञान को दूर करने वाला नहीं होता। अथवा—(अनृतस्य प्रयोता) अज्ञान पापादि का दूर करने वाला (नः सः स्वो दक्षः) न अपना कोई कुशल बन्धु, जन या कर्म है, (न सा ध्रुतिः) न वह दृढ़ता, स्थिरता है कि मैं पाप में न गिरूं, (न सुरा) न वह उत्तम प्रवृत्ति है जो पाप से परे रक्खे, (न मन्युः) न ज्ञान है, (न विभीदकः) न कोई असत्य से भय दिलाने वाला प्रत्यक्ष कारण है, तो है क्या ? केवल (अचित्तिः) अज्ञान ही है। और हे प्रभो ! अब केवल एक सहारा है वह तो (कनीयसः उप आरे) इस छोटे से अल्प शक्ति जीव के समीप (स्वप्नः = सु-अप्नः) उत्तम रूपवान्, कर्मवान् (ज्यायान्) ज्येष्ठ भाई के समान एकमात्र महान् तू परमेश्वर (इत् अस्ति) ही है जो (अनृतस्य प्रयोता) उसके इस सत्य रहित अविवेक को दूर भगाने में समर्थ है।

अरं दासो न मीळ्हुषे कराण्यहं देवाय भूर्णयेऽनागाः ।
अचेतयदचितो देवो अर्यो गृत्सं राये कवितरो जुनाति ॥ ७ ॥

भा०—(अहं) मैं (अनागाः) पाप से रहित होकर (भूर्णये) पालक (देवाय) सर्व सुखदाता, सर्व प्रकाशक परमेश्वर के लिये (मीढुषः दासः न) सर्वदाता स्वामी के दास के समान (अरं कराणि) बहुत कुछ सेवा करूं। वह (देवः) दानशील प्रकाशस्वरूप प्रभु (अर्यः) सब का स्वामी (अचितः) अज्ञानी जनों को (अचेतयत्) सदा ज्ञान प्रदान करता और वह (कवि-तरः) सब से अधिक विद्वान् होकर (गृत्सं) अपने स्तुतिकर्त्ता भक्त को (राये जुनाति) ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये सन्मार्ग पर ले जाता है ।

अयं सु तुभ्यं वरुण स्वधावो हृदि स्तोम उपश्रितश्चिदस्तु ।
शं नः क्षेमे शमु योगे नो अस्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥ ८ ॥

भा०—हे (वरुण) सब कष्टों को वारण करने हारे ! हे (स्वधावः) सब जीवों के स्वामिन् ! हे अन्नपते ! (अयं सः स्तोमः) यह वह स्तुति वचनादि सब (तुभ्यम्) तेरी ही स्तुति के लिये (हृदि चित् उप-श्रितः अस्तु) हृदय में पूजार्थ स्थिर रहे । वह (नः क्षेमे शं उ अस्तु) हमारे धन प्राप्ति काल में तुझे शान्तिदायक ही हो। हे (सदा यूयं नः पात स्वस्तिभिः) विद्वान् जनो ! आप लोग हमें सदा उत्तम आशीर्वचनों और सुखोपायों से रक्षा किया करो । इत्यष्टमो वर्गः ॥

[८७]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ वरुणो देवता ॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप् । २, ३, ५ आर्षी त्रिष्टुप् । ४, ६, ७ त्रिष्टुप् ॥

रदत्पथो वरुणः सूर्याय प्रार्णांसि समुद्रिया नदीनाम् ।
सर्गो न सृष्टो अर्वतीर्ऋतायञ्चकार महीरवनीरहभ्यः ॥ १ ॥

भा०—(वरुणः) सर्वव्यापक परमेश्वर ही (सूर्याय) सूर्य के गमन करने के (पथः) मार्गों को (रदत्) बनाता है। और वही (समुद्रिया) समुद्र की ओर जाने वाले (नदीनां अर्णांसि) नदियों के जलों को बहाता है। (सर्गः न सृष्टः अर्वतीः ऋतायन्) बरसा हुआ जल नीची बहती नदियों को स्वभावतः जाता है उसी प्रकार (सर्गः) समस्त जगत् का बनाने वाला (सृष्टः) समस्त जगत् का स्वामी (अर्वतीः) अधीन समस्त महती शक्तियों और प्रकृति की विकृतियों को (ऋतायन्) ज्ञानपूर्वक सञ्चालित करता हुआ (अहभ्यः महीः अवनीः चकार) दिनों से रात्रियों को पृथक् करता है। अथवा वह (अह्न्यः) न नाश होने वाले जीवों के लिये (महीः अवनीः) बड़ी २ रक्षाकारिणी शक्तियों तथा बड़ी २ पालक अन्नादि द्वारा तृप्तिदायक भूमियों को कर्मफल के भोगार्थ (चकार) बनाता है।

आत्मा ते वातो रज आ नवीनोत्पशुर्न भूर्णिर्यवसे ससवान्।
अन्तर्मही बृहती रोदसीमे विश्वा ते धाम वरुण प्रियाणि ॥२॥

भा०—हे (वरुण) सर्वव्यापक प्रभो ! (वातः रजः) जिस प्रकार महान् वायु धूलि को (आ नवीनोत्) सब तरफ उड़ा देता, प्रेरित करता है। उसी प्रकार (वातः) बलशाली, गतिमान् (ते आत्मा) तेरा व्यापक सामर्थ्य ही (रजः) ब्रह्माण्डों में फैले धूलि कणवत् समस्त लोकों को (आ नवीनोत्) सब ओर संचालित करता है। इसी प्रकार (ते आत्मा वातः) तेरा आत्मा जीव भूत प्राण वायु देह में (रजः आ नवीनोत्) रक्तप्रवाह को सब ओर प्रेरित करता है। (यवसे पशुः न ससवान् भूर्णिः) घास, भूसा आदि पर पलने वाला पशु जिस प्रकार अन्नादि से लदा जाकर स्वामी के भरण पोषण करने में समर्थ होता है उसी प्रकार यह (वातः) वायु वा (ते आत्मा) तेरा महान् सामर्थ्य ही (ससवान्) अन्नादि भोग्य ऐश्वर्य से समृद्ध होकर

(भूर्णिः) समस्त विश्व का भरण पोषण करने में समर्थ होता है। (इमे बृहती मही रोदसी अन्तः) इन बड़ी, विशाल, सुख देने वाले आकाश-भूमि या सूर्य-भूमि दोनों के बीच में (ते) तेरे (विश्वा) समस्त (प्रियाणि) प्रिय लगने वाले (धाम) तेज और विश्व को धारण करने वाले वा जीवों के आधारभूत लोक वा नाना सामर्थ्य विद्यमान हैं।

परि स्पशो वरुणस्य स्मदिष्टा उभे पश्यन्ति रोदसी सु-मेके।
ऋतावानः कवयो यज्ञधीराः प्रचेतसो य इषयन्त मन्म ॥ ३ ॥

भा०—(वरुणस्य स्पशः स्मदिष्टाः) जिस प्रकार दुष्टों के निवारक राजा के 'स्पश्'—गुप्तचर सिपाही उत्तम अभिप्रायवान् होकर (उभे सु-मेके पश्यन्ति) ऊपर से देखने में अच्छे दोनों ही प्रकार के अच्छे और बुरे शास्य शासक वर्गों को देखते हैं इसी प्रकार (ये) जो (प्र-चेतसः) उत्तम चित्त वाले, उत्तम ज्ञानवान् पुरुष (मन्म) मनन करने योग्य ज्ञान की (इषयन्त) अन्नवत् चाहना करते और औरों को अन्नवत् प्रदान करना चाहते हैं वे (ऋतावानः) सत्य ज्ञानमय वा वेदमय तप का सेवन करते हुए, (यज्ञ-धीराः) यज्ञ, त्यागयुक्त कर्म को करते और उसका अन्यों को उपदेश करते हुए वा, 'यज्ञ', परमोपास्य प्रभु की ओर अपनी बुद्धि और मन को प्रेरते और उसी को सर्वात्मना धारण करते हुए, (वरुणस्य स्पशः) उस प्रभु के मानो सिपाहियों के समान उसकी बनाई सृष्टि और उसके नियम व्यवस्थाओं का साक्षात् करने वाले, वा उस प्रभु का सदा हुक्म बजाने में तत्पर प्रभु के सेवक, (स्मदिष्टाः) उत्तम आचारवान्, एक साथ समान इष्ट, याग वा समान एक साथ उत्तम लक्ष्य रख कर कार्य करने वाले होकर (उभे) दोनों इन (सु-मेके) सुखप्रद मेघादि से युक्त (रोदसी) सूर्य और भूमि के समान (सुमेके) शुभ वीर्यसेचन में समर्थ उत्तम सन्तानोत्पादक माता पिता को ही सृष्टि का कारण यथावत् (परि पश्यन्ति) देखते हैं।

उवाच मे वरुणो मेधिराय त्रिः सप्त नामाघ्न्या बिभर्ति ।
विद्वान्पदस्य गुह्या न वोचद्युगाय विप्र उपराय शिक्षन् ॥ ४ ॥

भा०—(मे मेधिराय) मुझ बुद्धिमान् पुरुष को (वरुणः) सर्व वरणीय श्रेष्ठ प्रभु (उवाच) उपदेश करता है कि (अघ्न्या) कभी नाश न होने वाली, परमेश्वरी या प्रकृति शक्ति (त्रिः सप्त नाम) तीन, सात अर्थात् २१ स्वरूपों को (बिभर्त्ति) धारण करती है। (विप्रः विद्वान्) विविध विद्याओं से पूर्ण विद्वान् पुरुष (उपराय) समीप स्थित (युगाय) मनोयोग से विद्या ग्रहण करने वाले शिष्य को (शिक्षन्) उपदेश देता हुआ (पदस्य) परमप्राप्य ब्रह्म पद के (गुह्या न) परम रहस्यों का रहस्य बातों के समान ही (वोचत्) उपदेश करे।

'त्रिः-सप्त नाम'—ईश्वरीय शक्ति या प्रकृति के २१ स्वरूप 'ये त्रिषप्ताः०' (अथर्व० १ । १ । १ ॥) इस मन्त्र के भाष्य में स्पष्ट कहे हैं। पञ्च-तन्मात्रा, पञ्च, स्थूलभूत, ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय और मन । यद्वा, यहां त्रिः । सप्त । दो पद पृथक् रहें । अतः—इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतेऽदिते सरस्वति, महि विश्रुति एता ते अघ्न्ये नामानि देवेभ्यो मा सुकृतं ब्रूतात् ॥ यजु० ८ । ४२ ॥ वेद ने ये १० नाम अघ्न्या के कहे हैं। यहां वे ही (त्रिः = ३ + सप्त ७ = १०) नाम अभीष्ट हैं। 'त्रि' इत्यस्य प्रथमैकवचने त्रिः॥ अथवा सुपां सुपो भवन्तीति जसः स्थाने सुः । त्रिः त्रयः, सप्त च मिलित्वा दश नामानि ।

तिस्रो द्यावो निहिता अन्तरस्मिन्तिस्रो भूमीरुपराः षड्विधानाः ।
गृत्सो राजा वरुणश्चक्र एतं दिवि प्रेङ्खं हिरण्ययं शुभे कम् ॥५॥

भा०—(तिस्रः द्यावः) तीनों लोक, भूमि, अन्तरिक्ष और उच्चतम आकाश में (अस्मिन् अन्तः निहिताः) इस सब के आच्छादक वरुण परमेश्वर के ही भीतर स्थित हैं। और (तिस्रः भूमीः) तीनों भूमियां (उपराः) एक दूसरे के समीप स्थित (षड् विधानाः) छः छः प्रकार के ऋतु आदि

विधानों सहित वे भी उसके ही भीतर हैं। (गृत्सः) समस्त ज्ञान का उपदेष्टा (राजा) सर्वोपरि शासक (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ, सब से गुरु रूप से वरण करने योग्य प्रभु ही (दिवि) आकाश में (प्रेङ्खं) उत्तम गति से जाने वाले (एतं) उस (हिरण्ययम्) तेजोमय सूर्य को, अन्तरिक्ष में उत्तम गतिमान्, हित, रमणीय रूप वायु को और भूमि तेजोमय अग्नि को (शुभे) दीप्ति, जल और कान्ति के लिये (चक्रे) बनाता है। कं पादपूरणः।

अव॒ सिन्धुं॒ वरु॑णो॒ द्यौरि॑व स्थाद्द्र॒प्सो न श्वे॒तो मृ॒गस्तुवि॑ष्मान्।
ग॒म्भी॒रशं॑सो॒ रज॑सो वि॒मानः॑ सुपा॒रक्ष॑त्रः स॒तो अ॒स्य राजा॑ ॥६॥

भा०—(द्यौः इव सिन्धुं) सूर्य जिस प्रकार अकेला समस्त आकाश में व्यापता है उसी प्रकार वह परमेश्वर भी (द्यौः) तेजस्वरूप, (वरुणः) सर्वव्यापक होकर सिन्धु अतिवेग से जाने वाले प्रकृति के बने जगत्-प्रवाह को (अव स्थात्) व्यवस्थित करता है। वह (द्रप्सः न श्वेतः) जल बिन्दुवत् श्वेत, स्वच्छ एवं रसस्वरूप कान्तिमय है। वह (मृगः) सिंहवत् बलवान् वा, (मृगः) ज्ञानी जनों द्वारा खोजने योग्य और (मृगः) अति शुद्ध, पावन स्वरूप, (तुविष्मान्) अति बलशाली, सर्व शक्तिमान् है। वह (गम्भीर-शंसः) गंभीर समुद्र के समान अगाध और प्रशंसा करने योग्य, वेदमय गम्भीर ज्ञान का उपदेष्टा, (रजसः विमानः) इस समस्त लोक समूह का विशेष निर्माता और ज्ञाता है, वह (सुपार-क्षत्रः) सुख से सर्वपालक बलैश्वर्यवान्, (अस्य सतः राजाः) इस सत्, व्यक्त संसार का राजावत् शासक है।

यो मृ॒ळया॑ति च॒क्रुषे॑ चि॒दागो॑ व॒यं स्या॑म॒ वरु॑णे॒ अना॑गाः।
अनु॑ व्र॒तान्यदि॑तेर्ऋ॒धन्तो॑ यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥७॥९॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर (आगः चक्रुषे चित्) पाप, अपराध करने वाले के भले के लिये ही (मृडयाति) उस पर दया करता है,

उस (वरुणे) सर्वश्रेष्ठ प्रभु के अधीन हम (अनागाः स्याम) निष्पाप होकर रहें। हम उस (अदितेः) अखण्ड शासक प्रभु के (व्रतानि अनु) व्रतों, नियमों के अनुकूल (ऋधन्तः) समृद्ध होते हैं। हे विद्वान् जनो ! आप लोग (यूयं नः स्वस्तिभिः सदा पात) हमें उत्तम आशीर्वचनों से सदा पालन करो। इति नवमो वर्गः ॥

[८८]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ वरुणो देवता ॥ छन्दः—१, २, ३, ६ निचृत् त्रिष्टुप्। ४, ५, ७ विराट् त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

प्र शुन्ध्युवं वरुणाय प्रेष्ठां मतिं वसिष्ठ मीळ्हुषे भरस्व ।
य ईमर्वाञ्चं करते यजत्रं सहस्रामघं वृषणं बृहन्तम् ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर (ईम्) इस (अर्वाञ्चं) अभिमुख आये (यजत्रं) दानशील, आत्मसमर्पक और सत्संगति करने वाले पुरुष को (सहस्रमघं) सहस्रों धनों से सम्पन्न, (वृषणं) बलवान्, मेघवत् उदार और (बृहन्तम् करते) बड़ा बना देता है उस (वरुणाय) सर्वश्रेष्ठ, सब को ऐश्वर्य प्रदान करने वाले (मीढुषे) ऐश्वर्यों की प्रजाजनों पर मेघवत् निष्पक्षपात होकर वृष्टि करने वाले, सब के सेचक और वर्धक परमेश्वर के निमित्त (प्रेष्ठां) अति उत्तम, प्रिय (मतिं) स्तुति और बुद्धि का (प्र भरस्व) प्रयोग कर।

अधा न्वस्य सन्दृशं जगन्वानग्नेरनीकं वरुणस्य मंसि ।
स्व१र्यदश्मन्नधिपा उ अन्धोऽभि मा वपुर्दृशये निनीयात् ॥२॥

भा०—(अध नु) और मैं (अस्य) इस (अग्नेः) तेजोमय (वरुणस्य) सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर के विषय में (जगन्वान्) ज्ञान प्राप्त कर और उसकी शरण में प्राप्त होकर उसके (संदृशम्) सम्यक् दर्शन रूप (अनीकं) तेज को (मंसि) मनन करता हूं। (यद्) जिस प्रकार (अश्मन् अन्धः

वपुः दृशये निनीयात्) पत्थर या शिला, चक्की आदि में पिसा अन्न या कुटी ओषधि, या (अश्मन् अन्धः) मेघ के आधार पर उत्पन्न अन्न शरीर को उत्तम दर्शन योग्य बना देते हैं उसी प्रकार (यत्) जो (अधिपाः) सर्वोपरिपालक (स्वः) सुखकारी वा सूर्यवत् तेजस्वी है वह (अन्धः) अन्नवत् प्राणों का धारक होकर (दृशये) साक्षात् करने के लिये (मा) मुझे (वपुः) उत्तम रूप, शरीर आदि (निनीयात्) प्राप्त कराता है। अर्थात् प्रभु हमें शरीर भी इसीलिये देता है कि हम उससे साधना करके भगवान् के सुखमय, प्राणप्रद रूप को प्राप्त करने की साधना करें।

आ यद्रुहाव वरुणश्च नावं प्र यत्समुद्रमीरयाव मध्यम्।
अधि यदपां स्नुभिश्चराव प्र प्रेङ्ख ईङ्खयावहै शुभे कम् ॥ ३ ॥

भा०—(अहं) मैं और (वरुणः च) सर्व श्रेष्ठ वरण करने योग्य स्वामी, दोनों दो मित्रों के समान वा पति-पत्नीवत् (यत् नावम् आ रुहाव) जब नाव पर चढ़ें (यत् समुद्रम् मध्यम् ईरयाव) और जब समुद्र के बीच उसको चलावें (यत् अधि अपां) जब जलों के ऊपर (स्नुभिः चराव) गमनशील यानों से विचरें तो (शुभे) अपनी शोभा और (कम्) सुख प्राप्त करने के लिये (प्रेङ्खे) झूले पर (प्रेङ्खयावहे) हम दोनों झूलें। शिष्य और गुरुभक्त और उपास्य दोनों वाणी या स्तुति रूप नौका पर चढ़ते हैं, आनन्द सागर की ओर बढ़ते हैं। (स्नुभिः) नाना साधनों से (अपां अधि) प्राणों के ऊपर वश करते हैं (प्रेङ्खे) परम उत्तम गन्तव्य पद पर शोभा व कल्याण के निमित्त उत्कृष्ट गति को प्राप्त करते हैं।

वसिष्ठं ह वरुणो नाव्याधादृषिं चकार स्वपा महोभिः।
स्तोतारं विप्रः सुदिनत्वे अह्नां यान्नु द्यावस्ततनन्यादुषासः ॥४॥

भा०—(वरुणः) वरण करने योग्य आचार्य (वसिष्ठं) अधीन

वस कर ब्रह्मचर्य पालन करने वाले, उत्तम शिष्य को (नावि) ज्ञान सागर से पार उतारने वाली वेदमयी वाणी रूप नौका के बीच में (ह) अवश्य ही (आधात्) स्थापित करे। वह स्वयं (स्वपाः) उत्तम कर्मशील, सदाचारी होकर (महोभिः) बड़े २ गुणों से (वसिष्ठं ऋषिं चकार) उत्तम ब्रह्मचारी को वेद मन्त्रार्थों को यथार्थ रूप में देखने में समर्थ विद्वान् बना देवे। (विप्रः) विविध विद्याओं से शिष्य को पूर्ण करने वाला आचार्य (अन्हां सु-दिनत्वे) दिनों को शुभ, मङ्गलकारी बनाने के लिये (यात् द्यावा नु यात् उषसः नु) आये दिनों और आयी रातों में भी (स्तोतारं ततनन्) अध्ययनशील शिष्य को और अधिक विस्तृतज्ञान-वान् करता रहे।

क्व१त्यानि नौ सख्या बभूवुः सचावहे यदवृकं पुराचित्।
बृहन्तं मानं वरुण स्वधावः सहस्रद्वारं जगमा गृहं ते ॥ ५ ॥

भा०—हे (वरुण) वरणीय श्रेष्ठतम ! हे (स्वधावः) प्राणपते ! (नौ) हम दोनों के (त्यानि सख्यानि) वे नाना प्रकार के सख्य, मित्रता के भाव (क्व बभूवुः) कहां हुए, (यत्) जो हम दोनों (पुराचित्) मानों पूर्वकाल से (अवृकं) परस्पर चोरी का भाव न रखते हुए (सचावहे) परस्पर मिलकर रहें। हे (वरुण) वरण योग्य ! नाथ ! हे (स्वधावः) और अमृत के स्वामिन् ! हम (बृहन्तं) महान् (मानं) परिमाण वाले (सहस्रद्वारं) सहस्रों द्वार वाले (गृहं जगाम) घर को प्राप्त हों। भक्त उपास्य का पतिपत्नीवत् सख्य प्रदर्शित है। यह जीवों के लिये जगत् बहुत भारी सहस्रों द्वारवाला प्रभु का बनाया गृह है, मुमुक्षु के लिये (मानं) ज्ञानमय महान् 'गृह', ग्रहण योग्य आश्रय, मोक्षपद प्रभु गृह है उसे प्राप्त करें। इसी प्रकार प्रजा के प्रति राजा भी पूर्व परिचित मित्रोंवत् वर्त्ते वे अव्याज, वृकाचार कुटिलतादि से रहित होकर विचरे, प्रजाएं राजा के सहस्रद्वार विशाल गृहवत् राष्ट्र को प्राप्त हों।

य आपिर्नित्यो वरुण प्रियः सन्त्वामागांसि कृणवत्सखा ते।
मा त एनस्वन्तो यक्षिन्भुजेम यन्धि ष्मा विप्रः स्तुवते वरूथम्॥ ६॥

भा०—हे (वरुण) सर्वश्रेष्ठ प्रभो! राजन्! तू (नित्यः) सदा का (आपिः) बन्धु (प्रियः) प्रिय (सन्) होकर हमें सदा प्राप्त है उस (त्वाम्) तेरे प्रति भी (ते सखा) तेरा मित्र यह जीव (आगांसि कृणवत्) नाना अपराध करता है। हे (यक्षिन्) यक्ष 'अर्थात्' पूजा करने वाले भक्त प्रजाजनों के स्वामिन्! हम लोग (ते) तेरे ऐश्वर्य का (एनस्वन्तः) पापी होकर (मा भुजेम) भोग न करें। तू (विप्रः) मेधावी गुरु के समान (स्तुवते) स्तुतिशील को (वरूथं यन्धि) वरण करने और दुःखों, अज्ञानों के दूर करने योग्य उत्तम गृह, सुख, ज्ञान और बल प्रदान कर।

ध्रुवासु त्वासु क्षितिषु क्षियन्तो व्यस्मत्पाशं वरुणो मुमोचत्।
अवो वन्वाना अदितेरुपस्थाद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥७॥१०॥

भा०—परमेश्वर जीवों के कर्म बन्धन किस प्रकार काटता है? हम लोग (आसु ध्रुवासु क्षितिषु) इन नाना धारण करने योग्य, सुव्यवस्थित, कर्म और भोग-भूमियों में (क्षियन्तः) निवास करते हुए वा (क्षियन्तः) ऐश्वर्ययुक्त वा क्षीण होते हुए कभी ऊर्ध्वगति और कभी नीच गति प्राप्त करते हुए, (अदितेः उपस्थात्) भूमि से जिस प्रकार (अवः वन्वानाः) तृप्तिकारक अन्न प्राप्त करते हैं और जिस प्रकार (अदितेः उपस्थात् अवः वन्वानाः) सूर्य से कान्ति दीप्ति प्राप्त करते हैं उसी प्रकार (अदितेः) अखण्ड स्वरूप परमेश्वर से हम (अवः) परम रक्षा, सुख, प्रेम (वन्वानाः) प्राप्त करते रहें। तब वह (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ प्रभु (अस्मत् पाशं) हम से उस पाश को (वि मुमोचत्) छुड़ाता है। (नः यूयं सदा स्वस्तिभिः पात) हे विद्वान् पुरुषो! आप लोग हमारी सदा उत्तम सदुपायों से रक्षा किया करो। इति दशमो वर्गः॥

[८९]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ वरुणो देवता ॥ छन्दः—१—४ आर्षी गायत्री । ५ पादनिचृज्जगती ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

मो षु व॑रुण मृ॒न्मयं॑ गृ॒हं रा॑जन्न॒हं ग॑मम् । मृ॒ळा सु॑क्षत्र मृ॒ळय॑ ॥१॥

भा०—हे (वरुण) सब दुःखों को दूर करने हारे ! सब से उत्तम पद के लिये वरने योग्य ! सर्वश्रेष्ठ ! हे (राजन्) देदीप्यमान ! हे (सुक्षत्र) उत्तम धन, ऐश्वर्य और बल से सम्पन्न ! (अहम्) मैं (मृन्मयं गृहम्) मट्टी के बने गृह के तुल्य कच्चे इस (मृन्मयं = मृत्-मयं) मृत्यु से आक्रान्त शव तुल्य, अवश्य ग्रहण करने योग्य वा आत्मा को पकड़े हुए इस देह को (मोषु गमम्) अब कभी न प्राप्त करूं तो अच्छा हो । हे प्रभो ! (मृड) सब को सुखी करने हारे दयालो ! तू (मृडय) सुखी कर, हम पर दया कर । प्रजा भी राजा से यही चाहे कि वे मट्टी के घरों में न रह कर पक्के मकानों में रहें और समृद्ध और सुखी हों ।

यदेमि॑ प्रस्फु॒रन्नि॑व॒ दृति॒र्न ध्मा॒तो अ॑द्रिवः । मृ॒ळा सु॑क्षत्र मृ॒ळय॑ ॥२॥

भा०—हे (अद्रिवः) मेघवत् शान्तिदायक पुरुषों तथा पर्वतवत् दृढ़ शस्त्रधर पुरुषों के स्वामिन् ! प्रभो ! राजन् ! (यत्) जब भी मैं (प्रस्फुरन् इव) तड़पता हुआ सा, (दृतिः न ध्मातः) मशक या कुप्पे के समान फूला हुआ, विताड़ित फूंक से भरे चर्मवाद्य के समान रोता गाता हुआ (एमि) तेरी शरण आऊं, हे (सुक्षत्र) सुबल ! सुधन ! तू (मृड, मृडय) सुखी कर, तू दया कर !

क्रत्वः॑ समह दी॒नता॑ प्रती॒पं ज॑गमा शुचे । मृ॒ळा सु॑क्षत्र मृ॒ळय॑ ॥३॥

भा०—हे (समह) उत्तम पूज्य ! ऐश्वर्यवन् ! (दीनता) दीन होने के कारण मैं (क्रत्वः) सत् कर्म और सत् ज्ञान के (प्रतीपं) बिलकुल विपरीत चला गया हूं और (शुचे) बड़ा शोक करता हूं । अथवा हे

(शुचे) शुद्ध पवित्र स्वरूप प्रभो! (दीनता) दैन्यभाव (समह = सम्-अह) अवश्य (क्रत्वः प्रतीपं जगम) कर्मशील या उद्योगी पुरुष या उद्योग से विपरीत दिशा में जाता है। हे (सु-क्षत्र) उत्तम धन और बलशालिन्! तू (मृड, मृडय) सुखी कर, हम पर कृपा कर।

अपां मध्ये तस्थिवांसं तृष्णाविदज्जरितारम्।
मृळा सुक्षत्र मृळय ॥ ४ ॥

भा०—हे (सुक्षत्र) उत्तम बल ऐश्वर्य के स्वामिन्! (अपां मध्ये तस्थिवांसं) जलों के बीच में खड़े (जरितारं) रोगादि से जीर्ण होते हुए पुरुष को जैसे (तृष्णा अविदत्) प्यास सताती है उसी प्रकार हे प्रभो! (जरितारं) तेरी स्तुति करने वाले (अपां मध्ये तस्थिवांसं) आप्त पुरुषों के बीच या प्राणों के बीच में रहने वाले मुझ को भी (तृष्णा) भूख प्यास के समान विषय भोगादि की लालसा प्राप्त है, हे प्रभो! हे (मृड, मृडय) सब को सुखी करने हारे! तू मुझे सुखी कर।

यत्किं चेदं वरुण दैव्ये जनेऽभिद्रोहं मनुष्या३श्चरामसि। अचित्ती यत्तव धर्मा युयोपिम मा नस्तस्मादेनसो देव रीरिषः ॥५॥११॥५॥

भा०—हे (वरुण) सर्वश्रेष्ठ प्रभो! (दैव्ये जने) विद्वान् सत्पुरुष के हितकारी जन के ऊपर या उनके बीच रहकर हम (मनुष्याः) मनुष्य (यत् किं च) जो कुछ भी हम (इदं अभिद्रोहं) इस प्रकार का द्रोह आदि (चरामसि) करते हैं और (अचित्ती) विना ज्ञान के (यत् तव धर्मा युयोपिम) जो तेरे बनाये धर्मों या नियमों को उल्लंघन करते हैं, हे (देव) प्रभो! राजन्! (तस्माद् एनसः) उस अपराध या पाप से (नः मा रीरिषः) हमें मत दुःखित कर। ऐसी व्यवस्था कर कि हम उससे भविष्य में दुःख न पावें। अर्थात् हम में से द्रोह के भाव और उपेक्षा, अज्ञान को दूरकर। जिससे न पाप हों न दण्ड मिले इत्येकादशो वर्गः ॥

[९०]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १—४ वायुः । ५—७ इन्द्रवायू देवते ॥ छन्दः—१, २, ७ विराट् त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् । ४, ५, ६ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

प्र वी॒र॒या शुच॑यो दद्रिरे वामध्व॒र्युभि॒र्मधु॑मन्तः सु॒तासः॑ ।
वह॑ वायो नि॒युतो॑ या॒ह्यच्छा॒ पिबा॑ सु॒तस्यान्ध॑सो॒ मदा॑य ॥१॥

भा०—हे (इन्द्र-वायू) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! इन्द्र ! हे वायुवत् बलवान् वीर सेनापते ! (शुचयः) शुद्ध आचारवान्, ईमानदार (वीरया = वीराः) वीर (मधुमन्तः) बलवान्, मधुरप्रकृति, (सुतासः) अपने योग्य पदों पर अभिषिक्त पुरुष (अध्वर्युभिः) प्रजा की हिंसा पीड़ा न चाहने वाले सौम्यवृत्ति विद्वानों सहित (वाम् प्र दद्रिरे) तुम दोनों को प्राप्त होते हैं। हे (वायो) वायुवत् सर्वोपकारिन् बलवन् ! तू (नियुतः) नियुक्त वा सहस्रों अश्वादि सेनाओं को (वह) सन्मार्ग पर ले चल, और (सुतस्य अन्धसः) ऐश्वर्य से समृद्ध, उत्पन्न अन्न को भी (याहि) प्राप्त कर और (मदाय) तृप्ति के लिये उसका (पिब) उपभोग कर ॥

ई॒शा॒नाय॒ प्रहु॑तिं॒ यस्त॒ आन॑ट् शुचिं॒ सोमं॑ शुचिपास्तु॒भ्यं॑ वायो ।
कृ॒णोषि॒ तं मर्त्ये॑षु प्रश॒स्तं जा॒तोजा॑तो जायते वा॒ज्य॑स्य ॥ २ ॥

भा०—हे (वायो) बलवन् ! हे विद्वन् ! (यः) जो (शुचि-पाः) शुद्ध आचार, शुद्ध व्यवहार का पालन करने वाला पुरुष (ते ईशानाय) तुझ सर्वैश्वर्यवान् का (शुचिं सोमं) शुद्ध अन्नादि, शुद्ध ऐश्वर्य, और (प्रहुतिं) सर्वोत्तम दान (आनट्) प्राप्त कराता है, (तं) उसको तू (मर्त्येषु) मनुष्यों के बीच (प्रशस्तं कृणोषि) प्रशस्त, कर्मकुशल एवं उत्तम मान-योग्य बना देता है और वह (जातः-जातः) उत्तम रूप प्रकट हो २ कर (अस्य) इस प्रजाजन के बीच (वाजी) ज्ञानवान्, ऐश्वर्यवान् और बलवान् (जायते) हो जाता है ।

राये नु यं ज॒ज्ञतू रोद॑सी॒मे राये दे॒वी धि॒षणा॑ धाति दे॒वम्।
अधं वा॒युं नि॒युतः॑ सश्चत॒ स्वा उ॒त श्वे॒तं वसु॑धितिं निरे॒के॥३॥

भा०—(इमे रोदसी) आकाश और भूमि के समान माता और पिता, राजसभा और प्रजासभा दोनों मिलकर (राये) राष्ट्र के ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये (नु) ही (यं) जिसको (जज्ञतुः) उत्पन्न करते और (यं देवम्) जिस विजिगीषु को (धिषणा देवी) सर्वोपरि विद्यमान विद्वत्सभा भी (राये) ऐश्वर्य की रक्षा के लिये (धाति) स्थापित करती है उस (वायुं) शत्रुओं को प्रबल वायुवत् मूल से उखाड़ देने में समर्थ पुरुष को (स्वाः) उसके अपनी (नियुतः) लक्षों सेनाएं और प्रजाएं (सश्चत) प्राप्त होती हैं (उत) और उसी (श्वेतं) समृद्ध, एवं शुद्धाचारवान् को (निरे के) सर्वातिशायी पद पर (वसु-धितिम्) ऐश्वर्य की ख्याति रखने वाला जान कर प्राप्त होते हैं।

उ॒च्छन्नु॒षसः॑ सु॒दिना॑ अरि॒प्रा उ॒रु ज्योति॑र्विविदु॒र्दीध्या॑नाः।
गव्यं॑ चिदू॒र्वमु॒शिजो॒ वि व॑व्रु॒स्तेषा॒मनु॑ प्र॒दिवः॑ सस्रु॒रापः॑॥४॥

भा०—जिस प्रकार (उषसः) उषाएं, प्रभात वेलाएं वा सूर्य की दाहक कान्तियें (सु-दिनाः उच्छन्) उत्तम दिन वाली होकर प्रकट होती हैं, (अरि-प्राः) पाप रहित (दीध्यानाः) देदीप्यमान, (उरु ज्योतिः विविदुः) बहुत बड़े विशाल प्रकाशवान् सूर्य को प्राप्त करती (उशिजः) कान्तियुक्त होकर (गव्यम् ऊर्वम् विवव्रुः) रश्मियों के बड़े घन को फैलाती है (अनु प्रदिवः आपः सस्रुः) अनन्तर आकाश से मेघ जल बरसते हैं इसी प्रकार (उषसः) उषावद् जीवन के प्रारम्भ भाग में वर्त्तमान नर नारीगण (सु-दिना) शुभ दिन युक्त होकर (उच्छन्) अपने गुण प्रकट करें। और वे (दीध्यानाः) ईश्वर का ध्यान करते हुए (उरु ज्योतिः) बड़ी भारी ज्ञानमय ज्योति को (विविदुः) प्राप्त करें। वे (उशिजः) कामनावान् वा प्रीतियुक्त होकर (गव्यम् ऊर्वम्) वेदवाणी के घन को

(विवव्रुः) विविध प्रकार से विवरण करें, उसकी व्याख्या और रहस्योद्घाटन करें। (तेषाम् अनु) उनके पीछे २ ही (प्र-दिवः) उत्तम फल की कामना करने वाली (आपः) आप्त प्रजाएं (सस्रुः) चलें।

ते स॒त्येन॒ मन॑सा दीध्या॑नाः स्वेन॑ यु॒क्तासः॒ क्रतु॑ना वहन्ति । इन्द्र॑वायू वीर॒वाहं॒ रथं॑ वामीशा॒नयो॑र॒भि पृक्षः॑ सचन्ते ॥ ५ ॥

भा०—(ते) वे पूर्वोक्त ज्ञानवान्, विद्वान् लोग (सत्येन मनसा) सत्य चित्त और सत्य यथार्थ ज्ञान से (दीध्यानाः) चमकते हुए वा सत्य चित्त से ध्यान करते हुए (स्वेन युक्तासः) अपने आत्मसामर्थ्य और ऐश्वर्य से युक्त होकर (दीध्यानाः) चमकते हुए वा अपने आत्मयोग का अभ्यास करते, (दीध्यानाः) प्रभु का ध्यान करते हुए (युक्तासः) नियुक्त, योगी होकर (स्वेन क्रतुना) अपने ज्ञान और बल से ही (वहन्ति) रथ को अश्वों के समान देह को धारण करते हैं। हे (इन्द्र-वायू) ऐश्वर्यवन्! सत्यदर्शिन्! बलवन्! ज्ञानवन्! (ईशानयोः वाम्) स्वामी, शासक रूप आप दोनों (वीरवाहं रथं) वीरों को धारण करने वाले रथवत् रमणीय उपदेश वा स्थिर पद वा राष्ट्र को (वहन्ति) धारण करते और सञ्चालित करते हैं और वे (पृक्षः) परस्पर प्रीतियुक्त होकर (अभि सचन्ते) परस्पर समवाय बनाकर रहते हैं। वा (पृक्षः अभि सचन्ते) अन्न, वृत्ति को प्राप्त करते हैं।

ई॒शा॒नासो॒ ये दध॑ते॒ स्व॑र्णो॒ गोभि॒रश्वे॑भि॒र्वसु॑भि॒र्हिर॑ण्यैः । इन्द्र॑वायू सू॒रयो॒ विश्व॒मायु॒रर्व॑द्भिर्वी॒रैः पृत॑नासु सह्युः ॥ ६ ॥

भा०—(ये) जो (ईशानासः) ऐश्वर्यवान् और शासन अधिकार से युक्त होकर (नः) हमारे सर्वस्व धन, राष्ट्र और सुखादि को (गोभिः) गौओं और भूमियों, (अश्वेभिः) घोड़ों (वसुभिः) राष्ट्रवासी विद्वानों और (हिरण्यैः) सुवर्णादि धातुओं, और हित रमणीय साधनों से (विश्वम्

आयुः) पूर्ण जीवन (दधते) धारण करते हैं, या हमें प्रदान करते हैं हे (-इन्द्रवायू) ऐश्वर्यवान् बलवान् प्रधान नायक पुरुषो ! वे (सूरयः) विद्वान् पुरुष (अर्वद्भिः वीरैः) शत्रुओं को नाश करने हारे वीर पुरुषों द्वारा (पृतनासु) संग्रामों में (सह्युः) विजय करें ।

अर्वन्तो न श्रवसो भिक्षमाणा इन्द्रवायू सुष्टुतिभिर्वसिष्ठाः ।
वाजयन्तः स्ववसे हुवेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥१२॥

भा०—हम लोग (अर्वन्तः) शत्रुओं का नाश करते हुए वीर पुरुषों और रथ के अश्वों के समान बलवान् (श्रवसः भिक्षमाणाः) श्रवण करने योग्य ज्ञान की, योग्य गुरुओं और अन्न की गृहस्थों से याचना करते हुए, (वसिष्ठाः) उत्तम वसु, ब्रह्मचारी होकर (सु-अवसे) उत्तम ज्ञान और रक्षा के लिये स्वयं (वाजयन्तः) ज्ञान, बल, धनादि को चाहते और प्राप्त करते हुए (इन्द्रवायू हुवेम) ऐश्वर्यवान् और बलवान् एवं ज्ञानदर्शी और ज्ञान के इच्छुक जनों को प्राप्त करें, उनको आदरपूर्वक बुलावें । (यूयं) आप लोग (नः सदा स्वस्तिभिः पात) हमें उत्तम आशिषों और स्वस्ति विधायक मन्त्रों और साधनों से (पात) रक्षा करो। इति द्वादशो वर्गः ॥

[९१]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १, ३ वायुः । २, ४—७ इन्द्रवायू देवते । छन्दः—१, ४, ७ विराट् त्रिष्टुप् । २,५,६ आर्षी त्रिष्टुप् ॥ ३ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

कुविदङ्ग नमसा ये वृधासः पुरा देवा अनवद्यास आसन् ।
ते वायवे मनवे बाधितायावासयन्नुषसं सूर्येण ॥ १ ॥

भा०—(ये) जो (नमसा) विनयपूर्वक वृद्ध जनों के प्रति नमस्कार या शत्रु को नमाने वाले बल से (पुरा) पहले (वृधासः) बढ़ने हारे (अनवद्यासः) अनिन्दिताचरण करने वाले, (देवाः) विद्या,

धन पुत्र आदि के अभिलाषी (आसन्) रहते हैं (ते) वे (वायवे) वायु के समान बलवान् वा प्राणवत् प्रिय, (मनवे) मननशील, ज्ञानयुक्त (बाधिताय) पीड़ित प्रजाजन की रक्षा के लिये (उषसं) प्रभात वेला के समान कान्तियुक्त तेजस्विनी सेना को (सूर्येण) सूर्यवत् तेजस्वी नायक पुरुष के साथ (अवासयन्) रखते हैं। (२) जो आदर विनय से वृद्ध अनिन्दिताचरणी विद्वान् पुरुष होते हैं वे बलवान् (बाधिताय मनवे) पीड़ित या खण्डित वंश वाले मनुष्य की वंशवृद्धि के लिये (उषसं) कामनायुक्त स्त्री को (सूर्येण) पुत्रोत्पादन में समर्थ पुरुष के साथ और (उषसं) विद्यार्थी को सूर्यवत् विद्वान् गुरु के साथ (अवासयन्) सहयोग में रक्खें।

उशन्ता दूता न दभाय गोपा मासश्च पाथः शरदश्च पूर्वीः।
इन्द्रवायू सुष्टुतिर्वामियाना मार्डीकमीट्टे सुवितं च नव्यम् ॥२॥

भा०—(उशन्ता) सब को चाहने वाले (दूता) शत्रुओं को सन्तप्त करने वाले, (गोपा) प्रजा के रक्षक, (इन्द्रवायू) ऐश्वर्यवान् बलवान् पुरुष (मासः च शरदः च) वर्षों और मासों तक (पूर्वीः) पूर्व विद्यमान (पाथः) प्रजा की रक्षा करें। हे (इन्द्र-वायू) ऐश्वर्यवन् ! हे बलवन् ! (वाम् इयाना) आप दोनों को प्राप्त होता हुआ, (सुस्तुतिः) उत्तम उपदेश (मार्डीकम्) सुख और (सुवितं) उत्तम और (नव्यम्) स्तुत्य आचार (ईट्टे) चाहता है।

पीवोअन्नाँ रयिवृधः सुमेधाः श्वेतः सिषक्ति नियुतामभिश्रीः।
ते वायवे समनसो वि तस्थुर्विश्वेन्नरः स्वपत्यानि चक्रुः ॥ ३ ॥

भा०—(नियुताम् अभिश्रीः) नियुक्त सैन्यों के बीच सब के आश्रययोग्य एवं उत्तम राज्यलक्ष्मी से सम्पन्न (श्वेतः) शुद्ध श्वेत, उज्ज्वल वर्ण का वस्त्र धारे (सुमेधाः) शुभ, बुद्धिमान्, उत्तम शत्रुनाशक बलवान् पुरुष (रयि-वृधः) ऐश्वर्य को बढ़ाने वाले, (पीवः-

अन्नात्) अन्नादि से हृष्ट पुष्ट पुरुषों को (सिषक्ति) समवाय बना कर रहता है और (ते) वे (नरः) समस्त नायक पुरुष (सनसः) एक चित्त होकर (वायवे) उस अपने बलवान् नायक पुरुष की वृद्धि के लिये ही (वि तस्थुः) उसके समीप सब ओर स्थित होते हैं। वे (विश्वा) सभी (सु-अपत्यानि) उत्तम २ सन्तानों के समान (चक्रुः) काम करते हैं। अथवा वे सब (सु-अपत्यानि) उत्तम, न गिरने के शुभ कर्मों को करते हैं।

यावत्तरस्तन्वो३ यावदोजो यावन्नरश्चक्षसा दीध्यानाः।
शुचिं सोमं शुचिपा पातमस्मे इन्द्रवायू सदतं बर्हिरेदम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र वायू) ऐश्वर्यवन्! हे बलवन्! हे शत्रुहन्तः! और शत्रु को मूल से उखाड़ देने वाले नायक जनो! (यावत्) जब तक या जितना भी (तन्वः तरः) शरीर का बल हो और (यावत् ओजः) जितना और जब तक भी बल पराक्रम हो, और (यावत्) जब तक (नरः) नेता लोग (चक्षसा) उत्तम ज्ञान दर्शन से (दीध्यानाः) देदीप्यमान हों तब तक आप दोनों (शुचिं) शुद्ध, (सोमम्) प्रजाजन वा शासक को हमारे लाभ के लिये (पातम्) पालन करो और हमारे (शुचि सोमं पात) शुद्ध अन्न, ऐश्वर्य का उपभोग करो (इदं) इस (बर्हिः) वृद्धिशील प्रजा पर (सदतम्) अध्यक्ष बन कर विराजो।

नियुवाना नियुतः स्पार्हवीरा इन्द्रवायू सरथं यातमर्वाक्।
इदं हि वां प्रभृतं मध्वो अग्रमध प्रीणाना वि मुमुक्तमस्मे ॥५॥

भा०—हे (इन्द्रवायू) विद्युत् और वायु के समान तीव्र, बलवान् नायक पुरुषो! (स्पार्हवीराः) स्पृहणीय, मनोहर वीर पुरुषों से युक्त (नियुतः) अश्व सेनाओं को (नियुवाना) अपने अधीन सञ्चालित करते हुए आप दोनों (स-रथं) रथ सहित (अर्वाक् यातम्) आगे बढ़ो। (इदं हि) यह कार्य ही (मध्वः प्रभृतम्) आप दोनों को अन्न

सम्) कर आदि देने वाले प्रजाजन को (अच्छ प्र यासि) भली प्रकार प्राप्त होता है उन द्वारा ही तू (नः) हमें (सुभोजसं रयिम्) उत्तम भोग्य पदार्थों और उत्तम रक्षा साधनों से सम्पन्न ऐश्वर्य को (नि युवस्व) प्रदान कर और (वीरं) वीरजन, (गव्यं राधः) गवादि सम्पदा और (अश्व्यं च राधः) अश्वों से बनी सम्पदा भी (नि युवस्व) प्रदान कर।

ये वायव इन्द्रमादनास आदेवासो नितोशनासो अर्यः।
घ्नन्तो वृत्राणि सूरिभिः ष्याम सासह्वांसो युधा नृभिरमित्रान् ४

भा०—(ये) जो (वायवः) बलवान् पुरुष (इन्द्र-मादनासः) आत्मा प्राणों के समान शत्रुहन्ता, प्रजा को प्रसन्न करने में समर्थ जो (आदेवासः) अपने सब ओर विद्वान् और विजयाभिलाषी व्यवहारज्ञ पुरुषों को रखते हैं और (अर्यः) शत्रु के (नितोशनासः) मारने वाले हों ऐसे (सूरिभिः) शासक नायकों और विद्वानों के द्वारा हम लोग (वृत्राणि घ्नन्तः) विघ्नकारक दुष्टों, शत्रुओं का नाश और धनों को प्राप्त करते हुए (युधा) युद्ध द्वारा (नृभिः अमित्रान् सासह्वांसः) वीर पुरुषों द्वारा शत्रुओं को पराजय करने वाले होवें।

आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरं सहस्रिणीभिरुप याहि यज्ञम्।
वायो अस्मिन्त्सवने मादयस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः।५।१४

भा०—हे (वायो) बलवान् वीरजन ! तू (शतिनीभिः) सौ २ भटों के स्वामी, नायकों तथा हज़ार २ के भटों के स्वामी, नायकों वाली (नियुद्भिः) अश्व सेनाओं सहित (नः यज्ञं उप याहि) हमारे यज्ञ, राज्य को प्राप्त हो। (अस्मिन् सवने मादयस्व) इस ऐश्वर्ययुक्त शासन में तू अति प्रसन्न हो और अन्यों को भी प्रसन्न कर। हे विद्वानो ! वीर पुरुषो ! आप लोग (स्वस्तिभिः नः सदा पात) उत्तम उपदेशवचनों और कल्याणकारी उपायों से हमारी सदा रक्षा किया करें। इति चतुर्दशो वर्गः॥

[९३]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्राग्नी देवते ॥ छन्दः—१, ८ निचृत् त्रिष्टुप् । २, ५ आर्षी त्रिष्टुप् । ३, ४, ६, ७ विराट् त्रिष्टुप् ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

शुचिं नु स्तोमं नवजातमद्येन्द्राग्नी वृत्रहणा जुषेथाम् ।
उभा हि वां सुहवा जोहवीमि ता वाजं सद्य उशते धेष्ठा ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (वृत्र-हणा) विघ्ननाशक वा धन अन्नादि को प्राप्त करने वाले माता पिता (नव-जातं शुचिं) नये उत्पन्न उत्तम शुद्ध बालक को (जुषेताम्) प्रेम करते और (धेष्ठा वाजं उशते दत्तः) उसके पालक माता पिता बुभुक्षित को अन्न देते हैं उसी प्रकार हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र ऐश्वर्यवन् और अग्निवत् तेजस्विन् अग्रणी नायको ! आप दोनों (वृत्र-हणा) अपने बढ़ते शत्रुओं का नाश करने वाले होकर (शुचिम्) शुद्ध पवित्र व्यवहार वाले (नव-जातम्) नये ही अपने अधीन प्राप्त, (स्तोमं) स्तुतियोग्य प्रजा के अधिकार (अद्य) आज के समान सदा ही (जुषेताम्) प्रेम और उत्साह से प्राप्त करें। (ता) वे दोनों (धेष्ठा) प्रजा तथा बलवान् सैन्य, सभादि के अधिकार को उत्तम रीति से धारण करने में समर्थ होकर (सद्यः) शीघ्र ही (उशते) कामना वाले जन को (वाजं) उसका अभिलषित धन, अन्न, बल, ज्ञान आदि प्रदान करें। (उभाहि वां) आप दोनों को ही मैं (सु-हवा) सुख से, आदर पूजा सहित बुलाने योग्य सुगृहीतनामधेय (जोहवीमि) स्वीकार करता हूं, आप को आदरपूर्वक बुलाऊं, निमन्त्रित करूं। माता पिता दोनों ही इन्द्र और दोनों ही अग्नि हैं। वे सन्तान के बाधक कारणों को नाश करने वाले होने से 'वृत्रहन्' होकर नवजात शिशु को निर्दोष और स्तुत्य रूप से प्राप्त करते हैं।

ता सानसी शवसाना हि भूतं साकंवृधा शवसा शूशुवांसा ।
क्षयन्तौ रायो यवसस्य भूरेः पृङ्क्तं वाजस्य स्थविरस्य घृष्वेः ॥२॥

भा०—(ता) वे दोनों (सानसी) सब से सेवा करने योग्य, सब के शरणीय, सब के दान देने वाले और (शवसाना) बलपूर्वक ऐश्वर्य का भोग करने वाले, (साकं-वृधा) एक साथ वृद्धि को प्राप्त और (शवसा) बल से (शूशुवांसा) बढ़ते (भूतम्) रहो। और (भूरेः यवसस्य) बहुत से अन्न और (रायः) दान देने योग्य धन पर (क्षयन्तौ) ऐश्वर्य, प्रभुत्व करते हुए (भूरेः) बहुत बड़े (स्थविरस्य) चिरस्थायी (घृष्वेः) शत्रुनाशक (वाजस्य) बल, सैन्य को (पृक्तम्) अपने साथ मिलाये रक्खो।

उपो ह यद्विदथं वाजिनो गुर्धीभिर्विप्राः प्रमतिमिच्छमानाः।
अर्वन्तो न काष्ठां नक्षमाणा इन्द्राग्नी जोहुवतो नरस्ते ॥ २ ॥

भा०—(यत्) जो (नरः) मनुष्य (वाजिनः) बलवान्, संग्रामचतुर और ऐश्वर्यवान् और (प्रमतिम् इच्छमानाः) उत्तम बुद्धि और उत्कृष्ट ज्ञान को चाहने वाले (विप्राः) बुद्धिमान् पुरुष (धीभिः) बुद्धियों और कर्मों द्वारा (विदथं उपो अगुः) उत्तम ज्ञान, उत्तम ऐश्वर्य और उत्तम संग्राम को प्राप्त करते हैं (ते) वे (नरः) उत्तम जन (इन्द्राग्नी) इन्द्र अग्नि, विद्युत् अग्नि, और आचार्य और अध्यापक और सभापति सेनापति इन २ को (जोहुवतः) अपना प्रमुख स्वीकार करते हुए, उन के प्रति अपने को सौंपते हुए (काष्ठां अर्वन्तः) दूर २ देश की सीमा का अश्व के समान वेग से आगे बढ़ते हुए (काष्ठां) काष्ठा, अर्थात् 'क' परम सुखमय 'आस्था' स्थिति को (नक्षमाणाः) प्राप्त करते हुए (विदथं उपो गुः) प्राप्तव्य उद्देश्य प्राप्त करते हैं। विद्वान् गुरुओं को प्राप्त कर ज्ञानी लोग काष्ठा = गाष्ठा, अर्थात् वेद वाणियों में परम स्थिति को प्राप्त करके (विदथं उपो अगुः) प्राप्य परम धर्म तत्व, सुख या ज्ञान को पाते हैं। सभा सेनापति के अधीन जन 'काष्ठा' अर्थात् राष्ट्र या भूमि की चरम सीमा तक पहुंच जाते हैं तब वे सार्वभौम राज्य का शासन करते हैं।

गीर्भिर्विप्रः प्रमतिमिच्छमान ईट्टे रयिं यशसं पूर्वभाजम् ।
इन्द्राग्नी वृत्रहणा सुवज्रा प्र नो नव्येभिस्तिरतं देष्णैः ॥ ४ ॥

भा०—(विप्रः) विद्वान्, बुद्धिमान् पुरुष (गीर्भिः) वेदवाणियों द्वारा (प्र-मतिम्) उत्तम कोटि का ज्ञान (इच्छमानः) प्राप्त करना चाहता हुआ, (पूर्व-भाजम्) पूर्व के विद्वानों से सेवित, एवं शिष्यों के प्रति उपदिष्ट, (यशसं) यशोजनक (रयिम्) ज्ञानैश्वर्य की (ईट्टे) याचना करे । और (इन्द्राग्नी) आचार का शिक्षक आचार्य, ज्ञान का दाता विद्वान् दोनों वीर नायकों के समान (वृत्र-हणा) दुष्ट विघ्नों को नाश करने वाले (सु-वज्रा) पापादि के भली प्रकार वर्जन करने वाले उपदेश और ज्ञान रूप वज्र से युक्त होकर (नव्येभिः देष्णैः) नये से नये उपदेष्टव्य ज्ञानों द्वारा (नः प्र तिरतम्) हमें बढ़ावें ।

सं यन्मही मिथती स्पर्धमाने तनूरुचा शूरसाता यतैते ।
अदेवयुं विदथे देवयुभिः सत्रा हतं सोमसुता जनेन ॥५॥१५॥

भा०—(यत्) जब (मही) बड़ी २ (मिथती) एक दूसरे को मारती और ललकारती हुई (तनू-रुचा) अपने विस्तृत शरीर के तेज से (स्पर्धमाने) एक दूसरे से बढ़ने के निमित्त स्पर्धा कराने वाली दो स्त्रियां या वरवधू के समान परस्पर स्पर्द्धा करती हुई दो सेनाएं (शूर-साता) वीरों के संग्राम में (सं-यतेते) परस्पर विजय का यत्न करती हैं उनमें, हे इन्द्र अग्नि ! वीरो और अग्रणी नायक जनो ! आप दोनों (विदथे) संग्राम में (देवयुभिः) दानशील, वृत्तिदाता राजा के प्रिय पक्ष वाले वीर पुरुषों के साथ मिलकर (अदेवयुं) राजा के अप्रिय, शत्रु जन को (सोम-सुता जनेन) ऐश्वर्य अन्नादि के उत्पन्न करने वाले प्रजाजन के साथ मिलकर (सत्रा हतम्) विघ्नकारी शत्रुओं को एक साथ मारो। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

इमामु षु सोमसुतिमुप न एन्द्राग्नी सौमनसाय यातम् ।
नू चिद्धि परिमम्नाथे अस्माना वां शश्वद्भिर्ववृतीय वाजैः ॥६॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्यवन् ! हे विद्वन् ! अग्रणी नायक जनो ! आप दोनों (नः) हमारी (इमाम्) इस (सोम-सुतिम्) अन्न ओषधि आदि के द्वारा किये यज्ञ को (सौमनसाय) उत्तम मन बनाये रखने के लिये (सु-आ-यातम्) आदरपूर्वक आइये । (नू चित् हि) आप लोग कभी भी (अस्मान् परि मम्नाथे) हमें त्याग कर अन्य को न मानें । मैं प्रजाजन (वां) आप दोनों को (वाजैः शश्वद्भिः) बहुत अन्नों और ऐश्वर्यों से (आ ववृतीय) आदरपूर्वक सम्मान करूं ।

सो अ॑ग्न एना नम॑सा समि॒द्धोऽच्छा॑ मि॒त्रं वरु॑णमिन्द्रं॑ वोचेः ।
यत्सी॒माग॑श्चकृमा तत्सु मृ॑ळ तद॑र्य॒मादि॑तिः शिश्रथन्तु ॥ ७ ॥

भा०—हे (अग्ने) मुख के समान अग्रणी, प्रमुख पुरुष ! (सः) वह तू (एना नमसा) इस आदरयुक्त वचन और (नमसा) विनयकारी दुष्टों के नमाने वाले बल से (सम्-इद्धः) खूब अग्निवत् तेजस्वी होकर (मित्रं वरुणं इन्द्रं) स्नेहवान् श्रेष्ठ, और ऐश्वर्यवान् पुरुष को (अच्छ वोचेः) भली प्रकार कह कि (सीम्) हम (यत्) जो भी (आगः चकृम) अपराध या पाप करें तू (तत्) उसे (सु) भली प्रकार (मृड) दयादृष्टि से न्यायपूर्वक देख । (तत्) उसको (अर्यमा) दुष्टों का नियन्ता, न्यायकारी पुरुष और (अदितिः) कभी सद्व्यवस्था को न टूटने देने वाला, दृढ़, सत्य नीतिमान् व्यवस्थापक पुरुष हम प्रजाजनों के उस अपराध को (शिश्रथन्तु) प्रजा में से निर्मूल कर दे ।

ए॒ता अ॑ग्न आशुषा॒णास॑ इ॒ष्टीर्यु॒वोः सचा॒भ्य॑श्याम॒ वाजा॑न् ।
मेन्द्रो॑ नो॒ विष्णु॑र्म॒रुतः॒ परि॑ख्यन्यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒ः सदा॑ नः ८।१६

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी जन ! हम लोग (एताः) इन (इष्टीः) देने योग्य करादि अंशों को (आशुषाणासः) अति शीघ्र देते हुए, (युवोः) तुम दोनों के (वाजान्) बलों, ऐश्वर्यों को (सचा अभि अश्याम) एक साथ मिलकर भोग करें । (इन्द्रः विष्णुः) ऐश्वर्यवान् जन और व्यापक

अधिकार वाले शासक तथा (मरुतः) बलवान् शत्रुनाशक वीर पुरुष और विद्वान् जन (नः परिख्यन्) हमें कभी उपेक्षा न करें । हमारी कभी निन्दा वा त्याग न करें । (यूयं नः स्वस्तिभिः सदा पात) आप लोग हमारी सदा उत्तम २ उपायों से रक्षा करें । इति षोडशो वर्गः ॥

[९४]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ इन्द्राग्नी देवते ॥ छन्दः—१, ३, ८, १० आर्षी निचृद् गायत्री । २, ४, ५, ६, ७, ९, ११ आर्षी गायत्री । १२ आर्षी निचृदनुष्टुप् ॥ द्वादशं सूक्तम् ॥

इयं वामस्य मन्मन इन्द्राग्नी पूर्व्यस्तुतिः । अभ्राद्वृष्टिरिवाजनि १

भा०—हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र, ऐश्वर्यवन् ! हे (अग्ने) अंग में झुकने हारे, विनयशील शिष्य जनो ! (इयं) यह (पूर्व्य-स्तुतिः) पूर्व पुरुषों से प्राप्त उत्तम ज्ञानोपदेश (अस्य मन्मनः) इस ज्ञानवान् पुरुष का (वाम्) आप दोनों के प्रति (अभ्रात् वृष्टिः इव) मेघ से वृष्टि के समान (अजनि) प्रकट हुआ करे ।

शृणुतं जरितुर्हवमिन्द्राग्नी वनतं गिरः । ईशाना पिप्यतं धियः २

भा०—हे (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्य और विनयशील पुरुषो ! आप दोनों ही, (जरितुः) उपदेष्टा, जन के (हवम्) ग्राह्य उपदेश का श्रवण करो । (गिरः) उत्तम वेद वाणियों और (गिरः) उपदेष्टा जनों की (वनतम्) याचना और सेवा किया करो । (ईशाना धियः) अधिक समर्थ होकर सत्कर्मों और सद्-बुद्धियों को (पिप्यतम्) बढ़ाओ, अधिक दूर तक फैलाओ ।

मा पापत्वाय नो नरेन्द्राग्नी माभिशस्तये । मा नो रीरधतं निदे ३

भा०—हे (नरा इन्द्राग्नी) उत्तम नायको ! हे इन्द्र, अग्नि ऐश्वर्य-वन् ! विद्यावान् ! नायक नायिका, जनो ! आप लोग (नः) हमें (पाप-

त्वाय) पाप कर्म के लिये (मा रीरधतम्) कभी मत अपने अधीन रक्खो। (अभि शस्तये मा रीरधतम्) शत्रु द्वारा हमें पीड़ित करने के लिये भी अधीन मत रख, (निदे) निन्दित कर्म करने के लिये वा निन्दा करने वाले के लाभ के लिये भी हमें अपने या किसी अन्य के अधीन मत रख। कोई भी प्रजा किसी भी शासक के अधीन रहकर इन तीन प्रयोजनों को पूरा न होने दे ? पापाचार की वृद्धि, शत्रु द्वारा अपना नाश और निन्दक व्यक्ति का लाभ। यदि शासक प्रजा को अपने अधीन रख कर प्रजा में पाप, प्रजा की हानि और निन्दकों का लाभ करता है तो प्रजा को अपने भीतर इन्द्र और अग्नि अर्थात् ऐश्वर्यवान्, ज्ञानवान् बलवान्, तेजस्वी पुरुषों के दलों में धर्माचार, प्रजा की रक्षा और स्वात्माभिमान को जागृत कर उनको खड़ा कर स्वतन्त्र होने का प्रयास करना चाहिये।

इन्द्रे॑ अ॒ग्ना नमो॑ बृ॒हत्सु॑वृ॒क्तिमेर॑यामहे। धि॒या धेना॑ अ॒व॒स्यवः॑ ४

भा०—हम लोग (अवस्यवः) ज्ञान, रक्षा, प्राणतृप्ति, ऐश्वर्यादि की कामना करते हुए (इन्द्रे अग्नौ) अपने बीच विद्यमान, ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता और अग्निवत् तेजस्वी, ज्ञानी पुरुष वर्गों में (बृहत् नमः) बड़ाभारी आदर, और शस्त्र बल और (सु-वृक्तिम्) शुभ वर्त्ताव, उत्तम स्तुति और शत्रु पापादि को वर्जन करने का बल, और (धिया) बुद्धि और कर्म के द्वारा (धेनाः) वाणियों को (आ ईरयामहे) प्रेरित करें।

ता हि शश्व॑न्त॒ ईळ॑त इ॒त्था विप्रा॑स ऊ॒तये॑।
स॒बाधो॒ वाज॑सातये ॥ ५ ॥

भा०—(इत्था) इस प्रकार (शश्वन्तः विप्रासः) बहुत से विद्वान् पुरुष (सबाधः) पीड़ित होकर दुःख पीड़ा आदि की चर्चा संदेशादि लेकर (ऊतये) अपनी रक्षा के लिये और (वाजसातये) संग्राम करने के लिये (ता हि ईळते) उन दोनों पूर्वोक्त इन्द्र, अग्नि को अध्यक्ष रूप से चाहते हैं।

ता वां गीर्भिर्विपन्यवः प्रयस्वन्तो हवामहे ।
मेधसाता सनिष्यवः ॥ ६ ॥ १७ ॥

भा०—हम (विपन्यवः) विविध व्यवहारों वाले और (प्रयस्वन्तः) उत्तम २ प्रयास वा उद्योग करने वाले और अन्यों को (सनिष्यवः) वृत्ति देने वाले जन भी मिलकर (ता वां) उन आप दोनों इन्द्र, अग्नि जनों को ही (मेध-साता) अन्नलाभ, यज्ञ और संग्राम के लिये (गीर्भिः) नाना वाणियों से (हवामहे) आदरपूर्वक बुलाते हैं । अर्थात् व्यवहारकुशल व्यापारी, प्रयासी, श्रमी और वृत्तिदाता सत्ताधारी सभी मिलकर यज्ञ, संग्राम और अन्न के लिये उनको ही पुकारें । इति सप्तदशो वर्गः ॥

इन्द्राग्नी अवसा गतमस्मभ्यं चर्षणीसहा ।
मा नो दुःशंस ईशत ॥ ७ ॥

भा०—हे (चर्षणी-सहा) मनुष्यों के बीच शत्रुओं का पराजय करने वाले (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि ऐश्वर्यवान् और विद्यावान् सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी नायको ! आप दोनों (अस्मभ्यं) हमारी (अवसा) रक्षा के सहित (आ गतम्) आओ । जिससे (नः) हम पर (दुःशंसः) दुष्ट वचन बोलने वाला, कठोरभाषी, दुर्वादी पुरुष (मा ईशत) शासन न करे । वह हमारे बीच में शक्ति और अधिकार प्राप्त न करे ।

मा कस्य नो अररुषो धूर्तिः प्र णङ्मर्त्यस्य ।
इन्द्राग्नी शर्म यच्छतम् ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र सूर्यवत् तेजस्विन् ! हे (अग्ने) अग्निवत् दुष्टों के पीड़क ! हे सूर्याग्निवत् ज्ञान के प्रकाशक जनो ! आप दोनों (नः शर्म यच्छतम्) हमें सुख प्रदान करो । (कस्य) किसी भी (अररुषः मर्त्यस्य) अति रोषकारी, क्रोधान्ध मनुष्य की (धूर्त्तिः) हिंसाकारिणी-चेष्टा (नः मा प्र णङ्) हम तक न पहुंचे ।

गोमद्धिरण्यवद्वसु यद्वामश्वावदीमहे । इन्द्राग्नी तद्वनेमहि ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) सूर्य अग्निवत् तेजस्वी पुरुषो ! हम (यत्) जो भी और जिस प्रकार का भी (वाम् ईमहे) आप दोनों से मांगते हैं (तत्) वह (गोमत्) गौओं, (हिरण्यवत्) सुवर्णादि बहुमूल्य पदार्थ और (अश्वावद्) अश्वों से सम्पन्न (वसु) धन (वनेमहि) प्राप्त करें और उसका भोग करें।

यत्सोम॒ आ सु॒ते नर॑ इन्द्रा॒ग्नी अजो॑हवुः। सप्ती॑वन्ता सप॒र्यवः॑॥१०॥

भा०—हे (सप्तीवन्ता) उत्तम अश्वों के स्वामी (इन्द्राग्नी) विद्युत्, अग्निवत् तेजस्वी, ज्ञानप्रकाशक और शत्रुसंतापक नायक जनो! (यत्) जब (सोमे सुते) पुत्रवत् प्रिय 'सोम' अर्थात् ओषधि अन्नादिवत् भोग्य सम्पन्न राष्ट्र में (नरः) नायक लोग (सपर्यवः) सेवा शुश्रूषा करते हुए (आ अजोहवुः) आदरपूर्वक बुलाते हैं।

उ॒क्थेभि॑र्वृत्र॒हन्त॑मा॒ या म॑न्दा॒ना चि॒दा गि॒रा।
आ॒ङ्गू॒षैरा॒विवा॑सतः॥ ११॥

भा०—(या) जो आप दोनों (वृत्रहन्तमा) दुष्टों को अच्छी प्रकार दण्ड देने वाले, (उक्थेभिः) उत्तम वेद-वचनों और (आमन्दाना)सब को प्रसन्न करते हुए (गिरा चित्) वेद वाणी से और (आंगूषैः) उत्तम स्तुति-वचनों और उपदेशों से (आ विवासतः) सर्वत्र ज्ञानप्रकाश करते हैं।

तावि॒द्दुः॒शंसं॒ मर्त्यं॒ दुर्वि॑द्वांसं रक्ष॒स्विन॑म्।
आ॒भो॒गं हन्म॑ना ह॒तमु॒द॒धिं हन्म॑ना ह॒तम्॥ १२॥ १८॥

भा०—(तौ इद्) वे दोनों ही (दुःशंसं) दुर्वचन, कठोर भाषण करने वाले (दुर्विद्वांसं) दुर्गुणी विद्यावान्, (रक्षस्विनम्) अन्यों के कार्यों में विघ्न करने वाले के सहायक (आभोगं) चारों तरफ से भोग विलास में मग्न, भोगप्रिय, (मर्त्यं) मनुष्य को (हन्मना) हननकारी साधन, हथियार से (हतम्) दण्ड दो। और (उद-धिम्) पानी को धारण

करने वाले घट या तालाब के समान उसको भी (हन्मना हतम्) शस्त्र द्वारा नाश करो । जिस प्रकार घट या जलाशय को दण्डे या फावड़े से तोड़ या खोदकर उसका जल ले निकाल कर उसे खाली कर दिया जाता है उसी प्रकार दुर्वचनी, दुराचारी, दुष्टसंगी पुरुष को भी मार २ कर, उसका सर्वस्व हर लेना चाहिये । इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[९५]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १, २, ४—६ सरस्वती । ३ सरस्वान् देवता ॥ छन्दः— १ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । २, ५, ६ आर्षी त्रिष्टुप् । ३, ४ विराट् त्रिष्टुप् ॥ षड्र्चं सूक्तम् ॥

प्र क्षोदसा धायसा सस्र एषा सरस्वती धरुणमायसी पूः ।
प्र बाबधाना रथ्येव याति विश्वा अपो महिना सिन्धुरन्याः ॥१॥

भा०—पत्नी या स्त्री के कर्त्तव्य—जिस प्रकार (सिन्धुः) बहने वाली नदी (क्षोदसा सस्रे) पानी से बहती है, (आयसीः पूः) लोहे के बने प्रकोट के समान नगर की रक्षा करती, (रथ्या इव) रथ में लगे अश्वों के समान (प्र बाबधाना) मार्ग में आये वृक्षलतादि को उखाड़ती हुई, (अन्याः अपः च प्रबाबधाना) अन्य सब जल-धाराओं को बांधती हुई सब से मुख्य होकर (याति) आगे बढ़ती है उसी प्रकार (सरस्वती) उत्तम ज्ञानयुक्त विदुषी स्त्री (धायसा) पुष्टिकारक बालक को पिलाने योग्य दूध (क्षोदसा) और अन्न से (प्रसस्रे) प्रेम से प्रवाहित होती है । वह (धरुणम्) गृहस्थ को धारण करने वाली और सबका आश्रय हो, वह (आयसी पूः) लोहे के प्रकोट के समान, दृढ़ एवं (आ-यसी) सब प्रकार से परिश्रम करने वाली और (पूः) प्रवचनों और परिवार के पालन करने वाली हो । वह (रथ्या इव) रथ में लगाने योग्य अश्वों के समान दृढ़ होकर और वह (महिना) अपने सामर्थ्य से (विश्वाः अन्याः अपः) अन्य आप्त जनों को (सिन्धुः)

समुद्र या महानद के समान (प्र बाबधाना) दृढ़ सम्बन्ध से बांधती हुई (याति) संसार-मार्ग पर चले ।

एका॑चेत॒त्सर॑स्वती न॒दीनां॒ शुचि॑र्य॒ती गि॒रिभ्य॒ आ स॑मु॒द्रात् ।
रा॒यश्चेत॑न्ती॒ भुव॑नस्य॒ भूरे॑र्घृ॒तं पयो॑ दुदुहे॒ नाहु॑षाय ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार (नदीनां एका सरस्वती शुचिः) नदियों में से एक अधिक वेग, अधिक जल वाली, स्वच्छ-जला नदी (गिरिभ्यः आ समुद्रात् यती) पर्वतों से समुद्र तक जाती हुई (नाहुषाय) मनुष्य वर्ग के लिये (घृतं पयः दुदुहे) जल और अन्न प्रचुर मात्रा में प्रदान करती है, इसी प्रकार (सरस्वती) उत्तम ज्ञानवाली विदुषी स्त्री (नदीनाम्) अन्य समृद्ध, धनसम्पन्न स्त्रियों के बीच में भी (शुचिः) शुद्ध पवित्र आचार, चरित्र, रूप और वाणी वाली होकर (एका चेतत्) वह अकेली ही सर्व प्रशस्त जानी जाय । वह (गिरिभ्यः) उपदेष्टा पिता आदि गुरुओं से (समुद्रात्) कामना योग्य, हर्षजनक पति-गृह को (यती) प्राप्त होती हुई (भुवनस्य) समस्त लोकों को (भूरेः रायः चेतन्ती) अपने बहुत उत्तम ऐश्वर्य को बतलाती हुई, (नाहुषाय) सम्बन्ध में बांधने वाले अपने पति के लिये (घृतं पयः) घी, स्नेह, दुग्ध, अन्न आदि की (दुदुहे) खूब वृद्धि करे और उनसे सबको पुष्ट करे ।

स वा॑वृधे॒ नर्यो॒ योष॑णासु॒ वृषा॒ शिशु॑र्वृष॒भो य॒ज्ञिया॑सु ।
स वा॒जिनं॑ म॒घव॑द्भ्यो दधाति॒ वि सा॒तये॑ त॒न्वं॑ मामृजीत ॥३॥

भा०—नरश्रेष्ठ का वर्णन—(सः) वह (नर्यः) मनुष्यों का हितकारी, मनुष्यों में श्रेष्ठ पुरुष (यज्ञियासु) यज्ञ, परस्पर संग वा दान प्रतिदान द्वारा प्राप्त (योषणासु) स्त्रियों, धर्मदाराओं में (वृषा) वीर्य सेचन में समर्थ, (वृषभः) बलवान्, वृषभवत् होकर (शिशुः) सह-शयन करने वाला होकर (वावृधे) प्रजा पुत्र, धन धान्यादि से बढ़े । (सः) वह (मघवद्भ्यः = मखवद्भ्यः) यज्ञ करनेवाले याज्ञिकों को और (मघवद्भ्यः)

धनैश्वर्य सम्पन्न राजादि के हितार्थ (वाजिनं) बल, अन्न, धन ज्ञानादि से सम्पन्न पुत्र को प्रजावत् (दधाति) धारण करता है, विद्वानों को अश्वयानादि वेगयुक्त पदार्थों को दक्षिणा रूप में देता है। वह (सातये) पुत्र, धन अन्न ज्ञानादि के लाभार्थ, एवं संग्राम के लिये भी (तन्वं) अपने शरीर वा आत्मा को (वि मामृजीत) विविध उपायों से—यज्ञ, दान, स्नान, ओषधि, उपदेशश्रवण, मनन, निदिध्यासन, ज्ञानोपार्जन, सत्कार, तप आदि से शुद्ध करे और युद्धार्थ अस्त्र-शस्त्र, वेष-भूषा, पदकादि से सजावे।

उत स्या नः सरस्वती जुषाणोप श्रवत्सुभगा यज्ञे अस्मिन्।
मितज्ञुभिर्नमस्यैरियाना राया युजा चिदुत्तरा सखिभ्यः ॥ ४ ॥

भा०—(उत) और (स्या) वह (सरस्वती) उत्तम ज्ञान-वाली विदुषी स्त्री, (जुषाणा) हम से स्नेह करती हुई (अस्मिन् यज्ञे) इस यज्ञ में (सु-भगा) उत्तम ऐश्वर्ययुक्त, सौभाग्यवती होकर (नः उप श्रवत्) हमारी बात ध्यानपूर्वक श्रवण करे। वह (नमस्यैः) नमस्कार करने योग्य (मित-ज्ञुः) परिमित संकुचित जानुओं वाले सभ्य (मित-ज्ञुभिः) समस्त ज्ञातव्य पदार्थों के जानने वाले विद्वान् पुरुषों के साथ (इयाना) प्राप्त होती हुई (राया) ऐश्वर्य (चित) और (युजा) सहयोगी पति से तू (सखिभ्यः) अपनी सखी सहेलियों से (उत्तरा) अधिक उत्कृष्ट हो।

इमा जुह्वाना युष्मदा नमोभिः प्रति स्तोमं सरस्वति जुषस्व।
तव शर्मन्प्रियतमे दधाना उप स्थेयाम शरणं न वृक्षम् ॥ ५ ॥

भा०—हे (सरस्वति) उत्तम ज्ञान से युक्त विदुषि! हे सरस्वति ज्ञानमय प्रभो! तू (स्तोमं प्रति जुषस्व) उत्तम स्तुत्यवचन को प्रेम से स्वीकार कर। हम (नमोभिः) विनय युक्त वचनों, अन्नों सहित (युष्मत् आजुह्वाना) तुम से नाना ग्राह्य पदार्थ स्वीकार करते हुए (तव प्रियतमे शर्मन्) तेरे प्रिय तम गृह में अपने को (दधानाः) रखते हुए

(वृक्षं न शरणं) वृक्ष के समान शरण देने वाले (उप स्थेयाम) तेरे निकट उपस्थित हों, तेरी शरण होवें।

अयमु ते सरस्वति वसिष्ठो द्वारावृतस्य सुभगे व्यावः।
वर्ध शुभ्रे स्तुवते रासि वाजान्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥६॥१९

भा०—हे (सरस्वति) उत्तम ज्ञानवति! विदुषि! हे (सुभगे) उत्तम भाग्यशालिन्! (अयम् वसिष्ठः) यह उत्तम ब्रह्मचारी पुरुष (ते) तेरे लिये (ऋतस्य द्वारौ) सत्य ज्ञान, अन्न और धन के दोनों द्वारों को प्रकट करता है। हे (शुभ्रे) हे शुभ चरित्र, रूप, उज्ज्वलगुणों वाली! हे सुशोभिते! तू (स्तुवते) गुणों को प्रशंसा करने वाले अपने गुणग्राही जन को (वाजान्) अन्न, ऐश्वर्यादि (रासि) प्रदान कर। हे विद्वान् लोगो! (यूयं स्वस्तिभिः नः पात) आप लोग उत्तम २ आशीर्वादों, शुभ कर्मों द्वारा हमें पाप कर्मों से बचाओ।

इस सूक्त में सरस्वती, सरस्वान् देवता हैं। उत्तम ज्ञान का परम भण्डार परमेश्वर है इससे सरस्वती सरस्वान् नाम परमेश्वर के हैं। (१) परमेश्वर सब विश्व को धारण करने वाला सर्वाश्रय होने से 'धरुण' है। पालक होने से 'पूः' है। महान् व्यापक होने से 'सिन्धु' है। सर्वत्र रक्षा-कारी पोषक रूप से व्याप्त है, सब कष्टों को दूर करता है। (२) वह एक अद्वितीय, स्वच्छ, विमल, (गिरिभ्यः) उपदेष्टा गुरुजनों से हमें उपदेश द्वारा प्राप्त होता है। वह प्रकाश, अन्न सब को देता, सबको चेतना वा ज्ञान देता है। (३) सब सञ्चालक सूर्यादि शक्तियों में व्यापक होने से 'नर्य' सर्वत्र व्यापक होने से 'शिशु' सर्वप्रबन्धक होने से 'वृषा', सबको धारण करने, सुखवर्षक होने से 'वृषभ' है, वही सबको ऐश्वर्य देता है, उसको प्राप्त करने के लिये योगी अपने कर्म मन, आत्मा को शुद्ध करे। (४) सर्वैश्वर्यवान् होने से प्रभु 'सुभग' (मितज्ञुभिः) गोड़े सिकोड़ने या घुटने टेक बैठने वाले (नमस्यैः) भक्त जनों से उपासित होकर वह ऐश्वर्य, योग

से सब अन्य आत्माओं से अधिक है। (५) वह प्रभु हमारी स्तुति स्वीकार करे और हम उसकी शरण, सुखमयी छाया में विश्राम लें।

[९६]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १—३ सरस्वती । ४—६ सरस्वान् देवता ॥ छन्दः—१ आर्षी भुरिग्बृहती । ३ निचृत् पंक्तिः । ४, ५ निचृद्गायत्री । ६ आर्षी गायत्री ॥

बृहदु गायिषे वचोऽसुर्या नदीनाम् ।
सरस्वतीमिन्महया सुवृक्तिभिः स्तोमैर्वसिष्ठ रोदसी ॥१॥

भा०—हे (वसिष्ठ) उत्तम विद्वन्! तू (रोदसी) भूमि और सूर्य दोनों में नायक और (नदीनाम् असुर्या) नदियों में अति बलवती नदी के समान समृद्ध प्रजाओं में सबसे बलशाली, प्रभु की (बृहत् उ गायिषे) बहुत बहुत स्तुति कर। और (सुवृक्तिभिः) स्तुति और (स्तोमैः) वेद के सूक्तों से और स्तुत्य यज्ञादि कर्मों में से (सरस्वतीम् इत् महय) उस महाप्रवाह की, जो अनादि काल से सबको ज्ञान, शक्ति, प्राण सुख, ऐश्वर्य का प्रवाह संसार में बहा रहा है (महय) पूजा कर।

उभे यत्ते महिना शुभ्रे अन्धसी अधिक्षियन्ति पूरवः ।
सा नो बोध्यवित्री मरुत्सखा चोद राधो मघोनाम् ॥ २ ॥

भा०—(यत्) जिस (ते) तेरे (महिना) महान् सामर्थ्य से (पूरवः) मनुष्य गण (उभे) दोनों को (अधि क्षियन्ति) प्राप्त करते हैं हे (शुभ्रे) अति उज्ज्वल स्वरूप वाली सरस्वति! परमेश्वरि! ज्ञानमयि! (सा) वह तू (मरुत्सखा) विद्वानों की मित्र (अवित्री) समस्त संसार की रक्षा करने वाली वा स्नेहमयी होकर (नः बोधि) हमें ज्ञान दे और (मघोनां) ऐश्वर्यवान् जनों को (राधः चोद) धनादि प्रदान कर।

भद्रमिद्भद्रा कृणवत्सरस्वत्यकवारी चेतति वाजिनीवती।
गृणाना जमदग्निवत्स्तुवाना च वसिष्ठवत् ॥ ३ ॥

भा०—(भद्रा सरस्वती) सबका कल्याण करने वाली वह परमेश्वरी (वाजिनी-वती) बलयुक्त क्रिया और ऐश्वर्य, अन्नादियुक्त भूमि सूर्यादि की स्वामिनी, ज्ञानादियुक्त विद्वानों की स्वामिनी और (अकव-अरी) कभी कुत्सित मार्ग में न जाने देने वाली होकर सबके लिये (भद्रम् कृणवत्) भला ही भला, कल्याण ही कल्याण करती है। वही (चेतति) सब को ज्ञान प्रदान करती है। वह (जमदग्निवत्) प्रज्वलित अग्नि के समान प्रकाशस्वरूप, (गृणाना) स्तुति की जाती है। और (वसिष्ठवत्) सब में सर्वोत्तम रूप से बसने वाले, जगन्निवासिनी के समान (स्तुवाना) स्तुति की जाती है।

जनीयन्तो न्वग्रवः पुत्रीयन्तः सुदानवः। सरस्वन्तं हवामहे॥४॥

भा०—हम लोग (जनीयन्तः) भार्या रूप उत्तम संतति जनक क्षेत्र की कामना करने वाले, (पुत्रीयन्तः) पुत्रों की कामना करने वाले, (अग्रवः नु) आगे बढ़ने वाले और (सु-दानवः) उत्तम दानशील पुरुष (सरस्वन्तं) उत्तम ज्ञानवान् प्रभु को (हवामहे) प्राप्त होते, पुकारते और उसी से याचना करते हैं।

ये ते सरस्व ऊर्मयो मधुमन्तो घृतश्चुतः। तेभिर्नोऽविता भव ५

भा०—हे (सरस्वः) उत्तम ज्ञान और बलशालिन्! (ते) तेरे (ये) जो (मधुमन्तः) मधुर आनन्द, जल, अन्नादि युक्त और (घृतश्चुतः) प्रकाश, स्नेह और जलप्रदान करने वाले (ऊर्मयः) उत्तम तरङ्गवत् उत्कृष्ट मार्ग से जाने वाले विद्वान्, सूर्य, पवन, मेघादि हैं (तेभिः) उनसे तू (नः) हमारा (अविता) रक्षक (भव) हो।

पीपिवांसं सरस्वतः स्तनं यो विश्वदर्शतः।
भक्षीमहि प्रजामिषम् ॥ ६ ॥ २० ॥

भा०—(यः) जो (विश्व-दर्शतः) समस्त जीवों के दर्शन करने योग्य, सूर्य के समान तेजस्वी है। उस (सरस्वतः) उत्तम ज्ञानवान्, शक्तिमान् प्रभु के (पीपिवांसं) सब के परिपोषक, (स्तनं) स्तन के समान सबको बालकवत् पोषण करने वाले, या मेघवत् सब के प्रति वेदोपदेश देने वाले वेदमय शब्द वा प्रभु का हम (भक्षीमहि) भजन, सेवन करें और उसी की दी (प्रजाम्, इषम्) प्रजा, उत्तम सन्तान अन्न तथा प्रेरणा और सदिच्छा का सेवन करे। अथवा उस सर्वशक्तिमान् प्रभु की उत्तम सूर्यादि उत्पादक प्रकृति 'प्रजा' है, और उसका सञ्चालक शक्ति 'इष्' है, हम उसका भजन सेवन कर सुखी हों। इति विंशो वर्गः॥

[९७]

वसिष्ठ ऋषिः॥ १ इन्द्रः। २, ४—८ बृहस्पतिः। ३, ९ इन्द्राब्रह्मणस्पती। १० इन्द्राबृहस्पती देवते॥ छन्दः—१ आर्षी त्रिष्टुप्। २,४,७ विराट् त्रिष्टुप्। ३, ५, ६, ८, ९, १० निचृत् त्रिष्टुप्॥ दशर्चं सूक्तम्॥

य॒ज्ञे दि॒वो नृ॒षद॑ने पृथि॒व्या नरो॒ यत्र॑ देव॒यवो॒ मद॑न्ति।
इन्द्रा॑य॒ यत्र॒ सव॑नानि सु॒न्वे गम॒न्मदा॑य प्रथ॒मं वय॑श्च॥ १॥

भा०—परमेश्वर इन्द्र! (यत्र) जिस (यज्ञे) सर्वोपास्य, सर्वप्रद प्रभु परमेश्वर के आश्रय (देवयवः) दिव्य शक्तियों की कामना करने, वा देव, उपास्य, वा सर्व सुखदाता के भक्ति करने वाले प्रभुप्रेमी जन (दिवः पृथिव्याः) आकाश और भूमिपर के (नृ-सदने) मनुष्यों के रहने के प्रत्येक स्थान में (मदन्ति) हर्ष आनन्द लाभ करते हैं। (च) और (वयः) तेजस्वी ज्ञानी पुरुष (मदाय) मोक्षानन्द प्राप्त करने के लिये ही (यत्र) जिस प्रभु के आश्रय में स्थिर होकर (प्रथमं गमन्) सर्वश्रेष्ठ पद को प्राप्त होते हैं उस (इन्द्राय) परमैश्वर्यवान् प्रभु के लिये ही मैं (सवनानि) समस्त उपासनाएं (सुन्वे) करूं।

आ दैव्या॑ वृणीमहेऽवां॑सि बृह॒स्पति॑र्नो मह॒ आ स॑खायः।
यथा॑ भवे॑म मी॒ळ्हुषे॒ अना॑गा॒ यो नो॑ दा॒ता प॑रा॒वतः॑ पि॒तेव॑ ॥२॥

भा०—(यः) जो (नः) हमें (पिता इव) पिता के समान (परावतः) दूर २ से वा परम पद से (दाता) सब सुख ऐश्वर्यादि देने हारा है। वह (बृहस्पतिः) बड़े, ब्रह्माण्ड का पालक है (नः) हमें (आ महे) सब प्रकार से देता है। हे (सखायः) मित्रो ! हम उस (मीढुषे) मेघवत् ऐश्वर्य सुखों के वर्षाने वाले, महा दानी, प्रभु के प्रति (यथा) जिस प्रकार हो (अनागाः भवेम) निरपराध और निष्पाप हों, इसीलिये हम (दैव्यानि अवांसि) सर्वप्रद, सर्वप्रकाशक उसी प्रभु के दिये बलों, तृप्तिकारक अन्नादि ऐश्वर्यों और उसी की रक्षाओं को (आ वृणीमहे) अपने लिये चाहते हैं।

तमु॒ ज्येष्ठं॒ नम॑सा ह॒विर्भिः॑ सु॒शेवं॒ ब्रह्म॑ण॒स्पतिं॑ गृणीषे।
इन्द्रं॒ श्लोको॒ महि॒ दैव्यः॑ सिषक्तु॒ यो ब्रह्म॑णो दे॒वकृ॑तस्य॒ राजा॑ ॥३॥

भा०—(यः) जो (देवकृतस्य) परमेश्वर के दिव्य पदार्थ पृथिवी आदि वा जीवों के लिये बनाये हुए (ब्रह्मणः) महान् ब्रह्माण्ड का (राजा) स्वामी है उस (महि) महान् (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् प्रभु परमेश्वर को ही (दैव्यः) विद्वानों की देवोचित (श्लोकः) स्तुति और (दैव्यः श्लोकः) देव, प्रभु परमेश्वर से प्राप्त 'श्लोक' अर्थात् वेदवाणी, (सिषक्तु) प्राप्त होती है, वह उसी का वर्णन करती, वह उसीको अपना लक्ष्य करती है। (तम् उ ज्येष्ठं) उसी सर्वश्रेष्ठ, सब से महान् (सुशेवं) उत्तम सुखदाता, आनन्दकन्द (ब्रह्मणः पतिम्) ब्रह्माण्ड, प्रकृति और वेद के पालक प्रभु की मैं (हविर्भिः) उत्तम वचनों से या अन्नौषधि आदि की आहुतियों सहित (गृणीषे) स्तुति करूं।

स आ नो॒ योनिं॑ सदतु॒ प्रेष्ठो॒ बृह॒स्पति॑र्वि॒श्ववा॑रो॒ यो अस्ति॑।
कामो॑ रा॒यः सु॒वीर्य॑स्य॒ तं दा॒त्पर्ष॑न्नो॒ अति॑ स॒श्चतो॒ अरि॑ष्टान् ॥४॥

भा०—(यः) जो (विश्ववारः) सबसे वरण करने योग्य है और जो सब संकटों, पापों को दूर करने हारा है (सः) वह (प्रेष्ठः) प्रियतम, सबसे महान्, (बृहस्पतिः) बड़े ब्रह्माण्ड का स्वामी है, वह (नः) हमारे (योनिं) प्राप्त होने या एकत्र मिलने के स्थान, हृदय-देश में, सेवक के गृह पर स्वामी के समान (आ सदतु) अनुग्रह कर प्राप्त हो। वही परमेश्वर हमारी जो (सुवीर्यस्य रायः कामः) उत्तम बलयुक्त ऐश्वर्य की अभिलाषा है (तं) उस अभिलाषा को (दात्) पूर्ण करता और (सश्चतः) प्राप्त होने वाले (अरिष्टान्) मृत्यु लक्षणों से भी (अति-पर्षत्) पार करता और उनको दूर करता है। अथवा (सश्चतः नः अरिष्टान् अति पर्षत्) शरणागत आये हम लोगों को विना पीड़ा, विघ्नादि से पीड़ित हुए हमें संसार संकट से पार कर देता है, मुक्ति सुख प्रदान करता है।

तमा नो॑ अ॒र्कम॒मृता॑य॒ जुष्ट॑मि॒मे धा॑सुर॒मृता॑सः पुरा॒जाः ।
शुचि॑क्रन्दं यज॒तं प॒स्त्या॑नां॒ बृह॒स्पति॑मन॒र्वाणं॑ हुवेम ॥५॥२१॥

भा०—(नः) हमारे (पुराजाः) पूर्व काल में नाना जन्मों में उत्पन्न (इमे) ये (अमृतासः) अविनाशी जीवगण (अमृताय) दीर्घ जीवन के लिये (अर्कम्) अन्न के समान (अमृताय) अमृत, मोक्ष सुख प्राप्त करने के लिये (जुष्टं) प्रेम से सेवनीय (अर्कं) अर्चना योग्य (तम्) उसी प्रभु परमेश्वर को (धासुः) धारण करें। और (पस्त्यानां) गृहों, वा गृहस्थों के समान देह रूप गृहों में रहने वाले जीवों के (यजतम्) उपासनीय, (शुचि-क्रन्दं) गुरु वा न्यायकर्त्ता के समान शुद्ध, निर्दोष वचन कहने वाले, (अनर्वाणम्) अन्य अश्वादि की अपेक्षा न करने वाले स्वयंगामी रथवत् (अनर्वाणं) निरपेक्ष, स्वयं जगत् के सञ्चालक, अहिंसक (बृहस्पतिम्) बड़े २ सूर्यादि के भी पालक प्रभु को हम (हुवेम) स्तुति करें, उसी को दुःख में याद करें। इत्येकविंशो वर्गः ॥

तं शग्मासो अरुषासो अश्वा बृहस्पतिं सहवाहो वहन्ति ।
सहश्चिद्यस्य नीळवत्सधस्थं नभो न रूपमरुषं वसानाः ॥ ६ ॥

भा०—(सहवाहः अश्वाः यथा बृहस्पतिं वहन्ति) एक साथ चलने वाले अश्व, या अश्वारोही, जिस प्रकार बड़े सैन्य के स्वामी को अपने ऊपर धारण करते हैं उसी प्रकार (यस्य) जिस परमेश्वर का (सधस्थं) साथ रहना ही (नीडवत्) गृह के समान आश्रय देने वाला और (सहः चित्) सब दुःखों को सहन करा देने में समर्थ बल है और जिसका (रूपं नभः न) रूप आकाश वा सूर्य के समान व्यापक और (अरुषं) अति उज्वल तेजोमय है, (तं) उस प्रभु को, (वसानाः) इस जगत् में रहने वाले, या उसी की भक्ति में रहने वाले, (शग्मासः) सुखी, आनन्दमग्न, शक्तिमान्, (अरुषासः) उज्ज्वल रूपयुक्त, तेजस्वी सूर्यवत् प्रकाशमान (अश्वाः) विद्या विज्ञान में निष्णात पुरुष वा अति वेग से जाने वाले सूर्यादि लोक (सह-वाहः) एक साथ मिलकर-संसार यात्रा करते हुए, वा (सह-वाहः) एक साथ विश्व को धारण करते हुए, (बृहस्पतिं वहन्ति) उस महान् ब्रह्माण्ड के पालक प्रभु को अपने ऊपर धारण करते हैं।

स हि शुचिः शतपत्रः स शुन्ध्युर्हिरण्यवाशीरिषिरः स्वर्षाः ।
बृहस्पतिः स स्वावेश ऋष्वः पुरू सखिभ्य आसुतिं करिष्ठः ॥७॥

भा०—(सः हि) वह प्रभु निश्चय से (शुचिः) अति पवित्र, (शतपत्रः) शतदल कमल के समान उज्वल, निस्संङ्ग, वा (शत-पत्रः) सैकड़ों ऐश्वर्यों से पूर्ण है (सः शुन्ध्युः) वह सब को शुद्ध करने वाला, परमपावन, (हिरण्य-वाशीः) हित और रमणीय वेदमयी वाणी, से युक्त, (इषिरः) सब के चाहने योग्य, (स्वः-साः) सुख, का देने वाला है। (सः सु-आवेशः) वह उत्तम रीति से समस्त विश्व में व्यापक, (ऋष्वः) सब से महान् , (सखिभ्यः) अपने समान ख्याति, आत्मा नाम वाले जीवों के लिये (पुरु आसुतिं) बहुत सा अन्न आदि ऐश्वर्य (करिष्ठः)

उत्पन्न करने वाला है, सब से बड़ा अन्नदाता, वही (बृहस्पतिः) महान् जगत् का बड़ा पालक, बृहस्पति, है। इसी प्रकार राजा, या बड़े राष्ट्र का स्वामी भी हो। वह (शुचिः) ईमानदार, काम, धर्म, अर्थ आदि सब उपधाओं से शुद्ध हो (शतपत्रः) सैकड़ों रथों का स्वामी, (शुन्ध्युः) शत्रु, दुष्टादि राज्य के कण्टकों का शोधक, (हिरण्य-वाशीः) लोह आदि के चमकते शस्त्रास्त्रों वाला, (इपिरः) सेना का सञ्चालक, (स्वर्षाः) शत्रुतापकारी अस्त्रों तथा प्रजा के सुखों का दाता, (सु-आवेशः) सुखपूर्वक राष्ट्र में प्रविष्ट, सु-स्थिर, (ऋष्वः) महान्(सखिभ्यः पुरु आसुतिं करिष्ठः) मित्र वर्गों के लिये नाना ऐश्वर्य उत्पन्न करने वाला हो।

देवी देवस्य रोदसी जनित्री बृहस्पतिं वावृधतुर्महित्वा।
दक्षाय्याय दक्षता सखायः करद्ब्रह्मणे सुतरा सुगाधा ॥ ८ ॥

भा०—(देवी) नाना सुखों और ऐश्वर्यों के देने वाले (रोदसी) भूमि और आकाश, (देवस्य महित्वा) सर्वप्रकाशक, सर्वदाता प्रभु के महान् सामर्थ्य से (जनित्री) जगत् को उत्पन्न करने वाले हैं। वे दोनों (बृहस्पतिं) महान् जगत् के पालक प्रभु की महिमा को ही (ववृधतुः) बढ़ा रहे हैं। हे (सखायः) मित्रो ! आप लोग (दक्षाय्याय) महान् सामर्थ्य के स्वामी को (दक्षत) बढ़ाओ, और जिस प्रकार (सुतरा सुगाधा ब्रह्मणे करत्) उत्तम, सुख से अवगाहन करने योग्य जलधारा अन्न को उत्पन्न करने के लिये सहाय करती है उसी प्रकार (सुतरा) दुःखसागर से सुखपूर्वक तरा देने वाली अति उत्तम, (सु-गाधा) उत्तम वेद वाणी, (ब्रह्मणे) उत्तम महान् सामर्थ्यवान् प्रभु परमेश्वर को प्राप्त करने के लिये हमें ज्ञानोपदेश (करत्) करे।

इयं वां ब्रह्मणस्पते सुवृक्तिर्ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे अकारि।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरन्धीर्जजस्तमर्यो वनुषामरातीः ॥ ९ ॥

भा०—हे (ब्रह्मणस्पते) ब्रह्मज्ञान वेद और बड़े राष्ट्र के पालक !

हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! जीव ! (वां) आप दोनों की (इन्द्राय वज्रिणे) शक्तिशाली आत्मा की (इयं) यह (सुवृक्तिः) उत्तम स्तुति (अकारि) की जाती है । आप दोनों (धियः अविष्टं) उत्तम बुद्धियों, कर्मों की रक्षा करो और (पुरन्धीः जिगृतम्) नाना कर्म करने वाले वा देह को पुरवत् धारण करने वाले जीवों को उत्तम उपदेश करो । (वनुषां) कर्म फल सेवन करने वाले जीवों के (अरातीः) सुखादि न देने वाले, बाधक (अर्यः) शत्रुओं को (जजस्तम्) नाश करो ।

बृह॑स्पते यु॒वमिन्द्र॑श्च॒ वस्वो॑ दि॒व्यस्ये॑शाथे उ॒त पार्थि॑वस्य ।
ध॒त्तं र॒यिं स्तु॑व॒ते की॒रये॑ चिद्यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः॥१०॥२२

भा०—हे (बृहस्पते) महान् विश्व के पालक ! हे (इन्द्रः च) जीवात्मन् ! (युवम्) आप दोनों, (दिव्यस्य उत पार्थिवस्य वस्वः) आकाश और भूमि के समस्त ऐश्वर्यों के (ईशाथे) प्रभु हो । आप दोनों (स्तुवते कीरये चित्) स्तुतिशील, विद्वान् को (रयिं धत्तम्) ऐश्वर्य प्रदान करो । हे विद्वान् जनो ! (यूयं स्वस्तिभिः नः सदा पात) आप लोग हमारी सदा कल्याणकारी आशिषों और उपायों से रक्षा करो।इति द्वाविंशो वर्गः॥

[९८]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १—६ इन्द्रः । ७ इन्द्राबृहस्पती देवते ॥ छन्दः—१, २, ६, ७ निचृत् त्रिष्टुप् । ३ विराट् त्रिष्टुप् । ४, ५ त्रिष्टुप् ॥ पड्चं सूक्तम् ॥

अध्व॑र्यवो॒ऽरु॒णं दु॒ग्धमं॒शुं जु॒होत॑न वृष॒भाय॑ क्षिती॒नाम् ।
गौ॒राद्वेदी॑याँ अव॒पान॒मिन्द्रो॑ वि॒श्वाहेद्या॑ति सु॒तसो॑ममि॒च्छन् ॥१॥

भा०—हे (अध्वर्यवः) यज्ञ के इच्छुक प्रजापीड़न, और प्रजाहिंसन को न चाहने वाले दयाशील प्रजाजनो ! आप लोग (क्षितीनाम्) मनुष्यों में (वृषभाय) श्रेष्ठ पुरुष के लिये (अरुणं) रुचिकर, कभी न रुकने वाले, (दुग्धम्) दूध के समान, समस्त भूमि-भागों से प्राप्त (अंशुम्)

अन्नादि, का अंशभाग करवत् (जुहोतन) प्रदान करो। (सुत-सोमम् इच्छन्) अभिषेक द्वारा प्राप्त होने योग्य ऐश्वर्य को प्राप्त करना चाहता हुआ, (इन्द्रः) शत्रुहन्ता राजा, (गौरात्) भूमि में रमण करने वाले, प्रजाजन से (अन्न-पानं वेदीयान्) अपने अधीन प्रजा पालन करने का वेतन प्राप्त करता हुआ (विश्वाहा इत् याति) सदा प्राप्त हो। (२) यज्ञ में याज्ञिक लोग भूमियों पर बरसने वाले मेघ के लिये शुद्ध दूध और ओषधियों की आहुति दें तब 'इन्द्र' अर्थात् सूर्य ओषधि-उत्पादक 'अन्नपान' अर्थात् जल को किरणों द्वारा (गौरात्) पृथ्वी पर के जलाशय समुद्रादि से प्राप्त करने लगता है।

यद्दधिषे प्रदिवि चार्वन्नं दिवेदिवे पीतिमिदस्य वक्षि।
उत हृदोत मनसा जुषाण उशन्निन्द्र प्रस्थितान्पाहि सोमान्॥२॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यत्) जो तू, (प्र-दिवि) उत्तम तेज होने पर (चारु अन्नं दधिषे) उत्तम अन्न को पुष्ट करता है, (दिवे-दिवे) दिनों दिन (अस्य) जलपान के समान (अस्य पीतिम् इत् वक्षि) इस राष्ट्र के पालन और उपभोग की कामना कर, उस के पालन कार्य को अपने ऊपर धारण कर। (उत) और (हृदा उत मनसा) हृदय और मन से, प्रेम और ज्ञान से राष्ट्र को (जुषाणः) सेवन करता और (उशन्) नित्य चाहता हुआ (प्रस्थितान् सोमान् पाहि) प्राप्त ऐश्वर्यों और सोम्य वीरों की रक्षा कर। (२) सूर्य भी अति तेजस्विता के बल पर अन्न की रक्षा करता है, प्रति दिन जल का पान करता हुआ वनस्पतियों का पालन पोषण करता है।

जज्ञानः सोमं सहसे पपाथ प्र ते माता महिमानमुवाच।
एन्द्र पप्राथोर्व१न्तरिक्षं युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ॥३॥

भा०—विजिगीषु राजा का कर्त्तव्य। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! शत्रु-हन्! राजन्! तू (जज्ञानः) प्रकट होकर ही (सहसे) शत्रुविजयी

बल को बढ़ाने के लिये (सोमं) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र को (पपाय) पालन कर और (माता) सब जगत् को उत्पन्न करने वाली भूमि माता (ते महिमानम्) तेरे महान् सामर्थ्य को (प्र उवाच) उत्तम रीति से कहे । हे (इन्द्र) सेनानायक ! तू (उरु अन्तरिक्षं) विशाल अन्तरिक्ष को भी (युधा) युद्ध साधनों से (आ पप्राथ) विस्तृत कर और (देवेभ्यः वरिवः चकर्थ) विजयेच्छुक सैनिकों और प्रजाजनों के लिये बहुत धन उत्पन्न कर ।

(२) सूर्य या विद्युत् ओषधि की रक्षा करता है; भूमि भी उसके महान् सामर्थ्य को बतलाती है; (युधा) प्रहारकारी विद्युत् से आकाश को पूर्ण करता, अन्न की कामना करने वाले मनुष्यों के लिये अन्न उत्पन्न करता है ।

यद्योधया महतो मन्यमानान्त्साक्षाम तान्बाहुभिः शाशदानान् ।
यद्वा नृभिर्वृत इन्द्राभियुध्यास्तं त्वयाजिं सौश्रवसं जयेम ॥४॥

भा०—(यत्) जब तू (महतः) बड़े २ (मन्यमानान्) अभिमानशील शत्रुओं को (योधयाः) हम से लड़ा, और हम (शाशदानान्) मारते हुए (तान्) उनको (बाहुभिः) बाहुओं से (साक्षाम) पराजित करें । (वा) और (यत्) जब हे (इन्द्र) सेनापते ! तू (नृभिः वृतः) मनुष्यों या वीर नायकों से घिर कर (अभियुध्याः) शत्रुओं का मुकाबला करे तब हम (त्वया) तेरे बल से (तं) उस (सौश्रवसं आजिं) उत्तम यश-कीर्त्ति-जनक संग्राम का विजय करें । इसी प्रकार सूर्य या विद्युत् बड़े २ मेघ को प्रहार करता है तो हम बाधक कारण पवनादि से छिन्न-भिन्न मेघों को संघीभूत करें, तब पवनों सहित विद्युत् मेघ का आघात करे तो हम (सौश्रवसं) उत्तम अन्नप्रद वर्षा को प्राप्त करते हैं ।

प्रेन्द्रस्य वोचं प्रथमा कृतानि प्र नूतना मघवा या चकार ।
यदेददेवीरसहिष्ट माया अथाभवत्केवलः सोमो अस्य ॥ ५ ॥

भा०—(इन्द्रस्य) इन्द्र, शत्रुहन्ता सेनापति के (प्रथमा) प्रथम, मुख्य (कृतानि) कर्त्तव्यों को मैं (प्र वोचम्) उपदेश करता हूं (मघवा) ऐश्वर्यवान् धनवान् (या) जिन २ (नूतना) अति प्रशस्त, नये २ कार्यों को भी (चकार) करे, उनका भी (प्र वोचं) अच्छी प्रकार वर्णन करूं। (यत्) जब वह (अदेवीः मायाः) अमानुषी, दुष्ट पुरुषों के विचित्र २ कपट-कृत्यों को भी पराजित करे (अथ) अनन्तर (सोमः) यह ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र (केवलः) केवल (अस्य अभवत्) उसी के ही अधीन हो जाता है।

तवेदं विश्वमभितः पशव्यं१ यत्पश्यसि चक्षसा सूर्यस्य।
गवामसि गोपतिरेक इन्द्र भक्षीमहि ते प्रयतस्य वस्वः॥ ६॥

भा०—हे (इन्द्र) परमैश्वर्यप्रद प्रभो! राजन्! (यत्) जो तू (सूर्यस्य चक्षसा) सूर्य के प्रकाश से (पश्यसि) देखता है, उसको प्रकाशित करता है, इसलिये (इदं विश्वम्) यह समस्त विश्व (अभितः) सब तरफ (तव) तेरे ही (पशव्यं) 'पशव्य' अर्थात् इन्द्रियों से देखने योग्य है। अथवा (इदं ते विश्वं पशव्यं) यह तेरा समस्त विश्व दर्शनीय है या पशु अर्थात् द्रष्टा, जीवों के भोगने योग्य है। अर्थात् तुझ द्रष्टा के ही अनुरूप है। तू (गवाम् गोपतिः असि) सब वाणियों, भूमियों और सूर्यादि लोकों का गौओं के पालक के समान स्वामी है। (प्रयतस्य) सर्वोत्कृष्ट नियन्ता और सञ्चालक तेरे ही दिये (वस्वः) ऐश्वर्य का हम (भक्षीमहि) भोग करें अथवा (वस्वः प्रयतस्य ते भक्षीमहि) सब में बसने वाले सर्वोत्कृष्ट यत्नवान् वा नियन्ता तेरा ही हम भजन करें।

बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य।
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥७॥२३

भा०—व्याख्या देखो सू० ९७। १०॥ इति त्रयोविंशो वर्गः॥

[६६]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ १—३, ७ विष्णुः । ४—६ इन्द्राविष्णू देवते ॥ छन्दः—
१, ६ विराट् त्रिष्टुप् । २, ३ त्रिष्टुप् । ४, ५, ७ निचृत् त्रिष्टुप् ॥
सप्तर्चं सूक्तम् ॥

परो मात्रया तन्वा वृधान न ते महित्वमन्वश्नुवन्ति ।
उभे ते विद्म रजसी पृथिव्या विष्णो देव त्वं परमस्य वित्से ॥१॥

भा०—हे (वृधाना) सब से बड़े ! वा हे समस्त जगत् के बढ़ाने हारे ! हे (विष्णो) सर्वव्यापक ! (तन्वां) अति विस्तृत या जगत् को फैलाने वाले (मात्रया) समस्त जगत् को बनाने वाली प्रकृति से भी (परः) उत्कृष्ट (ते) तेरे (महित्वम्) महिमा को कोई भी (न अनु अश्नुवन्ति) पा नहीं सकते, नहीं पहुंच सकते । हे (देव) सर्वप्रकाशक! (पृथिव्याः ते) समस्त संसार को विस्तारित करने वाले तेरे ही बनाये इन (उभे) दोनों (रजसी) सूर्य पृथिवी वा आकाश और भूमि दोनों लोकों को (विद्म) जानते हैं । और तू (अस्य) इस से भी (परम्) उत्कृष्ट तत्त्व को (वित्से) प्राप्त है और जानता है ।

न ते विष्णो जायमानो न जातो देव महिम्नः परमन्तमाप ।
उदस्तभ्ना नाकमृष्वं बृहन्तं दाधर्थ प्राचीं ककुभं पृथिव्याः॥२॥

भा०—हे (विष्णो) व्यापक जगदीश्वर (न जायमानः) न उत्पन्न होता हुआ और (नः जातः) न उत्पन्न हुआ कोई (ते महिम्नः) तेरे महान् सामर्थ्य के (परम् अन्तम्) परली सीमा को (आप) प्राप्त कर सका है । हे (देव) सर्वप्रकाशक ! तू (बृहन्तं) बड़े भारी, (ऋष्वं) महान् (नाकम्) सब दुःखों से रहित, परम मोक्ष धाम और महान् आकाश को भी (उत् अस्तभ्नाः) उठा रहा है । और (पृथिव्याः) पृथिवी की (प्राचीं ककुभं) प्राची दिशा को जैसे सूर्य प्रकाशित करता है उसी प्रकार

तू ही (पृथिव्याः) जगत् मात्र को विस्तारित करने वाली सर्वाश्रय प्रकृति को (प्राचीं ककुभम्) जगत् के उत्पन्न होने के पूर्व से उत्तम रूप से प्रकट होने वाले आर्जवी भाव अर्थात् विकृतिभाव को (दाधर्थ) धारण कराता है। 'ककुप्'—ककुभिनी भवति, ककुप् कुब्जं कुजतेः उब्जतेर्वा। निरु० ७।३।५॥ कुजि स्तेयकरणार्थः। उब्जिरार्जवीभावे। आर्जवीभावः प्रवृत्तिः प्रह्वता वा॥

इरा॑वती धेनु॒मती॒ हि भू॒तं सू॑यव॒सिनी॒ मनु॑षे दश॒स्या।
व्य॑स्तभ्ना॒ रोद॑सी विष्णवे॒ते दा॒धर्थ॑ पृ॒थि॒वीम॒भितो॑ म॒यूखैः॑ ॥३॥

भा०—हे (द्यावापृथिव्यौ) आकाश और भूमि वा सूर्य और भूमि! तुम दोनों (इरा-वती) जलों, अन्नों से युक्त तथा (धेनुमती) रस पान कराने वाली, गौ, वाणी तथा किरणों से युक्त, और (मनुषे) मनुष्य के लिये (सु-यवसनी) उत्तम अन्न वाली और (दशस्या) नाना सुख भोग देने वाली (भूतम्) होवो। हे (विष्णो) व्यापक प्रभो! तू (एते रोदसी) इन दोनों पृथ्वी और आकाश को (वि अस्तभ्नाः) विशेष प्रकार से थामे है। और तू (पृथिवीम्) पृथिवी को (अभितः) सब ओर से (मयूखैः) किरणों से वा चारों ओर लगी खूंटियों से जैसे, (दाधर्थ) धारण किये हुए है।

उ॒रुं य॒ज्ञाय॑ चक्रथुरु लो॒कं ज॒नय॑न्ता॒ सूर्य॑मु॒षास॑म॒ग्निम्।
दास॑स्य चिद्वृषशि॒प्रस्य॑ मा॒या ज॒घ्नथु॑र्नरा पृत॒नाज्ये॑षु ॥ ४ ॥

भा०—हे (नरा) नायको! हे स्त्री पुरुषो! हे (इन्द्र-विष्णू) विद्युत् विविध जल-धारा को वर्षाने हारे सूर्य वा पवन के समान लोकोपकारक जनो! जिस प्रकार विद्युत् तथा मेघ का वर्षाने वाले तुम दोनों मिलकर (सूर्यम्) सूर्य, (उषासम्) और उसकी दग्ध करने वाली ताप शक्ति और अग्नि तत्व को (जनयन्ता) उत्पन्न करते हुए (यज्ञाय) 'यज्ञ' अर्थात् तत्वों के परस्पर मिलने के लिये, (उरुं लोकं चक्रथुः) विशाल स्थान अन्तरिक्ष को उपयोगी बनाते हैं और (वृषशिप्रस्य दासस्य)

वर्षते मेघ के स्वरूप वाले जलप्रद मेघ की (मायाः) नाना रचनाओं को (पृतनाज्येषु) जलों के निमित्त आघात करते हैं उसी प्रकार आप दोनों, (सूर्यम्) सूर्य के समान तेजस्वी, और (उषासम्) उषा के समान कान्तियुक्त विदुषी और (अग्निम्) अग्नि के समान ज्ञानप्रकाशक विद्वान् को प्रकट करते हुए (यज्ञाय) परस्पर दान-प्रतिदान, सोमजन, सत्संगादि के लिये (उरुं लोकं चक्रथुः उ) विशाल स्थान, भवन गृहादि बनाओ। और (पृतनाज्येषु) संग्रामों में (वृष-शिप्रस्य) बलवान् प्रमुख नेता वाले (दासस्य) प्रजानाशक शत्रु जन की (मायाः) सब कुटिल चालों का (जघ्नथुः) नाश करो।

इन्द्राविष्णू दृंहिताः शम्बरस्य नव पुरो नवतिं च श्नथिष्टम्।
शतं वर्चिनः सहस्रं च साकं हथो अप्रत्यसुरस्य वीरान् ॥५॥

भा०—हे (इन्द्राविष्णू) इन्द्र ! ऐश्वर्यवन् हे विष्णो! व्यापक शक्तिशालिन् ! आप दोनों (शम्बरस्य) शान्ति, प्रजा सुख के नाशक शत्रु के (नव नवतिं च पुरः) ९९ नगरियों या प्रकारों को (श्नथिष्टम्) नाश करो। (असुरस्य) बलवान् शत्रु के (अप्रति) बेजोड़, (शतं सहस्रं च वर्चिनः वीरान्) सौ, हज़ार बलवान् तेजस्वी वीरों को भी (साकं हथः) एक साथ दण्डित करो।

इयं मनीषा बृहती बृहन्तोरुक्रमा तवसा वर्धयन्ती।
ररे वां स्तोमं विदथेषु विष्णो पिन्वतमिषो वृजनेष्विन्द्र ॥ ६ ॥

भा०—हे (विष्णो) व्यापक सामर्थ्य वाले ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रुहन्तः ! (इयं) यह (बृहती) बड़ी, (मनीषा) मन की प्रेरक शक्ति, प्रज्ञा, (उरुक्रमा) बड़े पराक्रम वाले, (बृहन्ता) बड़े सामर्थ्यवान् (वां) आप दोनों को (तवसा) बल से (वर्धयन्ती) बढ़ाती हुई (विदथेषु) संग्रामों के अवसरों में (स्तोमं ररे) उत्तम संघ-बल को प्रदान करती है। आप दोनों (वृजनेषु) शत्रुओं को दूर करने में समर्थ

प्रयाणकारी बलों में (इषः पिन्वतम्) अन्नादि तथा, तीव्र प्रेरणाओं को प्रदान करो।

वषट् ते विष्णवास आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम्।
वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥२४

भा०—हे (विष्णो) विविध प्रकार से व्यापक, नाना सैन्यों से घिरे हुए या विशेष नियमों में बद्ध ! (ते) तेरा (आसः) स्थापन (वषट्) सत्कारपूर्वक (आकृणोमि) करता हूं। हे (शिपिविष्ट) नाना तेजों, पराक्रमों से युक्त ! सूर्यवत् तेजस्विन् ! तू (मे) मुझ राष्ट्र जन का (तत् हव्यम् जुषस्व) वह नाना प्रकार ग्राह्य उपायन, भेंटादि स्वीकार कर (त्वा) तुझे (मे) मेरे (सु-स्तुतयः गिरः) उत्तम स्तुति करने में पटु विद्वान् जन (वर्धन्तु) बढ़ावें। हे विद्वान् पुरुषो ! (यूयं) आप लोग (सदा स्वस्तिभिः नः पात) सदा उत्तम २ शान्ति और सुखप्रद साधनों से हमारी रक्षा करो। विष्णुः—अथ यद्विषितो भवति। विशतेर्वा व्यश्नोतेर्वा। निरु० १२। १९॥ इति चतुर्विंशो वर्गः॥

[१००]

वसिष्ठ ऋषिः॥ विष्णुर्देवता॥ छन्दः—१, २, ५, ६, ७ निचृत् त्रिष्टुप्। ३ विराट् त्रिष्टुप्। ४ आर्षी त्रिष्टुप्॥ सप्तर्चं सूक्तम्॥

नू मर्तो दयते सनिष्यन्यो विष्णव उरुगायाय दाशत्।
प्र यः सत्राचा मनसा यजात एतावन्तं नर्यमाविवासात्॥ १ ॥

भा०—(यः) जो (मर्त्तः) मनुष्य, (सनिष्यन्) दान देने की इच्छा से (दयते) दान देता और दया करता है वही (उरु-गायाय) बहुतों से, अति स्तुतियोग्य (विष्णवे) व्यापक परमेश्वर के निमित्त ही (दाशत्) दान करे। (यः) जो मनुष्य (सत्राचा मनसा) सत्यनिष्ठ मन से (प्र यजाते) अच्छी प्रकार यज्ञ, दान करता वा परम देव की पूजा करता

वह (एतावन्तं) इतना ही (नर्यम्) मनुष्यों के हितकारी वा सब मनुष्यों में व्यापक परमेश्वर की (आ विवासत्) सेवा किया करता है।

त्वं विष्णो सुमतिं विश्वजन्यामप्रयुतामेवयावो मतिं दाः।
पर्चो यथा नः सुवितस्य भूरेरश्वावतः पुरुश्चन्द्रस्य रायः ॥२॥

भा०—हे (विष्णो) सर्वव्यापक प्रभो ! (त्वं) तू (विश्वजन्या) सब जनों की हितकारिणी, (अप्रयुताम्) सब के साथ मिली हुई, (सुमतिं मतिम्) उत्तम ज्ञानयुक्त बुद्धि या उत्तम बुद्धिसहित ज्ञान का (दाः) प्रदान कर। (यथा) जिससे, (नः) हमारे पास (सुवितस्य) उत्तम रीति से प्राप्त (भूरेः अश्वावतः) बहुत से अश्वों से युक्त, (पुरुचन्द्रस्य) बहुतों के आह्लादकारक (रायः) ऐश्वर्य का (पर्चः) हम से सम्पर्क हो।

त्रिर्देवः पृथिवीमेष एतां वि चक्रमे शतर्चसं महित्वा।
प्र विष्णुरस्तु तवसस्तवीयान्त्वेषं ह्यस्य स्थविरस्य नाम ॥ ३ ॥

भा०—(देवः) तेजस्वरूप, प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ने (महित्वा) अपने महान् सामर्थ्य से (एतां) इस (पृथिवीम्) पृथ्वी को (त्रिः) तीन प्रकार से (शत-अर्चसम्) सैकड़ों दीप्ति युक्त पदार्थों से पूर्ण (वि चक्रमे) बनाया है। सूर्य, विद्युत्, और अग्नि तीनों प्रकारों की अग्नि से पृथ्वी को सैकड़ों सहस्रों चमकते पदार्थों का भण्डार बना डाला है। वह (तवसः तवीयान्) बलवान् से बलवान् (विष्णुः) सर्वव्यापक प्रभु (प्र अस्तु) सब से ऊंचा और उत्तम है। उस (स्थविरस्य) स्थायी, नित्य प्रभु का (नाम) नाम, स्वरूप और शासन सूर्य के प्रकाश के समान (त्वेषं हि) तेजोमय, तीक्ष्ण और उज्ज्वल ही है।

वि चक्रमे पृथिवीमेष एतां क्षेत्राय विष्णुर्मनुषे दशस्यन्।
ध्रुवासो अस्य कीरयो जनास उरुक्षितिं सुजनिमा चकार ॥ ४ ॥

भा०—(एषः) वह (विष्णुः) विशेष रूप से संसार को प्रबन्ध में बांधने और उसमें व्यापने हारा परमेश्वर (एतां पृथिवीम्) इस पृथिवी

को भी (मनुपे दशस्यन्) मनुष्यों को दान देता हुआ (क्षेत्राय) निवास करने के लिये, वा क्षेत्र, निवास योग्य देह धारण करने के लिये (वि चक्रमे) विविध प्रकार का बनाता है। (अस्य) इसकी (कीरयः) स्तुति करने वाले (जनासः) जन्तु, आत्मगण (ध्रुवासः) सदा स्थिर, नित्य होते हैं। उनके लिये ही वह पृथ्वी का (उरु-क्षितिम्) बहुत मनुष्यों से बसने योग्य और (सुजनिम्) उत्तम रीति से जन्तुओं और अन्नादि ओषधियों को उत्पन्न करने में समर्थ (आ चकार) बनाता है।

प्र तत्ते अद्य शिपिविष्ट नामार्यः शंसामि वयुनानि विद्वान्।
तं त्वा गृणामि तवसमतव्यान्क्षयन्तमस्य रजसः पराके ॥ ५ ॥

भा०—हे (शिपिविष्ट) सूर्य के समान रश्मियों से आवृत! तू (अर्यः) सबका स्वामी, (वयुनानि) सब कर्मों और ज्ञानों को (विद्वान्) जानने हारा है। (तत्) तो तेरे ही (नाम) स्वरूप और (वयुनानि) कर्मों की (अद्य) आज मैं (शंसामि) स्तुति करता हूं। मैं (अतव्यान्) अल्पशक्ति निर्बल मनुष्य, (त्वा तवसं) तुझ बलवान् की स्तुति करता हूं। और (अस्य रजसः पराके) इस महान् विश्व के परे भी विद्यमान महान् से महान् (त्वा तं गृणामि) उस तेरी मैं स्तुति प्रार्थना करता हूं।

किमित्ते विष्णो परिचक्ष्यं भूत्प्र यद्ववक्षे शिपिविष्टो अस्मि।
मा वर्पो अस्मदप गूह एतद्यदन्यरूपः समिथे बभूथ ॥ ६ ॥

भा०—(ते) तेरा (किम् इत्) कौनसा रूप (परिचक्ष्यं भूत्) सर्वत्र दर्शनीय या कथन करने योग्य है (यत्) जिसको तू (ववक्षे) स्वयं उपदेश कर रहा है कि मैं (शिपिविष्टः अस्मि) रश्मियों में प्रविष्ट, उनसे घिरे सूर्य के समान तेजोरूप होकर सर्वत्र व्यापक हूँ। (अस्मत्) हम से अपने (एतत्) उस तेजोमय (वर्पः) रूप को (मा अप गूह) मत छिपा (यत्) क्योंकि तू (समिथे) प्राप्त होने पर (अन्यरूपः मा बभूथ) दूसरे रूपों में भी मत प्रकट हो।

वषट् ते विष्णवास आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम्।
वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ७।२५।६

भा०—व्याख्या देखो सू० ९९ । ७ ॥ इति पञ्चविंशो वर्गः ॥ इति षष्ठोऽध्यायः ॥

अथ सप्तमोऽध्यायः

[१०१]

वसिष्ठः कुमारो वाग्नेय ऋषिः ॥ पर्जन्यो देवता ॥ छन्दः—१, ६ त्रिष्टुप् । २, ४, ५ विराट् त्रिष्टुप् । ३ निचृत् त्रिष्टुप् ॥

तिस्रो वाचः प्र वद ज्योतिरग्रा या एतद्दुह्रे मधुदोघमूधः ।
स वत्सं कृण्वन्गर्भमोषधीनां सद्यो जातो वृषभो रोरवीति ॥१॥

भा०—जिस प्रकार (वृषभः) बरसता मेघ (रोरवीति) गर्जता है (ज्योतिरग्राः वाचः वदति) प्रथम विद्युत् ज्योति को चमका कर बाद में गर्जना करता है और (ऊधः मधुदोघम् दुह्रे) अन्तरिक्ष से जल को दोहता है, और (ओषधीनां गर्भं कृण्वन्) ओषधियों को गर्भित करता है । उसी प्रकार हे विद्वन् ! तू (ज्योतिरग्राः) उत्तम ज्ञान ज्योतियों से युक्त वा अग्र भाग में प्राण व रूप ज्योति से युक्त (तिस्रः वाचः) तीनों उन वेद-वाणियों, गद्य, यजुष, छन्द, ऋग् और (गीति साम) को (प्र वद) अच्छी प्रकार उपदेश कर (याः) जिनसे (वृषभः) मनुष्यों में श्रेष्ठ, और मेघवत् गंभीर वाणी का उपदेष्टा जन (उतत् ऊधः) इस ऊर्ध्व स्थित ब्रह्म को (मधु-दोघम्) मधुर ऋङ्मय ज्ञान रस को (दुह्रे) दोहन करता है (सः) वह (ओषधीनां) ओषधियों, अन्नादि के ग्रहण करने वाले (वत्सं) छोटे बच्चे के समान बालक को अपना (वत्सं कुण्वन्) समीपस्थ अन्ते वासी शिष्य बना कर (सद्यः) अति शीघ्र ही (जातः) स्वयं प्रकट होकर (रोरवीति) उपदेश करता है ।

यो वर्धन ओषधीनां यो अपां यो विश्वस्य जगतो देव ईशे ।
स त्रिधातु शरणं शर्म यंसत्त्रिवर्तु ज्योतिः स्वभिष्ट्य१स्मे ॥२॥

भा०—(ओषधीनां वर्धनः) ओषधियों को बढ़ाने वाला, (अपां वर्धनः) जलों का बढ़ाने वाला, मेघवत् सूर्यवत् (देवः) प्रकाश, जल का देने वाला (विश्वस्य जगतः ईशे) सब जगत् का स्वामिवत् है । वह (त्रिवर्तु ज्योतिः यंसत्) तीनों ऋतुओं में सुखप्रद प्रकाश देता है उसी प्रकार (यः) जो (देवः) सर्वसुखदाता प्रभु (ओषधीनां वर्धनः) उष्णता को धारण करने वाले जीवों को बढ़ाने वाला, (यः) जो (अपां वर्धनः) जलस्थ, जलचारी जीवों को बढ़ाने वाला और (यः) जो (विश्वस्य जगतः) समस्त जगत् का (ईशे) स्वामी है । (सः) वह प्रभु परमेश्वर (अस्मे) हमें (सु-अभिष्टिः) सुख से चाहने योग्य (त्रिवर्तु ज्योतिः) त्रिविध ज्ञान देने वाला वेदमय प्रकाश और (त्रि-धातु) तीन धातु सुवर्णादि से बने (शरणं) गृह और तीन धातु वात, पित्त कफ से बने शरण-योग्य देह और सुख तथा (त्रिवर्तु) तीनों कालों में वर्त्तने वाला, नित्य (यंसत्) प्रदान करे।

स्तरीरु त्वद्भवति सूत उ त्वद्यथावशं तन्वं चक्र एषः ।
पितुः पयः प्रति गृभ्णाति माता तेन पिता वर्धते तेन पुत्रः ॥३॥

भा०—(त्वत्) मेघ का एक रूप (स्तरीः) न प्रसवने वाली गौ के समान होता है, (सूते त्वत्) और उसका एक रूप सूती गौ के समान जल धाराएं उत्पन्न करता है । (एषः यथावशं तन्वं चक्रे) वह सूर्य की कान्ति के अनुसार अपना व्यापक रूप बना लेता है । वह (पितुः पयः प्रतिगृभ्णाति) सूर्य रूप पिता से जल को ग्रहण करता और (तेन) उससे (माता) पृथिवी भी जल ग्रहण करती है । (तेन) उस जल से (पिता वर्धते) सूर्य महिमा से बढ़ता और (तेन पुत्रः वर्धते) उसी जल से पुत्रवत् ओषधि वनस्पति तथा जीवादि भी बढ़ते हैं । उसी प्रकार हे प्रभो ! (त्वत्) तेरा एक रूप

(स्तरीः भवति उ) सर्वाच्छादक सर्वरक्षक होता है और (त्वत्) दूसरा रूप (सूते उ) समस्त जगत् को उत्पन्न करता है। (यथावशं) जितनी इच्छा होती है उतना ही (एषः) वह परमेश्वर (तन्वं) अपना विस्तृत संसार (चक्रे) बना ले सक्ता है। (माता) जिस प्रकार माता (पितुः) पिता से (पयः प्रतिगृभ्णाति) वीर्य ग्रहण कर गर्भ धारण करती है और उससे (पिता पुत्रः वर्धते) पिता का वंश और प्रिय पुत्र भी बढ़ता है। उसी प्रकार (पितुः) सर्वपालक तुझ पिता से ही (माता) सर्वनिर्मात्री प्रकृति (पयः) वीर्य, बल, शक्ति को (प्रति गृभ्णाति) प्रति सर्ग ग्रहण करती है और (तेन) उससे ही (पिता) सर्वपालक प्रभु की महिमा (वर्धते) बढ़ती है या (तेन) उस शक्ति से ही (पिता) पालक प्रभु (वर्धते) जगत् को बढ़ता है और (तेन पुत्रः) उससे ही पुत्रवत् जीवजगत् भी (वर्धते) बढ़ता, वृद्धि को प्राप्त करता है।

यस्मि॒न्विश्वा॑नि॒ भुव॑नानि त॒स्थुस्ति॒स्रो द्याव॑स्त्रे॒धा स॒स्रुरापः॑।
त्र॒यः कोशा॑स उप॒सेच॑नासो॒ मध्वः॑ श्चोतन्त्य॒भितो॑ विर॒प्शम् ॥४॥

भा०—(यस्मिन्) जिसके आधार पर (विश्वानि भुवनानि) समस्त लोक, समस्त उत्पन्न प्राणी, (तस्थुः) स्थिर हैं, (यस्मिन् तिस्रः द्यावः) जिसके आश्रय पर तीनों लोक पृथिवी, अन्तरिक्ष और सूर्य स्थित हैं। (यस्मिन्) जिसका आश्रय लेकर (आपः त्रेधा सस्रुः) जल तीन प्रकार से गति करते हैं, पृथिवी से वाष्प बनकर ऊपर उठते हैं, मेघ से जल बन कर नीचे आते हैं और समुद्र से वायु के बलपर भूमिपर आते हैं। अथवा (आपः) प्रकृति के सूक्ष्म परमाणु जिसके आश्रय पर (त्रेधा सस्रुः) तीन प्रकार की गति करते हैं—संयोग, विभाग और चक्र गति। और (यस्मिन्) जिसके आश्रय (त्रयः कोशासः) तीन कोश (मध्वः उपसेचनासः) जल बरसाने वाले मेघों के समान मधुर आनन्द की वर्षा करने वाले होकर (विरप्शम् अभितः) उस महान् के चारों ओर (श्चोतन्ति) गति करते हैं।

अध्यात्म में तीन कोश—विज्ञानमय, मनोमय, आनन्दमय। सूर्य में तीन कोश—क्रोमोस्फ़ीयर फ़ोटोस्फ़ीयर, और उद्रजन। यह सब उसी महान् प्रभु परमेश्वर के ही अधीन अद्भुत कर्म हो रहे हैं।

इ॒दं वचः॑ प॒र्जन्या॑य स्व॒राजे॑ हृ॒दो अ॑स्त्वन्त॑रं॒ तज्जु॑जोषत्।
म॒यो॒भुवो॑ वृ॒ष्टयः॑ सन्त्व॒स्मे सु॑पिप्प॒ला ओष॑धीर्दे॒वगो॑पाः॥ ५॥

भा०—(इदं वचः) यह वचन (स्वराजे) स्वप्रकाशस्वरूप, (पर्जन्याय) सब रसों के देने वाले, सब के उत्पादक प्रभु परमेश्वर के लिये (हृदः अन्तरं अस्तु) हृदय के भीतर हो। (तत्) उस स्तुति-वचन को वह प्रभु (जुजोषत्) स्वीकार करे (अस्मे) हमारे सुख के लिये (मयः-भुवः वृष्टयः सन्तु) सुख के देने वाली वृष्टियां सदा हों। और (सुपिप्पलाः) उत्तम फलयुक्त (देव-गोपाः) मेघद्वारा रक्षित (ओषधीः) ओषधियें भी (मयः-भुवः सन्तु) सुखकारी हों।

पर्जन्यः—पर्जन्यस्तृपेः। आद्यन्त विपरीतस्य। तर्पयिता जन्यः। परो जेता वा। जनयिता वा। प्रार्जयिता वा रसानाम्।

स रे॑तो॒धा वृ॑ष॒भः शश्व॑तीनां॒ तस्मि॑न्ना॒त्मा जग॑तस्त॒स्थुष॑श्च।
तन्म॑ ऋ॒तं पा॑तु श॒तशा॑रदाय यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः॥ ६॥ १

भा०—(सः) वह प्रभु परमेश्वर (रेतोधाः) प्रकृति देवी में विश्व को उत्पन्न करने वाले परम बीज, रेतस, तेज को आधान करने वाला (शश्वतीनां वृषभः) मेघ के समान सब सुखों का वर्षक, बहुत सी गौओं के बीच सांड के समान समस्त पृथिवियों में जीवों का बीज वपन करने वाला है, (तस्मिन्) उसके ही आश्रय (जगतः तस्थुषः च आत्मा) जंगम और स्थावर संसार का आत्मा या सत्ता विद्यमान है। (तत् ऋतं) वह सत्यज्ञानमय परमेश्वर (मे शतशारदाय पातु) मेरे जीवन को सौ वर्षों तक पालन करे। हे विद्वान् पुरुषो! (यूयं स्वस्तिभिः नः सदा पात)

आप लोग उत्तम कल्याणकारक उपायों से हमारी सदा रक्षा करें। इति प्रथमो वर्गः ॥

[१०२]

वसिष्ठः कुमारो वाग्नेय ऋषिः ॥ पर्जन्यो देवता ॥ छन्दः—१ याजुषी विराट् त्रिष्टुप्। २, ३ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ इयृचं सूक्तम् ॥

पर्जन्याय प्र गायत दिवस्पुत्राय मीळ्हुषे ।
स नो यवसमिच्छतु ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो! (दिवः पुत्राय) प्रकाशमान सूर्य से उत्पन्न, सूर्य के पुत्र व (मीढुषे) सेचन करने में समर्थ, वर्षाशील (पर्जन्याय) जलों के दाता मेघ के सदृश (दिवः पुत्राय) ज्ञान प्रकाश से बहुतों की रक्षा करने वाले, (मीढुषे) हृदय में आनन्द के सेचक, (पर्जन्याय) सब रसों के दाता, सब के उत्पादक, प्रभु परमेश्वर के लिये (प्र गायत) अच्छी प्रकार स्तुति, ज्ञान करो। (सः) वह (नः) हमें (यवसम्) अन्नादि देना (इच्छतु) चाहे।

यो गर्भमोषधीनां गवां कृणोत्यर्वताम् ।
पर्जन्यः पुरुषीणाम् ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो (ओषधीनाम्) मेघ के समान ओषधियों के (गवाम्) गौओं, (अर्वताम्) अश्वों, और (पुरुषीणाम्) मानव स्त्रियों के (गर्भम् कृणोति) गर्भ उत्पन्न करता है, वही (पर्जन्यः) सब का सब से उत्तम उत्पादक परमेश्वर है। पर्जन्यः—परो जनयिता। (निरु०)

तस्मा इदास्ये हविर्जुहोता मधुमत्तमम् ।
इळां नः संयतं करत् ॥ ३ ॥ २ ॥

भा०—जो परमेश्वर (नः) हमारे (आस्ये) मुख में (इडा) वाणी को (संयतं) अच्छी प्रकार सुनियन्त्रित (करत्) करता है (तस्मै

इव) उसी प्रभु परमेश्वर के गुणगान करने के लिये (आस्ये) अपने मुख में (मधुमत्-तमम्) अत्यन्त मधुर गुण से युक्त (हविः) वचन का (जुहोत) धारण करो और अन्यों को प्रदान करो। इसी प्रकार जो प्रभु मेघ के समान (नः इडां संयतं करत्) हमें नियम से अन्न देता है उसी के लिये मधुर अन्नादि को (आस्ये) छिन्न भिन्न करके दूर २ तक फैला देने वाले अग्नि में (हविः) मधुर अन्नादि चरु प्रदान करो। उसी प्रभु के लिये अपने मुख में भी मधुर अन्न का ही ग्रहण करो। मलिन पदार्थ मांसादि का नहीं। इति द्वितीयो वर्गः ॥

[१०३]

वसिष्ठ ऋषिः ॥ मण्डूका देवताः ॥ छन्दः—१ आर्षी अनुष्टुप्। २, ६, ७, ८, १० आर्षी त्रिष्टुप्। ३, ४ निचृत् त्रिष्टुप्। ५, ६ विराट् त्रिष्टुप् ॥ दृर्च सूक्तम् ॥

संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः।
वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मण्डूका अवादिषुः ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (संवत्सरं शशयानाः) एक वर्ष पड़े रहने वाले (मण्डूकाः) जलवासी मेंडक (पर्जन्य-जिन्वितां वाचं प्र अवादिषुः) मेघ से प्रदान की वाणी को खूब ऊंचे २ बोलते हैं उसी प्रकार (व्रत-चारिणः) नियम, व्रत का आचरण करने वाले (संवत्सरं शशयानाः) वर्ष भर तीक्ष्ण तप करते हुए (ब्राह्मणाः) 'ब्रह्म', वेद के जानने वाले, वेदज्ञ, वेदाभ्यासी, विद्वान् जन (मण्डूकाः) ज्ञान, आनन्द में मग्न होकर (पर्जन्य-जिन्वितां) सर्वोत्पादक प्रभु की दी हुई (वाचं) वेद वाणी का (प्र अवादिषुः) उत्तम रीति से प्रवचन किया करें।

'मण्डूकाः' मज्जूकाः मज्जनात्। मदतेर्वा मोदतिकर्मणः। मन्दतेर्वा तृप्तिकर्मणः। मण्डतेरिति वैयाकरणाः। मण्ड एषामोक इति वा। मण्डो मदेर्वा। मुदेर्वा। (निरु० ९। ६)

दि॒व्या आपो॑ अ॒भि यदे॑नमाय॒न्दृतिं॒ न शुष्कं॑ सर॒सी शया॑नम् ।
गवा॒मह॒ न मा॒युर्व॒त्सिनी॑नां म॒ण्डूका॑नां व॒ग्नुरत्रा॒ समे॑ति ॥ २ ॥

भा०—(दृतिं शुष्कं न) सूखे चमड़े के पात्र के समान (सरसि शयानं) तालाब में पड़े (एनम्) इस मण्डूक को (दिव्या आपः) आकाश के जल (यद् अभि आयन्) जब प्राप्त होते हैं तब (मण्डूकानां वग्नुः) मेंडकों का शब्द (वत्सिनीनां गवां मायुः न) बछड़े वाली गौओं के शब्द के समान ही (सम् एति) आता है इसी प्रकार (शुष्कं दृतिं न) सूखे चर्मपात्र के समान (सरसि) प्रशस्त ज्ञानमार्ग में (शयानम्) तीक्ष्ण तप करते हुए (एनम् प्रति अभि) इस ब्राह्मण वर्ग को (दिव्याः आपः) ज्ञानमय परमेश्वर से प्राप्त होने वाली ज्ञान वाणियां वा ज्ञानी आप्त पुरुष, वर्षा जल के समान ही (आयन्) प्राप्त होते हैं तब (मण्डूकानां) आनन्द वा ज्ञान में गहरे मग्न विद्वानों का (वग्नुः) उत्तम उपदेश और (वत्सिनीनाम्) नियम से ब्रह्मचर्यवास करने वाले शिष्यों से युक्त (गवाम् मायुः) वेदवाणियों की ध्वनि भी (अत्र) इस लोक में (सम् एति) अच्छी प्रकार सुनाई देती है । यदि परमेश्वर से प्राप्त वेद ज्ञान न हो तो यहां, इस लोक में ज्ञानवाणियां और विद्वानों के उपदेश भी सुनाई न दें ।

शशयानाः, शयानम्—शिञ् निशाने ।

यदी॑मेनाँ उश॒तो अ॒भ्यव॑र्षीत्तृ॒ष्याव॑तः प्रा॒वृष्याग॑तायाम् ।
अ॒क्ख॒ली॒कृत्या॑ पि॒तरं॒ न पु॒त्रो अ॒न्यो अ॒न्यमुप॒ वद॑न्तमेति ॥३॥

भा०—(उशतः) वर्षा को चाहने वाले और (तृष्यावतः एनान्) प्यासे इनके प्रति (प्रावृषि आगतायाम्) वर्षा काल आजाने पर (अभि अवर्षीत्) मेघ वर्षता है, (पुत्रः पितरं न) पिता के प्रति पुत्र के समान (वदन्तम् अन्यम् अन्यः उप एति) बोलते एक मेंडक के पास दूसरा जैसे आजाता है उसी प्रकार (आगतायां प्रावृषि) वर्षाकाल आनेपर (यद् ईम्) जब भी (उशतः) विद्या की कामना करने वाले और (तृष्या-

वतः एनान्) ज्ञान की पिपासा से युक्त इन शिष्यों के प्रति विद्वान् पुरुष मेघ के समान (अभि अवर्षीत्) ज्ञान की वर्षा करता है तब (वदन्तम् अन्यम् उप) उपदेश करते हुए एक के पास (अन्यः) दूसरा शिष्य (पुत्रः पितरं न) पिता के पास पुत्र के समान ही (अक्खलीकृत्य) विनम्र होकर (उप एति) आता है और उसकी शुश्रूषा कर ज्ञान प्राप्त करता है।

अन्यो अन्यमनु गृभ्णात्येनोरपां प्रसर्गे यदमन्दिषाताम्।
मण्डूको यदभिवृष्टः कनिष्कन्पृश्निः सम्पृङ्क्ते हरितेन वाचम् ४

भा०—जिस प्रकार (अपां प्रसर्गे) जलों के खूब होजाने पर (यत् अमन्दिषाताम्) जब दो मेंडक बहुत प्रसन्न होजाते (अन्यः अन्यम् अनुगृभ्णाति एक दूसरे को पकड़ लेता है, (कनिष्कन् मंडूकः पृश्निः हरितेन वाचं सम्पृङ्क्ते) पीला कूदता मेंडक हरे मेंडक से अपनी आवाज़ मिलाता है उसी प्रकार (यत्) जब (अपां प्रसर्गे) आप्त वेदज्ञानों के प्रदान करने के लिये गुरु शिष्य दोनों (अमन्दिषाताम्) अति प्रसन्न हो जाते हैं (एनोः) इन पूर्वोक्त गुरु और शिष्य दोनों में से (अन्यः) एक गुरु, आचार्य (अन्यम्) दूसरे को (अनुगृभ्णाति) अनुग्रहपूर्वक स्वीकार करता है और (यत्) जो (अभिवृष्टः) अभिषेचित विद्याव्रत स्नातक (मण्डूकः) अति हर्षवान् हो (कनिष्कन्) अन्यों को विद्या प्रदान करता है तब (पृश्निः) वेद का विद्वान् या प्रश्न करने योग्य विद्वान् (हरितेन) ज्ञान ग्रहण करने वाले शिष्य से (वाचम् संपृङ्क्ते) अपनी वाणी का सम्पर्क कराता है, उसको अपना ज्ञान वादानुवादपूर्वक प्रदान करता है।

यदेषामन्यो अन्यस्य वाचं शाक्तस्येव वदति शिक्षमाणः।
सर्वं तदेषां समृधेव पर्व यत्सुवाचो वदथनाध्यप्सु ॥ ५ ॥ ३ ॥

भा०—(यत्) जब (एषाम्) इन विद्वानों में से (अन्यः एक विद्वान् शिष्य (शिक्षमाणः) शिक्षा पाकर (अन्यस्य शाक्तस्य) दूसरे

शक्तिमान्, अधिक विद्या, तप आदि से सम्पन्न गुरु की सिखाई (वाचम् वदति) वाणी को कहता है और (यत्) जब (अप्सु अधि) प्राप्त शिष्यों वा प्रजाओं के बीच इन विद्वानों में (सुवाचः) उत्तम वाणी के बोलने हारे आप लोग (वदथन) उपदेश करते हैं (तत्) तब (एषां) इनका (सर्वं) समस्त (पर्वं) पालन योग्य व्रत, ब्रह्मचर्यादि वा (पर्व) पालन योग्य ज्ञानकाण्ड, अध्ययन वेदादि (समृधा इव) समृद्ध उत्सवादि के समान हो जाता है। इति तृतीयो वर्गः ॥

गोमा॑युरेको॑ अ॒जमा॑युरेकः॒ पृश्नि॒रेको॒ हरि॑त॒ एक॑ एषाम् ।
स॒मा॒नं नाम॑ बिभ्र॑तो॒ विरू॑पाः पुरु॒त्रा वाचं॑ पिपिशु॒र्वद॑न्तः ॥६॥

भा०—(एषाम्) इन विद्वान् ब्राह्मणों में से (एकः) एक (गो-मायुः) वेद वाणियों को उत्तम रीति से प्रवचन करने में समर्थ होता है। (एकः अज-मायुः) एक विद्वान् अजन्मा, आत्मा और परमेश्वर के विषय में प्रवचन-उपदेश करने में समर्थ होता है। (एक पृश्निः) एक प्रश्नोत्तर करने और उनका समाधाव करने में कुशल होता है। (एक हरितः) इनमें से एक ज्ञानों को ग्रहण करने में कुशल होता है। ये सब (समान) एक समान (नाम) 'ब्राह्मण' नाम धारण करते हुए भी (वि-रूपाः) विविध रूप विद्याओं को धारण करते हैं। वे (वदन्तः) उपदेश-प्रवचन करते हुए (पुरुत्रा वाचं पिपिशुः) नाना प्रकार से वाणी को प्रकट करते हैं।

ब्रा॒ह्म॒णासो॑ अतिरा॒त्रे न सोमे॒ सरो॒ न पू॒र्णम॒भितो॒ वद॑न्तः ।
सं॒व॒त्स॒रस्य॒ तदहः॒ परि॑ ष्ठ॒ यन्म॑ण्डूकाः प्रावृ॒षीणं॑ ब॒भूव॑ ॥ ७ ॥

भा०—(यत्) जिस प्रकार जब (संवत्सरस्य) वर्ष के बीच (प्रावृषीणं अहः बभूव) वर्षाकाल का दिन होता है, (तत् अहः) उस दिन (मण्डूकाः) मेंडक (पूर्णं सरः अभितो वदन्तः परि तिष्ठन्ति) भरे तालाव के चारों ओर बोलते हुए विराजते हैं। उसी प्रकार (अति-रात्रे) अति रात्र सोमयाग की रात्रि को अतिक्रमण कर व्रतधारी (सोमे) सोम अर्थात्

शिष्य के निमित्त (न) भी (ब्राह्मणासः) विद्वान् वेदज्ञ लोगो ! आप लोग (पूर्ण सरः अभितः वदन्तः) पूर्ण ब्रह्म या वेद ज्ञान का उपदेश करते हुए (संवत्सरस्य तत् अहः) वर्ष के उस दिन (परि स्थ) सब एक घेर सा बना कर बैठा करो ।

ब्राह्मणासः सोमिनो वाचमक्रत ब्रह्म कृण्वन्तः परिवत्सरीणम् ।
अध्वर्यवो घर्मिणः सिष्विदाना आविर्भवन्ति गुह्या न के चित् ८

भा०—(सोमिनः ब्राह्मणासः) सोमयाग करने वाले वा अपने अधीन सोम, ब्रह्मचारियों को शिक्षा देने वाले विद्वान् ब्रह्मवेत्ता लोग (परिवत्सरीणम्) वर्ष भर (ब्रह्म कृण्वन्तः) वेद का उपदेश करते हुए (वाचम् अक्रत) उत्तम प्रवचन करें । (अध्वर्यवः) यज्ञ-कर्त्ता (घर्मिणः) सूर्यवत् तेजस्वी या घर्म, प्रवर्ग्येष्टि करने हारे (सिष्विदानाः) स्वेद युक्त होकर भी (केचित्) कुछ विद्वान् लोग (गुह्या न) गुहा में बैठे तपस्वियों के समान (गुह्याः) गुहा, बुद्धि ज्ञान या हृदय-गुहा में ही रमण करते हुए (आविर्भवन्ति) प्रकट होते हैं या (न आविर्भवन्ति) नहीं प्रकट होते हैं । वे गुप्त प्रभाव से ही रहते हैं ।

देवहितिं जुगुपुर्द्वादशस्य ऋतुं नरो न प्र मिनन्त्येते ।
संवत्सरे प्रावृष्यागतायां तप्ता घर्मा अश्नुवते विसर्गम् ॥ ९ ॥

भा०—(संवत्सरे) वर्ष में (तप्ताः घर्माः) तपे घाम अर्थात् सूर्य के तेज (आगताया प्रावृषि) वर्षाकाल आने पर (विसर्गम् अश्नुवते) विविध प्रकार से जलों को व्याप लेते हैं, मेघ रूप से प्रकट करते हैं वे (द्वादशस्य) बारह मास के बने वर्षा के (देव-हितिं) जलप्रद मेघ की (जुगुपुः) रक्षा करते और (नरः) नायक वायुगण (ऋतुं न प्रमिनन्ति) वर्षा ऋतु को नष्ट नहीं होने देते उसी प्रकार (संवत्सरे) एक वर्ष में (प्रावृषि आगतायाम्) वर्षा के आनेपर (तप्ताः) तप से संतप्त, (घर्माः) तेजस्वी पुरुष भी (विसर्गम् अश्नुवते) विविध प्रकार के अध्याय, काण्डादि

से युक्त वेद का अभ्यास करते हैं। वे (द्वादशस्य) बारहों मास वर्षभर (देव-हितिं जुगुपुः) परमेश्वर के दिये ज्ञान-कोश की रक्षा करते हैं। और (एते) वे (नरः) उत्तम पुरुष (ऋतुं न प्र मिनन्ति) 'ऋतु' अर्थात् ज्ञानयुक्त वेद को उसी प्रकार नष्ट नहीं होने देते जैसे नर जीव अपने योनि में ऋतु का नाश नहीं होने देते।

गोमा॑युरदादजमा॑युरदात्पृश्नि॑रदाद्धरि॑तो नो वसू॑नि।
गवां॑ म॒ण्डूका॒ दद॑तः श॒तानि॑ सहस्रसा॒वे प्र ति॑रन्त॒ आयुः॑ १०।१६

भा०—(गो-मायुः) वाणियों का उपदेष्टा विद्वान् (नः वसूनि अदात्) हमें नाना ऐश्वर्य प्रदान करे। (अज-मायुः नः वसूनि अदात्) नित्य पदार्थ जीव, आत्मा और प्रकृति का उपदेश करने वाला विद्वान् भी हमें नाना ऐश्वर्य दे। (हरितः) ज्ञान संग्रह करने वाला विद्वान् भी (नः वसूनि अदात्) हमें ऐश्वर्य दे। (मंडूकाः) ज्ञान, मोक्षादि के आनन्द में स्वयं निमग्न और अन्यों को भी आनन्दित करने वाले विद्वान् जन (सहस्र-सावे) सहस्रों के ऐश्वर्यों और सुखों के देने के निमित्त (गवां शतानि) सैकड़ों वाणियों का (ददतः) उपदेश करते हुए (आयुः प्र तिरन्ते) आयु की वृद्धि करें। इति चतुर्थो वर्गः॥

[१०४]

वसिष्ठ ऋषिः॥ देवताः—१—७, १५, २५ इन्द्रासोमौ रक्षोहणौ। ८, १६, १९–२२, २४ इन्द्रः। ९, १२, १३ सोमः। १०, १४ अग्निः। ११ देवाः॥ १७ ग्रावाणः। १८ मरुतः। २३ वसिष्ठः। २३ पृथिव्यन्तरिक्षे॥ छन्दः—१, ६, ७ विराड्जगती। २ आर्षी जगती। ३, ५, १८, २१ निचृज्जगती। ८, १०, ११, १३, १४, १५, १७ निचृत् त्रिष्टुप्। ९ आर्षी त्रिष्टुप्। १२, १६ विराट् त्रिष्टुप्। १९, २०, २२ त्रिष्टुप्। २३ आर्ची भुरिग्जगती। २४ याजुषी विराट् त्रिष्टुप्। २५ पादनिचृदनुष्टुप्॥ पञ्चविंशत्यृचं सूक्तम्॥

इन्द्रा॑सोमा॒ तप॑तं॒ रक्ष॑ उ॒ब्जत॒ं न्य॑र्पयतं वृषणा तमो॒वृधः॑ ।
परा॑ शृणीतम॒चितो॒ न्यो॑षतं ह॒तं नु॒देथां॒ नि शि॑शीतम॒त्त्रिणः॑ ॥१॥

भा०—दुष्टों का दमन । हे (इन्द्रा सोमा) 'इन्द्र' ऐश्वर्यवन् ! शत्रु-हन्तः ! हे सोम, शासक जन ! राजा के पुत्रवत् प्रजाजन ! आप दोनों मिलकर (रक्षः तपतम्) विघ्नकारी दुष्ट पुरुषों को पीड़ित करो । इतना दण्ड दो कि वे पश्चात्ताप करें । (उब्जतम्) उनको झुकाओ, उनका गर्व चूर करो । हे (वृषणा) प्रबन्ध करने में समर्थ बलवान् जनो ! (तमोः-वृधः) अज्ञान, अन्धकारादि के बढ़ाने वाले लोगों को (नि अर्पयतम्) नीचे दबाओ कि वे उठकर प्रबल न हो जावें । (अचितः) अज्ञानी, मूर्ख लोगों को (परा शृणीतम्) इतना पीड़ित करो कि वे परे हट जायं । उनको (नि ओषतं) इतना सन्तापित करो कि नीचे दवे रहें, (हतं) उनको दण्डित करते रहो, (नुदेथाम्) उनको परे भगाते रहो । प्रजा का सर्वस्व खाजाने वालों को भी (नि शिशीतम्) खूब तीक्ष्ण दण्ड दो ।

इन्द्रा॑सोमा॒ सम॒घशं॑सम॒भ्य१॒॑घं तपु॑र्ययस्तु च॒रुर॑ग्नि॒वाँ इ॑व ।
ब्र॒ह्म॒द्विषे॑ क्र॒व्यादे॑ घो॒रच॑क्षसे॒ द्वेषो॑ धत्तमनवा॒यं कि॑मी॒दिने॑ ॥२॥

भा०—हे (इन्द्रासोमा) ऐश्वर्यवन् ! हे उत्तम शासक जनो ! आप दोनों मिलकर (अघ-शंसं) पाप की चर्चा करने वाले और (अघं) पापी पुरुष को (सम् अभि धत्तम्) अच्छी प्रकार से बांधो, वह (तपुः) संतप्त होकर (अग्निवान् चरुः इव) अग्नि से युक्त पात्र वा अन्नादि के समान सन्तप्त होकर (ययस्तु) पीड़ित हो । और आप दोनों (ब्रह्म-द्विषे) वेद और वेदज्ञ विद्वान् के द्वेषी (क्रव्यादे) कच्चा मांस खाने वाले और (किमीदिने) अब क्या अब क्या इस प्रकार मूढ़ और (घोरचक्षसे) घोर क्रूर दृष्टि वाले पुरुष को (अनवायं) निरन्तर (द्वेषः धत्तम्) अप्रीति करो । ऐसे व्यक्तियों से कभी प्रेम न करो ।

इन्द्रा॑सोमा दु॒ष्कृतो॑ व॒व्रे अ॒न्तर॑नारम्भ॒णे तम॑सि॒ प्र वि॑ध्यतम् ।
यथा॒ नातः॒ पुन॒रेक॑श्च॒नोद॒यत्तद्वा॑मस्तु॒ सह॑से मन्यु॒मच्छवः॑ ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्रासोमा) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! राजन् ! हे (सोम) धर्म का अनुशासन करने वाले विद्वान् जनो ! आप लोग (दुष्कृतः) दुष्ट और दुःखदायी कामना करने वाले दुष्ट पुरुषों को (वव्रे अन्तः) चारों ओर से घिरे कैद, कारागारादि स्थान के भीतर वा कूए, गढ़े के भीतर और (अनारम्भणे तमसि) अवलम्बन रहित, निराधार ऐसे अन्धेरे में (प्रविध्यतम्) रखकर दण्डित करो जहां कुछ भी सूझ न पड़े। (यथा) जिससे (अतः) वहां से (पुनः एकः चन) फिर एक भी कोई (न उत् अयत्) उठ के ऊपर न आवे। (वाम्) आप दोनों का (तत्) वह अद्भुत (मन्युमत् शवः) क्रोध से परिपूर्ण बल पराक्रम (सहसे अस्तु) दुष्टों का पराजय करने के लिये सदा बना रहे।

इन्द्रा॑सोमा व॒र्तय॑तं दि॒वो व॒धं सं पृ॑थि॒व्या अ॒घशं॑साय॒ तर्ह॑णम् ।
उत्त॑क्षतं स्व॒र्यं१॒ पर्व॑तेभ्यो॒ येन॒ रक्षो॑ वावृधा॒नं नि॒जूर्व॑थः ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्रासोमा) ऐश्वर्यवान्, हे उत्तम विद्यावान् दोनों जनो ! आप दोनों (अघ-शंसाय) पाप की चर्चा करने वाले पुरुष को दण्ड देने के लिये (दिवः) सूर्य और (पृथिव्याः) पृथिवी से (वधं वर्तयम्) दण्ड किया करो, और उसके लिये (तर्हणम्) नाशकारी (स्वर्यं) सन्तापजनक और घोर नादकारी (पर्वतेभ्यः) मेघों से आने वाले विद्युत् तत्व को (उत् तक्षतम्) उत्तम रीति से प्राप्त करो। (येन) जिससे (वावृधानं रक्षः) बढ़ते दुष्ट जन को भी (निजूर्वथः) खूब दण्डित कर सको।

इन्द्रा॑सोमा व॒र्तय॑तं दि॒वस्पर्य॑ग्नित॒प्तेभि॑र्यु॒वमश्म॑हन्मभिः ।
तपु॑र्वधेभिर॒जरे॑भिर॒त्रिणो॒ नि पर्शा॑ने विध्यतं॒ यन्तु॑ निस्व॒रम् ॥ ५ ॥ ५

भा०—हे (इन्द्रासोमा) राजन् ! हे शासक जन ! (युवम्) आप दोनों (अग्नि-तप्तेभिः) अग्नि से तपे हुए, (अश्म-हन्मभिः) मेघ से विद्युत्

के समान वा ओले के समान आघात करने वाले (तपुर्वधेभिः) दुष्टों के नाशकारी अस्त्रों, नालिकादि गुलिका बाणों से (दिवः परि) आकाश से दूर से ही मार कर (अत्रिणः) प्रजा के नाशक, भक्षक दुष्ट पुरुष के (पर्शाने) दोनों पार्श्वों के दल समुदाय को (नि विध्यतम्) खूब छिन्न भिन्न करो। जिससे वह (निःस्वरम्) विना आवाज़ किये, चुपचाप, विना कष्ट पहुंचाये (यन्तु) चला जावे। इति पञ्चमो वर्गः ॥

इन्द्रा॑सोमा॒ परि॑ वां भूतु वि॒श्वत॑ इ॒यं म॒तिः क॒क्ष्याश्वे॑व वा॒जिना॑।
यां वां॒ होत्रां॑ परिहि॒नोमि॑ मे॒धये॒मा ब्रह्मा॑णि नृ॒पती॑व जिन्वतम् ॥६॥

भा०—(कक्ष्या वाजिना अश्वा-इव) जिस प्रकार वेग वाले, बलवान् अश्वों को बगलबन्द की रस्सी चारों ओर से बांधती है हे (इन्द्रासोमा) ऐश्वर्यवन् वा ज्ञानदर्शिन् आचार्य ! हे सोम ! सौम्य भावयुक्त शिष्य ! (वां) आप दोनों को (इयं मतिः) यह ज्ञान वा वाणी (कक्ष्या) अवगाहन करने योग्य, गंभीर, (विश्वतः परिभूतु) सब प्रकार से और सब ओर से प्राप्त हो। (वां) आप दोनों की (यां) जिस (होत्रां) ग्रहण करने योग्य उत्तम वाणी को (मेधया) उत्तम धारणावती बुद्धि द्वारा (परि हिनोमि) मैं बढ़ाऊं या प्राप्त करूं (इमा ब्रह्माणि) और इन वेद वचनों को वा धनों को (नृपती इव) राजाओं के समान (जिन्वतम्) प्राप्त करो और उपभोग करो।

प्रति॑ स्मरेथां तु॒जय॑द्भि॒रेवै॑र्ह॒तं द्रु॒हो र॒क्षसो॑ भङ्गु॒राव॑तः।
इन्द्रा॑सोमा दु॒ष्कृते॒ मा सु॒गं भू॒द्यो नः॑ क॒दा चि॑दभि॒दास॑ति द्रु॒हा ॥७॥

भा०—हे (इन्द्रासोमा) ऐश्वर्यवान् ! ज्ञानवान् पुरुषो ! आप दोनों ! (तुजयद्भिः) शत्रुओं का नाश करने वाले (एवैः) प्रयाणशील भटों, सैन्यों तथा अज्ञाननाशक ज्ञानों से (प्रति स्मरेथाम्) प्रत्येक स्थान पर प्रयाण करो और प्रत्येक वस्तु का स्मरण करो। (भङ्गुरावतः) नगर गृहादि को तोड़ने वाले तथा व्रतादि का नाश करने वाले, (द्रुहः रक्षसः)

द्रोहशील विघ्नकारी दुष्ट पुरुषों और दुष्ट भावों को (हतम्) दण्ड दो और नाश करो। (यः) जो (नः) हमें (कदाचित्) कभी भी (द्रुहा) द्रोह या द्वेष से (अभिदासति) नाश करता वा हमें अपना दासवत् बना लेता है, ऐसे (दुष्कृते) दुराचारी पुरुष को (सुगं मा भूत्) कभी भी सुख प्राप्त नहीं होता। इसी प्रकार (दुष्कृते सुगं मा भूत्) दुष्कर्म के बदले सुख कभी प्राप्त नहीं होता।

यो मा पाकेन मनसा चरन्तमभिचष्टे अनृतेभिर्वचोभिः।
आप इव काशिना सङ्गृभीता असन्नस्त्वासत इन्द्र वक्ता ॥ ८॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे दुष्टों के नाशकारिन्! (यः) जो (पाकेन) परिपक्व = दृढ़, सत्ययुक्त (मनसा) ज्ञान वा चित्त से अथवा (पाकेन = वाकेन,) उत्तम सत्य वचन और (मनसा) उत्तम ज्ञान सहित (चरन्तम्) आचारण करने वाले (मा) मुझ पर (अनृतेभिः वचोभिः) असत्य वचनों द्वारा (अभि-चष्टे) आक्षेप करता है वह (असन्) असत्य का (वक्ता) कहने वाला (काशिनः संगृभीताः आपः इव) मुट्ठी में लिये जलों के समान (असन् अस्तु) नहींसा होकर नीचे गिर पड़े, छिन्न भिन्न होकर नष्ट होजाय।

ये पाकशंसं विहरन्त एवैर्ये वा भद्रं दूषयन्ति स्वधाभिः।
अहये वा तान्प्रददातु सोम आ वा दधातु निर्ऋतेरुपस्थे ॥९॥

भा०—(ये) जो लोग (एवैः) अपने बुरे अभिप्रायों या कुटिल चालों से (पाक-शंसं) परिपक्व, दृढ़ सत्य वचन कहने वाले को (विहरन्ते) विरुद्ध मार्ग में ले जाते हैं (वा) अथवा, जो (स्वधाभिः) अपने बल, अन्न, गृह वेतनादि के बल से वा वेतनभोगी पुरुषों द्वारा (भद्रं दूषयन्ति) भले आदमी को दूषित करते हैं उस पर दोषारोप करते हैं (सोमः) शासक राजा और विद्वान् न्यायाधीश (तान्) उनको (वा) भी (अहये प्र-ददातु) हिंसक, सर्पादि जन्तु के काटने वा सर्पवत् कुटिलाचार करने के

लिये ही दण्ड दे। (वा) अथवा, (तान्) ऐसे पुरुषों का (निःऋतेः) अति दुःखदायी जन्तु सिंह, रीछ आदि वा पीड़क के (उपस्थे) समीप (आ दधातु) रक्खें।

यो नो रसं दिप्सति पित्वो अग्ने यो अश्वानां यो गवां यस्तनूनाम्। रिपुः स्तेनः स्तेयकृद्दभ्रमेतु नि ष हीयतां तन्वा३ तना च ॥ १० ॥ ६ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी अग्निवत् तेजस्विन्! (यः) जो दुष्ट पुरुष (नः) हमारे (पित्वः रसं) अन्न के रस, सारभाग को (दिप्सति) नाश करना चाहता है, और (यः) जो हमारे (अश्वानां) घोड़ों, (गवां) गौओं, बैलों और (तनूनां) शरीरों के (रसं) सारवान् बलयुक्त परिपुष्ट अंश को नाश करना चाहता है वह (रिपुः) शत्रु, पापी (स्तेनः) चोर, (स्तेयकृत्) चोरी करने वाला, पुरुष (दभ्रम् एतु) हिंसा, पीड़ा वा मृत्यु दण्ड को प्राप्त हो और (सः) वह (तन्वा) शरीर और (तना च) धन, पुत्रादि से (नि हीयताम्) वञ्चित किया जाय।

परः सो अस्तु तन्वा३तना च तिस्रः पृथिवीरधो अस्तु विश्वाः। प्रति शुष्यतु यशो अस्य देवा यो नो दिवा दिप्सति यश्च नक्तम्॥११॥

भा०—और हे (देवाः) विद्वान् मनुष्यो! (यः च) जो (नः) हमें (दिवाः) दिन के समय और या (नक्तम्) रात के समय (दिप्सति) हानि पहुंचाता, हमें नाश करना चाहता है (सः) वह (तन्वा तना च) शरीर और अपने पुत्रादि से भी (परः अस्तु) दूर, वियुक्त हो। वह (विश्वाः) समस्त (तिस्रः) तीनों (पृथिवीः) भूमियों या लोकों से (अधः अस्तु) नीचे रहे, गड़े में या नीची कोटि में रक्खा जावे। (अस्य यशः) उसका यश, कीर्त्ति, बल (प्रति शुष्यतु) प्रतिदिन सूखता जाय।

सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते। तयोर्यत्सत्यं यतरदृजीयस्तदित्सोमोऽवति हन्त्यासत् ॥ १२ ॥

भा०—(चिकितुषे) जानने वाले (जनाय) मनुष्य के लिये (सत् च असत् च) सत्य और असत्य दोनों ही (सुविज्ञानं) बहुत अच्छी प्रकार जानने योग्य होते हैं, विद्वान् सत्य और असत्य दोनों को सुगमता से ही जान लेता है, क्योंकि (सत् च असत् च वचसी) सत्य और असत्य दोनों वचन (पस्पृधाते) परस्पर स्पर्द्धा करते हैं। दोनों एक दूसरे के विरोधी होते हैं। ज्ञानी पुरुष के लिये विरोध का देखलेना कठिन नहीं होता। (तयोः) उन दोनों में (यत् सत्यं) जो भी सत्य है वो (यतरत् ऋजीयः) जो भी अधिक ऋजु धर्मानुकूल होता है (तत् इत्) उस की ही, (सोमः) उत्तम शासक विद्वान् रक्षा करता है और (असत् हन्ति) असत् को दण्ड और विनष्ट करता है।

न वा उ सोमो वृजिनं हिनोति न क्षत्रियं मिथुया धारयन्तम्।
हन्ति रक्षो हन्त्यासद्वदन्तमुभाविन्द्रस्य प्रसितौ शयाते ॥१३॥

भा०—(सोमः) उत्तम शासक जन (वृजिनं) पाप और असत्य को (न वै उ हिनोति) कभी वृद्धि न दे। और (मिथुया धारयन्तं) असत्य पक्ष को धारण करने वाले (क्षत्रियम्) बलशाली पुरुष को भी (न हिनोति) न बढ़ने दे। (रक्षः) दुष्ट पुरुष को (हन्ति) दण्ड अवश्य दे, और (असद् वदन्तम् हन्ति) असत्यवादी को भी दण्ड दे। (उभौ) वे दोनों भी (इन्द्रस्य प्रसितौ) दुष्टों के नाशकारी पुरुष के उत्तम बन्धन में (शयाते) डाले जायँ।

यदि वाहमनृतदेव आस मोघं वा देवाँ अप्यूहे अग्ने।
किमस्मभ्यं जातवेदो हृणीषे द्रोघवाचस्ते निर्ऋथं सचन्ताम् १४

भा०—(यदि वा) और यदि (अहम्) मैं (अनृतदेवः) असत्य बात का प्रकाश करने वाला हूं अर्थात् ऋत, सत्यानुकूल देन लेन, व्यवहार करने वाला नहीं हूं, हे (अग्ने) तेजस्विन्! अथवा मैं (देवान् अपि) विद्वान् पुरुषों को (मोघं) झूठ मूठ व्यर्थ ही (ऊहे) नाना प्रश्न,

वा तर्क वितर्क करता हूं, हे (जातवेदः) विद्वन् ! ज्ञानवन् ! (अस्मभ्यम्) विचार करो कि हमारे सुधार के लिये (किम् हृणीषे) क्या २ क्रोध कर हमें किस २ प्रकार दण्डित करो । क्योंकि (द्रोघवाचः) द्रोह या परस्पर द्वेष की बात कहने वाले (ते) वे नाना लोग भी अवश्य (निर्ऋथं) अति दुःख और धन, सत्य, अन्न ऐश्वर्यादि से रहित कष्टमय जीवन को (सचन्ताम्) प्राप्त हों ।

अद्या मुरीय यदि यातुधानो अस्मि यदि वायुस्ततप पूरुषस्य ।
अधा स वीरैर्दशभिर्वि यूया यो मा मोघं यातुधानेत्याह ॥१५॥७॥

भा०—(यदि) यदि मैं (यातुधानः) अन्यों को पीड़ा, यातना देने वाला, (अस्मि) होऊं और (यदि वा) जो मैं (पूरुषस्य) मनुष्य के (आयुः) जीवन को (ततप) पीड़ित करूं, मानव जीवन के संताप का कारण बनूं तो मैं (अद्य मुरीय) आज ही मृत्यु को प्राप्त होऊं । अर्थात् अन्य को पीड़ा देने और मनुष्य जीवन को हानि पहुंचाने वाले को अति शीघ्र मृत्यु-दण्ड हो । (अद्य) और (यः) जो (मोघं) व्यर्थ, विना प्रयोजन के (मा) मुझे (यातुधान इति आहः) पीड़ादायक, क्रूर ऐसा कहे (सः) वह तू (दशभिः वीरैः) दशों प्रकार के प्राणों से (वि यूयाः) वियुक्त हो । इति सप्तमो वर्गः ॥

यो मायातुं यातुधानेत्याह यो वा रक्षाः शुचिरस्मीत्याह ।
इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेन विश्वस्य जन्तोरधमस्पदीष्ट ॥१६॥

भा०—(यः) जो (अयातुं मा) अन्य को पीड़ा न देने वाले अहिंसक को (यातुधान इति आह) पीड़ा देने वाला, हिंसक ऐसा बतलावे (वा) और (यः) जो (रक्षाः) स्वयं दुष्ट पुरुष होकर (शुचिः अस्मि इति आह) मैं निर्दोष हूं, ऐसा अपने को बतलावे (इन्द्रः) राजा (तं) उसको (महता वधेन) बड़े भारी शस्त्र से (हन्तु) मारे और वह (विश्वस्य जन्तोः) समस्त पापियों से (अधमः) अधम, नीचा (पदीष्ट) समझा जावे ।

प्र या जिगा॑ति ख॒र्गले॑व॒ नक्त॒मप॑ द्रु॒हा त॒न्वं१॒ गूह॑माना ।
व॒व्राँ अ॑न॒न्ताँ अव॒ सा प॑दीष्ट॒ ग्रावा॑णो घ्नन्तु र॒क्षस॑ उप॒ब्दैः ॥१७॥

भा०—(या) जो स्त्री, (खर्गला इव) उल्लुनी के समान (द्रुहा) पति से द्रोह करके अपने (तन्वं गूहमाना) शरीर को छिपाकर (नक्तम्) रात के समय (प्र अप जिगाति) घर छोड़ कर जाती है (सा) वह (अनन्तां वव्रान्) खूब गहरे गढ़ों को (अव पदीष्ट) प्राप्त हो। इस प्रकार (ग्रावाणः) क्षत्रिय लोग (उपब्दैः) गर्जनाओं और घोषणाओं सहित (रक्षसः घ्नन्तु) दुष्ट पुरुषों को विनष्ट करें।

वि ति॑ष्ठध्वं मरुतो वि॒क्ष्वि१॒च्छत॑ गृभा॒यत॑ र॒क्षसः॒ सं पि॑नष्टन ।
वयो॒ ये भू॒त्वी प॒तय॑न्ति न॒क्तभि॒र्ये वा॒ रिपो॑ दधि॒रे दे॒वे अ॑ध्व॒रे १८

भा०—हे (मरुतः) वायुवत् बलवान् पुरुषो (ये) जो (नक्तभिः) रातों के समय आप लोग (वयः भूत्वी) तेजस्वी, प्रकाशयुक्त होकर (पतयन्ति) नगर के स्वामी के समान रक्षा करते हैं (ये वा) और जो आप लोग (अध्वरे) हिंसारहित, एवं दुष्टों से अहिंसनीय (देवे) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष के अधीन रहकर (रिपः) पापों और दुष्ट पुरुषों को (दधिरे) पकड़ते हो वे आप लोग (विक्षु) प्रजाओं में (वि तिष्ठध्वम्) विशेष २ पदों पर विराजमान होवें। और (वि इच्छत) विविध ऐश्वर्यों की कामना करो। (रक्षसः वि गृभायत) दुष्ट पुरुषों को विविध प्रकार से कैद करो। और उनको (सं पिनष्टन) अच्छी प्रकार दबाओ, पीसो, दण्डित करो, कुचलो। अथवा—हे बलवान् पुरुषो ! आप लोग उन दुष्टों को दण्डित करो जो (वयः भूत्वी) प्रजा के भक्षक होकर (नक्तं पतयन्ति) रात में छुपे प्रजा वा मालिक के समान शासन करते और बहुत धन के स्वामी बन जाना चाहते हैं। और जो (देवे) विद्वानों, एवं करप्रद प्रजा और राजा पर और (अध्वरे) यज्ञ में (रिपः दधिरे) पापकर्म आचरण करते हैं।

प्र व॑र्तय दि॒वो अश्मा॑नमिन्द्र॒ सोम॑शितं मघव॒न्त्सं शि॑शाधि।
प्राक्ता॒दपा॑क्तादध॒राद॒दुक्ता॑द॒भि ज॑हि र॒क्षसः॒ पर्व॑तेन ॥ १९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! तू (दिवः अश्मानम्) आकाश से पड़ने वाले ओलों के समान (दिवः) तेजोयुक्त-आग्नेय अस्त्र से (अश्मानम्) शत्रुनाशक गोली आदि कठिन वस्तु (प्र वर्त्तय) फेंक। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! तू (सोम-शितम्) ऐश्वर्य और उत्तम शासक से तीव्र हुए शत्रु और प्रजाजन दोनों को (सं शिशाधि) अच्छी प्रकार शासन कर। (प्राक्तात्, अपाक्तात्, उदक्तात्, अधरात्) पूर्व, पश्चिम, उत्तर और नीचे, दक्षिण से भी (पर्वतेन) दृढ़ पोरु वाले दण्ड से, पशु के समान (रक्षसः जहि) दुष्ट पुरुषों को दण्डित कर।

ए॒त उ॒ त्ये प॑तयन्ति॒ श्वया॑तव॒ इन्द्रं॑ दिप्सन्ति दि॒प्सवो॑ऽदा॑भ्यम्।
शिशी॑ते श॒क्रः पिशु॑नेभ्यो व॒धं नू॒नं सृ॑जद॒शनिं॑ यातु॒मद्भ्यः॑ २०।८

भा० –(एते उ त्ये) ये वे बहुत से (श्वयातवः) कुत्ते के समान चाल चलने और अन्यों को पागल कुत्ते के समान विना प्रयोजन काटने और अन्यों के प्रति परुष भाषण कहने और गुर्रा २ कर डराने वाले लोग ही (पतयन्ति) मालिक से बन कर बैठ जाना चाहते और प्रजा के धन को हर लेना चाहा करते हैं (दिप्सवः) हिंसाकारी लोग ही (अदाभ्यम् इन्द्रं दिप्सन्ति) अहिंसनीय ऐश्वर्यवान् राजा को भी मारना चाहा करते हैं। (शक्रः) शक्तिशाली राजा (पिशुनेभ्यः) क्षुद्र पुरुषों को दमन करने के लिये (वधं शिशीते) दुष्टों को दण्ड देने वाले अपने शस्त्र बल को सदा तेज़ करता रहे। (नूनं) अवश्य ही वह (यातुमद्भ्यः) प्रजा को पीड़ा देने वाले दुष्ट पुरुषों को दमन करने के लिये (अशनिं) विद्युत्वत् आघातकारी शस्त्र (सृजत) बनावे और उन पर छोड़े। इत्यष्टमो वर्गः ॥

इन्द्रो॑ यातू॒नाम॑भवत्पराश॒रो ह॑वि॒र्मथी॑नाम॒भ्या॒३॒॑विवा॑सताम्।
अ॒भीदु॑ श॒क्रः प॑र॒शुर्यथा॒ वनं॒ पात्रे॑व भि॒न्दन्त्स॒त ए॑ति र॒क्षसः॑॥२१॥

भा०—(इन्द्रः) राजा, ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता पुरुष (हविर्मथीनां) प्रजाओं के अन्न, यज्ञों के चरु और राज्य के कर आदि को बलात् हरने वाले (यातूनां) प्रजाओं के पीड़ादायी मनुष्यों और (अभि आ विवासताम्) अभिमुख आकर आक्रमण करने वाले पुरुषों को (परा-शरः) दूर तक मार मारने वाला (आ भवत्) हो। (परशुः यथा वनं) जिस प्रकार फरसा, वन को काट गिराता है, (पात्रा इव) जिस प्रकार पत्थर वर्त्तनों को तोड़ डालता है उसी प्रकार (शक्रः) शक्तिशाली राजा (रक्षसः) दुष्ट पुरुषों को (परशुः) कुल्हाड़ा सा होकर (अभि एति) प्राप्त हो और (रक्षसः सतः भिन्दन् एति) उन दुष्टों को भेद नीति से तोड़ता फोड़ता हुआ प्राप्त हो।

उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम्।
सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र ॥ २२ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुओं के नाशक ! राजन् ! (उलूक-यातुम्) बड़े उल्लू के समान चाल चलने और उसके समान छिप कर प्रजा के धन, प्राण पर आक्रमण करने और उनको भयभीत करने वाले को, (शुशुलूक-यातुम्) छोटे उल्लू के समान अति कर्कश बोल कर डराने और प्रजा के गरीब जनों को पीड़ित करने वाले को, (श्व-यातुम्) कुत्ते के समान भौंक कर, बककर, कठोर वचन कह कर, डरा धमका कर प्रजा के जनों को पीड़ा देने वाले; (कोक-यातुम्) उल्लू के तीसरी जाति के समान प्रजा को कष्ट देने वाले (सुपर्ण-यातुम्) बाज़ के समान झपटने वाले (उत) और (गृध्र-यातुम्) गीध के समान गोल बनाकर उदासीन प्रजा को नोच कर खाजाने वाले (रक्षः) दुष्ट जनों को (दृषदा इव) सिलवट्टे या चक्की के पाटों के समान पीस डालने वाले (प्र मृण) दण्ड द्वारा नष्ट कर डाल।

मा नो रक्षो अभि नड्यातुमावतामपोच्छतु मिथुना या किमीदिना।
पृथिवी नः पार्थिवात्पात्वंहसोऽन्तरिक्षं दिव्यात्पात्वस्मान् ॥२३॥

भा०—(रक्षः) दुष्ट पुरुष (नः) हम तक (मा अभिनड्) न पहुंचे। (यातुमा-वताम्) पीड़ा देने वाले जनों के (मिथुना) जोड़े स्त्री-

पुरुष (या किमीदिना) जो निकम्मे या क्षुद्र कादि का सार्यनय स्नेह करने वाले हैं वे (क्व दञ्चन्तु) दूर हों। (पृथिवी) पृथिवीवत् सर्वाश्रय, विस्तृत शक्ति (नः पार्थिवात् अंहसः पातु) हमें पृथिवी से होने वाले पाप या कष्ट से बचावे। और (अन्तरिक्षं) अन्तरिक्ष (अस्मान्) हमें (दिव्यात् अंहसः पातु) आकाश की ओर से आने वाले कष्ट से बचावे।

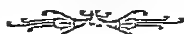
इन्द्र॑ जुहि पुमां॑सं यातुधान॑मुत स्त्रियं॑ मायया॒ शाश॑दानाम्।
विग्री॑वासो मूर॑देवा ऋदन्तु मा ते दृ॑शन्त्सूर्य॑मु॒च्चर॑न्तम् ॥ २४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (यातुधानं पुमांसं) पीड़ा देने वाले पुरुष को और (मायया शाशदानाम्) माया में प्रजा का नाश करने वाली (स्त्रियं उत) स्त्री को भी (जहि) दण्डित कर। (मूरदेवाः) मूढ होकर विषयों में क्रीड़ा करने वाले, या मारने वाली मौत की पीड़ा देने वाले दुष्ट लोग (विग्रीवासः) बिना गर्दन के होकर (ऋदन्तु) नष्ट हों। (ते) वे (उच्चरन्तं) उगते हुए (सूर्यं मा दृशन्) सूर्य को भी न देख पावें।

प्रति॑ चक्ष्व॒ वि च॒क्ष्वेन्द्र॑श्च सोम जागृतम्।
रक्षो॑भ्यो व॒धम॑स्यतम॒शनिं॑ यातु॒मद्भ्यः॑ ॥ २५ ॥ ९ ॥ ६ ॥ ७ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! हे शासनकर्त्ता! तुम और (इन्द्रः च) शत्रुहन्ता सेनापति दोनों ही (प्रति चक्ष्व) प्रत्येक व्यक्ति के प्रत्येक व्यवहार को देखो और (वि-चक्ष्व) विविध प्रकार से देखो (जागृतम्) तुम दोनों सदा जागते रहो, सावधान रहो। (रक्षोभ्यः वधम् अस्यत) दुष्टों के नाश करने के लिये उन पर शस्त्र का प्रहार करो। और (यातुमद्भ्यः अशनिम् अस्यत) अन्यों को पीड़ा देने वा हमारे नगरादि पर चढ़ाई, युद्ध प्रयाण करने वाली सेना के स्वामियों पर विद्युत् के तुल्य आघातकारी अस्त्र का प्रयोग करो। इति नवमो वर्गः। इति षष्ठोऽनुवाकः।

॥ इति सप्तमं मण्डलं समाप्तम् ॥



अथाष्टमं मण्डलम्

[१]

प्रगाथो घौरः काण्वो वा । ३—२९ मेधातिथिमेध्यातिथी काण्वौ । ३०—३३ आसङ्गः प्लायोगिः । ३४ शश्वत्याङ्गिरस्यासगस्य पत्नी ऋषिः ॥ देवताः—१—२९ इन्द्रः । ३०—३३ आसंगस्य दानस्तुतिः । ३४ आसंगः ॥ छन्दः—१ उपरिष्टाद् बृहती । २ आर्षी भुरिग् बृहती । ३, ७, १०, १४, १८, २१ विराड् बृहती । ४ आर्षी स्वराड् बृहती । ५, ८, १५, १७, १९, २२, २५, ३१ निचृद् बृहती । ६, ६, ११, १२, २०, २४, २६, २७ आर्षी बृहती । १३ शङ्कुमती बृहती । १६, २३, ३०, ३२ आर्ची भुरिग्बृहती । २८ आसुरी स्वराड् निचृद् बृहती । २९ बृहती । ३३ त्रिष्टुप् । ३४ विराट् त्रिष्टुप् ॥

चतुस्त्रिंशदृचं सूक्तम् ॥

मा चिदन्यद्वि शंसत सखायो मा रिषण्यत ।
इन्द्रमित्स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत ॥ १ ॥

भा०—हे (सखायः) मित्र जनो ! (अन्यत्) और किसी को (मा चित् शंसत) कभी पूज्य, उपास्य मत कहो और किसी की उपासना मत करो । (मा रिषण्यत) हिंसा कभी मत करो । (वृषणं) सुखों की वर्षा करने वाले, सर्वशक्तिमान्, जगत् के प्रबन्ध करने वाले, व्यवस्थापक (इन्द्रम्) परमैश्वर्य के स्वामी की (इत्) ही (स्तोत) स्तुति किया करो । (सुते) इस उत्पन्न जगत् में (सचा) एक साथ बैठ कर (मुहुः) वार २ (उक्था च) नाना स्तुति-वचन (शंसत) कहो ।

अवक्रक्षिणं वृषभं यथाजुरं गां न चर्षणीसहम् ।
विद्वेषणं संवननोभयङ्करं मंहिष्ठमुभयाविनम् ॥ २ ॥

भा०—(अव-क्षिणं गां न) हल शकट आदि के खेंचने वाले बैल के समान (अव-क्षिणं) अपने अधीन जगत् भर को चलाने वाले (यथा वृषभं) मेघ के समान सुखों के वर्षक वृषभ के समान अति बलशाली, (अजुरं) अविनाशशील, सदा बलयुक्त, (चर्षणी-सहम्) सब मनुष्यों से ऊपर, (वि-द्वेषणं) द्वेष के भावों से विवर्जित, (सं-वनना) अच्छी प्रकार से सेवा वा भक्ति करने योग्य (मंहिष्ठम्) अति दानशील (उभयं-करम्) अनुग्रह वा दण्ड अथवा दोनों लोकों में कल्याण करने वाले, (उभयाविनम्) दोनों लोकों में कर्म और भोग दोनों योनियों में विद्यमान जीवों की रक्षा करने वाले परमेश्वर की ही (स्तोत) स्तुति किया करो।

यच्चिद्धि त्वा जना॑ इ॒मे नाना॒ हव॑न्त ऊ॒तये॑।
अ॒स्माकं॒ ब्रह्मे॒दमि॑न्द्र भूतु॒ तेऽहा॒ विश्वा॑ च॒ वर्ध॑नम् ॥ ३ ॥

भा०—(यत् त्वा चित् हि) जिस तुझ पूज्य परमेश्वर को ही (इमे नाना जना) ये नाना जन (ऊतये) अपनी रक्षा और ज्ञान की प्राप्ति के लिये (हवन्ते) पुकारते, तेरी प्रार्थना करते हैं हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (ते) उस तेरा (इदं ब्रह्म) यह वेद-ज्ञान (विश्वा अहा) सब दिनों ही (अस्माकं वर्धनं भूतु) हमें बढ़ाने वाला होवे।

वि त॑र्तूर्यन्ते मघवन्विप॒श्चितो॒ऽर्यो वि॒पो जना॑नाम्।
उप॑ क्रमस्व पुरु॒रूप॒मा भ॑र॒ वाजं॒ नेदि॑ष्ठमू॒तये॑ ॥ ४ ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! (विपश्चितः) नाना विद्वान् जन (वि तर्तूर्यन्ते) विशेष रूप से तेरे ही अनुग्रह से इस संसार से पार हो जाते हैं। (जनानाम्) मनुष्यों को (विपः) कंपाने वाला और तू ही (अर्यः) उन पर अनुग्रह करने वाला स्वामी है। तू (पुरु-रूपम्) बहुत प्रकार से (उप क्रमस्व) हमें प्राप्त हो, और (ऊतये) हमारी रक्षा के लिये (नेदिष्टं वाजं भर) अति समीप प्राप्य आत्मिक ऐश्वर्य और बल, एवं ज्ञान प्रदान कर।

म॒हे च॒न त्वाम॑द्रिवः॒ परा॑ शु॒ल्काय॑ देयाम् ।
न स॒हस्रा॑य॒ नायुता॑य वज्रिवो॒ न श॒ताय॑ शतामघ ॥५॥१०॥

भा०—हे (अद्रिवः) अविनाशी शक्तिमन्! (त्वाम्) तुझ को (महे चन शुल्काय) बड़े भारी मूल्य या आर्थिक लाभ के लिये भी (न परा देयाम्) कभी त्याग न करूं। हे (वज्रिवः) वीर्यशालिन्! हे (शत-मघ) सैकड़ों ऐश्वर्यों के स्वामिन्! मैं तुझे (सहस्राय) हज़ारों के लिये भी (न) नहीं त्यागूं। (अयुताय न) दस हज़ार के लिये भी न त्यागूं (शताय न) सैकड़ों के लिये भी न त्यागूं। इति दशमो वर्गः ॥

वस्याँ॑ इन्द्रासि मे पि॒तुरु॒त भ्रातु॒रभु॑ञ्जतः ।
मा॒ता च॑ मे छदयथः स॒मा व॑सो वसुत्व॒नाय॒ राध॑से ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राजन्! स्वामिन्! प्रभो! तू (मे) मुझे (अभुञ्जतः) न पालन करने वाले (पितुः) पिता और (भ्रातुः) भाई से भी (वस्यान् असि) अधिक श्रेष्ठ एवं सम्पन्न है। हे (वसो) सब में वसने हारे अन्तर्यामिन्! तू और (माता च) मेरी माता दोनों (समौ) बराबर हैं। दोनों ही (छदयथः) मुझे आच्छादित करते हो। मेरे लिये छदि अर्थात् शरण देने वाले गृह के समान हो। और (वसुत्वनाय) मुझे वसाने और (राधसे) धनैश्वर्य देने के लिये भी (समौ) माता और तू दोनों बराबर हो।

क्वे॑यथ॒ क्वेद॑सि पुरु॒त्रा चि॒द्धि ते॒ मनः॑ ।
अल॑र्षि युध्म खजकृत्पुरन्दर॒ प्र गा॑य॒त्रा अ॑गासिषुः ॥ ७ ॥

भा०—हे (पुरन्दर) देह रूप पुरों का नाश करने वाले! हे देह-बन्धन से छुड़ानें वाले! प्रभो! (क इयथ) तू कहां गया है? (क इत् असि) तू कहां है? (ते) तेरे लिये (मनः) मेरा मन (पुरुत्र चित् हि) बहुत २ स्थानों पर जाता है। हे (युध्म) दुष्टों को ताड़ना देने

हारे ! हे (खजकृत्) इन्द्रियों के बीच प्रकट होने वाले! प्राण शक्तियों को प्रकट करने हारे आत्मन् !वा (खजकृत्) आकाश में प्रकट जगत् के रचयितः ! तू (अर्लर्षि) सर्वत्र व्यापता है । (गायत्राः) गान करने वाले विद्वान् और वेदमन्त्र (ते) तेरा ही (प्र अगासिषुः) उत्तम रूप से गान और वर्णन करते हैं । (२) राजा युद्ध करने से 'युध्म' और संग्राम करने से 'खजकृत्' है ।

प्रास्मै गायत्रमर्चत वावातुर्यः पुरन्दरः ।
याभिः काण्वस्योप बर्हिरासदं यासद्वज्री भिनत्पुरः ॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार वीर सेनापति वा राजा, (वावातुः) हिंसक वा प्रबल शत्रु के भी (पुरंदरः) नगरियों को तोड़ फोड़ देने में समर्थ होकर (वज्री) बलवान् होकर (बर्हिः उप आसदं) राष्ट्र-प्रजा के ऊपर अध्यक्षासन पर बैठने के लिये (यासत्) प्रयास या उद्योग करता है और (पुरः भिनत्) शत्रु के नगरों को तोड़ डालता है उसी प्रकार (यः) जो परमेश्वर (वावातुः) निरन्तर सांसारिक भोगों को सेवन करने वाले जीव के भी (पुरन्दरः) देहबन्धन का नाश करता है, और वह जीव (याभिः) जिन देहपुरी रूप साधनों से, (कण्वस्य) बुद्धिमान् पुरुष के (बर्हिः उप आसदम्) महान् यज्ञ में भी उपासना करने के लिये (यासत्) यत्न करता है, उसी से वह (वज्री) वीर्यवान् आत्मा भी (पुरः भिनत्) देह-पुरियों को वीर सेनापति के तुल्य छिन्न भिन्न करता है ।

ये ते सन्ति दशग्विनः शतिनो ये सहस्रिणः ।
अश्वासो ये ते वृषणो रघुद्रुवस्तेभिर्नस्तूयमा गहि ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन् ! सेनापते ! (ते) तेरे (ये) जो (दशग्विनः) दश गतियों से जाने वाले, या दश गौओं या, भूमियों या भटों के स्वामी, (शतिनः) सौ ग्रामों, या सौ भटों पर के नायक (सहस्रिणः) हजार भूमियों, या भटों के स्वामी, अथवा (शतिनः) सौ संख्या वेतन

और (सहस्रिणः) सहस्र संख्या वेतन वाले (अश्वासः) अश्वारोही वीर पुरुष हैं और (ये) जो (ते) तेरे (वृषणः) बलवान् (रघु-द्रुवः) अति वेग से जाने वाले हैं (तेभिः) उन सब के साथ (नः) हमें (तूयम्) शीघ्र (आ गहि) प्राप्त हो । (२) परमेश्वर के पक्ष में—दशों इन्द्रियों के स्वामी, 'दशग्वी' शतवर्षजीवी 'शती' और सहस्रों के पति 'सहस्री' विद्वान् बलवान् के द्वारा उन के उपदेशों से तू हमें प्राप्त हो ।

आ त्व१द्य सबर्दुघां हुवे गायत्रवेपसम् ।
इन्द्रं धेनुं सुदुघामन्यामिषमुरुधारामरङ्कृतम् ॥ १० ॥ ११ ॥

भा०—(सु-दुघां धेनुम्) सुख से दोहन करने योग्य गौ जिस प्रकार (उरु-धारां) बहुत दूध की धारा वाली, (सबर्दुघाम्) उत्तम गोरस देने वाली होती है उसी प्रकार मैं (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् प्रभु को भी (धेनुम्) गौ के समान (सु-दुघाम्) सुख आनन्द रस को देने वाली, (अन्याम्) अन्य, इन लौकिक गौओं से सर्वथा भिन्न, (इषम्) सदैव इच्छा करने योग्य, उत्तम मार्ग में प्रेरणा करने वाली, (उरु-धाराम्) बहुत से लोकों को धारण करने में समर्थ, बहुत सी वेदवाणियों को देने वाली, नाना सुख-धारा को मेघवत् वर्षाने वाली, (अरंकृतम्) प्रचुर अन्न सुखादि उत्पन्न करने वाली, (गायत्र-वेपसम्) गान करने वालों को आवेश और प्रेमोद्रेकों से कंपा देने, गद् गद् कर देने वाली और (सबर्दुघाम्) मधुर दुग्धवत् परमानन्द एवं 'स्वः' परम सुख दोहन करने वाली, (आ हुवे) जानकर (अद्य आ) तुझे स्वीकार करता हूं और उसी रूप से तुझ से प्रार्थना करता हूं ।

इत्येकादशो वर्गः ॥

यत्तुदत्सूर एतशं वङ्कू वातस्य पर्णिना ।
वहत्कुत्समार्जुनेयं शतक्रतुस्त्सरद्गन्धर्वमस्तृतम् ॥ ११ ॥

भा०—(यत्) जो (सूरः) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष (एतशं) अश्व सैन्य को (तुदत्) कशा के समान सन्मार्ग पर चलाता है और जो

(वातस्य) वायु के से (वङ्क्रू) वक्र गति से जाने वाले, (पर्णिना) पक्ष युक्त विमानों को सञ्चालित करती है, और जो (आर्जुनेयं) अर्जुनी शत्रुदल की नाशक सेना के बने (कुत्सम्) शस्त्र-बल को (वहत्) धारण करता है वह (शत-क्रतुः) बहुत सी प्रज्ञा वाला एवं बहुत से कर्म करने वाले कर्त्ता पुरुषों का स्वामी, होकर (अस्तृतम्) अहिंसित, (गन्धर्वम्) भूमि को धारण करने वाले पद वा अश्वसैन्य (त्सरत्) प्राप्त कर चलावे। अध्यात्म में—(यत्) जो प्रभु (सूरः) सूर्यवत् प्रकाशक (एतशं) अश्ववत् देह से देहान्तर में जाने वाले भोक्ता जीव को कर्मानुसार चलाता, (अर्जुनेयं कुत्सम्) शुद्धचित् 'अर्जुनी' के स्वामी स्तुति कर्त्ता जीव को (वातस्य) वायु के बने (वङ्क्रू) वक्र गति से देह में व्यापक (पर्णिना) पालक प्राणापानों को प्राप्त करता है, वही (शतक्रतुः) अमित प्रज्ञ प्रभु, अहिंसित, नित्य, (गन्धर्वम्) वाणी के धारक जीव को (त्सरत्) लोक लोकान्तर प्राप्त कराता है।

य ऋते चिद्भिश्रिषः पुरा जत्रुभ्य आतृदः ।
सन्धाता सन्धिं मघवा पुरुवसुरिष्कर्ता विह्रुतं पुनः ॥ १२ ॥

भा०—(यः) जो (पुरा) पहले भी (अभिश्रिषः ऋते) विना सरेस या जोड़ने वाले कील आदि पदार्थों के विना (चित्) भी (जत्रुभ्यः) हंसलियों तक के (आतृदः) पृथक् २ मोहरों को (संधाता) अच्छी प्रकार जोड़ता है, और जो (मघवा) ऐश्वर्यवान् प्रभु वा आत्मा (पुरुवसुः) बहुत से लोकों और जनों में बसा, (विह्रुतं सन्धि) विपरीत रूप से मुड़े या विच्छिन्न सन्धि को भी (पुनः इष्कर्त्ता) फिर ठीक लगा देने वाला है वही ईश्वर, इन्द्र वा जीवात्मा है। शरीर की पृथक २ हड्डियों को विना चेप या कील के जोड़े रखता और टूटी या मोच आई हुई सन्धियों को फिर चंगा कर देता है यही ईश्वरीय कारीगरी और जीव के अद्भुत कौशल का नमूना है।

मा भूम निष्ट्या इवेन्द्र त्वदरणा इव ।
वनानि न प्रजहितान्यद्रिवो दुरोषासो अमन्महि ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (अद्रिवः) मेघों के स्वामी, सूर्यवत् नाना बलों के स्वामिन्! हम (निष्ट्या इव मा भूम) नीचों, हीन, निर्वासित पुरुषों के समान न हों। (त्वत्) तुझ से पृथक् (अरणाः इव) रमण, या जीवन के आनन्द से रहित भी (मा भूम) न हों। (प्र-जहितानि वनानि न) परित्यक्त, विना देख भाल के वनों या उपवनों के समान असुन्दर, कण्टकाकीर्ण भी (मा भूम) न हों। प्रत्युत (दुरोषासः) अन्यों से दग्ध न हो सकने योग्य, वा उत्तम दुर्ग अर्थात् गृहों में रहने वाले होकर (अमन्महि) तेरा मनन और मान आदर करें।

अमन्महीदनाशवोऽनुग्रासश्च वृत्रहन् ।
सकृत्सु ते महता शूर राधसानु स्तोमं मुदीमहि ॥ १४ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्) विघ्नों, शत्रुओं के नाशक प्रभो! राजन्! हम सदा (अनाशवः) अति शीघ्रता न करते हुए, धैर्यवान् और (अनुग्रासः च) अतीक्ष्ण स्वभाव के, सौम्य होकर (ते) तेरा (स्तोमं) स्तुत्य रूप और गुणों का (अमन्महि) मनन करें और तेरी स्तुति करें। हे (शूर) शूरवीर! शत्रुनाशक! (ते) तेरे (महता राधसा) बड़े भारी ऐश्वर्य से (सकृत्) एक वार तो (स्तोमं अनु मुदीमहि) हम तेरी स्तुति के अनुकूल रहकर खूब अवश्य प्रसन्न हों।

यदि स्तोमं मम श्रवदस्माकमिन्द्रमिन्दवः ।
तिरः पवित्रं ससृवांस आशवो मन्दन्तु तुग्र्यावृधः ॥१५॥१२॥

भा०—हे राजन्! स्वामिन्! (यदि) यदि तू (मम स्तोमं) मेरे स्तुतियुक्त वचन को (श्रवत्) श्रवण करे तो (अस्माकम्) हम प्रजाजनों के बीच (इन्दवः) ऐश्वर्यवान् जन और (तिरः ससृवांसः) तिरछे या दूर तक जाने वाले (आशवः) वेग से जाने वाले (तुग्र्यावृधः) शत्रुओं

के नाशक सैन्य बलों के हितों को बढ़ाने वाले या सैन्यों से बढ़ने वाले वीर पुरुष भी (पवित्रं) पवित्राचार वाले, (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् तुझ प्रभु को (मन्दन्तु) प्रसन्न करें। इति द्वादशो वर्गः ॥

आ त्व१द्य सधस्तुतिं वावातुः सख्युरा गहि।
उपस्तुतिर्मघोनां प्र त्वावत्वधा ते वश्मि सुष्टुतिम् ॥ १६ ॥

भा०—(अद्य) आज, तू (वावातुः) सेवा करने वाले, भक्त और (सख्युः) मित्र को (सधस्तुतिम्) एक साथ की स्तुति को (आ गहि) प्राप्त हो। (मघोनां) ऐश्वर्यवानों की (उपस्तुतिः) उपमा द्वारा की स्तुति भी (त्वा प्र अवतु) तुझे प्राप्त हो। (अध) और मैं (ते) तेरी (सुस्तुतिम्) सब से उत्तम स्तुति करना (वश्मि) चाहता हूं। परमेश्वर की स्तुति राजा, ऐश्वर्यवान्, स्वामी आदिरूप से या उपगन्ता, मित्र रूप से भी की जाती है।

सोता हि सोममद्रिभिरेमेनमप्सु धावत।
गव्या वस्त्रेव वासयन्त इन्नरो निर्धुक्षन्वक्षणाभ्यः ॥ १७ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो (अद्रिभिः) जिस प्रकार मेघों से जल बरसता और 'सोम' ओषधि वर्ग उत्पन्न होता है उसी प्रकार (अद्रिभिः) शस्त्र बलों से (सोमं सोत) ऐश्वर्य को उत्पन्न करो। (अद्रिभिः सोमं सोत) मेघवत् कलशों से अभिषेक योग्य का अभिषेक करो। (ईम् एनम्) इस ऐश्वर्य को (अप्सु) प्रजाओं में (आ धावत) प्राप्त कराओ। हे (नरः) वीर नायक जनो! जिस प्रकार वायुगण आकाश में मेघों को तन्तुओं के कपड़ों की तरह फैला देते हैं और जल को (वक्षणाभ्यः) नदियों की वृद्धि के लिये मेघों को दोह देते हैं उसी प्रकार तुम लोग भी वस्त्रों के समान (गव्या वासयन्त) गोचरों को बसाओ, गौओं के रेवड़ भूमि पर जगह २ वाजनों के समान बिछे हों। उन (वक्षणाभ्यः) दूध वहन करने वाली गौओं से (निः धुक्षन्) खूब दूध दोहा करो।

अध॒ ज्मो अध॑ वा दि॒वो बृ॑ह॒तो रो॑च॒नादधि॑ ।
अ॒या व॑र्धस्व त॒न्वा॑ गि॒रा ममा जा॒ता सु॑क्रतो पृण ॥ १८ ॥

भा०—हे (सु-क्रतो) उत्तम ज्ञान और कर्म सम्पादन करने वाले ! तू (अधज्मः) पृथिवी से (अध वा-दिवः) अन्तरिक्ष से वा (बृहतः रोचनात्) बड़े भारी चमकते सूर्य से (जाता) उत्पन्न हुए प्राणियों को (आ पृण) पालन कर और (अया मम तन्वा गिरा) इस मेरी विस्तृत वाणी से (वर्धस्व) बढ़ ।

इन्द्रा॑य॒ सु म॒दिन्त॑मं॒ सोमं॑ सोता॒ वरे॑ण्यम् ।
श॒क्र ए॑णं पीपय॒द्विश्व॑या धि॒या हि॑न्वा॒नं न वा॑ज॒युम् ॥ १९ ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो ! आप लोग (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान्, शत्रु-हन्ता पुरुष के लिये (मदिन्तमं) अति आनन्द और तृप्तिकारक (सोमं) ओषधि रसादि के समान (वरेण्यं) अति श्रेष्ठ धनैश्वर्य को (सोत) सवन करो, उत्पन्न करो । (शक्रः) शक्तिशाली पुरुष ही (एनं) इस को (हिन्वानं वाजयुं न) वृद्धिकारक ऐश्वर्य के स्वामी, ऐश्वर्य के इच्छुक प्रजा-जन के समान ही (पीपयत्) बढ़ावे । राजा धन की वृद्धि के लिये प्रजा का नाश न करे, प्रत्युत प्रजावत् ही धन की वृद्धि करे ।

मा त्वा॒ सोम॑स्य॒ गल्द॑या॒ सदा॒ याच॑न्न॒हं गि॒रा ।
भूर्णिं॑ मृ॒गं न सव॑नेषु चुक्रुधं॒ क ईशा॑नं॒ न या॑चिषत् ॥२०॥१३॥

भा०—(सोमस्य) ऐश्वर्य के निमित्त (गल्दया) स्तुति तथा (गिरा) सामान्य वाणी से भी (सदा) सदा (अहं याचन्) मैं याचना करता हुआ (भूर्णिं) प्रजापालक (सवनेषु) शासन के कार्यों में (मृगं न) सिंह के समान (त्वा) तुझ पराक्रमी को (मा चुक्रुधं) कभी क्रोधित न करूं । (ईशानं) स्वामी से भला (कः न याचिषत्) कौन याचना नहीं किया करता । इति त्रयोदशो वर्गः ॥

मदेनेषितं मदमुग्रमुग्रेण शवसा ।
विश्वेषां तरुतारं मदच्युतं मदे हि ष्मा ददाति नः ॥ २१ ॥

भा०—वह राजा, वा प्रभु (उग्रेण मदेन) अति अधिक आनन्द से और (उग्रेण शवसा) उग्र बल से, (इषितं) अभीष्ट (मदम्) आनन्द (नः ददाति) हमें प्रदान करता है। और (मदे) उस आनन्द में ही (विश्वेषाम्) सब को (तरुतारं) पार उतारने वाला और (मदच्युतं) अति हर्षजनक ज्ञान भी (नः ददाति) हमें देता है ।

शेवारे वार्या पुरु देवो मर्ताय दाशुषे ।
स सुन्वते च स्तुवते च रासते विश्वगूर्तो अरिष्टुतः ॥ २२ ॥

भा०—(दाशुषे मर्त्ताय) कर दानादि देने वाले मनुष्य के हितार्थ (देवः) दानशील राजा (शेवारे) सुख प्राप्त करने के निमित्त (पुरुवार्या रासते) बहुत २ उत्तम धन देता है । (सः) वह (विश्व-गूर्त्तः) सबसे प्रशंसित, और (अरि-स्तुतः) शत्रुओं से भी प्रशंसित होकर (सुन्वते स्तुवते च) स्तुति करने और ऐश्वर्य उत्पन्न करने वा अभिषेक करने वाले प्रजाजन के लिये भी (रासते) ऐश्वर्य प्रदान करता है ।

एन्द्र याहि मत्स्व चित्रेण देव राधसा ।
सरो न प्रास्युदरं सपीतिभिरा सोमेभिरुरु स्फिरम् ॥ २३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! हे (देव) तेजस्विन् विजिगीषो ! तू (आ याहि) आ । और (चित्रेण राधसा) आश्चर्यजनक नाना प्रकार के धन से (मत्स्व) हर्षित हो। तू (स-पीतिभिः) एक साथ मिल कर पान, उपभोग और पालन क्रियाओं से (सरः न) सरोवर के समान (सोमेभिः) ऐश्वर्यों से (स्थिरम्) प्रतिष्ठित (उरु) बहुत बड़े (उदरम्) पेट के समान राष्ट्र के कोश को (प्रासि) पूर्ण कर ।

आ त्वा सहस्रमा शतं युक्ता रथे हिरण्यये ।
ब्रह्मयुजो हरय इन्द्र केशिनो वहन्तु सोमपीतये ॥ २४ ॥

भा०—(हिरण्यये रथे) सुवर्ण या लोह जटित रथ में जुते (केशिनः हरयः) अयाल वाले अश्व जिस प्रकार रथस्वामी को ले जाते हैं उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! सेनापते ! (सहस्रं) हज़ार २ और (शतम्) सौ सौ (ब्रह्मयुजः) अन्न, वेतनादि पर नियुक्त (केशिनः) उत्तम केशों से युक्त, तेजस्वी (हरयः) मनुष्य (युक्ताः) सावधान चित्त होकर (सोम-पीतये) ऐश्वर्यमय राज्य के पालन करने के लिये (हिरण्यये रथे) हित और सुन्दर रमण योग्य इस राष्ट्र में (त्वा) तुझे (आ वहन्तु) आदर पूर्वक अपने ऊपर धारण करें।

आ त्वा रथे हिरण्यये हरी मयूरशेप्या।
शितिपृष्ठा वहतां मध्वो अन्धसो विवक्षणस्य पीतये ॥२५॥१४॥

भा०—(रथे हरी) रथ में दो अश्वों के समान (हिरण्यये) ऐश्वर्य युक्त (रथे) रमण योग्य, राष्ट्र में (मयूरशेप्या) मयूर के चिन्ह के समान शिर पर मान आदर सूचक कल्गी धारण करने वाले, (हरी) उत्तम दो पुरुष (शिति-पृष्ठा) श्वेत शुद्ध रूप वाले, निर्दोष होकर (त्वा) तुझ को (मध्वः) मधुर (अन्धसः) अन्न के समान (विवक्षणस्य) विविध प्रकार से धारण करने योग्य राष्ट्र में स्वामी के महान् कार्य के (पीतये) प्राप्ति, उपभोग और पालन करने के लिये (वहताम्) तुम को अपने ऊपर धारण करें। (२) अध्यात्म में हिरण्यय रथ देह, इन्द्र, आत्मा अश्व प्राण-अपान हैं। विविध प्रकार से वचन या उपदेश का विषय मधुर अन्न, मधु विद्या, ब्रह्म ज्ञान है। वे उसको प्राप्त करावें। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

पिबा त्वं१स्य गिर्वणः सुतस्य पूर्वपा इव।
परिष्कृतस्य रसिन इयमासुतिश्चारुर्मदाय पत्यते ॥ २६ ॥

भा०—हे (गिर्वणः) वाणियों के देने हारे आचार्य! हे वाणियों द्वारा स्तुत्य! राजन्! तू (पूर्वपा-इव) पूर्व काल के अनुभवी पालक के

समान, (अस्य सुतस्य) इस अधीन शिष्य वा प्रजाजन का पुत्र वा ऐश्वर्य के समान (पिब) पालन कर। (परिष्कृतस्य) अच्छी प्रकार बनाये (रसिनः) रसयुक्त अन्न का (आसुतिः) बना पदार्थ जिस प्रकार हर्षजनक होता है उसी प्रकार (परिष्कृतस्य) सजे सजाये, विद्यादि गुणों से अलङ्कृत (रसिनः) बलवान् पुरुष की (इयम्) यह (आ-सुतिः) अभिषेक क्रिया भी, (चारुः) सबको अच्छी प्रकार लगने वाली होकर (मदाय) सब के आनन्द के लिये (पत्यते) पालकवत् आचरण करती है। उसको सब का पति, स्वामी बना देती है॥

य एको अस्ति दंसना महाँ उग्रो अभि व्रतैः।
गमत्स शिप्री न स योषदा गमद्धवं न परि वर्जति॥ २७॥

भा०—(यः) जो (एकः) एक, अकेला ही, अन्य सहायकों की अपेक्षा किये विना ही (दंसना) कर्म सामर्थ्य से (महान् अस्ति) महान् है और जो (व्रतैः महान्) व्रतों, कर्त्तव्य पालनों द्वारा (उग्रः) उग्र है (सः) वह (शिप्री) उत्तम शिरोमुकुट वाला, उत्तम मुख नासिका वाला, सुमुख पुरुष (अभिगमत्) हमें प्राप्त हो। (न सः योषत्) वह हम से पृथक् न हो। वह (हवं गमत्) स्तुति को प्राप्त हो। वह (न परि वर्जति) हमारा त्याग न करे। (२) परमेश्वर सर्वप्रभु कर्मों से महान्, ज्ञानवान्, साक्षात् स्तुति के योग्य हो। वह हमारे सदा साथ रहें।

त्वं पुरं चरिष्णवं वधैः शुष्णस्य सं पिणक्।
त्वं भा अनु चरो अध द्विता यदिन्द्र हव्यो भुवः॥ २८॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राजन्! (शुष्णस्य) प्रजा के शोषण करने वाले शत्रु या दुष्ट पुरुष के (चरिष्णवं) अस्थिर या प्रजा के ऐश्वर्य के भोक्ता (पुरं) नगरवत् अड्डे या छावनी को (वधैः संपिणक्) दण्डों और शस्त्रों से पीस डाल, चूर्ण २ कर नष्ट कर दे। और (अध यत्) जब तू

(हव्यः भुवः) स्तुतियों को प्राप्त करे तो (अध द्विता अनु चरः) अनन्तर दोनों प्रकार की कान्तियों या तेजों को प्राप्त कर अर्थात् शत्रुदमन और प्रजापालन दोनों कार्यों में तुझे कीर्त्तियां प्राप्त हों। तू सूर्यवत् प्रखर, प्रचण्ड और चन्द्रवत् प्रजाजन-मनोरंजक कान्तियों को धारण कर। (२) प्रभु परमेश्वर (वधैः शुष्णस्य) दण्डों से दुःखित जीव इस भोग के साधन जंगम देह को नाश करे। स्तुत्य प्रभु कान्तियों और ज्ञानों को प्रकट करे।

मम॑ त्वा सूर॒ उदि॑ते॒ मम॑ म॒ध्यन्दि॑ने दि॒वः।
मम॑ प्रपि॒त्वे अ॑पिशर्व॒रे व॑सु॒वा स्तोमा॑सो अवृत्सत ॥ २९ ॥

भा०—हे (वसो) सबको बसाने वाले राजन्! हे प्रभो! (सूरे उदिते) सूर्य के उदय काल में, (दिवः मध्यन्दिने) दिन के मध्याह्न काल में और (प्रपित्वे) दिन के समाप्ति काल में और (अपिशर्वरे) रात्रि के अन्धकारमय काल में (मम) मेरे (स्तोमासः) नाना स्तुति-वचन (त्वा अवृत्सत) तुझे ही लक्ष्य करके निकलें।

स्तु॒हि स्तु॒हीदे॒ते घा॑ ते॒ मंहि॑ष्ठासो म॒घोना॑म्।
नि॒न्दि॒ताश्वः॑ प्रप॒थी प॑रम॒ज्या म॒घस्य॑ मेध्यातिथे ॥ ३० ॥ १५ ॥

भा०—(घ) निश्चय से हे (मेध्यातिथे) सत्संग करने योग्य, पूज्य अतिथे! विद्वन्! (मघोनां) पूज्य ज्ञानादि के धनी गुरु जनों का (स्तुहि स्तुहि इत्) तू अवश्य बार २ स्तुति किया ही कर, क्योंकि (ते) वे पूज्य जन (मघस्य) उत्तम धन के, ज्ञानादि के (मंहिष्ठासः) उत्तम दाता हैं। और (निन्दिताश्वः) निन्दित अश्वों वाला, दुष्टेन्द्रिय, अजितेन्द्रिय पुरुष (प्रपथी) सन्मार्ग का उलांघने वाला और (परमज्या) परम श्रेष्ठ पुरुषों के मान, आयु की हानि करने वाला होता है। इसलिये मनुष्य को चाहिये कि वह सदा ही परमेश्वर या गुरुजनों की स्तुति करे जिससे विनयशील और जितेन्द्रिय हो। अन्यथा अविनीत जन अजितेन्द्रिय, कुमार्गी, गुरुद्रोही होजाता है। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

आ यदश्वान्वनन्वतः श्रद्धयाहं रथे रुहम् ।
उत वामस्य वसुनश्चिकेतति यो अस्ति याद्वः पशुः ॥ ३१ ॥

भा०—(यत्) जब मैं उत्तम सारथी या रथारोही के समान (वनन्वतः) विषयों को संभोग करने वाले (अश्वान्) इन्द्रियरूप विषय भोक्ता 'अश्वों' को (आ) सब ओर से रोक लेता हूं तब मैं (श्रद्धया) सत्य धारण के बल से (रथे) इस देह रूप रथ पर भी (रुहम्) चढ़ सकता हूं अथवा (श्रद्धया) सत्यज्ञान के बलपर मैं (रथे) रसस्वरूप, परम रमणीय प्रभु के आनन्द में भी (रुहम्) प्राप्त होऊं। (याद्वः पशुः) मनुष्यों के हितकारी पशु के समान ही (यः) जो मनुष्य (याद्वः) यत्नवान् मनुष्यों के बीच कुशल, (पशुः) सम्यक् तत्वदर्शी है वही (वामस्य) सर्वोत्तम, सुन्दर (वसुनः) परमैश्वर्य का (चिकेतति) जानने हारा है।

य ऋज्रा मह्यं मामहे सह त्वचा हिरण्यया ।
एष विश्वान्यभ्यस्तु सौभगासङ्गस्य स्वनद्रथः ॥ ३२ ॥

भा०—(यः) जो आत्मा (हिरण्यया त्वचा) सुवर्णादि की बनी सुनहरी पोषाक के समान अति उज्ज्वल प्रकाशमय, ज्योतिर्मय रूप से (मह्यं) मुझे (ऋज्रा) सरल धार्मिक व्यवहारों, ज्ञानों और ऐश्वर्यों को (मामहे) प्रदान करता है (एषः) वह (आसङ्गस्य) सङ्ग रहित आत्मा वा सबको सत्कार्यों में लगाने हारे का (स्वनत्-रथः) उत्तम प्राण धारण करने वाला रमणसाधन रथ, देह (विश्वानि सौभगानि) समस्त सुखैश्वर्यों को (अभि-अस्तु) साक्षात् करे। 'आसङ्ग':—सङ्गरहितः। असङ्ग एव आसङ्गः।

अध प्लायोगिरति दासदन्यानासङ्गो अग्ने दशभिः सहस्रैः ।
अधोक्षणो दश मह्यं रुशन्तो नळा इव सरसो निरतिष्ठन् ॥२३॥

भा०—(अध) और जिस प्रकार (दशभिः सहस्रैः अन्यान् अति-

दासत्) विजयी दसों हज़ारों सेना भटों से शत्रुओं को पराजय कर नष्ट कर देता है, उसी प्रकार (प्रायोगिः = प्रायोगिः) प्रयोग कुशल वा प्रयस् = उत्तम उद्यम से और ज्ञानपूर्वक जाने द्वारा (आसङ्गः) उत्तम सत्संगी, वा असंग पुरुष (दशभिः) दश (सहस्रैः) बलवान् इन्द्रियों के साथ (अति दासत्) सब को अपने वश कर लेता है। हे (अग्ने) सर्व प्रकाशक प्रभो ! (अध) तत्र (दश उक्षणः) दसों देह के उठाने वाले प्राण गण (मह्यं) मेरी सहायता के लिये (सरसः नडाः इव) तालाब के तट पर खड़े नड़ों के समान (नडाः = नराः) वीर पुरुषों के समान ही (निर् अतिष्ठन्) निकल खड़े होते हैं। वे मेरे सदा सहायक होते हैं।

अन्व॑स्य स्थू॒रं द॑दृशे पु॒रस्ता॑दन॒स्थ ऊ॒रुर॑व॒रम्ब॑माणः ।
शश्व॑ती॒ नार्य॑भि॒चक्ष्या॑ह॒ सुभ॑द्रमर्य॒ भोज॑नं बिभर्षि ॥३४॥१६॥

भा०—(अस्य) इस आत्मा का (स्थूरम्) स्थूल देह भी (अनु) इसके अनुरूप ही (पुरस्तात्) आगे (ददृशे) दीखता है। वह स्वयं (अनस्थः) अस्थि आदि देहावयवों से भी रहित, (ऊरुः) जंघा के समान शरीर का आश्रय होकर भी (अवरम्बमाणः) देह का आश्रय ले रहा होता है। (शश्वती) सदा तनी (नारी) नर, आत्मा की सहयोगिनी बुद्धि (अभि-चक्ष्य) आत्मा का साक्षात् करके (आह) कहती है हे (अर्य) स्वामिन् ! तू ही (सु-भद्रम्) शुभ, उत्तम सुखदायी (भोजनं) भोग के साधन देह को (बिभर्षि) धारण करता और पालता पोषता है। इति षोडशो वर्गः॥

[२]

मेध्यातिथिः काण्वः प्रियमेधश्चांगिरसः। ४१, ४२ मेधातिथिर्ऋषिः॥ देवताः—१—४० इन्द्रः। ४१, ४२ विभिन्दोर्दानस्तुतिः॥ छन्दः—१—३, ५, ६, ८, ११, १२, १४, १६—१८, २२, २७, २६, ३१, ३३, ३५, ३७, ३८, ३६ आर्षी गायत्री। ४, १३, १५, १६—२१, २३, २४, २५, २६,

३०, ३२, ३६, ४२ आर्षी निचृद्गायत्री । ७, ८, १०, ३४, ४० आर्षी विराड् गायत्री । ४१ पादनिचृद् गायत्री । २८ आर्ची स्वराडनुष्टुप् ॥

चत्वारिंशदृचं सूक्तम् ॥

इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम् ।
अनाभयिन्ररिमा ते ॥ १ ॥

भा०—हे (वसो) प्रजा को बसाने वाले राजन् ! वा प्रत्येक में बसने वाले आत्मन् ! तू (अन्धः) अन्न के समान (सु-पूर्णम्-उदरम्) अच्छी प्रकार पेट भर कर (सुतम् पिब) अन्न जलवत् उत्पन्न ऐश्वर्य का भोग कर । हे (वसो) गृहस्थ पिता तू (सुतम्) पुत्र को (सुपूर्णम् उदरम् अन्धः पिब) पेट भरकर अन्न खिलाकर पाल । हे (अनाभयिन्) न भय करनेहारे ! (ते) तुझे हम वह ऐश्वर्य (ररिम) प्रदान करें ।

नृभिर्धूतः सुतो अश्नैरव्यो वारैः परिपूतः ।
अश्वो न निक्तो नदीषु ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार (अश्नैः सुतः) प्रस्तरों द्वारा अभिषुत सोमरस (नृभिः धूतः) ऋत्विजों द्वारा कंपित या हिला २ कर (अव्यः वारैः परिपूतः) भेड़ के बने बालों से छनता है उसी प्रकार (अश्नैः) शास्त्र बलों से (सुतः) अभिषिक्त राजा (नृभिः धूतः) नायक पुरुषों द्वारा शिक्षित और (अव्यः) रक्षा करने योग्य राष्ट्र के (वारैः) उत्तम ऐश्वर्यों वा शत्रुवारक सैन्यों से (परिपूतः) पवित्र, परिगत राजा (नदीषु निक्तः अश्वः) नदियों में नहाये अश्व के समान (नदीषु) समृद्ध प्रजाओं के बीच (निक्तः) अभिषिक्त हो ।

तं ते यवं यथा गोभिः स्वादुमकर्म श्रीणन्तः ।
इन्द्र त्वास्मिन्त्सधमादे ॥ ३ ॥

भा०—(यथा) जिस प्रकार (यवं) जौ के बने भोजन को (गोभिः श्रीणन्तः) गाय के दूधों से मिलाते हुए या उसे दूधों के साथ पकाते हुए

भोजन को (स्वादुम् अकर्म) स्वादु बना लेते हैं (ते) तेरे (यवं) शत्रु को नाश करने वाले सैन्य वल को (गोभिः) भूमियों से उत्पन्न अर्थों द्वारा (श्रीणन्तः) परिपक्व, दृढ़ करते हुए राष्ट्र के वल को (स्वादुम्) सुख से भोग करने योग्य (अकर्म) करें। उसी प्रकार हे (इन्द्र) सूर्य-वत् तेजस्विन्! ऐश्वर्यप्रद! (अस्मिन् सधमादे) इस एक साथ हर्षित होने योग्य अवसर में (त्वा) तुझ को हम (गोभिः श्रीणन्तः) उत्तम वाणियों से संगत करते हुए (स्वादुम् = स्व-आदुम्) निज ऐश्वर्य का भोक्ता (अकर्म) वनाते हैं।

इन्द्र इत्सो॑म॒पा एक॒ इन्द्रः॑ सुत॒पा वि॒श्वायुः॑ ।
अ॒न्तर्दे॒वान्मर्त्याँ॑श्च ॥ ४ ॥

भा०—(एकः इन्द्रः इत्) एक, अद्वितीय, ऐश्वर्यवान् इन्द्र ही (सोम-पाः) ओषधि वर्ग के पालक मेघ या सूर्य के समान समस्त ऐश्वर्य का पालक है। वही (एकः इन्द्रः) एक, अकेला, अन्यों की सहायता की अपेक्षा न करता हुआ 'इन्द्र' ऐश्वर्यवान् राजा या प्रभु (सुत-पाः) उत्पन्न ऐश्वर्य का भोक्ता, (सु-तपाः) शत्रु को अच्छी प्रकार पीड़ित करने वाला, तेजस्वी है। वह (विश्वायुः) समस्त प्रजा का जीवन स्वरूप, समस्त मनुष्यों का स्वामी, सब को प्राप्त है। वही (देवान् मर्त्यान् च अन्तः) सब दिव्य पदार्थों, विद्वानों और मरणधर्मा प्राणियों के भीतर रह कर उनका (सोम-पाः) शिष्यवत् पालक, ऐश्वर्यवान् और उनका पुत्रवत् पालक है।

न यं शु॒क्रो न दुरा॑शी॒र्न तृ॒प्रा उ॑रु॒व्यच॑सम् ।
अ॒प॒स्पृ॒ण्व॒ते सु॒हार्द॑म् ॥ ५ ॥ १७ ॥

भा०—(उरु-व्यचसं) महान् राष्ट्र में विशेष प्रसिद्ध (सु-हार्दम्) उत्तम हृदय वाले (यं) जिसको (न शुक्रः) न देह में बलवीर्यवत् कान्ति तेजोवर्धक बल और (न दुराशीः) न दुर्भावना, और (न तृप्राः) न

मृत, अति धनी जन ही (अप-स्पृण्वते) द्वेष कर सकते हैं। वह बल का स्वामी, सब का प्रिय और मित्र है। इति सप्तदशो वर्गः ॥

गोभिर्यदीमन्ये अस्मन्मृगं न व्रा मृगयन्ते।
अभित्सरन्ति धेनुभिः ॥ ६ ॥

भा०—(व्राः न मृगं) घेरने वाले जन जैसे मृग या सिंह को (गोभिः मृगयन्ते) हाकों से ढूंढ़ते हैं इसी प्रकार (यत्) जिस को (अस्मत् अन्ये) हम से दूसरे भी (गोभिः) स्तुति वाणियों से (मृगयन्ते) खोजते फिरते हैं वे उसको (धेनुभिः) वाणियों, स्तुतियों द्वारा ही (अभि त्सरन्ति) प्राप्त होते हैं।

त्रय इन्द्रस्य सोमाः सुतासः सन्तु देवस्य।
स्वे क्षये सुतपान्नः ॥ ७ ॥

भा०—जिस प्रकार (सुतपाव्नः) यज्ञ में सोमपायी इन्द्र के लिये (सोमाः त्रयः सुताः) सोम तीनवार सवन किया जाता है इसी प्रकार (स्वे क्षये) अपने निवास योग्य राष्ट्र में (सुतपाव्नः) गृह में सुतों के समान राष्ट्र में प्रजा को पालन करने वाले (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् शत्रुनाशक, (देवस्य) दानशील राजा के लिये (त्रयः सोमाः) तीनों प्रकार के ऐश्वर्य जन, धन, मनन बल, (सुतासः) अच्छी प्रकार तैयार (सन्तु) होने चाहियें।

त्रयः कोशासश्चोतन्ति तिस्रश्चम्वः सुपूर्णाः।
समाने अधि भार्मन् ॥ ८ ॥

भा०—(समाने) एक समान, (भार्मन् अधि) भरण पोषण करने योग्य राष्ट्र वा युद्ध के अध्यक्ष पद पर स्थित राजा के (त्रयः कोशासः) तीनों कोश और (तिस्रः) तीनों प्रकार की (सु-पूर्णाः) खूब पूर्ण, सुख-पूर्वक समृद्ध (चम्वः) राष्ट्र की भोक्ता प्रजाएं वा सेनाएं भी (श्चोतन्ति) इसे ऐश्वर्य प्रदान करती हैं। तीन कोश—जनकोश राष्ट्र, धनकोश ख़ज़ाना,

और मन्त्रकोश राजविद्वत्सभा वा सचिव परिषत् और तीन चमू, प्रजाएं, और शासक वर्ग। (२) भरणीय, पोष्य देह में तीन कोश विज्ञानमय, मनोमय, आनन्दमय, तीन चमू, कर्मेन्द्रिय, ज्ञानेन्द्रिय, मन, सभी आनन्द, ज्ञान, कर्म और फल प्रदान करती हैं।

शुचिरसि पुरुनिःष्ठाः क्षीरैर्मध्यत आशीर्तः।
दुध्ना मन्दिष्ठः शूरस्य ॥ ९ ॥

भा०—हे राजन्! तू (पुरु-निः-ष्ठाः) बहुतों में स्थिर होकर, (क्षीरैः) शुद्ध जलों से (मध्यतः) सब के बीच (आशीर्तः) आसेवित होकर और (दध्ना) राष्ट्र को धारण करने वाले बल से (शूरस्य) शूरवीर पुरुष को भी (मन्दिष्ठः) आनन्दित, प्रसन्न करने वाला होकर (शुचिः असि) शुद्ध, पवित्रहृदय, धार्मिक हो। अभिषेकों का अभिप्राय राजा को राग-द्वेष, पक्षपात, लोभ, क्रोधादि से पवित्र करना ही है।

इमे त इन्द्र सोमास्तीव्रा अस्मे सुतासः।
शुक्रा आशिरं याचन्ते ॥ १० ॥ १८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (इमे) ये (सोमाः) सोम्य प्रजा-जन और (अस्मे सुतासः) हमारे पुत्रादि (शुक्राः) आशु—कार्यकारी, शुद्ध तेजस्वी, (तीव्राः) वेगवान् होकर (ते) तेरा (आशिरं याचन्ते) आश्रय मांगते हैं। वा हमारे उत्पन्न ऐश्वर्य के रक्षक भी आश्रय चाहते हैं। (२) ये (सोमाः) जीव पुत्रवत् पालनीय, शुद्ध पवित्र होकर प्रभु का आश्रय मांगते हैं। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

ताँ आशिरं पुरोळाशमिन्द्रेमं सोमं श्रीणीहि।
रेवन्तं हि त्वा शृणोमि ॥ ११ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राजन्! (हि) क्योंकि मैं (त्वा) तुझ को (रेवन्तं) ऐश्वर्यवान् धन का स्वामी (शृणोमि) श्रवण करता हूं। जिस प्रकार (पुरोडाशम्) रसादि से मिश्रित अन्न को अग्नि तपाता

और जिस प्रकार ओषधि अन्नादि का सूर्य परिपाक करता है उसी प्रकार तू (तान्) उन पूर्वोक्त शुद्धाचारवान् पुरुषों को और (आशिरम्) आश्रय करने और देने योग्य (सोमं) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र तथा (इदं) उस (पुरोडाशम्) आगे आदर पूर्वक देने योग्य की (श्रीणिहि) सेवा कर। और उनको तप द्वारा दृढ़ बना।

हृत्सु पीतासो युध्यन्ते दुर्मदासो न सुरायाम्।
ऊधर्न नग्ना जरन्ते ॥ १२ ॥

भा०—(दुर्मदासः न) दुष्ट मद से युक्त पुरुष जिस प्रकार (हृत्सु पीतासः) हृदयों तक पीकर, बेसुध होकर (युद्ध्यन्ते) परस्पर लड़ते हैं इसी प्रकार (सुरायाम्) सुख देने वाली, राज्यलक्ष्मीवत् सुख से रमण करने योग्य आनन्द की दशा में भी (हृत्सु पीतासः) हृदयों में आनन्द रस का पान, अनुभव कर लेने वाले विद्वान् जन (युध्यन्ते) अपने अन्तःशत्रु, काम क्रोधादि से युद्ध करते हैं वा शत्रुओं पर प्रहार करते हैं और (नग्नाः) वेद वाणियों को त्याग न करने वाले विद्वान् वा (नग्नाः) स्त्री आदि के संग से रहित ब्रह्मचारी वा मूकभाव से मन ही मन मुग्ध हो (ऊधः न) मातृस्तनवत् वा मेघवत् सुखवर्षी उस सर्वोपरि प्रभु की (जरन्ते) स्तुति किया करते हैं।

रेवाँ इद्रेवतः स्तोता स्यात्त्वावतो मघोनः।
प्रेदु हरिवः श्रुतस्य ॥ १३ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! प्रभो! (त्वावतः) तेरे जैसे (मघोनः) उत्तम ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्यादि के स्वामी, (रेवतः) धन के स्वामी के गुणों की (स्तोता) स्तुति करने वाला पुरुष भी (रेवान् इत् स्यात्) धनाढ्य ही हो जाता है।

उक्थं चन शस्यमानमगोररिरा चिकेत।
न गायत्रं गीयमानं ॥ १४ ॥

भा०—(अरिः) व्यापक, स्वामी प्रभु (अगोः) वाणीरहित, मूक

जन के भी (शस्यमानम् उक्थं चन) न कहे गये स्तुति के वचन को (आचिकेत) भली प्रकार जान लेता है उसी प्रकार (न गायमानं गायत्रं च) न गाये गये गायत्र स्तोम, गान योग्य गीत को भी जानता है। भगवान् मूक की भी कही या अनुक्त वाणी को सुनता है।

मा न॑ इन्द्र पीयुत्नवे मा शर्ध॑ते परा॑ दाः।
शिक्षा॑ शचीवः शची॑भिः॥ १५॥ १९॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! स्वामिन्! तू (नः) हमें (पीयत्नवे) हिंसक, क्रूर पुरुष के लाभ के लिये (मा परा दाः) मत त्याग और (शर्धते मा परा दाः) हमें अपमानित करने वाले के लिये मत त्याग। हे (शचीवः) वाणी और शक्ति के स्वामिन्! तू (नः) हमें (शचीभिः) शक्तियों और वाणियों से हिंसक और अपमानजनक पुरुष के दण्ड करने के लिये (शिक्ष) शिक्षा या बल दे। इत्येकोनविंशो वर्गः॥

व॒यमु त्वा त॒दिद॑र्था इन्द्र॑ त्वा॒यन्तः॒ सखा॑यः।
कण्वा॑ उ॒क्थेभि॑र्जरन्ते॥ १६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य देने वाले स्वामिन्! (वयम् कण्वाः) हम विद्वान् लोग (तदिदर्थाः) उस, इस पारमार्थिक, ऐहिक नाना प्रयोजनों को चाहने वाले, (सखायः) तेरे मित्र होकर (त्वायन्तः) तुझे सदा चाहते हुए वा (त्वा यन्तः) तुझे प्राप्त होकर (उक्थेभिः) उत्तम वचनों से (जरन्ते) तेरी स्तुति करते हैं।

न घे॑म॒न्यदा प॑पन॒ वज्रि॑न्न॒पसो॒ नवि॑ष्टौ।
तवे॒दु स्तोमं॑ चिकेत॥ १७॥

भा०—हे (वज्रिन्) शक्तिशालिन्! (अपसः) कर्म करने वाले तेरी (नविष्टौ) उत्तम से उत्तम पूजा के अवसर पर मैं (अन्यत् न घ आ पपन) और कुछ नहीं स्तुति करता, मैं (तव इत् उ) तेरी ही (स्तोमं चिकेत) स्तुति करना जानूं।

इ॒च्छन्ति॑ दे॒वाः सु॒न्वन्तं॒ न स्वप्ना॑य स्पृहयन्ति ।
यन्ति॑ प्र॒माद॒मत॑न्द्राः ॥ १८ ॥

भा०—(देवाः) विद्वान्, शुभ कामना वाले जन (सुन्वन्तं) यज्ञ-कर्म और ईश्वर स्तुति करने वाले तथा ऐश्वर्य प्राप्त करने वाले को (इच्छन्ति) चाहते हैं। वे (स्वप्नाय) सोने वाले को (न स्पृहयन्ति) प्रेम नहीं करते, वा वे (स्वप्नाय न स्पृहयन्ति) आलस्य से प्रेम नहीं करते। (अतन्द्राः) आलस्यरहित पुरुष भी (प्रमादम् यन्ति) प्रमाद को प्राप्त हो जाते हैं इसलिये आलस्य से प्रेम न करो। अथवा—(अतन्द्राः) तन्द्रा, आलस्य से रहित लोग ही (प्र-मादम् यन्ति) उत्तम कोटि का आनन्द प्राप्त करते हैं।

ओ षु प्र या॑हि॒ वाजे॑भि॒र्मा हृ॑णीथा अ॒भ्य१॒॑स्मान् ।
म॒हाँइ॑व॒ युव॑जानिः ॥ १९ ॥

भा०—हे स्वामिन्! (युवजानिः इव महान्) जिस प्रकार युवति स्त्री का पति (वाजेभिः) उत्तम २ नाना ऐश्वर्यों सहित आगे २ बढ़ता है और कोई लज्जा अनुभव नहीं करता, उसी प्रकार हे ऐश्वर्यवन्! तू भी (महान्) गुणों में महान् होकर (अस्मान् अभि) हमारे प्रति (आ उ सु-प्र याहि) आ और सुखपूर्वक, आदर सहित जा (अस्मान् अभि) हमारे प्रति (मा हृणीथाः) लज्जा, संकोच, तिरस्कार और क्रोध मत कर।

मो ष्व१॒॑द्य दु॒र्हणा॑वान्त्सा॒यं क॑रदा॒रे अ॒स्मत् ।
अ॒श्रीर॑इव॒ जामा॑ता ॥ २० ॥ २० ॥

भा०—हे स्वामिन्! तू (दुर्हणावान्) अति दुःसह पीड़ा देने वाला प्रभु (अद्य) आज, (अस्मत्) हम से दूर रहकर (मो सु सायं करत्) कभी सारा दिन व्यतीत कर सायंकाल न कर दे। (अश्रीरः इव जामाता) शोभा, लक्ष्मीरूप, सौभाग्यादि से रहित जंवाई जिस प्रकार दिन भर व्यतीत करके रात्रि काल में आता है, जिससे उसके दुर्लक्षणादि

प्रकट न हों। उसी प्रकार हे स्वामिन्! तेरा भी विरह असह्य है। वह तू भी आते २ विलम्ब न कर, शीघ्र दर्शन दो। प्रभो! तुम अपने उत्तम रूप गुणों सहित शीघ्र दर्शन दो। इति विंशो वर्गः॥

विद्मा ह्यस्य वीरस्य भूरिदावरीं सुमतिम्।
त्रिषु जातस्य मनांसि॥ २१॥

भा०—(अस्य वीरस्य) इस वीर के समान, विशेष बल से युक्त, विविध विद्याओं के उपदेष्टा, स्वामी की (भूरि-दावरीं) बहुत से सुखैश्वर्य देने वाली (सु-मतिम्) कल्याणकारी ज्ञान, बुद्धि और वाणी को (विद्म हि) अवश्य जानें। (त्रिषु) तीनों लोकों और तीनों वेदों में (जातस्य) प्रसिद्ध, तीनों में विशेष ज्ञाता के (मनांसि) ज्ञानों को भी (विद्म) जानें।

आ तू षिञ्च कण्ववन्तं न घा विद्म शवसानात्।
यशस्तरं शतमूतेः॥ २२॥

भा०—हे विद्वन्! हे ऐश्वर्यवन्! तू (कण्ववन्तं) विद्वान् पुरुषों से युक्त जन को (आ सिञ्च) वृक्ष,वनस्पतिवत् सींच, उसे बढ़ा। (शतम्-ऊतेः) सैकड़ों ज्ञानों और रक्षाओं से सम्पन्न (शवसानात्) बलवान् शक्तिशाली से अधिक (यशस्तरं) बलवान् और यशस्वी दूसरे को (न घ विद्म) नहीं जानते।

ज्येष्ठेन सोतरिन्द्राय सोमं वीराय शक्राय।
भरा पिबन्नर्याय॥ २३॥

भा०—हे (सोतः) ईश्वर के उपासक! यज्ञकर्त्तः! तू (वीराय) विविध ज्ञानवृद्धियों की प्रेरणा करने वाले, (शक्राय) शक्तिशाली, (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् और (नर्याय) सब मनुष्यों के हितकारक स्वामी के लिये (ज्येष्ठेन) उसको सर्वश्रेष्ठ रूप से जान कर सबसे अधिक

(सोमं भर) ऐश्वर्यादि वा अपने आत्मा को भी उसके अर्पण कर। वह (पिवत्) उसका पालन करे।

यो वेदिष्ठो अव्यथिष्वश्वावन्तं जरितृभ्यः।
वाजं स्तोतृभ्यो गोमन्तम् ॥ २४ ॥

भा०—(यः) जो (अव्यथिषु) अन्यों को पीड़ा न देने वाले अहिंसक जनों में सबसे अधिक (वेदिष्ठः) वेदनावान् दयालु है, वह (जरितृभ्यः) स्तुतिकर्त्ता विद्वानों और (स्तोतृभ्यः) उपदेशकों के लिये (अश्वावन्तं गोमन्तं वाजं) अश्वों और गौओं से सम्पन्न ऐश्वर्य (वेदिष्ठः) सबसे अधिक प्रदान करता है।

पन्यंपन्यमित्सोतार आ धावत मद्याय।
सोमं वीराय शूराय ॥ २५ ॥ २१ ॥

भा०—हे (सोतारः) विद्वान् जनो! हे यज्ञकर्त्ता जनो, हे ऐश्वर्य, अन्नादि के उत्पादक प्रजा जनो! आप लोग (मद्याय) आनन्द हर्ष के योग्य (वीराय) वीर (शूराय) शूर पुरुष के लिये (पन्यं-पन्यं सोमं) स्तुत्य, एवं सर्वोत्तम अन्न ऐश्वर्यादि प्राप्त कराओ। इत्येकविंशो वर्गः ॥

पाता वृत्रहा सुतमा घा गमन्नारे अस्मत्।
नि यमते शतमूतिः ॥ २६ ॥

भा०—(अस्मत्) हम से दूर रहकर भी (वृत्रहा) विघ्नों, विघ्नकारी शत्रुओं का नाशक राजा (पाता) राष्ट्र का पालक होकर राष्ट्र को (सुतम्) पुत्रवत् जान कर (आ घ गमत्) अवश्य आवे। वह (शतम्-ऊतिः) सैकड़ों रक्षा साधनों से सम्पन्न होकर (नियमते) राष्ट्र की व्यवस्था करता है। (२) इसी प्रकार प्रभु पुत्रवत् उत्पन्न संसार का पालक होकर उसको प्राप्त है, हम अज्ञानियों से दूर है। तो भी वह सैकड़ों रक्षा साधनों से सम्पन्न हो जगत् को नियमों में बांध रहा है।

एह हरी ब्रह्मयुजा शग्मा वक्षतः सखायम् ।
गीर्भिः श्रुतं गिर्वणसम् ॥ २७ ॥

भा०—(ब्रह्म-युजा) बृहद् राष्ट्र के पालक पद पर नियुक्त बड़े वेतनादि पर सहयोगी हो (हरी) विद्वान् स्त्री पुरुष (इह) इस राष्ट्र में (शग्मा) सुखदायक होकर (सखायम्) मित्रवत् इन्द्र को (आ वक्षतः) अपने ऊपर धारण करते हैं। और (गीर्भिः श्रुतं) वाणियों से विख्यात बहुश्रुत (गिर्वणसम्) वाणियों को स्वीकारने और देने वाले उसको वे दोनों धारण करते हैं।

स्वादवः सोमा आ याहि श्रीताः सोमा आ याहि ।
शिप्रिन्नृषीवः शचीवो नायमच्छा सधमादम् ॥ २८ ॥

भा०—हे (शिप्रिन्) तेजस्विन् ! हे (ऋषीवः) ऋषियों, द्रष्टाओं इन्द्रियों के भी स्वामिन् ! हे (शचीवः) शक्तियों और वाणियों के स्वामिन् ! (सोमाः) ये अन्नादि ओषधि रसवत् जगत् के उत्पन्न पदार्थ अध्यात्म में—अध्यात्म आनन्द और ये जीवगण (स्वादवः) सुखकारी हैं, और (सु-आदवः) सुख की कामना करते (सोमाः श्रीताः) समस्त रस परस्पर मिल गये हैं। समस्त जीवगण रस से तृप्त हो गये हैं। (आ याहि आ याहि) हे प्रभो ! तू आ, तू आ। (न) अभी (अयम्) यह (सध-मादम्) साथ मिलकर हर्ष उत्पन्न करने वाले को (अच्छ) भली प्रकार साक्षात् कर।



स्तुतश्च यास्त्वा वर्धन्ति महे राधसे नृम्णाय ।
इन्द्र कारिणं वृधन्तः ॥ २९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) आत्मन् ! (या स्तुतः) जो स्तुतियां (त्वां कारिणं) तुझ कर्त्ता को बढ़ाती हैं जो पुरुष (महे राधसे) बड़े ऐश्वर्य और (नृम्णाय) ज्ञान के लिये (वृधन्तः) बढ़ते हुए (त्वा कारिणं)

तुन कर्त्ता को प्राप्त कर लेते हैं वे (स्तुतः दधिरे) उन स्तुतियों को धारण करते हैं।

गिरश्च यास्ते गिर्वाह उक्था च तुभ्यं तानि।
सत्रा दधिरे शवांसि ॥ ३० ॥ २२ ॥

भा०—हे (गिर्वाहः) वाणियों को मनुष्यों को देने वाले, और हे वाणियों द्वारा हृदय में धारण करने योग्य ! (याः च गिरः) जो वाणियां और (यानि च उक्थानि) जो उत्तम वेद-वचन (ते) तेरे लिये प्रयुक्त होते हैं पूर्वोक्त विद्वान् जन उन वाणियों और (तानि) उत्तम वचनों और (शवांसि) नाना बलों को भी (तुभ्यं) तेरी स्तुति के लिये ही (सत्रा दधिरे) सदा धारण करें। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

एवेदेष तुविकूर्मिर्वाजाँ एको वज्रहस्तः।
सनादमृक्तो दयते ॥ ३१ ॥

भा०—(एव इत्) निश्चय से ही, (एषः) यह (तुवि-कूर्मिः) बहुत से लोकों को बनाने हारा (एकः) अकेला, (वज्रहस्तः) अपने हाथ में समस्त शक्तियों को लेने वाला, (सनात्) सनातन से प्रसिद्ध (अमृक्तः) अविनाशी प्रभु ही (वाजान् दयते) समस्त ऐश्वर्यों और सुखों, ज्ञानों को प्रदान करता है।

हन्ता वृत्रं दक्षिणेनेन्द्रः पुरू पुरुहूतः।
महान्महीभिः शचीभिः ॥ ३२ ॥

भा०—(इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान्, दुष्टों का नाश करने वाला, (पुरु-हूतः) बहुतों द्वारा स्तुति करने योग्य है। वह (दक्षिणेन) अति प्रबल ज्ञान और सामर्थ्य से (वृत्रं) अज्ञान को और अन्धकारवत् (हन्ता) नाश करता है। वह (महीभिः शचीभिः) बड़ी-२ शक्तियों और पूज्य वाणियों से गुरुवत् (महान्) महान् है।

यस्मिन्विश्वाश्चर्षणय उत च्यौत्ना ज्यांसि च।
अनु घेन्मन्दी मघोनः ॥ ३३ ॥

भा०—(यस्मिन्) जिस प्रभु परमेश्वर के आश्रय (विश्वाः चर्षणयः) समस्त मनुष्य (उत च्यौत्ना) समस्त बल, और (ज्यांसि) श्रेष्ठ विजय के सामर्थ्य हैं उसी (मघोनः) ऐश्वर्य के स्वामी के (अनु घ इत्) अनुकूल रहने वाला पुरुष ही (मन्दी) अति सुखी, तृप्त, आनन्दवान् होता है।

एष एतानि चकारेन्द्रो विश्वा योऽति शृण्वे।
वाजदावा मघोनाम् ॥ ३४ ॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर (अति शृण्वे) सब से सब शक्ति वैभवों में अधिक सुना जाता है, जो (मघोनाम्) ऐश्वर्यवानों को भी (वाजदावा) नाना ऐश्वर्य देने वाला है (एषः) वह ही (एतानि) ये सब पृथिवी सूर्यादि (चकार) बनाता है।

प्रभर्ता रथं गव्यन्तमपाकाच्चिद्यमवति।
इनो वसु स हि वोळ्हा ॥ ३५ ॥ २३ ॥

भा०—वह (प्र-भर्ता) सब से उत्कृष्ट, प्रजा का भरण पोषण करने वाला प्रभु, (अपाकात्) कच्चे मार्ग से रथ को सारथि के समान (यम्) जिस (गव्यन्तं) स्तुति वाणी के इच्छुक या भूमि आदि के इच्छुक (रथम्) रमणकारी भक्तजन की (अवति) रक्षा करता है (सः हि) वही (इनः) स्वामी होकर (वसु वोढा) ऐश्वर्य धारण करने और उसका उत्तम उपयोग करने वाला होता है।

सनिता विप्रो अर्वद्भिर्हन्ता वृत्रं नृभिः शूरः।
सत्योऽविता विधन्तम् ॥ ३६ ॥

भा०—वह (वृत्रं हन्ता) आवरणकारी अज्ञान, विघ्नकारी दुष्टों का नाश करने वाला, (शूरः) शूरवीर सेनापति के तुल्य प्रभु (विप्रः)

मेधावी, बड़ा बुद्धिशाली, विविध ज्ञानों का ज्ञाता है, वही (नृभिः) उत्तम पुरुषों और (अर्वद्भिः) ज्ञान-साधनों से (सनिता) नाना सुखों का देने हारा है। वह (विधन्तम्) सेवा करने वाले का (सत्यः अविता) सच्चा रक्षक है।

यजध्वैनं प्रियमेधा इन्द्रं सत्राचा मनसा।
यो भूत्सोमैः सत्यमद्वा॥ ३७॥

भा०—जिस प्रकार (सोमैः) जलों से सूर्य व्यक्त जगत् को सचमुच तृप्त और प्रसन्न करता है उसी प्रकार (यः) जो (सोमैः) नाना ऐश्वर्यो, प्रेरक सामर्थ्यों और बलों से (सत्य-मद्वा भूत्) सत्य ज्ञान और व्यक्त जगत् में एकमात्र रमण करने वाला और जो (सोमैः) ज्ञानी पुरुषों वा ऐश्वर्यों से सत्य रूप से स्तुति करने योग्य वा सचमुच सब को प्रसन्न करने वाला होता है, हे (प्रियमेधाः) यज्ञप्रिय जनो! (एनं इन्द्रं) इस इन्द्र, ऐश्वर्यप्रद प्रभु की (सत्राचा मनसा) सत्य से युक्त एवं तद्गत चित्त से (यजध्वम्) उपासना करो।

गाथश्रवसं सत्पतिं श्रवस्कामं पुरुत्मानम्।
कण्वासो गात वाजिनम्॥ ३८॥

भा०—हे (कण्वासः) विद्वान्, बुद्धिमान् पुरुषो! आप लोग (गाथ-श्रवसं) जिसका यश और श्रोतव्य ज्ञान वा स्वरूप गान करने योग्य है, उस (सत्-पतिं) सज्जनों और सत् पदार्थों के पालक, (श्रवः-कामं) श्रवणीय अभिलाषा वा संकल्प वाले, (पुरुत्मानम्) इन्द्रियों के बीच आत्मा के समान बहुत जनों के बीच आत्मावत् प्रिय (वाजिनम्) ऐश्वर्यवान् ज्ञानवान् प्रभु की (गात) स्तुति करो।

य ऋते चिद्गास्पदेभ्यो दात्सखा नृभ्यः शचीवान्।
ये अस्मिन्काममश्रियन्॥ ३९॥

भा०—(यः) जो (ऋते) सत्य ज्ञानमय, परम प्राप्तव्य प्रभु में

या सत्य ज्ञान के बल पर (पदेभ्यः) प्राप्त होने वाले (नृभ्यः) मनुष्यों का (सखा शचीवान्) शक्तिशाली मित्र होकर (गाः दात्) वाणियों को प्रदान करता है, और (ये) जो (अस्मिन्) इस में (कामम्) अपनी समस्त अभिलाषाओं को (अश्रियन्) धरते और प्राप्त कर लेते हैं उनका भी वह मित्र है।

इत्था धीवन्तमद्रिवः काण्वं मेध्यातिथिम्।
मेषो भूतो३ऽभि यन्नयः ॥ ४० ॥

भा०—(इत्था) इस प्रकार हे (अद्रिवः) सर्वशक्तिमन् ! (धीवन्तम्) बुद्धिमान्, ध्यान धारणा युक्त, (काण्वं) विद्वान्, (मेध्यातिथिम्) व्यापक प्रभु वा अतिथि के उपासक संस्कार करने वाले के प्रति तू (मेषः) सब सुखों का देने वाला मेघवत् (भूतः) होकर (अभि यन्) प्रत्यक्ष होकर (अयः) प्राप्त होता है।

शिक्षा विभिन्दो अस्मै चत्वार्युयुता ददत्।
अष्टा परः सहस्रा ॥ ४१ ॥

भा०—हे (विभिन्दो) विविध दुःखों और अज्ञानों के नाशक ! प्रभो ! तू (ददत्) ज्ञान, ऐश्वर्यादि दान करता हुआ (अस्मै) इस अपने उपासक को (अयुता) अपृथक् भूत, एकत्र सम्मिलित (चत्वारि) चारों प्राप्तव्य पुरुषार्थों को (शिक्ष) प्रदान कर, उनकी शिक्षा दे। (परः) और भी अधिक (सहस्रा) बलवान् (अष्टा) सात मुख्य प्राण और आठवीं वाणी को भी प्रदान कर।

उत सु त्ये पयोवृधा माकी रणस्य नप्त्या।
जनित्वनाय मामहे ॥ ४२ ॥ २४ ॥

भा०—(उत) और (त्ये) उन (पयः-वृधा) माता पिता के समान दूध और ज्ञान से बालकवत् हमें बढ़ाने वाले (रणस्य माकी) सब रम्य पदार्थों को उत्पन्न करने वाले (नप्त्या) सदा परस्पर सम्बद्ध, प्रभु और

प्रकृति दोनों को (जनित्वनाय) जीवों और जगत् के उत्पन्न करने के लिये (सु मामहे) उत्तम रीति से पूज्य रूप से जाने। 'माकी' निर्मा्यौ ॥ सा० ॥ इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[३]

मेध्यातिथिः काण्व ऋषिः ॥ देवताः—१—२० इन्द्रः। २१—२४ पाकस्थाम्नः कौरयाणस्य दानस्तुतिः ॥ छन्दः—१ कुकुम्मती बृहती। ३, ५, ७, ९, १९ निचृद् बृहती। ८ स्वराड् बृहती। १५, २४ बृहती। १७ पथ्या बृहती। २, १०, १४ सतः पंक्तिः। ४, १२, १६, १८ निचृत् पंक्तिः। ६ भुरिक् पंक्तिः। २० विराट् पंक्तिः। १३ अनुष्टुप्। ११, २१ भुरिगनुष्टुप्। २२ विराड् गायत्री। २३ निचृद् गायत्री ॥ चतुर्विंशत्यृचं सूक्तम् ॥

पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः।
आपिर्नो बोधि सधमाद्यो वृधे३ऽस्माँ अवन्तु ते धियः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् प्रभो ! तू (गोमतः) वाणी से युक्त अर्थी वा इन्द्रियों से युक्त (रसिनः) रस, बल या सुख के अभिलाषी (सुतस्य) उत्पन्न जीव का (पिब) पालन कर। (नः मत्स्व) हमें हर्षित कर। तू (सधमाद्यः) सत्संग से आनन्द प्राप्त करने हारा होकर गुरुवत् (नः) हमारा (आपिः) आप्त बन्धु होकर हमें (वृधे) हमारी वृद्धि के लिये (बोधि) ज्ञान प्रदान कर। और (ते धियः) तेरे कर्म, बुद्धियां और प्रार्थनाएं, स्तुतियां (अस्मान् अवन्तु) हमारी रक्षा करें।

भूयाम ते सुमतौ वाजिनो वयं मा नः स्तरभिमातये।
अस्माञ्चित्राभिरवतादभिष्टिभिरा नः सुम्नेषु यामय ॥ २ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् स्वामिन् ! (वयं) हम (वाजिनः) ज्ञान और ऐश्वर्य के स्वामी होकर भी (ते) तेरी (सुमतौ) उत्तम बुद्धि और ज्ञान के अधीन (भूयाम) रहें। तू (नः) हमें (अभि-मातये) अभिमानी पुरुष

के स्वार्थ के लिये (मा स्तः) मत पीड़ित कर। तू (नः) हमें (सुम्नेषु) सुखदायक प्रबन्धों में (आ यमय) बांध और (चित्राभिः अभिष्टिभिः) अद्भुत २ मनोकामनाओं से (अस्मान् अवतात्) हमें युक्त कर और हमारी रक्षा कर।

इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वार्धन्तु या मम।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूपत ॥ ३ ॥

भा०—हे (पुरु-वसो) बहुतों को बसाने हारे! बहुत प्रकार के धनों के स्वामिन्! (याः) जो (मम) मेरी (गिरः) नाना वाणियां हों (इमा उ त्वा) वे सब भी तुझ को (वर्धन्तु) बढ़ावें। और (पावक-वर्णाः) अग्नि के समान तेजस्वी तथा पवित्र करने वाले शरीर और वाणी वाले (शुचयः) शुद्ध आचारवान्, (विपश्चितः) विद्वान् पुरुष (स्तोमैः) स्तुतियों से (त्वा अभि-अनूपत) तुझे साक्षात् स्तवन करें।

अयं सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे।
सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये ॥ ४ ॥

भा०—(अयं) यह स्वामी, प्रभु (सहस्रं) सहस्रों वार वा सहस्रों (ऋषिभिः) ज्ञानदर्शी तत्वज्ञानी पुरुषों से (सहस्कृतः) बल युक्त किया जाकर (समुद्रः इव) समुद्र के समान, (पप्रथे) विस्तार को प्राप्त होता है। (सः अस्य) वह इसका (सत्यः महिमा) सच्चा महान् सामर्थ्य है जो (विप्र-राज्ये) विद्वानों के शासन में (यज्ञेषु) यज्ञ, सत्संगादि में (शवः) उसके बल और ज्ञान की (गृणे) चर्चा और स्तुति की जाती है।

इन्द्रमिद्देवतातय इन्द्रं प्रयत्यध्वरे।
इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ॥ ५ ॥ २५ ॥

भा०—(देव-तातये) विद्वानों से किये जाने वाले यज्ञादि उत्तम कार्य वा स्वयं (देव-तातये) देव अर्थात् याचकों के हित के लिये (वयं)

हम लोग (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् स्वामी को (हवामहे) बुलाते हैं, (अध्वरे प्रयति) यज्ञ प्रवृत्त होने पर भी हम (वनिनः) दानशील होकर (इन्द्रं हवामहे) परमैश्वर्यप्रद प्रभु की स्तुति करते हैं। (समीके) युद्ध के अवसर पर (वनिनः) ऐश्वर्यवान् वा शत्रुहिंसक होकर भी हम (इन्द्रं) शत्रुहन्ता सेनापति स्वामी को स्वीकार करते हैं, (धनस्य सातये) धन के लाभ के लिये हम उस ऐश्वर्यप्रद की ही स्तुति-प्रार्थना करते हैं।

इन्द्रो॑ म॒ह्ना रोद॑सी पप्रथ॒च्छव॒ इन्द्रः॒ सूर्य॑मरोचयत् ।
इन्द्रे॑ ह॒ विश्वा॒ भुव॑नानि येमिर॒ इन्द्रे॑ सुवा॒नास॒ इन्द॑वः ॥ ६ ॥

भा०—(इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान् प्रभु (मह्ना) महान् सामर्थ्य से (रोदसी) आकाश और भूमि को (पप्रथत्) विस्तारित करता है। वह (इन्द्रः) सर्वैश्वर्यवान् (सूर्यम् अरोचयत्) सूर्य को भी प्रकाशित करता है। (इन्द्रे ह) उस परमैश्वर्यवान् प्रभु के अधीन ही (विश्वा भुवनानि) समस्त भुवन (येमिरे) सुव्यवस्थित हैं। (इन्द्रे) उस परमैश्वर्यवान् प्रभु के अधीन ही (सुवानासः) उत्पन्न होने वाले (इन्दवः) ऐश्वर्ययुक्त मेघ, सूर्य, चन्द्रादि सब लोक और शुभकर्म करने वाले विद्वान् रहते हैं।

अ॒भि त्वा॑ पू॒र्वपी॑तय॒ इन्द्र॒ स्तोमे॑भिरा॒यवः॑ ।
स॒मी॒ची॒नास॑ ऋ॒भवः॒ सम॑स्वरन्रु॒द्रा गृ॑णन्त॒ पूर्व्य॑म् ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रु वा दुष्टजनों के नाश करने और उनके भयभीत करने और भगाने हारे स्वामिन्! (आयवः) मनुष्य लोग (पूर्वपीतये) सब से पहले आदरपूर्वक राष्ट्र के उपभोग और पालन करने के लिये (त्वा अभि) तुझे लक्ष्य कर ही (स्तोमेभिः) स्तुति-वचनों से (समीचीना) शुद्ध उत्तम भाव से युक्त होकर (ऋभवः) तेजस्वी और धन, ज्ञान से सम्पन्न जन भी (सम् अस्वरन्) मिलकर तेरी स्तुति और प्रार्थना करते हैं। (रुद्राः) दुष्टों को रुलाने वाले वीरगण और प्रजा की पीड़ाओं को दूर करने वाले तथा (रुद्राः) गर्जते, चमकते मेघ सूर्यादि वा उपदेष्टा

विद्वान् जन भी (पूर्व्यम् गृणन्त) सब से पूर्व विद्यमान सर्वश्रेष्ठ तेरी ही स्तुति करते हैं। तुझ को ही सर्व प्रथम कारण बतलाते हैं।

अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यं शवो मदे सुतस्य विष्णवि।
अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा॥ ८॥

भा०—(सुतस्य) इस उत्पन्न जगत् के (विष्णवि) व्यापक (मदे) आनन्द में ही (अस्य) इस जीव गण के (इत्) भी (वृष्ण्यं शवः) बलयुक्त सुखप्रद ज्ञान और बल को (इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान् (वावृधे) बढ़ाता है। (आयवः) ज्ञानी मनुष्य (अद्य) आज भी (अस्य तम् महिमानम्) इसके इस महिमा, महान् सामर्थ्य का (पूर्वथा अनु स्तुवन्ति) पूर्ववत् नित्यप्रति स्तुति किया करते हैं।

तत्त्वा यामि सुवीर्यं तद्ब्रह्म पूर्वचित्तये।
येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ॥ ९॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! स्वामिन्! प्रभो! (त्वा) तुझ से मैं (तत्) वह (सुवीर्यं) उत्तम बल (तत् ब्रह्म) वह ज्ञान, धन और बड़ा ऐश्वर्य (पूर्व-चित्तये) पूर्ण ज्ञान और सञ्चय के निमित्त (यामि) मांगता हूं (येन) जिससे (यतिभ्यः) बलवान्, (यतिभ्यः) जितेन्द्रिय पुरुषों और (भृगवे) तेजस्वी, परिपक्व बुद्धि और पुष्ट वाणी वाले के उपकार के लिये (हिते धने) हितकारी धन के निमित्त (प्रस्कण्वम्) उत्कृष्ट मेधावी पुरुष की (आविथ) रक्षा करता है।

येना समुद्रमसृजो महीरपस्तदिन्द्र वृष्णि ते शवः।
सद्यः सो अस्य महिमा न संनशे यं क्षोणीरनुचक्रदे॥१०॥२६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (येन) जिस बल से तू (समुद्रम्) समुद्र को (महीः अपः) भूमियों और जलों को (असृजः) रचता है (ते) तेरा (तत्) वह (शवः) ज्ञान और बल (वृष्णि) सब सुखों

को देने वाला है। (यम्) जिसके अनुकूल (क्षोणीः अनु चक्रदे) सब भूमि, सब मनुष्य चलते और उसकी स्तुति करते हैं (सः अस्य महिमा) वह उसकी महिमा है। (सद्यः न संनशे) शीघ्र ही उसको नहीं जाना जा सकता ?

शग्धी न इन्द्र यत्त्वा रयिं यामि सुवीर्यम्।
शग्धि वाजाय प्रथमं सिषासते शग्धि स्तोमाय पूर्व्य ॥ ११ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! (यत् रयिम्) जिस ऐश्वर्य को और (सुवीर्यम्) उत्तम बल को मैं तुझ से (यामि) याचना करता हूं। तू वह (नः शग्धि) हमें प्रदान करके समर्थ कर। (प्रथमम्) सब से प्रथम, सर्वोत्तम पुरुष को (वाजाय) ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये (शग्धि) समर्थ कर। हे (पूर्व्य) पूर्व के जनों में सर्वोत्तम ! हे पूर्ण ! तू (सिषासते) भजन सेवन करने की इच्छा वाले (स्तोमाय) स्तुतिकर्त्ता जन के भले के लिये (शग्धि) सब को समर्थ कर या सब कुछ करने में समर्थ है।

शग्धी नो अस्य यद्ध पौरमाविथ धिय इन्द्र सिषासतः।
शग्धि यथा रुशमं श्यावकं कृपमिन्द्र प्रावः स्वर्णरम् ॥ १२ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन् ! (धियः सिषासतः) नाना कर्मों और बुद्धियों का सेवन करने वाले के (पौरम्) पुरवासी जन को (यत् ह) जिससे तू (आविथ) रक्षा करता है और उनको तृप्त करता है (अस्य) इस ऐश्वर्य को (नः शग्धि) तू हमें भी प्रदान कर। और (यथा) जिस प्रकार (रुशमं) रोगों के शान्तिकारक, (श्यावकम्) विद्वान्, (कृपम्) कृपालु (स्वः-नरम्) सुखप्रद नायक वीर एवं तेजस्वी पुरुष की (आवः) रक्षा करता है उसी प्रकार हमें भी (शग्धि) समर्थ, शक्तिमान् बना।

कन्नव्यो॑ अत॒सीनां॑ तु॒रो गृ॑णीत॒ मर्त्यः॑ ।
न॒हीन्व॑स्य महि॒मान॑मिन्द्रि॒यं स्व॑र्गृ॒णन्त॑ आन॒शुः ॥ १३ ॥

भा०—(अतसीनां) निरन्तर एक देह से दूसरे देह में विचरने वाले जीवों में से (कः) कौन सा (तुरः) अति शीघ्रकारी (नव्यः) नया, अपूर्व ऐसा (मर्त्यः) मनुष्य है जो (अस्य) इस प्रभु के (महिमानम्) महान् सामर्थ्य का (गृणीत) उपदेश या वर्णन कर सके। (इन्द्रियं) 'इन्द्र' के ही महान् ऐश्वर्य वा इन्द्र, प्रभु के बनाये जगत् को ही (स्वः) परम सुख (गृणन्तः) कहते हुए जीवगण (अस्य) इस के महान् सामर्थ्य का पार (नही नु आनशुः) कभी भी नहीं पा सकते।

कदु॑ स्तु॒वन्त॑ ऋतयन्त दे॒वत॒ ऋषिः॒ को विप्र॑ ओहते ।
क॒दा हवं॑ मघवन्निन्द्र सुन्व॒त कदु॑ स्तुव॒त आ ग॑मः ॥ १४ ॥

भा०—हे (देवत) देव ! दातः ! प्रकाशस्वरूप ! (ऋतयन्तः) सत्य ज्ञान और सत्य ऐश्वर्य की कामना करने वाले तुझे (कद् उ स्तुवन्ते) कौन २ स्तुति करते हैं (कः) कौन (ऋषिः) साक्षात् तत्वदर्शी (विप्रः) विद्वान् जन (आ ऊहते) सब प्रकार से प्रार्थना कर सकता है ? हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! हे (इन्द्र) प्रकाशस्वरूप ! सर्वप्रकाशक ! तू (सुन्वतः) उपासना करने वाले के (हवं) स्तुति-वचन और आह्वान को (कदा आगमः) कब प्राप्त होता और (स्तुवतः) स्तुतिकर्त्ता उपासक के समीप (कत् उ आ गमः) तू कब प्राप्त होता है ?

उदु॒ त्ये मधु॑मत्तमा॒ गिरः॒ स्तोमा॑स ईरते ।
स॒त्रा॒जितो॑ धन॒सा अक्षि॑तोतयो वाज॒यन्तो॒ रथा॑ इव ॥१५॥२७॥

भा०—(वाजयन्तः रथाः इव) संग्राम करने वाले रथ वा रथारोही वीर जन (अक्षित-ऊतयः) अक्षय बल से युक्त होकर (सत्राजितः) एक साथ शत्रुओं को जीतने वाले होते और (धनसाः) धन को प्राप्त करते

हैं उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् प्रभो ! (त्वे) वे (मधु-मत्-माः) अति उत्तम, रीति से गुरु से सञ्चित नाना विद्या मधु को धारण करने वाले (स्तोमासः) स्तुतिकर्त्ता और (गिरः) उपदेष्टा लोग और स्तुति की मधुर वाणियां भी (सत्रा-जितः) सत्य के बल पर सर्वत्र विजयी, (धन-साः) ऐश्वर्य के भागी और दानी, (अक्षितोतयः) अक्षय तृप्ति-युक्त वा अक्षुण्ण मार्ग वाले होकर (वाजयन्तः) ज्ञानैश्वर्य के अभिलाषी होकर (उत् ईरते) ऊपर को उठते हैं ।

कण्वा इव भृगवः सूर्या इव विश्वमिद्धीतमानशुः ।
इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् ॥ १६ ॥

भा०—(सूर्याः इव) सूर्यों वा सूर्य-किरणों के समान तेजस्वी, (कण्वाः) विद्वान् जनों के (इव) समान ही (भृगवः) पापों को भूनने वाले वा वाग्मी जन, (विश्वम् इत् धीतम्) समस्त विश्वमय ध्यान करने योग्य प्रभु को (आनशुः) प्राप्त होते हैं या (धीतम् विश्वम् आनशुः) ध्यान करके ज्ञान द्वारा विश्व को जान लेते हैं । और (स्तोमेभिः महयन्तः) स्तुतियों से पूजा करते हुए (प्रिय-मेधासः) यज्ञप्रिय, सत्संग-प्रिय अन्नार्थी जन सभी (इन्द्रम्) ऐश्वर्यप्रद प्रभु की (अस्वरन्) स्तुति करते हैं ।

युक्ष्वा हि वृत्रहन्तम हरी इन्द्र परावतः ।
अर्वाचीनो मघवन्त्सोमपीतय उग्र ऋष्वेभिरा गहि ॥ १७ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्-तम) विघ्नों और वारण करने योग्य व्यसनों के नाशक स्वामिन् ! तू (परावतः) दूर २ देश से ही (हरी युक्ष्व हि) स्त्री पुरुषों को परस्पर जोड़ा कर । हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! तू (सोम-पीतये) ऐश्वर्य और राष्ट्र की रक्षा के लिये (अर्वाचीनः) सदा आगे बढ़ कर या शत्रुहिंसक सैन्यों से युक्त होकर हे (उग्र) बलवन् ! तू (ऋष्वेभिः) बड़े २ पुरुषों या विद्वानों द्वारा दिये उपदेश से हमें (आगहि) प्राप्त हो ।

इमे हि ते कारवो वावशुर्धिया विप्रासो मेधसातये ।
स त्वं नो मघवन्निन्द्र गिर्वणो वेनो न शृणुधी हवम् ॥ १८ ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! हे दीप्तिमन् ! प्रकाशस्वरूप ! सब जगत् को देखने हारे ! हे (गिर्वणः) वाणियों से स्तुति करने और वाणियों को धारने हारे ! (इमे हि ते कारवः) ये सब तेरे स्तुतिकर्त्ता (विप्रासः) बुद्धिमान् जन (मेध-सातये) सत्संग, यज्ञ, दान को प्राप्त करने के लिये, (वावशुः) तुझ ईश्वर को सदा चाहते हैं । (सः त्वं) वह तू (वेनः न) अभिलाषी के समान ही (नः हवम् श्रुणुधि) हमारी पुकार सुन ।

निरिन्द्र बृहतीभ्यो वृत्रं धनुभ्यो अस्फुरः ।
निरर्बुदस्य मृगयस्य मायिनो निः पर्वतस्य गा आजः ॥ १९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन् ! राजन् ! (बृहतीभ्यः धनुभ्यः) बड़ी २ धनुर्धर सेनाओं की प्रतिष्ठा के लिये तू (वृत्रं निर् अस्फुरः) धन को विनाश मत कर, उसकी रक्षा कर और विघ्नकारी शत्रु का नाश कर । (अर्बुदस्य) अत्यन्त अधिक ज्ञानी (मृगयस्य) शुद्ध वा स्वामी प्रभु के अन्वेषक, (मायिनः) बुद्धिमान् (पर्वतस्य) मेघ तुल्य सब के पालक पुरुष की (गाः निर् अजः) वाणियों को हृदय से निकाल वा ग्रहण कर । अथवा (मायिनः) मायावी (अर्बुदस्य) हिंसाकारी (मृगयस्य) सिंहवत् दुष्ट स्वभाव की (गाः) चालों को (निर् अज) दूर कर और (पर्वतस्य) पर्वतवत् दुर्गम स्थान के (गाः) मार्गों को (निः) निकाल, बना ।

निरग्नयो रुरुचुर्निरु सूर्यो निः सोम इन्द्रियो रसः ।
निरन्तरिक्षादधमो महामहिं कृषे तदिन्द्र पौंस्यम् ॥ २० ॥ २८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे प्रकाशक ! जो तू (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष भाग से (महाम् अहिम्) बड़े भारी आघातकारी मेघ वा अन्धकार को दूर कर देता है, तब तू (पौंस्यं कृषे) मनुष्यों के हितकर अपने

बल को प्रकट करता है। उस समय (अग्नयः निर् रुरुचुः) अग्नियें खूब प्रज्वलित होती हैं (सूर्यः निर्) सूर्य खूब प्रकाशित होता है। और (इन्द्रियः रसः) इन्द्र, आत्मा से सेवन करने योग्य ओषधि आदि रसवत् आत्मिक आनन्द भी खूब प्रकट होता है। इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

यं मे दुरिन्द्रो मरुतः पाकस्थामा कौरयाणः।
विश्वेषां त्मना शोभिष्ठमुपेव दिवि धावमानम् ॥ २१ ॥

भा०—परमेश्वर का स्वरूप—(यम्) जिसको लक्ष्य करके (इन्द्रः) आचार्य और (मरुतः) विद्वान्गण तथा आत्मा और प्राण (मे दुः) मुझे ज्ञान प्रदान करते हैं और परमेश्वर (पाकस्थामा) परिपक्व बल वाला (कौरयाणः) क्रियावान्, समस्त पदार्थों में व्यापक, सब को चलाने वाला वा कर्त्ता जीवों का प्राप्तव्य है। मैं उसको (विश्वेषां) सब के बीच में (त्मना शोभिष्ठम्) आत्मा रूप से अति शोभावान् (दिवि धावमानम् उप इव) अति समीप आकाश में गति करते सूर्य के समान सदा समीप विद्यमान ही देखता हूं।

रोहितं मे पाकस्थामा सुधुरं कक्ष्यप्राम्।
अदाद्रायो विबोधनम् ॥ २२ ॥

भा०—दृढ़, बलशाली, सर्वनियन्ता प्रभु मैं मुझे (सुधुरं) सुख से धारण करने योग्य (कक्ष्य-प्राम्) कक्षाओं, कोखों में पूर्ण (रोहितं) निरन्तर बढ़ने वाला वा तेजस्वी आत्मा वा शरीर (अदात्) प्रदान करता है, वह (रायः) नाना ऐश्वर्य प्रदान करता है और वह (विबोधनम् अदात्) विविध ज्ञानों के साधन, मन, इन्द्रिय आदि देता है, विशेष ज्ञान भी प्रदान करता है।

यस्मा अन्ये दश प्रति धुरं वहन्ति वह्नयः।
अस्तं वयो न तुग्र्यम् ॥ २३ ॥

भा०—(तुग्र्यं वयः न) बलवान्, शत्रुहिंसक, गृह स्वामी को वेग-

वान् अश्व जिस प्रकार (अस्तं) घर की ओर लेजाते हैं इसी प्रकार (यस्मै) जिस प्रभु के दर्शन के लिये (अन्ये दश वह्नयः) और दस अग्निवत् तेजस्वी शरीर को गाड़ी के समान उठाने वाले दश प्राण (धुरं प्रति वहन्ति) धारक आत्मा के अधीन रह कर उसको उठाते हैं ।

आ॒त्मा पि॒तुस्त॒नूर्वास॑ ओजो॒दा अ॒भ्यञ्ज॑नम् ।
तु॒रीय॒मिद्रोहि॑तस्य॒ पाक॑स्थामानं भो॒जं दा॒तार॑मब्रवम् ॥२४॥२९॥

भा०—मैं (रोहितस्य) वृद्धिशील, तेजस्वी, शरीर में उत्पन्न होने वाले जीव को (दातारम्) देने वाले (पाकस्थामानम्) दृढ़ बलशाली, (भोजम्) पालक प्रभु को ही (तुरीयम् इत् अब्रवम्) तुरीय, चतुर्थ परम पद के नाम से कहता हूं । वही (आत्मा) आत्मा, चेतन है, वह (पितुः) अन्नवत् जीवनाधार है । वह (तनूः) देहवत् प्रिय जगत् का विस्तार करने वाला है । वह (वासः) वस्त्रवत् आच्छादक, रक्षक और सर्वत्र वसने वाला सर्वव्यापक है । वही (ओजः-दाः) देह में आत्मावत् समस्त बल पराक्रम का दाता और (अभ्यञ्जनम्) तेलादि स्निग्ध पदार्थ के समान सर्वत्र कान्ति, स्नेह और प्रकाश देने वाला है। इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

[४]

देवातिथिः काण्व ऋषिः ॥ देवताः—१—१४ इन्द्रः । १५—१८ इन्द्रः पूषा वा । १९—२१ कुरुंगस्य दानस्तुतिः ॥ छन्दः—१, १३ भुरिगनुष्टुप् । ७ अनुष्टुप् । २, ४, ६, ८, १२, १४, १८ निचृत् पंक्तिः । १० सत पंक्तिः । १६, २० विराट् पंक्तिः । ३, ११, १५ निचृद् बृहती । ५, ९ बृहती पथ्या । १७, १९ विराड् बृहती । २१ विराडुष्णिक् ॥ एकविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

यदि॑न्द्र॒ प्रागपा॒गुद॒ङ् न्य॑ग्वा हू॒यसे॒ नृभिः॑ ।
सिमा॑ पु॒रू नृषू॑तो अ॒स्यान॑वे॒ऽसि॑ प्रशर्ध तु॒र्वशे॑ ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यत्) जो तू (प्राग्, अपाक्, उदङ् न्यग् वा) पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण या ऊंचे नीचे, (नृभिः हूयसे) मनुष्यों द्वारा पुकारा और स्तुति किया जाता है हे (प्र-शर्ध) उत्तम बलशालिन् ! हे (सिम) सर्वश्रेष्ठ ! तू सचमुच (तुर्वशे) चारों पुरुषार्थों को चाहने वाले मनुष्य संघ के बीच में भी (पुरु नृ-सूतः) बहुत प्रकार के मनुष्यों से प्रेरित वा प्रार्थित और उपासित (असि) होता है ।

यद्वा रुमे रुशमे श्यावके कृप इन्द्र मादयसे सचा ।
कण्वासस्त्वा ब्रह्मभिः स्तोमवाहस इन्द्रा यच्छन्त्या गहि ॥२॥

भा०—(यद् वा) और जो तू (रुमे) उपदेष्टा, (रुशमे) अन्यों की पीड़ा शान्त करनेवाले रक्षक, (श्यावके) इधर उधर जाने वाले व्यापारी और (कृपे) दयनीय, सामर्थ्यवान् श्रमी, सभी जनवर्ग में (सचा) एक साथ ही सबको (मादयसे) प्रसन्न करता है, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! और (स्तोम-वाहसः) स्तुतिधारक, (कण्वासः) बुद्धिमान् पुरुष (ब्रह्मभिः त्वा यच्छन्ति) वेदमन्त्रों से तुझे यज्ञ द्वारा अपने को अर्पित करते हैं वह: तू (आ गहि) हमें प्राप्त हो ।

यथा गौरो अपा कृतं तृष्यन्नेत्यवेरिणम् ।
आपित्वे नः प्रपित्वे तूयमा गहि कण्वेषु सु सचा पिब ॥ ३ ॥

भा०—(यथा) जिस प्रकार (गौरः) गौओं में रति, अनुरागादि करने वाला वृषभ पशु वा गौर नाम मृग, (तृष्यन्) प्यासा होकर (अपा कृतम्) जल से भरे (इरिणम्) जलाशय को (अवः एति) प्राप्त होता है उसी प्रकार (गौरः) 'गो' इन्द्रियों में रमण करने वाला जीव, (तृष्यन्) तृष्णायुक्त होकर (अपा) जलादि के विकाररूप रुधिरादि से (कृतं) बने (इरिणम्) 'इरा' अन्न के विकार से बने देह को (अव एति) प्राप्त होता है । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! आत्मन् ! तू (नः) हमारे (आपित्वे) बन्धुभाव को (प्रपित्वे) प्राप्त होने पर (नः) हमें (तूयम्) शीघ्र ही

(आ गहि) प्राप्त हो। और (कण्वेषु) विद्वान् जनों के बीच में (सचा) साथ रहकर (सु-पिब) अच्छी प्रकार मोक्ष-आनन्द रस का पान कर। इसी प्रकार 'गो' भूमियों में रमण करने वाला राजा जल से युक्त (इरिणं) घासादि युक्त प्रदेश को अर्थतृषित होकर प्राप्त करे। वह विद्वानों को प्राप्त हो, उनके बीच में रहकर राष्ट्र-ऐश्वर्य का उत्तम रीति से भोग और पालन करे।

मन्द॑न्तु त्वा मघवन्निन्द्रेन्द॑वो राधो॒देया॑य सुन्व॒ते।
आ॒मुष्या॒ सोम॑मपिबश्च॒मू सु॒तं ज्येष्ठं॒ तद्द॑धिषे॒ सहः॑ ॥ ४ ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! हे (इन्द्र) दुष्टों के नाश करने वाले प्रभो राजन्! (इन्दवः) ऐश्वर्य युक्त जीवगण (त्वा मन्दन्तु) तुझे प्राप्त होकर प्रसन्न हों। (सुन्वते) सेवन, ईश्वरोपासना करने वाले तथा (राधो-देयाय) आराधना का उपहार देने वाले पुरुष के (सोमम्) ज्ञानसम्पन्न, (चमू-सुतम्) उत्तम माता पिता के बीच उत्पन्न जीव को पुत्रवत् (आ-मुष्य) स्वीकार कर, गुरुवत् (अपिबः) पालन कर। तू ही (तत्) उस (सहः) परम बल को (दधिषे) धारण करने हारा है। (२) राजा को सब प्रजाजन प्रसन्न करें। वह धनप्रद प्रजाजन के हितार्थ चमू अर्थात् सैन्यों द्वारा प्राप्त राज्यैश्वर्य को बल से प्राप्त कर उसका पालन और उपभोग करे, सर्वोपरि विजयी बल को धारण करे।

प्र च॑क्रे॒ सह॑सा॒ सहो॑ ब॒भञ्ज॑ म॒न्युमोज॑सा।
विश्वे॑ त इन्द्र पृतना॒यवो॑ यहो॒ नि वृ॒क्षा इ॑व येमिरे ॥ ५ ॥ ३० ॥

भा०—वह शत्रुहन्ता स्वामी (सहसा) बल से (सहः) शत्रुओं का पराजय (प्र चक्रे) अच्छी प्रकार करे और (ओजसा) पराक्रम से (मन्युम् बभञ्ज) शत्रु के क्रोध और अभिमान को तोड़ डाले, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (यहो) महान्! (ते) तेरे अधीन (विश्वे) सब (पृतना-यवः) सेनाबल और सामान्य प्रजास्थ मनुष्यों के स्वामी नायक जन

(वृक्षाः इव) वृक्षों के समान भूमि को घेर कर (नि येमिरे) भूमि या राज्य का प्रबन्ध करें। 'पृतना' इति मनुष्य नाम नि०। इति त्रिंशो वर्गः॥

सहस्रेणेव सचते यवीयुधा यस्त आनळुपस्तुतिम्।
पुत्रं प्रावर्गं कृणुते सुवीर्ये दाश्नोति नमउक्तिभिः॥ ६॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! राजन्! स्वामिन्! (यः) जो (ते) तेरी (उप-स्तुतिम्) स्तुति, गुणानुवाद को (आनट्) प्राप्त करता है, वह (सहस्रेण इव) अनेक, बलशाली (यवीयुधा) शत्रुनाशक प्रहारक बल से (सचते) सम्पन्न होता है, वह (सु-वीर्ये) उत्तम वीर्य बल के आश्रय पर (पुत्रं) अपने पुत्र, प्रजा को (प्रावर्गं) शत्रु को निवारण करने में समर्थ (कृणुत) बनाता है, और (नमः-उक्तिभिः) विनय युक्त वचनों से (दाश्नोति) दान करता है।

मा भेम मा श्रमिष्मोग्रस्य सख्ये तव।
महत्ते वृष्णो अभिचक्ष्यं कृतं पश्येम तुर्वशं यदुम्॥ ७॥

भा०—हे राजन्! हे प्रभो! हम (उग्रस्य) उग्र, अति बलवान् (तव) तेरे (सख्ये) मित्रभाव में रहकर (मा भेम) कभी न डरें, (मा श्रमिष्म) कभी न थकें। (वृष्णः ते) उत्तम प्रबन्धक और सुखों के वर्षक तेरे (कृतं) किये (महत्) बड़े भारी (अभि-चक्ष्यं) प्रत्यक्ष दर्शनीय कार्य को तथा (यदुम्) यत्नशील (तुर्वशम्) धर्मार्थ काम मोक्षादि के अभिलाषी मानव जन को (पश्येम) देखें।

सव्यामनु स्फिग्यं वावसे वृषा न दानो अस्य रोषति।
मध्वा सम्पृक्ताः सारघेण धेनवस्तूयमेहि द्रवा पिब॥ ८॥

भा०—जिस प्रकार (दानः न वृषा) सब सुख देने वाला, बल-वीर्यवान् सेक्ता पुरुष (सव्याम् स्फिग्यं) वाम भाग में रखने वा प्रजोत्पादन योग्य अर्धाङ्गिनी को (अनु वावसे) प्राप्त कर उसके अनुकूल होकर रहता, उसको आच्छादन करता है और वह भी (अस्य न रोषति)

उससे रुष्ट नहीं होती न उसको रुष्ट करती है, उसी प्रकार (वृषा) प्रबन्ध करने में कुशल, प्रजा पर सुखों की वर्षा करने वाला, बलवान् (दानः) दानशील, एवं दुष्टों को नाश करने वाला पुरुष (सव्याम्) ऐश्वर्य से सम्पन्न वा शासन योग्य (स्फिग्यं) प्रतिष्ठा योग्य प्रजाजन को (अनु ववसे) उसके अनुकूल रहकर बसावे, उसकी रक्षा करे। वह प्रजागण (अस्य न रोषति) उसे रोष न दिलावे न उसके प्रति रोष करे। हे ऐश्वर्यवन् शत्रुहन्तः! (धेनवः) गौओं के समान वाणियां और भूमियां (सारघेण मध्वा) मधु के समान मधुर दुग्ध, अन्न और ज्ञान से (सम्पृक्ताः) युक्त हैं। तू (तूयम्) शीघ्र ही (आ इहि) आ प्राप्त हो और (आ द्रव) आगे बढ़ और (आ पिब) आदर पूर्वक ऐश्वर्य का उपभोग और पालन कर।

अश्वी रथी सुरूप इद्गोमाँ इदिन्द्र ते सखा।
श्वात्रभाजा वयसा सचते सदा चन्द्रो याति सभामुप ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! प्रभो! स्वामिन्! (ते) तेरा (सखा) मित्र (अश्वी) अश्वों का स्वामी, (रथी) रथों का स्वामी (सु-रूपः) उत्तम रूपवान् (गोमान्) उत्तम इन्द्रियों, वाणियों, भूमियों का स्वामी (इद्) ही हो जाता है। वह (श्वात्र-भाजा वयसा) धनादि से समृद्ध अन्न बल आयु से (सदा सचते) सदा युक्त होता और (चन्द्रः) सबको सुखी करने वाला होकर (सभाम् उप याति) सभा को प्राप्त होता है। वह सभापति वा सभासद् बनता है। प्रभु का मित्र जीव, भक्त, उत्तम मन, देह, रूप वाणी आदि से युक्त होता और सुखप्रद ऐश्वर्ययुक्त ज्ञान से सम्पन्न होता और आह्लादयुक्त होकर 'सभाम्' प्रभु के समान शुद्ध कान्ति को प्राप्त करता है।

ऋश्यो न तृष्यन्नवपानमा गहि पिबा सोमं वशाँ अनु।
निमेघमानो मघवन्दिवेदिव ओजिष्ठं दधिषे सहः ॥ १० ॥ ३१ ॥

भा०—हे (मघवन्) उत्तम पूजित धनों के स्वामिन् ! (तृष्यन् ऋष्यः न) पियासा मृग जिस प्रकार (अवपानम् आगच्छति) जलाशय या घाट को प्राप्त होता और (वशान् अनु पिबति) यथेच्छ पान करता है उसी प्रकार तू भी (ऋष्यः) दर्शनीय एवं महान् (तृष्यन्) अर्थ-ऐश्वर्य के लिये तृष्णायुक्त (न) के समान होकर (अव-पानम्) अपने अधीन पालन करने योग्य राष्ट्र को (आ गहि) प्राप्त कर । (वशान् अनु) अपनी अभिलाषाओं के वा अपने इष्ट अधीन जनों के अनुकूल (सोमं) राष्ट्रैश्वर्य का (पिब) पालन और उपभोग कर । तू (दिवे-दिवे) दिनों दिन (नि-मेघमानः) नियम से प्रजा पर सुखों का वर्षण करता हुआ मेघवत् उदार होकर (ओजिष्ठं सहः) अति पराक्रम युक्त, शत्रुपराजयकारी सैन्य बल को (दधिषे) धारण कर ।

अध्वर्यो द्रावया त्वं सोममिन्द्रः पिपासति ।
उप नूनं युयुजे वृषणा हरी आ च जगाम वृत्रहा ॥ ११ ॥

भा०—हे (अध्वर्यो) प्रजा के 'ध्वर' अर्थात् हिंसन, पीड़नादि को न चाहने वाले सेनापते ! (त्वं) तू (द्रवय) शत्रु को दूर भगा वा प्रजापालनार्थ नहरादि को बहा । क्योंकि (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (सोमं) राष्ट्र को (पिपासति) पालन करना चाहता है । वह (नूनं) निश्चय से (वृषणा हरी) बलवान् अश्वों को (उप युयुजे) रथ में जोड़ता है और वह (वृषणा हरी) बलवान्, वीर्यवान् स्त्री पुरुषों का (उप युयुजे) परस्पर सम्बन्ध करे और उनका राष्ट्र के कार्य में उपयोग करे और इस प्रकार वह (वृत्रहा) बढ़ते शत्रु तथा विघ्नों को नाश करता हुआ (आजगाम च) आवे और आगे बढ़े ।

स्वयं चित्स मन्यते दाशुरिर्जनो यत्रा सोमस्य तृम्पसि ।
इदं ते अन्नं युज्यं समुक्षितं तस्येहि प्र द्रवा पिब ॥ १२ ॥

भा०—हे राजन् ! (यत्र) जिस राष्ट्र वा उच्चपद में (सोमस्य)

तू ऐश्वर्य से (तृम्पसि) तृप्त होता है (सः) वह राष्ट्रवासी प्रजाजन (दाशुरिः) कर आदि देने वाला होकर (स्वयं चित्) अपने आप ही (मन्यते) सब राष्ट्र कार्य को समझता है । (ते) तेरे लिये (इदं) यह समस्त (अन्नं) अन्न (युज्यं) और सहयोगी बल (सम्-उक्षितम्) अच्छी प्रकार सींचा जावे । (तस्य) उसको तू (आ इहि) प्राप्त कर और (प्र द्रव) अन्नादि के लिये जल धाराएं प्रद्रवित कर, नहरें चला और (प्र द्रव) वेग से शत्रु पर आक्रमण कर । और (पिब) राष्ट्र का पालन और उपभोग कर ।

र॒थे॒ष्ठाया॑ध्वर्यवः॒ सोम॒मिन्द्रा॑य सोतन ।
अधि॑ ब्र॒ध्नस्याद्र॑यो॒ वि च॑क्षते सु॒न्वन्तो॑ दा॒श्व॑ध्वरम् ॥ १३ ॥

भा०—हे (अध्वर्यवः) प्रजाओं के विनाश को न चाहने वाले राष्ट्र के उत्तम पुरुषो ! आप लोग (रथेष्ठाय इन्द्राय) रथ पर स्थित शत्रुहन्ता राजा वा सेनापति के लिये (सोमम्) ऐश्वर्य (सोतन) उत्पन्न करो । उसे अभिषेक द्वारा ऐश्वर्य का स्वामी बनाओ । (ब्रध्नस्य अधि) अन्तरिक्ष में जिस प्रकार (दाशु-अध्वरम् सुन्वन्तः) वृष्टि अन्नादि देने वाले सूर्य के जीवनप्रद जलप्रदान रूप यज्ञ को देते हुए (अद्रयः) मेघगण (वि चक्षते) दिखाई देते हैं उसी प्रकार (ब्रध्नस्य अधि) मूल आधार राष्ट्र के ऊपर (दाशु-अध्वरम्) ऐश्वर्यप्रद राजा के प्रजापालक यज्ञ को (सुन्वन्तः) करते हुए (अद्रयः) शस्त्र-बल के अध्यक्ष जन (वि चक्षते) विविध प्रकार से दीखें, वा विशेष २ आज्ञाएं करें ।

उप॑ ब्र॒ध्नं वा॒वाता॒ वृष॑णा॒ हरी॒ इन्द्र॑मप॒सु व॑क्षतः ।
अ॒र्वाञ्चं॑ त्वा॒ सप्त॑योऽध्वर॒श्रियो॒ वह॑न्तु॒ सव॒नेदुप॑ ॥ १४ ॥

भा०—जिस प्रकार (वावाता वृषणा हरी ब्रध्नं इन्द्रम् उप वक्षतः) वेग से जाने वाले वृष्टिकारक वायु और मेघ आकाश में 'इन्द्र' विद्युत को अपने में धारण करते हैं और जिस प्रकार (ब्रध्नं वृषणा हरी

वाताता ऋष्वं इन्द्रम् नु उप वक्षतः) बलवान् वेगवान् दो अश्व प्रबन्ध-कुशल ऐश्वर्य पति राजा को नाना राष्ट्र कार्यों में दूर २ तक ढो ले जाते हैं उसी प्रकार (ऋष्वं इन्द्रम्) राष्ट्र के उत्तम प्रबन्धक, सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष को (वाताता) वायुवत् वेग से जाने और शत्रु का नाश करने में समर्थ (वृषणा) बलवान्, मेघवत् उदार (हरी) दोनों विद्वानों के वर्ग (अप-नु) राष्ट्र के नाना कार्यों में (उप वक्षतः) धारण करें वा समीप जाकर अपने उत्तम वचन कहा करें। हे इन्द्र ऐश्वर्यवन्! (अर्वाञ्चं) शत्रुनाशक सैन्य गण से युक्त (त्वा) तुझ को (अध्वर-श्रियः सप्तयः) शत्रुओं से न पराजित होने वालों की शोभा को धारण करने वाले वा युद्ध यज्ञ की शोभा धारण करने वाले, वेग से जाने वाले वीरगण (सवना इव उप वहन्तु) नाना ऐश्वर्य अधिकार तुझे प्राप्त करावें।

प्र पूषणं वृणीमहे युज्याय पुरुवसुम्।
स शक्र शिक्ष पुरुहूत नो धिया तुजे राये विमोचन ॥१५॥३२॥

भा०—हम (युज्याय) मित्रभाव के लिये वा उत्तम पद पर नियुक्त करने के लिये (पूषणं) पोषक (पुरु-वसु) बहुत से ऐश्वर्य और राष्ट्र में बसे जनों के स्वामी को (वृणीमहे) वरण करें। हे (शक्र) शक्तिशालिन्! हे (पुरु-हूत) बहुत से मनुष्यों से स्वीकृत! हे (वि-मोचन) दुःखों और बन्धनों से छुड़ाने हारे! (सः) वह तू (नः) हमें (तुजे) शत्रु के नाश करने और प्रजा को शरण देने तथा (राये) ऐश्वर्य की वृद्धि करने के लिये (धिया) बुद्धिपूर्वक (शिक्ष) शक्त बना, उत्तम शिक्षा दे।

सं नः शिशीहि भुरिजोरिव क्षुरं रास्व रायो विमोचन।
त्वे तन्नः सुवेदमुस्रियं वसु यं त्वं हिनोषि मर्त्यम् ॥ १६ ॥

भा०—(भुरिजोः इव क्षुरम्) दोनों बाहुओं में पकड़ कर जिस प्रकार छुरे को तेज़ करते हैं उस प्रकार हे राजन्! हे (विमोचन) कष्टों

और बन्धनों से छुड़ाने हारे ! तू (भुरिजोः) दोनों पालनशील बाहुओं में सुरक्षित कर (नः) हमें (सं शिशीहि) अच्छी प्रकार तीक्ष्ण कर, उत्तम रूप से शासित और प्रखर शक्ति वाला बना। और (रायः रास्व) नाना ऐश्वर्य प्रदान कर। (त्वं) तू (यं) जिस (मर्त्यम्) मनुष्य वर्ग को या शत्रु को मारने वाले सैन्य को (हिनोषि) अपने अधीन सञ्चालित करता है, हे राजन् ! (त्वे) तेरे अधीन (नः) हमारा (उस्त्रियं) गवादि पशुसम्पदा से युक्त, (तव वसु) वही राष्ट्र में बसा धन (सुवेदम्) सुख से प्राप्त करने योग्य, सर्वोत्तम है। राजा के शस्त्र-बल और प्रजाजन ही सर्वोत्तम धन हैं। वह स्वर्णादिक को प्रजा से उत्तम न समझे, न उसके लिये प्रजा का नाश करे।

वेमि॑ त्वा पूषन्नृञ्जसे॒ वेमि॒ स्तोत॑व आघृणे।
न तस्य॑ वेम्यर॑णं॒ हि तद्व॑सो स्तु॒षे प॒ज्राय॒ साम्ने॑ ॥ १७ ॥

भा०—हे (पूषन्) पोषण करनेहारे ! (ऋञ्जसे) उत्तम रीति से कार्य करने के लिये मैं प्रजावर्ग (त्वा) तुझे (वेमि) चाहता हूं। हे (आ-घृणे) सब ओर से प्रदीप्त, सूर्यवत् तेजस्विन् ! (स्तोतवे) स्तुति करने के लिये भी (त्वा वेमि) तुझे ही चाहता हूं। हे (वसो) सबको बसाने और सब में बसने वाले प्रभो ! (अरणं हि तत्) क्योंकि वह रमणीय या सुखजनक नहीं है इसलिये (तस्य न वेमि) उसकी मैं चाहना भी न करूं। (पज्राय) विद्वान् (साम्ने) सबके लिये समान रूप से आदर योग्य, सबके प्रति समान व्यवहार करने वाले श्रेष्ठ पुरुष को मैं (स्तुषे) स्तुति करता हूं।

'साम'—साम्ना समानयन्, तत्साम्नः सामत्वम्। तै० २।२।८।७॥ समेत्य साम प्राजनताम् तत्साम्नः सामत्वम्। जै० उ० १।५।१।२॥ तद् यद् संयन्ति तस्मात्साम। जै० उ० १।३३।६।७॥ समा उ ह वा अस्मिन् छन्दांसि साम्यात् ॥ सा० १।१।५॥ तद् यदेष सर्वैः लोकैः समस्तस्मादेष

एव साम ॥ जै० ३०११२।५॥ साम इति छन्दोगाः उपासते । एतस्मिन् हि इदं सर्वं समानम् । श० १०।५।२।२०॥ यो वै भवति, यः श्रेष्ठतामश्नुते सः सामन् भवति । असामान्य इति ह निन्दन्ति । ऐ० ३।२२॥ तद्यत् सा च अमश्च तत्साम अभवत् ॥ जै० ३०।१।५३।५॥ यद्वै तत्सा च अमश्च समवदतां तत्साम अभवत् । गो० उ० ३।२०॥

(१) जिसे सब आदर से मिलकर लावें (२) सब मिलकर बनावें या करें, (३) सब मिलकर चलें, (४) जिसमें या जिसके अधीन सब समान हों, (५) जो सबके बराबर हो, जिसमें सब समान हों, (६) जो सबसे श्रेष्ठ हो, (७) वह प्रजा और उसका सहवर्त्ती राजा दोनों मिलकर संवाद करते हैं वह 'साम' है ।

परा गावो यवसं कच्चिदाघृणे नित्यं रेक्णो अमर्त्य ।
अस्माकं पूषन्नविता शिवो भव मंहिष्ठो वाजसातये ॥ १८ ॥

भा०—हे (आघृणे) सब प्रकार से प्रकाशमान ! तेजस्विन् ! हे अमर्त्य ! साधारण मनुष्यों में विशेष ! (कच्चित्) जब कभी भी (गावः) गौवें (यवसम्) चारे का लक्ष्य कर (परा) दूर भी हों तो भी (रेक्णः) वह धन (नित्यं) स्थिर बना रहे, उसे कोई न हरे। हे (पूषन्) पोषक स्वामिन् ! तू (अस्माकम् अविता) हमारा रक्षक और (शिवः) कल्याणकारक (भव) हो। और तू (वाजसातये) ऐश्वर्य के संविभाग बल को प्राप्त करने के लिये (मंहिष्ठः) अति दानशील और सर्वपूज्य (भव) हो।

स्थूरं राधः शताश्वं कुरुङ्गस्य दिविष्टिषु ।
राज्ञस्त्वेषस्य सुभगस्य रातिषु तुर्वशेष्वमन्महि ॥ १९ ॥

भा०—(दिविष्टिषु) उत्तम दान देने और उत्तम इच्छाओं, अभिलाषाओं वाले (रातिषु) दानशील, (तुर्वशेषु) चारों पुरुषार्थों के इच्छुक मनुष्यों के ऊपर (कुरुंगस्य) कर्म करने वाले समस्त जीवों को

भी प्राप्त उनमें भी व्यापक (राज्ञः) दीप्तियुक्त, स्वयंप्रकाश, (त्वेषस्य) कान्तिमान्, तीक्ष्ण, (सुभगस्य) उत्तम ऐश्वर्यवान् प्रभु के (रातौ) अश्वों सूर्यादि से, वा नौका आवों से सम्बद्ध (स्थूरं राधः) बड़े भारी ऐश्वर्य को देखकर हम (मनन्महि) उसका मनन करें, मान आदर करें।

धीभिः सा॒तानि॑ का॒ण्वस्य॑ वा॒जिनः॑ प्रि॒यमे॑धैर॒भिद्यु॑भिः ।
ष॒ष्टिं स॒हस्रानु॒ निर्म॑जामजे॒ निर्यू॒थानि॒ गवा॒मृषिः॑ ॥ २० ॥

भा०—(वाजिनः) ऐश्वर्यवान् (काण्वस्य) विद्वान् राजा के (गवां) वेग से जाने वाले अश्वों के (षष्टिं सहस्रा) ६०००० साठ २ हज़ार के (यूथानि) समूह (अभिद्युभिः) तेजस्वी (प्रियमेधैः) यज्ञ के प्रिय, विद्वानों, शत्रुहिंसन के प्रिय (धीभिः) बुद्धिमान् पुरुषों द्वारा (सातानि) अच्छी प्रकार विभक्त हों। उनको (ऋषिः) उत्तम द्रष्टा निरीक्षक पुरुष (अनु निर् अजे) प्रति दिन पूरी तरह से सञ्चालित करे। (२) इसी प्रकार (वाजिनः काण्वस्य) ऐश्वर्य, ज्ञान और बलशाली मेधावान् प्रभु की (निर्मजाम् गवां षष्टिं सहस्रा यूथानि) अति शुद्ध गौ, अर्थात् वाणियों के ६० हज़ार के समूह (अभिद्युभिः प्रियमेधैः) सब प्रकार से ज्ञान-प्रकाशों से युक्त यज्ञप्रिय विद्वानों द्वारा (सातानि) विभक्त किये जावें। और उनको (ऋषिः) मन्त्रद्रष्टा ऋषि वा उत्तम शिष्य (अनु निर् अजे) अनुकूल रूप से पूर्ण, यथार्थ ज्ञान करे।

वृ॒क्षाश्चि॑न्मे अभिपि॒त्वे अ॑रारणुः ।
गां भ॑जन्त मे॒हनाश्वं॑ भजन्त मे॒हना॑ ॥ २१ ॥ ३३ ॥ ७ ॥

भा०—(वृक्षाः चित्) वृक्ष जिस प्रकार वायु का झकोरा लगने पर मर्मर ध्वनि करते हैं, वे जिस प्रकार (मेहना) वृष्टियुक्त (गां भजन्त) भूमि का सेवन करते हैं और (मेहना अश्वं भजन्त) वृष्टिकारक आशु-गामी वायु का सेवन करते हैं उसी प्रकार (मे) मुझ स्वामी को (अभि-पित्वे) प्राप्त होने पर (वृक्षाः चित्) भूमि को वश करके बैठे हुए नृपति

लोग भी (अरारणुः) हर्षध्वनि करते हैं। वे (गां) उत्तम भूमि को (भजन्त) प्राप्त करते तथा (मेहना अश्वं भजन्त) उत्तम अश्वादि सैन्य को प्राप्त करते हैं। इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः। इति सप्तमोऽध्यायः॥

अष्टमोऽध्यायः

[५]

ब्रह्मातिथिः काण्व ऋषिः॥ देवताः—१—३७ अश्विनौ। ३७—३९ चैद्यस्य कशोर्दानस्तुतिः॥ छन्दः—१, ५, ११, १२, १४, १८, २१, २२, २९, ३२, ३३, निचृद् गायत्री। २—४, ६—१०, १५—१७, १९, २०, २४, २५, २७, २८, ३०, ३४, ३६ गायत्री। १३, २३, ३१, ३५ विराड् गायत्री। १३, २६ आर्ची स्वराड् गायत्री। ३७, ३८ निचृद् बृहती। ३९ आर्षी निचृदनुष्टुप्॥ एकोनचत्वारिंशदृचं सूक्तम्॥

दूरादिहेव यत्सत्यरुणप्सुरशिश्वितत्।
वि भानुं विश्वधातनत्॥ १॥

भा०—(यत्) जिस प्रकार (अरुणप्सुः) अरुण, कान्तियुक्त रूप वाली उषा (दूरात् सती) दूर रहकर भी (इह एव) यहां ही, समीप विद्यमान के समान ही (अशिश्वितत्) जगत् भर को श्वेत कर देती है और (विश्व-धा) सब प्रकार से (भानुं) कान्ति को (वि अतनत्) विस्तारित करती है उसी प्रकार (अरुणप्सुः) अरुण कान्तियुक्त, स्वस्थ नवयुवति (दूरात् सती) दूर देश में रहती हुई भी, सती, सच्चरित्र स्त्री (इह इव) जैसे यहां हो ऐसे गृहवत् ही (अशिश्वितत्) अपने चरित्र से जगत् को शुभ्र कर देती है और (विश्वधा) सब प्रकार से (भानुं वि अतनत्) अपनी कीर्त्ति दीप्ति को फैलाती है।

प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हा गृहदीप्तयः।
स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन॥ मनु० ९।२६॥

नृवद्दस्रा मनोयुजा रथेन पृथुपाजसा ।
सचेथे अश्विनोपसम् ॥ २ ॥

भा०—हे (दस्रा) दर्शनीय वा दुष्टों वा शरीरस्थ दोषों के नाश करने वाले स्त्री पुरुषो ! मुख्य नायको, प्राण उदानवत् हे (अश्विना) दो अश्वों पर चढ़े नायकों के समान अश्वों, इन्द्रियों और मन के स्वामी जितेन्द्रिय, जितमनस्क जनो ! (नृवत्) दो नायकों के समान आप दोनों (मनः-युजा) मन रूप सारथि या अश्व की शक्ति से युक्त (पृथु-पाजसा) अधिक बलशाली (रथेन) दृढ़ रथदेह से युक्त होकर (उपसम् सचेथे) अपने चाहने वाले को प्राप्त होओ । (२) दो वीर नायक शत्रुपीड़क सेना को प्राप्त करें । (३) प्राण उदान मनोयोग युक्त रथ अर्थात् व्यापार से अर्थात् योगाभ्यासवश विशोका रूप उषा को प्राप्त करावें ।

युवाभ्यां वाजिनीवसू प्रति स्तोमा अदृक्षत ।
वाचं दूतो यथोहिषे ॥ ३ ॥

भा०—हे (वाजिनी-वसू) अन्न बल और ऐश्वर्य से युक्त प्रजा, सेना भूमि और यागादि क्रिया से उत्पन्न धन के स्वामी स्त्रीपुरुषो ! (युवाभ्यां) आप दोनों के लिये (स्तोमाः) उत्तम स्तुतिवचन (प्रति अदृक्षत) प्रत्येक कार्य में दीखें । (यथा दूतः) दूत के समान मैं (वाचं ओहिषे) वाणी को धारण करता हूं ।

पुरुप्रिया ण ऊतये पुरुमन्द्रा पुरूवसू ।
स्तुषे कण्वासो अश्विना ॥ ४ ॥

भा०—(अश्विना) उत्तम जितेन्द्रिय स्त्री पुरुष दोनों (पुरुप्रिया) बहुत को प्रिय, (पुरुमन्द्रा) बहुतों को प्रसन्न करने वाले और (पुरुवसू) बहुत से ऐश्वर्यों के स्वामी होकर (नः ऊतये) हमारी रक्षा के लिये

हों। उन दोनों को (कण्वासः) विद्वान् उपदेष्टा लोग (स्तुषे) उपदेश करने के लिये हों।

मंहिष्ठा वाजसातमेषयन्ता शुभस्पती।
गन्तारा दाशुषो गृहम् ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो! आप दोनों (मंहिष्ठा) अति पूज्य (वाज-सातमा) ज्ञान, अन्न बल के देने वालों में उत्तम (इषयन्ता) उत्तम अन्न की कामना करने वाले; (शुभः पती) उत्तम कल्याण कर्म और शुद्ध जल को पालन वा पान करने वाले स्वयं पति पत्नी (दाशुषः गृहम्) ज्ञानादि देने वाले के गृह को (गन्तारा) जाने वाले होओ। इति प्रथमो वर्गः॥

ता सुदेवाय दाशुषे सुमेधामवितारिणीम्।
घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् ॥ ६ ॥

भा०—(ता) वे आप दोनों उत्तम विद्वान् और उत्तम विजिगीषु वा विद्यादि के अभिलाषी शिष्यों के स्वामी (दाशुषे) ज्ञानदाता गुरु, आचार्य वा धनप्रद स्वामी की (सु-मेधाम्) उत्तम बुद्धियुक्त (अवितारिणीम्) विनाश न होने देने वाली (गव्यूतिम्) वाणियों के सम्मिश्रण होने की यज्ञ क्रिया वा नीति को गोचर भूमि के समान ही (घृतैः उक्षतम्) स्नेहों और घृतादि पवित्र पदार्थों वा (घृतैः) जलों से सींचो, बढ़ाओ, उन्नत करो।

आ नः स्तोममुप द्रवत्तूयं श्येनेभिराशुभिः।
यातमश्वेभिरश्विना ॥ ७ ॥

भा०—हे (अश्विना) उत्तम अश्वों और इन्द्रियों के स्वामी जनो! आप दोनों (नः) हमारे (द्रवत् तूयम्) शीघ्र शीघ्र ही (नः) हमारे (स्तोमम् उप) स्तुत्य उपदेश को प्राप्त करने के लिये (श्येनेभिः) उत्तम गति वाले सदाचारी, (आशुभिः) शीघ्रगामी और (अश्वेभिः) अश्वोंवत् प्राण वृत्तियों से (उप यातम्) प्राप्त होओ।

येभिस्तिस्रः परावतो दिवो विश्वानि रोचना।
त्रीँरक्तून्परिदीयथः ॥ ८ ॥

भा०—(येभिः) जिन वेग युक्त साधनों से तुम दोनों (तिस्रः दिवः त्रीन् अक्तून्) तीन दिन और तीन रातों में ही (परावतः) दूर के समस्त देशों और (विश्वानि रोचना) समस्त रुचिकर स्थानों को भी (परि दीयथः) परिभ्रमण कर सको उन ही साधनों से हमारे (स्तोमम् उपयातम्) स्तुत्य यज्ञादि कार्य को भी प्राप्त होओ।

उत नो गोमतीरिष उत सातीरहर्विदा।
वि पथः सातये सितम् ॥ ९ ॥

भा०—हे (अहर्विदा) दिन को प्राप्त कराने या ज्ञान करा देने वाले उषा सूर्यवत् वा सूर्य चन्द्रवत् (अहर्विदा) अविनाशी आत्मा को जानने वाले वा दिन कृत्य के ज्ञाता जनो ! आप दोनों (उत) भी (नः) हमारी (गोमतीः इषः) उत्तम वाणियों से युक्त इच्छाओं और (गोमतीः इषः) भूमियों से युक्त वा गोरस—दुग्ध, दही घृतादि से युक्त अन्नों को (उत सातीः) सेवन योग्य सम्पदाओं को प्राप्त करो और (पथः सातये) सन्मार्गों के प्राप्त करने और सेवन के लिये (वि सितम्) विविध प्रकार से नियम बन्धन करो।

आ नो गोमन्तमश्विना सुवीरं सुरथं रयिम्।
वोळ्हमश्वावतीरिषः ॥ १० ॥ २ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! (नः) हमें (गोमन्तं) गौओं से युक्त, (सु-वीरं) उत्तम वीरों वाले (सुरथं रयिम्) उत्तम रथसम्पन्न ऐश्वर्य को (आ वोढम्) प्राप्त कराओ। और (अश्वावतीः इषः) अश्वों वाली सेनाओं को भी (आ वोढम्) धारण और वश करो। इति द्वितीयो वर्गः ॥

वावृधाना शुभस्पती दस्रा हिरण्यवर्तनी।
पिबतं सोम्यं मधु ॥ ११ ॥

भा०—हे (दस्रा) दुःखों के नाश करने वाले आप दोनों (शुभः-पता) उत्तम गुणों और कल्याणमय आचार का पालन करते हुए (वावृधाना) बढ़ते हुए (सोम्यं मधु पिबतम्) ओषधि-रस से युक्त मधु एवं मधुर अन्न, जल का उपभोग करो।

अस्मभ्यं वाजिनीवसू मघवद्भ्यश्च सुप्रथः।
छर्दिर्यन्तमदाभ्यम् ॥ १२ ॥

भा०—हे (वाजिनी वसू) अन्न, ऐश्वर्य बल आदि उत्पन्न करने वाली क्रिया सेना आदि को धनवत् पालन करने वाले वीर विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (अस्मभ्यम्) हमारे और (मघवद्भ्यश्च) उत्तम धनसम्पन्न पुरुषों के उपकार के लिये (अदाभ्यम् छर्दिः) न नाश होने योग्य, सुखप्रद गृह प्रदान करो।

नि षु ब्रह्म जनानां याविष्टं तूयमा गतम्।
मो ष्व१न्याँ उपारतम् ॥ १३ ॥

भा०—हे शक्तिमान् सेनापति, और सैन्य वर्ग जनो ! (यौ) जो आप दोनों (जनानां ब्रह्म) मनुष्यों के धन, अन्न और बृहत् राष्ट्र को (नि सु अविष्टम्) अच्छी प्रकार रक्षा करते हो वे आप दोनों (तूयम् आ गतम्) शीघ्र प्राप्त होओ। (अन्यान्) औरों को (मो सु उप अरतम्) मत प्राप्त होओ।

अस्य पिबतमश्विना युवं मदस्य चारुणः।
मध्वो रातस्य धिष्ण्या ॥ १४ ॥

भा०—हे (अश्विना) रथी सारथिवत् अश्वों, एवं इन्द्रियों तथा वेगयुक्त साधनों के स्वामी जनो ! आप दोनों (धिष्ण्या) स्तुतियोग्य, उत्तम बुद्धियुक्त और पूज्य आसन वा पदों के योग्य होकर (एतस्य) आदर पूर्वक दिये (अस्य चारुणः मदस्य) इस उत्तम तृप्तिजनक मधुर मधुपर्कादि अन्न का (पिबतम्) पान, उपभोग करो।

अस्मे आ वहतं रयिं शतवन्तं सहस्रिणम् ।
पुरुक्षुं विश्वधायसम् ॥ १५ ॥ ३ ॥

भा०—हे जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! वा रथी सारथिवत् राजा और सचिव जनो ! आप दोनों (अस्मे) हमारे लिये (शतवन्तं) सौ और (सहस्रिणं) हज़ार संख्यायुक्त (रयिं) ऐश्वर्य (आवहतम्) प्राप्त कराओ । वह ऐश्वर्य (पुरु-क्षुं) वहुतों को अन्न देने और वसाने में समर्थ और (विश्व-धायसम्) सवका पालक पोषक हो । इति तृतीयो वर्गः ॥

पुरुत्रा चिद्धि वां नरा विह्वयन्ते मनीषिणः ।
वाघद्भिरश्विनागतम् ॥ १६ ॥

भा०—हे (नरौ) नायक जनो ! अमात्य राजा वा स्त्री पुरुषो ! (मनीषिणः) मनस्वी ज्ञानी लोग (वां) आप दोनों को (पुरुत्र चित् हि) वहुत से कार्यों में (वि-ह्वयन्ते) विशेष रूप से आदर पूर्वक बुलावें । आप दोनों (वाघद्भिः) भार वहन करने में समर्थ अश्वों के समान क्षमता-युक्त विद्वान् पुरुषों सहित (आ गतम्) आओ ।

जनासो वृक्तबर्हिषो हविष्मन्तो अरङ्कृतः ।
युवां हवन्ते अश्विना ॥ १७ ॥

भा०—हे (अश्विना) अश्व अर्थात् राष्ट्र के स्वामी राजा और अमात्य, सेना-सभा के अध्यक्ष जनो ! (युवां) आप दोनों को (वृक्त-बर्हिषः) कुशा को काट लाने वाले यज्ञशील पुरुषों के समान (वृक्त-बर्हिषः) अपने बढ़ते शत्रुओं को काट गिराने वाले (हविष्मन्तः) अन्नादि उत्तम समृद्धि-मान् (अरंकृतः) अत्यन्त उद्योग से कार्य करने वाले, कर्मण्य जन (हवन्ते) बुलाते हैं वा तुम को अपना प्रधान स्वीकार करते हैं ।

अस्माकमद्य वामयं स्तोमो वाहिष्ठो अन्तमः ।
युवाभ्यां भूत्वश्विना ॥ १८ ॥

भा०—हे (अश्विना) अश्वादि सैन्य, राष्ट्र और विद्यादि में निष्णात

विद्वानों के स्वामी जनो ! (अस्माकम्) हमारा (अयं) यह (वां) आप दोनों को लक्ष्य करके किया (स्तोमः) स्तुति योग्य उपदेश वचन एवं व्यवहार (युवाभ्यां) आप दोनों के लिये (अन्तमः) अति समीप और (वाहिष्ठः) अति सुख प्राप्त कराने वाला और रथ के समान जीवन को सुख से यापन करा देने वाला (भूतु) हो ।

यो ह वां मधुनो दृतिराहितो रथचर्पणे ।
ततः पिबतमश्विना ॥ १९ ॥

भा०—हे (अश्विना) रथी सारथिवत्, जितेन्द्रिय, विद्यावान् एवं अश्वों, राष्ट्रादि के स्वामी जनो ! जिस प्रकार (रथचर्पणे आहितः दृतिः) रथ को खेंचने के स्थान पर जल की मशक लटकी रहती है और रथस्थ पुरुष (मधुनः पिबतः) जल का पान और अन्न का भोजन करते हैं उसी प्रकार (रथ-चर्पणे) रमण योग्य गृहस्थ वा राष्ट्र कार्य के उठाने के समय भी (वां) आप दोनों के लिये (मधुनः) मधुर अन्न, जल तथा ऐश्वर्य का (यः) जो (दृतिः) पात्र (आहितः) आदर पूर्वक प्रस्तुत किया जावे (ततः) उससे (पिबतम्) जल अन्नादि का अवश्य उपभोग करो । अथवा—(यः मधुनः) जो 'मधु' अर्थात् शत्रु का दमन या पीड़क करने में समर्थ (दृतिः) शत्रु को काट गिराने में समर्थ शस्त्रास्त्र सैन्य (आहितः) राष्ट्र के सब ओर स्थापित हो (ततः) उसके बल पर (पिब-तम्) राष्ट्र का पालन और उपभोग करो ।

तेन नो वाजिनीवसू पश्वे तोकाय शं गवे ।
वहतं पीवरीरिषः ॥ २० ॥ ४ ॥

भा०—हे (वाजिनी-वसू) 'वाजिनी' अर्थात् ज्ञानयुक्त बुद्धि, बल युक्त सेना और ऐश्वर्य युक्त समृद्धि, भूमि आदि के ऐश्वर्य के स्वामी ! आप दोनों (तेन) उस पूर्वोक्त मधु से पूर्ण पात्र वा शत्रुकर्षक बल से (नः) हमारे (पश्वे) पशुओं की रक्षा (तोकाय) सन्तानों के पालन

और (गवे शं) गौओं की शान्ति कल्याण के लिये (पीवरीः इषः) अति हृष्ट पुष्ट सेनाओं और अन्न सम्पदाओं को (वहतं) धारण करो। और हमें प्राप्त कराओ। इति चतुर्थो वर्गः ॥

उत नो दिव्या इषं उत सिन्धूरहर्विदा ।
अप द्वारेव वर्षथः ॥ २१ ॥

भा०—हे (अहर्विदा) दिन के समस्त कृत्यों को रीति से जानने वाले प्रधान और गौण जनो ! आप दोनों (नः) हमारे लिये (दिव्याः इषः) उत्तम २ अन्न और विजयोपयोगिनी सेनाओं को (उत) और (सिन्धून्) बहने वाली जल धाराओं और वेगवान् अश्वों को (द्वारा इव) उत्तम साधनों, द्वारों और मार्गों से (अप वर्षथः) दूर तक वर्षाओ, पहुंचाओ और लेजाओ।

कदा वां तौग्र्यो विधत्समुद्रे जहितो नरा ।
यद्वां रथो विभिष्पतात् ॥ २२ ॥

भा०—(तौग्र्यः) 'तुग्र' अर्थात् शत्रुओं को मारने में समर्थ पुरुषों में कुशल, उनका स्वामी सेनापति। हे (नरा) नायक वरो ! (समुद्रे) उमड़ते हुए शत्रु सैन्य के बीच (जहितः) आकर (वां) तुम दोनों की (कदा) कब (विधत्) सेवा करे ? [उत्तर] (यत्) जब (वां) तुम दोनों का (रथः) रथ सैन्य (विभिः) वेगवान् अश्वों से (पतात्) प्रयाण करे।

युवं कण्वाय नासत्यापिरिप्ताय हर्म्ये ।
शश्वदूतीर्दशस्यथः ॥ २३ ॥

भा०—हे (नासत्यौ) सत्य का उपदेश देने और सत्य का विधान करने और कभी असत्य व्यवहार न करने वाले जनो ! (युवं) आप दोनों (हर्म्ये) उत्तम गृह में रहते हुए (अपि-रिप्ताय कण्वाय) पीड़ित विद्वान्

जन को बचाने के लिये (शश्वत्) सदा (ऊतीः दशस्यथः) नाना रक्षाएं अन्नादि तृप्तिकारक पदार्थ भी प्रदान किया करो।

ताभिरा यातमूतिभिर्नव्यसीभिः सुशस्तिभिः।
यद्वां वृषण्वसू हुवे ॥ २४ ॥

भा०—हे (वृषण्-वसू) बलवान् पुरुषों को राष्ट्र में बसाने वाले नायक पुरुषो ! (यत् वां) जब मैं आप दोनों को (हुवे) प्रजाजन पुकारूं, अवसर पर चाहूं। तब २ आप दोनों (ताभिः) इन नाना (नव्य-सीभिः) अति नवीन, अति उत्तम (सु-शस्तिभिः) शासन व्यवस्थाओं और (ऊतिभिः) रक्षा साधनों सहित (आ-यातम्) प्राप्त होओ।

यथा चित्कण्वमावतं प्रियमेधमुपस्तुतम्।
अत्रिं शिञ्जारमश्विना ॥ २५ ॥ ५ ॥

भा०—(यथा चित्) जैसे भी हो वैसे हे (अश्विना) जितेन्द्रिय उत्तम बलवान् विद्यावान् स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (कण्वम् आ अवतम्) विद्वान् पुरुष की रक्षा किया करो। और आप दोनों (उप-स्तुतम्) प्रशंस-नीय (प्रिय-मेधम्) यज्ञ और युद्धादि के प्रिय विद्वान् और वीर पुरुष की रक्षा करो। और (शिञ्जारम्) मधुर शब्द करने और मधुर वचन कहने वाले वाद्य, गान प्रिय एवं कवि और उत्तम उपदेष्टा वर्ग की भी रक्षा करो। इति पञ्चमो वर्गः ॥

यथोत कृत्व्ये धनेऽशुं गोष्वगस्त्यम्।
यथा वाजेषु सोभरिम् ॥ २६ ॥

भा०—हे उत्तम विद्वान् बलवान् स्त्री पुरुषो ! (यथा उत) और जैसे हो वैसे, (कृत्ये धने) धन को पैदा करने के लिये (अंशुम्) खाने और भोगने योग्य अन्नादि की रक्षा करो। और (गोषु) किरणों के प्राप्त्यर्थ (अगस्त्यम्) सूर्य और भूमियों को सम्पन्न बनाने के लिये स्थावर पर्वत वृक्षों की रक्षा करो। (यथा) जैसे हो वैसे (वाजेषु) ज्ञानों, अन्नों

और बलों की रक्षा के लिये (सोभरिम्) उत्तम रीति से उनके पालक की रक्षा करो।

एतावद्वां वृषण्वसू अतो वा भूयो अश्विना।
गृणन्तः सुम्नमीमहे ॥ २७ ॥

भा०—हे (वृषण्-वसू) बलवान् शासकों को राष्ट्र में बसाने वाले वा उनको अपना धन समझने वाले प्रधान पुरुषो ! (गृणन्तः) आप दोनों के प्रति उपदेश करते हुए हम प्रजाजन (वाम्) आप दोनों के (एतावत्) इतना (सुम्नम्) सुखकारी ऐश्वर्य वा (अतो वा भूयः) इससे भी अधिक की (ईमहे) याचना करते हैं।

रथं हिरण्यवन्धुरं हिरण्याभीशुमश्विना।
आ हि स्थाथो दिविस्पृशम् ॥ २८ ॥

भा०—हे (अश्विना) 'अश्व' अर्थात् वेग से जाने वाले रथ विमान विद्युत, अग्नि, जल आदि के स्वामी, तत्सम्बन्धी कार्यकुशल विद्वान् एवं शिल्पी जनो ! पुरुषो ! आप दोनों (हिरण्यवन्धुरम्) सुवर्ण, लोह आदि धातु से सुन्दर, कान्तियुक्त (हिरण्याभीशुम्) उत्तम लोहादि धातु की बनी रोक-थाम वाले (दिवि-स्पृशम्) आकाश और भूमि दोनों को स्पर्श करने वाले दोनों यथेच्छ जाने वाले, (रथं स्थाथः हि) रथपर विराजा करो।

हिरण्ययी वां रभिरीषा अक्षो हिरण्ययः।
उभा चक्रा हिरण्यया ॥ २९ ॥

भा०—हे विद्वान् शिल्पी जनो ! (वां) तुम दोनों के (ईषाः) रथ के अग्र दण्ड (रभिः) दृढ़ और (हिरण्ययी) सुवर्णादि उत्तम धातु के बने हों और (अक्षः हिरण्ययः) अक्ष भी लोह के दृढ़ बने हों। (उभा) दोनों (चक्रा) चक्र भी (हिरण्यया) लोह से बने, दृढ़ हों।

तेन नो वाजिनीवसू परावतश्चिदा गतम्।
उपेमां सुष्टुतिं मम ॥ ३० ॥ ६ ॥

भा०—हे (वाजनीवसू) बलवती सेना और अन्नसम्पदा वाली भूमि के स्वामी जनो ! (तेन) इस प्रकार के पूर्वोक्त रथ से (परावतः चित्) दूर देश से भी (नः आगतम्) आप लोग हमारे पास आया करो, (इमाम्) इस (मम सु-स्तुतिम्) मेरी उत्तम स्तुति, वचन, उपदेशादि श्रवण किया करो। इति षष्ठो वर्गः ॥

आ वहेथे पराकात्पूर्वीरश्नन्तावश्विना ।
इषो दासीरमर्त्या ॥ ३१ ॥

भा०—हे (अमर्त्या) असाधारण मनुष्यो ! आप दोनों (पराकात्) दूर देश से प्राप्त होने वाली (इषः आ वहेथे) अन्नादि सामग्रियों को लाया करो। और (पूर्वीः) पूर्व प्राप्त अन्नों को (अश्नन्ता) भोग करते हुए (दासीः) भृत्यादि प्रजा को भी नयी अन्न सामग्री लाते रहो। उसी प्रकार (पराकात्) दूर देशों तक भी (इषः) तीव्र (दासीः वहेथे) शत्रुनाशक सेनाएं रक्खो।

आ नो द्युम्नैरा श्रवोभिरा राया यातमश्विना ।
पुरुश्चन्द्रा नासत्या ॥ ३२ ॥

भा०—हे (नासत्या) कभी असत्य का आचारण न करने वाले एवं सत्य ही की व्यवस्था करने वाले (अश्विना) राष्ट्र, बल के स्वामी जनो ! आप दोनों (पुरु-चन्द्रा) बहुत से प्रजावर्गों को आह्लादित करने वाले तथा बहुत से सुवर्णादि धनों के स्वामी होओ और (नः) हमें (द्युम्नैः) यशों, धनों, (श्रवोभिः) अन्नों, श्रवण योग्य ज्ञानों और प्रशंसाओं (राया) और ऐश्वर्य सहित (नः आ उप यातम्) हमारे पास आया करो।

एह वां प्रुषितप्सवो वयो वहन्तु पर्णिनः ।
अच्छा स्वध्वरं जनम् ॥ ३३ ॥

भा०—(इह) इस राष्ट्र में (प्रुषित-प्सवः) स्निग्ध और उत्तम रीति

से परिपक्व भोजन करने वाले, (पर्णिनः) उत्तम रथों और वाहनों के स्वामी (वयः) पक्षिवत् शीघ्रगामी, तेजस्वी विद्वान् पुरुष घोड़ों के समान, नियुक्त होकर (वां) आप दोनों ही (सु-अध्वरं जनं) उत्तम यज्ञयुक्त प्रजावर्ग को (अच्छ आ हवन्त) भली प्रकार रथवत् धारण करें।

रथं॒ वा॒मनु॒गाय॑सं॒ य इ॒षा वर्त॑ते स॒ह ।
न च॒क्रम॒भि बा॑धते ॥ ३४ ॥

भा०—(यः इषा सह वर्तते) जो अन्नादि तथा सैन्य से सम्पन्न है तुम दोनों के (अनु-गायसं) अनुगमन करने योग्य व प्रशंसनीय (रथम्) रमणीय राष्ट्र को (रथं चक्रं) रथ को चक्र के समान (चक्रं) चक्रवत् पर-सैन्य अथवा कर्मकर्तृगण (न अभि बाधते) नहीं पीड़ित करें।

हि॒र॒ण्यये॑न॒ रथे॑न द्र॒वत्पा॑णिभि॒रश्वैः॑ ।
धीज॑वना॒ नास॑त्या ॥ ३५ ॥ ७ ॥

भा०—हे (नासत्या) नासिका में स्थित प्राणों के समान राष्ट्र में विद्यमान प्रमुख स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (धी-जवना) कर्म और बुद्धि में तीव्र वेग से युक्त होकर (द्रवत् पाणिभिः अश्वैः रथेन) वेगयुक्त चरणों वाले अश्वों से युक्त रथ के समान ही (द्रवत्-पाणिभिः अश्वैः) शीघ्र कर्मकारी, कुशल, सिद्ध हस्त विद्वानों से सुसज्जित (हिरण्येन रथेन) सुवर्णादि से समृद्ध उत्तम राष्ट्र सहित हमें प्राप्त होओ। इति सप्तमो वर्गः ॥

यु॒वं मृ॒गं जा॑गृ॒वांसं॒ स्वद॑थो वा वृषण्वसू ।
ता नः॑ पृङ्क्तमि॒षा र॒यिम् ॥ ३६ ॥

भा०—हे (वृषण्वसू) बलवान् पुरुषों को धनवत् पालन करने वाले राजा सचिव जनो ! (युवं) आप दोनों (मृगं) सिंहवत् बलवान्, (जागृवांसं) जागरणशील, सदा सावधान, पुरुष को (स्वदथः) उत्तम ऐश्वर्य तथा उत्तम पुष्टिकारक भोजन प्रदान करो। इस प्रकार वे

सेनादि के स्वामी लोग (नः) हमें (इषा) बलवती सेना सहित (रयिम् पृङ्क्तम्) ऐश्वर्य प्राप्त कराओ ।

ता मे अश्विना सनीनां विद्यातं नवानाम् ।
यथा चिच्चैद्यः कशुः शतमुष्ट्रानां ददत्सहस्रा दश गोनाम् ॥३७॥

भा०—हे (अश्विना) वेगयुक्त अश्वादि साधनों के स्वामी जनो ! (ता)वे आप दोनों (मे) मुझ विद्वान् वा राष्ट्र के (नवानाम्) नये नये (सनीनां) योग्य ऐश्वर्यों और ज्ञानों का सदा (विद्यातम्) ज्ञान करते,जनाते वा प्राप्त कराते रहो। (यथा चित्) जिससे (चैद्यः कशुः) विद्वानों में उत्तम ज्ञानदर्शी और तेजस्वी पुरुष (उष्ट्रानां) राष्ट्र में वसने और शत्रु को दग्ध करने वाले (शतम्) सैकड़ों प्रजाओं वा वीरों तथा (गोनाम् दशसहस्रा) दस सहस्र भूमियों को भी (ददत्) प्रदान करे ।

यो मे हिरण्यसन्दृशो दश राज्ञो अमंहत ।
अधस्पदा इच्चैद्यस्य कृष्टयश्चर्मम्ना अभितो जनाः ॥ ३८ ॥

भा०—(यः) जो बड़ा राजा वा प्रभु (मे) मुझे (हिरण्य-संदृशः) सुवर्ण या सूर्य के समान दीखने वाले वा हित और रमणीय तत्व ज्ञान को देखने वाले सम्यक् दर्शी (दश राज्ञः) दसों तेजस्वी, राजसभासदों को (मे) मेरे हितार्थ (अमंहत) राष्ट्र को प्रदान करता है उस (चैद्यस्य) ज्ञानी, विद्वानों में सर्वोत्तम पुरुष के (अधः-पदाः) अधीन (कृष्टयः) कृषक, शत्रुपीड़क जन, खड्ग और (अभितः) उसके चारों ओर (चर्मम्नाः जनाः) चर्म, खड्ग आदि का अभ्यास करने वाले वीर पुरुष (इत्) अवश्य रहते हैं। (२) इसी प्रकार प्रभु परमेश्वर सब विद्वान् ज्ञानी जीवों में व्यापक होने से 'चैद्य' है सब जीव कृष्टभूमियें अन्न सम्पदादिवत् उत्पन्न होने वाले होने से 'कृष्टि', जन्म लेने से 'जन' और चर्मवेष्टित देह को बार २ लेने से वा चर्मवेष्टित देह में कर्मों और ज्ञानों का पुनः २ अभ्यास करने वाले होने से जीव 'चर्मम्न' हैं। वे उसके ही अधीन रहते हैं। वह प्रभु मुझ

जीवगण को दस हित रमणीय ज्ञानप्रद दस तेजोयुक्त प्राणों, इन्द्रियों को प्रदान करता है।

माकिरेना पथा गाद्येनेमे यन्ति चेदयः।
अन्यो नेत्सूरिरोहते भूरिदावत्तरो जनः॥ ३९॥ ८॥ १॥

भा०—(येन पथा) जिस मार्ग से (इमे चेदयः) ये विद्वान् जन (यन्ति) गमन करते हैं (एना पथा) उस मार्ग से (माकिः गात्) कोई जा नहीं सकता। उनका मार्ग सुगम नहीं होता। (अन्यः) दूसरा कोई (भूरिदावत्-तरः जनः) बहुत धनादि देने वाला और (सूरिः) विद्वान् भी (नः ओहते) इतना कार्य भारादि उठाने में समर्थ नहीं होता है। इत्यष्टमो वर्गः॥ इति प्रथमोऽनुवाकः॥

[६]

वत्सः काण्व ऋषिः॥ १—४५ इन्द्रः। ४६—४८ तिरिन्दिरस्य पारशव्यस्य दानस्तुतिर्देवताः॥ छन्दः—१—१३, १५—१७, १९, २५—२७, २९, ३०, ३२, ३५, ३८, ४२ गायत्री। १४, १८, २३, ३३, ३४, ३६, ३७, ३९—४१, ४३, ४५, ४८ निचृद् गायत्री। २० आर्ची स्वराड् गायत्री। २४, ४७-पादनिचृद् गायत्री। २१, २२, २८, ३१, ४४, ४६ आर्षी विराड् गायत्री॥

महाँ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव।
स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे॥ १॥

भा०—(यः इन्द्रः) जो ऐश्वर्यों का देने वाला परमेश्वर (वृष्टिमान् पर्जन्यः इव) वृष्टि करने वाले मेघ के समान (इन्द्रः) अन्न जलवत् नाना उत्तम फलों का देने वाला (पर्जन्यः) सर्वोत्कृष्ट विजयी, सब सुखों-रसों का दाता, वह प्रभु (ओजसा महान्) बल पराक्रम से महान् है। वह (स्तोमैः) उत्तम स्तुति वचनों और वैदिक सूक्तोपदेशों से गुरुवत् (वत्सस्य) अधीनता

में बसने वाले शिष्यवत् प्रभु में ही निवास करने वाले एवं बालकवत् प्रिय भक्त की (वावृधे) सब प्रकार से वृद्धि करता है।

प्रजामृतस्य पिप्रतः प्र यद्भरन्त वह्नयः।
विप्रा ऋतस्य वाहसा ॥ २ ॥

भा०—हे प्रभो! (ऋतस्य) सत्य ज्ञानमय (पिप्रतः) जगत् को पूर्ण करने वाले तेरी (प्रजाम्) उत्तम प्रजा को (यत्) जो (वह्नयः) सूर्यादि सौर जगत् में अग्निवत् ज्ञान प्रकाश के धारण करने वाले विद्वान् लोग (प्र भरन्त) अच्छी प्रकार प्रजा का भरण पोषण करते हैं वे ही (ऋतस्य वाहसा) सत्य ज्ञान को धारण करने से (विप्राः) सच्चे विप्र और विद्वान् हैं।

कण्वा इन्द्रं यदक्रत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम्।
जामि ब्रुवत आयुधम् ॥ ३ ॥

भा०—(यत्) जब (कण्वाः) विद्वान् पुरुष, (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् प्रभु को (स्तोमैः) उत्तम स्तुति वचनों से तथा अधिकारों, पदों से (यज्ञस्य) परस्पर मिलकर करने योग्य देवपूजा, संगतिकरण भावना, दान आदि सत्कर्मों का (साधनम्) साधक, निमित्त (अक्रत) बना लेते हैं तब वे (आयुधम्) सब संकटों को पराजित करने वाले आयुध के समान उस प्रभु को ही वे (जामि ब्रुवते) अपना बन्धु कहने लगते हैं। वे उसी को सब से बड़ा बल, सब से बड़ा अस्त्र मानते हैं। अथवा जब वे प्रभु को ही सर्वोपास्य जान लेते हैं तब वे आयुध शस्त्रादि को भी (जामि ब्रुवते) व्यर्थ बतलाया करते हैं। ईश्वर पर किया विश्वास ही उनका एकमात्र रक्षक होता है।

समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः।
समुद्रायेव सिन्धवः ॥ ४ ॥

भा०—(समुद्राय-इव सिन्धवः) नदियें जिस प्रकार समुद्र को

प्राप्त होने के लिये (नमन्तः) उसकी ओर ही झुक जाती हैं उसी प्रकार (विश्वाः विशः कृष्टयः) समस्त प्रजाएं, शत्रु कर्षण करने वाली सेनायें और कृषक जन (अस्य मन्यवे) इस प्रभु के ज्ञान को प्राप्त करने के लिये उसी के समक्ष (सं नमन्त) मिलकर झुकती हैं। (२) इसी प्रकार प्रबल राजा के (मन्यवे) क्रोध के आगे समस्त प्रजाएं झुकती हैं।

ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत्समवर्तयत्।
इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥ ५ ॥ ९ ॥

भा०—(इन्द्रः चर्म इव) जिस प्रकार शत्रुहन्ता वीर पुरुष रक्षा साधन ढाल और शत्रुछेदन के साधन खड्ग को (सम अवर्त्तयत्) अच्छी प्रकार चलाता है तब (अस्य ओजः तित्विषे) उसका पराक्रम खूब चमकता है, उसी प्रकार (यत्) जब (इन्द्रः) परमेश्वर्यवान् प्रभु (चर्म इव) खड्ग ढाल के समान ही (रोदसी उभे सम् अवर्त्तयत्) प्रजा और शासक वर्ग दोनों को एक साथ संचालित करता है (तत्) तभी (अस्य) उस प्रभु का (ओजः तित्विषे) पराक्रम, बल, तेज अधिक चमकता, प्रत्यक्ष सूर्य के प्रकाशवत् दृष्टिगोचर होता है। इति नवमो वर्गः॥

वि चिद्वृत्रस्य दोधतो वज्रेण शतपर्वणा।
शिरो बिभेद वृष्णिना ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य, विद्युत् वा वायु (वृत्रस्य शिरः) मेघ के ऊपर के भाग को (वृष्णिना वज्रेण) वृष्टिकारी विद्युत् प्रहार से (वि बिभेद) छिन्न भिन्न करता है उसी प्रकार वह ऐश्वर्यवान् राजा (वृत्रस्य) बढ़ते शत्रु के (शिरः) प्रमुख सैन्य को (वृष्णिना) बलवान्, शस्त्रादि वर्षक (वज्रेण) शत्रुनिवारक (शतपर्वणा) सैकड़ों खंड वाले वा अनेक पालन साधनों से युक्त (वज्रेण) सैन्य बल से (दोधतः वृत्रस्य) हृदय में भय, कंपकंपी पैदा करने वाले त्रासकारी शत्रुगण के (शिरः वि बिभेद) शिर या प्रमुख अंग को छिन्न भिन्न करे। (२) उसी प्रकार गुरु, प्रभु

शान्ति वर्षक (शतपर्वणा) सौ पर्व, अध्याय अनुवाकादि विच्छेदों से युक्त ज्ञानमय वेद से अज्ञानकारी वृत्र का नाश करता है।

इमा अभि प्र णौनुमो विपामग्रेषु धीतयः।
अग्नेः शोचिर्न दिद्युतः ॥ ७ ॥

भा०—हम (अग्रेषु) अग्रगण्य विद्वानों के अधीन रहकर (विपाम्) वेदवाणियों में से (इमाः) इन (धीतयः) नाना स्तुतियों और धारण करने योग्य वाणी या कर्मों को (अभि प्र नोनुमः) साक्षात् कर अच्छी प्रकार अभ्यास करें, पढ़ें और अन्यों के प्रति कहें। वे (अग्नेः शोचिः न) अग्नि की ज्वाला के समान (दिद्युतः) प्रकाश करने वाली हैं। 'विपा' इति वाङ्नाम।

गुहा सतीरुप त्मना प्र यच्छोचन्त धीतयः।
कण्वा ऋतस्य धारया ॥ ८ ॥

भा०—(यत्) जो (धीतयः) संकल्प वा कर्म (गुहा सतीः) बुद्धि में विद्यमान रहकर (त्मना) आत्मा के सामर्थ्य से (प्र शोचन्त) प्रकाशित होते हैं उनको (कण्वाः) हम विद्वान् जन (ऋतस्य) सत्य ज्ञान की (धारया) वाणी से (प्र नोनुमः) अच्छी प्रकार प्रकट करते हैं।

प्र तमिन्द्र नशीमहि रयिं गोमन्तमश्विनम्।
प्र ब्रह्म पूर्वचित्तये ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य के दाता! हम (तम्) उस (गोमन्तं रयिम्) गौओं से युक्त सम्पत्ति, इन्द्रियों से युक्त देह और वाणियों से युक्त ज्ञान और (अश्विनम्) अश्वों से युक्त सैन्य बल को (प्र नशीमहि) अच्छी प्रकार प्राप्त करें। इसी प्रकार हम (पूर्व-चित्तये) सब से पूर्व विद्यमान एवं पूर्ण ब्रह्म के ज्ञान के लिये (गोमत् ब्रह्म) वाणियों से युक्त ब्रह्म = वेद ज्ञान को (प्र नशीमहि) अच्छी प्रकार प्राप्त करें।

अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रभ ।
अहं सूर्य इवाजनि ॥ १० ॥ १० ॥

भा०—(अहं) मैं जिज्ञासु (इत्) ही (हि) अवश्य (ऋतस्य) वेदमय सत्य ज्ञान के (पितुः मेधाम्) पितावत् पालक प्रभु वा गुरु की (मेधाम्) ज्ञानवती बुद्धि को (परि जग्रभ) प्रेमपूर्वक ग्रहण करूं । और (अहं) मैं (सूर्यः इव) सूर्य के समान (अजनि) होऊं । इत्येकादशो वर्गः॥

अहं प्रत्नेन मन्मना गिरः शुम्भामि कण्ववत् ।
येनेन्द्रः शुष्ममिद्दधे ॥ ११ ॥

भा०—(येन) जिस ज्ञान से (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष या आत्मा (शुष्मम् इत् दधे) शत्रुशोषक बल को धारण करता है (अहं) मैं भी (प्रत्नेन) पुराने, सनातन, नित्य (मन्मना) मनन योग्य वेदमय या आत्मज्ञान से (कण्ववत्) उत्तम मेधावी पुरुष के समान (गिरः शुम्भामि) अपनी वाणियों को सुशोभित करूं ।

ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवुर्ऋषयो ये च तुष्टुवुः ।
ममेद्वर्धस्व सुष्टुतः ॥ १२ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्, अज्ञान नाशक प्रभो ! विद्वान् आचार्य (ये) जो यथार्थ ज्ञान के द्रष्टा न होकर (त्वाम् न तुष्टुवुः) तेरी स्तुति नहीं कर सकते हैं (च) और (ये च ऋषयः तुष्टुवुः) जो ज्ञानद्रष्टा होकर स्तुति करते हैं उनसे तू (सु-स्तुतः) उत्तम रीति से वर्णित और स्तुतियुक्त होकर (मम इत्) मुझे अवश्य (वर्धस्व) बढ़ा, ज्ञान से पूर्ण कर । ज्ञानदाता गुरुजन और ग्रहीता शिष्य जन दोनों ज्ञानदर्शी होने से ऋषि हैं । उनमें एक उपदेश करते हैं दूसरे श्रवण करते हैं । उनमें मैं चाहे शिष्यों में होऊं वा गुरुजनों में तू उत्तम रीति से स्तुतिपात्र होकर मेरे ज्ञान की सदा वृद्धि कर ।

यदस्य मन्युरध्वनीद्वि वृत्रं पर्वशो रुजन्।
अपः समुद्रमैरयत् ॥ १३ ॥

भा०—(यत्) जब (अस्य मन्युः) सूर्य या विद्युत् का प्रखर ताप वा कोप (वृत्रं) मेघ के (पर्वशः) पोरु २ (वि रुजन्) छिन्न भिन्न करता है तब (अपः समुद्रम् ऐरयत्) जलों को वह मेघ समुद्र की तरफ प्रेरित करता है उसी प्रकार (यत्) जब (मन्युः) ज्ञानमय प्रभु वा गुरु (अस्य) इस जीव शिष्य को (वृत्रं) विस्तृत ज्ञान का (पर्वशः विरुजन्) पोरु २, गांठ २ करके छिन्न भिन्न करता हुआ (अध्वनीत्) उपदेश करता है, तब वह (अपः) जीव अपने कर्म को–लिङ्ग शरीर को उस (समुद्रम्) आनन्दमय प्रभु के प्रति (हेरयत्) सञ्चालित करे।

नि शुष्ण इन्द्र धर्णसिं वज्रं जघन्थ दस्यवि।
वृषा ह्युग्र शृण्विषे ॥ १४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (उग्र) सर्व शक्तिमन्! हे दुष्टों को भय देने हारे! तू (वृषा हि) निश्चय से बड़ा बलवान्, सब सुखों की वर्षा करने वाला (शृण्विषे) सुना जाता है। तू ही (शुष्णे दस्यवि) प्रजाशोषक, कष्टदायी दुष्ट के ऊपर (धर्णसिं वज्रं) दृढ़ वज्र का (नि जघन्थ) प्रहार कर कि वह अपने दुष्ट कर्म से वर्जित हो।

न द्याव इन्द्रमोजसा नान्तरिक्षाणि वज्रिणम्।
न विव्यचन्त भूमयः ॥ १५ ॥ ११ ॥

भा०—(इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् (वज्रिणम्) सर्व शक्तिमान् प्रभु से (न द्यावः) न प्रकाशमान् सूर्य तारे, (न अन्तरिक्षाणि) न अन्तरिक्षगत वायु आदि और (न भूमयः) न भूमिस्थ जल, जन्तु आदि ही (ओजसा) बल पराक्रम से (वि व्यचन्त) अधिक हैं। अथवा (न द्यावः न अन्तरिक्षाणि न भूमयः इन्द्रं विव्यचन्त) न सब सूर्य, न सब आकाश, न सब अन्तरिक्ष और न सब भूमियां ही उस महान् अनन्त परमेश्वर को व्याप सकते हैं। इत्येकादशो वर्गः ॥

यस्ते इन्द्र महीरपः स्तभूयमान आशयत्।
नि तं पद्यासु शिश्नथः ॥ १६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यः) जो (ते) तेरी (महीः अपः) बड़ी विस्तृत व्यापक जगत् की प्रारम्भक प्रकृति की सूक्ष्म मात्राओं को (स्तभूयमानः) स्तब्ध, निष्क्रिय करता हुआ (आशयत्) सर्वत्र प्रसुप्त सा किये हुए था (तं) उसको तू (पद्यासु) अपनी गतियों वा शक्तिरूप क्रियाओं के बीच में (नि शिश्नथः) सर्वथा नष्ट कर देता है। इस प्रकार जड़ प्रकृति की जड़ता ही वृत्र है जो सृष्टि के पूर्व प्रकृति को शिथिल प्रसुप्त सा बनाये रखता है। इसी प्रकार जो मेघ जलों को थामे रहता है विद्युत् वा सूर्य उसको आहत करके गतियुक्त धाराओं में परिवर्त्तित करता है। इसी प्रकार जो शत्रु राजा की भूमियों और प्रजाओं को रोककर स्वयं सुख में सोवे उसको राजा (पद्यासु) पदाति सेनाओं के बल पर विनाश करें।

य इमे रोदसी मही समीची समजग्रभीत्।
तमोभिरिन्द्र तं गुहः ॥ १७ ॥

भा०—(यः) जो (इमे) इन (मही) बड़ी (रोदसी) आकाश भूमि (समीची) परस्पर अच्छी प्रकार मिली, दोनों स्त्री पुरुषों की श्रेणियों को भी मेघ वा रात्रि कालवत् (तमोभिः) अज्ञान-अन्धकारों से (सम् अजग्रभीत्) अच्छी प्रकार ग्रस लेता है, हे (इन्द्र) सूर्यवत् प्रकाशस्वरूप प्रभो ! तू (तं गुहः) उस अज्ञान, अविद्यामय दुखान्धकार को लुप्त कर, ज्ञान प्रकाश देकर सुखी कर।

य इन्द्र यतयस्त्वा भृगवो ये च तुष्टुवुः।
ममेदुग्र श्रुधी हवम् ॥ १८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् (ये यतयः) जो इन्द्रियों और मन का संयम करने वाले और (ये च भृगवः) जो पापों को ज्ञानाग्नि से दग्ध करने वाले या वेद वाणियों को धारण करने वाले तपस्वी और विद्वान् पुरुष

हैं वे सभी (त्वा) तेरी (तुष्टुवुः) सदा स्तुति करते हैं। तू उन सब की सुनता है। हे (उग्र) दुष्टों के प्रति भयंकर ! दण्डधर प्रभो ! (मम इत् हवम्) मेरी पुकार भी तु (श्रुधि) श्रवण कर।

इमास्त इन्द्र पृश्नयो घृतं दुहत आशिरम्।
एनामृतस्य पिप्युषीः ॥ १९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! सूर्यवत् तेजस्विन् ! (इमाः पृश्नयः) ये सूर्य, अन्तरिक्ष और भूमि आदि समस्त पदार्थ गौओं के समान हैं। (ते) तेरे अधीन होकर (एनम्) उस (आशिरम्) भोगने योग्य (घृतं) क्षरणशील दुग्धवत् जल अन्नादि को (दुहते) प्रदान करते हैं। ये सब (ऋतस्य) तेज, जल, अन्न, धन और ज्ञान की (पिप्युषीः) वृद्धि भी करते हैं। ज्ञान की वृद्धि करने से ऋषि लोग भी 'पृश्नि' कहाते हैं।

या इन्द्र प्रस्वस्त्वासा गर्भमचक्रिरन्।
परि धर्मेव सूर्यम् ॥ २० ॥ १२ ॥

भा०—(धर्मः इव सूर्यम्) धारण करने वाला मेघमय जल वा वायु जिस प्रकार 'सूर्य' के ताप को (गर्भं करोति) अपने भीतर ग्रहण करता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् प्रभो ! (याः प्रस्वः) जो जगत् में उत्पन्न करने वाली शक्तियें (आसा) अपने मुख से अर्थात् मुख्य बल से, वा स्तुति द्वारा (त्वा) तुझे ही (गर्भम् अचक्रिरन्) अपने भीतर शक्तिरूप में धारण करते हैं। इसी प्रकार मादाएं वा माताएं भी जो गर्भ में धारण करती हैं वे भी सूर्यवत् तेरे ही उत्पादक बल को अपने भीतर धारण करती हैं। अन्नादि रूप में भी तेरे ही उत्पन्न किये प्राणदायक जीवन को प्रजाएं मुख से शरीर धारक रूप में ग्रहण करती हैं। इति द्वादशो वर्गः ॥

त्वामिच्छवसस्पते कण्वा उक्थेन वावृधुः।
त्वां सुतास इन्दवः ॥ २१ ॥

भा०—हे (शवसः पते) बल के पालक ! (कण्वाः) विद्वान् लोग

(त्वाम् इत्) तुझे लक्ष्य कर (उक्थेन) स्तुति वचन कहकर ही (वावृधुः) स्वयं वृद्धि, समृद्धि को प्राप्त करते हैं। (इन्दवः) भक्ति रस से द्रवित होने वाले (सुतासः) उत्पन्न जीव एवं भक्तजन भी पुत्रवत् (त्वाम्) तुझ पिता को प्राप्त कर स्तुति से (त्वा वावृधुः) तुझे बढ़ाते, तेरी महिमा का गान करते और तुझे प्राप्त कर स्वयं वृद्धि को प्राप्त होते हैं।

तवेदिन्द्र प्रणीतिषुत प्रशस्तिरद्रिवः।
यज्ञो वितन्तसाय्यः॥ २२॥

भा०—हे (अद्रिवः) मेघों के स्वामी सूर्यवत्! अनेक शक्तियों के स्वामिन्! (उत) और (तव इत्) तेरी (प्रणीतिषु) उत्तम उत्कृष्ट नीतियों और रचनाओं में भी तेरी ही (प्रशस्तिः) उत्तम कीर्त्ति और शासन व्यवस्था विद्यमान है। तू ही (यज्ञः) सर्वोपास्य, सर्वदाता (वितन्तसाय्यः) अति विस्तृत महान्, सब से बड़ा है।

आ नं इन्द्र महीमिषं पुरं न दर्षि गोमतीम्।
उत प्रजां सुवीर्यम्॥ २३॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! प्रभो! आत्मन्! तू (नः) हमें (महीम्) बड़ी, पूज्य (इषम्) इच्छा, प्रेरणा, (गोमतीं पुरं न) गवादि सम्पदा युक्त नगरी के समान इन्द्रियों और वाणी से युक्त, पालन पोषण योग्य देह रूप पुरी को (उत) और (प्रजां) प्रजा, पुत्रादि और प्राणादि तथा (सु-वीर्यम्) उत्तम बलवीर्य (आ दर्षि) प्रदान करता है। (२) राजन्! तू हमें (महीम्) भूमि, अन्न, गवादि युक्त पुरी, प्रजा और उत्तम बल दे।

उत त्यदाश्वश्व्यं यदिन्द्र नाहुषीष्वा।
अग्रे विक्षु प्रदीदयत्॥ २४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् प्रभो! (यत्) जो (अग्रे) सबसे पहले (नाहुषीषु विक्षु) मानुषी प्रजाओं में (प्र दीदयत्) अच्छी प्रकार

प्रकाशित होता रहा (त्मन्) वह (आशु-अश्व्यम्) अति शीघ्र अश्व, मन, इन्द्रियादि को वश करने वाला मन, प्राण आदि आत्म सामर्थ्य हमें भी प्रदान कर।

अभि व्रजं न तत्निषे सूर उपाकचक्षसम्।
यदिन्द्र मृळयासि नः॥ २५॥ १३॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् प्रभो! राजन्! (यत्) जो तू (नः) हमें (मृडयासि) सुखी करता है वह तू (सूरः) सूर्य के समान तेजस्वी और प्रकाशस्वरूप होकर (उपाक-चक्षसम्) अति समीप अन्तःकरण के भीतर दर्शनीय वा गुरु द्वारा समीप रहकर उपदेश करने योग्य (व्रजं न) शरण योग्य वा गमनयोग्य मार्ग के समान ज्ञान मार्ग को (अभि तत्निषे) विस्तार करता है। इति त्रयोदशो वर्गः॥

यदङ्ग तविषीयस इन्द्र प्र राजसि क्षितीः।
महाँ अपार ओजसा॥ २६॥

भा०—(अङ्ग इन्द्र) हे ऐश्वर्यवन्! हे दुष्टों के दलन करने वाले! (यत्) जो तू स्वयं ही (तविषीयसे) बलवती सेना के समान आचरण करता है तू स्वयं (क्षितीः) सब वसी प्रजाओं पर (प्र राजसि) उत्तम राजा के समान है। सचमुच तू (ओजसा) बल पराक्रम में (महान्) बड़ा और (अपारः) अपार है, तेरा अन्त नहीं। (२) राजा स्वयं (तवी-षीयसे) सेना की कामना करता है, राजा बनता है।

तं त्वा हविष्मतीर्विश उप ब्रुवत ऊतये।
उरुज्रयसमिन्दुभिः॥ २७॥

भा०—हे प्रभो! राजन्! (हविष्मतीः विशः) उत्तम अन्न आदि देने और उपभोग करने योग्य ऐश्वर्यों से सम्पन्न प्रजाएं (इन्दुभिः) ऐश्वर्यों सहित (तं) उस (उरुज्रयसं त्वा) महान् बल पराक्रम वाले तुझ को

(उप ऊतये ब्रुवते) प्राप्त कर अपनी रक्षा के लिये तुझ से प्रार्थना करती हैं ।

उपह्वरे गिरीणां सङ्गथे च नदीनाम् ।
धिया विप्रो अजायत ॥ २८ ॥

भा०—(गिरीणाम् उपह्वरे) पर्वतों के समीप, उनके सुरक्षित स्थान में और (नदीनां च संगथे) नदियों के संगम स्थान में (धिया) उत्तम कर्म और बुद्धि के योग तथा ध्यान के अभ्यास से (विप्रः अजायत) मनुष्य विद्वान् बुद्धिमान् होजाता है । उसी प्रकार विद्यार्थी जिज्ञासु (गिरीणाम् उपह्वरे) ज्ञान के उपदेष्टा गुरुजनों के समीप और (नदीनां च संगथे) ज्ञानोपदेष्टा तथा ज्ञान सम्पन्न जनों के सत्संग में रहकर (धिया) उत्तम कर्म और बुद्धि के योग से (विप्रः) विविध विद्याओं से पूर्ण विद्वान् (अजायत) होता है ।

अतः समुद्रमुद्वतश्चिकित्वाँ अव पश्यति ।
यतो विपान एजति ॥ २९ ॥

भा०—(यतः) जिस कारण से (विपानः) विशेष रूप से पालक वा व्यापक प्रभु (एजति) सब को चला रहा है, (अतः) इस कारण ही वह प्रभु (चिकित्वान्) सर्वज्ञ है और वह सूर्य के समान (उद्वतः) ऊपर के लोकों को और (समुद्रम्) महा सागरवत् प्रवाह से अनादि अनन्त जगत् सर्ग को भी (अव पश्यति) अपने अधीन देखता है ।

आदित्प्रत्नस्य रेतसो ज्योतिष्पश्यन्ति वासरम् ।
परो यदिध्यते दिवा ॥ ३० । १४ ॥

भा०—(यत्) जो (ज्योतिः) तेज वा प्रकाश (दिवा) दिन के समय सूर्य के समान स्वाभाविक रूप (परः) काल और देश की सब मर्यादाओं के परे, दूर भी (इध्यते) प्रकाशित होता है (प्रत्नस्य) सनातन, नित्य (रेतसः) सब के सञ्चालक, जल वा वीर्यवत् सब के उत्पादक

प्रभु की उस (वासरम्) सब को बसाने वाली ज्योति को (भाव इव) योग साधनादि के पश्चात् योगीजन (पश्यन्ति) देखा करते हैं।

कण्वास इन्द्र ते मतिं विश्वे वर्धन्ति पौंस्यम्।

उतो शविष्ठ वृष्ण्यम् ॥ ३१ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (शविष्ठ) महान् शक्तिमन् ! (विश्वे) समस्त (कण्वासः) बुद्धिमान् पुरुष (ते मतिं) तेरे दिये ज्ञान को (ते पौंस्यं) तेरे दिये पौरुष युक्त बल, पराक्रम (उतो) और (ते वृष्ण्यम्) तेरे दिये सुखवर्षी, बलवीर्य, धन धान्यादि को भी (वर्धन्ति) बढ़ाते हैं।

इमां म इन्द्र सुष्टुतिं जुषस्व प्र सु मामव।

उत प्र वर्धया मतिम् ॥ ३२ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! (मे) मेरी (इमां) इस (सुस्तुतिम्) उत्तम स्तुति प्रार्थना को (जुषस्व) प्रेम से स्वीकार कर तू (मा प्र सु अव) मुझे उत्तम रीति से, सुख से पाल, मेरी रक्षा कर, मुझे दुःखों और पापों से बचा। (उत) और (मतिम् प्र वर्धय) मेरे ज्ञान, बुद्धि की वृद्धि कर।

उत ब्रह्मण्या वयं तुभ्यं प्रवृद्ध वज्रिवः।

विप्रा अतक्ष्म जीवसे ॥ ३३ ॥

भा०—(उत) और हे (प्रवृद्ध) सब से महान् ! हे (वज्रिवः) सर्व शक्तिमन् ! वा समस्त शक्तिमानों के भी स्वामिन् ! (वयं विप्राः) हम सब विद्वान् लोग मिलकर (तुभ्यं ब्रह्मण्या) तेरे दिये, तेरे उपदेश किये ब्रह्म, वेदोपदिष्ट ज्ञानों और कर्मों को (जीवसे) अपने सुखमय जीवन की वृद्धि के लिये (अतक्ष्म) करें और (वयं ब्रह्मण्या जीवसे अतक्ष्म) हम जीवन रक्षा के लिये तेरे दिये धनों और अन्नों को उत्पन्न करें।

अभि कण्वा अनूषतापो न प्रवता यतीः ।
इन्द्रं वनन्वती मतिः ॥ ३४ ॥

भा०—(कण्वाः) विद्वान् मेधावी पुरुष (इन्द्रं) उस सर्वैश्वर्यवान् प्रभु परमात्मा को (अभि अनूषत) लक्ष्य करके उसकी स्तुति करते हैं । (यतीः आपः प्रवता न) बहती जलधाराएं जिस प्रकार स्वभावतः नीचे की ओर जाने वाले मार्ग से ही बहती हैं उसी प्रकार (यतीः) यमनियमों का पालन करने वाले इन्द्रिय और मन के वशीकर्त्ता (आपः) आप्तजन भी (प्रवता) उत्तम कर्म या मार्ग से (इन्द्रम् अभि अनूषत) इन्द्र, प्रभु को लक्ष्य कर उसके समक्ष झुकते हैं । और (मतिः) उनकी बुद्धि और वाणी भी स्वाभाविक रूप से (इन्द्रं वनन्वती) ऐश्वर्यवान् प्रभु का भजन करती हुई उसकी ही स्तुति करती है ।

इन्द्रमुक्थानि वावृधुः समुद्रमिव सिन्धवः ।
अनुत्तमन्युमजरम् ॥ ३५ ॥ १५ ॥

भा०—(सिन्धवः समुद्रम् इव) जिस प्रकार नदियें समुद्र को बढ़ाती हैं उसी प्रकार (उक्थानि) उत्तम वेदमन्त्र (समुद्रम्) आनन्द के सागर और (अनुत्त-मन्युम्) सर्वोपरि ज्ञान और पराक्रम से युक्त (अजरम्) जरारहित, अविनाशी (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् प्रभु को (वावृधुः) बढ़ाते हैं, उस की महिमा का विस्तार करते हैं ।

आ नो याहि परावतो हरिभ्यां हर्यताभ्याम् ।
इममिन्द्र सुतं पिब ॥ ३६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो स्वामिन् ! (हरिभ्यां परावतः) दो अश्वों से जिस प्रकार कोई स्वामी अतिशीघ्र दूर देश से भी प्राप्त होता है उसी प्रकार तू (हर्यताभ्याम्) अत्यन्त कान्तियुक्त, मनोहर (हरिभ्याम्) सब दुःखों के हरने वाले चिन्मय और आनन्दमय रूपों से ज्ञानमय और क्रियामय रूपों से (परावतः) दृश्यमान जगत् की सीमा से कहीं अन्य

अन्य दशा से भी (नः आयाहि) हमें प्राप्त हो, हमें प्रकट हो। और हे प्रभो! (इमं सुतं पिब) उत्पन्न हुए इस जीव संसार को पुत्रवत् पालन कर वा ओषधि रसवत् पान कर, अपने में एकरस करले।

त्वामिद्वृत्रहन्तम जनासो वृक्तबर्हिषः।
हवन्ते वाजसातये ॥ ३७ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्तम) आत्मा को घेर कर बैठे अज्ञान और नाना दुःखजनक वासना-पुञ्जों को नाश करने में सर्वोत्तम! (वृक्त-बर्हिषः) कुशादि को छेदन कर यज्ञ करने वालों के समान वासनामूलों को उच्छेद कर तेरी उपासना करने वाले जीवगण (वाज-सातये) बल, अन्न, और ज्ञानैश्वर्य को प्राप्त करने के लिये (त्वाम् इत् हवन्ते) तुझे ही बुलाते, तुझे उद्देश्य करके ही आहुति देते, यज्ञ करते हैं।

अनु त्वा रोदसी उभे चक्रं न वर्त्येतशम्।
अनु सुवानास इन्दवः ॥ ३८ ॥

भा०—(एतशं चक्रं न) जिस प्रकार घोड़े के पीछे २ रथ चक्र जाता है उसी प्रकार (उभे रोदसी) दोनों आकाश और पृथिवी (त्वा अनु-वर्त्ति) तेरे ही पीछे २ चल रहे हैं। वे तेरे चलाये चलते हैं। उसी प्रकार (सुवानासः) ऐश्वर्यशील या उत्पन्न होने वाले (इन्दवः) कान्तिमान् सूर्यादि वा जीवगण भी (त्वा अनु) तेरे ही अनुकूल तेरी व्यवस्था में चलते हैं।

मन्दस्वा सु स्वर्णर उतेन्द्र शर्यणावति।
मत्स्वा विवस्वतो मती ॥ ३९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! प्रभो! तू (स्वःनरे) सुखमय परम पद को लक्ष्य कर अपने को लेजाने वाले (उत) और (शर्यणावति) पापादि को नाश करने वाली बुद्धि से युक्त पुरुष में (सु मन्दस्व) अच्छी प्रकार आनन्द उत्पन्न कर। (विवस्वतः) विशेष रूप में तेरी परिचर्या करने वाले

पुरुष की (मती) मनन करने वाली बुद्धि में (मत्स्व) आनन्द उत्पन्न कर। अथवा—हे (इन्द्र) आत्मन्! तू (स्वः-नरे) परम सुख प्राप्त कराने और (शर्यणावति) सब संकटों को दूर करने वाले परम शक्तिवान् प्रभु में आनन्द लाभ कर। तू (विवस्वतः) विशेष रूप से समस्त संसार में बसे प्रभु की (मती) मनन करने वाली बुद्धि में (मत्स्व) आनन्द सुख अनुभव कर उसी में रम।

वावृधान उप द्यवि वृषा वज्र्यरोरवीत्।
वृत्रहा सोमपातमः ॥ ४० ॥ १६ ॥

भा०—जिस प्रकार (उप द्यवि वावृधानः वृषा वज्री अरोरवीत्) आकाश में बढ़ता हुआ वर्षणशील, विद्युत्-मय मेघ गर्जता है वह (वृत्र-हा) जल को प्राप्त कर (सोम-पातमः) ओषधि गण का सर्वोत्तम पालक होता है उसी प्रकार (वृषा) समस्त सुखों की वर्षा करने वाला, बलवान्, समस्त संसार का प्रबन्धक, (वज्री) सर्वशक्तिमान् अज्ञान पापादि को वर्जन करने वाले ज्ञान बल से सम्पन्न, (वृत्र-हा) विघ्न और आवरणकारी अज्ञान का नाशक (सोम-पातमः) ऐश्वर्यों, जगदुत्पादक बलों और समस्त जीवों का सर्वोपरि पालक प्रभु परमेश्वर (द्यवि) तेजोमय, ज्ञानमय, स्वरूप में (उप) हृदय के अति निकट रहकर (वावृधानः) अपनी महान् महिमा को प्रकट करता हुआ (अरोरवीत्) ज्ञान का उपदेश करता है। इति षोडशो वर्गः॥

ऋषिर्हि पूर्वजा अस्येक ईशान ओजसा।
इन्द्र चोष्कूयसे वसु ॥ ४१ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् प्रभो! तू (हि) निश्चय से (ऋषिः) समस्त ज्ञानों का द्रष्टा, (पूर्वजाः) सबसे पूर्व विद्यमान रहकर सब को उत्पन्न करने वाला, (ओजसा) बल पराक्रम से (एकः ईशानः) एक अद्वितीय सबका ईश्वर है, तू ही (वसु) बसे समस्त जीव को (चोष्कूयसे) अपने वश करता, वा समस्त ऐश्वर्य प्रदान करता है।

अस्माकं त्वा सुताँ उप वीतपृष्ठा अभि प्रयः ।
शतं वहन्तु हरयः ॥ ४२ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! (अस्माकं) हम में से (शतं हरयः) अनेक मनुष्य (वीत-पृष्ठाः) कान्तियुक्त स्वरूप वाले तेजस्वी होकर (त्वा उप) तेरी उपासना करते हुए (सुतान्) नाना ऐश्वर्यों और पुत्रों तथा (प्रयः अभि) अन्न, ज्ञान आदि (अभि वहन्तु) प्राप्त करें और अन्यों को करावें ।

इमां सु पूर्व्यां धियं मधोर्घृतस्य पिप्युषीम् ।
कण्वा उक्थेन वावृधुः ॥ ४३ ॥

भा०—(कण्वाः) विद्वान् पुरुष (इमां) इस (पूर्व्याम्) पूर्व पुरुषों की, वा 'पूर्व' अर्थात् पूर्ण पुरुष की (मधोः घृतस्य) मधुर ज्ञान को बढ़ाने वाली, (धियं) बुद्धि और कर्म को (उक्थेन) वेदमन्त्र से (वावृधुः) बढ़ावें, उसे अधिक समृद्ध करें ।

इन्द्रमिद्विमहीनां मेधे वृणीत मर्त्यः ।
इन्द्रं सनिष्युरूतये ॥ ४४ ॥

भा०—(विमहीनां) विशेष रूप से बड़ी शक्तियों के बीच में भी (मेधे) पवित्र यज्ञ में (मर्त्यः) मनुष्य (इन्द्रम् इत्) सूर्य, वायु, जल आदि उस परमैश्वर्यवान् प्रभु को ही (वृणीत) उपास्य जाने । (सनिष्युः) दान देने की कामना करने वाला, पुरुष भी (ऊतये) रक्षा के लिये (इन्द्रम् इत् वृणीत) उस ऐश्वर्यवान् परमेश्वर को ही वरण करे । (२) इसी प्रकार (मर्त्यः) समस्त मनुष्य (मेधे) संग्राम के अवसर पर (विमहीनाम्) विशेष विविध भूमियों के (इन्द्रं) परमैश्वर्यवान् राजा को ही मुख्य पद पर धरें । और (सनिष्युः) ऐश्वर्य और वेतनादि का इच्छुक जन भी (ऊतये) रक्षार्थ उसी प्रकार ऐश्वर्यवान् को प्राप्त करे ।

अर्वाञ्चं त्वा पुरुष्टुत प्रियमेधस्तुता हरी।
सोमपेयाय वक्षतः ॥ ४५ ॥

भा०—हे (पुरुष्टुत) बहुतों द्वारा स्तुति करने योग्य, बहुतों से प्रार्थित, उपासित (प्रियमेधस्तुता) यज्ञ, उपासनादि के प्रेमी पुरुषों द्वारा स्तुत या उपदिष्ट (हरी) ज्ञाननिष्ठ और कर्मनिष्ठ दोनों (सोमपेयाय) ओषधि रसवत् तेरे ऐश्वर्यमय परमानन्द रस का पान करने के लिये (अर्वाञ्च) अति समीप प्राप्त, साक्षात् (त्वा वक्षतः) तुझे ही अपने हृदय में धारण करते हैं। (२) युद्ध-प्रियों से प्रशंसित 'अश्व' अर्थात् राष्ट्र की रक्षार्थ हे राजन्! (अर्वाञ्चं त्वा वक्षतः) घोड़ों से जाने वाले तुझ को रथ में वहन करते हैं।

शतमहं तिरिन्दिरे सहस्रं पर्शावा ददे।
राधांसि याद्वानाम् ॥ ४६ ॥

भा०—(अहं) मैं (याद्वानां) मनुष्यों के (शतं सहस्रं राधांसि) सौ, और हजार भी ऐश्वर्य (तिरिन्दिरे) उस तीर्णतम, सर्वोपरि ऐश्वर्यवान्, (पर्शौ) सर्वश्रेष्ठ सर्वस्रष्टा, सर्वव्यापक प्रभु के बीच में ही (आददे) प्राप्त करता हूं। युवा स्यात् साधु युवाध्यायकः। आशिष्ठो द्रढिष्ठो बलिष्ठः तस्येयं पृथिवी सर्वा वित्तस्य पूर्णा स्यात् स एको मानुष आनन्दः॥ ते ये शतं मानुषा आनन्दाः स एको मनुष्यगन्धर्वाणामानन्दः........ते ये शतं प्रजापतेरानन्दाः स एको ब्रह्मण आनन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। तैति० उप० ब्रह्मानन्द वल्ली ८ ॥

(२) इसी प्रकार (याद्वानां शतं सहस्रं राधांसि) यत्नशील परिश्रमी मनुष्यों के सैकड़ों सहस्रों ऐश्वर्य (पर्शौ) परशुवत् शत्रुछेदन करने में समर्थ (तिरिन्दिरे) शत्रुहन्ता राजा के अधीन ही मैं प्रजाजन प्राप्त कर सकता हूं।

तिरिन्दिरः—तिरः तीर्णतमः इन्दिरः इन्द्रः। 'पर्शुः'—पशुः पदयतेः ।

रकारोपजनः । परशुः । अकारलोपः । पर्शुः स्पृशतेः । संस्पृष्टा पृष्ठदेशम् । निरु० ४ । १ । ४ ॥

त्रीणि॑ श॒तान्यर्व॑तां स॒हस्रा॒ दश॒ गोना॑म् ।
द॒दुष्प॒ज्राय॒ साम्ने॑ ॥ ४७ ॥

भा०—वह परमेश्वर (पज्राय) प्रार्थना वा ज्ञानार्जन करने वाले, (साम्ने) सब के प्रति समान बुद्धि करने वाले समदर्शी पुरुष को (अर्वतां त्रीणि शतानि) तीन सौ गतिशील वर्षों की आयु और (गोनां दशसहस्रा) वेद वाणियों के दश सहस्र मन्त्र, विद्वान् लोग (ददुः) प्रदान करते हैं ।

उदा॑नट् क॒कुहो॒ दिव॒मुष्ट्रा॑ञ्चतु॒र्युजो॒ दद॑त् ।
श्रव॑सा॒ याद्वं॒ जन॑म् ॥ ४८ ॥ १७ ॥

भा०—(श्रवसा) श्रवण करने योग्य ज्ञान तथा अन्न के निमित्त (याद्वं जनम्) यत्नशील मनुष्य को (ककुहः उद् आनट्) सर्वश्रेष्ठ प्रभु उन्नत करता है । और वह (चतुर्युजः) धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों के साथ मनोयोग करने वाले (उष्ट्रान्) नाना पदार्थों की कामना करने वाले लोगों को अथवा अन्तःकरण की चारों वृत्तियों का विरोध करने वाले, कर्मवीजों को ज्ञानाग्नि से दहन करने वालों को भी (दिवं ददत्) ज्ञानप्रकाश प्रदान करता हुआ (ककुहः) सर्वश्रेष्ठ प्रभु (श्रवसा उदानट्) ज्ञान द्वारा ही उन्नत करता है । तुर्वशः चतुर्वशः चतुरो धर्मार्थकाममोक्षान् कामयन्ते इति तुर्वशाः मनुष्याः । त एव चतुर्युज उष्ट्राः । अथवा—चतुरः अन्तःकरणवृत्तीन् युञ्जते समादधति निरुन्धन्ति, इति चतुर्युजः । ज्ञानाग्निना कर्माणि उषन्ति दहन्ति ते उष्ट्राः । इति सप्तदशो वर्गः ॥

[७]

पुनर्वत्सः काण्व ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः—१, ३—५, ७—१३, १७—१९, २१, २८, ३०—३२, ३४ गायत्री । २, ६, १४, १६, २०,

२२—२७, ३५, ३६ निचृद्गायत्री । १९ पादनिचृद्गायत्री । २६, ३३ आर्षी विराड् गायत्री षट्त्रिंशदृचं सूक्तम् ॥

प्र यद्वस्त्रिष्टुभमिषं मरुतो विप्रो अक्षरत् ।
वि पर्वतेषु राजथ ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार जब (मरुतः पर्वतेषु वि राजथ) वायुगण मेघों में विशेष विद्युत् दीप्ति उत्पन्न करते हैं तब (विप्रः इषं अक्षरत्) रूप से विशेष जल से पूर्ण मेघ वृष्टि को (त्रिष्टुभम्) पृथिवी के प्रति सेचन करता है । इसी प्रकार हे (मरुतः) प्राणो ! (यत्) जब (विप्रः) पुरुष (त्रिष्टुभम्) तीन कालों में (इषं) अन्न रस को (प्र अक्षरत्) अच्छी प्रकार देह में सेचन करता है तब हे प्राणो ! तुम (पर्वतेषु) पर्व अर्थात् पोरुओं से युक्त देह के अंगों में (वि राजथ) विराजते हो । अथवा— हे (मरुतः) वीर मनुष्यो ! (विप्रः) ज्ञान और ऐश्वर्य को पूर्ण करने वाला विद्वान् राजा (वः) आप लोगों की (त्रिष्टुभम् इषम्) क्षात्रबल से युक्त सेना को (प्र अक्षरत्) आगे बढ़ाता है तब आप लोग (पर्वतेषु) पर्वतों अर्थात् पर्व पर्व, वा खण्ड २ युक्त सैन्य दलों में विशेष रूप से सुशोभित होओ । त्रिष्टुप्—त्रिष्टुप् इन्द्रस्य वज्रः । ऐ० २ । २ । इन्द्रस्त्रिष्टुप् । श० ६ । ६ । २ । ७ ॥ इन्द्रियं वै त्रिष्टुप् । तै० ३ । ३ । ९ । ८ ॥ वीर्यं वै त्रिष्टुप् । ऐ० १ । २ ॥ ओजो वा इन्द्रियं, वीर्यं वै त्रिष्टुप् । ऐ० १ । ५ ॥ उरः त्रिष्टुप् । श० ८ । ६ । २ । ७ ॥ क्षत्रं वै त्रिष्टुप् । कौ० ३ । ५ ॥ त्रिष्टुप् हि इयं पृथिवी ॥ श० २ । २ । १० ॥

यदङ्ग तविषीयवो यामं शुभ्रा अचिध्वम् ।
नि पर्वता अहासत ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार जब (तविषीयवः यामं चिन्वन्ति) बलयुक्त वेगवान् वायुगण अपने जल संयमन करने वाले, वायु सम्बन्धी बल को एक साथ लगा देते हैं तब (पर्वताः नि अहासत) मेघ निश्चित दिशा में

गति करते या निम्न दिशा की ओर आ झुकते हैं। उसी प्रकार (अङ्ग) हे (तविषीयवः) बलवती सेना बनाने के इच्छुक वीर पुरुषो ! आप लोग (यत्) जब (शुभ्रा) शस्त्रादि से खूब सजधज कर (यामं) नियामक सैन्य बल को (अचिध्वम्) सञ्चित करलो तब (पर्वताः) नाना पर्वों, खण्डों से युक्त सैन्यबल के अध्यक्ष जन (नि अहासत) नियमपूर्वक प्रयाण करें।

उदीरयन्त वायुभिर्वाश्रासः पृश्निमातरः ।
धुक्षन्त पिप्युषीमिषम् ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार (पृश्नि-मातरः) प्रबल धारा वर्षण करने वाली नीहारिका से उत्पन्न (वाश्रासः) गर्जनाशील मेघ (वायुभिः इव ईर-यन्त) वायुओं के साथ उठते हैं तब वे (पिप्युषीम् इषं धुक्षन्त) अन्न वनस्पति-आदि को बढ़ाने वाली जलवृष्टि को प्रदान करते हैं। इसी प्रकार (पृश्नि-मातरः) माता भूमि विद्वान् गुरुओं और विदुषी माताओं के पुत्र (वाश्रासः) उपदेष्टा पुरुष (वायुभिः) वायुवत् बलवान् प्राणों और नेता पुरुषों से युक्त होकर (उद् ईरयन्ते) ऊपर को उठते हैं तब वे (पिप्युषीन्) राष्ट्र को बढ़ाने वाली (इषम्) सेना को (धुक्षन्त) पूर्ण करते हैं। वा राष्ट्र से वृद्धिकारक बल और अन्न का दोहन करते हैं। अर्थात् प्रयाण के पूर्व अन्न और बल का सञ्चय करते हैं।

वपन्ति मरुतो मिहं प्र वेपयन्ति पर्वतान् ।
यद्यामं यान्ति वायुभिः ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार (मरुतः यद् यामं वायुभिः यान्ति) सजल वायुएं जलस्थनीय वायुओं के साथ आकाश मार्ग से जाते हैं तब वे (पर्वतान् प्रवेपयन्ति) मेघों को भी गति देते और (मिहं वपन्ति) वर्षा को भी बीजवपनवत् भूमि पर डालते हैं। इसी प्रकार (मरुतः) प्रचण्ड वात के समान वीर नायक गण (यत्) जब (वायुभिः) तीव्र वायुवत्

बलवान् सैनिकों के साथ (यामं) प्रयाण मार्ग में गमन करते हैं तब वे (मिहं वपन्ति) शस्त्र वृष्टि करते हैं, और (पर्वतान्) पर्वतवत् दृढ़ शत्रुओं को भी (प्रवेपयन्ति) खूब कंपा देते हैं, विचलित कर देते हैं। विशेष वृष्टि लाने वाली मानसून वायुएं ही वेद में 'मरुतः' कहे गये हैं। (२) इसी प्रकार (मरुतः) मर्त्य युवा मनुष्य (यत्) जब (वायुभिः) गन्धयुक्त भूमिवत् धर्म दाराओं के साथ (यामं यन्ति) उपयम अर्थात् विवाह बन्धन को प्राप्त कर लेते हैं तब वे (पर्वतान्) प्रसन्न करने और पालने योग्य आदरणीय जनों को (प्रवेपयन्ति) हर्षित करते हैं और (मिहं वपन्ति) निषेक द्वारा उत्तम सन्तानों का वपन करते हैं।

नि यद्यामा॑य वो गिरिर्नि सिन्ध॑वो विध॑र्मणे।
म॒हे शुष्मा॑य येमि॒रे ॥ ५ ॥ १८ ॥

भा०—वृष्टि लाने वाले सजल वायुगण को (यामाय) बांधने, रोकने के लिये जिस प्रकार (गिरिः = गिरयः) पर्वत या मेघ और (वि-धर्मणे) उनको विशेष रूप से धारण करने के लिये (महे शुष्माय) बड़े वैद्युतिक आदि बल उत्पन्न करने के लिये (सिन्धवः) नदियें, सागर और नहरें (नियम्यन्ते) विशेष रूप से बनायी जाती हैं उसी प्रकार हे (मरुतः) वीरो! विद्वानो! (वः यामाय) आप लोगों के नियन्त्रण, संयम और शिक्षण के लिये (गिरयः) उपदेष्टा गुरुजन नियत किये जावें। और (विधर्मणे) विशेष रूप से आप लोगों को दृढ़ रखने और (महे शुष्माय) बड़े आप लोगों की भारी बलवृद्धि के लिये (सिन्धवः नियेमिरे) वेगवान् अश्वों को भी नियम में व्यवस्थित किया जाय। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

यु॒ष्माँ उ॒ नक्त॑मू॒तये॑ यु॒ष्मान्दिवा॑ हवामहे।
यु॒ष्मान्प्र॑य॒त्य॑ध्व॒रे ॥ ६ ॥

भा०—हे विद्वान् और वीर पुरुषो! (नक्तम्) रात्रि के समय (ऊतये) रक्षा के लिये (युष्मान् उ हवामहे) आप लोगों से ही हम प्रार्थना

करते हैं। हे वीर पुरुषो! (युष्मान्) तुम्हें हम (दिवा ऊतये हवामहे) दिन के समय रक्षा करने के लिये प्रार्थना करते हैं। और (अध्वरे प्रयति) यज्ञ के अवसर में (ऊतये हवामहे) रक्षा के लिये बुलावें।

उदु त्ये अ॑रु॒णप्स॑वश्चि॒त्रा यामे॑भिरीरते।
वा॒श्रा अधि॑ ष्णुना॑ दि॒वः ॥ ७ ॥

भा०—जिस प्रकार जलवर्षी वायुगण, (वाश्राः) शब्द करते हुए (अरुणप्सवः) सूर्य की दीप्तियों को मानो खाजाते हैं, उनको अपने में विलीन कर लेते हैं, (चित्राः) अद्भुत रूप के होकर (यामेभिः) वायु के मार्गों से (उत् ईरते) ऊपर उठकर आकाश से जाते हैं वे (ष्णुना अधि दिवः) पर्वत शिखर के साथ २ आकाश में चले जाते हैं उसी प्रकार (त्ये मरुतः) वे विद्वान् और वीर मनुष्य भी (अरुणप्सवः) कान्तिदायक तेजोवर्धक पदार्थ का भोजन करने वाले हों, वे (चित्राः) अद्भुत कर्म करने वाले (यामेभिः) रथों से वा उत्तम नियम व्यवस्थाओं से (उत् ईरते) उठें, उन्नति करें, शत्रु पर जा चढ़ें। वे (वाश्राः) उपदेश और गर्जन करते हुए (स्नुना) उपभोग्य ऐश्वर्य के साथ ही (दिवः अधि) भूमि पर अधिकार करें।

सृ॒जन्ति॑ र॒श्मिमोज॑सा॒ पन्थां॒ सूर्या॑य॒ यात॑वे।
ते भा॒नुभि॒र्वि त॑स्थिरे ॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार वायुगण (ओजसा) अपने पराक्रम से (यातवे सूर्याय) गमन करते सूर्य के (पन्थाम्) मार्ग को प्राप्त कर स्वयं (रश्मिं सृजन्ति) दीप्ति को उत्पन्न करते और (भानुभिः वि तस्थिरे) नाना विद्युत् कान्तियों से विराजते हैं उसी प्रकार (ते) वे वीर पुरुष भी (भानुभिः वि तस्थिरे) नाना कान्तियों से विराजें और (यातवे सूर्याय) प्रयाण करने वाले तेजस्वी पुरुष के (ओजसा) बल पराक्रम से (रश्मिम् पन्थां सृजन्ति) व्यापक, विस्तृत मार्ग बना देते हैं।

इमां मे मरुतो गिरमिमं स्तोममृभुक्षणः।
इमं मे वनता हवम् ॥ ९ ॥

भा०—हे (मरुतः) वीर पुरुषो ! हे (ऋभुक्षणः) बड़े बलशाली पुरुषो ! आप लोग (मे इमां गिरम्) मेरी इस वाणी को और (इमां स्तोमं) इस स्तुत्य वचन को और (मे इमं हवम्) मेरे इस ग्राह्य उपहार वेतनादि को भी (वनत) सेवन करो ।

त्रीणि सरांसि पृश्नयो दुदुह्रे वज्रिणे मधु ।
उत्सं कवन्धमुद्रिणम् ॥ १० ॥ १९ ॥

भा०—जिस प्रकार (पृश्नयः) जल वर्षण करने वाले सूर्य के रश्मि गण (वज्रिणे) वज्र अर्थात् विद्युत् से युक्त मेघ के लिये (त्रीणि सरांसि) तीनों तालावों के तुल्य भूमि, अन्तरिक्ष और बृहदाकाश तीनों से (मधु दुदुह्रे) प्रभूत जल ग्रहण करते हैं । वे ही (उत्सं) ऊपर से बहने वाले (उद्रिणम्) जल से युक्त मेघ से (कवन्धम्) जल को भी (दुदुह्रे) प्रदान करते हैं । उसी प्रकार (पृश्नयः) विद्वान् जन (वज्रिणे) शक्ति-शाली राष्ट्रपति के लिये (त्रीणि सरांसि मधु दुदुह्रे) तीनों लोकों से मधुर ऐश्वर्य को प्राप्त करें । और उत्तम मेघ, जलाशय तथा (उत्सं) ऊपर से बहने वाले झरने आदि से राष्ट्र के लिये (कवन्धम्) धारावद्ध जल को भी प्राप्त करें, उससे यन्त्र, फ़ौवारे आदि चला दें । अन्नं वै देवाः पृश्नीति वदन्ति । ताण्ड्य० । इयं वै पृश्निः । पृश्नयो ऋषयः ॥ इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

मरुतो यद्ध वो दिवः सुम्नायन्तो हवामहे ।
आ तू न उप गन्तन ॥ ११ ॥

भा०—हे (मरुतः) जलवर्षी वायु गणों के समान विद्वान् एवं वीर जनो ! हम लोग (यत् ह वः) जब भी आप लोगों को (सुम्नायन्तः) अपना सुख एवं उत्तम ज्ञान चाहते हुए (हवामहे) आदर से प्रार्थना

करें (आ तु) अनन्तर ही आप लोग (नः उप गन्तन) आप हमारे समीप प्राप्त हुआ करें। रक्षेच्छुक प्रजाजनों के लिये सिपाही जनों को तुरत जाना चाहिये।

यूयं हि ष्ठा सुदानवो रुद्रा ऋभुक्षणो दमे।
उत प्रचेतसो मदे॥ १२॥

भा०—हे (सुदानवः) शोभन दानशील एवं शत्रुओं का अच्छी प्रकार खण्डन करने वाले (रुद्राः) दुष्टों को रुलाने वाले! (ऋभुक्षणः) सत्य का विवेचन 'ऋत' उत्तम अन्न, जल का ज्ञानवत् उपभोग और पालन करने वाले वीर, विद्वान् पुरुषो! हे (प्रचेतसः) उत्कृष्ट ज्ञान और उत्तम चित्त वाले सदाशय पुरुषो! (यूयं हि) आप लोग अवश्य (दमे) गृह में, शत्रुदमन के कार्य में (उत) और (मदे) समस्त प्रजाजनों को ज्ञान, अन्नादि से तृप्त, सुखी और आनन्दित करने में (स्थ) दत्तचित्त रहो।

आ नो रयिं मदच्युतं पुरुक्षुं विश्वधायसम्।
इयर्ता मरुतो दिवः॥ १३॥

भा०—जिस प्रकार जलवर्षी वायुगण (मद-च्युतं) तृप्तिदायक- (पुरु-क्षुं) बहुत से अन्न युक्त (विश्व-धायसम् रयिम्) विश्व की पोषक सम्पदा (दिवः) आकाश वा अन्तरिक्ष से प्रदान करते हैं उसी प्रकार हे (मरुतः) वीर बलवान् पुरुषो! आप लोग भी (नः) हमें (मद-च्युतम्) आनन्ददायक (पुरु-क्षुं) बहुतों के निवास योग्य (विश्व-धायसम्) समस्त प्रजाजनों का पालन पोषण करने में समर्थ (रयिम्) ऐश्वर्य (दिवः) इस भूमि से (आ इयर्त्त) प्राप्त कराओ।

अधीव यद्गिरीणां यामं शुभ्रा अचिध्वम्।
सुवानैर्मन्दध्व इन्दुभिः॥ १४॥

भा०—जिस प्रकार जलवर्षी वायुगण (गिरीणाम् अधि) पर्वतों और मेघों के बीच में भी (शुभ्राः) शुभ्र वर्ण होकर (यामं) यम अर्थात्

पवन के मार्ग का (अचिध्वम्) अवलम्बन करते या वायु मण्डल के बीच विद्यमान जल राशि का सञ्चय करते हैं, तब (सुवानैः इन्दुभिः) नये २ उत्पन्न होते हुए द्रवणशील जलों से (मन्दध्वे) सब को आनन्दित करते हैं। उसी प्रकार हे वीर पुरुषो ! आप लोग (गिरीणां) पर्वतों के (अधि इव) मानो ऊपर भी (यामं) यम, नियन्ता राष्ट्र पति के आदेश को ही (अचिध्वम्) ग्रहण करो। हे (मरुतः) वायुवत् प्रिय शिष्य जनो ! आप लोग भी (शुभ्राः) शुद्धाचरण, तेजस्वी, रहकर (गिरीणां) उपदेष्टा गुरु-जनों के (यामं) यम-नियमादि व्रत पालन और 'यम' नियन्ता आचार्य के ज्ञानोपदेश को (अधि इव अचिध्वम्) खूब अधिकाधिक ग्रहण करो। आप लोग (सुवानैः) ऐश्वर्य वृद्धि करने वाले प्रजाजनों से वा ऐश्वर्यों से (मन्दध्वे) स्वयं प्रसन्न होओ और अन्यों को भी प्रसन्न करो।

एतावतश्चिदेषां सुम्नं भिक्षेत मर्त्यः ।
अदाभ्यस्य मन्मभिः ॥ १५ ॥ २० ॥

भा०—(मर्त्यः) मनुष्य (एषां) इन वीर वा विद्वान् पुरुषों में से (अदाभ्यस्य) शत्रुओं से नाश न होने वाले, (एतावतः) ऐसे ही महान् गुणवान् पुरुष से (मन्मभिः) उत्तम स्तुति युक्त वचनों से (सुम्नम् भिक्षेत) सुखप्रद धन और शुभ ज्ञान की याचना करें। निर्गुण अल्प चित्त वाले से ज्ञान, धनादि लेना न चाहे। इति विंशो वर्गः ॥

ये द्रप्सा इव रोदसी धमन्त्यनु वृष्टिभिः ।
उत्सं दुहन्तो अक्षितम् ॥ १६ ॥

भा०—जिस प्रकार मरुद्गण (रोदसी धमन्ति) भूमि और आकाश को शब्द से पूरित करते और फिर (वृष्टिभिः अक्षितं उत्सं) वृष्टियों द्वारा अक्षय जल या अन्न को मेघ में से दोहकर प्रदान करते हैं। उसी प्रकार (ये) जो वीर पुरुष (द्रप्सा इव) राष्ट्र के बलवीर्य रूप होकर (रोदसी) उभय पक्ष की सेनाओं को (धमन्ति) निनादित करते हैं, अग्नि-अस्त्र से

प्रचण्ड रूप से आग लगाते हैं और (अनु) पश्चात् शत्रुपर (वृष्टिभिः) वाण-वर्षाओं से (उत्सम्) उठने वाले शत्रु को नाशकर स्वयं (अक्षितं) अपना अपराजित, राष्ट्र और अक्षय ऐश्वर्य (दुहन्तः) पूर्ण करते हुए शोभा दिखाते हैं।

उदु॒ स्वा॒नेभि॑रीरत॒ उद्रथै॒रुदु॑ वा॒युभिः॑ ।
उत्स्तोमैः॒ पृश्नि॑मातरः ॥ १७ ॥

भा०—जिस प्रकार (पृश्नि-मातरः) जल सेचन अर्थात् जल वर्षण करने वाले मेघों की माता के समान उत्पादक वायुगण (स्वानेभिः वायुभिः उद् ईरते) शब्दों, प्रबल वायु वेगों से उठते हैं उसी प्रकार (पृश्नि-मातरः) मन्त्रद्रष्टा ऋषि, आचार्य वा पृथिवी रूप माता के पुत्र वीर पुरुष (स्वानेभिः) सिंह गर्जनाओं सहित (उत् ईरते) उठते हैं, (रथैः उत्) रथों से और (वायुभिः उद् उ) वायुवत् प्रबल नायकों और (स्तोमैः उत्) स्तुति-योग्य प्रशंसा-वचनों से (उत् ईरते) ऊपर उठते, उत्साहित होते और विजय करते हैं। (२) इसी प्रकार विद्वान् गण उत्तम ध्वनियों, (रथैः) उपदेशों और (स्तोमैः) वेदमन्त्र समूहों से (उत् ईरते) उन्नति प्राप्त करते हैं।

येना॑व तु॒र्वशं॒ यदुं॒ येन॒ कण्वं॑ धन॒स्पृत॑म् ।
रा॒ये सु तस्य॑ धीमहि ॥ १८ ॥

भा०—(येन) जिस साधन से आप लोग (तुर्वशं) शत्रु के नाशक वा हिंसकों के वशकर्त्ता वा पुरुषार्थ चतुष्टय के इच्छुक (यदुं) यत्नशील, उद्योगी मनुष्य वर्ग को और (येन) जिस उपाय से (धन-स्पृतं) धन की कामना करने वाले वैश्य वर्ग और (कण्वं) विद्वान् उपदेष्टा ब्राह्मण वर्ग की (आव) रक्षा करते हो (तस्य) उसी उपाय का हम (राये) ऐश्वर्य के लाभ के लिये (सु धीमहि) अच्छी प्रकार धारण और विचार करें।

इसी प्रकार वृष्टि जल से चारों वर्णों के जो उपकार हो सकते हैं उन सब का हम सदा ध्यान रक्खें और वर्षा के जल को व्यर्थ न जाने दिया करें।

इमा उं वः सुदानवो घृतं न पिप्युषीरिषः।
वर्धान्काण्वस्य मन्मभिः ॥ १९ ॥

भा०—हे (सु-दानवः) उत्तम दानशील एवं छेदन भेदन के कर्म में कुशल जनो ! (वः) आप लोगों की (इमाः इषः) ये जल-वृष्टियों के समान (इषः) सेनाएं (घृतं न पिप्युषीः) जल के समान परस्पर स्नेह और राजा के तेज की वृद्धि करती हुई (काण्वस्य) विद्वान् पुरुष के (मन्मभिः) सुविचारित वचनों से (वर्धान्) वृद्धि को प्राप्त करें।

क्व नूनं सुदानवो मदथा वृक्तबर्हिषः।
ब्रह्मा को वः सपर्यति ॥ २० ॥ २१ ॥

भा०—जिस प्रकार जल वृष्टि, अन्न प्रदान करने से वायुगण (सु-दानवः) उत्तम दानशील हैं वे (वृक्त-बर्हिषः) अन्तरिक्ष को चीर के जाने वाले होते और सब को आनन्दित करते हैं, उनके सम्बन्ध में भी प्रश्न होता है कि उनको (कः ब्रह्मा) कौन महान् शक्तिशाली सञ्चालित करता है। उसी प्रकार हे (सु-दानवः) उत्तम धन, ज्ञान, यशादि के देने वाले वीर विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (वृक्त-बर्हिषः) याग के निमित्त कुशादि काट कर लाने वाले वा शत्रुओं और अन्तरात्मा से क्रोध कामादि वासनाओं को समूल उच्छिन्न कर शुद्ध पवित्र होकर आप लोग (क्व मदथ) कहां २ आनन्द लाभ करते और किस २ स्थान वा अवसर पर अन्यों को आनन्दित करते हो। (वः) आप लोगों को (कः) कौन (ब्रह्मा) महान् शक्ति वाला, ऐश्वर्यवान् और ज्ञानवान् पुरुष (सपर्यति) आप लोगों का सत्कार करता है ? इत्येकविंशो वर्गः ॥ उत्तर—

नहि ष्म यद्ध वः पुरा स्तोमेभिर्वृक्तबर्हिषः।
शर्धाँ ऋतस्य जिन्वथ ॥ २१ ॥

भा०—हे (वृक्तबर्हिषः) यज्ञशील और शत्रुरहित वीर जनो ! (पुरा) पहिले के समान ही (वः) आप लोगों के (यत् नहि स्म) जो बल नहीं प्राप्त हो उन (ऋतस्य) धन, अन्न और सत्य ज्ञान के (शर्धान्) नाना बलों को (स्तोमेभिः) स्तुति वचनों द्वारा (जिन्वथ) बढ़ाओ ।

समु त्ये महतीरपः सं क्षोणी समु सूर्यम् ।
सं वज्रं पर्वशो दधुः ॥ २२ ॥

भा०—जिस प्रकार मेघ लाने वाले सजल वायुगण (महती अपः सं दधुः) बहुत भारी जल राशि को अच्छी प्रकार धारण करते हैं । (क्षोणी सं दधुः) भूमि पर उन जलों को प्रदान करते हैं, वा वे वृष्टि युक्त वायुगण (क्षोणी सं दधुः) इस भूमि और अन्तरिक्ष को परस्पर सुसम्बद्ध करते हैं वे ही (सूर्यम्) सूर्य की दीप्ति को (सं दधुः) धारण करते हैं और (वज्रं) विद्युत् को भी (पर्वशः) पोरु २, खण्ड २ कर धारण करते हैं उसी प्रकार (त्ये) वे वीर पुरुष भी (महतीः अपः सम् दधुः) बहुत बड़ी प्रजाओं को धारण करें, (क्षोणी सम्) स्व और पर-राष्ट्रों को सन्धि द्वारा व्यवस्थित करें, (सूर्यं सं दधुः) सूर्यवत् तेजस्वी राजा वा सेनापति को धारण करें, और (वज्रं पर्वशः सं दधुः) वज्र की एक २ टुकड़ी का नायक महाख धारण करे वा वे स्वयं टुकड़ी २ होकर महा सैन्य बल को और अपने सन्धि २, जोड़ २ पर बल धारण करें ।

वि वृत्रं पर्वशो ययुर्वि पर्वताँ अराजिनः ।
चक्राणा वृष्णि पौंस्यम् ॥ २३ ॥

भा०—जिस प्रकार पूर्वोक्त वायुगण (वृत्रं) जल को (पर्वशः) पोरु २ पर (वि ययुः) विशेष रूप से व्यापते हैं । वे (अराजिनः) स्वयं दीप्तिरहित, श्याम (पर्वतान् वि ययुः) मेघों को भी व्यापते हैं और (वृष्णि) वर्षणशील मेघ पर विशेष (पौंस्यं विचक्राणाः भवन्ति) बल पराक्रम करते हैं उसी प्रकार वे वीर लोग (वृत्रं) अपने बढ़ते या घेरने

वाले शत्रु को (पर्वशः वि ययुः) पोरु २, सन्धि २, जोड़ २ में व्याप लें, उसके सैन्य दल में घुस जांय (अराजिनः) राजा के विपरीत, उच्छृंखल द्रोही (पर्वतान्) पर्वतवत् अचल शत्रुओं पर भी (वि ययुः) चढ़ाई करें। और (वृष्णि) बलवान् शत्रुपर वा (वृष्णि) उत्तम बलवान् प्रबन्धक पुरुष के अधीन रहकर (पौंस्यं) बल पौरुष (चक्राणाः) करते रहा करें।

अनु॑ त्रि॒तस्य॒ युध्य॑तः॒ शुष्म॑मावन्नु॒त क्रतु॑म् ।
अन्विन्द्रं॑ वृत्र॒तूर्ये॑ ॥ २४ ॥

भा०—जिस प्रकार (वृत्रतूर्ये इन्द्रं अनु शुष्मम् क्रतुम् आवन्) मेघ के छिन्न करने के अवसर में वायुगण सूर्य के अनुकूल ही बलयुक्त कर्म को प्राप्त करते हैं उसी प्रकार वीर सैन्य जन भी (वृत्र-तूर्ये) शत्रु के नाशकारी संग्राम के अवसर में (त्रितस्य युद्ध्यतः) स्व और पर से अतिरिक्त तीसरे बलशाली से लड़ते हुए (इन्द्रम् अनु) अपने सेनापति के कथनानुसार (उत) ही (शुष्मम् क्रतुम्) बल और उद्योग कर्म को (अनु आवन्) खूब प्राप्त करते और बलवान् और क्रियावान् भाग की खूब रक्षा करते हैं।

त्रितः—तीर्णतमो मेधया बभूव। अपिवा संख्यानामैवाभिप्रेतः स्यादेकतो द्वितस्त्रित इति त्रयो बभूवः। निरु० अ० ४। पा० १। ६॥

वि॒द्युद्ध॑स्ता अ॒भिद्य॑वः॒ शिप्राः॑ शी॒र्षन्हि॑र॒ण्ययीः॑ ।
शु॒भ्रा व्य॑ञ्जत श्रि॒ये ॥ २५ ॥ २२ ॥

भा०—हे (मरुतः) वीर पुरुषो! आप लोग (विद्युद्-हस्ताः) विद्युत् के समान विशेष चमकीले शस्त्र या आभूषण को हाथ में रक्खो और स्वयं (अभिद्यवः) कान्ति युक्त (शुभ्राः) शोभायुक्त वस्त्रालंकार धारण कर (शीर्षन्) शिर पर (हिरण्ययीः) सुवर्ण से सजी, सुनहरी, सुन्दर (शिप्राः) टोपियों या लोह आदि के बने शिर बचाने के टोपों को (श्रिये) शोभा वृद्धि के लिये (वि-अञ्जत) विशेष रूप से प्रकट किया करें।

शिप्राः—टोपियां। इति द्वाविंशो वर्गः॥

उशना यत्परावत उक्ष्णो रन्ध्रमयातन ।
द्यौर्न चक्रदद्भिया ॥ २६ ॥

भा०—जिस प्रकार पवन गण (परावतः) दूर विद्यमान (उक्ष्णः) जल-सेचक मेघ के (रन्ध्रम्) छिद्र भाग की ओर (उशनाः) तीव्र कान्ति-युक्त होकर जाते हैं । तब (द्यौः न भिया चक्रदत्) आकाश व पृथिवी भी भय से कांप जाती या गूंज उठती है उसी प्रकार आप लोग भी (उशनाः) राज्य-विजय की कामना करते हुए हे वीरो ! (यत्) जब (परावतः उक्ष्णः) दूर देश से बलवान् शत्रु के (रन्ध्रम्) छिद्र या मर्मस्थान को पाकर (अयातन) प्रयाण करो, उस पर चढ़ाई करो तब (द्यौः न) मानो समस्त पृथिवी और आकाश भी (भिया चक्रदत्) भय से गूंज उठे और कांप उठे ।

आ नो मखस्य दावनेऽश्वैर्हिरण्यपाणिभिः ।
देवास उप गन्तन ॥ २७ ॥

भा०—हे (देवासः) विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (नः) हमारे (मखस्य) यज्ञ के निमित्त (दावने) दान देने के लिये (हिरण्य-पाणिभिः) हितकारी उत्तम पदार्थों को हाथ में लिये (अश्वैः) उत्तम वेगयुक्त अश्वों से हमारे (उप गन्तन) समीप आया करो । [हिरण्य-पाणिभिरिति देवान् विशिनष्टि नाश्वान् ।]

यदेषां पृषती रथे प्रष्टिर्वहति रोहितः ।
यान्ति शुभ्रा रिणन्नपः ॥ २८ ॥

भा०—जिस प्रकार वायुओं के (रथे) वेग में (पृषतीः) जल सेचन करने वाली मेघमालाओं को (प्रष्टिः) वेगवान् वायु और (रोहितः) रक्तवर्ण सूर्य (वहति) वहन करता है तब वे भी (यान्ति) गति करते और (शुभ्राः अपः रिणन्) स्वच्छ जल पहुंचाते हैं । उसी प्रकार (एषां) इन वीरों के (रथे) रथ समुदाय में (पृषतीः) हृष्ट पुष्ट शस्त्रवर्षी सेनाएं

वा नियुक्त अश्व (प्रष्टिः) शीघ्र चालक (रोहितः) सारथिवत् सेनापति वहन करे तब ये भी (शुभ्राः) शुद्ध, सुन्दर (अपः) जलधाराओंवत् सैन्यधाराओं का सञ्चालन करते हुए (यान्ति) प्रयाण करें।

सुषोमे शर्य॒णाव॑त्यार्जीके प॒स्त्या॑वति ।
य॒युर्निच॑क्रया नरः ॥ २९ ॥

भा०—(नरः) मनुष्य (सुषोमे) उत्तम ऐश्वर्ययुक्त (शर्यणावति) उत्तम सेना, पोलिस आदि से सुरक्षित, (आर्जीके) धार्मिक निवासियों से बसने योग्य, धार्मिक राजा से शासित (पस्त्यावति) उत्तम प्रजा से सम्पन्न या नाना गृह भवनों से समृद्ध नगर या देश में (निचक्रया) नीचे लगे चक्रों से युक्त ट्राम आदि गाड़ियों से (ययुः) जाया आया करें। अथवा— उक्त प्रकार के देश में भी (मरुतः) वीर सैनिक (निचक्रया) नियमित चक्र अर्थात् सैन्यादि चक्र, व्यूह युक्त सेना से आगे बढ़ें।

क॒दा ग॑च्छाथ मरुत इ॒त्था विप्रं॒ हव॑मानम् ।
मा॒र्डी॒केभि॒र्नाध॑मानम् ॥ ३० ॥ २३ ॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् वीर पुरुषो ! आप लोग (इत्था) इस प्रकार (हवमानं विप्रम्) स्तुतिशील वा यज्ञकर्त्ता, विद्वान् पुरुष को (मार्डीकेभिः) सुखजनक वचनों से (नाधमानम्) प्रार्थना करते हुए (कदा गच्छाथ) कब प्राप्त होते हैं ? [उत्तर] अथवा (मार्डीकेभिः नाधमानं) सुखजनक द्रव्यों से समृद्ध (हवमानं विप्रम्) दान देते हुए विविध धनों से पूर्ण मनुष्य को ही प्राप्त होते हो। इति त्रयोविंशो वर्गः॥

कद्ध॑ नू॒नं क॑धप्रियो॒ यदिन्द्र॒मज॑हातन ।
को वः॑ सखि॒त्व ओ॑हते ॥ ३१ ॥

भा०—हे (कध-प्रियः) उत्तम कथा, स्तुति, उपदेश आदि से प्रसन्न होने वाले पुरुषो ! (यद् इन्द्रम् अजहातन) आप लोग शत्रुहन्ता और संशयच्छेत्ता वीर वा विद्वान् पुरुष वा प्रभु को त्यागते हो ऐसा भला

(कद् ह नूनं) क्यों कर हो सकता है ? यदि छोड़ दिया करो तो भला (वः सखित्वे) आप लोगों की मित्रता में (कः ओहते) कौन विश्वास करे।

सहो षु णो वज्रहस्तैः कण्वासो अग्निं मरुद्भिः ।
स्तुषे हिरण्यवाशीभिः ॥ ३२ ॥

भा०—हे (कण्वासः) विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (हिरण्य-वाशीभिः) लोह, सुवर्णादि के बने शस्त्रों से सजे वा हितरमणीय वाणी बोलने वाले (वज्र-हस्तैः) खड्ग और शस्त्र वर्जन करने वाले चर्म आदि हाथ में लिये उत्तम बलवीर्य सम्पन्न, (मरुद्भिः) वीरों और विद्वानों के (सह उ) सहित (अग्निम्) ज्ञानवान् अग्रणी नायक पुरुष का (नः सुस्तुषे) हमारे प्रति उत्तम रीति से कथन करो ।

ओ षु वृष्णः प्रयज्यूना नव्यसे सुविताय ।
ववृत्यां चित्रवाजान् ॥ ३३ ॥

भा०—मैं (वृष्णः) बलवान्, उदार, (प्र-यज्यून्) उत्तम दानशील (चित्र-वाजान्) अद्भुत बल और ऐश्वर्य के स्वामी जनों से (सुविताय) उत्तम धन प्राप्त करने और (नव्यसे) नये से नये धन प्राप्त करने के लिये (आ ववृत्याम्) अपने सन्मुख प्रार्थना करूं । उसी प्रकार (नव्यसे सुविताय) स्तुत्य, उत्तम चरित्र शिक्षण के लिये अद्भुत ज्ञानी पुरुषों की शरण जाकर उनसे प्रार्थना करूं ।

गिरयश्चिन्नि जिहते पर्शानासो मन्यमानाः ।
पर्वताश्चिन्नि येमिरे ॥ ३४ ॥

भा०—(चित्) जिस प्रकार सजल वायुओं से स्पर्श पाकर (गिरयः नि जिहते) मेघ भी भारी होकर नीचे उतर आते हैं (पर्वताः चित् नि-येमिरे) पर्वत भी उनकी रोक थाम करते हैं उसी प्रकार (पर्शानासः) उत्तम विद्वानों और वीरों से स्पर्श पाकर (मन्यमानाः) अभिमान युक्त (गिरयः) विद्वान् जन (नि जिहते) विनय से झुकते हैं और (पर्शा-

नासः) पीड़ित होकर (पर्वताः चित्) पर्वतवत् दृढ़ अभेद्य, शत्रु जन भी (नि येमिरे) बांधे जाते हैं। वश किये जाते हैं।

आक्ष्णयावानो वहन्त्यन्तरिक्षेण पततः।
धातारः स्तुवते वयः ॥ ३५ ॥

भा०—(अन्तरिक्षेण पततः धातारः यथा वयः वहन्ति) जिस प्रकार अन्तरिक्ष से जाते हुए सजल पवन गण विश्व के पोषक होकर अन्न वा जीवन प्राप्त कराते हैं उसी प्रकार (अक्ष्ण-यावानः) आंख के इशारे से आगे बढ़ने वाले, और (अन्तरिक्षेण पततः) आकाश मार्ग से जाने वाले, (धातारः) राष्ट्र के धारक, शासक जन (स्तुवते) प्रार्थी-प्रजाजन के हितार्थ (वयः वहन्ति) बल, जीवन और अन्न धारण करते और प्राप्त कराते हैं।

अग्निर्हि जानि पूर्व्यश्छन्दो न सूरो अर्चिषा।
ते भानुभिर्वि तस्थिरे ॥ ३६ ॥ २४ ॥

भा०—(अग्निः) अग्नि जिस प्रकार (पूर्व्यः जनि) सब से पूर्व विद्यमान रहता है और वह (अर्चिषा) ज्वाला से (सूरः न छन्दः) सूर्य के समान दीप्तियुक्त मनोहर होता है और नाना वायुगण (भानुभिः) विद्युत् आदि दीप्तियों से युक्त होकर (वि तस्थिरे) विविध प्रकार से चमकते रहते हैं उसी प्रकार (अग्निः) ज्ञानी, तेजस्वी अग्रणी नायक प्रभु (पूर्व्यः जनि) सब से पूर्व विद्यमान रहता है। वह ज्ञानदीप्ति से सूर्यवत् सब का उत्पादक और (छन्दः) रक्षक रहा। (ते) वे नाना जीवगण और सूर्य चन्द्र आदि लोक उसी के (भानुभिः) प्रकाशों से (वि तस्थिरे) विविध प्रकारों से विविध लोकों में रहते हैं। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[८]

सध्वंसः काण्व ऋषिः। अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ३, ५, ६, १२, १४, १५, १८—२०, २२ निचृदनुष्टुप्। ४, ७, ८, १०, ११, १३, १७, २१, २३ आर्षी विराडनुष्टुप्। ६, १६ अनुष्टुप्॥ त्रयोविंशर्चं सूक्तम्॥

आ नो विश्वाभिरूतिभिरश्विना गच्छतं युवम् ।
दस्रा हिरण्यवर्तनी पिबतं सोम्यं मधु ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विना) दिन रात्रिवत्, चन्द्रसूर्यवत् सब के हृदयों में व्यापने वाले वा 'अश्व' अर्थात् शीघ्रगामी घोड़ों के समान तीव्र वेग से विषय मार्गों में दौड़ने वाले इन्द्रियों के स्वामी जितेन्द्रिय पुरुषो ! (युवम्) आप दोनों (विश्वाभिः) समस्त (ऊतिभिः) रक्षा और ज्ञानों तथा तृप्तिदायक उपायों, अन्नादि के सहित (नः) हमें (आगच्छतम्) प्राप्त होओ । आप दोनों (दस्रा) दुःखों और पापों का नाश करने वाले (हिरण्य-वर्त्तनी) सुसज्जित, स्वर्णादि मण्डित रथ पर आरूढ़, एवं हितकारी रमणीय, उत्तम मार्ग से जाने वाले, सदाचारी होकर (सोम्यं मधु) ओषधि रस और उत्तम मधुर अन्न और जल का (पिबतम्) उपभोग करो । 'सोम' पुत्र, शिष्य, सन्तान लाभ आदि का मधुर सुख उपभोग करो ।

आ नूनं यातमश्विना रथेन सूर्यत्वचा ।
भुजी हिरण्यपेशसा कवी गम्भीरचेतसा ॥ २ ॥

भा०—हे (अश्विना) रथी सारथिवद् अश्वों, इन्द्रियों के स्वामी, स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (सूर्य-त्वचा) सूर्य के समान कान्तियुक्त आवरण वाले, सुन्दर (रथेन) वेगवान् रथ से (नूनं आयातम्) अवश्य आया जाया करो । आप दोनों वर्ग (भुजी) नाना सुखों के भोगने और प्रजा भृत्यादि को उत्तम रीति से पालने वाले, (हिरण्य-पेशसा) सुवर्ण के समान उत्तम कान्तियुक्त, (कवी) उत्तम विद्वान्, दीर्घदर्शी, सम्यग्-दर्शी, (गम्भीर-चेतसा) गम्भीर चित्त वाले होओ ।

आ यातं नहुषस्पर्यान्तरिक्षात्सुवृक्तिभिः ।
पिबाथो अश्विना मधु कण्वानां सवने सुतम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्विना) 'अश्व' अर्थात् राष्ट्र के स्वामी जनो ! सचिव और नृपति के तुल्य प्रधान पुरुषो ! आप दोनों (नहुषः परि) मनुष्य वर्ग से ऊपर

(अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष मार्ग से (सुवृक्तिभिः) उत्तम हिताचरणों और स्तुति-वाणियों सहित (आयातम्) आया करो और (कण्वानां) विद्वान् पुरुषों के (सवने) यज्ञ में (सुतम्) तैयार किये (मधु) मधुर सोम रस, हविष्य, अन्न, यज्ञ शेष और ज्ञान आदि का (पिबाथः) पान किया करो।

आ नो यातं दिवस्पर्यान्तरिक्षादधप्रिया।

पुत्रः कण्वस्य वामिह सुषाव सोम्यं मधु ॥ ४ ॥

भा०—हे (अश्विना) दिन रात्रिवत् सम्बद्ध स्त्री पुरुषो! हे (अधप्रिया) अपने अधीन दास, भृत्य, सेवक, सहचर आदि को सदा सुप्रसन्न, तृप्त, सुखी रखने वाले एवं उनके भी प्रिय, (यद्वा अधप्रिया = कधप्रिया) उत्तम स्तुति ज्ञानोपदेश के प्रिय पुरुषो! आप दोनों (दिवः परि) भूमि-मार्ग से (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष मार्ग से भी (नः आयातम्) हमारे पास प्राप्त होओ। (इह) इस स्थान में (वाम्) आप दोनों को लक्ष्य करके (कण्वस्य पुत्रः) विद्वान्, बुद्धिमान् पुरुष का शिष्य, पुत्र, वा विद्वानों के दुःखों को दूर करने वाला, और बहुतों की रक्षा करने में समर्थ पुरुष (सोम्यं मधु) विद्वान् पुरुषों के योग्य, उत्तम मधुर अन्न और ज्ञान को (सुषाव) प्रदान करता है।

आ नो यातमुपश्रुत्यश्विना सोमपीतये।

स्वाहा स्तोमस्य वर्धना प्र कवी धीतिभिर्नरा ॥ ५ ॥ २५ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय पुरुषो! आप लोग (स्तोमस्य) स्तुति, और उपदेश करने योग्य वेद-ज्ञान का (स्वाहा) उत्तम वाणी द्वारा कथनोपकथन करते हुए और (धीतिभिः) अध्ययन, मनन, और सत्कर्माचरणों द्वारा उसकी (वर्धना) वृद्धि करते हुए (प्र यातम्) आगे बढ़ो और हे (कवी) विद्वानो! हे (नरा) उत्तम पुरुषो! आप दोनों (सोमपीतये) ज्ञान, ऐश्वर्य और अन्नादि के पालन और

उपभोग के लिये (उप-श्रुति) उत्तम ज्ञान श्रवण करने के लिये यज्ञ, सभाभवन, गुरुगृह आदि स्थानों में भी (नः आयातम्) हमारे पास प्राप्त होओ। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

यच्चिद्धि वां पुर ऋषयो जुहूरेऽवसे नरा।
आ यातमश्विना गतमुपेमां सुष्टुतिं मम ॥ ६ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय, ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी वर्गो ! हे (नरा) उत्तम पुरुषो ! (वां) आप लोगों के (अवसे) ज्ञान करने के लिये (पुरा) पहले काल में (ऋषयः) मन्त्रार्थ द्रष्टा ऋषियों ने (यत् चित् हि) जो कुछ भी (जुहूरे) उपदेश किया है और (इमां सुस्तुतिम्) इस उत्तम स्तुति, उपदेशादि को (उप) प्राप्त करने के लिये (मम आयातम्) मेरे समीप आइये।

दिवश्चिद्रोचनादध्या नो गन्तं स्वर्विदा।
धीभिर्वत्सप्रचेतसा स्तोमेभिर्हवनश्रुता ॥ ७ ॥

भा०—हे ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी वर्गो ! आप दोनों (दिवः चित् रोचना) सूर्य के समान प्रकाशमान, ज्ञानवान्, (रोचनात्) तेजस्वी गुरु से (स्वर्विदा) प्रकाशमय ज्ञान को प्राप्त करके (स्तोमेभिः) वेद के सूक्तों से (हवन-श्रुता) स्वयं ग्रहण करने और अन्यों को देने योग्य ज्ञान का श्रवण करके (धीभिः) उत्तम बुद्धियों और कर्मों से (वत्स-प्रचेतसा) 'वत्स' अर्थात् उपदेष्टावत् उत्तम ज्ञानी गुरु के अधीन रह, उत्कृष्ट ज्ञानवान् होकर (अधि नः गन्तम्) अनन्तर हमारे पास आओ।

किमन्ये पर्यासतेऽस्मत्स्तोमेभिरश्विना।
पुत्रः कण्वस्य वामृषिर्गीर्भिर्वत्सो अवीवृधत् ॥ ८ ॥

भा०—(अस्मत् अन्ये) हम से अतिरिक्त अन्य विद्वान् लोग भी (स्तोमेभिः) स्तुति उपदेशों सहित (किम् परि-आसते) किस प्रयोजन से विराजते हैं। हे (अश्विना) जितेन्द्रिय शिष्य शिष्याओ ! वे सब केवल

ज्ञानोपदेश देने के लिये ही होते हैं। (कण्वस्य पुत्रः) विद्वान् पुरुष का पुत्र वा विद्वान् मेधावी परमेश्वर के (पुत्रः = पुरु त्रायते) बहुत से ज्ञान का रक्षक (ऋषिः) मन्त्रद्रष्टा विद्वान् (वत्सः) अभिवादन करने योग्य एवं विद्या का उपदेष्टा होकर (गीर्भिः) वेद वाणियों से (वाम् अवीवृधत्) तुम दोनों की उन्नति करे।

आ वां विप्र इहावसेऽह्वत्स्तोमेभिरश्विना।
अरिप्रा वृत्रहन्तमा ता नो भूतं मयोभुवा॥ ९॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी वर्गो! (इह) इस आश्रम में (विप्रः) विद्वान् आचार्य (स्तोमेभिः) वेद के मन्त्रों, सूक्तों से (वां अवसे) आप दोनों को ज्ञान प्रदान करने के लिये (अह्वत्) आदर पूर्वक उपदेश करे और (ता) वे आप दोनों (अरिप्रा) पाप रहित और (वृत्रहन्तमा) आवरणकारी अज्ञान को को नाश करने वाले होकर (नः) हमारे लिये (मयोभुवा भूतम्) सुख शान्तिदायक होओ।

आ यद्वां योषणा रथमतिष्ठद्वाजिनीवसू।
विश्वान्यश्विना युवं प्र धीतान्यगच्छतम्॥ १०॥ २६॥

भा०—हे (वाजिनी-वसू) 'वाज' अर्थात् ज्ञान और बलशाली विद्या और वीर्यरूप धन के धनी स्त्री पुरुषो! (यत्) जब तक आप दोनों में से (योषणा) पति से प्रेम करने वाली स्त्री और स्त्री को प्रेम करने वाला पुरुष (रथम् आ अतिष्ठत्) गृहस्थ रूप रमण योग्य आश्रम में प्राप्त होते हो, तब तक हे (अश्विना) इन्द्रिय, मनरूप अश्वों के स्वामी, जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी वर्गो! आप दोनों (विश्वानि धीतानि = अधीतानि) समस्त अध्ययन करने योग्य विषयों को (प्र अगच्छतम्) अच्छी प्रकार ग्रहण करलो। इति षड्विंशो वर्गः॥

अतः सहस्रनिर्णिजा रथेना यातमश्विना।
वत्सो वां मधुमद्वचोऽशंसीत्काव्यः कविः॥ ११॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो! जब (वत्सः) विद्या का उपदेष्टा, ब्रह्मचर्यवास काल का गुरु (काव्यः) विद्वानों में विद्वान् (कविः) स्वयं क्रान्तदर्शी आचार्य (वां) तुम दोनों को (मधुमत् वचः) मधुविद्या ब्रह्मविद्या से युक्त प्रवचन, उपदेश (अशंसीत्) कर चुके (अतः) उसके बाद आप दोनों (सहस्र-निर्णिजा) बहुत प्रकार के बने (रथेन) रथों से (आयातम्) गृह के प्रति आओ। अथवा—(सहस्र निर्णिजा रथेन) सब प्रकार से शुद्ध निष्णात एवं बलवान् दृढ़ शरीर से युक्त होकर गृहपर आओ।

पु॒रु॒म॒न्द्रा पु॑रू॒वसू॑ मनो॒तरा॑ रयी॒णाम्।
स्तोमं॑ मे अ॒श्विना॑वि॒मम॒भि वह्नी॑ अनूषाताम् ॥ १२ ॥

भा०—(पुरु-मन्द्रा) बहुत से मनुष्यों को सुखी और प्रसन्न, आनन्दित करने वाले, (पुरूवसू) बहुतों को बसाने वाले, वसु, धनों ऐश्वर्यों के स्वामी, (रयीणां) नाना प्रकार के धनों के प्राप्ति, विनिमय आदि विषय में मनन या उत्तम ज्ञान प्राप्त करने वाले, (वह्नी) कार्य-भार वहन करने में समर्थ, (अश्विनौ) जितेन्द्रिय एवं वेगवान् अश्व, रथ, यान आदि सञ्चालन में कुशल स्त्री-पुरुष वर्ग, (इमं मे स्तोमं) मेरे इस स्तुत्य ग्राह्य वचन को (अभि अनूषाताम्) आदरपूर्वक ग्रहण करें।

आ नो॒ विश्वा॑न्यश्विना ध॒त्तं राधां॒स्यह्र॑या।
कृ॒तं न॑ ऋ॒त्विया॑वतो॒ मा नो॑ रीरधतं नि॒दे ॥ १३ ॥

भा०—हे (अश्विना) उत्तम जितेन्द्रिय पुरुषो! (नः) हमारे (विश्वानि) सब प्रकार के (राधांसि) धनों को आप दोनों (अह्रया) बिना संकोच या लज्जा के (आ धत्तम्) सब ओर से प्राप्त कर धारण करो और हमें प्रदान करो। आप दोनों (नः) हमें (ऋत्वियावतः कृतम्) ऋतु २ में करने योग्य यज्ञ से सम्पन्न करो। (नः) हमें (निदे) निन्दक के लाभ के लिये (मा रीरधतं) अपने अधीन वश मत करो।

यन्नासत्या परावति यद्वा स्थो अध्यम्बरे ।
अतः सहस्रनिर्णिजा रथेना यातमश्विना ॥ १४ ॥

भा०—हे (नासत्या) नासिकावत् मुख्य स्थान पर स्थित वा (न-असत्या) परस्पर कभी असत्य व्यवहार न करने वाले, आप दोनों (यद्) चाहे जब (परावति स्थः) दूर देश में होओ (यद् वा) और चाहे (अम्बरे अधिस्थः) समीप में होओ हे (अश्विना) वेगवान् अश्वों के स्वामी जनो ! (अतः) वहां से आप लोग (सहस्र-निर्णिजा रथेन) दृढ़ बल से युक्त, रूपवान्, सुदृढ़ रथ से ही (आ यातम्) आया करो ।

यो वां नासत्यावृषिर्गीर्भिर्वत्सो अवीवृधत् ।
तस्मै सहस्रनिर्णिजमिषं धत्तं घृतश्चुतम् ॥ १५ ॥ २७ ॥

भा०—हे (नासत्या) कभी असत्य व्यवहार न करने वाले, सत्य धर्म के व्यवस्थापक और नासिकावत् प्रमुख पदों पर स्थित जनो ! (यः) जो (वत्सः ऋषिः) उत्तम उपदेष्टा, मन्त्रज्ञ पुरुष (वां अवीवृधत्) आप दोनों को वृद्धि प्रदान करता है (तस्मै) उसके आदरार्थ, वा रक्षार्थ आप दोनों (घृतश्चुतम् इषम्) घृतयुक्त नाना रूप अन्न के समान ही (सहस्र-निर्णिजं) बहुत रूपों का, हज़ारों पुरुषों से बना, (घृतश्चुतम्) तेजोयुक्त पद, (इषं) सैन्य, वा नाना प्रकार की स्नेह से युक्त इच्छा को (धत्तम्) धारण करो। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

प्रास्मा ऊर्जं घृतश्चुतमश्विना यच्छतं युवम् ।
यो वां सुम्नाय तुष्टवद्वसूयाद्दानुनस्पती ॥ १६ ॥

भा०—(यः) जो (वां) तुम दोनों को (सुम्नाय) सुख, शान्ति लाभ के लिये (तुष्टवत्) स्तुति या उपदेश करे, हे (दानुनः पती) दान शील जन वा दातव्य धन के पालको ! (यः) जो जो (वसूयात्) आप दोनों के सुखार्थ ही अपना धन चाहे, (अस्मै) उस पूज्य पुरुष को (युवं)

तुम दोनों हे (अश्विना) जितेन्द्रिय जनो! (घृतश्चुतं) घी, जलादि से युक्त (ऊर्जं प्रयच्छतम्) बलकारक अन्न प्रदान करो।

आ नो गन्तं रिशादसेमं स्तोमं पुरुभुजा।
कृतं नः सुश्रियो नरेमा दातमभिष्टये॥ १७॥

भा०—हे (रिशादसा) हिंसकों के नाशक वीर जनो! हे (पुरुभुजा) बहुतों के पालक और बहुत से ऐश्वर्यों के भोक्ता जनो! आप लोग (नः आ गन्तं) हमें प्राप्त होओ। और (नः) हमारे (स्तोमं) इस उत्तम उपदेश या स्तुत्य वचन या व्यवहार का (कृतम्) पालन करो। हे (नरा) नायक, उत्तम स्त्री पुरुषो (इमाः) ये (सु-श्रियः) उत्तम २ लक्ष्मियां (नः) हमें (अभिष्टये) अभीष्ट सुख के लिये (दातम्) प्रदान करो।

आ वां विश्वाभिरूतिभिः प्रियमेधा अहूषत।
राजन्तावध्वराणामश्विना यामहूतिषु॥ १८॥

भा०—हे (अश्विना) विद्वान् उत्तम स्त्री पुरुषो! (प्रिय-मेधाः) यज्ञ सत्संग के द्वारा अन्न, जल, वायु आदि भौतिक तत्वों के सुगन्धादि से पूर्ण करने और विद्वान् पुरुषों को अन्न, जल, वस्त्रादि से प्रसन्न करने वाले जन और (प्रिय-मेधाः) शत्रु वा दुष्ट पुरुषों की ताड़ना करने को अच्छा समझने वाले वीर पुरुष भी (विश्वाभिः ऊतिभिः) अपनी समस्त विद्या और रक्षा साधनों, सेनाओं के सहित (वां आ अहूषत) तुम दोनों को सब प्रकार से स्वीकार करें और आप दोनों (अध्वराणां) नाना हिंसारहित यज्ञों और सब को मार्गोपदेश करने वाले कार्यों के बीच में (याम-हूतिषु) लोगों को चलने के मार्ग तथा उत्तम यमनियमादि, नियन्त्रण व्यवस्था के उपदेश करने के कार्यों में (राजन्तौ) राजावत् चमकते हुए रहो।

आ नो गन्तं मयोभुवाश्विना शम्भुवा युवम्।
यो वां विपन्यू धीतिभिर्गीर्भिर्वत्सो अवीवृधत्॥ १९॥

भा०—हे (अश्विना) उत्तम स्त्री पुरुषो ! (यः) जो (वत्सः) उत्तम उपदेष्टा गुरु (विपन्यू) विशेष व्यवहार कुशल एवं प्रार्थी (वां) आप दोनों को (धीतिभिः) उत्तम कर्मों और (गीर्भिः) उत्तम वेद वाणियों द्वारा (अवीवृधत्) वृद्धि को प्राप्त कराता है उससे उपदिष्ट होकर (युवम्) आप दोनों (मयोभुवा) सुखप्रद और (शंभुवा) शान्तिदायक होकर (नः आगन्तम्) हमें प्राप्त होओ ।

याभिः कण्वं मेधातिथिं याभिर्वशं दशव्रजम् ।
याभिर्गोशर्यमावतं ताभिर्नोऽवतं नरा ॥ २० ॥ २८ ॥

भा०—हे उत्तम स्त्री पुरुषो, राजा रानी, सेनापति सभापति आदि जनो! आप लोग (याभिः) जिन उपायों से (कण्वं) विद्वान् (मेधातिथिं) अन्नादि सत्कार और सत्संग योग्य अतिथि की रक्षा करते हो, या उनको प्राप्त होते और (याभिः) जिन उत्तम क्रियाओं से (दश-व्रजम्) दशों दिशाओं में जाने वाले, और दशों मार्गों से युक्त (वशं) वश करने योग्य राष्ट्रजन या मन आदि को वश करते हो, और (याभिः) जिन सैन्यादि से (गो-शर्यम्) 'गो' अर्थात् धनुष की डोरी और 'शर' बाण इनके चलाने में कुशल सैन्य को (आवतम्) रक्षा करते हो, उन्हें प्राप्त होते हो (ताभिः) उनसे ही हे (नरा) उत्तम प्रधान नायक पुरुषो ! (नः अवतम्) हमारी रक्षा करो। (नः आ अवतम्) उन सहित हमें प्राप्त होओ। अथवा—अवति-हिंसा-रक्षण-कान्ति-तृप्ति-वृद्ध्यर्थश्च । (याभिः) जिन सेनाओं से (गोश-र्यम् आवतम्) गो-भूमि के हिंसक कृषकादि की रक्षा करते और गौ आदि पशुओं के हिंसकों का नाश करते हो उन उपायों सहित (नः आवतम्) हमें प्राप्त होओ । इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

याभिर्नरा त्रसदस्युमावतं कृत्व्ये धने ।
ताभिः ष्व१स्माँ अश्विना प्रावतं वाजसातये ॥ २१ ॥

भा०—(याभिः) जिन सेना आदि उपायों से (धने कृत्व्ये) प्राप्त

करने योग्य ऐश्वर्य की रक्षा के निमित्त (त्रसदस्युम्) पशुओं को भयभीत करने वाले सिपाही पहरेदार आदि को (आवतम्) रखवे हो उनसे ही हे (अश्विना) राष्ट्र के स्वामी जनो ! (वाज-सातये) धन अन्नादि के लाभ के लिये (अस्मान् सुप्र अवतम्) हमारी भी अच्छी प्रकार रक्षा करो। अधिकारी जन अपने धन की रक्षार्थ जैसे अपने कर्मचारियों की रक्षा करते हैं उसी प्रकार वे प्रजा को धन समझ कर उसकी भी अच्छी प्रकार रक्षा किया करें।

प्र वां स्तोमाः सुवृक्तयो गिरो वर्धन्त्वश्विना ।
पुरुत्रा वृत्रहन्तमा ता नो भूतं पुरुस्पृहा ॥ २२ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय एवं अश्व सैन्य वा राष्ट्र के स्वामी जनो ! स्वामी अमात्य जनो ! (स्तोमाः) स्तुतियोग्य कार्य और (सुवृक्तयः) उत्तम रीति से पाप से बचाने वाली (गिरः) वाणियां (वां प्रवर्धन्तु) आप दोनों को बढ़ावें। (ता) वे आप दोनों (पुरुत्रा) बहुतों के रक्षक, (वृत्र-हन्तमा) शत्रु और पाप को अच्छी प्रकार नाश करने वाले और (नः) हमारे बीच (पुरु-स्पृहा) बहुतों के प्रेम पात्र और बहुतों के न्यायपूर्वक स्नेह करने वाले, सब के सच्चे प्रेमी (भूतम्) होओ।

त्रीणि पदान्यश्विनोराविः सान्ति गुहा परः ।
कवी ऋतस्य पत्मभिरर्वाग्जीवेभ्यस्परि ॥ २३ ॥ २९ ॥

भा०—(त्रीणि) तीन (पदानि) स्थान, प्राप्तव्य विषय (अश्विनोः) विद्वान् स्त्री पुरुषों की (गुहा) बुद्धि में (परः) सब से अधिक उत्तम रीति से (आविः सन्ति) प्रकट होते हैं। उन (ऋतस्य) सत्य ज्ञान के (पत्मभिः) तीनों पदों से वे दोनों (अर्वाक्) साक्षात् (कवी) विद्वान् क्रान्तदर्शी होकर (जीवेभ्यः परि) जीवों के हितार्थ हों। 'ऋत' सत्याचरण, धर्म, यज्ञ और वेद ज्ञान के तीन पद ऋक्, सामः, यजुः मन्त्र, गीति

और क्रिया; ज्ञान, उपासना और यज्ञ हैं। वे तीनों विद्वानों की बुद्धि में उत्तम रूप से प्रकट हों। इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

[९]

शशकर्णः काण्व ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ४, ६ बृहती। १४, १५ निचृद् बृहती। २, २० गायत्री। ३, २१ निचृद् गायत्री। ११ विपाद् विराड् गायत्री। ५ उष्णिक् ककुप्। ७, ८, १७, १९ अनुष्टुप्। ९ पादनिचृदनुष्टुप्। १३ निचृदनुष्टुप्। १६ आर्ची अनुष्टुप्। १८ विराडनुष्टुप्। १० आर्षी निचृत् पंक्तिः। १२ जगती ॥ एकविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

आ नूनम॑श्विना युवं वत्सस्य॑ गन्तमव॑से।
प्रास्मै॑ यच्छतमवृकं पृथु छर्दिर्युयुतं या अरा॑तयः ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! (युवं) आप दोनों (नूनं) अवश्य ही (वत्सस्य अवसे) अपने अधीन आश्रय रहने वाले बच्चे, बालक, पुत्र भृत्यादि के रक्षण वा भोजनादि से तृप्ति और उनके प्रति प्रेम प्रदर्शन के लिये आप दोनों (आ गन्तम्) आया करो। इसी प्रकार (वत्सस्य अवसे) उत्तम उपदेष्टा विद्वान् की रक्षा और उसके ज्ञान और वृद्धि आदि के लिये उसके पास आया जाया करो। (अस्मै) उसको (पृथु छर्दिः) बड़ा विस्तृत गृह, शरण, (अवृकं) छल कपटरहित होकर (प्र यच्छतम्) प्रदान करो। (या अरातयः) जो न देने के क्षुद्रता आदि के विचार हैं उनको (युयुतं) दूर करो।

यद॒न्तरि॑क्षे॒ यद्दि॒वि यत्पञ्च॒ मानु॑षाँ॒ अनु॑।
नृ॒म्णं तद्ध॑त्तमश्विना ॥ २ ॥

भा०—(यत्) जो (नृम्णम्) धन (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में (यत् दिवि) जो आकाश में और (यत्) जो (पञ्च मानुषान् अनु) पांचों मनुष्यों के अनुकूल सुखदायी धन है (तत्) वह धन हे (अश्विना)

जितेन्द्रिय एवं अश्वादि के स्वामी वर्गो! आप लोग अवश्य (वतन्) धारण किया करो। आकाश में वायु, जल, मेघ, वृष्टि आदि और आकाश में सूर्य चन्द्र नक्षत्रादि पांचों मनुष्यों के अनुकूल भूमि पर्वत नदी जलाशय अन्न, फल, सुवर्ण, हिरण्यादि। ये पार्थिव विविध धन मनुष्य मात्र के सुखप्रद होने से 'धर्म' हैं। इनकी अवश्य रक्षा करनी चाहिये।

ये वां दंसांस्यश्विना विप्रासः परिमामृशुः।
एवेत्काण्वस्य बोधतम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय, उत्तम स्त्री पुरुषो! (ये) जो (विप्रासः) विद्वान् पुरुष (वां) आप लोगों के (दंसांसि) नाना प्रकार के कार्यों को (परि मामृशुः) करते और उन कार्यों पर विचार करते हैं, उनके किये कार्य और (काण्वस्य एव इत्) विद्वानों के किये ज्ञान, अनुष्ठान आदि का भी (बोधतम्) तुम ज्ञान प्राप्त करो।

अयं वां घर्मो अश्विना स्तोमेन परि षिच्यते।
अयं सोमो मधुमान्वाजिनीवसू येन वृत्रं चिकेतथः ॥ ४ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय पुरुषो! (वां) आप दोनों का (अयं) यह (घर्मः) तेजोयुक्त प्रभाव या सामर्थ्य है जिसको (स्तोमैः) स्तुति योग्य वचनों या वेदमन्त्रों द्वारा (परिषिच्यते) परिषेक किया जाता, जिसकी प्रतिष्ठा की जाती है। हे (वाजिनीवसू) ज्ञान, बलादि से युक्त क्रिया के धनी जनो! (अयं मधुमान् सोमः) यह मधुर अन्नादि से युक्त ऐश्वर्य या बलादायक बल है, (येन) जिससे आप दोनों (वृत्रं) जीवन के रोग दुःखादि विघ्न समूह को दूर करने में समर्थ हो। इसी बल वीर्य की ब्रह्मचर्यादि से तुम सदा रक्षा करो, इसी का महान् आदर है। इसी की लोक में प्रतिष्ठा है।

यदप्सु यद्वनस्पतौ यदोषधीषु पुरुदंससा कृतम्।
तेन माविष्टमश्विना ॥ ५ ॥ ३० ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय और उत्तम भोगों को भोगनेहारे! हे (पुरु-दंससा) नाना कर्मों को करने में समर्थ विद्वान् स्त्री पुरुषो! आप दोनों (यत् अप्सु) जो जलों, (यद् वनस्पतौ) जो वनस्पति और (यद् ओषधीषु) जो ओषधि, अन्नादि के प्राप्त करने के लिये (कृतम्) यत्न करते हो (तेन) उससे ही (मा अविष्टम्) तुम दोनों प्रजावत् मेरी रक्षा करते रहो। इति त्रिंशो वर्गः॥

यन्नासत्या भुरण्यथो यद्वा देव भिषज्यथः।
अयं वां वत्सो मतिभिर्न विन्धते हविष्मन्तं हि गच्छथः॥ ६॥

भा०—हे (नासत्या) असत्याचरण न करने वाले सदा सत्यकर्मा, सत्यभाषी, सत्यव्रती होकर आप दोनों (हविष्मन्तं हि) नासिकास्थ प्राणों के समान उत्तम अन्न वाले प्रजाजन को माता पितावत् (भुरण्यथः) पालन करते हो, (यद्वा) जो आप दोनों (हविष्मन्तं हि भिषज्यथः) उत्तम पवित्र अन्न वाले के ही रोगों को दूर करते हो और (हविष्मन्तं हि गच्छथः) उत्तम अन्नादि के स्वामी राष्ट्रवासी जन को ही तुम प्राप्त होते हो, (अयं) यह (वत्सः) राष्ट्र निवासी जन बालक के समान होकर ही (मतिभिः) बुद्धियों वा स्तुतियों से भी (वां) तुम दोनों को (न विन्धते) प्राप्त नहीं कर सकता, अर्थात् केवल गुणस्तवन मात्र से यह तुम्हारे उपकार से उऋण नहीं हो सकता है।

आ नूनमश्विनोर्ऋषिः स्तोमं चिकेत वामया।
आ सोमं मधुमत्तमं घर्मं सिञ्चादथर्वणि॥ ७॥

भा०—(ऋषिः) मन्त्रार्थ द्रष्टा विद्वान् पुरुष (नूनम्) अवश्य ही, (वामया) अपनी उत्तम बुद्धि से और अच्छी रीति से (अश्विनोः) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों को (स्तोमं) उत्तम स्तुति योग्य मन्त्रों का उपदेश (आचिकेत) करे, उनको उसका ज्ञान दे। (अथर्वणि) स्थिर, शान्त प्रज्ञावान् पुरुष में ही वह अग्नि (घर्मः) तीव्र घृत वा तेज के समान (मधुम-

त्तमम्) वा अति मधुर (सोमं) ओषधि रसवत् उत्तम ज्ञान और तेज का (सिञ्चात्) सेचन, प्रदान करे। अथवा वह विद्वान् गुरु (अथर्वणि) अथर्ववेद की समाप्ति पर वा अहिंसा शम, आदि भाव में (मधुमत्तमं) उत्तम वेद के ज्ञान से युक्त (सोमं) विद्याक्षेत्र में उत्पन्न (घर्मं) सुतप्त, तपस्वी, तेजस्वी शिष्य को (सिञ्चात्) स्नान करावे, उसे स्नातक बनावे।

अथवा—सवनं यज्ञः, यजुर्वेदः, मधु ऋग्वेदः। घर्मः सामवेदः। तेषु निष्णातं शिष्यमथर्वणि सिञ्चेत् अथर्ववेदे व्युत्पादयेत्॥

आ नूनं रघुवर्तनिं रथं तिष्ठाथो अश्विना।
आ वां स्तोमा इमे मम नभो न चुच्यवीरत॥ ८॥

भा०—हे (अश्विना) अश्वादि वेगवान्, बलवान् इन्द्रियं, प्राण और मन को वश में रखने वाले आप दोनो! (नूनं) अवश्य ही (रघु-वर्तनिं) लघु अर्थात् शीघ्र वेग से युक्त वा (रघु-वर्तनिं) स्वल्प, छोटे मार्ग से जाने में समर्थ, (रथं) रमणीय रथ पर (आ तिष्ठथः) विराजा करो। (वां) आप दोनों को लक्ष्य करके (इमे) मेरे (स्तोमाः) स्तुत्य वचन, (नभः न) आकाश में सूर्य के प्रति किरणोंवत् वा पवनवत् (चुच्युवीरत) प्राप्त हों।

यदद्य वां नासत्योक्थैराचुच्युवीमहि।
यद्वा वाणीभिरश्विनेवेत्काण्वस्य बोधतम्॥ ९॥

भा०—हे (नासत्या) सत्यभाषी, सत्यकर्मा, प्रमुख स्त्री पुरुषो! (यत् अद्य) जो आज, (वां) आप दोनों के प्रति हम (उक्थैः) उत्तम वचनों सहित (अचुच्यवीमहि) प्राप्त हों और आप दोनों (यद् वा) जो भी (अश्विना इव) 'अश्व' अर्थात् इन्द्रियों के स्वामी जितेन्द्रिय होकर (कण्वस्य इव) विद्वान् पुरुष की (वाणीभिः) वाणियों से (बोधतम्) ज्ञान प्राप्त किया करो।

यद्वां कक्षीवाँ उत यद्व्यश्व ऋषिर्यद्वां दीर्घतमा जुहाव।
पृथी यद्वां वैन्यः सादनेष्वेवेदतो अश्विना चेतयेथाम् ॥१०॥३१॥

भा०—हे (अश्विनौ) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो! अश्व सैन्यादि के स्वामी राजा सेनापति आदि पुरुषो! (वां) तुम दोनों को (यत्) जिससे (कक्षीवान्) अंगुलियों वाला, सिद्धहस्त, कुशल वा अश्वों की बागडोर अपने हाथों में रखने वाला पुरुष, (उत) और (यत्) जब (व्यश्वः) विविध या विशेष अश्वों या विद्वानों का स्वामी, विविध विद्याओं में निष्णात और (यत्) जिस कारण से (दीर्घतमाः) बड़ी २ लम्बी चौड़ी आकांक्षाओं वाला, उत्साही (ऋषिः) दूरदर्शी पुरुष (वां वां) तुम लोगों को (जुहाव) उत्तम उपदेश करे वा तुम्हें किसी उत्तम कार्य के लिये बुलावे और (यद्वा) जिससे तुम दोनों को (वैन्यः) तेजस्वी, यश का इच्छुक (पृथी) बड़े राष्ट्र-ऐश्वर्य का स्वामी (सादनेषु) नाना स्थानों, पदों पर (एव जुहाव इत्) कार्य करने के लिये बुलावे (अतः) उससे पूर्व हे जितेन्द्रिय पुरुषो! आप दोनों अवश्य (चेतयेथाम्) ज्ञान प्राप्त करलो। अर्थात् स्त्री पुरुषों को बाल्यकाल में खूब ज्ञान प्राप्त करना चाहिये जिससे कोई अधिकारी सेनापति, उत्साही विजिगीषु यशोर्थी राजा आदि उनको उत्तम पदों पर नियुक्त करने के लिये सादर बुलावे। एकत्रिंशो वर्गः॥

यातं छर्दिष्पा उत नः परस्पा भूतं जगत्पा उत नस्तनूपा।
वर्तिस्तोकाय तनयाय यातम् ॥ ११ ॥

भा०—हे (अश्विनौ) जितेन्द्रिय एवं अश्व रथादि के स्वामी जनो! आप दोनों (नः) हमारे (तोकाय तनयाय) पुत्र पौत्रादि के हितार्थ (वर्त्तिः यातम्) वृत्ति या वेतनादि भी प्राप्त करो। आप दोनों (नः) हमारे (छर्दिष्पा भूतम्) गृहों की रक्षा करने वाले होवो। (नः परस्पा भूतम्) हमें शत्रु से बचाने वाले होवे। (उत नः जगत्पा तनूपा भूतम्) और हमारे जंगम पशु सम्पत्ति और हमारे शरीरों के भी रक्षक होवो।

यदिन्द्रे॑ण स॒रथं॑ या॒थो अ॑श्विना॒ यद्वा॑ वा॒युना॒ भव॑थः॒ समो॑कसा।
यदा॑दि॒त्येभि॑र्ऋ॒भुभिः॑ स॒जोष॑सा॒ यद्वा॒ विष्णो॑र्वि॒क्रम॑णेषु॒ तिष्ठ॑थः॥१२

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय, अश्वादि के स्वामी, व्यापक सामर्थ्यवान् स्त्री पुरुषो ! (यत्) जो आप दोनों (इन्द्रेण) ऐश्वर्यवान् शत्रु-विनाशी राजा सेनापति आदि के साथ (स-रथं याथः) रथ के साथ रथ चलाकर प्रयाण करते, वा (स-रथं याथः) सरण या युद्ध यात्रा करते हो, (यद्वा) अथवा जो आप दोनों (वायुना समोकसा) वायु और वायुवत् बलवान् सेनापति के समान भवन या पद वाले (भवथः) हो जाओ। (यद्) या जो आप दोनों (ऋभुभिः) सत्य ज्ञान से प्रकाशित (आदित्येभिः) आदित्यवत् तेजस्वी, ब्रह्मचारी विद्वानों के साथ (स-जोषसा) समान प्रीति युक्त होवो (यद् वा) या तुम दोनों (विष्णोः) व्यापक बलशाली राजा के (विक्रमणेषु) विशेष विक्रम के कार्यों में (तिष्ठथः) उच्चासनों पर विराजो, वा (विष्णोः विक्रमणेषु) परमेश्वर की बनाई सृष्टियों में ज्ञानपूर्वक स्थिर रहो यही तुम्हारे लिये आदर्श, उत्तम कर्त्तव्य और अधिकार है। अर्थात् प्रत्येक स्त्री पुरुष इन उच्च २ पदों तक पहुंचने के लिये साधिकार हैं कि वे यत्न करें और बढ़ें।

यद॒द्याश्विना॑व॒हं हु॒वेय॒ वाज॑सातये।
यत्पृ॒त्सु तु॒र्वणे॒ सह॒स्तच्छ्रेष्ठ॑म॒श्विनो॒रवः॑॥ १३॥

भा०—और (यत्) जो (अद्य) आज मैं (अश्विनौ) जितेन्द्रिय और अश्वादि के नायकों को (वाज-सातये) अन्न, ऐश्वर्यादि प्राप्ति के लिये सदावत् (हुवेय) बुलाया करूं। (यत्) क्योंकि जो (पृत्सु) संग्राम में (तुर्वणे) शत्रु के नाश करने में (सहः) शत्रु पराजयकारी बल है (तत्) वही (अश्विनोः) उन जितेन्द्रिय अश्वादि के स्वामी, जनों का (श्रेष्ठं अवः) सर्वश्रेष्ठ बल और रक्षा सामर्थ्य है। यदि राष्ट्र के स्त्री पुरुष

युद्ध-काल में शत्रु को परास्त नहीं कर सकें तो वे कुछ नहीं, उनका अन्न वेतनादि पाना, भोजन करना, ऐश्वर्य भोगना आदि सब व्यर्थ है और पाप है।

आ नूनं यातमश्विनेमा हुव्यानि वां हिता ।
इमे सोमासो अधि तुर्वशे यदाविमे कण्वेषु वामथ ॥ १४ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय पुरुषो ! (तुर्वशे) चतुर्वर्गों की कामना करने वाले और (यदौ) यत्नशील, राष्ट्र प्रजाजन और (कण्वेषु) विद्वान् पुरुषों के (अधि) बीच में (वाम्) तुम दोनों को (इमे सोमासः) ये नाना बल, अधिकार और ऐश्वर्य प्राप्त हों और (नूनं) अवश्य ही (इमा) ये (हव्यानि) ग्रहण करने योग्य ऐश्वर्य और अन्न भी (वां हिता) आप लोगों के लिये नियत रूप से हैं, अब आदरपूर्वक (आ यातम्) आओ और स्वीकार करो ।

यन्नासत्या पराके अर्वाके अस्ति भेषजम् ।
तेन नूनं विमदाय प्रचेतसा छुर्दिर्वृत्साय यच्छतम् ॥१५॥३२॥

भा०—हे (नासत्या) असत्य ज्ञान से रहित, सदा सत्य, सुपरीक्षित ज्ञान वाले विद्वान् पुरुषो ! (यत् भेषजम् पराके) रोगादि के नाश करने वाला जो पदार्थ दूर देश में हो था जो (अर्वाके भेषजम् अस्ति) समीप स्थान में औषधादि हो (तेन) उससे हे (प्र-चेतसा) उत्तम ज्ञान और चित्त वाले दयालु जनो ! (वत्साय) पुत्रवत् राष्ट्र में बसे प्रजाजन के उपकार के लिये (वि-मदाय) विशेष हर्ष और आनन्द लाभ के लिये (नूनं) अवश्य (छर्दिः यच्छतम्) गृह, आवास प्रदान करो । उत्तम ओषधि आदि के द्वारा समस्त प्रजा को सुख से राष्ट्र में बसने का मौका दो । जिससे सब नगर गृहादि नीरोग और सुखप्रद हों । इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

अभुत्स्यु प्र देव्या साकं वाचाहमश्विनोः ।
व्यावर्देव्या मतिं वि रातिं मर्त्येभ्यः ॥ १६ ॥

भा०—मैं (अश्विनोः) दिन रात दोनों में (देव्या) प्रकाशमान

उषा के समान कान्तियुक्त और स्त्री पुरुषों में से (देव्या) गुणवती विदुषी के समान ज्ञानवती (अश्विनोः) विद्या के पारंगत स्त्री पुरुषों की (वाचा) वाणी से (प्र अभुत्सि) उत्तम रीति से प्रबोध, ज्ञान जागृति को प्राप्त होऊं । हे (देवि) विदुषि ! हे वाणि ! तू (मर्त्येभ्यः) मनुष्यों के हितार्थ (मतिं वि आ आवः) उत्तम सुमति और ज्ञान को विशेष रूप से प्रकट कर । और (रातिं वि आवः) दान भी विविध प्रकार से प्रदान कर ।

प्र बो॑धयोषो अ॒श्विना॒ प्र दे॑वि सूनृते महि ।
प्र य॑ज्ञहोतरानु॒षक्प्र मदा॑य॒ श्रवो॑ बृ॒हत् ॥ १७ ॥

भा०—हे (उषः) उषा प्राभातिक सूर्य की कान्ति के समान सुशोभित देवि ! हे (देवि) विदुषि ! ज्ञान का प्रकाश देने वाली ! दानशीले ! हे (सुनृते) उत्तम सत्य ज्ञान से युक्त ! हे (महि) पूज्ये ! जिस प्रकार उषा सब को जगाती है उसी प्रकार तू भी (प्र प्र बोधय) अच्छी प्रकार सब को ज्ञानोपदेश करके जगा । हे देवि ! गृह में तू ही सबसे प्रथम उठकर पति, बालक आदि को भी जगाया कर। हे (यज्ञ-होतः) यज्ञ में होता के समान गृहस्थ, यज्ञ में सत्पात्रों में धन अन्न आदि के देने वाले पुरुष ! तू भी (आनुषक्) निरन्तर (प्र बोधय) उत्तम ज्ञान का उपदेश किया कर । (मदाय) तृप्ति और आनन्द प्राप्ति के लिये (बृहत् श्रवः) बहुत उत्तम अन्न प्रदान कर और (बृहत् श्रवः) बड़े उत्तम श्रवण योग्य वेदोपदेश देकर सबको शुद्ध और ज्ञानवान् कर ।

यदु॑षो॒ यासि॑ भा॒नुना॒ सं सूर्ये॑ण रोचसे ।
आ हा॒यम॒श्विनो॒ रथो॑ व॒र्तिर्या॑ति नृ॒पाय्य॑म् ॥ १८ ॥

भा०—हे (उषः) कान्तिमति ! विदुषि ! तू जब प्राभातिक सूर्य की दीप्ति के समान (भानुना) प्रकाश के साथ (यासि) गमन करती है और (सूर्येण) सूर्यवत् कान्तिमान् तेजस्वी पुरुष से (सं रोचसे) युक्त होकर अधिक अच्छी लगती है तभी (अश्विनोः) आप दोनों जितेन्द्रिय

वर वधू, पति पत्नी का (अयम्) यह (रथः) रमणीय सुन्दर गृहस्थ रूप एक रथ, (नृपाय्यं वर्त्तिः याति) मनुष्यमात्र को पालन करने वाले गृह अर्थात् प्रजापति पद या मार्ग की ओर गति करता है। इसी प्रकार (उषा) शत्रु को दग्ध करने और राष्ट्र को वश करने वाली सेना जब सूर्यवत् तेजस्वी सेनापति को वरती है तो उनका वेगवान् रथ राष्ट्रवासी मनुष्यों के पालन के मार्ग पर गमन करे। तब उनका धर्म प्रजापालन है।

यदापीतासो अंशवो गावो न दुह्र ऊर्धभिः।
यद्वा वाणीरनूषत प्र देवयन्तो अश्विना॥ १९॥

भा०—जिस प्रकार (गावः ऊधभिः दुह्रे) गौवें स्तन-मण्डलों से दूध देती हैं उसी प्रकार (यत्) जब (आपीतासः) ईषत् पिंगल वर्ण के, वा ज्ञान को सब प्रकार से पान किये हुए प्रदान करते और जब (देवयन्तः) देव, प्रभु की कामना करते हुए (प्र अनूषत) वाणियों का उच्चारण करती हैं उस समय हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो! आप दोनों भी उसका उत्तम लाभ लो।

प्र द्युम्नाय प्र शवसे प्र नृषाह्याय शर्मणे।
प्र दक्षाय प्रचेतसा॥ २०॥

भा०—हे (प्र-चेतसा) उत्तम चित्त और ज्ञान वाले जनो! आप दोनों (द्युम्नाय) उत्तम ऐश्वर्य, (शवसे) बल और (नृ-षाह्याय) सब शत्रु-नायकों को पराजय करने; (शर्मणे) शत्रुहिंसक बल और प्रजा को शान्तिदायक शरण देने और (दक्षाय) बल और ज्ञान को प्राप्त करने के लिये (प्र प्र प्र प्र) सदा उत्तम से उत्तम मार्ग पर आगे बढ़ो।

यन्नूनं धीभिरश्विना पितुर्योना निषीदथः।
यद्वा सुम्नेभिरुक्थ्या॥ २१॥ ३३॥

भा०—(यत्) जब हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो! (नूनं) निश्चय से (धीभिः) उत्तम कर्मों (यद्वा) और जब (सुम्नेभिः) सुख-

जनक कार्यों से (पितुः योना) अपने पूज्य माता पिता गुरु के गृह में (निषीदथः) खूब दृढ़ हो जाते हो तब आप दोनों (उक्था) उत्तम प्रशंसा योग्य हो जाते हो। इति त्रयोदिंशो वर्गः ॥

[१०]

प्रगाथः काण्व ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ५ आर्ची स्वराड् बृहती। २ त्रिष्टुप्। ३ आर्ची भुरिगनुष्टुप्। ४ आर्चीभुरिक् पंक्तिः। ६ आर्षी स्वराड् बृहती ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

यत्स्थो दीर्घप्रसद्मनि यद्वादो रोचने दिवः।
यद्वा समुद्रे अध्याकृते गृहेऽत आ यातमश्विना ॥ १ ॥

भा०—(यत्) यदि तुम दोनों (दीर्घ-प्र-सद्मनि) बड़े भवनों वाले नगर में (स्थः) होवो, (यद्वा) या चाहे आप दोनों (अदः) इस दूरस्थ (दिवः रोचने) पृथिवी के क्रीड़ा, विनोदयुक्त किसी रुचिकर स्थान में होवो (यद्वा) अथवा चाहे (समुद्रे) जल में या समुद्र से घिरे गृह में (अधि स्थः) बैठे हो, तो भी हे (अश्विना) वेग से चलने वाले अश्वादि साधनों से सम्पन्न जनो ! आप (अतः आ यातम्) वहां से आया जाया करो।

यद्वा यज्ञं मनवे संमिमिक्षथुरेवेत्काण्वस्य बोधतम्।
बृहस्पतिं विश्वान्देवाँ अहं हुव इन्द्राविष्णू अश्विनावाशुहेषसा २

भा०—(यद्-वा) और जब आप दोनों (मनवे) मनुष्य मात्र के हित के लिये (यज्ञं सं मिमिक्षथुः) यज्ञ को परस्पर मिलकर एक साथ करो, तब भी (एव इत् काण्वस्य बोधतम्) विद्वान् जनों को उसका ज्ञान करा दिया करो। (बृहस्पतिम्) सबसे बड़े राष्ट्र और वेद वाणी के पालक, और (विश्वान् देवान्) समस्त मनुष्य प्रजावर्ग या विद्याभिलाषी विद्यार्थियों को और (इन्द्राविष्णू) ऐश्वर्यवान् राजा व्यापक सामर्थ्य वाले सेनापति

इन दोनों को और (आशु-हेपसा) शीघ्र ही उत्तम ध्वनि करने वाले (अश्विना) अश्वारोही वा जितेन्द्रिय जनों को (अहं हुवे) आदर पूर्वक प्रार्थना करूं कि वे मेरे यज्ञ में अवश्य आया करें।

त्या न्व१श्विना हुवे सुदंससा गृभे कृता।
ययोरस्ति प्र णः सख्यं देवेष्वध्याप्यम् ॥ ३ ॥

भा०—(त्या अश्विना नु हुवे) मैं उन दोनों जितेन्द्रिय, गृहस्थ स्त्री-पुरुषों को आदरपूर्वक निमन्त्रित करूं जो दोनों (सु-दंससा) उत्तम कर्मों का आचरण करने वाले और (गृभे कृता) गृह में एकत्र पति पत्नी रूप से बने हों, (ययोः) जिन में (नः सख्यं प्र अस्ति) हमारा उत्तम सौहार्द हो और (ययोः) जिनका (आप्यं) बन्धुभाव (देवेषु) विद्वानों के बीच में (प्र अस्ति) उत्तम हो।

ययोरधि प्र यज्ञा असूरे सन्ति सूरयः।
ता यज्ञस्याध्वरस्य प्रचेतसा स्वधाभिर्या पिबतः सोम्यं मधु॥४॥

भा०—(ययोः अधि) जिन दोनों स्त्री पुरुषों के ऊपर (यज्ञाः) यज्ञ, उत्तम कर्म और (असूरे) सूर्यरहित, अन्धकार युक्त काल या देश में भी (ययोः अधि) जिन के अधीन वा जिनपर नाना (सूरयः) विद्वान् आश्रय पाते वा अध्यक्ष हैं। (या) जो दोनों (स्वधाभिः) अन्नों सहित (सोम्यं मधु पिबतः) ओषधिरस युक्त मधुर जल मधु आदि मधुर पदार्थ का पान करते हैं (ता) वे दोनों (प्र-चेतसा) उत्तम विद्वान्, शुभ-चित्तवान् होकर (अध्वरस्य यज्ञस्य) हिंसा रहित वा अक्षय यज्ञ के (स्वधाभिः) अन्नादि से करने वाले हों।

यदद्याश्विनावपाग्यत्प्राक्स्थो वाजिनीवसू।
यद्द्रुह्यव्यनवि तुर्वशे यदौ हुवे वामथ मा गतम् ॥ ५ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! (यद् अद्य) जो तुम दोनों (अपाग्) पश्चिम में या (यत्) जो (प्राक् स्थः) पूर्व में भी

होवो, हे (वाजिनीवसू) विद्या और बलशक्ति युक्त क्रिया से सम्पन्न विद्वानो ! (यद्) यदि तुम दोनों (द्रुह्यवि) परस्पर के द्रोही जनों में, (तुर्वशे) एक दूसरे के हिंसक जनों में और (अनवि) छोटे या अप्रसिद्ध जनों में या (यदौ) यत्नशील उद्योगी श्रमी जनों में भी होवो तो मैं अवश्य (अद्य) आज ही तुरन्त (हुवे) आदरपूर्वक निमन्त्रित करूं। (अथ) और तुम दोनों (मा गतम्) मुझे अवश्य प्राप्त हो। उत्तम जितेन्द्रिय स्त्री पुरुष कहीं भी हों और किसी भी जनसमाज में हों उनको आदरपूर्वक निमन्त्रित कर लेना चाहिये।

यद॒न्तरि॑क्षे॒ पत॑थः पुरुभुजा॒ यद्वे॒मे रोद॑सी॒ अनु॑।
यद्वा॑ स्व॒धाभि॑रधि॒तिष्ठ॑थो॒ रथ॒मत॒ आ या॑तमश्विना ॥६॥३४॥

भा०—हे (अश्विना) आशुगामी अश्वों और यन्त्रों के जानने और बनानेवाले शिल्पकार जनो ! (यत्) जो आप दोनों (पुरु-भुजा) बहुतों को पालने में समर्थ होकर (अन्तरिक्षे पतथः) अन्तरिक्ष मार्ग से गमन करते हो, (यत् वा) और जो आप दोनों (इमे रोदसी अनु पतथः) इन आकाश और पृथिवी दोनों में सुख से विचर सकते हो (यद् वा) और जो आप दोनों (स्व-धाभिः) स्वयं अपने आप धारण करने में समर्थ शक्तियों से (रथम्) वेग से चलने वाले यन्त्र पर (अधि तिष्ठथः) अध्यक्ष रूप से विराजते हो वे आप दोनों (अतः आयातम्) उस प्रयोजन से हमारे पास आया करो। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[११]

वत्सः काण्व ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ आर्ची भुरिग्गायत्री। २ वर्धमाना गायत्री। ३, ५—७, ९ निचृद् गायत्री। ४ विराड् गायत्री। ८ गायत्री। १० आर्ची भुरिक् त्रिष्टुप् ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

त्वम॑ग्ने व्रत॒पा अ॑सि दे॒व आ मर्त्ये॒ष्वा। त्वं य॒ज्ञेष्वीड्यः॑ ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! सर्वव्यापक! अग्निवत् तेजस्विन् सत्यार्थ के प्रकाशक! विद्वन्! राजन्! प्रभो! (त्वं) तू (व्रतपाः असि) व्रतों, सत्कर्मों, धर्मों का पालक है। और (मर्त्येषु आ) मनुष्यों में भी तू (देवः) सब सुखों का दाता, दीप्तिमान् है। (त्वं) तू (यज्ञेषु) समस्त यज्ञों में (ईड्यः) स्तुति करने योग्य, पूज्य और चाहने योग्य है।

त्वमसि प्रशस्यो विदथेषु सहन्त्य । अग्ने रथीरध्वराणाम् ॥२॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन्! हे (सहन्त्य) शत्रुओं के पराजयकारिन्! हे सब के साथ व्यापक! (त्वम्) तू (विदथेषु) यज्ञों, संग्रामों और ज्ञान लाभ के अवसरों में (प्रशस्यः असि) सब से प्रशंसा करने और उत्तम रीति से उपदेश करने योग्य है। तू ही (अध्वराणाम्) यज्ञों और सन्मार्गों, मोक्ष मार्ग में जाने वालों में (रथीः) रथवान् के समान सुख से मार्ग पार करा देने और अन्तिम लक्ष्य तक पहुंचा देने हारा है।

स त्वमस्मदप द्विषो युयोधि जातवेदः । अदेवीरग्ने अरातीः ॥३॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी! नायक! अग्निवत् तेजस्विन्! हे (जातवेदः) समस्त उत्पन्न पदार्थों के जानने हारे! सब में व्यापक प्रभो! विद्यावान् विद्वन् और ऐश्वर्य के स्वामिन्! राजन्! (त्वं) तू (सः) वह (द्विषः) द्वेष करने वालों और द्वेष के योग्य भाव क्रोधादि अन्तःशत्रुओं को भी और (अरातीः अदेवीः) शुभ उत्तम गुणों से रहित दान या अनेक उचित अधिकारों को न देने वाले भावों, प्रवृत्तियों और व्यक्तियों को भी (अस्मत् अप युयोधि) हम से दूर कर।

अन्ति चित्सन्तमह यज्ञं मर्तस्य रिपोः । नोप वेषि जातवेदः ॥४॥

भा०—हे (जातवेदः) समस्त पदार्थों को जानने हारे प्रभो! हे कृतविद्य विद्वन्! (रिपोः मर्तस्य) पापी पुरुष के (अन्ति चित् सन्तं यज्ञं) अति समीप विद्यमान यज्ञ को (न उप वेषि) प्राप्त नहीं होता,

नहीं स्वीकार करता, तू शत्रुता के भाव को रखने वाले मनुष्य के यज्ञ, पूजा, आदर भाव वा दान को स्वीकार नहीं करता।

मर्ता अमर्त्यस्य ते भूरि नाम मनामहे। विप्रासो जातवेदसः॥५॥२५॥

भा०—हे प्रभो! विभो! (जात-वेदसः) समस्त उत्पन्न पदार्थों में व्यापक सर्वैश्वर्यवान्, सर्वज्ञ (ते) तुझ (अमर्त्यस्य) अविनाशी के (भूरि नाम) बहुत सेनामों से हम (मर्त्ताः) मनुष्य, जीवगण (मनामहे) तेरी स्तुति करते हैं।

विप्रं विप्रासोऽवसे देवं मर्तास ऊतये। अग्निं गीर्भिर्हवामहे ॥६॥

भा०—हम (विप्रासः मर्त्तासः) विद्वान् बुद्धिमान् मनुष्य (अवसे) रक्षा, ज्ञान, आत्मसंतोष, प्रीति सुखादि के लिये और (ऊतये) तुझे प्राप्त होने के लिये (विप्रं) विविध ऐश्वर्यों के पूरक (देवं) प्रकाशमान (अग्निं) ज्ञानस्वरूप को हम (गीर्भिः) नाना वेदवाणियों से (हवामहे) स्तुति करते हैं।

आ ते वत्सो मनो यमत्परमाच्चित्सधस्थात्।
अग्ने त्वांकामया गिरा ॥ ७ ॥

भा०—हे (अग्ने) प्रकाश स्वरूप! (वत्सः) तेरी स्तुति करने हारा उपासक तेरे पुत्रवत् प्रिय (परमात् चित् सधस्थात्) परम, सर्वोत्कृष्ट तेरे साथ एकत्र रहने की स्थिति से (ते) तुझे प्राप्त करने के लिये (त्वांकामया गिरा) तुझे चाहने वाली, भक्ति भरी वाणी से (मनः) अपने मन को (आ यमत्) सब ओर से रोके और तेरे ही में लगावे।

पुरुत्रा हि सदृङ्ङसि विशो विश्वा अनु प्रभुः।
समत्सु त्वा हवामहे ॥ ८ ॥

भा०—हे प्रभो! राजन्! तू (पुरुत्रा) बहुत से स्थानों में भी सूर्यवत् (सदृङ् असि) एक समान सब को देखने और दीखने हारा सर्वत्र एक रस है, तू (विश्वाः विशः अनु) समस्त प्रजाओं के ऊपर अनुग्रह

करने हारा, (प्रभुः) सर्वोत्तम शासक प्रभु है। (त्वा) तुझ से ही (समत्सु) हर्ष के अवसरों और युद्धों में भी (हवामहे) प्रार्थना करते हैं।

समत्स्वग्निमवसे वाजयन्तों हवामहे। वाजेषु चित्रराधसम्॥९॥

भा०—हम (समत्सु) संग्राम में और एक साथ मिलकर आनन्द अनुभव करने के अवसरों में और (वाजेषु) ऐश्वर्यों, ज्ञानों, अन्नों के निमित्त (चित्र-राधसम्) अद्भुत धन के धनी, (अग्निम्) सर्वव्यापक, अग्रणी, ज्ञानस्वरूप प्रभु की (अवसे) रक्षा, पालन, ज्ञान आदि के लिये ही (वाजयन्तः) ऐश्वर्य ज्ञानादि की कामना करते हुए हम लोग (हवामहे) स्तुति करते हैं।

प्रत्नो हि कमीड्यों अध्वरेषु सनाच्च होता नव्यश्च सत्सि।
स्वां चाग्ने तन्वं पिप्रयस्वास्मभ्यं च सौभगमा यजस्व१०।३६।८।५

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् स्वप्रकाश! सब जगत् से पूर्व विद्यमान! सबके नायक! (हि) जिससे तू (प्रत्नः) सबसे पुराना, अनादि काल से विद्यमान (ईड्यः कम्) स्तुति योग्य, उपास्य (अध्वरेषु) अविनाशी पदार्थों में, यज्ञों में भी स्तुति करने योग्य है, तू (नव्यः च) अति स्तुति योग्य, सदा नवीन और (सनात् च) सनातन काल से ही (होता) सर्व सुखदाता होकर (सत्सि) विराजता है। तू (स्वां च तन्वं) अपने ही विस्तृत सृष्टि को (पि प्रयस्व) पालन और तृप्त कर उसको कर्मानुसार भोग भुगा और (अस्मभ्यं च) हमें भी (सौभगम् आ यजस्व) उत्तम २ ऐश्वर्य प्रदान कर। इति षट्त्रिंशो वर्गः॥ इत्यष्टमोऽध्यायः॥

* इति पञ्चमोऽष्टकः समाप्तः॥

इति श्रीविद्यालंकार-मीमांसातीर्थविरुदोपशोभितेन श्रीमत्पण्डितजयदेव-शर्मणा विरचित आलोकभाष्ये पञ्चमोऽष्टकः समाप्तः॥

॥ ओ३म् ॥

अथ षष्ठोऽष्टकः

प्रथमोऽध्यायः

[१२]

पर्वतः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ८, ६, १५, १६, २०, २१, २५, ३१, ३२ निचृदुष्णिक् । ३—६, १०—१२, १४, १७, १८, २२—२४, २६—३० उष्णिक् । ७, १३, १६ आर्षीविराडुष्णिक् । ३३ आर्ची स्वराडुष्णिक् ॥ त्रयस्त्रिंशदृचं सूक्तम् ॥

य इन्द्र सोमपातमो मदः शविष्ठ चेतति ।
येना हंसि न्य१त्रिणं तमीमहे ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रुओं के नाशक ! हे (शविष्ठ) बलशालिन् ! हे ज्ञानवन् ! (यः) जो तू (सोम-पातमः) सोम, ऐश्वर्य की और जगत् वा राष्ट्र-प्रजाजन की पुत्रवत्, ओषधिवनस्पति आदि को मेघ वा सूर्यवत् उत्तम रीति से पालन करने वाला और (मदः) सबको तृप्त एवं प्रसन्न करने वाला, आनन्दमय होकर (चेतति) सबको ज्ञान प्रदान करता है और (येन) जिस कारण से तू (अत्रिणं) जगत् के, प्रजा के भक्षक, नाशक का (नि हंसि) विनाश करता है अतः (तम्) उस तुझको हम लोग (ईमहे) प्राप्त होते और तुझ से रक्षादि की याचना-प्रार्थना करते हैं । अत्र ज्ञान देने और पालन, रक्षा करने वाले प्रभु की हम सदा स्तुति करें, उसी से सब कुछ मांगें ।

येना॑ दश॒ग्वमध्रि॑गुं वे॒पय॑न्तं॒ स्व॑र्णरम्।
येना॑ समु॒द्रमावि॑था॒ तमी॑महे ॥ २ ॥

भा०—(येन) जिससे या जो हे प्रभो ! राजन् ! तू (दशग्वम्) 'दशगु' दश भूमि या दस ग्रामों के स्वामी को और (अध्रिगु-अधिगु) इससे भी अधिक भूमियों के स्वामी को और (स्वःनरं) सबके नेता, सुखों के प्रदान करने वा ज्ञानोपदेश के देने वाले विद्वान् जन को और (वेपयन्तं) शत्रुओं को कंपाने वाले बलवान् को और (येन) जिस कारण से तू (समुद्रम्) समुद्रवत् अपार, उमड़ने वाले, उत्साही राष्ट्र प्रजाजन और सैन्य बल को (आविथ) रक्षा करता, प्राप्त करता और उसका पोषण करता है इससे हम सब (तम्) उस तुझको (ईमहे) प्राप्त होते और तुझ से प्रार्थना करते हैं। अध्यात्म में—'दशगु' दश इन्द्रियों का स्वामी और अध्रिगु अधिक गति वाला, अधिक ज्ञानी आत्मा, सबका सञ्चालक 'स्वर्नर' वायु, प्राण और 'समुद्र' जलमय सागर और आकाश इन सब की प्रभु रक्षा करता है। वही सर्वोपास्य स्तुत्य, शरणीय है।

येन॒ सिन्धुं॑ म॒हीर॒पो रथाँ॑ इव प्रचो॒दयः॑।
पन्था॑मृ॒तस्य॒ यात॑वे॒ तमी॑महे ॥ ३ ॥

भा०—(येन) जिस कारण वा जो तू हे भगवन् ! जिस प्रकार (रथान् इव) रथों, रथारोही वीरों को और (सिन्धुम्) अश्व सैन्यों को और (महीः) भूमिवासिनी प्रजाओं को और (अपः) आप्त जनों को राजावत् उत्तम मार्ग में चलाता है उसी प्रकार तू (सिन्धुं) महान् समुद्र को (महीः अपः) भूमियों और जलों को (प्रचोदयः) उत्तम उद्देश्य के लिये चला या प्रेरित कर रहा है। (ऋतस्य पन्थाम् यातवे) सत्य के मार्ग पर चलने के लिये (तं) उसी देवों के देव, राजाओं के राजा तुझ को हम (ईमहे) प्राप्त होते हैं।

इमं स्तोममभिष्टये घृतं न पूतमद्रिवः ।
येना नु सद्य ओजसा ववक्षिथ ॥ ४ ॥

भा०—हे प्रभो ! (येन) जो तू (सद्यः) सदा समान सब दिनों (ओजसा) बड़े भारी बल पराक्रम से महान् राजा के समान (ववक्षिथ) समस्त जगत् को धारण कर रहा है, तू सबसे महान् है, हे (अद्रिवः) अखण्ड शक्तिशालिन् ! अतः हम भी (अभिष्टये) अपने अभिलषित फल को प्राप्त करने के लिये (घृतं न पूतं) पवित्र जल के समान स्वच्छ एवं तृप्ति सुख और आरोग्यकारक और (घृतं न पूतम्) पवित्र प्रकाशमय तेज के समान परम पावन, अन्तःकरण के प्रकाशक (इमं स्तोमं) इस स्तुति-वचन वेदमय ज्ञान को (ईमहे) तेरे से प्राप्त करते हैं । उसी स्तुत्य ज्ञान प्रकाश की तुझ से याचना करते हैं ।

इमं जुषस्व गिर्वणः समुद्र इव पिन्वते ।
इन्द्र विश्वाभिरूतिभिर्ववक्षिथ ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शक्तिशालिन् ! इस संसार के द्रष्टः ! तू (विश्वाभिः) समस्त (ऊतिभिः) रक्षा और शक्तियों से (ववक्षिथ) इस संसार को धारण कर रहा है, तू सबसे महान् है । हे (गिर्वणः) वाणियों द्वारा श्रवण भजन करने योग्य ! हे समस्त वेद वाणियों को देनेहारे ! तू (समुद्रः इव) महान् सागर के समान (समुद्रः) समान रूप से सबको आनन्द हर्ष का देने वाला, परमानन्द का सागर (पिन्वते) होकर बढ़ता है, तू (इमं) इस स्तुति को भी (जुषस्व) प्रेमपूर्वक स्वीकार कर । इति प्रथमो वर्गः ॥

यो नो देवः परावतः सखित्वनाय मामहे ।
दिवो न वृष्टिं प्रथयन्ववक्षिथ ॥ ६ ॥

भा०—(यः) जो (देवः) दानशील, सब सुखों का दाता, जगत् का प्रकाशक, सूर्यवत् तेजस्वी (परावतः) दूर, परम स्थान से भी (दिवः

वृष्टिं प्रथयन्) आकाश से वृष्टि करता हुआ इस जगत् को (ववक्षिथ) ज्ञान का उपदेश करता है, उसको हम (सखित्वनाय) अपना मित्र बना लेने की (मामहे) प्रार्थना करते हैं।

ववक्षुरस्य केतव उत वज्रो गभस्त्योः।
यत्सूर्यो न रोदसी अवर्धयत् ॥ ७ ॥

भा०—(रोदसी सूर्यः न) आकाश और भूमि दोनों लोकों को सूर्य जिस प्रकार बढ़ाता, पुष्ट करता है उसी प्रकार (सूर्यः) सब जगत् का सञ्चालक, प्रकाशक और उत्पादक प्रभु परमेश्वर (रोदसी) इस समस्त संसार को (अवर्धत्) शिल्पीवत् बनाता, राजावत् उनकी वृद्धि, और पोषण करता है। अथवा, (सूर्यः न) सूर्य के समान बढ़ाता और (रोदसी न) अन्तरिक्ष, भूमिवत् वा बालक को माता पितावत् पालता और पुष्ट करता है, (अस्य) उस प्रभु के (केतवः) सूर्य की किरणों के समान ज्ञान विज्ञान और नाना शक्तियां (उत) और (गभस्त्योः वज्रः न) हाथों में पकड़े शस्त्र के समान (वज्रः) ज्ञानमय उपदेश ये सब (ववक्षुः) जगत् को धारण करते हैं और उसकी रक्षा करते हैं।

यदि प्रवृद्ध सत्पते सहस्रं महिषाँ अघः।
आदित्त इन्द्रियं महि प्र वावृधे ॥ ८ ॥

भा०—हे (प्रवृद्ध) सबसे महान्! हे (सत्पते) सत्, व्यक्तजगत् सत्पदार्थों, सज्जनों और सत्य ज्ञान के पालक! (यदि) जो तू (सहस्रं महिषान्) हजारों, अनेक बड़े २ शक्तिशाली सूर्य, मेघ, समुद्र, पवनादि को (अघः) सञ्चालित करता है, वा सहस्रों बड़े विघ्नों का नाश करता है (आत् इत्) इससे ही तेरा (महि इन्द्रियं) महान् ऐश्वर्य, बल, और आत्म-सामर्थ्य (प्र ववृधे) बहुत बड़ा है।

इन्द्रः सूर्यस्य रश्मिभिर्न्यर्शसानमोषति।
अग्निर्वनेव सासहिः प्र वावृधे ॥ ९ ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु (सूर्यस्य रश्मिभिः) सूर्य की किरणों से (अर्शसानम्) नाशकारी रोग और अन्धकार को (नि-ओषति) सर्वथा ऐसे भस्म कर देता है जैसे (अग्निः वना इव) आग वनों और काष्ठों को जला डालती है। वह (सासहिः) सर्वोत्कृष्ट बलशाली, सब को पराजित करने में समर्थ होकर (प्र वावृधे) सब से अधिक बढ़ जाता है, वह सबसे महान् है। (२) इसी प्रकार इन्द्र, राजा सूर्य-रश्मिवत् अपने नियामक शासकों से प्रजानाशक दुष्ट वर्ग को पीड़ित करे, अग्निवत् भस्म करे, सर्वविजयी होकर बढ़े।

इयं त॑ ऋत्वियाव॑ती धीतिरे॑ति नवी॑यसी।
सपर्यन्ती॑ पुरुप्रिया मिमी॑त इत् ॥ १० ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (इयं) यह (ते) तेरी (ऋत्वियावतीः) ऋतु ऋतु में करने योग्य यज्ञादि वाली, (नवीयसी) अति स्तुत्य (धीतिः) स्तुति, (पुरु-प्रिया) बहुतों को प्रसन्न करने वाली, (सपर्यन्ती) परमेश्वर की अर्चना करती हुई, वेदवाणी (मिमीते इत) सबको उपदेश करती है। उसी प्रकार (ते धीतिः) हे प्रभो! तेरी जगत्धारक, पोषक शक्ति, (ऋत्वियावती) सूर्य से उत्पन्न ऋतुवत् नियम पूर्वक भिन्न २ सामर्थ्यों से विश्व को चलाने वाली, अति स्तुत्य, सर्वप्रिय, (मिमीते) जगत् को बनाती है। (२) राजा की राष्ट्रधारक शक्ति, (ऋत्वियावती) 'ऋतु' राजसभादि के सदस्यों वा शासक जनों से युक्त, सर्वप्रिय राष्ट्र की सेवा करती हुई, (मिमीते इत्) राष्ट्र का निर्माण करती है। इति द्वितीयो वर्गः॥

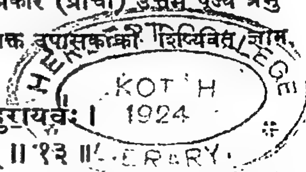
गर्भो॑ य॒ज्ञस्य॑ देव॒युः क्रतुं॑ पुनीत आनु॒षक्।
स्तोमै॒रिन्द्र॑स्य वावृधे मिमी॑त इत् ॥ ११ ॥

भा०—(देवयुः) उस सर्वस्व दाता प्रभु को चाहने वाला मनुष्य (यज्ञस्य गर्भः) यज्ञ, परम उपासनीय, पूज्य, सर्वदाता प्रभु की स्तुति करने वाला, उसी का आश्रय ग्रहण करने वाला और उसी के भीतर माता

के पेट में बालक के समान, उसी प्रभु की रक्षा में पालित पोषित होकर (आनुपक्) निरन्तर (क्रतुं) अपने ज्ञान और कर्म को (पुनीते) शुद्ध पवित्र करता है। वह (इन्द्रस्य स्तोमैः) ऐश्वर्यवान् प्रभु के उपदेशमय वेदवचनों तथा स्तुति-वचनों से (ववृधे) बढ़ता और (मिमीते इत्) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु का ज्ञान भी कर लेता है।

सनिर्मित्रस्य पप्रथ इन्द्रः सोमस्य पीतये।
प्राची वाशीव सुन्वते मिमीत इत् ॥ १२ ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु (सोमस्य पीतये) उत्पन्न जगत् वा जीवगण को पालन और कर्मफलोपभोग करने के लिये (मित्रस्य) अपने को स्नेह करने वाले जीव, भक्त को (सनिः) सब सुखों का दाता होकर (पप्रथे) जगत् को विस्तृत करता है, अर्थात् जीवों के भोग और मोक्ष लिये जगत् को रचता है। (सुन्वते वाशी इव) शिल्पी का बसूला जिस प्रकार उत्तम रीति से आगे बढ़कर काष्ठ की वस्तुएं बनाता है उसी प्रकार (वाशी) सब जगत् को वश करने वाली और जगत्सर्ग करूं ऐसी 'कामना' करने, वा (सुन्वते = सुन्वतः) जगत्सर्ग करने वाले विधाता की शक्ति (प्राची) सब से उत्कृष्ट होकर ही (मिमीते इत्) इस संसार की रचना करती है। अथवा—(सुन्वते वाशी इव) जिस प्रकार यज्ञोपासना करने वाले की वाणी (मिमीते) शब्द करती है, उसी प्रकार (प्राची) उत्तम पूज्य प्रभु-शक्ति भी गुरुवत् (सुन्वते मिमीते) भक्त उपासकों को दिव्यविद्या ज्ञान प्रदान करती है।



यं विप्रा उक्थवाहसोऽभिप्रमन्दुरायवः।
घृतं न पिप्य आसन्यृतस्य यत् ॥ १३ ॥

भा०—(यं) जिस परमेश्वर को (उक्थ-वाहसः) वेद मन्त्रों को धारण करने वाले (विप्राः) विद्वान् (आयवः) पुरुष (अभि प्रमन्दुः) साक्षात् कर प्रसन्न होते, आनन्द लाभ करते हैं उसी प्रकार (यत्) जो

(ऋतस्य) सत्य स्वरूप, परम कारण परमेश्वर सत्य ज्ञान वेद के (घृतं) प्रकाशवत् दीप्ति से युक्त है उसको अपने (आसनि) मुख में (घृतम् इव) पुष्टि दायक घृत के समान ही (पिप्ये) पान करूं। अर्थात् मुख से सत्य ज्ञान वेद का अभ्यास, आवर्त्तन मनन आदि अन्न घृतादि आहार के ग्रहण चर्वण आदि के समान ही शनैः २ करना और उसे मनन द्वारा पचाना चाहिये।

उत स्वराजे अदितिः स्तोममिन्द्राय जीजनत्।
पुरुप्रशस्तमूतय ऋतस्य यत्॥ १४॥

भा०—(उत) और (स्वराजे) स्वयंप्रकाश, (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् प्रभु परमेश्वर के (स्तोमम्) स्तुति वा उपदेश-रूप वेद ज्ञान को (अदितिः) अखण्ड, अविनाशी वेद ही (जीजनत्) प्रकट करता है। और (यत्) जो (ऋतस्य) सत्य ज्ञान या परम कारणमय प्रभु का (पुरु प्रशस्तं) बहुत विद्वानों से उपदेश करने योग्य ज्ञान है उसको (ऊतये) जगत् की रक्षा के लिये (अदितिः) अखण्ड व्रत वाला तपस्वी पुरुष ही (जीजनत्) प्रकट या प्रकाशित करे।

अभि वह्नय ऊतयेऽनूषत प्रशस्तये।
न देव विव्रता हरी ऋतस्य यत्॥ १५॥ ३॥

भा०—(वह्नयः) ज्ञान को धारण करने वाले विद्वान् अध्यापक उपदेशक शुश्रूषु जन (ऊतये) ज्ञान प्राप्त करने और (प्रशस्तये) तेरी उत्तम स्तुति और जनों को अच्छी प्रकार शासन या उपदेश के लिये (ऋतस्य यत्) सत्य ज्ञानमय वेद या प्रभु का जो अति प्रशस्त ज्ञान है उसका (अनूषत) उपदेश करते हैं। हे (देव) समस्त सुखों के दाता, ज्ञान और जगत् के प्रकाश प्रभो! (विव्रता) व्रत, सत्कर्मों से रहित आचरण करने वाले (हरी) स्त्री पुरुष सत्य ज्ञान के उस तत्व को (न) नहीं पाते। इति तृतीयो वर्गः॥

यत्सोमंमिन्द्र विष्णवि यद्वा॑ घ त्रित आप्त्ये ।
यद्वा॑ मरुत्सु मन्द॑से समिन्दुंभिः ॥ १६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यत्) जो तू (विष्णवि) व्यापक प्रकाश वाले सूर्य के आधार पर, (यद्वा घ आप्त्ये) और जो तू जलों से पूर्ण (त्रिते) तीनों लोकों के आश्रय और (यद्वा मरुत्सु) वा प्राणों के आश्रय पर, (इन्दुभिः) ऐश्वर्य युक्त पदार्थों द्वारा (सोमम्) उत्पन्न होने वाले जीव या जगत् को (सम् मन्दसे) भली प्रकार प्रसन्न और आनन्दित करता है इस कारण तू दयालु, सर्वप्रद, सर्वोपास्य है ।

यद्वा॑ शक्र परावति॑ समुद्रे अधि मन्द॑से ।
अस्माकुमित्सुते रंणा समिन्दुंभिः ॥ १७ ॥

भा०—हे (शक्र) शक्तिमन् ! (यद् वा) जो तू (परावति) अज्ञानियों से अति दूर, परम (समुद्रे) अति उल्लासयुक्त समान रूप से एक रस आनन्द से परिपूर्ण रूप में (अधि मन्दसे) अतिशय आनन्द से रमता है । (सुते) इस उत्पन्न जगत् में (इन्दुभिः) इन ऐश्वर्य युक्त, दीप्तियुक्त और रसवत् द्रुतगति से जाने वाले नाना पदार्थों से (अस्माकम् इत् रण) हमें अवश्य सुखी कर ।

यद्वासि॑ सुन्वतो वृधो यज॑मानस्य सत्पते ।
उक्थे वा यस्य रण्य॑सि समिन्दुंभिः ॥ १८ ॥

भा०—हे (सत्-पते) सत् पुरुषों के पालक ! (यद् वा) जो तू (यस्य सुन्वतः) जिस किसी भी साधक (यजमानस्य) देवपूजा करने वाले उपासक को तू (वृधः) बढ़ाता है और उसके (उक्थे) स्तुति वचन पर (रण्यसि) प्रसन्न होता है वह तू उसको (इन्दुभिः सं रण) नाना ऐश्वर्यों से प्रसन्न और आनन्दित करता है ।

देवदे॑वं वोऽव॑स इन्द्र॑मिन्द्रं गृणीषणि॑ ।
अधा॑ यज्ञाय॑ तुर्व॑णे व्या॑नशुः ॥ १९ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! मैं (वः) आप लोगों को (देवंदेवं) सर्वत्र प्रकाशमान और (इन्द्रम्-इन्द्रम्) सर्वत्र ऐश्वर्यवान् विघ्नविनाशक प्रभु को (अवसे) प्राप्त करने का (गृणीषणि) उपदेश करता हूं (अध) और (तुर्वणे) सब दुःखों और दुष्टों के नाशक (यज्ञाय) सर्वोपास्य परमेश्वर के ही ये समस्त ऐश्वर्य जगत् में (वि-आनशुः) विविध प्रकार से व्याप रहे हैं और समस्त (तुर्वणे यज्ञाय) दुःख-विघ्ननाशक सर्वदाता प्रभु को ही समस्त भक्त विविध उपायों से प्राप्त होते हैं।

य॒ज्ञेभि॑र्य॒ज्ञवा॑हसं॒ सोमे॑भिः सोम॒पात॑मम् ।
होत्रा॑भि॒रिन्द्रं॑ वावृधु॒र्व्या॑नशुः ॥ २० ॥ ४ ॥

भा०—उस (यज्ञवाहसं) देवपूजा को स्वीकार करने वाले प्रभु को विद्वान् लोग (यज्ञेभिः) यज्ञों, उपासनाओं से (वावृधुः) बढ़ाते, उसकी महिमा का विस्तार करते और (वि-आनशुः) विविध प्रकार से प्राप्त होते हैं। उस (सोम-पातमम्) उत्पन्न हुए नाना सर्गों के परम पालक प्रभु को भक्तजन (सोमैः ववृधुः) उसके ऐश्वर्यों के वर्णनों से ही बढ़ाते हैं और उन द्वारा ही उस तक (वि आनशुः) पहुंचते हैं। इसी प्रकार वे (होत्राभिः) नाना वाणियों से (इन्द्रं ववृधुः) ऐश्वर्यवान् प्रभु की महिमा बढ़ाते और उन (होत्राभिः) गुरु शिष्यों द्वारा देने लेने योग्य वेद वाणियों से ही उस को (व्यानशुः) विविध प्रकार से प्राप्त करते, उसका ज्ञान करते, उसके गुणों में रमते हैं। इति चतुर्थो वर्गः॥

म॒हीर॑स्य॒ प्रणी॑तयः पू॒र्वीरु॒त प्रश॑स्तयः ।
विश्वा॒ वसू॑नि दा॒शुषे॒ व्या॑नशुः ॥ २१ ॥

भा०—(अस्य) इसके (महीः) बड़ी २ (प्र-णीतयः) व्यवस्थाएं और (पूर्वीः) पूर्व भी विद्यमान, सनातन, (प्रशस्तयः) उत्तम स्तुतियां या उत्तम ज्ञानानुशासन करने वाली वेद वाणियां (विश्वा वसूनि दाशुषे)

समस्त ऐश्वर्यों के देने वाले उसी प्रभु के वर्णन के लिये (वि आनशुः) विविध या विशेष प्रकार से उस तक पहुंचती हैं।

इन्द्रं वृत्राय हन्तवे देवासो दधिरे पुरः।
इन्द्रं वाणीरनूषता समोजसे ॥ २२ ॥

भा०—(देवासः) विद्वान् मनुष्य (वृत्राय) बढ़ते या अन्तःकरण को आवरण करने वाले अज्ञान को (हन्तवे) नाश करने के लिये (इन्द्रं) सूर्यवत् अन्धकार को विदारण करने वाले, दीप्तिमान् प्रभु रूप सूर्य को (पुरः दधिरे) सदा अपने समक्ष रखते हैं, उसका ध्यान वा धारण करते हैं। और (ओजसे) आत्मिक परम बल प्राप्त करने के लिये (इन्द्रं) उसी विघ्न-नाशक, तेजस्वी प्रभु की (वाणीः) वाणियों द्वारा (सम् अनूषत) उसकी अच्छी प्रकार स्तुति करते हैं।

महान्तं महिना वयं स्तोमेभिर्हवनश्रुतम्।
अर्कैरभि प्र णोनुमः समोजसे ॥ २३ ॥

भा०—(महिना महान्तं) अपने महान् सामर्थ्य से बड़े (हवन-श्रुतम्) आह्वानों, उपासक की पुकारों को श्रवण करने वाले, वा 'हवन' दानों से सर्वत्र प्रसिद्ध उस प्रभु की हम (स्तोमेभिः) स्तुतियों और (अर्कैः) अर्चना करने योग्य वेदमन्त्रों और यज्ञों से (ओजसे) बल प्राप्त करने के लिये (अभिः सं प्र नोनुमः) साक्षात् खूब स्तुति करें।

न यं विविक्तो रोदसी नान्तरिक्षाणि वज्रिणम्।
अमादिदस्य तित्विषे समोजसः ॥ २४ ॥

भा०—(यं) जिसको (रोदसी) भूमि और आकाश भी (न विविक्तः) विवेचन नहीं कर सकते और (यं) जिस (वज्रिणम्) बल-शाली, प्रभु को (अन्तरिक्षाणि न विविक्तः) नाना अन्तरिक्ष भाग भी विवेचन नहीं कर सकते अर्थात् आकाश, भूमि और अन्तरिक्ष के नाना सर्ग, सूर्य, नक्षत्र, चन्द्र, वायु, भूमि, पर्वत, समुद्रादि भी जिसके महान्

ऐश्वर्यमय शक्तिशाली रूप का पूरी तरह से विवेचन नहीं करा सक्ते उसी (अस्य ओजसः) बलस्वरूप प्रभु के (अमात् इव) बल से ही यह समस्त जगत् (तित्विषे) प्रकाशित होता है। (२) (रोदसी) उपदेष्टा और शिष्य भी जिस प्रभु का वाद द्वारा विवेचन नहीं कर सकते (अन्तरिक्षाणि) अन्तःकरणों के व्यापार भी जिसका विवेक, अर्थात् पृथक् स्वरूप नहीं बतला सकते, उसी परम प्रभु के बल से ज्ञान का प्रकाश होता है। वही स्वयंप्रकाशस्वरूप परमेश्वर अपने सामर्थ्य से जगत् को प्रकाशित करता है, वही अपना भी प्रकाश करता है।

यदि॑न्द्र पृत॒नाज्ये॑ दे॒वास्त्वा॑ दधि॒रे पु॒रः।
आदि॑त्ते ह॒र्यता॒ हरी॑ ववक्षतुः॥ २५॥ ५॥

भा०—(पृतनाज्ये) सेनाओं के भागने के स्थान, या अवसर तथा सेनाओं से विजय करने योग्य संग्राम में जिस प्रकार (देवाः) विजिगीषु लोग (इन्द्रं पुरो दधिरे) तेजस्वी, राजा या सेनापति को आगे रखते हैं (हर्यता हरी ववक्षतुः) वेगवान् सुन्दर दो घोड़े उसको आगे लेजाते हैं, उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! स्वयंप्रकाश प्रभो! (यत् त्वा) जिस तुझ को (देवाः) विद्वान् एवं नाना कामना करने वाले मनुष्य (पृतनाज्ये) मनुष्यों से प्राप्य ऐश्वर्य या उद्देश्य के लिये (पुरः दधिरे) अपने समक्ष साक्षी एवं परम उद्देश्यवत् स्थापित करते हैं (आत् इत्) अनन्तर उसी (ते) तुझे (हर्यता हरी) तेरी कामना करने वाले ज्ञानी अज्ञानी वा स्त्री पुरुष वा ज्ञानी, कर्मी, मनुष्य (ववक्षतुः) हृदय में धारण करते हैं। इति पञ्चमो वर्गः॥

यदा॑ वृ॒त्रं न॑दी॒वृतं॒ शव॑सा वज्रि॒न्नव॑धीः।
आदि॑त्ते ह॒र्यता॒ हरी॑ ववक्षतुः॥ २६॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य वा विद्युत् (नदीवृतं वृत्रं) गरजते मेघ मालाओं में विद्यमान जल को (शवसा अवधीत्) बलपूर्वक आघात करता

और उस विद्युत् को हरणशील कान्तियुक्त धन ऋण दोनों प्रकार की धाराएं दोनों कान्तियुक्त पदार्थ धारण करती हैं। उसी प्रकार (यदा) जब (नदीवृतं) नदीजलवत् निरन्तर गतिशील आत्मा की धारा में विद्यमान (वृत्रम्) आवरणकारी अज्ञान को हे (वज्रिन्) ज्ञानवज्र के स्वामिन्! हे शक्तिशालिन्! तू (शवसा) अपने ज्ञान-प्रकाश से (अवधीः) नाश करता है (आत् इत्) अनन्तर ही (हर्यता) तुझे चाहने वाले (हरी) स्त्री पुरुष वा मन और आत्मा (ते) तेरे विषयक ज्ञान को (ववक्षतुः) धारण करते हैं।

यदा ते विष्णुरोजसा त्रीणि पदा विचक्रमे।
आदित्ते हर्यता हरी ववक्षतुः ॥ २७ ॥

भा०—हे प्रभो! (यदा) जब (ते) तेरे (ओजसा) दिये सामर्थ्य, बल से (विष्णुः) देह में प्रविष्ट आत्मा (त्रीणि) तीनों (पदा) ज्ञातव्य और प्राप्तव्य लोकों को (विचक्रमे) पार कर लेता है (आत् इत्) अनन्तर (हर्यता हरी) कान्तियुक्त हरणशील आत्मा और मन दोनों (ते) तुझ तक (ववक्षतुः) पहुंचाते हैं। अथवा विष्णु, सूर्य जब तीनों लोकों में व्यापता है तब (हर्यता हरी) कान्तियुक्त दोनों लोक तेरा ही बल प्रकाश धारण करते हैं।

यदा ते हर्यता हरी वावृधाते दिवेदिवे।
आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे ॥ २८ ॥

भा०—(यदा) जब (हर्यता हरी) कान्ति युक्त मनोहर सूर्य और भूमि (ते) तेरे बल से (दिवे-दिवे) दिनों दिन (वावृधाते) बढ़ते हैं (आत इत्) अनन्तर ही (विश्वा भुवनानि) समस्त लोक (येमिरे) नियम में बंधते हैं।

यदा ते मारुतीर्विशस्तुभ्यमिन्द्र नियेमिरे।
आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे ॥ २९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे तेजस्विन् ! (यदा) जब (ते) तेरे अधीन (मारुतीः) 'मरुत्' अर्थात् प्राणों से प्राणित (विशः) प्रजाएं, (तुभ्यम्) तेरे ही लिये (नियेमिरे) नियम में बद्ध होती हैं, (आत् इत्) अनन्तर, उनके नियम व्यवस्थित होने के कारण (विश्वा भुवनानि) समस्त लोक भी (ते) तेरे अधीन ही नियम में व्यवस्थित होते हैं।

यदा सूर्यममुं दिवि शुक्रं ज्योतिरधारयः।
आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे ॥ ३० ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! प्रभो ! (यदा) जब तू (अमुं सूर्यम्) उस सूर्य को और (दिवि) सूर्य में (शुक्रं ज्योतिः) शुद्ध तेज और अन्तरिक्ष में जल और विद्युत् आदि को (अधारयः) स्थापित करता है, (आत् इत्) फलतः (ते) तेरे ही अधीन, तेरी ही व्यवस्था में (विश्वा भुवनानि) समस्त लोक (येमिरे) नियन्त्रित हैं।

इमां त इन्द्र सुष्टुतिं विप्र इयर्ति धीतिभिः।
जामिं पदेव पिप्रतीं प्राध्वरे ॥ ३१ ॥

भा०—(अध्वरे पिप्रतीं जामिं पदा इव) यज्ञ में प्रसन्न होती या करती हुई बन्धुभूत पत्नी को वर वा विद्वान् पुरोहित जिस प्रकार सप्तपदी के पैर चलने को (प्र इयर्त्ति) प्रेरणा करता है, अथवा जिस प्रकार विद्वान् गुरु बन्धुवत् शिष्य के प्रति उत्तम ज्ञान का प्रेम से प्रकाश करता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् प्रभो ! (विप्रः) विद्वान् पुरुष (ते) तेरी (इमां सुस्तुतिम्) इस उत्तम स्तुति योग्य प्रसन्न करने वाली नीति को (धीतिभिः) उत्तम वाणियों और कर्मों से (प्र-इयर्त्ति) अच्छी प्रकार वर्णन करता है।

यदस्य धामनि प्रिये समीचीनासो अस्वरन्।
नाभा यज्ञस्य दोहना प्राध्वरे ॥ ३२ ॥

भा०—(यद्) जब (अस्य) इस परमेश्वर के (प्रिये) अति प्रिय, मनोहर (धामनि) परम सर्वाश्रय तेज या ब्रह्मपद में (समीचीनासः)

अच्छी प्रकार सुसंगत होकर विद्वान् लोग (अस्वरन्) स्तुति करते हैं, तब (यज्ञस्य) परम पूजनीय परमेश्वर के (अध्वरे) अविनाशी, हिंसारहित, दयामय (नाभा) सब को बांधने वाले, (दोहना) सब सुखों के देने वाले उस (धामनि) तेजोमय स्वरूप में ही वे आनन्द लाभ करते हैं।

सुवीर्यं स्वश्व्यं सुगव्यमिन्द्र दद्धि नः।
होतेव पूर्वचित्तये प्राध्वरे ॥ ३३ ॥ ६ ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे तेजोमय! हे ऐश्वर्यप्रद! जिस प्रकार (अध्वरे पूर्वचित्तये होता इव) यज्ञ में पूर्ण ज्ञानवान् पुरुष के उपकारार्थ दानशील यजमान, उत्तम अश्व गौ आदियुक्त धन प्रदान करता है उसी प्रकार प्रभो! तू (नः) हमें भी (पूर्व-चित्तये) पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिये और पूर्व विद्यमान पदार्थों का ज्ञान करने के लिये वा हमारे पूर्व विद्यमान चेतनावान् आत्मा को (सुवीर्यं) उत्तम वीर्ययुक्त, (सु-अश्व्यं) उत्तम आशुगामी मन से युक्त, (सुगव्यम्) उत्तम इन्द्रियगण (दद्धि) प्रदान करता है। इति षष्ठो वर्गः ॥ इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

[१३]

नारदः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ५, ८, ११, १४, १६, २१, २२, २६, २७, ३१ निचृदुष्णिक्। २—४, ६, ७, ९, १०, १२, १३, १५—१८, २०, २३—२५, २८, २९, ३२, ३३ उष्णिक्। ३० आर्षी विराडुष्णिक् ॥ त्रयस्त्रिंशदृचं सूक्तम् ॥

इन्द्रः सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीत उक्थ्यम्।
विदे वृधस्य दक्षसो महान्हि षः ॥ १ ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, तेजस्वी और सत्य ज्ञान का द्रष्टा, स्वामी, प्रभु (सुतेषु सोमेषु) पुत्रों और शिष्यों में गुरु के समान उत्पन्न वा निष्काम उपासक विद्वानों में (क्रतुम्) कर्म, ज्ञान और (उक्थ्यम्)

वचन को भी (पुनीते) रसवत् ही पवित्र, स्वच्छ करता है। इस प्रकार वह उपासक (वृधस्य) वर्धक और (दक्षसः) बल के (विदे) प्राप्त करने के लिये यत्न करता है, क्योंकि (सः) वह प्रभु (महान् हि) बहुत बड़ा एवं पूज्य है।

स प्रथमे व्योमनि देवानां सदने वृधः।
सुपारः सुश्रवस्तमः समप्सुजित् ॥ २ ॥

भा०—(सः) वह (प्रथमे) सर्वोत्तम (व्योमनि) विशेष रक्षा और ज्ञानमय परम आश्रय (देवानां) दिव्य सूर्यादि एवं विद्वानों को (सदने) उनके २ स्थान में (वृधः) बढ़ाने वाला, (सुपारः) सब को सुख से पालन करने, दुःखों से तारने वाला, (सुश्रवःतमः) उत्तम यश, ऐश्वर्य और ज्ञान, ख्याति आदि से सम्पन्न और (अप्सु-जित्) समस्त अन्तरिक्ष में सूर्यवत् सर्वोपरि वर्त्तमान और प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं और जीवों पर भी वश करने हारा है।

तमह्वे वाजसातय इन्द्रं भराय शुष्मिणम्।
भवा नः सुम्ने अन्तमः सखा वृधे ॥ ३ ॥

भा०—मैं (तम् इन्द्रं) उस अपार ऐश्वर्यवान् प्रभु को (वाज-सातये) बल, ज्ञान और ऐश्वर्य प्राप्त करने और सब में निष्पक्षपात होकर विभक्त करने के लिये और (भराय) भरण पोषण के लिये (शुष्मिणम्) उस बलवान् प्रभु को (अह्वे) बुलाता हूं। हे प्रभो ! तू (नः सुम्ने) हमारे सुख के लिये और (वृधे) हमारी वृद्धि के लिये (अन्तमः सखा भव) अति समीपतम, परम मित्र हो।

इयं त इन्द्र गिर्वणो रातिः क्षरति सुन्वतः।
मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! ऐश्वर्य के देने हारे ! हे (गिर्वणः) वाणियों के देने और सेवन करने हारे वा वाणी द्वारा उपासनीय ! (सुन्वतः)

ऐश्वर्य वा जगत् भर पर आधिपत्य करने वाले (ते) तेरा ही (रातिः) दान, (क्षरति) सर्वत्र मेघ से वृष्टिवत्, यजमान के हाथ से घृताहुतिवत् बरसता है। और (मन्दानः) स्वयं आनन्दमय और समस्त (अस्य बर्हिषः) इस महान् विश्व को (मन्दानः) तृप्त, प्रसन्न करता हुआ (वि-राजसि) विशेष रूप से उस पर राजावत् आधिपत्य करता है, सूर्यवत् चमकता है।

नूनं तदि॑न्द्र दद्धि नो यत्त्वा॑ सुन्वन्त॒ ईम॑हे ।
र॒यिं न॑श्चि॒त्रमा भ॑रा स्व॒र्विद॑म् ॥ ५ ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हम लोग (सुन्वन्तः) यज्ञादि करते हुए, (यत्) जिस (स्वर्विदम्) सुख प्राप्त कराने वाले, (चित्रम्) संग्राह्य, उत्तम, आश्चर्यजनक (रयिं) ऐश्वर्य को (त्वा ईमहे) तुझ से मांगते हैं (नः) हमें (नूनं) अवश्य (तत् दद्धि) उस धन को प्रदान कर। वही धन हमें (आ भर) ला, दे। इति सप्तमो वर्गः ॥

स्तो॒ता यत्ते॒ विच॑र्षणिरतिप्रश॒र्धय॒द् गिरः॑ ।
व॒या इ॑वानु॑ रोहते जु॒षन्त॒ यत् ॥ ६ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! (विचर्षणिः स्तोता) विशेष २ गुणों का प्रवल उपासक पुरुष (गिरः) वेदवाणियों को (अति-प्रशर्धयत्) बहुत अधिक रूप से कहता है, वे (यत् जुषन्त) जब प्रेम से सेवन करते हैं (वयाः इव) शाखाओं के समान (अनु रोहते) तेरे गुणों के अनुरूप हो बढ़ते हैं।

प्र॒त्न॒वज्ज॑नया॒ गिरः॑ शृणु॒धी ज॑रि॒तुर्हव॑म् ।
मदे॑मदे ववक्षिथा सु॒कृत्व॑ने ॥ ७ ॥

भा०—हे प्रभो! तू (जरितः) स्तुति करने वाले की (गिरः) वाणियों को (प्रत्नवत्) वृद्ध गुरु के समान (जनय) प्रकट कर। और (हवम्) उसके आह्वान या पुकार को (शृणुधि) श्रवण कर। (मदे-मदे) प्रत्येक हर्ष के अवसर में, प्रत्येक सात्विक भाव से पुलकित होने में (सुकृ-

त्वने) शुभ कर्म करने वाले पुण्यशील जन के हितार्थ (ववक्षिथ) तू उत्तम फल प्राप्त कराता है वा उत्तम उपदेश करता है।

क्रीळन्त्यस्य सूनृता आपो न प्रवता यतीः।
अया धिया य उच्यते पतिर्दिवः॥ ८॥

भा०—(यः) जो (अया धिया) इस प्रकार की धारणावती बुद्धि या कर्म और वाणी से (दिवः पतिः उच्यते) ज्ञान-प्रकाश और समस्त जगत्-व्यवहार का पालक कहा जाता है (अस्य) उस प्रभु की (सूनृता) उत्तम सत्यमय वाणियां, अन्न रस धारायें, (प्रवता) निम्न मार्ग से (यतीः) बहती (आपः न) जलधाराओं के समान (प्रवता) उत्तम मार्ग से ही (क्रीडन्ति) मानो खेलती हुई सीं सर्वत्र विचरण करती हैं।

उतो पतिर्य उच्यते कृष्टीनामेक इद्वशी।
नमोवृधैरवस्युभिः सुते रण॥ ९॥

भा०—(उतो) और (यः) जो (नमो-वृधैः) नमस्कारों आदर वचनों से बढ़ने वाले विनीत, वृद्ध और (अवस्युभिः) रक्षा और ज्ञानादि के इच्छुक पुरुषों द्वारा (एकः) एक, अद्वितीय (इत्) ही (कृष्टीनाम्) आकर्षण करने वाले सूर्यादि लोकों और मनुष्यों का (पतिः) स्वामी पालक और (वशी) सबको वश करने हारा (उच्यते) कहा जाता है, हे मनुष्य ! तू (सुते रण) इस उत्पन्न जगत् में उसी की स्तुति किया कर। रमतिः शब्दार्थः॥

स्तुहि श्रुतं विपश्चितं हरी यस्य प्रसक्षिणा।
गन्तारा दाशुषो गृहं नमस्विनः॥ १०॥ ८॥

भा०—हे विद्वान् मनुष्य ! (यस्य) जिस परमेश्वर के (हरी) सेनापति के अति बलवान् दो अश्वोंवत् (हरी) मनोहर और संहारक दोनों रूप (प्रसक्षिणा) सज्जन और दुर्जन, दोनों को बलपूर्वक उत्तम रीति से विजय कर लेते हैं तू उसी (श्रुतं) वेदों, उपनिषदों द्वारा गुरुमुखों से

श्रवण किये, विख्यात, (विपश्चितं) विद्वानों से जानने योग्य और (विपः चितम्) वेद वाणी से चेतव्य, ज्ञातव्य प्रभु की (स्तुहि) नित्य स्तुति किया कर। और जिसे कान्त, भीम गुण राशियें (नमस्विनः) नमस्कार, विनयादि से पूर्ण (दाशुषः) आत्मसमर्पक, दानी पुरुष के (गृहं गन्तारा) गृह में प्राप्त होने वाले पुरुषों की (स्तुहि) स्तुति कर। इत्यष्टमो वर्गः॥

तूतुजानो महेमतेऽश्वेभिः प्रुषितप्सुभिः।
आ याहि यज्ञमाशुभिः शमिद्धि ते॥ ११॥

भा०—जिस प्रकार (तूतुजानः) शत्रु का नाश करने वाला सेनापति (प्रुषित-प्सुभिः)स्निग्ध रूप या परिपक्व रूप वाले, सुदृढ़ शरीरवान् (आशुभिः अश्वेभिः यज्ञम् आयाति) अश्वारोहियों से संगति करता है उसी प्रकार हे (महेमते) बड़े भारी राष्ट्र को सञ्चालन करने वा बड़ा फल प्राप्त करने के लिये बड़ी भारी मति, बुद्धि ज्ञान वा संकल्प वाले! तू (तूतुजानः) विश्व का पालन करता हुआ (प्रुषित-प्सुभिः) अग्नि, सूर्यादि से प्रुषित, परिपक्व वा घृतादि से सेचित अन्न का भोजन करने वाले अथवा (प्रुषित-प्सुभिः) स्निग्ध, परितप्त या तपस्वी देह वाले (आशुभिः) शीघ्रगामी, तीव्रबुद्धि, कर्मकुशल (अश्वेभिः) दृढ़, विद्वान् पुरुषों और अंगों द्वारा तू (यज्ञम्) उपास्य प्रभु और यज्ञ आदि शुभ कर्म को प्राप्त हो। हे विद्वान् पुरुष! (ते) तुझे इस प्रकार (शम् इत् हि) अवश्य शान्ति प्राप्त होगी। (२) इसी प्रकार परमेश्वर भी हमारे यज्ञ अर्थात् आत्मा को तेजोयुक्त, सूर्यादि पदार्थों सहित हमें प्राप्त हो।

इन्द्र शविष्ठ सत्पते र॒यिं गृ॒णत्सु॑ धारय।
श्रवः सूरिभ्यो अमृतं वसुत्वनम्॥ १२॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! हे (शविष्ठ) बलशालिन्! हे (सत्-पते) सत्पदार्थों, सत्य ज्ञान और सत्पुरुषों के पालक! तू (गृणत्सु) विद्वान् उपदेशकों और स्तुतिकर्त्ता भक्त जनों में वा उनके निमित्त (रयिं

धारय) ऐश्वर्य धारण कर वा उनको प्रदान कर। (सूरिभ्यः) विद्वान् पुरुषों को (श्रवः) ज्ञान और (अमृतं) मोक्ष और (वसुत्वनम्) ऐश्वर्य (धारय) धारण करा।

हवे त्वा सूर उदिते हवे मध्यन्दिने दिवः।
जुषाण इन्द्र सप्तिभिर्न आ गहि ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् प्रभो ! तू (सप्तिभिः) सर्पणशील, वेगवान् सूर्यादि के प्रकाशादि सुखों से (नः जुषाणः) हमें प्रेम करता हुआ (नः आगहि) हमें प्राप्त हो। हे प्रभो ! हमें (उदिते) उदय हुए और (मध्यन्दिने) दिन के मध्य समय में विद्यमान (दिवः सूरे) ज्ञान के प्रकाशक, सूर्यवत् तेजस्वी, प्रखर पाप के नाशक स्वरूप (त्वा हवे) तुझ से प्रार्थना करता हूं और (त्वा हवे) तुझे ही स्वीकार करता हूं।

आ तू गहि प्र तु द्रव मत्स्वा सुतस्य गोमतः।
तन्तुं तनुष्व पूर्व्यं यथा विदे ॥ १४ ॥

भा०—हे प्रभो ! हे आत्मन् ! तू (आ गहि तु) आ, प्राप्त हो, (प्र द्रव तु) खूब दयापूर्ण होकर मेघवत् आनन्द-रस का वर्षण कर, (गोमतः सुतस्य) इन्द्रियों से युक्त उत्पन्न जीव को (मत्स्व) आनन्दित कर। (पूर्व्यं) पूर्व से विद्यमान (तन्तुं) सूत्रवत् अविच्छिन्न सृष्टि को (तनुष्व) विस्तृत कर (यथा) जिससे मैं जीव भी (विदे) ज्ञान प्राप्त करूं। (२) अथवा—हे जीव ! तू आगे आ, आगे बढ़, भूमि से युक्त उत्पन्न ओषधि आदि से तृप्त हो। पूर्व परम्परा से चले आये तन्तु रूप प्रजा सन्तति का विस्तार कर। (यथा विदे) जिससे तू आनन्द लाभ करे।

यच्छक्रासि परावति यदर्वावति वृत्रहन्।
यद्वा समुद्रे अन्धसोऽवितेदसि ॥ १५ ॥ ९ ॥

भा०—हे (शक्र) शक्तिशालिन् ! हे (वृत्रहन्) विघ्न अन्ध-

कारादि के नाशक ! (यत् परावति) जो तू दूर देश में (यत् अर्वावति) जो तू समीप में और (यद् वा समुद्रे) जो तू समुद्र या आकाश में है तू (अन्धसः) प्राणधारी जीव गण का (अविता इत् असि) रक्षक ही है। तू सर्वत्र जीवों का रक्षक है। इति नवमो वर्गः ॥

इन्द्रं वर्धन्तु नो गिर इन्द्रं सुतास इन्दवः।
इन्द्रे हविष्मतीर्विशो अराणिषुः ॥ १६ ॥

भा०—(नः) हमारी वाणियां (इन्द्रं वर्धन्तु) ऐश्वर्य के देने वाले प्रभु को बढ़ावें, उसका गुण गान करें। अथवा (इन्द्रं) इन्द्र को लक्ष्य करके कही गई (गिरः) वेदवाणियां (नः वर्धन्तु) हमारी वृद्धि करें। इसी प्रकार (सुतासः) उत्पन्न हुए (इन्दवः) ऐश्वर्ययुक्त पदार्थ वा जीव गण (इन्द्रं वर्धन्तु) इन्द्र को बढ़ावें, वे भी उसी की महिमा बतलावें। (हविष्मतीः विशः) अन्नादि से समृद्ध प्रजाएं भी (इन्द्रे) ऐश्वर्ययुक्त शत्रुहन्ता राजा के अधीन सुरक्षित प्रजाओं के समान (इन्द्रे) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु में निमग्न रहकर (अराणिषुः) रमण करें। (२) इसी प्रकार प्रजा की वाणियें और ऐश्वर्यादि राजा की वृद्धि करें। वे राजा के अधीन सुखी रहें।

तमिद्विप्रा अवस्यवः प्रवत्वतीभिरूतिभिः।
इन्द्रं क्षोणीरवर्धयन्वया इव ॥ १७ ॥

भा०—(अवस्यवः) रक्षण और ज्ञान की कामना करने वाले (क्षोणीः) जन (प्रवत्वतीभिः ऊतिभिः) उत्तम साधनों से युक्त बलवती सेनाओं के स्वामी भी (इन्द्रं) सेनापति के समान अति शक्तियुक्त प्रबल रक्षाओं से समृद्ध (तम् इत् इन्द्रं) उस ही परमेश्वर को समस्त (क्षोणीः) मनुष्य और भूमियां (वयाः इवः) शाखाओं के समान (अवर्धयन्) बढ़ाती हैं। उसकी ही महिमा को बढ़ाती हैं।

त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत ।
तमिद्वर्धन्तु नो गिरः सदावृधम् ॥ १८ ॥

भा०—(देवासः) समस्त विद्वान् गण और सूर्य पृथिवी आदि लोक भी (त्रिकद्रुकेषु) तीनों लोकों में (तम् इत् चेतन) उस ही, चेतन, ज्ञानवान् (यज्ञं) सर्वोपास्य प्रभु को (अत्नत) फैला रहे हैं, उसी के महान् सामर्थ्य का विस्तार कर रहे हैं। उस (सदावृधं) सदा वृद्धिशील, महान् प्रभु को (नः गिरः वर्धन्तु) हमारी स्तुतियां भी बढ़ावें, उसी की जयकार करें, उसी को बड़ा मनावें।

स्तोता यत्ते अनुव्रत उक्थान्यृतुथा दधे ।
शुचिः पावक उच्यते सो अद्भुतः ॥ १९ ॥

भा०—(यत्) जिस प्रकार से (स्तोता) स्तुतिकर्त्ता, उपासक (ते अनु-व्रतः) तेरे अनुकूल व्रत आचरण करता हुआ, (ऋतुथा) भिन्न २ ऋतु आदि कालों में (उक्थानि) उत्तम वेद-वचनों को धारण करता है। भगवन्! (सः) वह तू (शुचिः) शुद्ध, (पावकः) परम पावन और (अद्भुतः) अद्भुत, आश्चर्यकारक और अजन्मा (उच्यते) कहा जाता है।

तदिद्रुद्रस्य चेतति यह्वं प्रत्नेषु धामसु ।
मनो यत्रा वि तद्दधुर्विचेतसः ॥ २० ॥ १० ॥

भा०—(रुद्रस्य) सब दुःखों के दूर करने वाले उस प्रभु का (तत् इत्) वही (यह्वं) महान् बल, सामर्थ्य (प्रत्नेषु धामसु) पुरातन सूर्यादि लोकों में (चेतति) जाना जाता है (यत्र) जिसमें (वि-चेतसः) विशेष ज्ञानी जन (तत् मनः विदधुः) अपना मन स्थिर करते और (तत् दधुः) उसका ज्ञान प्राप्त करते हैं। इति दशमो वर्गः ॥

यदि मे सख्यमावर इमस्य पाह्यन्धसः ।
येन विश्वा अति द्विषो अतारिम ॥ २१ ॥

भा०—हे विद्वन् ! राजन् ! प्रभो ! (यदि) यदि तू (मे सख्यम् आ-वरः) मेरे मित्र भाव को स्वीकार करता है (इमस्य अन्धसः) इस प्राणधारी जीव सृष्टि का (पाहि) पालन कर । (इमस्य अन्धसः पाहि) इस प्राणधारक अन्न का उपभोग कर, अहिंसा का पालन कर (येन) जिस से (विश्वाः द्विषः) समस्त प्रकार के द्वेष के भावों और शत्रुओं को भी हम (अति अतारिम) पार करें । जीव संसार का पालन करने से उनके भीतर के द्वेष टूट जाते हैं।

कदा त इन्द्र गिर्वणः स्तोता भवाति शन्तमः ।
कदा नो गव्ये अश्व्ये वसौ दधः ॥ २२ ॥

भा०—हे (गिर्वणः) 'गिरा' अर्थात् वेद वाणी से स्तवन करने योग्य, हे वेदवाणी के दातः! हे वाणी द्वारा, स्तवन भजन करने योग्य ! हे (इन्द्र) तेजस्विन् ! (ते स्तोता) तेरी स्तुति करने वाला (शन्तमः कदा भवाति) अति शान्तियुक्त कब होता है ? और (नः) हमें (गव्ये) गौ आदि पशु, इन्द्रियों और वाणी से समृद्ध (अश्व्ये वसौ) अश्वों, विद्वानों और मन आदि साधनों से युक्त भूमि, देह, ज्ञान एवं निवास करने योग्य गृह, आचार्यगृह और राष्ट्र तथा प्रभु-शरण में (कदा दधः) कब रक्खेगा ?

उत ते सुष्टुता हरी वृषणा वहतो रथम् ।
अजुर्यस्य मदिन्तमं यमीमहे ॥ २३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे तेजस्विन् ! सर्वप्रकाशक (यम्) जिस सुख की हम भी (ईमहे) याचना करते हैं । (अजुर्यस्य) अविनाशी, जरादि रहित (ते) तेरे (रथम्) रमण करने योग्य, सुखप्रद (मदिन्तमम्) अति अधिक हर्षदायक, सुख और ऐश्वर्यमय तेरे स्वरूप या ज्ञानोपदेश को, रथ के घोड़ों के समान (सु-स्तुता) उत्तम प्रशंसित और शिक्षित (वृषणा) बलवान् (हरी) स्त्री पुरुष ही (वहतः) धारण करते हैं ।

तमीमहे पुरुष्टुतं यह्वं प्रत्नाभिरूतिभिः ।
नि बर्हिषि प्रिये सदद्ध द्विता ॥ २४ ॥

भा०—हम लोग (तम्) उस (पुरु-स्तुतम्) बहुतों से स्तुति करने योग्य (यह्वं) महान् (तम्) उस प्रभु परमेश्वर को (प्रत्नाभिः) सनातन से विद्यमान (ऊतिभिः) ज्ञान वाणियों से (ईमहे) प्रार्थना करते हैं, (अध) और उसका ज्ञान करते हैं । वह (प्रिये) अतिप्रिय (बर्हिषि) वृद्धिशील संसार में प्रिय राष्ट्र में राजा के समान तू (द्विता) दोनों ही प्रकार से (नि सदत्) विराजता है प्रभु के दो रूप सज्जनों का पालक और दुष्टों को दण्डदाता ।

वर्धस्वा सु पुरुष्टुत ऋषिष्टुताभिरूतिभिः ।
धुक्षस्व पिप्युषीमिषमवा च नः ॥ २५ ॥ ११ ॥

भा०—हे राजन् ! हे (पुरु-स्तुत) बहुतों से स्तुति करने योग्य प्रभो ! हे बहुतों द्वारा राजपद के लिये प्रस्तुत राजन् ! तू (ऋषि-स्तुताभिः) विद्वान् मन्त्रार्थद्रष्टा, तत्वज्ञानी पुरुषों से स्तुति की वा उपदिष्ट (ऊतिभिः) ज्ञानवाणियों वा रक्षा के उपायों से वा प्रिय वचनों से (वर्धस्व) बढ़ । तू (पिप्युषीम्) सब को बढ़ाने वाली और तृप्तिकारक (इषम्) अन्नसम्पदा को (धुक्षस्व) पृथ्वी से प्राप्त कर और हमें दे और (निः अव च) हमारी रक्षा कर । इत्येकादशो वर्गः ॥

इन्द्र त्वमवितेदसीत्था स्तुवतो अद्रिवः ।
ऋतादियर्मि ते धियं मनोयुजम् ॥ २६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! स्वामिन् ! हे (अद्रिवः) अविदीर्ण, अखण्ड शक्ति के मालिक ! तू (इत्था स्तुवतः) इस प्रकार स्तुति करने वाले का (अविता इत् असि) रक्षक ही है । (ऋतात्) सत्य ज्ञानमय वेद से मैं (ते) तेरे उपदिष्ट (मनोयुजं) मन के साथ योग करने वाले, वा ज्ञान की सहयोगिनी, (धियं) वाणी और कर्म को (इयर्मि) प्राप्त करूं ।

इह त्या सधमाद्या युजानः सोमपीतये ।
हरी इन्द्र प्रतद्वसू अभि स्वर ॥ २७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (सोमपीतये) 'सोम' ऐश्वर्य के पालन और उपभोग करने के लिये वा हे आचार्य विद्वन् ! तू 'सोम' वीर्य की रक्षा करने के लिये (सधमाद्या) एक साथ आनन्द लेने वाले (त्या) उन दोनों (प्रतद्-वसू) उत्तम विस्तृत ऐश्वर्यों के स्वामी (हरी) स्त्री पुरुषों को (इह) इस जगत् वा आश्रम में (युजानः) रथ में अश्वों के समान सन्मार्ग में नियुक्त करता हुआ (अभि स्वर) उनको उपदेश कर ।

अभि स्वरन्तु ये तव रुद्रासः सक्षत श्रियम् ।
उतो मरुत्वतीर्विशो अभि प्रयः ॥ २८ ॥

भा०—हे राजन् ! हे प्रभो ! (ये) जो (रुद्रासः) अन्यों का दुःख दूर करनेवाले, अन्यों को दुःखी देख कर करुणा से स्वयं रोने या आंसू बहाने वाले वा उत्तम उपदेष्टा एवं दुष्टों को रुलाने वाले पुरुष (तव अभि) जो तेरे गुणों का साक्षात् कर (स्वरन्तु) स्तुति करते और औरों को उसका उपदेश करते हैं वे (श्रियं सक्षत) लक्ष्मी, शोभा आदि को प्राप्त करते हैं। (उतो) और (मरुत्वतीः विशः) वे प्राणों से या 'मरुत्' विद्वानों, वीरों और वैश्य जनों से युक्त प्रजाओं को भी (प्रयः अभि) अन्न आदि प्राप्ति-योग्य तृप्ति-सुखकारक पदार्थ प्राप्त करावें ।

इमा अस्य प्रतूर्तयः पदं जुषन्त यद्दिवि ।
नाभा यज्ञस्य सं दधुर्यथा विदे ॥ २९ ॥

भा०—(इमाः) ये (अस्य) इस राजा की (प्र-तूर्तयः) उत्तम रीति से शत्रु वा दुष्ट पुरुषों का नाश करने वाली सेनाएं और उत्तम एवं शीघ्र कार्य करने में कुशल प्रजाएं (यत्) जो (दिवि) भूमि में (पदं) उत्तम स्थान (जुषन्त) प्राप्त करती हैं वे (यथा विदे) यथावत् श्रम के

अनुसार द्रव्य लाभ करने के लिये (नाभा) नाभिवत् राष्ट्र के उत्तम प्रबन्धक पुरुष के अधीन, उसी के आश्रय पर (यज्ञस्य सं दधुः) परस्पर दान-प्रतिदान, संगति, मान-सत्कार आदि का अच्छी प्रकार व्यवहार करते हैं। इसी प्रकार (प्र-तूर्तयः) इस प्रभु की उत्तम प्रजागण जब (दिवि पदं जुषन्त) उस प्रकाशस्वरूप प्रभु में स्थिति वा ज्ञान को प्राप्त कर लेते हैं वे (यथा विदे) यथावत् ज्ञान और आनन्द के लाभ के लिये (नाभौ) नाभि देश में (यज्ञस्य) पूज्य प्रभु का (सं दधुः) उत्तम रीति से धारण, ध्यानादि करते हैं।

अ॒यं दी॒र्घाय॒ चक्ष॑से॒ प्राचि॑ प्रय॒त्य॑ध्व॒रे।
मिमी॑ते य॒ज्ञमा॑नु॒षग्वि॒चक्ष्य॑ ॥ ३० ॥ १२ ॥

भा०—(अयम्) यह विद्वान् (प्राचि) उत्तम रीति से पूज्य (अध्वरे) हिंसादि से रहित एवं अविनाशी (प्रयति) उत्तम यत्न से करने योग्य यज्ञमय प्रभु के आश्रय ही (दीर्घाय) बड़े भारी विस्तृत (चक्षसे) दर्शन या तत्वज्ञान के लाभ के लिये (वि-चक्ष्य) विशेष रूप से देख कर (आनुषक्) निरन्तर (यज्ञम् मिमीते) यज्ञ वा देवपूजा का सम्पादन करता है। इति द्वादशो वर्गः ॥

वृ॒षायमि॑न्द्र॒ ते॒ रथ॑ उ॒तो ते॒ वृष॑णा॒ हरी॑।
वृषा॒ त्वं श॑तक्रतो॒ वृषा॒ हवः॑ ॥ ३१ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! शत्रुहन्! (अयम्) यह (ते) तेरा (रथः) रथ रमणीय स्वरूप (वृषा) बलवान्, सुदृढ़ है। (ते हरी) तेरे दोनों अश्व भी (वृषणा) बलवान् हैं। हे (शतक्रतो) सैकड़ों, अनेक प्रज्ञा और कर्म वाले! (त्वं वृषा) तू बलवान् है। तेरा (हवः) आह्वान, दान एवं नाम, स्मरणादि भी (वृषा) बलयुक्त, सुखों का देने वाला है। (२) इसी प्रकार राजा का रथ राष्ट्र, उसके वासी स्त्री पुरुष, राजा स्वयं और उसका व्यवहार सब बलवान् हों।

वृषा ग्रावा वृषा मदो वृषा सोमो अयं सुतः ।
वृषा यज्ञो यमिन्वसि वृषा हवः ॥ ३२ ॥

भा०—(ग्रावा वृषा) मेघवत् उपदेष्टा विद्वान् और प्रस्तरवत् शत्रुनाशक क्षात्रबल बलवान् हो । हे राजन् ! (मदः वृषा) तेरा यह 'मद' हर्ष, प्रसन्नता भी (वृषा) सुखप्रद और दृढ़ हो । (अयं सुतः) यह उत्पन्न (सोमः) पुत्रवत् राष्ट्र वा अभिषिक्त राजपुरुष भी (वृषा) बलवान् हो। (यज्ञः) परस्पर का मेल वा दान-प्रतिदान व्यवहार (यम् इन्वसि) जिसको तू करता है, वह भी (वृषा) बलवान्, दृढ़, सुखप्रद हो। (हवः वृषा) शत्रु के साथ प्रतिस्पर्द्धा और ललकार भी (वृषा) सुखप्रद और बलवान्, दृढ़ हो ।

वृषा त्वा वृषणं हुवे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः ।
वावन्थ हि प्रतिष्टुतिं वृषा हवः ॥ ३३ ॥ १३ ॥

भा०—हे (वज्रिन्) बलशालिन् (चित्राभिः) आश्चर्यजनक नाना (ऊतिभिः) रक्षाकारिणी सेनाओं वा रक्षाओं से युक्त (वृषणं) बलवान् तुझ को (वृषा) मैं प्रजाजन (हुवे) स्वीकार करता हूं । तू (वृषा) सब सुखों का दाता, उत्तम प्रबन्धकर्त्ता और (हवः) शत्रुओं के साथ प्रतिस्पर्द्धाशील होकर ही (प्रतिस्तुतिं वावन्थ हि) सर्वत्र स्तुति को प्राप्त कर। (२) प्रभु नाना रक्षाओं से सुखप्रद है। वह संसार का प्रबन्धक, (हवः) स्तुत्य है, सबकी स्तुति प्राप्त करता है। इति त्रयोदशो वर्गः॥

[१४]

गोपूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौ ऋषी ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ११ विराड् गायत्री । २, ४, ५, ७, १५ निचृद्गायत्री । ३, ६, ८—१०, १२—१४ गायत्री ॥ पञ्चदशं सूक्तम् ॥

यदिन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत् ।
स्तोता मे गोषखा स्यात् ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यथा) जिस प्रकार (त्वम् एकः (इत्) तू एक अद्वितीय ही (वस्वः ईशीय) ऐश्वर्य और बसे जीवगण का स्वामी है, (यद् अहं) वैसे ही जो मैं होऊं। फिर जिस प्रकार तेरा (स्तोता गो-सखा) स्तुतिकर्त्ता उत्तम वाणियों और इन्द्रियों का मित्र होता है उसी प्रकार इस लोक में ऐश्वर्यसम्पन्न (मे) मेरा (स्तोता) स्तुतिकर्त्ता वा उपदेष्टा विद्वान् भी (गो-सखा) भूमि का मित्र, वाणी का मित्र, गोसम्पन्न का मित्र, 'गो' धनुष डोरी का मित्र, अर्थात् भूमि, वाणी, पशु और शस्त्रादिसम्पन्न बलवान् (स्यात्) हो।

शिक्षेयमस्मै दित्सेयं शचीपते मनीषिणे।
यदहं गोपतिः स्याम् ॥ २ ॥

भा०—हे (शचीपते) शक्तियों और वाणियों के स्वामिन् ! (यद् अहं गोपतिः स्याम्) जो मैं 'गोपति', भूमिपति, वाणियों का स्वामी विद्वान् एवं धनुर्धर होऊं तो (अस्मै मनीषिणे) इस मन पर वश करने वाले मनस्वी शिष्य को (शिक्षेयं) ज्ञान की शिक्षा दूं। (अस्मै मनीषिणे) इस ज्ञान के देने वाले विद्वान् को (दित्सेयं) धनादि देने की इच्छा करूं और (शिक्षेयं) दूं भी।

धेनुष्ट इन्द्र सूनृता यजमानाय सुन्वते।
गामश्वं पिप्युषी दुहे ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! ज्ञानप्रद ! तेजस्विन् ! ज्ञानप्रकाशक ! प्रभो ! गुरो ! विद्वन् ! (सुन्वते) शुभकर्म करने वाले, ज्ञान-स्नान करने वाले (यजमानाय) देवपूजा, सत्संग शील के लिये (सूनृता) उत्तम सत्य, न्याययुक्त (ते धेनुः) तेरी वाणी (पिप्युषी) उसे बढ़ाती हुई (गाम् अश्वं दुहे) गौ अश्वादि सम्पदा भी प्रदान करती है।

न ते वर्तास्ति राधस इन्द्र देवो न मर्त्यः।
यद्दित्ससि स्तुतो मघम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यशालिन् ! तू (स्तुतः) स्तुति किया जाकर (यत्) जब (मघं दित्ससि) उत्तम ऐश्वर्य देना चाहता है तो (ते राधसः) तेरे दिये धन का (वर्त्ता) वारण करने वाला (न देवः न मर्त्यः) न कोई देव, विद्वान् तेजस्वी है और न साधारण मनुष्य है । तेरा दिया उसे अवश्य प्राप्त होता है ।

युज्ञ इन्द्रमवर्धयुद्यद्भूमिं व्यवर्तयत् । चुक्राण ओपुशं दिवि ५।१४

भा०—(दिवि) आकाश में (ओपशं) मेघ को (चक्राणः) उत्पन्न करता हुआ (यत्) जो यज्ञ (भूमिं वि-अवर्त्तयत्) भूमि को विविध सस्यादि से सम्पन्न करता है, वह ही (इन्द्रम् अवर्धयत्) सूर्यवत् प्रभु की महिमा को बढ़ाता है । अथवा—(यत्) जो इन्द्र, ऐश्वर्यवान् राजा सूर्यवत् (भूमिं अवर्त्तयत्) भूमि को विविध प्रकार से काम में लाता, (दिवि ओपशं चक्राणः) तेज में या भूमि में स्थिति प्राप्त करता है, उसको (यज्ञः) प्रजाओं का संग बढ़ाता है । इति चतुर्दशो वर्गः ॥

वावृधानस्य ते वयं विश्वा धनानि जिग्युषः ।
ऊतिमिन्द्रा वृणीमहे ॥ ६ ॥

भा०—(विश्वा धनानि) समस्त धनों को (जिग्युषः) जीतने वाले और (वावृधानस्य) निरन्तर बढ़ने वाले महान् (ते) तेरी (ऊतिं) रक्षा को ही हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! (वयं वृणीमहे) हम वरण करते हैं ।

व्य१न्तरिक्षमतिरुन्मदे सोमस्य रोचना । इन्द्रो यदभिनद्वलम् ७

भा०—(इन्द्रः) शत्रुहन्ता राजा सूर्यवत् तेजस्वी होकर (यत्) जब (वलम्) घेरने वाले शत्रु को मेघ के समान (अभिनत्) छिन्न भिन्न करता है तब वह (सोमस्य मदे) ऐश्वर्य प्राप्ति वा राष्ट्र के लाभ रूप हर्ष में (रोचना) रुचियुक्त होकर (अन्तरिक्षम् वि-अतिरत्) अपने अन्तःकरण को भी आकाशवत् बड़ा कर लेता है, उदार होजाता है । इसी प्रकार जो

परमेश्वर आवरणकारी अज्ञान को छिन्न भिन्न करदेता है, आनन्द में (रोचना सोमस्य) रुचि करने वाले जीव के (अन्तरिक्षम् वि-अतिरत्) हृदय को बढ़ाता है, उसको उत्साहित करता है।

उद्गा आ॑जदङ्गि॑रोभ्य आविष्कृण्वन्गुहा॑ स॒तीः।
अ॒र्वाञ्चं॑ नुनुदे व॒लम् ॥ ८ ॥

भा०—वह परमेश्वर (अंगिरोभ्यः) तेजस्वी विद्वानों वा प्राणधारी जीवों के उपकार के लिये (गुहा सतीः) अन्तःकरण में प्राप्त हुई (गाः) वेदवाणियों को शिष्यों के गुरु के समान (आविष्कृण्वन्) प्रकट करता हुआ (उत् आजत्) उदित करता है, और (अर्वाञ्चं) आगे आये (वलम्) आत्मा को घेरने वाले अज्ञान को (नुनुदे) परे भगा देता है। इसी प्रकार प्रभु ऋषियों के हृदय में गुरुवत् ज्ञान प्रकाशित करता है।

इन्द्रे॑ण रोच॒ना दि॒वो दृ॒ळ्हानि॑ दृंहि॒तानि॑ च।
स्थि॒राणि॒ न प॑रा॒णुदे॑ ॥ ९ ॥

भा०—(इन्द्रेण) उस ऐश्वर्य के स्वामी, परमेश्वर ने (दिवः) भूमि, अन्तरिक्ष और आकाश के (रोचना) कान्तियुक्त वा रुचिकारक, नाना पदार्थ (दृढानि) दृढ़ किये और (दृंहितानि) बढ़ाये, (स्थिराणि) स्थिर, सदा विद्यमान रहने वाले बनाये, (न परानुदे) जिससे वे फिर चिरकाल तक नाश न होसकें।

अ॒पामू॒र्मिर्मद॑न्निव॒ स्तोम॑ इन्द्राजिरायते।
वि ते॒ मदा॑ अराजिषुः ॥ १० ॥ १५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (स्तोमः) स्तुतिप्रवाह (मदन् इव) उछलते (अपाम् ऊर्मिः इव) समुद्रों के तरंग के समान (अपाम् ऊर्मिः) प्राणों के तरंगवत् (अजिरायते) वेग से उठता है, (ते मदाः) तेरे आनन्द प्रवाह (वि अराजिषुः) विविध प्रकार से विराजते हैं। परमेश्वर

के प्रति स्तुतिसमूह प्राणों के उठते प्रवाह रूप से जल तरंगवत् हृदय समुद्र से उछलता है, प्रभु के आनन्द ही मानो सर्वत्र प्रकाशित हो रहे हैं।
इति पञ्चदशो वर्गः ॥

त्वं हि स्तो॑म॒वर्ध॑न॒ इन्द्रा॒स्यु॑क्थ॒वर्ध॑नः । स्तो॒तॄ॒णामु॒त भ॑द्र॒कृत् ११

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वं) तू (स्तोतॄणाम्) स्तुतिकर्त्ता जनों के (हि) अवश्य (स्तोम-वर्धनः) स्तुति समूह को बढ़ाने वाला और (उक्थ-वर्धनः) उत्तम वचन को बढ़ाने वाला (उत) और (भद्रकृत्) उनका कल्याण करने वाला है ।

इन्द्र॒मित्के॒शिना॒ हरी॒ सोम॒पेया॑य वक्षतः । उप॑ य॒ज्ञं सु॒राध॑सम् १२.

भा०—जिस प्रकार (केशिना हरी इन्द्रम् वक्षतः) केशों वाले अश्व ऐश्वर्यवान् पुरुष को ढोते हैं उसी प्रकार (केशिना हरी) क्लेशों वाले स्त्री पुरुष वा ज्ञानी और कर्मवान् पुरुष (सोम-पेयाय) सुखैश्वर्य को प्राप्त करने और उसके उपभोग के लिये (इन्द्रम् इत् वक्षतः) उस परमेश्वर को हृदय में धारण करते और उसकी ही स्तुति करते हैं । वा (केशिना हरी इन्द्रम् सोमपेयाय वक्षतः) जटावान् ब्रह्मचारी ब्रह्मचारिणी भी इन्द्र आचार्य को ज्ञान प्राप्त्यर्थ प्राप्त करते हैं । और वे दोनों, (सु-राधसम्) उत्तम आराधना योग्य (यज्ञम् उप) पूज्य, उपासनीय प्रभु की उपासना करते हैं ।

अ॒पां फेने॑न॒ नमु॑चेः॒ शिर॑ इन्द्रो॒दव॑र्तयः ।
विश्वा॒ यदज॑यः॒ स्पृधः॑ ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! ज्ञान के द्रष्टा ! (यद्) जब (विश्वाः) समस्त (स्पृधः) स्पर्धाओं, द्वेषों और कामनाओं को (अजयः) जीत लेता है, तब तू (अपां) प्राणों के (फेनेन) बल से (नमुचेः) न छूटने वाले देह के (शिरः) शिरो भाग की ओर (उत् अवर्त्तयः) ऊर्ध्व गति करता है । (२) इसी प्रकार राजा जब स्पर्धा से सेनाओं को जीत ले तब (नमुचेः) न जीता छोड़ने योग्य शत्रु के शिर या विचार को (अपां

फेनेन) प्राप्त जनों के उपदेश-बल से (उत् अवर्त्तयः) उत्तम मार्ग में प्रवृत्त करावे। अथवा—(शिरः) शत्रु के शिर अर्थात् प्रमुख भाग को (अपां फेनेन) प्रजाओं के हिंसाकारी बल सैन्य से (उद्-अवर्त्तयः) उखाड़ दे।

मायाभिरुत्सिसृप्सत इन्द्र द्यामारुरुक्षतः। अव दस्यूँरधूनुथाः॥१४॥

भा०—हे (इन्द्र) सत्यदर्शिन्! हे शत्रुहन्तः! तू (मायाभिः) नाना बुद्धियों से (उत्-सिसृप्सतः) ऊपर जाना चाहते हुए और (द्याम्) तेजोयुक्त प्रमुपद वा शिरोभाग के मूर्धा स्थान की ओर (आरुरुक्षतः) आरोहण करने वाले सज्जनों की रक्षा कर और (मायाभिः) छल कपटादि से ऊंचे जाने वाले (द्याम्) भूमि राज्य पर (आरुरुक्षतः) आरूढ होने वाले (दस्यून् अव अधूनुथाः) दस्युओं को नीचे गिरा दे। अर्थापत्ति के बल से यहां सज्जनों की वृद्धि करने का अभिप्राय है।

असुन्वामिन्द्र संसदं विषूचीं व्यनाशयः।
सोमपा उत्तरो भवन्॥१५॥१६॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! दुष्टों के नाशक! तू (सोम-पाः) ऐश्वर्य, राष्ट्र के प्रजाजन और विद्वान् आदि का रक्षक (उत्तरः) सबसे उत्कृष्ट, सबको पार ले जाने वाला (भवन्) होकर (असुन्वां संसदम्) ऐश्वर्य को न उत्पन्न करने वाली और (विषूचीम्) विपरीत अराजक दिशा से जाने वाली (संसदं) राजा वा जन-सभा को (वि-अनाशयः) विशेष रूप से नष्ट कर। इति षोडशो वर्गः॥

[१५]

तम्वभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम् ।
इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो ! आप लोग (तम् उ) उसी (पुरुहूतं) बहुतों से स्वीकृत, (पुरुस्तुतम्) बहुतों से स्तुति किये जाने योग्य (तविषम्) बलशाली, सर्वशक्तिमान् (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर को लक्ष्य कर (अभि प्र गायत) खूब अच्छी प्रकार गान करो । (गीर्भिः) नाना स्तुति वाणियों से (आ विवासत) आदरपूर्वक सेवा और उपासना करो ।

यस्य द्विबर्हसो बृहत्सहो दाधार रोदसी ।
गिरीँरज्राँ अपः स्वर्वृषत्वना ॥ २ ॥

भा०—(द्विबर्हसः) आकाश और भूमि दोनों को धारण करनेवाले दोनों के स्वामी रूप (यस्य बृहत् सहः) जिसका बल बहुत बड़ा है वह (वृषत्वना) अपने बड़े भारी सामर्थ्य से (रोदसी दाधार) आकाश और भूमि को धारण करता है, वह (अज्रान् गिरीन्) वेग से जाने वाले मेघों को (अपः) समुद्र वा आकाश के जलों को और (स्वः) सूर्य को वा प्रकाश को भी अपने बल से (दाधार) धारण करता है ।

स राजसि पुरुष्टुतँ एको वृत्राणि जिघ्नसे ।
इन्द्र जैत्रा श्रवस्या च यन्तवे ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे सूर्यवत् तेजस्विन् ! (सः) वह तू (पुरुस्तुतः) बहुतों से प्रशंसित, बहुतों की स्तुति प्रार्थनादि किये जाने योग्य (एकः) अकेला निःसहाय, अद्वितीय रहकर (राजसि) राजा के समान है । वह तू (एकः) अकेला ही (जैत्रा) विजय करने योग्य और (श्रवस्या) श्रवण करने योग्य धनों, अन्नों और ज्ञानों को (यन्तवे) देने के लिये (वृत्राणि जिघ्नसे) मेघों को विद्युत्वत्, आवरणकारी अज्ञानों को नाश करता है ।

तं ते मदं गृणीमसि वृषणं पृत्सु सासहिम् ।
उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (अद्रिवः) वीर्यवन् ! हे अखण्ड शक्तिशालिन् ! (ते) तेरे (तं) उस (वृषणं) महान् शक्तिसम्पन्न, सब सुखों के दाता, (पृत्सु सासहिं) संग्रामों में शत्रु को पराजय करने वाले (लोक-कृत्नुम्) समस्त लोकों को बनाने वाले और (हरि-श्रियम्) सूर्यादि लोकों और समस्त मनुष्यों के आश्रय लेने योग्य (मदं) परमानन्द की हम (गृणीमसि) स्तुति करते हैं ।

येन ज्योतींष्यायवे मनवे च विवेदिथ ।
मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ॥ ५ ॥ १७ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू (येन) जिस संसार द्वारा (आयवे) इस संसार में पुनः २ आने वाले (मनवे) मननशील जीव संसार को (ज्योतींषि) अग्नि आदि और विद्युत्वत् चमकने वाले वेदमय ज्ञान-प्रकाश (विवेदिथ) प्राप्त कराता है वह तू (मन्दानः) स्वयं आनन्दमय होकर (अस्य बर्हिषः) इस महान् संसार के बीच में (वि राजसि) विविध प्रकार से चमकता है । इति सप्तदशो वर्गः ॥

तदद्या चित्त उक्थिनोऽनुष्टुवन्ति पूर्वथा ।
वृषपत्नीरपो जया दिवेदिवे ॥ ६ ॥

भा०—(तत्) वे विद्वान् जन (अद्य चित्) आज भी (पूर्वथा) पूर्ववत् (उक्थिनः) वेद वचन वा मन्त्रों के जानने वाले (ते) तेरे यश का (अनु स्तुवन्ति) नित्य स्तवन करते हैं । हे बलशालिन् ! (दिवे दिवे) प्रति दिन, नित्य, (वृषपत्नीः) बलवान् पुरुषों द्वारा पालने योग्य (अपः) प्रकृति के परमाणुओं को (जय) अपने वश करता है । उसी प्रकार राजा की सब स्तुति करते हैं वह बल पुरुषों से पालन करने योग्य प्रजाओं और भूमियों को प्रतिदिन विजय करे ।

तव॒ त्यदि॑न्द्रि॒यं बृ॒हत्तव॒ शुष्म॑मु॒त क्रतु॑म् ।
वज्रं॑ शिशाति धि॒षणा॒ वरे॑ण्यम् ॥ ७ ॥

भा०—हे प्रभो ! राजन् ! (तव) तेरे (त्यत् इन्द्रियम्) उस इन्द्रिय अर्थात् महान् ऐश्वर्य सामर्थ्य को और (तव) तेरे उस (बृहत् शुष्मम्) बड़े भारी बल और (क्रतुम्) ज्ञान और कर्म को और तेरे (वरेण्यम् वज्रम्) सर्वश्रेष्ठ, वरण करने योग्य बल को (धिषणा) बुद्धि वा ज्ञान ही (शिशाति) अति तीक्ष्ण कर रहा है, प्रबलता से दिखाता है।

तव॒ द्यौरि॑न्द्र॒ पौंस्यं॑ पृथि॒वी व॑र्धति॒ श्रवः॑ ।
त्वामापः॒ पर्व॑तासश्च हिन्विरे ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यशालिन् ! (तव पौंस्यं) तेरे महान् पौरुष वा बल वा पुरुष भाव को (द्यौः) यह सूर्य (वर्धति) बढ़ा रहा है। और (तव श्रवः) तेरे यश को (पृथिवी) अन्नवत् यह पृथिवी (वर्धति) बढ़ा रही है। (आपः) जल और (पर्वतासः च) मेघगण भी (त्वाम् हिन्विरे) तेरी बड़ाई करते हैं।

त्वां विष्णु॑र्बृ॒हन्क्षयो॑ मि॒त्रो गृ॑णाति॒ वरु॑णः ।
त्वां शर्धो॑ मद॒त्यनु॒ मारु॑तम् ॥ ९ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! (विष्णुः) सर्वत्र फैलने वाला, प्रकाशमान सूर्य (बृहन्) महान् (क्षयः) सबको अपने में बसाने वाला, गृह के समान आश्रय देने वाला सूर्य (मित्रः) स्नेहवान् जन, और दिन और (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ जन वा रात्रि भी (त्वां गृणाति) तेरी स्तुति करता है। और (मारुतं शर्धः) वायुओं का बल भी (त्वाम् अनु मदति) तेरे बलपर क्रीड़ा करता है।

त्वं वृषा॒ जना॑नां॒ मंहि॑ष्ठ इन्द्र जज्ञिषे ।
स॒त्रा विश्वा॑ स्वप॒त्यानि॑ दधिषे ॥ १० ॥ १८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यशालिन्! सूर्यवत् तेजस्विन्! (त्वं) तू (जनानां) मनुष्यों के बीच में (वृषा) बलवान् वीर्यसेचक के तुल्य सबका पिता, सुखों का दाता और (मंहिष्ठः) सबसे पूज्य, सबसे बड़ा दानी होकर (जनिषे) समस्त जगत् को उत्पन्न करता है। (सत्रा) साथ ही वा सदा तू (विश्वा) समस्त जीवों और लोकों को (सु-अपत्यानि) उत्तम सन्तानों के समान (दधिषे) उनको धारता, अपनी गोद में शरण में लेता और उनको अन्नादि से पालता है। इत्यष्टादशो वर्गः॥

सत्रा त्वं पुरुष्टुत एको वृत्राणि तोशसे।
नान्य इन्द्रात्करणं भूय इन्वति ॥ ११ ॥

भा०—हे प्रभो! स्वामिन्! शत्रुहन्तः! (त्वं) तू (सत्रा) सत्य के बल से वा सदा एक साथ (पुरुस्तुतः) बहुतों से स्तुति करने योग्य होता है। वह तू (एकः) अकेला अद्वितीय शक्तिशाली होकर (वृत्राणि) शत्रु सैन्यों के समान वैर लेने वाले विघ्नों को, मेघों को सूर्यवत् वा जलों को विद्युत्वत् (तोशसे) मारता, गिरा देता है। (इन्द्रात् अन्यः) उस परमैश्वर्यवान् से दूसरा कोई भी (भूयः करणं) अधिक क्रियासामर्थ्य, वा साधन को (न इन्वति) नहीं प्राप्त कर सकता है।

यदिन्द्र मन्मशस्त्वा नाना हवन्त ऊतये।
अस्माकेभिर्नृभिरत्रा स्वर्जय ॥ १२ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यत् त्वा) जिस तुझ को (नाना) बहुत से जन (मन्मशः) मनन करने योग्य मन्त्रों से (ऊतये) रक्षा और ज्ञान प्राप्त करने के लिये (हवन्ते) पुकारते और आहुति प्रदान वा यज्ञ, उपासना करते हैं वह तू (अत्र) इस जगत् में (अस्माकेभिः) हमारे (नृभिः) मनुष्यों सहित (स्वः) समस्त सुख को (जय) सर्वोपरि प्राप्त हो वा नायक वा आदित्यवत् सर्वोपरि विराज।

अरं क्षयाय नो महे विश्वा रूपाण्याविशन् ।
इन्द्रं जैत्राय हर्षया शचीपतिम् ॥ १३ ॥ १९ ॥

भा०—हे प्रभो ! (नः) हमारे (महे क्षयाय) बड़े भारी ऐश्वर्य के लिये (विश्वा रूपाणि) सब प्रकार के रुचियुक्त, कान्तियुक्त पदार्थ नाना रूप वाले अश्व, गौआदि प्राणि (अरं आविशन्) खूब प्राप्त हों अथवा हमारे ही ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये (विश्वा) समस्त जीव (रूपाणि अविशन्) नाना देहों को प्राप्त होते हैं । हे विद्वन् ! (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् सेनापति के तुल्य इस अध्यात्मगत तेजस्वी प्रभु को भी (जैत्राय) सब अन्तःशत्रुओं और प्राकृतिक ऋद्धियों पर विजय प्राप्त करने के लिये उस (शचीपतिम्) शक्तियों के पात्र प्रभु को (हर्षय) प्रसन्न कर ॥ इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[१६]

इरिम्बिठिः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ६—१२ गायत्री । २—७ निचृद् गायत्री । ८ विराड् गायत्री ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

प्र सम्राजं चर्षणीनामिन्द्रं स्तोता नव्यं गीर्भिः ।
नरं नृषाहं मंहिष्ठम् ॥ १ ॥

भा०—(चर्षणीनाम् सम्राजं) समस्त ज्ञानदर्शी, तत्त्व ज्ञानी मनुष्यों के बीच में अच्छी प्रकार प्राप्त होने वाले, सम्राट् के समान सर्वोपरि शोभायमान, (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान्, (नव्यं) स्तुति योग्य (नरं) नायक, परम पुरुष (नृ-साहं) मनुष्यों को वश करने वाले (मंहिष्ठम्) अतिदानशील-पुरुष, प्रभु का (गीर्भिः स्तोत) वेद वाणियों से स्तुति किया करो ।

यस्मिन्नुक्थानि रण्यन्ति विश्वानि च श्रवस्या ।
अपामवो न समुद्रे ॥ २ ॥

भा०—(समुद्रे अपाम् अवः) जिस प्रकार समुद्र में जलों के नाना प्रवाह वा तरंग आते और इसी में लीन होजाते हैं उसी प्रकार (यस्मिन्)

जिस प्रभु में (विश्वानि उक्थानि) समस्त स्तुति-वचन और (विश्वानि श्रवस्या च) सब प्रकार के श्रवण करने योग्य कीर्त्ति वचन भी (रण्यन्ति) रमते हैं, उसी का वर्णन करते हैं। (तम् सुस्तुत्या विवासे) उस प्रभु का मैं स्तुति द्वारा भजन, सेवन और प्रकाश करूं।

तं सुष्टुत्या विवासे ज्येष्ठराजं भरे कृत्नुम्।
महो वाजिनं सनिभ्यः ॥ ३ ॥

भा०—(तं) उस (ज्येष्ठ-राजं) बड़ों २ के राजा, बड़े २ सूर्यादि में प्रकाशमान (भरे कृत्नुम्) भरण पोषण करने योग्य संसार में जगत् को बनाने वाले (महः वाजिनम्) बड़े बल, ज्ञान, ऐश्वर्य के स्वामी को मैं (सनिभ्यः) नाना भागों या दानों के लिये (सुस्तुत्या आविवासे) उत्तम स्तुति से उसकी सेवा, अर्चा और पूजा तथा उसके गुणों का प्रकाश करूं।

यस्यानूना गभीरा मदा उरवस्तरुत्राः। हर्षुमन्तः शूरसातौ ॥४॥

भा०—(यस्य) जिस प्रभु के (मदाः) आनन्दमय विकास वा (मदाः) आनन्ददायक व्यवहार, तृप्तिदायक जलाशयवत् रस सागर और आनन्द युक्त पुरुष (अनूनाः) किसी प्रकार भी न कम, परिपूर्ण, (गभीराः) गंभीर, (उरवः) बड़े २ और (तरुत्राः) वृक्षों के इर्द गिर्द लगी बाड़ के समान समस्त प्राणियों की रक्षा करनेवाले, वा इस संसार से पार उतारने वाले और (शूर-सातौ) शूरवीरों के प्राप्ति के अवसर, संग्रामादि में भी (हर्षुमन्तः) अति हर्षयुक्त हैं वही परमेश्वर राजा के समान सबका पालक है।

तमिद्धनेषु हितेष्वधिवाकाय हवन्ते। येषामिन्द्रस्ते जयन्ति ॥५॥

भा०—(हितेषु धनेषु) हितकारी, कल्याणजनक धनों को प्राप्त करने के निमित्त (अधिवाकाय) अध्यक्ष रूप से आज्ञा वा निर्णय वचन कहने वाले अध्यक्ष पद के लिये विद्वान् लोग (तम् इत् हवन्ते) उसी से

प्रार्थना करते हैं कि हम लोगों के ऊपर विराज कर न्याय निर्णय करें। (येषाम् इन्द्रः) जिनके पक्ष में 'इन्द्र' सत्य न्याय का द्रष्टा होता है (ते) वे (जयन्ति) विजय प्राप्त करते हैं। वे ही विवादग्रस्त धन के भागी होते हैं। 'इन्द्र':—इदम् अदर्शत् इति इन्द्रः ।

तमिच्च्यौत्नैरार्यन्ति तं कृतेभिश्चर्षणयः ।
एष इन्द्रो वरिवस्कृत् ॥ ६ ॥ २० ॥

भा०—(एषः इन्द्रः) यह ऐश्वर्य का स्वामी, तेजस्वी प्रभु ही (वरिवस्कृत्) उत्तम ऐश्वर्य उत्पन्न करता है। (तम् इत्) उस को (च्यौत्नैः) बलों, ज्ञानों और (कृतेभिः) सत्कर्मों से (चर्षणयः) सब मनुष्य (आर्यन्ति) सब प्रकार से प्राप्त करते, उसको अपना स्वामी बना लेते हैं, उसकी उपासना प्रार्थना करते हैं। इति विंशो वर्गः ॥

इन्द्रो ब्रह्मेन्द्र ऋषिरिन्द्रः पुरू पुरुहूतः ।
महान्महीभिः शचीभिः ॥ ७ ॥

भा०—इन्द्र का लक्षण और नाना भेद। (इन्द्रः ब्रह्मा) ज्ञान का साक्षात् दर्शन करने से चारों वेदों का ज्ञाता महान् ज्ञानी पुरुष 'इन्द्र' है। (ऋषिः इन्द्रः) यथार्थ ज्ञान का तत्वदर्शी इन्द्र है। वह अपनी वाणी औरों को प्रदान करता है। वह (पुरुहूतः) बहुतों से आदर प्राप्त होता है। वह (महीभिः शचीभिः) बड़ी २ शक्तियों और पूज्य २ वाणियों करके (महान्) महान् है और (पुरु) बहुत प्रकार से विराजता है। उसी प्रकार परमेश्वर भी महान् होने से 'ब्रह्म' है, सर्वद्रष्टा होने से 'ऋषि' है, वह बड़ी २ शक्तियों से 'महान्' है।

स स्तोम्यः स हव्यः सत्यः सत्वा तुविकूर्मिः ।
एकश्चित्सन्नभिभूतिः ॥ ८ ॥

भा०—(सः) वह परमेश्वर (स्तोम्यः) स्तुति योग्य वचनों से वा सूक्तों से स्तुति करने योग्य है। (सः हव्यः) वह यज्ञ और प्रार्थनादि

से सत्कार योग्य है। वह (सत्यः) सत्य स्वरूप, (सत्वा) बलवान्, (तुवि-कूर्मिः) बहुत से नाना कर्म करने हारा है। वह (एकः चित्) अकेला ही, (सन्) सर्वत्र प्राप्त और (अभि-भूतिः) सब विघ्नों और शत्रु जनों का पराजय करने हारा है।

तमर्केभिस्तं सामभिस्तं गायत्रैश्चर्षणयः।
इन्द्रं वर्धन्ति क्षितयः॥ ९॥

भा०—(तम् इन्द्रं) उस परमैश्वर्यवान् प्रभु को (चर्षणयः क्षितयः) ज्ञान के द्रष्टा विद्वान् लोग (अर्केभिः) अर्चना करने योग्य मन्त्रों से और (तं सामभिः) उसी को साम गानों से और (तं गायत्रैः) उसीको गायत्री आदि नाना छन्दों से (वर्धन्ति) बढ़ाते हैं। उसी का गुण गान कर उसकी महिमा का विस्तार करते हैं।

प्रणेतारं वस्यो अच्छा कर्तारं ज्योतिः समत्सु।
सासह्वांसं युधामित्रान्॥ १०॥

भा०—और वे मनुष्य (वस्यः) उत्तम ऐश्वर्य को (अच्छ प्रणेतारम्) साक्षात् प्रयाण करने वाले और (समत्सु) संग्रामवत् संदिग्ध, भययुक्त संकट के अवसरों में भी (ज्योतिः कर्त्तारम्) प्रकाश करने वाले, (युधा) युद्ध द्वारा (अमित्रान् ससह्वांसं) स्नेह से रहित शत्रुवर्ग के पराजित करने वाले की ही विद्वान् लोग स्तुति करते हैं।

स नः पप्रिः पारयाति स्वस्ति नावा पुरुहूतः।
इन्द्रो विश्वा अति द्विषः॥ ११॥

भा०—(सः पुरुहूतः) वह बहुतों से पुकारे जाने वाला (इन्द्रः) शत्रुहन्ता, परमैश्वर्यवान् प्रभु, (पप्रिः) सब का पालक (विश्वाः द्विषः) सब अप्रीति-कर शत्रुओं वा संकटों से (नावा) नौका से नदियों के समान (नः) हमें (स्वस्ति) कल्याणपूर्वक, सुख से (अति पारयाति) पार करे।

स त्वं न इन्द्र वाजेभिर्दशस्या च गातुया च ।
अच्छा च नः सुम्नं नेषि ॥ १२ ॥ २१ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! बलवन् ! प्रभो ! (सः त्वं) वह तू (नः) हमें (वाजेभिः) नाना ऐश्वर्यों और बलों करके (दशस्य) सुख प्रदान कर और (गातुया च) उत्तम सुख की ओर मार्ग दिखा । (अच्छ च नः सुम्नं नेषि) हमें सुख की ओर ले चल । इत्येकविंशो वर्गः ॥

[१७]

इरिम्बिठिः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१—३, ७, ८ गायत्री । ४—६, ९—१२ निचृद् गायत्री । १३ विराड् गायत्री । १४ आसुरी बृहती । १५ आर्षी भुरिग् बृहती ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

आ याहि सुषुमा हि त इन्द्र सोमं पिबा इमम् ।
एदं बर्हिः सदो मम ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! हे विद्वन् ! राजन् ! तू (आयाहि) हमें प्राप्त हो, आ, (ते) तेरे लिये ही हम (इमं सोमं) इस पुत्र वा ऐश्वर्य को (सु-सुम) उत्पन्न करते हैं । हे प्रभो ! तेरे लिये ही इस सोम, आत्मा को सन्मार्ग पर चलाते हैं, (इमं पिब) इसकी रक्षा कर । (इदं बर्हिः) यह वृद्धियुक्त प्रजाजन एवं आसनवत् (मम सदः) मेरा दिया आपके विराजने के लिये है । उस पर (आ सदः) आप विराजिये ।

आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना ।
उप ब्रह्माणि नः शृणु ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार (केशिना हरी) केशों वाले दो अश्व स्वामी के रथ को लेजाते हैं उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ब्रह्म-युजा) वेद ज्ञान के सहयोगी (केशिना हरी) केशोंवत्, रश्मियों तेजों को धारण करने वाले स्त्री पुरुष वा गुरु शिष्य, (त्वा आ वहताम्) तुझे अपने में

धारण करें । तू (नः ब्रह्माणि) हमारे वेद-मन्त्रों को (उप शृणु) श्रवण कर । हे विद्वन् ! गुरो ! तू हमें नाना वेदज्ञान समीप विराज कर (उप-शृणु) श्रवण करा ॥ अन्तर्भावितो णिः ॥

ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः ।
सुतावन्तो हवामहे ॥ ३ ॥

भा०—(वयं ब्रह्माणः) हम ब्राह्मण, स्तुतिकर्त्ता एवं ब्रह्मचारी जन, (सोमिनः) 'सोम' अर्थात् उत्तम ज्ञान, अन्न, सन्तान से युक्त और (सुतवन्तः) उत्तम पुत्रादिमान् होकर (युजा) योग द्वारा वा उत्तम गुरु शिष्यरूप सम्बन्ध द्वारा (सोमपां त्वाम्) सोम, शिष्यादि के पालक तुझको (हवामहे) प्रार्थना करते हैं । इसी प्रकार हे राजन् ! हम (ब्रह्माणः) धनसम्पन्न जन, ऐश्वर्यवान् और अन्नादिसम्पन्न होकर तुझे ऐश्वर्य पालक स्वीकार करें ।

आ नो याहि सुतावतोऽस्माकं सुष्टुतीरुप ।
पिबा सु शिप्रिन्नन्धसः ॥ ४ ॥

भा०—हे (शिप्रिन्) उत्तम मुकुट वा उत्तम मुख नासिका वाले, सौम्यमुख विद्वन् ! राजन् ! तू (सुतावतः नः) पुत्रवान् एवं ऐश्वर्यादि युक्त हमें (आ याहि) प्राप्त हो । (अस्माकं सुस्तुतीः उप) हमारी उत्तम स्तुतियों को सुन वा हमें उत्तम उपदेश प्रदान कर । (अन्धसः सुपिब) अन्नों का उपभोग, उत्तम भोजन कीजिये । हे स्वामिन् ! आप (अन्धसः) प्राणधारक जीव का पालन करें ।

आ ते सिञ्चामि कुक्ष्योरनु गात्रा वि धावतु ।
गृभाय जिह्वया मधु ॥ ५ ॥ २२ ॥

भा०—जिस प्रकार अन्न ओषधि सोमादि का रस (कुक्ष्योः) कोखों, उदर में डाला जाकर अंग २ में चला जाता है और मनुष्य जिह्वा से

(मधु) अन्न को ग्रहण करता है इसी प्रकार हे विद्वान् शिष्य मैं (ते) तेरे (कुक्ष्योः) कोखों को (आसिञ्चामि) जल से शुद्ध करता हूं । वह स्नान-जल (गात्रा अनु वि धावतु) अन्य अंगों को भी प्राप्त होकर पवित्र करे। इस प्रकार शुद्ध होकर हे शिष्य ! तू (जिह्वया) वाणी से (मधु) ब्रह्म-ज्ञान वेद को (गृभाय) धारण कर । (२) राजा की दो कुक्षियां हैं एक सैन्यबल, दूसरा राजकोष, प्रजा दोनों को भरे । वह ऐश्वर्य राष्ट्र प्रत्येक अंग में पहुंचे, राजा वाणी से सदा मधुर भाषण करे। वा अपनी आज्ञा-मात्र से मधुवत् कर ग्रहण करे । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

स्वादुष्टे अस्तु संसुदे मधुमान्तन्वे३तव ।
सोमः शमस्तु ते हृदे ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार (सोमः स्वादुः तन्वे मधुमान्, हृदे शम्) अन्नादि ओषधिरस स्वादु, शरीर को सुख और पोषणप्रद, और हृदय को शान्ति-दायक होता है इसी प्रकार हे गुरो ! हे विद्वन् ! यह (सोमः) शिष्य (संसदे स्वादुः) उत्तम ज्ञान के दाता तुझ गुरु के ज्ञान को उत्तम रीति से ग्रहण करने हारा हो । और वह (तव तन्वे) तेरी शरीर-सेवा के लिये वा तेरे विस्तृत ज्ञान के लिये (मधुमान्) वेदज्ञान से युक्त हो। वह (ते हृदे) तेरे हृदय के लिये (शम्) शान्तिदायक हो ।

अयमु त्वा विचर्षणे जनीरिवाभि संवृतः ।
प्र सोम इन्द्र सर्पतु ॥ ७ ॥

भा०—(जनीः इव: संवृतः अभि) जिस प्रकार स्त्रियें अच्छी प्रकार वस्त्र आभरणादि से युक्त होकर, वा अच्छी प्रकार वरण करके पति को प्राप्त होती हैं अभिमुख होकर उसी प्रकार हे (इन्द्र) आचार्य ! हे विद्या के दाता ! हे (विचर्षणे) विविध विद्याओं के द्रष्टः ! (अयम् सोमः) यह शास्य शिष्य वा सावित्री माता के गर्भ में उत्पन्न पुत्र भी (संवृतः) तेरे द्वारा अच्छी प्रकार वृत, स्वीकृत होकर वा (संवृतः) सम्यक् रीति

से आचरणवान् होकर (त्वा अभि सर्पतु) तुझे प्राप्त हो और (प्र सर्पतु) विद्या, चरित्र के मार्ग में आगे बढ़े। (२) राष्ट्रपक्ष में 'सोम' प्रजावर्ग (संवृतः) अच्छी प्रकार तुझे राजा वरे और (सं वृतः) सुरक्षित होकर तुझ उत्तम अध्यक्ष को प्राप्त हो, उन्नति करें।

तुविग्रीवो वृपोदरः सुबाहुरन्धसो मदे।
इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते ॥ ८ ॥

भा०—वृत्रघ्न इन्द्र का वर्णन। जिस प्रकार (सुबाहुः) उत्तम बाहु (तुवि-ग्रीवः) अंगुलि आदि विस्तृत एवं बहुत सी गर्दनों वाला, (वपोदरः) स्थूल, दृढ़ होकर (वृत्राणि जिघ्नते) बाधक विघ्नों का नाश करता है। उसी प्रकार (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, शत्रु के दृढ़ बलों का नाशक राजा, सेनापति भी (तुवि-ग्रीवः) संख्या में बहुत एवं बड़ी ग्रीवा वाला दृढ़ स्कन्ध, नाना सैन्य बलों से युक्त, (वपोदरः) 'वपा' छेदन भेदन की शक्ति को अपने राष्ट्र के बीच में धारण करता हुआ (सुबाहुः) उत्तम बाहुमान्, दृढ़ भुजों वाला होकर (अन्धसः मदे) ऐश्वर्य से तृप्त होकर, (वृत्राणि) राज्य के बाधक कारणों को (जिघ्नते) नाश करे। राजा वा सेनापति शरीर में बाहुवत् हैं, यह श्लेष से कहा। (२) इसी प्रकार परमेश्वर सर्व विघ्ननाशक है। वह विश्वतोमुख होने से बहुग्रीवावत् है, 'वपा' सर्व जगदुत्पादक शक्ति से युक्त है, वह जीव सर्ग के तृप्ति अर्थात् अन्न के लिये (वृत्राणि जिघ्नते) जलों, मेघों को लाता, बरसाता है।

इन्द्र प्रेहि पुरस्त्वं विश्वस्येशान ओजसा।
वृत्राणि वृत्रहञ्जहि ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (त्वं) तू (पुरः प्र इहि) आ, बढ़, प्रकट हो, तू (ओजसा) बल पराक्रम से (विश्वस्य ईशानः) सब जगत् का स्वामी है। हे (वृत्रहन्) सूर्यवत् मेघों को लाने और दुष्टों

को तारने हारे ! तू (वृत्राणि जहि) दुष्टों को दण्ड दे और जलों को बरसा। हे राजन् ! तू (वृत्राणि जहि) धनों को प्राप्त कर।

दीर्घस्ते अस्त्वङ्कुशो येना वसु प्रयच्छसि।
यजमानाय सुन्वते ॥ १० ॥ २३ ॥

भा०—हे राजन् ! (येन) जिसके बल से तू (सुन्वते यजमानाय) अन्नादि उत्पन्न करने वाले और करादि देने वाले प्रजावर्ग के हितार्थ (वसु प्रयच्छसि) ऐश्वर्य प्रदान करता है। वह (ते अङ्कुशः) तेरा अङ्कुश शत्रुवर्गरूप गज का वश करनेवाला साधन, शासन बल (दीर्घः अस्तु) बहुत विस्तृत हो। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि।
एहीमस्य द्रवा पिब ॥ ११ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे गुरो ! (ते) तेरा (अयं) यह (बर्हिषि) उत्तम शासन वा यज्ञ में (निपूतः) निरन्तर पवित्र (सोमः) शिष्य विराजमान है, (ईम् अस्य आ इहि) उसको तू प्राप्त हो (आ द्रव, आ पिब) उस पर कृपा कर और उसको अपनी रक्षा में रख। (२) हे राजन् (बर्हिषि अधि) राष्ट्र के, प्रजाजन के अध्यक्ष पद पर विराजमान रहने से नितरां पवित्र यह ऐश्वर्य तुझे प्राप्त हुआ है, तू उसे शीघ्र प्राप्त कर और उसका उपभोग और पालन कर।

शाचिगो शाचिपूजनायं रणाय ते सुतः।
आखण्डल प्र हूयसे ॥ १२ ॥

भा०—(शाचि-गो) शक्तिशाली बैलों, अश्वों, धनुषों और वाणियों वाले राजन् ! विद्वन् ! प्रभो ! हे (शाचि-पूजन) शक्तियों से या शक्तिशाली सेनाओं के कारण पूजनीय, हे (आखण्डल) शत्रुओं को सब ओर छिन्न भिन्न करने हारे ! (अयं) यह (सुतः) ऐश्वर्य देने वाला प्रजाजन (ते रणाय) तेरे ही रमण करने के लिये है। तू (प्र हूयसे) बड़े आदर से

बुलाया जाता है। (२) हे (शाचिगो) शक्तियों से सूर्यादि को सञ्चालित करने वाले वा व्यक्त वाणी से बोलने योग्य वेद वाणि के स्वामिन्! हे (शाचि-पूजन) व्यक्त वाणि द्वारा पूजने योग्य! यह उत्पन्न वा शिष्य तेरी ही (रणाय) प्रसन्नता के लिये है। हे (आखण्डल) प्रलयकारिन्! विघ्ननाशक! हे संशयच्छेदक! तुझे आदर से बुलाते हैं।

यस्ते॑ शृङ्गवृषो नपात्प्रण॑पात्कुण्डपाय्य॑: ।
न्य॑स्मिन्दध्र आ मन॑: ॥ १३ ॥

भा०—हे (शृङ्गवृषः नपात्) हिंसाकारी बाणों की वर्षा करने वाले प्रबल सैन्य को न गिरने देने वाले! उसके स्वामिन्! (यः) जो (ते) तेरा (प्रणपात्) उत्तम पुत्रवत् पालनीय (कुण्ड-पाय्यः) कुण्डों के जलादि से पालन करने योग्य राष्ट्र रूप ऐश्वर्य है (अस्मिन्) उसमें ही (मनः नि आ दध्रे) सब अपना मनोयोग रक्खें।

वास्तो॑ष्पते ध्रुवा स्थूणांस॑त्रं सो॒म्याना॑म् ।
द्र॒प्सो भे॒त्ता पु॒रां शश्व॑तीनामिन्द्रो॒ मुनी॑नां॒ सखा॑ ॥ १४ ॥

भा०—हे (वास्तोष्पते) 'वास्तु' अर्थात् नगरादि के पालक! जिस प्रकार गृह का (स्थूणा ध्रुवा) मुख्य स्तम्भ सर्वाश्रय हो उसी प्रकार तेरे राष्ट्र में (ध्रुवा) तू पृथिवीवत् (स्थूणा) मुख्य स्तम्भ के समान सबका आश्रय है। (सोम्यानां) ऐश्वर्य पाने योग्य शासकों, वा शिष्यों के हितैषी ज्ञानी पुरुषों को (अंसत्रं) कन्धों के विशेष कवचवत् उनके रक्षक हो। (द्रप्सः) द्रुतगति से आक्रमण करने वाला (इन्द्रः) शत्रुहन्ता सेनापति (शश्वतीनां पुरां) बहुत से शत्रु नगरों का (भेत्ता) तोड़ने वाला हो। और वह (मुनीनां) मन से मनन करने वाले ज्ञानविचारक मनुष्यों का सदा (सखा) मित्र हो।

पृदा॑कुसानुर्यज॒तो ग॒वेष॑ण॒ एक॒: सन्न॒भि भूय॑सः ।
भूर्णि॒मश्वं॑ नयत्तु॒जा पु॒रो गृ॒भेन्द्रं॒ सोम॑स्य पी॒तये॑ ॥१५॥२४॥

भा०—वह ऐश्वर्यवान् राजा (पृदाकुसानुः) 'पृत्' अर्थात् संग्रामों के अवसरों में सन्मार्ग को बतलाने वाला और उन्नति पद पर स्थित, (यजतः) पूज्य, दानी और (गवेषणः) भूमि राष्ट्र को चाहने वाला होकर (भूयसः अभि) बहुत से शत्रुओं पर (एकः सन्) अकेला रह कर भी (सोमस्य पीतये) ऐश्वर्य के उपभोग के लिये (पुरः) अपने समक्ष (तुजा गृभा) शत्रुहिंसाकारी पकड़ या वशीकरण सामर्थ्य से (भूरिम्) सबके भरण पोषण करने में समर्थ (अश्वं) राष्ट्र वा सैन्य को और (इन्द्रं) ऐश्वर्य को भी (नयत्) चलावे । अर्थात् राष्ट्र और कोष को अपने अधीन सञ्चालित करे । इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[१८]

इरिम्बिठिः काण्व ऋषिः ॥ देवताः—१—७, १०—२२ आदित्याः । ८ अश्विनौ । ९ अग्निसूर्यानिलाः ॥ छन्दः—१, १३, १५, १६ पादनिचृदुष्णिक् ॥ २ आर्ची स्वराडुष्णिक् । ३, ८, १०, ११, १७, १८, २२ उष्णिक् । ४, ९, २१ विराडुष्णिक् । ५—७, १२, १४, १९, २० निचृदुष्णिक् ॥

द्वाविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

इदं ह नूनमेषां सुम्नं भिक्षेत मर्त्यः ।
आदित्यानामपूर्व्यं सवीमनि ॥ १ ॥

भा०—(मर्त्यः) मनुष्य (आदित्यानां) आदित्यवत् तेजस्वी वीर्यवान् ब्रह्मज्ञानी पुरुषों के (सवीमनि) शासन में रहकर (एषां) इनके (सुम्नं) सुखकारक (अपूर्व्यं) अपूर्व ज्ञान की (ह नूनं) अवश्य (भिक्षेत) याचना किया करे ।

अनर्वाणो ह्येषां पन्था आदित्यानाम् ।
अदब्धाः सन्ति पायवः सुगेवृधः ॥ २ ॥

भा०—(एषां) इन (आदित्यानां) तेजस्वी पुरुषों के (पन्थाः)

मार्ग (अनर्वाणः) निर्दोष, हिंसकादि से रहित, निष्कण्टक, (अदब्धः) अहिंसित, अक्षय, (पायवः) पालक और (सुगेवृधः) सुख के बढ़ाने वाले (सन्ति) होते हैं ।

तत्सु नः सविता भगो वरुणो मित्रो अर्यमा ।
शर्म यच्छन्तु सप्रथो यदीमहे ॥ ३ ॥

भा०—(सविता) उत्पादक माता पिता, आचार्य, (भगः) सेवा योग्य एवं ऐश्वर्यवान् स्वामी (वरुणः) दुःखवारक राजा, (अर्यमा) शत्रुओं का नियन्ता, न्यायकारी अध्यक्ष, ये सब (स-प्रथः) अति विस्तृत (यत्) जिस (शर्म) सुख, शान्ति वा आश्रय को हम (ईमहे) चाहते हैं (यच्छन्तु) प्रदान करें । (२) सविता, भग, वरुण, मित्र और अर्यमा नाम वाला प्रभु हमें हमारा अभिलषित सुख प्रदान करे। इस पक्ष में—'यच्छन्तु' अत्र वचनव्यत्ययः ।

देवेभिर्देव्यदितेऽरिष्टभर्मन्ना गहि ।
स्मत्सूरिभिः पुरुप्रिये सुशर्मभिः ॥ ४ ॥

भा०—हे (अदिते) अखण्ड चरित्रवाली ! भूमिवत् वा मातावत् पालन करने वाली ! हे (पुरुप्रिये) बहुतों को प्रिय लगने हारी, सबको प्रसन्न करने हारी (देवि) विदुषि ! हे (अरिष्टभर्मन्) सुखों को पूर्ण करने वाली, अहिंसित बालक पुत्रों को पोषण करने वाली वा वाणी (देवेभिः) शुभ गुणवान् (सूरिभिः) विद्वान् (सु-शर्मभिः) उत्तम गृहस्थों सहित (स्मत् आगहि) अच्छी प्रकार आदर से प्राप्त हो ।

ते हि पुत्रासो अदितेर्विदुर्द्वेषांसि योतवे ।
अंहोश्चिदुरुचक्रयोऽनेहसः ॥ ५ ॥ २५ ॥

भा०—(ते हि) वे (अदितेः पुत्रासः) भूमि के पुत्र वा भूमि माता के बहुतों की रक्षा करने वाले तेजस्वी पुरुष, (उरु-चक्रयः) बड़े २ कार्य करने वाले (अनेहसः) निष्पाप लोग (अंहोः-चित्) पापी के भी

(द्वेषांसि) अप्रीतिकारक द्वेष भावों को (योतवे विदुः) दूर करने का उपाय जानते हैं । इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

अदि॑तिर्नो॒ दिवा॑ प॒शुमदि॑ति॒र्नक्त॒मद्व॑याः ।
अदि॑तिः पा॒त्वंह॑सः स॒दावृ॑धा ॥ ६ ॥

भा०—(अद्वयाः) अद्वितीय वा बाहर भीतर दोनों में दो भाव न रखती हुई, (अदितिः) विदुषी माता (नः) हमारे (पशुम्) पशुओं की रक्षा करे । वह (अदितिः) अखण्ड और अदीन राजशक्ति (नक्तम्) रात को भी (पातु) पालन करे । वह (सदावृधा) प्रजाजनों को बालकवत् पुष्ट करने वाली होकर (नः अंहसः पातु) हमें पाप से बचावे ।

उ॒त स्या नो॒ दिवा॑ म॒तिरदि॑तिरू॒त्या ग॑मत् ।
सा शन्ता॑ति॒ मय॑स्कर॒दप॒ स्रिधः॑ ॥ ७ ॥

भा०—(उत) और (स्या) वह (अदितिः) अदीन भाव से रहने वाली शक्ति, (मतिः) बुद्धिमती होकर (नः) हमें (दिवा) दिन के समय (ऊत्या) रक्षा और ज्ञानसहित (आ गमत्) आवे । (सा) वह (शन्ताति) शान्तिदायक (मयः) सुख (करत्) प्रदान करे और (स्रिधः) हिंसक शत्रुओं को (अप करत्) दूर करे ।

उ॒त त्या दैव्या॑ भि॒षजा॒ शं नः॑ करतो अ॒श्विना॑ ।
यु॒यु॒याता॑मि॒तो रपो॒ अप॒ स्रिधः॑ ॥ ८ ॥

भा०—(उत) और (त्या) वे (दैव्या) 'देव' अर्थात् दिव्यगुण युक्त पदार्थों में कुशल वा 'देव' अर्थात् मनुष्यों के हितकारी (भिषजा) दोनों प्रकार के रोगचिकित्सक (अश्विना) विद्या के क्षेत्र में विस्तृत ज्ञान वाले (नः शं करतः) हमें शान्ति प्रदान करें । (इतः) इस देह या राष्ट्र से (रपः) दुःख वा पापपरिणाम को (युयुयाताम्) पृथक् करें और (स्रिधः अपः) बाधक विघ्नों और रोगादि को भी दूर करें ।

शम॒ग्निर॒ग्निभिः॑ करच्छं नस्तपतु सूर्यः॑ ।
शं वातो॑ वात्वर॒पा अप॒ स्रिधः॑ ॥ ९ ॥

भा०—(अग्निः) अग्नि तत्व (अग्निभिः) अपने व्यापन और दाह आदि गुणों से युक्त पदार्थों से (नः शम् करत्) हमें शान्ति प्रदान करे। (सूर्यः) सूर्य (नः) हमें शान्ति सुखदायक और रोगशमन करने वाला होकर (तपतु) तपे। (वातः) वायु (अरपाः) रोग रहित होकर (नः शं वातु) हमें शान्तिदायक होकर वहे। (स्रिधः अप) रोगादि दुःख-जनक पीड़ाएं दूर हों।

अपामी॑वा॒मप॒ स्रिध॒मप॑ सेधत दु॒र्मति॑म् ।
आदि॑त्यासो यु॒योत॑ना नो॒ अंह॑सः ॥ १० ॥ २६ ॥

भा०—हे (आदित्यासः) उत्तम माता पिता गुरु आदि के पुत्र !' एवं हे पुत्रों के उत्तम पिता मातादि गुरुजनो ! आप लोग (अमीवाम् अप) रोग को दूर करो। (स्रिधम्) नाशकारी (दुर्मतिम्) दुष्टमति को (अप सेधत) दूर करो। और (नः अंहसः युयोतन) हमारे पापों को दूर करो। इति षड्विंशो वर्गः ॥

यु॒योता॒ शरु॑म॒स्मदाँ॒ आदि॑त्यास उ॒ताम॑तिम् ।
ऋ॒धग्द्वेषः॑ कृणुत विश्ववेदसः ॥ ११ ॥

भा०—हे (विश्ववेदसः) समस्त ज्ञानों के जानने वाले (आदित्यासः) आदित्यवत् तेजस्वी एवं संसार के समस्त पदार्थों से ज्ञान और उपयोगी पदार्थों के लेने वाले पुरुषो ! आप लोग (अस्मत् शरुं) हम से 'शरु' अर्थात् हिंसक और हिंसाभाव (उत) तथा (अमतिम्) मूर्ख और मूर्खता को (युयोत) पृथक् करो। और (द्वेषः) द्वेष को भी (ऋधक् कृणुत) पृथक् करो।

तत्सु नः॒ शर्म॑ यच्छ॒तादि॑त्या॒ यन्मुमो॑चति ।
एन॑स्वन्तं चि॒देन॑सः सुदानवः ॥ १२ ॥

भा०—हे (आदित्याः) आदित्य के समान तेजस्वी, एवं अदिति अर्थात् अखण्ड परब्रह्म के उपासक वा वेदवाणी में निष्णात विद्वान् पुरुषो ! हे (सु-दानवः) उत्तम दानशील जनो ! (यत्) जो (एनस्वन्तं चित्) पापी को (एनसः मुमोचति) पाप से मुक्त कर देता है, आप (तत् शर्म) वह शान्ति सुखदायक, शरण वा दण्डव्यवस्था (नः यच्छत) हमें प्रदान करो।

यो नः कश्चिद्रिरिक्षति रक्षस्त्वेन मर्त्यः।
स्वैः ष एवै रिरिषीष्ट युर्जनः ॥ १३ ॥

भा०—(यः) जो (कश्चित्) कोई (मर्त्यः) हिंसक मनुष्य (रक्षस्त्वेन) अपने हिंसक स्वभाव से (नः) हमें (रिरिक्षति) मारना या पीड़ित करना चाहता है (सः) वह (युः) दुःखदायी (जनः) मनुष्य (स्वैः एवैः) अपने ही आचरणों से (रिरिषीष्ट) पीड़ित होता है। हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः खलः ॥

समित्तमघमश्नवद्दुःशंसं मर्त्यं रिपुम्।
यो अस्मत्रा दुर्हणावाँ उप द्वयुः ॥ १४ ॥

भा०—(यः) जो (अस्मत्रा) हम लोगों में (दुर्हणावान्) दुःखदायी, पीड़ा देने वाला और (द्वयुः) हमारे प्रति दो प्रकार का भाव—बाहर कुछ और भीतर कुछ, प्रत्यक्ष में कुछ और परोक्ष में कुछ भाव—रखता है, (तं) उस (दुःशंसं) दुर्गृहीत नाम वाले, बदनाम वा बुरी बात करने वाले (रिपुम् मर्त्यम्) शत्रु, पापी पुरुष को (अघम् सम्-अश्नवत्) पाप ही व्याप लेता और नष्ट कर देता है।

पाकत्रा स्थन देवा हृत्सु जानीथ मर्त्यम्।
उप द्वयुं चाद्वयुं च वसवः ॥ १५ ॥ २७ ॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् मनुष्यो ! हे (वसवः) माता पिता, गृहस्थादि आश्रमों में वास करने वाले मनुष्यो ! आप लोग (पाकत्रा) परिपक्व ज्ञान वाले तपस्वी जनों के अधीन (स्थन) होकर रहो और

(द्वयुं अद्वयुं च) दो भावों से रहने वाले, कपटी और दो भावों से न रहकर एक भाव से रहने वाले निष्कपट (मर्त्यं) मनुष्य को (हृत्सु उप जानीथ) हृदयों तक में खूब जाना करो। मनुष्यों को उनके हृदयों से पहचाना करो। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

आ शर्म पर्वतानामोतापां वृणीमहे।
द्यावाक्षामारे अस्मद्रपस्कृतम् ॥ १६ ॥

भा०—हे (द्यावाक्षाम) सूर्य और पृथिवीवत् तेजस्वी और क्षमाशील, माता पिता गुरु जनो! हम लोग (पर्वतानां) मेघों वा पर्वतों के और (अपां) जलों के बीच (शर्म) शान्ति सुखदायक शरण या गृह के समान सुरक्षित, (पर्वतानां अपां) पालक साधनों वाले दृढ़ बलवान् महापुरुषों और आप्तजनों के बीच (शर्म वृणीमहे) शान्ति सुख को प्राप्त करें। आप दोनों (रपः) पापको (अस्मत्) हम से (आरे) दूर (कृतम्) करो।

ते नो भद्रेण शर्मणा युष्माकं नावा वसवः।
अति विश्वानि दुरिता पिपर्तन ॥ १७ ॥

भा०—हे (वसवः) राष्ट्र में या आश्रमों में बसे माता पितादि जनों (ते) वे आप लोग (युष्माकं) अपने (शर्मणा) दुष्टों के नाशक, शान्तिदायक कर्म से (विश्वानि दुरिता) सब दुष्टाचरणों से (नावा) नौका से जलों के समान (अति पिपर्त्तन) पार करो।

तुचे तनाय तत्सु नो द्राघीय आयुर्जीवसे।
आदित्यासः सुमहसः कृणोतन ॥ १८ ॥

भा०—हे (आदित्यासः) अपनी शरण में लेने वाले एवं तेजस्वी और हे (सु-महसः) उत्तम प्रकाशवान्, ज्ञानवान् पुरुषो! आप लोग (नः) हमारे (तुचे तनयाय) पुत्र पौत्र के (जीवसे) जीवन के लिये (तत्) वह (द्राघीयः आयुः कृणोतन) अति दीर्घ आयु करो।

यज्ञो हीळो वो अन्तर आदित्या अस्ति मृळत ।
युष्मे इद्वो अपि ष्मसि सजात्ये ॥ १९ ॥

भा०—हे (आदित्याः) विद्वान् तेजस्वी सूर्य किरणोंवत् ज्ञानों का प्रकाश करने वाले विद्वान् पुरुषो ! (वः) आप लोगों का (हीडः) प्राप्त करने योग्य (यज्ञः) सत्संग और विद्या दान सदा (अन्तरे अस्ति) आपके समीप ही रहता है । अतः आप लोग (मृडत) सदा सुखी करो (युष्मे इत्) हम लोग आप लोगों के अधीन (अपि) भी (वः सजात्ये स्मसि) आपके पुत्र के समान होते हैं ।

बृहद्वरूथं मरुतां देवं त्रातारमश्विना ।
मित्रमीमहे वरुणं स्वस्तये ॥ २० ॥

भा०—हम लोग (स्वस्तये) अपने सुख कल्याण के लिये (बृहद् वरूथं) बड़े भारी कष्टनिवारक गृह के समान शरण करने योग्य (मरुतां) मनुष्यों वा सैन्य जनों के बीच (देवं) सूर्यवत् तेजस्वी और (अश्विना) व्यापक सामर्थ्यवान् माता पिता, (मित्र) स्नेही बन्धुजन और (वरुणं) श्रेष्ठ पुरुष को (ईमहे) प्राप्त करें आप लोगों से हम गृहादि की याचना करें ।

अनेहो मित्रार्यमन्नृवद्वरुण शंस्यम् ।
त्रिवरूथं मरुतो यन्त नश्छर्दिः ॥ २१ ॥

भा०—हे (मित्र) प्राणवत् प्रिय ! हे (वरुण) श्रेष्ठ ! हे (मरुतः) विद्वान् मनुष्यो ! हे (अर्यमन्) न्यायकारिन् ! आप लोग (नः) हमें (त्रि-वरूथं) तीन गृहों से युक्त, वा शीत, आतप, वर्षा तीनों से बचाने वाला (अनेहः) विघ्न बाधा से रहित (छर्दिः) गृह, शरण (यन्त) प्रदान करो ।

ये चिद्धि मृत्युबन्धव आदित्या मनवः स्मसि ।
प्र सू न आयुर्जीवसे तिरेतन ॥ २२ ॥ २८ ॥

भा०—हे (आदित्याः) अदिति, परमेश्वर के उपासको ! सूर्य की किरणों के तुल्य ज्ञान के प्रकाशक एवं शोकादि को अन्धकारवत् दूर करने हारे तपस्वी जनो ! (ये चित् हि) जो हम (मृत्यु-बन्धवः) मौत के बन्धु होकर (मनवः स्मसि) मननशील मनुष्य हैं । अतः तू (नः आयुः) हमारी आयु को (जीवसे प्र तिरेतन) दीर्घजीवन के लिये बढ़ा । इत्यष्टाविंशो वर्गः॥

[१९]

सोभरिः काण्व ऋषिः ॥ देवता—१—३३ अग्निः । ३४, ३५ आदित्याः । ३६, ३७ त्रसदस्योर्दानस्तुतिः ॥ छन्दः—१, ३, १५, २१, २३, २८, ३२ निचृदुष्णिक् । २७ भुरिगार्ची विराडुष्णिक् । ५, १९, ३० उष्णिक् ककुप् । १३ पुरं उष्णिक् । ७, ९, ३४ पादनिचृदुष्णिक् । ११, १७, ३६ विराडुष्णिक् । २५ आर्चीस्वराडुष्णिक् । २, २२, २९, ३७ विराट् पंक्तिः । ४, ६, १२, १६, २०, ३१ निचृत् पंक्तिः । ८ आर्ची भुरिक् पंक्तिः । १० सतः पंक्तिः । १४ पंक्तिः । १८, ३३ पादनिचृत् पंक्तिः । २४, २६ आर्ची स्वराट् पंक्तिः । ३५ स्वराड् बृहती ॥ सप्तत्रिंशदृचं सूक्तम् ॥

तं गूर्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे ।
देवत्रा हव्यमोहिरे ॥ १ ॥

भा०—जिस (देवं) तेजस्वी, सर्व सुखदाता, परम पुरुष को (देवासः) सब मनुष्य और पृथिवी सूर्यादि गण (अरतिं) अपना स्वामी, और सबसे अधिक ज्ञानवान् रूप से (दधन्विरे) धारण करते हैं और जिसको वे (देवत्रा) विद्वानों, तेजस्वियों, दानियों और ज्ञानप्रकाशकों में से (हव्यम् आ ऊहिरे) सत्य मानते हैं (तं) उस (स्वः-नरं) सबके नायक संचालक एवं सूर्य, और प्रकाश को लाने और मोक्ष वा सूर्यवत् प्रभु पद तक पहुंचाने वाले की (गूर्धय) स्तुति करो ।

विभूतरातिं विप्र चित्रशोचिषमग्निमीळिष्व यन्तुरम् ।
अस्य मेधस्य सोम्यस्य सोभरे प्रेमध्वराय पूर्व्यम् ॥ २ ॥

भा०—हे (विप्र) मेधाविन् ! विद्वन् ! हे (सोभरे) उत्तम रीति से प्रजा के पोषण करने हारे ! तू (इम्) इस (अध्वराय) यज्ञ, और अविनाश के लिये (पूर्व्यम्) सब से पूर्व विद्यमान एवं विद्या, बल में पूर्ण (अस्य सोम्यस्य) सोम योग्य, पुत्र शिष्यादि के हितकारी ऐश्वर्य से सम्पाद्य इस (मेधस्य) सत्संग यज्ञ के (यन्तुरं) नियन्ता, (विभूत-रातिं) प्रचुर दानशील, (चित्र-शोचिषम्) अद्भुत तेजस्वी, (अग्निम्) अग्निवत् ज्ञानप्रकाशक को (प्र ईडिष्व) अच्छी प्रकार आदर कर । उसको मुख्य पद पर स्थापित कर । (२) इसी प्रकार इस संसार रूप यज्ञ के नियन्ता प्रभु की स्तुति करो ।

यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम् ।
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥ ३ ॥

भा०—(अस्य यज्ञस्य) इस यज्ञ के (सु-क्रतुम्) उत्तम रीति से बनाने और जानने वाले, (होतारम्) सर्व ऐश्वर्य के दाता, (अमर्त्यम्) अविनाशी, (देवत्रा देवं) देवों, प्रकाशमान सूर्यादि के भी प्रकाशक, दाताओं के भी दाता, (यजिष्ठं) अति पूज्य, दानी, (त्वा) तुझ स्वामी को हम (ववृमहे) वरण करते हैं, तुझे अपनाते, तेरी स्तुति गाते, और तेरी उपासना करते हैं ।

ऊर्जो नपातं सुभगं सुदीदितिमग्निं श्रेष्ठशोचिषम् ।
स नो मित्रस्य वरुणस्य सो अपामा सुम्नं यक्षते दिवि ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि, विद्युत् बल को नष्ट न होने देने वाला वा बल से उत्पन्न, उत्तम ऐश्वर्य युक्त, दीप्तियुक्त, उत्तम शोधक, वह प्राण अपान देह के रक्तादि में भी सुख देता है, हे विद्वन् ! तू उसको जाने, उसी प्रकार तू (ऊर्जः नपातम्) बल पराक्रम को न गिरने देने वाले, अन्न के

पालक, सैन्य बल को नाव के समान पार लेजाने वाला, (सु-भगं) उत्तम ऐश्वर्यवान्, सुख सेवने योग्य (श्रेष्ठ-शोचिषम्) उत्तम कान्तियुक्त, को (दिवि) ज्ञान और व्यवहार के लिये (प्र ईडिष्व) अच्छी प्रकार उपासना कर। (सः) वह (नः) हमें, (मित्रस्य) स्नेही मित्र, (वरुणस्य) वरण करने योग्य श्रेष्ठ राजा, और (सः) वह (अपां) जलवत् शान्ति-सुखदायक आप्तजनों के (सुम्नं) सुख को भी (यक्षते) प्रदान करता है।

यः सुमिधा य आहुती यो वेदेन दुदाश मर्तो अग्नये।
यो नमसा स्वध्वरः ॥ ५ ॥ २९ ॥

भा०—(यः) जो (स्वध्वरः) उत्तम अहिंसक, यज्ञशील, (मर्त्तः) पुरुष (नमसा) अन्न से, या विनय श्रद्धा से (यः) जो (समिधा) काष्ठ से, (यः आहुती) जो आहुति से, (यः वेदेन) जो वेद से, वेद के अध्ययन, मनन, श्रवणादि करते हुए (अग्नये) अग्नि में आहुतिवत्, उस ज्ञानवान्, सर्वप्रकाशक, सर्वगुरु परमेश्वर के हाथों अपने को (ददाश) प्रदान करता है उसी प्रकार जो राष्ट्रजन तेजस्वी अग्रणी राजा के हाथ अपने को सौंप देता है, उसके ही—इत्येकोनत्रिंशो वर्गः॥

तस्येदर्वन्तो रंहयन्त आशवस्तस्य द्युम्नितमं यशः।
न तमंहो देवकृतं कुतश्चन न मर्त्यकृतं नशत् ॥ ६ ॥

भा०—(तस्य इत्) उसके ही (आशवः अर्वन्तः) वेग से जाने वाले अश्व (रंहयन्ते) वेग से गमन करते हैं (तस्य) उसका ही (यशः द्युम्नितमम्) यश अति उज्वल होता है, (तम्) उस तक (देवकृतं) विद्वानों और (मर्त्यकृतं) मनुष्यों का किया (अंहः) पाप या अपराध कर्म (कुतः चन न नशत्) किसी भी प्रकार से नहीं प्राप्त हो। अर्थात् यज्ञशील उपासक को किसी प्रकार का पाप स्पर्श नहीं करता।

स्वग्नयो वो अग्निभिः स्याम सूनो सहस ऊर्जां पते।
सुवीरस्त्वमस्मयुः ॥ ७ ॥

भा०—हे (सहसः सूनो) बल के सञ्चालक! हे (ऊर्जां पते) बलवान् पराक्रमी सैन्यों के पालक! हे (अग्नयः) अग्निवत् तेजस्वी विद्वान् पुरुषो! हम लोग (वः अग्निभिः) तुम्हारे अग्रणी, ज्ञानी पुरुषों द्वारा (सु-अग्नयः) उत्तम सुखजनक अग्नियों वा प्रधान नायकों से युक्त (स्याम) होवें। हे अग्रणी! (त्वम्) तू (अस्मयुः) हमें चाहने वाला हमारा स्वामी, (सुवीरः) उत्तम वीर और वीरों का नायक है।

प्रशंसमानो अतिथिर्न मित्रियोऽग्नी रथो न वेद्यः।
त्वे क्षेमासो अपि सन्ति साधवस्त्वं राजा रयीणाम्॥ ८॥

भा०—हे प्रभो! हे राजन्! हे विद्वन्! तू (अतिथिः न) अतिथि के समान पूज्य, आत्मा के समान व्यापक, (प्रशंसमानः) उत्तम रीति से उपदेश करता हुआ, (मित्रियः) स्नेही मित्र होने योग्य, (अग्निः) अग्निवत् तेजस्वी, (रथः न) रथवत् रमणीय, (वेद्यः) परम गन्य है। हे प्रभो! (त्वे) तुझ में (क्षेमासः) निवास करने वाले (साधवः) साधक लोग (अपि सन्ति) निमग्न होकर रहते हैं। (त्वं) तू (रयीणां राजा) समस्त ऐश्वर्यों का राजा है।

सो अद्धा दाश्वध्वरोऽग्ने मर्तः सुभग स प्रशंस्यः।
स धीभिरस्तु सनिता॥ ९॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! ज्ञानवन्! (सः) वह पुरुष (अद्धा) सचमुच (दाश्वध्वरः) दानशील, सफल यज्ञ वाला (मर्त्तः) मनुष्य होता है और (सः प्रशस्यः) वही प्रशंसनीय होता है, (सः) वही (धीभिः) कर्मों और उत्तम बुद्धियों से (सनिता अस्तु) दान देने और ऐश्वर्य का न्यायपूर्वक विभाग करने वाला भी (अस्तु) हो जो तेरे अधीन अपने को सौंपे हुए है।

यस्य त्वमूर्ध्वो अध्वराय तिष्ठसि क्षयद्वीरः स साधते।
सो अर्वद्भिः सनिता स विपन्युभिः स शूरैः सनिता कृतम्॥ १०॥२०॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! (यस्य अध्वराय) जिस को नाश न होने देने के लिये वा जिसके यज्ञ की रक्षा के लिये वा जिस राष्ट्र के अहिंसक, पालक पद के लिये (क्षयद्-वीरः) शत्रुओं वा अधीन रहने वाले वीरों का स्वामी होकर (त्वं) तू (ऊर्ध्वः) ऊपर अध्यक्ष होकर (तिष्ठसि) विराजता है, (सः) वह ही (अर्वद्भिः) वीर विद्वानों और (सः विमन्युभिः) वह विशेष व्यवहारज्ञों और (सः शूरैः) वह शूरवीरों सहित (सनिता) ऐश्वर्य का भोक्ता और (सः सनिता) वही ऐश्वर्य का दाता होकर (कृतं साधते) कार्य सिद्ध करता है । इति त्रिंशो वर्गः ॥

यस्याग्निर्वपुर्गृहे स्तोमं चनो दधीत विश्ववार्यः ।
हव्या वा वेविषद्विषः ॥ ११ ॥

भा०—जिस प्रकार (अग्निः गृहे चनः दधीत हव्या वेविषत्) घर में आग पाचन करता है, नाना अन्न प्राप्त कराता है, उसी प्रकार (यस्य) जिस पुरुष के (गृहे) घर में (अग्निः) तेजस्वी पुरुष (वपुः) संशयों को छेदन करने में कुशल और (विश्व-वार्यः) सबसे वरण करने योग्य, सर्वप्रिय होकर (चनः स्तोमं) प्रवचन करने योग्य स्तुति योग्य मन्त्र समूह को (दधीत) धारण करता है वा और (विषः) विविध प्रकार से उपभोग्य वा दातव्य नाना (हव्या वा) भोज्य अन्नों और ज्ञानों को (वेविषद्) प्राप्त कराता है । चनः—पचतेर्वा-वचेर्वा । पचनः, वचनः । वर्णलोपश्छान्दसः । चनः ।

विप्रस्य वा स्तुवतः सहसो यहो मक्षूतमस्य रातिषु ।
अवोदेवमुपरिमर्त्यं कृधि वसो विविदुषो वचः ॥ १२ ॥

भा०—हे (वसो) राष्ट्र में बसने वाले ! हे गुरु के अधीन बसने वाले विद्वन् ! हे (सहसः यहो) बलवान् पिता के पुत्र ! शिष्य ! तू (स्तुवतः) उपदेष्टा (विप्रस्य) बुद्धिमान् और (विविदुषः) विशेष विद्यावान्, ज्ञानी पुरुष के (वचः) वचन को (अवोदेवम्) परमेश्वर से नीचे और (उपरि-

मर्त्यं) साधारण मनुष्यों से ऊपर (कृधि) कर। और (यक्षतमस्य) अति शीघ्रकारी, अति कुशल वा पुरुष के (रातिषु) दानों में से (वचः) वचन, उपदेश को भी तू ईश्वर से न्यून और सामान्य मानवों से अधिक श्रद्धायोग्य जान।

यो अग्निं हव्यदातिभिर्नमोभिर्वा सुदक्षमा विवासति।
गिरा वाजिरशोचिषम् ॥ १३ ॥

भा०—(यः) जो (हव्य-दातिभिः) चरु आदि हव्य पदार्थों की आहुतियों से (अग्निम्) जिस प्रकार अग्नि को (आ विवासति) यजमान सेवन करता है उसी प्रकार (यः) जो पुरुष (अग्निम्) अग्निवत् तेजस्वी, ज्ञान प्रकाशक, (सुदक्षम्) उत्तम, कार्यकुशल पुरुष को (हव्य-दातिभिः) उत्तम ग्राह्य तथा भोज्य पदार्थों के दानों से और (नमोभिः) नमस्कार आदि सत्कारयुक्त वचनों से वा अन्नों से (आ विवासति) परिचर्या करता है, (वा) और जो (अजिर-शोचिषम्) न नाश होने वाली दीप्ति से युक्त अग्निवत् अविनाशी कान्ति वाले, प्रकाशस्वरूप आत्मा को (गिरा) वाणी द्वारा (आविवासति) साक्षात् करता है वही पुरुष वास्तविक अग्निहोत्र और वास्तविक स्वप्रकाश आत्मदर्शन वा उपासना करता है।

समिधा यो निशिती दाशददितिं धामभिरस्य मर्त्यः।
विश्वेत्स धीभिः सुभगो जनाँ अति द्युम्नैरुद्न इव तारिषत् १४

भा०—(समिधा अग्निम्) काष्ठ की समिधा से अग्नि की जिस प्रकार परिचर्या करता है उसी प्रकार (यः) जो पुरुष (निशिती) अति तीक्ष्ण बुद्धि से (अदितिं) अखण्ड, अदीन सूर्यवत् सर्वोपरि प्रभु की (दाशत्) सेवा करता, उसके प्रति अपने को सौंपता है (सः) वह (मर्त्यः) मनुष्य (अस्य धामभिः) उसके ही नाना तेजों वा धारण सामर्थ्यों से (धीभिः) कर्मों के अनुसार (द्युम्नैः) ऐश्वर्यों से (विश्वा

इव जनान्) समस्त जनों को (उदनः इव अति तारिषत्) जलों के समान पार कर जाता है और (सु-भगः) वह उत्तम ऐश्वर्यवान् भी हो जाता है।

तदंग्ने द्युम्नमा भंर यत्सासहत्सदंने कं चिंदत्रिणंम् ।
मन्युं जनंस्य दूढ्यः ॥ १५ ॥ ३१ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! प्रभो ! नायकवर ! तू (तत् द्युम्नं) वह उज्ज्वल ज्ञानप्रकाश और तेज (आ भर) धारण कर और हमें प्रदान कर (यत्) जो (सदने) घर में, देह में (कं चित् अत्रिणं) किसी भी खाजाने वाले, राक्षसवत् दुखदायी लोभ को (सासहत्) पराजित कर सके और जो (दूढ्यः जनस्य) दुष्ट बुद्धि वाले मनुष्य के (मन्युं सासहत्) क्रोध पर विजय पा सके।

येन चष्टे वरुणो मित्रो अर्यमा येन नासंत्या भगः ।
वयं तत्ते शवंसा गातुवित्तंमा इन्द्रंत्वोता विधेमहि ॥१६॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! (येन) जिस (शवसा) बल और ज्ञान से (वरुणः मित्रः अर्यमा) श्रेष्ठ, स्नेही और दुष्ट पुरुषों का नियन्ता, न्यायकारी पुरुष (चष्टे) न्यायानुकूल प्रजाजन को देखता है, सत् असत् का निर्णय करता है, और (येन शवसा) जिस ज्ञान और बल से (नासत्या) कमी, असत्याचरण न करने वाले वा नासिकावत् प्रमुख पद पर स्थित स्त्री पुरुष और (भगः) ऐश्वर्यवान् स्वामी (चष्टे) अधीनस्थों को देखता और आज्ञा वचन कहता है हम (इन्द्र-त्वोताः) तुझ सूर्याग्निवत् तेजस्वी और प्रचण्ड विद्वान् और वीर पुरुष द्वारा सुरक्षित रहकर (ते तत् शवसा) उसी तेरे बल से (गातुवित्-तमाः) खूब भूमि और वाणी के धन को अच्छी प्रकार प्राप्त होकर (ते) तेरे (तत् विधेमहि) उसी बल और ज्ञान को सम्पादन करें।

ते घेदंग्ने स्वाध्यो३ये त्वां विप्र निदधिरे नृचक्षसम् ।
विप्रासो देव सुक्रतुम् ॥ १७ ॥

भा०—हे (विप्र) विद्वन् ! हे विविध विद्याओं से पूर्ण ! निष्णात ! (ये) जो (त्वा) तुझ को (नृ-चक्षसम्) समस्त मनुष्यों पर द्रष्टा रूप से (निदधिरे) नियत करते और निश्चयपूर्वक जानते हैं और (ये विप्रासः) जो विद्वान् लोग हे (देव) दानशील ! हे प्रकाशस्वरूप, सत्य प्रकाशक ! (त्वा सुक्रतुं निदधिरे) तुझ उत्तम कर्म और ज्ञान वाले, तुझको स्थिर करते हैं (ते घ इत्) वे ही हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (स्वाध्यः) सुख पूर्वक तेरा ध्यान करने वाले तुझे वरण और अग्निवत् हृदय वेदि में धारण करने वाले होते हैं।

त इद्वेदिं सुभग त आहुतिं ते सोतुं चक्रिरे दिवि।

त इद्वाजेभिर्जिग्युर्महद्धनं ये त्वे कामं न्येरिरे ॥ १८ ॥

भा०—हे प्रभो ! ज्ञानवन् ! (ये) जो (त्वे) तुझ में (कामम्) अपने कामना वा इच्छा करने वाले आत्मा वा मन को (त्वे नि-एरिरे) तेरे अधीन, तेरे ही में प्रेरित करते हैं (ते) वे (इत्) ही हे (सुभग) उत्तमैश्वर्यवन् ! (वेदिम् चक्रिरे) वेदि बनाते, (ते आहुतिं चक्रिरे) वे आहुति करते और इस भूमि पर (ते सोतुं चक्रिरे) वे हवन यज्ञ करते हैं। इसी प्रकार वे (वेदिं) ज्ञान करते, (आहुतिं) दान आदान करते, (सोतुं) ऐश्वर्य उत्पन्न करते। (ते इत्) वे ही (वाजेभिः) ज्ञानों और सैन्यादि बल पराक्रमों से (महद् धनं जिग्युः) बड़े भारी धन का विजय करते हैं।

भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः।
भद्रा उत प्रशस्तयः ॥ १९ ॥

भा०—(आहुतः) आदरपूर्वक आहुति किया (अग्निः) अग्नि, और आदरपूर्वक बुलाया या वृत या दान सत्कृत विद्वान् (नः भद्रः) हमारे लिये कल्याण और सुख का देने वाला हो। (रातिः भद्रा) हमारा दिया दान हमें सुखकारी हो। हे (सु-भग) उत्तम ऐश्वर्यशालिन् ! (नः

अध्वरः) हमारा यज्ञ (भद्रः) कल्याणजनक हो। (उत) और (प्र-शस्तयः) उत्तम ख्याति या उत्तम उपदेश भी हमें (भद्राः) कल्याणकारी हों वा हमारी उत्तम ख्यातियां हों।

भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये येना समत्सु सासहः।
अव स्थिरा तनुहि भूरि शर्धतां वनेमा ते अभिष्टिभिः॥२०॥३२

भा०—हे नायक! प्रभो! तू (वृत्रतूर्ये) दुष्टों के नाश करने वाले संग्राम में (येन) जिस ज्ञान और मनोबल से (समत्सु) संग्रामों में (सासहः) शत्रुओं को पराजित करता है, तू उसी (मनः) मन और ज्ञान को (भद्रं) हमें सुखदायक कर। और (शर्धतां) बल वाले हिंसक शत्रुओं के (स्थिरा) दृढ़ सैन्यों को भी (अव तनुहि) नीचे कर, नाश कर। जिससे हम (अभिष्टिभिः) अभिलषित सुखों से (ते वनेम) तेरी सेवा करें। तुझ से नाना ऐश्वर्य प्राप्त करें।

ईळे गिरा मनुर्हितं यं देवा दूतमरतिं न्येरिरे।
यजिष्ठं हव्यवाहनम्॥ २१॥

भा०—(यम्) जिस (यजिष्ठं) अति पूज्य (हव्य-वाहनम्) हव्य, उत्तम अन्न को ग्रहण करने वाले, (दूतम्) दुष्ट पुरुषों के उपतापक और विद्वानों से उपासित (अरतिं) अति मतिमान् स्वामी को (देवाः) नाना अर्थों के अभिलाषी होकर (नि ऐरिरे) स्तुति करते हैं (मनुर्हितम्) मननशील पुरुषों द्वारा धारित उस पूज्य की मैं (गिरा ईडे) वाणी द्वारा स्तुति करूं।

तिग्मजम्भाय तरुणाय राजते प्रयो गायस्यग्नये।
यः पिंशते सूनृताभिः सुवीर्यमग्निर्घृतेभिराहुतः॥ २२॥

भा०—जिस प्रकार (घृतेभिः आहुतः अग्निः) घी की धाराओं से आहुति पाकर अग्नि (सूनृताभिः) उत्तम सत्य वाणियों सहित (सुवीर्यं पिंशते) उत्तम वीर्य युक्त रूप प्रकट करता है और जिस प्रकार (घृतेभिः

आहुतः) जलों द्वारा प्राप्त (अग्निः) विद्युत् (सूनृताभिः) उत्तम विज्ञान युक्त क्रियाओं द्वारा वा मेघस्थ विद्युत् उत्तम बल अन्नादि युक्त धाराओं से (सुवीर्यं) उत्तम बलयुक्त रूप प्रकट करता है, उसी प्रकार (घृतेभिः आहुतः) दीप्ति, तेज वा स्नेहों से आदृत होकर (अग्निः) तेजस्वी ज्ञानी पुरुष वा प्रभु (सूनृताभिः) उत्तम ज्ञानमय वाणियों से (सुवीर्यम्) उत्तम रीति से विशेष रूप से, उपदेश करने योग्य ज्ञान को (पिशते) प्रकट करता है, उस (तिग्म-जम्भाय) तीक्ष्णमुख, दुष्टों के हनन करने के लिये तीक्ष्ण हिंसा साधनों से युक्त (तरुणाय) सदा युवा, बलवान्, संकटों से तारने वाले, (राजते) राजा के समान आचरण करने वाले, (अग्नये) अग्रणी, ज्ञानी पुरुष के लिये (प्रयः) उत्तम प्रीतिकारक वचन वा स्तुति का (गायसि) गान कर।

यदीं घृतेभिराहुतो वाशीमग्निर्भरत उच्चाव च ।
असुर इव निर्णिजम् ॥ २३ ॥

भा०—(यदि) जिस प्रकार (घृतेभिः आहुतः) घृत धाराओं से आहुति प्राप्त कर (अग्निः) अग्नि (उत् च अव च) ऊपर की ओर और नीचे की ओर भी (वाशीम् भरते) कान्ति प्रदान करता है तब वह (असुरः इव) प्राणों के देने वाले वायु या सूर्य के समान (निर्णिजम्) रूप को (भरते) धारण करता है अर्थात् असुर प्राणप्रद पवन भी जलों से युक्त होकर (वाशीं भरते) कान्तिमती विद्युत्, उसकी माध्यमिक वाणी गर्जना को धारण करती है, सूर्य (घृतैः) दीप्तियों से युक्त होकर (वाशीं भरते) दीप्ति रूप को धारता है उसी प्रकार वह प्रभु और विद्वान् नायक भी, (यदि) जब (घृतेभिः आहुतः) स्नेहों से उपासित होकर (वाशीम्) उत्तम वाणी को (उत् च अव च) ऊपर और नीचे स्वरों के आरोहावरोह क्रम सहित (भरते) धारण करता है, तब वह (असुरः इव) 'असुर' अर्थात् बलवान् वीर पुरुष के (निर्णिजं भरते) रूप को धारण करता है,

वीर पुरुष भी (वार्या) वशकारिणी शक्ति, खड्ग आदि को ऊपर नीचे चलाता है, तेजों से चमकाता है।

यो हव्यान्यैरयता मनुर्हितो देव आसा सुगन्धिना।
वि वासते वार्याणि स्वध्वरो होता देवो अमर्त्यः ॥ २४ ॥

भा०—जिस प्रकार (देवः) देदीप्यमान अग्नि, (हव्यानि) हव्य चरुओं को (सुगन्धिना आसा) उत्तम गन्धयुक्त ज्वाला रूप मुख से (ऐरयत) दूर २ तक भेजता है (वार्याणि वि वासते) ग्राह्य उत्तम २ प्रकाशों को प्रकट करता है उसी प्रकार (यः) जो (मनुः-हितः) स्वयं मननशील और सर्वहितकारी विद्वान् (देवः) मनुष्य होकर (सुगन्धिना) पुण्य गन्ध, उत्तम शिक्षा युक्त (आसा) मुख से (हव्यानि) ग्राह्य-वचनों को (ऐरयत) उच्चारण करता है वह (सु-अध्वरः) उत्तम यज्ञशील, अन्यों की हिंसा से रहित, (देवः) दानी (अमर्त्यः) साधारण मनुष्य वर्ग से भिन्न होकर (वार्याणि वि वासते) वरण करने योग्य उत्तम गुणों और ज्ञानों को प्रकट करता है।

यदग्ने मर्त्यस्त्वं स्यामहं मित्रमहो अमर्त्यः।
सहसः सूनवाहुत ॥ २५ ॥ ३३ ॥

भा०—जिस प्रकार आहुति वाले अग्नि में जो कुछ पड़ता है वह अग्नि ही होजाता है उसी प्रकार हे (सहसः सूनो) बल के उत्पन्न करने, प्रेरने वाले हे (आहुत) उपासना योग्य ! (अग्ने) ज्ञानवन् वा अग्निवत् तेजस्विन् ! हे (मित्र-महः) स्नेहवान् मित्रों से पूजनीय, मित्रों के आदर करने हारे ! (यत्) जो (मर्त्यः) मनुष्य (अहं त्वं स्याम्) मैं तू होजाऊं इस प्रकार उपासना करता है वह भी (अमर्त्यः) अविनाशी वा अन्य साधारण मरणधर्मा प्राणियों से भिन्न तेरे समान ही होजाता है।

न त्वा रासीयाभिशस्तये वसो न पापत्वाय सन्त्य।
न मे स्तोतामतीवा न दुर्हितः स्यादग्ने न पापया ॥ २६ ॥

भा०—हे (वसो) समस्त प्रजा को बसाने और सब में बसने हारे स्वामिन्! मैं जिस प्रकार (अभिशस्तये) निन्दा अपवाद और (पापत्वाय) पाप के लिये (न रासीय) धन को नहीं दूं उसी प्रकार (त्वा) तुझे भी (अभिशस्तये) निन्दा, परापवाद और (पापत्वाय) पाप कार्य के लिये (न रासीय) कभी त्याग न करूं वा तेरा नाम अन्यों को पीड़ा पहुंचाने और पाप कर्म करने के निमित्त न लूं। हे (सन्त्य) भजन करने योग्य! हे (अग्ने) ज्ञानप्रकाशक! प्रभो! (मे स्तोता) मेरा स्तुति करने वा उपदेश करने वाला (अमतिवा) मतिहीन, मूर्ख (न) न हो और (दुर्हितः) दुष्टदर्शी दुष्टाशय पुरुष (न) न हो और (न पापः स्यात्) वह पापाचारी वा पाप बुद्धि से युक्त भी न हो।

पितुर्न पुत्रः सुभृतो दुरोण आ देवाँ एतु प्र णो हविः ॥ २७ ॥

भा०—(सुभृतः) उत्तम रीति से भरण पोषण प्राप्त, सुपुष्ट (पुत्रः) पुत्र जिस प्रकार (दुरोणे) गृह में (पितुः) पिता का भी पालक होता है, उसी प्रकार (अग्निः) अग्निवत् तेजस्वी परमेश्वर एवं राजा गृहपति भी (पितुः न) अन्न के समान (पुत्रः) बहुतों के रक्षा करने में समर्थ, (सुभृतः) उत्तम रीति से प्रजा का भरण पोषण करने वाला होकर (दुरोणे) अन्यों से कठिनता से प्राप्त करने योग्य राष्ट्रपति वा मोक्ष पद पर है। वह (देवान् आ एतु) समस्त मनुष्यों, विद्वानों और दिव्य पदार्थों को प्राप्त हो, और वह (नः हविः प्र एतु) हमारे स्तुतिवचन वा कर आदि देने योग्य अंश को भी प्राप्त करे।

तवाहमग्न ऊतिभिर्नेदिष्ठाभिः सचेय जोषमा वसो।
सदा देवस्य मर्त्यः ॥ २८ ॥

भा०—हे (वसो) सब प्राणियों और लोकों को बसाने और उन सब में बसने हारे! हे (अग्ने) तेजस्विन्! हे अंग २ में व्यापक! (सदा) सर्वदा, सब कालों में (मर्त्यः) मैं मरणधर्मा जीव (देवस्य तव) सुखैं

सुखदाता, सर्वप्रकाशक तेरी (नेदिष्ठाभिः मतिभिः) अति समीपतम रक्षाओं से सुरक्षित होकर (तव जोषम् आ सचेय) तेरे प्रेम और सेवा का सब प्रकार से लाभ करूं।

तव क्रत्वा सनेयं तव रातिभिरग्ने तव प्रशस्तिभिः।
त्वामिदाहुः प्रमतिं वसो ममाग्ने हर्षस्व दातवे ॥ २९ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने! अग्निवत् सर्वप्रकाशक! (क्रत्वा) उत्तम कर्म, उत्तम बुद्धि से वा यज्ञ से (तव सनेयम्) तेरा भजन करूं। (रातिभिः) दानों से (तव सनेयं) तेरा भजन करूं। और (प्रशस्तिभिः) प्रशंसाओं, स्तुतियों से (तव सनेयम्) तेरा भजन करूं। हे (वसो) गुरुवत् अपने में सब को बसाने और प्राणवत् सब में बसने हारे! (त्वाम् इत् प्रमतिम्) तुझ को सब से उत्कृष्ट बुद्धि और ज्ञान वाला (आहुः) विद्वान् लोग बतलाते हैं। हे (अग्ने) सर्वज्ञ, सर्वप्रकाशक! तू (मम दातवे) मुझे देने के लिये (हर्षस्व) स्वयं प्रसन्न हो वा मुझे दान देने के लिये हर्षित, उत्साहित कर।

प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तिरते वाजभर्मभिः।
यस्य त्वं सख्यमावरः ॥ ३० ॥ ३४ ॥

भा०—हे (अग्ने) सर्वप्रकाशक! सर्वव्यापक प्रभो! स्वामिन्! (वाजभर्मभिः) ज्ञान, बल अन्नादि भरण पोषण करने वाली (सुवीराभिः) उत्तम वीरों, पुत्रों से युक्त, (तव ऊतिभिः) तेरी रक्षाओं और दीप्तियों से (सः प्र तिरते) वह बराबर बढ़ा करता है (यस्य सख्यं) जिसके मित्र भाव को (तू आवरः) स्वीकार कर लेता है।

तव द्रप्सो नीलवान्वाश ऋत्विय इन्धानः सिष्णवा ददे।
त्वं महीनामुषसामसि प्रियः क्षपो वस्तुषु राजसि ॥३१॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि (इन्धानः) चमकने वाला, (द्रप्सः)

द्रुतगति से काष्ठों का खाने वाला, (नीलवान्) नील धुएं वाला, (वाशः) कान्ति से युक्त, (ऋत्वियः) ऋतु २ में यज्ञ, करने योग्य, और (सिष्णुः) प्रत्याहुति घृत सेचने योग्य वा यज्ञ द्वारा जगत् भर में वर्षा द्वारा सेचन करने वाला होता है। इस प्रकार (महीनाम् उपसां प्रियः) बहुत सी कामना युक्त प्रजाओं या दाहकारिणी शक्तियों का प्रिय या पूरक होता और (क्षपः वस्तुषु राजति) रात को वसे घरों में गार्हपत्याग्नि, अन्वाहार्य पचन और दीपक रूप में चमकता है उसी प्रकार हे (सिष्णो) प्रेम से सबको सेचन करने वा प्रकृति में जगत् बीज को आसेचन करने वाले, मेघवत् सुखवर्षक, सर्वोत्पादक प्रभो ! (तव द्रप्सः) तेरा रसस्वरूप, आनन्ददायक रूप, (नीलवान्) सबको आश्रय देने वाला, सब विश्व को अपने में लीन करने वाला, (वाशः) अति कमनीय, स्तुत्य, और सब जगत् का वश करने वाला, (ऋत्वियः) ऋतु, प्राणों द्वारा वा वायु जलादि महान् शक्तियों से जानने योग्य, (इन्धानः) सूर्यादिवत् देदीप्यमान रूप से (आ ददे) जाना जाता है। (त्वं) तू (महीनाम्) भूमियों और (उपसाम्) दाहक सूर्यादि को भी (प्रियः) पूर्ण और तृप्त करने वाला, (असि) है और (क्षपः) संसार का संहारक और सब (वस्तुषु) पदार्थों और वासयोग्य लोकों में (राजसि) प्रकाशमान हो रहा है।

तमाग॑न्म॒ सोभ॑रयः स॒हस्र॑मुष्कं स्वभि॒ष्टिमव॑से ।
स॒म्राज॒ं त्रास॑दस्यवम् ॥ ३२ ॥

भा०—हे (सोभरयः) उत्तम रीति से भरण पोषण करने वालो ! हम लोग (अवसे) रक्षा के लिये (तम्) उस (सु-अभिष्टिम्) उत्तम अभिलाषा वाले, (त्रासदस्यवम्) दस्युओं, दुष्ट पुरुषों को भयभीत करने वाले, (सहस्रमुष्कं) हजारों के पोषक वा सूर्यवत् बहुत से दुःखदारिद्र्यहारी नाना तेजःसामर्थ्यों से सम्पन्न, (सम्राजं आ अगन्म) सम्राटवत् सर्वत्र दीप्तियुक्त प्रभु को प्राप्त हों।

यस्य॑ ते अग्ने अन्ये॑ अग्नय॑ उपक्षितो॑ वया इ॑व ।

विप्रो॒ न द्युम्ना नि यु॑वे॒ जना॑नां॒ तव॑ क्षत्राणि॑ व॒र्धय॑न् ॥३३॥

भा०—जैसे एक ही अग्नि से अन्य भी अग्नियें प्रज्वलित होकर उसकी नाना शाखा के समान होती हैं उसी प्रकार हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् (यस्ते) जिस तेरे (अन्ये अग्नयः) दूसरे तेजस्वी पुरुष भी (उपक्षितः) समीप रहने वाले (वयाः इव) शाखाओं के समान विराजते हैं उस (तव) तेरे (जनानां) मनुष्यों के (क्षत्राणि) वीर्यों और धनों को (वर्धयन्) बढ़ाता हुआ मैं (विप्रः न) वाणियों के समान (द्युम्ना) बहुत से धनों वा यशों को (नि युवे) प्राप्त करूं। वया इति वाङ् नाम ।

यमा॑दित्यासो अद्रुहः पा॒रं नय॑थ॒ मर्त्य॑म् ।

म॒घोनां॒ विश्वे॑षां सुदानवः ॥ ३४ ॥

भा०—हे (आदित्यासः) सूर्य की किरणोंवत् ज्ञान, ऐश्वर्यादि का संचय करने वाले और हे (सु-दानवः) उत्तम रीति से पुनः जलवत् अपने सञ्चित को अन्यों के उपकारार्थ देने वाले हे (अद्रुहः) द्रोहरहित, प्रेममय दयालु पुरुषो ! आप लोग (यम् मर्त्यम्) जिस मनुष्य को (पारं नयथ) ज्ञानसागर के पार कर देते हो वह (विश्वेषां मघोनां) समस्त ऐश्वर्यवानों में पूज्य होजाता है ।

यू॒यं रा॑जानः॒ कं चि॑च्चर्षणीसहः॒ क्षय॑न्तं॒ मानु॑षाँ॒ अनु॑ ।

व॒यं ते वो॑ वरुण॒ मित्रार्य॑म॒न्त्स्यामेदृ॒तस्य॑ र॒थ्यः॑ ॥ ३५ ॥

भा०—हे (चर्षणिसहः) शत्रुकर्षण करने वाली सेनाओं वा शत्रु जनों को दबाकर वश रखने में समर्थ (राजानः) तेजस्वी राजा लोगो ! (यूयं) आप लोग (कं चित्) किसी (मानुषान् क्षयन्तं) मनुष्यों के ऐश्वर्य की वृद्धि करने वाले पुरुष के (अनु) पीछे रहो। हे (मित्र अर्यमन् वरुण) स्नेही, न्यायकारी और सर्वश्रेष्ठ जनो ! (ते वयं) वे हम लोग (वः) आप

लोगों के (ऋतस्य) सत्य, न्याय, तेज, धन, सत्यमार्ग के (रथ्यः) रथारोही गन्ता के समान (स्याम इव) अग्रेसर होवें।

अदा॒न्मे पौ॑रुकु॒त्स्यः प॑ञ्चा॒शतं॑ त्र॒सद॑स्युर्व॒धूना॑म् ।
मंहि॑ष्ठो अ॒र्यः सत्प॑तिः ॥ ३६ ॥

भा०—(पौरुकुत्स्यः) वहुत से वज्र अर्थात् हथियारवन्द वीर पुरुषों का स्वामी (त्रसदस्युः) दुष्टों को भयभीत करने वाला राजा (मंहिष्ठः) अति दानशील, पूज्य, (अर्यः) स्वामी (सत्पतिः) सज्जनों का पालक, (अर्यः) सवका स्वामी, है। वह (मे) मुझ प्रजाजन को धारण करने वाली (पञ्चाशतं) ५०, वा, १०५, वा ५०० सेनाओं को (अदात्) प्रदान करे।

उ॒त मे॑ प्र॒यियो॑र्व॒यियो॑ः सु॒वास्त्वा॒ अधि॒ तुग्व॑नि ।
ति॒सॄणां॑ सप्तती॒नां श्या॒वः प्र॑णे॒ता भु॑व॒द्वसु॒र्दिया॑नां॒ पतिः॑॥३७॥३५॥

भा०—(सुवास्त्वाः) उत्तम भवनों वाली नगरी के (तुग्वनि अधि) शत्रुहिंसक और प्रजापालक वल या सैन्य के ऊपर (उत)और (प्रयियोः) प्रयाण करने वाले सैन्य और (वयियोः) तन्तु-सन्तान विस्तार करने वाले, वसे (मे) मुझ प्रजाजन के (तुग्वनि) पालनकारी पद पर विराजमान (श्यावः) ज्ञानी और वीर पुरुष (तिसृणां सप्ततीनां) तीन ७०। ७० की पंक्तियों का (प्रणेता) मुख्य नायक होकर (दियानां) करप्रद प्रजाओं का पालक, स्वामी और (वसुः भुवत्) 'वसु' होजाता है। अध्यात्म में—सुवास्तु, यह देह है उसमें प्रयाग करने और प्रजा सन्तति का इच्छुक आत्मा है उसके पालक इस देहाधिष्ठाता प्राण पर भी भीतरी 'श्याव' अश्व मन ३ × ७० = २१० नाड़ियों को सञ्चालित करता है, वही (दियानां पतिः) ज्ञानप्रद इन्द्रियों का पालक अधिष्ठाता और (प्रणेता) मुख्य नायक भी होता है। उसी-का नाम 'वसु' है। इति पञ्चत्रिंशो वर्गः ॥

[२०]

सोभरिः काण्व ऋषिः ॥ मरुतो देवता ॥ छन्दः—१, ५, ७, १६, २३ उष्णिक् ककुप् । ६, १३, २१, २५ निचृदुष्णिक् । ३, १५, १७ विराडुष्णिक् । २, १०, १६, २२ सतः पंक्तिः । ८, २०, २४, २६ निचृत् पंक्तिः । ४, १८ विराट् पंक्तिः । ६, १२ पादनिचृत् पंक्तिः । १४ आर्ची भुरिक् पंक्तिः ॥ षड्विंशर्चं सूक्तम् ॥

आ गन्ता मा रिषण्यत प्रस्थावानो माप स्थाता समन्यवः । स्थिरा चिन्नमयिष्णवः ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् और वीर पुरुषो ! (आ गन्त) आप लोग आवो ! (मा रिषण्यत) पीड़ित मत करो । हे (प्रस्थावानः) प्रधान पद पर स्थित पुरुषों वा रणादि में प्रस्थान करने वा आगे बढ़ने वालो ! हे (समन्यवः) समान क्रोध वा ज्ञान वाले वीरो ! आप लोग (मा अप स्थात) दूर २ मत रहो, समीप संवीभूत होकर रहो । आप लोग (स्थिरा चित्) स्थिर वृक्षों को वायु के समान दृढ़, स्थिर, बहुत देर के जमे हुए शत्रुओं को भी (नमयिष्णवः) अपने आगे झुकाने में समर्थ होवो ।

वीळुपविभिर्मरुत ऋभुक्षण आ रुद्रासः सुदीतिभिः । इषा नो अद्या गंता पुरुस्पृहो यज्ञमा सोभरीयवः ॥ २ ॥

भा०—हे (मरुतः) शत्रुओं को मारने वाले ! हे (ऋभुक्षणः) महान् बल वाले ! हे (रुद्रासः) दुष्टों को रुलाने और प्रजा के रोगों, कष्टों को दूर करने वालो ! हे (पुरुस्पृहः) बहुत से प्रजावर्गों को प्रेम करने, बहुतों के प्रेमपात्र होने वालो ! हे (सोभरीयवः) उत्तम पालक-पोषक नायकों को चाहने वालो ! आप लोग (वीळुपविभिः) दृढ़ शस्त्रों, दृढ़ चक्रधाराओं. और (सु-दीतिभिः) उत्तम कान्तियों से युक्त होकर

(अद्य) आज (नः) हमारे (यज्ञम्) यज्ञ को (इषा आ गत) इच्छा, अन्न, वा सुभिक्ष और सुवृष्टिसहित पवनों के समान ही (नः आ गत) हमें प्राप्त होवो ।

विद्मा हि रुद्रियाणां शुष्ममुग्रं मरुतां शिमीवताम् ।
विष्णोरेषस्य मीळ्हुषाम् ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार (रुद्रियाणां) जनता में फैलने वाले रोगों को वेग से उड़ा लेने वाले प्रचण्ड (मरुतां शिमीवताम्) वातों और कर्मकारी यन्त्रादि सञ्चालक वेगों का (उग्रं शुष्मम्) बड़ा भारी बल होता है । और (एषस्य) अभिलषणीय (विष्णोः) व्यापक, सब ओर विशेष रूप से बरसने वाले जल को (मीढुषां) वृष्टि रूप से भूमि पर सेचने वाले जलधर वायुओं के समान (रुद्रियाणां शिमीवताम् मरुताम्) भव-पीड़ाओं के नाशक गुरु, प्रभुओं के शिष्यों और (शमी वताम्) कर्मनिष्ठ विद्वानों के उग्र बल को और (विष्णोः) सूर्य के (एषस्य) अभिलापणीय तत्त्व (विद्मा हि) ज्ञान करें ।

वि द्वीपानि पापतन्तिष्ठद्दुच्छुनोभे युजन्त रोदसी ।
प्र धन्वान्यैरत शुभ्रखादयो यदेजथ स्वभानवः ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार वायुगण, (द्वीपानि वि पापतन्) नाना द्वीपों में भ्रमण करते, (उभे रोदसी) आकाश और पृथ्वी दोनों को (दुच्छुना) दुःख से ही युक्त कर देते हैं । वे मरुद्गण आकाश पिण्डों को लपेट कर भूमि पर गिराते हैं और (तिष्ठत्) भूमिस्थ वृक्षों को (दुच्छुना) दुःखदायी पतनादि से युक्त करते हैं । और वे (स्वभानवः) अपनी कान्ति से युक्त (शुभ्र-खादयः) शुभ्र दीप्ति वाले होकर (धन्वानि ऐरत) जलों को नीचे गिराते हैं इसी प्रकार हे विद्वानो और वीर पुरुषो ! आप लोग (द्वीपानि वि पापतन्) नाना द्वीपों को विजयादि कार्यों के लिये जाया आया करो । (उभे रोदसी) दोनों स्वपक्ष परपक्ष को (दुच्छुना युजन्त) दुःख, शोकादि

से युक्त करते हैं। आप सब (स्व-भानवः) अपने धन की दीप्ति से युक्त और (शुभ्र खादयः) स्वच्छ भोजन और स्वच्छ खड्गादि वाले, (यत् एजथः) जब २ जाते हों तो (धन्वानि ऐरत) धनुषों को आगे बढ़ाओ और चलाओ।

अच्युता चिद्वो अज्मन्ना नानदति पर्वतासो वनस्पतिः।
भूमिर्यामेषु रेजते ॥ ५ ॥ ३६ ॥

भा०—जिस प्रकार पवनों के चलने पर (पर्वतासः अच्युतासः वनस्पतिः भूमिः रेजते) दृढ़ पर्वतवत् वा मेघ भी गर्जते, वनस्पति और मानो भूमि कांपती है, उसी प्रकार हे वीरो! (वः अज्मन् यामेषु) आप लोगों के संग्राम में प्रयाण होने पर (अच्युता चित् पर्वतासः) दृढ़ पर्वत भी (आ नानदति) प्रतिध्वनि करते हैं। (वनस्पतिः) सूर्य वा वन के स्वामी वृक्षों वत् ऐश्वर्यपालक शत्रु और (भूमिः) भूमि भी (रेजते) कांपती है। इति षट्त्रिंशो वर्गः॥

अमाय वो मरुतो यातवे द्यौर्जिहीत उत्तरा बृहत्।
यत्रा नरो देदिशते तनूष्वा त्वक्षांसि बाह्वोजसः ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार वायुओं के (अमाय यातवे) बलपूर्वक जाने के लिये (द्यौः उत्तरा बृहत् जिहीते) ऊपर का आकाश बीच के बड़े भारी अन्तरिक्ष को त्याग देता है, इसी प्रकार हे (मरुतः) शत्रुओं को मारने में निपुण वीर पुरुषो! (वः अमाय) आप लोगों के बल प्रयोग या व्यायासाभ्यास के लिये और (यातवे) युद्धार्थ प्रयाण करने के लिये (उत्तरा द्यौः) सर्वोपरि शासक शक्ति, (बृहत्) बहुत बड़ा स्थान वा पद (जिहीते) दे, (यत्र) जिस पर स्थित होकर (बाह्वोजसः) बाहुओं में बल पराक्रम धारण करने वाले (नराः) नायक लोग (तनूषु) अपने शरीरों पर (त्वक्षांसि) चमत्कार वा दीप्तियुक्त पदक आभूषण आदि (आ

देदिशते) धारण करते हैं । अथवा (तनूषु त्वक्षांसि आ देदिशते) शत्रुओं के शरीरों वा विस्तृत सैन्यों पर तीक्ष्ण शस्त्रों का रुख करते हैं ।

स्वधामनु श्रियं नरो महि त्वेषा अमवन्तो वृषप्सवः ।
वहन्ते अहुतप्सवः ॥ ७ ॥

भा०—वे (नरः) नायक वीर जन (त्वेषाः) तीक्ष्ण कान्तियुक्त (अमवन्तः) बलवान्, (वृषप्सवः) वृषभ के समान हृष्ट पुष्ट शरीर वाले और (अहुतप्सवः) सरल सूधी प्रकृति वाले, निष्कपट होकर (स्वधाम् अनु) अपनी शक्ति सामर्थ्य के अनुसार (महि श्रियम् वहन्ते) बड़ी भारी राजलक्ष्मी को धारण करते हैं ।

गोभिर्वाणो अज्यते सोभरीणां रथे कोशे हिरण्यये ।
गोबन्धवः सुजातास इषे भुजे महान्तो नः स्परसे नु ॥८॥

भा०—(सोभरीणां) प्रजा का उत्तम रीति से पालन करने वाले क्षत्रियों और राजाओं के (हिरण्यये कोशे) सुवर्णादि से परिपूर्ण खजाने में (गोभिः)भूमियों द्वारा (वाणः) देने और सेवने योग्य ऐश्वर्य (अज्यते) प्राप्त किया जाता है, और (हिरण्यये) तेजोमय आत्मा के (कोशे रथे) आनन्दमय, विज्ञानमय प्राणमय, मनोमय अन्नमय (रथवत्) कोश अर्थात् देह में (गोभिः) इन्द्रियों के सहित (वाणः) भोक्ता आत्मा (अज्यते) प्रकट होता है । (गोभिः वाणः अज्यते) वाणियों, वेदमन्त्रों से शब्दमय, ज्ञानमय ज्ञान रस प्रकट होता है । इसी प्रकार उनके (रथे) रथ में (गोभिः) धनुष डोरियों से बद्ध धनुषों के साथ २ (वाणः) वाण भी शोभा देता है । अथवा (गोभिः) डोरियों से (वाणः अज्यते) वाण दूर फेंका जाता है ।

प्रति वो वृषदञ्जयो वृष्णे शर्धाय मारुताय भरध्वम् ।
हव्या वृषप्रयाव्णे ॥ ९ ॥

भा०—(वृषद्-अञ्जयः) बरसते मेघों से प्रकट होने वा उन सहित

आने वाले पवन जिस प्रकार वर्षा करने वाले, बलवान् वायुओं के प्रेरण के लिये ग्राह्य जलराशि को धारण करते हैं। उसी प्रकार हे (वृषदु-अञ्जयः) प्रजा पर सुखों की वर्षा करने वाले एवं प्रबन्धकारक, विशेष स्वरूप वा पोशाक पहनने वाले वीर पुरुषो ! और (वः) आप में से वा अपने बीच में विद्यमान (वृष्णे) बलवान् , (शर्धाय) पराक्रमी वा (शर्-धाय) शत्रुहिंसक शस्त्रास्त्र बल को धारण करने में समर्थ क्षत्रपति (मारुताय) मनुष्यों के हितैषी, (वृष-प्रयाव्णे) बलवान् पुरुषों वा अश्वों के साथ प्रयाण करने वाले वा राष्ट्रपति या सेनापति की वृद्धि के लिये (हव्यः) उत्तम अन्न एवं ग्राह्य स्तुत्य वचन और समस्त आवश्यक अन्न, धनादि रत्न, नाना पदार्थ (प्र भरध्वम्) लाओ अथवा (हव्या = हवयोग्यानि) यज्ञ और संग्राम के योग्य पदार्थों को लाओ और (हव्या) संग्रामोचित शस्त्रों का शत्रुओं पर (प्र भरध्वम् = प्र हरध्वम्) प्रहार करो।

वृषणश्वेन मरुतो वृषप्सुना रथेन वृषनाभिना।
आ श्येनासो न पक्षिणो वृथा नरो हव्या नो वीतये गत १०।३७

भा०—हे (मरुतः) वीर मनुष्यो ! (श्येनासः पक्षिणः न) बाज नाम के पक्षी जिस प्रकार वेग से जाते हैं उसी प्रकार आप लोग (वृषण-श्वेन) बलवान् अश्व वाले (वृष-प्सुना) सुदृढ़ रूप वाले, (वृष-नाभिना) सुदृढ़ चक्रनाभि वाले (रथेन) रथ से (वृथा) अनायास ही (नः वीतये) हमारी रक्षा के लिये (हव्या आ गत) यज्ञों युद्धों में आया जाया करो। अथवा इसी प्रकार (मरुतः) वैश्यगण रथों, यानों द्वारा (नः वीतये) हमारे खाने के लिये (हव्या) नाना अन्न (आ गत) लाया करें। इति सप्तत्रिंशो वर्गः॥

समानमञ्ज्येषां वि भ्राजन्ते रुक्मासो अधि बाहुषु।
दविद्युतत्यृष्टयः॥ ११॥

भा०—(एषां) इन वीर पुरुषों के (अञ्जि) रूप, पोशाक और चिह्नादि सब (समानम्) समान हों। (बाहुषु अधि) बाहुओं पर

(रुक्मासः) सुवर्णीय, सुनहरी तेज (वि भ्राजन्ते) विशेष रूप से चमकें और (बाहुषु) बाहुओं में ही (ऋष्टयः) शत्रुनाशक नाना शस्त्र भी (दविद्युतति) चमका करें ।

त उग्रासो वृषण उग्रबाहवो नकिष्टनूषु येतिरे ।
स्थिरा धन्वान्यायुधा रथेषु वोऽनीकेष्वधि श्रियः ॥१२॥

भा०—(ते) वे (उग्रासः) भयानक, (वृषणः) बलवान्, (उग्र-बाहवः) प्रचण्ड बाहुबल वाले, वीर पुरुष (तनूषु) अपने शरीरों के निमित्त (नकिः येतिरे) कोई श्रम न करें । इनको आजीविकोपार्जन के लिये अन्य यत्न की आवश्यकता नहीं । उनका कर्त्तव्य है कि (रथेषु) उनके रथों पर (धन्वानि आयुधा) धनुष आदि हथियार (स्थिरा) स्थिर हों । हे वीर पुरुषो ! (वः अनीकेषु अधि) आप लोगों की सेनाओं के आधार पर ही (श्रियः) राष्ट्र की लक्ष्मियां स्थिर हैं ।

येषामर्णो न सप्रथो नाम त्वेषं शश्वतामेकमिद्भुजे ।
वयो न पित्र्यं सहः ॥ १३ ॥

भा०—(पित्र्यं वयः न) जिस प्रकार पिता पितामह का सञ्चित अ.. वा (अर्णः न सप्रथः) जल के समान विस्तृत धन (एकम् इत् भुजे) एक भी प्रजा के भोग के लिये पर्याप्त होता है उसी प्रकार (येषाम्) जिन वीरों के (अर्णः न) सागर के जल के समान धन, (सप्रथः नाम) विख्यात, विस्तृत नाम, शत्रुओं को झुका देने वाला अपार बल, (त्वेषं) कान्ति, तेज, और (पित्र्यं वयः) पिता, वा राष्ट्र पालक होने योग्य पिता तुल्य वयस्, उमर और रक्षा बल तथा (सहः) पराक्रम है, उनको—

तान्वन्दस्व मरुतस्ताँ उप स्तुहि तेषां हि धुनीनाम् ।
अराणां न चरमस्तदेषां दाना मह्ना तदेषाम् ॥ १४ ॥

भा०—हे प्रजाजन ! (तान् मरुतः) उन वायुवत् बलवान् और ज्ञानवान् पुरुषों को (वन्दस्व) आदर सत्कार कर । (तान् उप स्तुहि)

उनकी स्तुति कर। (तेषां हि) उन शत्रुओं के (धुनीनाम्) कंपादेने वाले वा (धुनीनां) शास्त्र के उपदेष्टाओं और (अराणां) चक्र में लगे अरों, दण्डों के तुल्य व्यूह में बद्ध, अर्थात् गमन करने और औरों को आगे ले जाने वालों में से (चरमः न) कोई भी व्यक्ति चरम या अधम नहीं। (एषां दाना तत्) इनके दिये ज्ञान, दान ऐश्वर्यादि और इनके किये वे शत्रुनाश आदि नाना कार्य सब (एषाम् मह्ना) इनके ही महान् सामर्थ्यों से होते हैं। अथवा—(अराणां मह्ना चरमः न) चक्र में लगे दण्डों से जिस प्रकार मार्ग में संचरण होता है उसी प्रकार (तेषां हि धुनीनां) उन शत्रुकम्पक, वा वेदोपदेशकों के (मह्ना) महान् सामर्थ्य से (चरमः) चरम, अन्तिम लक्ष्य प्राप्त होता है।

सुभगः स वं ऊतिष्वास पूर्वासु मरुतो व्युष्टिषु।
यो वा नूनमुतासति ॥ १५ ॥ ३८ ॥

भा०—(उत) और (यः वा) जो भी मनुष्य हे (मरुतः) वीरो, विद्वानो! (नूनम्) अवश्य (पूर्वासु व्युष्टिषु) पूर्व अर्थात् प्रारम्भ के दिनों में वा ब्रह्मचर्य पालन के वयस् में (वः ऊतिषु) आप लोगों की रक्षाओं में (आस) पहुंच जाता है, (उत असति) वा निरन्तर रहता है (सः सुभगः) वह उत्तम ऐश्वर्य युक्त और सुखी, सौभाग्यवान् होता है। इत्यष्टात्रिंशो वर्गः ॥

यस्यं वा यूयं प्रति वाजिनो नर आ हव्या वीतये गथ।
अभि ष द्युम्नैरुत वाजसातिभिः सुम्ना वो धूतयो नशत् १६

भा०—हे (नरः) वीर नायक जनो! (वा) और (यस्य वाजिनः) बलवान्, ज्ञानवान् और ऐश्वर्यवान् राष्ट्र के (वीतये) रक्षा के लिये (यूयं) आप लोग (वाजिनः) स्वयं बलशाली होकर (हव्या प्रति आ गथ) अन्नों को और यज्ञ, युद्धोपयोगी दोनों पदों और हथियारों को प्राप्त करते हो, हे (धूतयः) शत्रुकंपक वीरो! और हे अज्ञान, मोह, रागादि के त्यागने

वाले विद्वानो ! (सः) वह (द्युम्नैः) नाना ऐश्वर्यों और (वाज-सातिभिः) ज्ञान, बलादि की वाणियों सहित (वः सुम्नानि अभिनशत्) आप लोगों के सुखों को प्राप्त करता है ।

यथा॑ रु॒द्रस्य॑ सू॒नवो॑ दि॒वो वश॒न्त्यसु॑रस्य वे॒धसः॑ ।
युवा॑न॒स्तथेद॑सत् ॥ १७ ॥

भा०—(रुद्रस्य सूनवः) गर्जना करने वाले मेघ के प्रेरक वायुगण जिस प्रकार (असुरस्य वेधसः) जलप्रद मेघ को उत्पन्न करते और (दिवः वशन्ति) अन्तरिक्ष पर वश करते वा भूमि को कान्तियुक्त करते हैं उसी प्रकार (रुद्रस्य) दुष्टों को रुलाने वाले राजा के (सूनवः) सञ्चालक और (असुरस्य) शत्रु को उखाड़ फेंकने वाले और प्रजाओं को जीवन-वृत्ति देने वाले राजा को (वेधसः) बनाने वाले विद्वान् और (युवानः) बल-वान् पुरुष (दिवः यथा वशन्ति) भूमि या राजसभा की जैसी वशकारिणी व्यवस्था करते या जैसे कामनाएं या व्यवहार चाहते हैं (तथा इत् असत्) उसी प्रकार हो ।

ये चार्ह॑न्ति म॒रुतः॑ सु॒दान॑वः॒ स्मन्मी॒ळ्हुष॒श्चर॑न्ति॒ ये ।
अत॑श्चि॒दा न॒ उप॒ वस्य॑सा हृ॒दा युवा॑न॒ आ व॑वृध्वम् ॥ १८ ॥

भा०—(ये) जो (सु-दानवः) उत्तम दानशील (मरुतः) मनुष्य (मीढुषः) ज्ञान, धन के दाता, वीर्यादि के सेक्ता माता पिता, गुरु, स्वामी आदि जनों की (अर्हन्ति) पूजा करते हैं और (ये च स्मत्) जो अच्छी प्रकार (चरन्ति) आचरण और सेवा करते हैं वे (युवानः) युवा पुरुष (अतः चित्) इसी प्रकार (वस्यसा हृदा) उत्तम हृदय से (नः उप आ ववृध्वम्) हमें आप लोग भी प्राप्त होओ ।

यून॑ ऊ॒ षु नवि॑ष्ठया॒ वृष्णः॑ पाव॒काँ अ॒भि सो॑भरे गि॒रा ।
गाय॒ गा इ॑व॒ चर्कृ॑षत् ॥ १९ ॥

भा०—हे (सोभरे) उत्तम रीति से पालन पोषण करने हारे !

हे उत्तम ज्ञान प्रदान करने हारे गुरो ! विद्वन् ! जिस प्रकार (चर्कृषत्) खेती करने हारा (गा-इव) बैलों वा भूमियों को देखकर, वा (वृष्णः अभि) बरसते बादलों को देखकर, (गिरा) वाणी से उनकी (गायति) स्तुति करता है उसी प्रकार तू भी (गाः इव चर्कृषत्) शिष्यों को भूमियों के समान ज्ञान ग्रहण कराता हुआ (वृष्णः) वीर्यवान् , बलवान् (पावकान्) पवित्र आचार वाले तेजस्वी (यूनः) युवा पुरुषों के (अभि) प्रति (नविष्ठया गिरा) अति स्तुत्य वाणी से उन्हें (अभि गाय) अच्छी प्रकार उपदेश कर, उनके प्रति उत्तम आदरपूर्वक वचन कह और ज्ञान बीजों का वपन कर ।

सुाहा ये सन्ति मुष्टिहेव हव्यो विश्वासु पृत्सु होतृषु ।
वृष्णश्चन्द्रान्न सुश्रवस्तमान् गिरा वन्दस्व मुरुतो अह ॥२०॥३९॥

भा०—(विश्वासु पृत्सु) जिस प्रकार समस्त युद्धों में या समस्त (होतृषु पृत्सु) ललकारने वाले मनुष्यों में (मुष्टिहा इव हव्यः) मुक्के से वा मुट्ठी के समान पांचों जनों को मिलाकर संघ शक्ति से ही शत्रु को मारने वाला उत्तम युद्धकुशल होता है उसी प्रकार (ये) जो (विश्वासु पृत्सु) सब संग्रामों या सब मनुष्यों में, (होतृषु) गुरुजनों के अधीन (सहाः सन्ति) शत्रुओं को पराजित करने वाले हैं उन (वृष्णः) बलवान् (चन्द्रान्) प्रजाओं को प्रसन्न रखने वाले (सुश्रवस्तमान्) उत्तम यशस्वी, उत्तम ज्ञानी (मरुतः) वीरों और विद्वान् पुरुषों को (अह) भी (वन्दस्व) अच्छी प्रकार स्तुति और आदर प्रदान कर । अर्थात् वीर, विजयी, सर्वाह्लादक योद्धाओं, शासकों तथा कीर्त्तियुक्त ज्ञानी सफल विद्वानों को सदा विशेष प्रशंसा प्राप्त होनी चाहिये । इत्येकोनचत्वारिंशो वर्गः ॥

गावश्चिद्घा समन्यवः सजात्येन मरुतः सबन्धवः ।
रिहते ककुभो मिथः ॥ २१ ॥

भा०—जिस प्रकार (गावः चित् सजात्येन मिथः रिहते) गौवें एक जाति की होने से प्रेमपूर्वक एक दूसरे को चाटती हैं, एक दूसरे से प्रेम करती हैं, और जिस प्रकार (मरुतः ककुभः रिहते) सजल वायुगण दिशाओं का स्पर्श करते, उन तक पहुंचते हैं, उसी प्रकार हे (मरुतः) वायुवत् बलवान् शत्रुओं के नाशक राष्ट्र के प्राणवत् पुरुषो! आप लोग भी (गावः चित्) गौओं के समान परस्पर प्रेम युक्त होकर, (गावः चित्) और किरणों के समान तेजस्वी होकर, (स-मन्यवः) ज्ञान-युक्त एवं (स-जात्येन) एक ही देश में उत्पन्न होने, एक ही समान उत्पत्ति होने से (स-बन्धवः) अपने बन्धु वर्ग सहित वा सम रूप से बन्धु, होकर (मिथः) परस्पर मिलकर (ककुभिः) दिशाओं के समान गुणों में विशाल वा महान् होकर भी (रिहते) एक दूसरे के साथ स्नेह का वर्त्ताव करें। ककुभ इति दिङ्नाम। ककुह इति महन्नाम (निघ०)

मर्तश्चिद्वो नृतवो रुक्मवक्षस उप भ्रातृत्वमायति।
अधि नो गात मरुतः सदा हि व आपित्वमस्ति निध्रुवि ॥२२॥

भा०—हे (मरुतः) शत्रुओं को मारने वा वायुवत् प्रबल होकर शत्रु को उखाड़ फेंकने में समर्थ वीर पुरुषो! एवं (मरुतः) प्राण के अभ्यासी, ज्ञानी पुरुषो! हे (नृतवः) उत्तम मार्ग में लेजाने वाले नायक जनो! वा युद्ध क्षेत्र में कर चरणादि सञ्चालन करके नाचने की सी क्रिया करने वाले! हे (रुक्म-वक्षसः) वक्षःस्थल पर सुवर्ण के हार आदि आभूषण धारण करने वाले वीर पुरुषो! (मर्तः चित्) साधारण मनुष्य भी (वः भ्रातृत्वम् उप आयति) आप लोगों के भ्रातृत्व को प्राप्त करता है। और (हि) क्योंकि (वः) आप लोगों का भी (आपित्वम्) परस्पर-बन्धुत्व (निध्रुवि) नित्य ध्रुव राजा के अधीन, वा नियम से धारणादि राष्ट्र में (अस्ति) है अतः आप लोग (नः) हम लोगों पर (अधि गात) अध्यक्ष होकर शासन करो। इसी प्रकार विद्वान् (रुक्म-वक्षसः) रुचियुक्त तेजो-

मय आत्मज्ञान को धारण करने से 'रुक्म-वक्षस्' है उनका नित्य ध्रुव परमात्मा में बन्धुत्व भाव है। वे हमें सदा उपदेश करें।

मरुतो मारुतस्य न आ भेषजस्य वहता सुदानवः।
यूयं सखायः सप्तयः॥ २३॥

भा०—वायुएं जिस प्रकार हमें प्राण सम्बन्धी रोगनाशक सामर्थ्य प्रदान करते हैं उसी प्रकार हे (मरुतः) वीर और विद्वान् पुरुषो! (सखायः) परस्पर मित्र, (सप्तयः) वेग से जाने आने वाले, अश्ववत् तीव्रगामी, (सु-दानवः) उत्तम दानशील होकर (मारुतस्य) मरुत् अर्थात् वायुओं से प्राप्त होने योग्य, (भेषजस्य) रोग दूर करने वाले उपाय के समान (मारुतस्य भेषजस्य) वीर पुरुषों से प्राप्त होने योग्य शत्रुनाशक उपाय को (नः आवहत) हमें प्राप्त कराओ। इसी प्रकार प्राण के अभ्यासी विद्वान् लोग हमें मनुष्योपयोगी भेषज औषधादि प्राप्त करावें।

याभिः सिन्धुमवथ याभिस्तूर्वथ याभिर्दशस्यथा क्रिविम्।
मयो नो भूतोतिभिर्मयोभुवः शिवाभिरसचद्विषः॥ २४॥

भा०—जिस प्रकार वायुगण वा प्राणगण (सिन्धुम् अवन्ति) अन्तरिक्ष, प्राण वा देह में रक्तप्रवाह की रक्षा करते, (तूर्वन्ति) रोग नाश करते, (क्रिविं दशस्यन्ति) कर्त्ता आत्मा को बल प्रदान करते, (शिवाभिः ऊतिभिः मयोभुवः) गतियों से नाना सुख प्रदान करते हैं। उसी प्रकार हे वीरो! विद्वान् पुरुषो! आप लोग (याभिः) जिन (ऊतिभिः) रक्षा साधनों से (सिन्धुम्) समुद्र के समान गंभीर सेनापति वा सैन्य समूह की (अवथ) रक्षा करते हो, और (याभिः तूर्वथ) जिन उपायों से शत्रुओं का नाश करते हो, और (याभिः) जिन उपायों से (क्रिविं दशस्यथ) कूप, जलाशय आदि प्रदान करते हो, उन (शिवाभिः ऊतिभिः) कल्याणकारी क्रियाओं से (मयो-भुवः) सुख उत्पन्न करने वाले आप लोग

(असचद्विषः) समवाय रहित शत्रुओं वाले होकर (नः मयः भूत) हमारे लिये सुखकारी होवो ।

यत्सिन्धौ यदसिक्न्यां यत्समुद्रेषु मरुतः सुबर्हिषः ।
यत्पर्वतेषु भेषजम् ॥ २५ ॥

भा०—हे (सु-बर्हिषः) उत्तम यज्ञ वाले और ओषधियों वाले (मरुतः) विद्वान् पुरुषो ! (यत्) जो (भेषजम्) रोगनाशक पदार्थ (सिन्धौ) नदी प्रवाह में और यत् (असिक्न्यां) रात्रि काल में, (यत् समुद्रेषु) जो समुद्रों में, और (यत् पर्वतेषु) जो पर्वतों में रोगनाशक ओषधि हैं उनको (आवहत) प्राप्त कराओ। उत्तम औषधि को जानने वाले विद्वान् सुबर्हिष् मरुत् कहाते हैं। इसी प्रकार देह में रक्त नाड़ियां सिन्धु हैं, नीली असिक्नी हैं, हृदय फुस्फुसादि समुद्र और अस्थिपर्व पर्वत हैं। उनमें प्राप्त रोगनाशक तत्व पापों के बलपर कर्म करते हैं।

विश्वं पश्यन्तो बिभृथा तनूष्वा तेना नो अधि वोचत ।
क्षमा रपो मरुत आतुरस्य न इष्कर्ता विह्रुतं पुनः ॥२६।४०।१।३॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! हे (मरुतः) प्राणवत् सुखकारी जनो ! आप लोग (तनूषु) शरीरों में (विश्वं पश्यन्तः) सब विश्व को ज्ञानपूर्वक देखते हुए (विश्वं बिभृथ) समस्त प्राणी वर्ग वा देह में आत्मा को धारण कराओ, सबको पुष्ट करो। (तेन) उसे ज्ञानपूर्वक देखें, विवेक से (नः अधिवोचत) हमें भी उपदेश करो। (नः) हममें से (आतुरस्य) व्याधिपीड़ित मनुष्य के (रपः) रोग वा दुःखदायी कारण की (क्षमा) शान्ति हो। और (नः) हमारे शरीरों में (वि-ह्रुतम्) विपरीत भाव से अङ्गों में कुटिल भाव आगत्य हो तो उसे (पुनः इष्कर्त्ता) फिर से ठीक कर दो। इति चत्वारिंशो वर्गः ॥ इत्यष्टमे मण्डले तृतीयोऽनुवाकः॥ इति षष्ठेऽष्टके प्रथमोध्यायः समाप्तः ॥

द्वितीयोऽध्यायः । चतुर्थोऽनुवाकः ॥

[२१]

सोभरिः काण्व ऋषिः ॥ १—१६ इन्द्रः । १७, १८ चित्रस्य दानस्तुतिर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, १५ विराडुष्णिक् । १३, १७ निचृदुष्णिक् । ५, ७, ९, ११ उष्णिक् ककुप् । २, १२, १४ पादनिचृत् पंक्तिः । १० विराट् पंक्तिः । ६, ८, १६, १८ निचृत् पंक्तिः । ४ भुरिक् पंक्तिः ॥

वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद्भरन्तोऽवस्यवः ।
वाजे चित्रं हवामहे ॥ १ ॥

भा०—हे (अपूर्व्य) अपूर्व ! सबसे पूर्व विद्यमान ! सबसे अधिक पूर्ण ! तेरे से पूर्व और अधिक पूर्ण दूसरा नहीं । (वयम् उ) हम लोग (अवस्यवः) रक्षा और ज्ञान, प्रेम और आनन्द की कामना करते हुए और (स्थूरं कत् चित्) किसी स्थिर या बड़े आश्रय को (न भरन्तः) न धारण करते हुए (वाजे) संग्राम या ऐश्वर्य के लिये (चित्रं) आश्चर्यकारक (त्वा) तुझ प्रभु वा स्वामी को (हवामहे) पुकारते और तुझ से प्रार्थना करते हैं ।

उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत् ।
त्वामिद्ध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम् ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यः) जो तू (धृषत्) दुष्टों को पराजित करने वाला, (युवा) नित्य बलवान् और (उग्रः) भयंकर होकर (नः चक्राम) हमें प्राप्त होता है, उस (त्वा) तुझको हम (ऊतये) रक्षा के लिये (कर्मन्) प्रत्येक कार्य में (उप ववृमहे) स्वीकार करते हैं । और हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हम (सखायः) तेरे मित्रजन (सानसिम्) सेवा करने योग्य उपास्य वा न्यायपूर्वक ऐश्वर्य का विभाग करने वाले (त्वाम् इत्) तुझको ही (अवितारं) रक्षक रूप से (ववृमहे) वरण करते हैं ।

आ याहीम इन्दवोऽश्वपते गोपत उर्वरापते ।
सोमं सोमपते पिब ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्व-पते) अश्वों, इन्द्रियों और सूर्यादि लोकों के पालक ! स्वामिन् ! हे (गो-पते) गौवों, वाणियों और समस्त भूमियों के पालन करने हारे ! हे (उर्वरा-पते) उत्पादक भूमि के स्वामिन् ! हे (सोम-पते) उत्पन्न अन्न ओषधिवत् शिष्यपुत्रादि एवं जगत् के पालक ! आत्मन् ! प्रभो ! विद्वन् ! तू (आ याहि) आ, प्राप्त हो, (इमे इन्दवः) ये ऐश्वर्य वा, स्नेहयुक्त प्रजाजन हैं तू उनका (पिब) पालन कर ।

वयं हि त्वा बन्धुमन्तमबन्धवो विप्रास इन्द्र येमिम ।
या ते धामानि वृषभ तेभिरा गहि विश्वेभिः सोमपीतये ॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! शत्रुहन्तः ! ऐश्वर्य के देने हारे ! तेजस्विन् ! (वयं विप्रासः) हम विद्वान् लोग (अबन्धवः) विना बन्धु के, निःस्सहाय वा बन्धनरहित, सब सांसारिक बन्धनों, सम्बन्धादि को शिथिल किये हुए (बन्धुमन्तं त्वा) बन्धु वाले तुझको ही (येमिम) हम अपने साथ बांधते हैं । हे (वृषभ) बलशालिन् ! समस्त सुखों की वर्षा करने हारे ! (या ते धामानि) जो तेरे नाना धारण सामर्थ्य, तेज हैं तू (तेभिः विश्वेभिः) उन सबों से (सोमपीतये) ऐश्वर्य वा जगत् के पालन के लिये राजा के समान हमें (सोमपीतये) ओषधि रसवत् आत्मानन्दरस के पान कराने के लिये (आ गहि) प्राप्त हो ।

सीदन्तस्ते वयो यथा गोश्रीते मधौ मदिरे विवक्षणे ।
अभि त्वामिन्द्र नोनुमः ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यथा वयः) जिस प्रकार पक्षीगण (गोश्रीते = गोश्रिते) भूमि पर आश्रित वा सूर्य द्वारा परिपक्व, फलवान् (विवक्षणे) विविध स्कन्धों वाले, वृक्षपर, (मदिरे मधौ) आनन्दमय वसन्त में वा अन्न पर आश्रित, (सीदन्तः अभिनोनुवन्ति)

बैठे हुए सब तरफ कलरव किया करते हैं उसी प्रकार हम भी (ते) तेरे (गो-अंते) वाणियों द्वारा आश्रय करने या सेवने योग्य, वाणी द्वारा स्तुति योग्य, (मदिरे) हर्षजनक (विवक्षणे) विविध प्रकार से कथ-नोपकथन करने एवं धारण करने योग्य (मधौ) मधुर, मधु, ज्ञानमय वेद एवं तेरे रूप में (सीदन्तः) आश्रय लेते हुए (त्वाम् अभि नोनुमः) तेरी ही साक्षात् स्तुति करें। वा, (गोअंते) इन्द्रियों से सेव्य हर्षजनक (विवक्षणे) विविध लोकों को उठाने वाले (मधौ) सुखमय संसार में आश्रय पाते हुए हम जीवगण तेरी स्तुति करते हैं।

अच्छा॑ च त्वैना॒ नम॑सा॒ वदा॑मसि॒ किं मुहु॑श्चि॒द्वि दी॑धयः।
सन्ति॒ कामा॑सो हरिवो द॒दिष्ट्वं स्मो व॒यं सन्ति॑ नो॒ धियः॑॥६॥

भा०—हे (हरिवः) मनुष्यों के स्वामिन्! सूर्यादि लोकों के स्वामिन्! हम (त्वा एना नमसा अच्छ वदामसि) तुझे लक्ष्य कर इस विनय से युक्त वाणी द्वारा प्रार्थना करते हैं। (मुहुः) वार २ तू भी (किं वि दीधयः चित्) क्या विचारता सा रहता है कि भला हम क्यों तेरी स्तुति करते हैं। भगवन्! स्वामिन्! (कामासः सन्ति) हमारी बहुत सी अभिलाषाएं हैं। और (त्वं ददिः) तू ही उन को देने या पूर्ण करने हारा दाता है। (त्वा अच्छ वयं स्मः) हम भी ये तेरे सन्मुख याचक हैं। (नः धियः सन्ति) हमारे उत्तम कर्म, स्तुतियें और उत्तम बुद्धियें भी हैं।

नूत्ना इदि॑न्द्र ते व॒यमू॒ती अ॑भूम न॒हि नू ते॑ अद्रिवः।
वि॒द्मा पु॒रा परी॑णसः॥ ७॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (अद्रिवः) अखण्ड शक्ति के स्वामिन्! (वयम्) हम लोग (ते ऊती) तेरी रक्षा में (नूत्ना इत्) नये ही, सदा (अभूम) बने रहें। हे (अद्रिवः) अखण्डशक्ते! (परी-णसः) सर्वव्यापक, महान् (ते) तेरे विषय में (पुरा) पहले के

समान सब भी हम लोग (नहि नु विद्म) कुछ भी नहीं जान पाये । तू अगम्य, महान्, स्वाधीन, सर्वशक्तिमान् परमेश्वर है ।

विद्मा सखित्वमुत शूर भोज्यमा ते ता वज्रिन्नीमहे ।
उतो समस्मिन्ना शिशीहि नो वसो वाजे सुशिप्र गोमति ॥८॥

भा०—हे (शूर) दुष्टों के नाशक ! हम लोग (ते) तेरे (सखित्वम्) मित्र भाव को (विद्म) जानें (उत) और हे (वज्रिन्) वीर्यवन् ! शक्तिशालिन् ! हम लोग (ते) तेरे (ता) वे नाना प्रकार के ऐश्वर्य तथा (भोज्य) भोग और पालन करने योग्य सुख, ऐश्वर्य तथा बल को (आ ईमहे) तुझ से मांगते और पाते हैं । हे (वसो) सबमें बसे ! सब जीवों को संसार में बसाने वाले ! (उतो) और हे (सुशिप्र) उत्तम सुखप्रद तेज देनेहारे सुखमय स्वरूप ! तू (गोमति वाजे) इन्द्रियों से युक्त आत्मिक ऐश्वर्य, भूमि से युक्त ऐहिक ऐश्वर्य और वेद वाणी से युक्त (अस्मिन्) इस ज्ञान में (नः) हमें (सम् आ शिशीहि) अच्छी प्रकार अनुशासन कर, आशान्वित और सफल तेजस्वी बना ।

यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु वः स्तुषे ।
सखाय इन्द्रमूतये ॥ ९ ॥

भा०—हे (सखायः) मित्रजनो ! (यः) जो प्रभु (पुरा) पहले भी (नः) हमें (इदम् इदम्) ये ये नाना गौ, भूमि, हिरण्य आदि (वस्यः) उत्तम २ ऐश्वर्य (आनिनाय) देता रहा है, उसी (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् प्रभु परमेश्वर को (ऊतये) रक्षा और उपासना करने के लिये मैं (वः स्तुषे) आप लोगों को भी उपदेश करता हूं ।

हर्यश्वं सत्पतिं चर्षणीसहं स हि ष्मा यो अमन्दत ।
आ तु नः स वयति गव्यमश्व्यं स्तोतृभ्यो मघवा शतम् ॥१०॥२॥

भा०—(सः हि स्म मघवा) वह ही निश्चय से परमैश्वर्यवान् है

(यः अमन्दत) जो स्वयं आनन्दमय होकर सब संसार को भी आनन्दित करता है। (सः तु) वही, (मघवा) ऐश्वर्यवान् प्रभु (नः) हम में से (स्तोतृभ्यः) स्तुति करने वाले उपासक जनों के उपकारार्थ (शतम्) अनेक (गव्यन्) गौ और (अश्व्यम्) अश्वादि सम्पन्न नाना धन (आ वयति) निरन्तर दिया करता और बनाता रहता है, सन्तति-परम्परा से उनका तांता लगाये रखता है। मैं उपासक भी (तं) उस ही (हर्यश्वं) सब मनुष्यों और लोकों में व्यापक, किरणों में सूर्य के समान तेजस्वी, (सत्-पतिम्) सज्जनों और सत् कारण, प्रकृति के पालक और (चर्षणी-सहं) सब मनुष्यों को सहनेवाले प्रभु की (स्तुषे) स्तुति करता हूं। इति द्वितीयो वर्गः ॥

त्वया ह स्विद्युजा वयं प्रति श्वसन्तं वृषभ ब्रुवीमहि ।
संस्थे जनस्य गोमतः ॥ ११ ॥

भा०—(गो-मतः) कान, आंख आदि इन्द्रियगण और वाणी से युक्त, अविकलेन्द्रिय (जनस्य) मनुष्य के (संस्थे) समीप (श्वसन्तं) और श्वास लेने वाले प्रत्येक प्राणी के (प्रति) प्रति हे (वृषभ) सुखों की वर्षा करने हारे! (त्वया ह स्वित् युजा) तुझ अपने सहायक के साथ (प्रति ब्रुवीमहि) बात चीत करें। जनसमुदाय या किसी भी प्राणी के साथ बात चीत करते हुए तुझे अपना सहायक साथी जानें, किसी से मिथ्या व्यवहार न करें और न डरें। (२) इसी प्रकार (जनस्य संस्थे) मनुष्यों के संग्राम में (श्वसन्तं) क्रोध से फुफकारते शत्रु के प्रति तुझ सहायक से निर्भय होकर प्रतिवचन कहा करें।

जयेम कारे पुरुहूत कारिणोऽभि तिष्ठेम दूढ्यः ।
नृभिर्वृत्रं हन्याम शूशुयाम चावेरिन्द्र प्र णो धियः ॥ १२ ॥

भा०—हे (पुरुहूत) हे बहुतों से आदरपूर्वक स्तुत! प्रभो! राजन्! हम (कारिणः) संग्राम करने में कुशल, एवं स्वयं भी कार्यकुशल होकर

(कारे) करने योग्य कार्य के अवसर में, वा संग्राम में (द्रुह्यः) दुष्ट बुद्धि वाले पुरुषों को (जयेम) पराजित करें और (अभि तिष्ठेम) उनका मुकाबला करें। (वृत्रं) बढ़ते और विघ्न करने वाले शत्रु को (नृभिः हन्याम) उत्तम नेता जनों से दण्डित करें और (वृधुयाम च) हम बढ़ें, उन्नति करें। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः धियः) हमारी बुद्धियों और कर्मों को (प्र अवेः) अच्छी प्रकार रक्षा कर और आगे बढ़ा।

अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि।

युधेदापित्वमिच्छसे ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (अभ्रातृव्यः) शत्रुरहित (अना) नेता रहित और (सनात्) अनादि काल से (जनुषा) स्वभावतः (अनापिः असि) बन्धुरहित है। तू (युधा इत्) युद्ध द्वारा ही (आपित्वम् इच्छसे बन्धुता को चाहता है। जैसे कोई बलवान् राजा निर्बल पर आक्रमण करके ही उसके द्वारा प्रस्तुत सन्धि से बंधकर उसे अपना मित्र वा सम्बन्धी बना लेता है उसी प्रकार प्रभु परमेश्वर जीवगण को उनके कर्मानुसार (युधा) दण्डित करके ही उनको अपना भक्त बना लेता है, दुष्कर्म के बदले दण्ड पा कर दुःखी होकर वे प्रभु की शरण में ही आते हैं।

नकी रेवन्तं सख्याय विन्दसे पीयन्ति ते सुराश्वः।

यदा कृणोषि नदनुं समूहस्यादित्पितेव हूयसे ॥ १४ ॥

भा०—हे प्रभो ! तू (रेवन्तं) धन से सम्पन्न पुरुष को (सख्याय) अपने मित्रभाव के योग्य (नकिः विन्दसे) कभी नहीं पाता। सम्पन्न जन (सुराश्वः) 'सुरा', मद्य पी कर घमण्ड में फूलने वाले, मत्त जनों के समान 'सुरा' अर्थात् सुख से रमण करने योग्य स्त्री भोग आदि विषय तथा राज्य लक्ष्मी से बढ़ते हुए, मदमत्त होकर (ते पीयन्ति) तेरे भक्त जनों को पीड़ित करते हैं। और जब तू उन को (नदनुं) स्तुति करने वाला (कृणोषि) कर लेता है (आत् इत्) अनन्तर ही तू उन्हें (सम् ऊहसि) अच्छी

प्रकार अपने साथ लेता है, अपनी गोद में उठा लेता है अथवा जब तू (नदनुं) उपदेश करता है, तू उनको अपने साथ संगठित करता और (आत् इत्) अनन्तर ही (पिता इव हूयसे) पिता के समान पुकारा जाता है।

मा ते॑ अ॒माजु॑रो यथा मू॒रास॑ इन्द्र स॒ख्ये त्वाव॑तः ।
नि ष॑दाम॒ सचा॑ सु॒ते ॥ १५ ॥ ३ ॥

भा०—(मूरासः यथा अमा-जुरः) मूढ़, मरणोन्मुख मनुष्य जिस प्रकार रोग पीड़ाओं वा जड़ गृहादि, वा पुत्र पौत्रादि, 'अ-मा' अर्थात् अज्ञान के साथ ही जीवन भर अज्ञानी रहकर बूढ़े हो जाते हैं, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! उसी प्रकार (त्वावतः ते सख्ये) तेरे जैसे, तुझ अद्वितीय प्रभु के मित्र-भाव में रहकर हम लोग वैसे (मा) कभी न हों। अर्थात् हम रोगों में या पुत्र पौत्रादि के मोह में कभी बूढ़े न हों। प्रत्युत (सुते) ऐश्वर्य होजाने पर भी हम (सचा) तेरे साथ मिलकर (नि सदाम) स्थिर होकर विराजें। इति तृतीयो वर्गः ॥

मा ते॑ गोदत्र॒ निर॑राम॒ राध॑स॒ इन्द्र॒ मा ते॑ गृहामहि ।
दृ॒ळ्हा चि॑द॒र्यः प्र मृ॑शा॒भ्या भ॑र॒ न ते॑ दा॒मान॑ आ॒दभे॑ ॥ १६ ॥

भा०—हे (गोदत्र) भूमियों, वाणियों और इन्द्रियों के देने हारे प्रभो ! हम लोग (ते राधसः) तेरे दिये धन-आराधना से (मा निरराम) कभी वञ्चित न हों। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हम (ते) तेरे होकर (मा गृहामहि) दूसरे का ग्रहण न करें। तू (अर्यः) स्वामी होकर (दृढ़ा) दृढ़, स्थिर धनों का (प्र मृश) प्रदान कर वा तू दृढ़ होकर हमें पकड़, और हमारे विषय में निर्णय, विचार कर। (अभि आ भर) हमें उत्तम रीति से पालन कर, सब ओर से हमें पकड़, (ते दामानः) तेरे दान और बन्धन (न आदभे) कभी विनष्ट नहीं हो सकते।

इन्द्रो वा घेदियन्मघं सरस्वती वा सुभगा ददिर्वसु ।
त्वं वा चित्र दाशुषे ॥ १७ ॥

भा०—हे (चित्र) समस्त जगत् में पूज्य एवं आश्चर्यजनक शक्ति वाले प्रभो ! तू (दाशुषे) दानशील, उपासक को (इन्द्रः वा) ऐश्वर्यवान् के समान (घ) ही (इयत् मघं ददिः) इतना धन देता और तू (सरस्वती वा सुभगा) सौभाग्यवती सरस्वती, उत्तम ज्ञान वाली विदुषी स्त्री वा उत्तम जल वाली नदी के समान (इयत् वसु ददिः) जलवत् अपरिमित इतना धन-प्रवाह देने वाला है कि जिसका पारावार नहीं । अत्र वेत्युपमार्थीयः ॥

चित्र इद्राजा राजका इदन्यके यके सरस्वतीमनु ।
पर्जन्य इव ततनद्धि वृष्ट्या सहस्रमयुता ददत् ॥ १८ ॥ ४ ॥

भा०—(यके) जो (सरस्वतीम्) नदीवत् प्रशस्त ज्ञान से सम्पन्न प्रभु के (अनु) ऊपर निर्भर हैं वे (अन्यके राजकाः इत्) और सब छोटे २ राजाओं के तुल्य स्वप्रकाश आत्मा हैं । और (चित्र इत्) सबको चेतना वा ज्ञान देने वाला है वही आश्चर्यकारी प्रभु (राजा) बड़ा भारी राजा के तुल्य, सूर्यवत् प्रकाशमान है । इति चतुर्थो वर्गः ॥

[२२]

सोभरिः काण्व ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१ विराड् बृहती । ३, ५ निचृद् बृहती । ७ बृहती पथ्या । २ विराड् पंक्तिः । ६, १६, १८ निचृत् पंक्तिः । ४, १० सतः पंक्तिः । १४ भुरिक् पंक्तिः । ८ अनुष्टुप् । ९, ११, १७ उष्णिक् । १३ निचृदुष्णिक् । १५ पादनिचृदुष्णिक् । १२ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ अष्टादशर्चं सूक्तम् ॥

ओ त्यमह्व आ रथमद्या दंसिष्ठमूतये ।
यमश्विना सुहवा रुद्रवर्तनी आ सूर्यायै तस्थथुः ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय, अश्वों के स्वामीवत् जनो! हे (सु-हवा) उत्तम नाम और उत्तम वचन वाले, हे (रुद्र-वर्त्तनी) दुष्टों को रुलाने वाले सेनापतिवत् वा दुःख दूर करने वाले, वैद्यवत् कार्य व्यवहार करने वाले स्त्री पुरुषो! आप दोनों (यं) जिस (दंसिष्ठं) दुष्टों के नाशक और खूब कर्म करने में समर्थ, (रथम्) रमणीय, सुखजनक रथवत् गृहस्थ पर (सूर्यायै) सूर्य की कान्ति के समान तेजस्विनी, एवं दीप्तिमती कन्या वा वधू वा सन्तानजनक माता की (ऊतये) रक्षा के लिये (आ तस्थथुः) स्थित होते हैं (वां) हे स्त्री पुरुषो! मैं (त्यं रथम्) उस रमण करने योग्य गृहस्थ रूप रथ का (अह्वे) वर्णन करता हूं।

पूर्वापुषं सुहवं पुरुस्पृहं भुज्युं वाजेषु पूर्व्यम्।
सचनावन्तं सुमतिभिः सोभरे विद्वेषसमनेहसम्॥ २॥

भा०—उसी गृहस्थ रथ का वर्णन करते हैं। हे (सोभरे) प्रजा को उत्तम रीति से भरण पोषण करने में समर्थ पुरुष! मैं तुझे ऐसे उस रथ का उपदेश करता हूं जो (पूर्व-आ-पुषम्) अपने पूर्वज जन को पुष्ट करता, उनके वंश की वृद्धि करता है, (सु-हवं) शुभ नाम वाला, (पुरु-स्पृहं) बहुतों के साथ स्नेह करने वाला, (वाजेषु पूर्व्यम्) ऐश्वर्यों और ज्ञानों से पूर्ण, (सचनावन्तं) आसक्ति और प्रेम से युक्त (भुज्युं) भोगों की कामना वाला और प्रजा सन्तानादि के रक्षा करने वाला, (वि-द्वेषसम्) परस्पर के द्वेष से रहित, (अनेहसम्) पापों, अपराधों से रहित हैं, उस गृहस्थ रूप रथ का मैं (अह्वे) उपदेश करूं। गृहस्थ स्त्री पुरुषों से भिन्न नहीं होता अतः ये सब गुण विशेष स्त्री-पुरुषों के ही हैं। स्त्री पुरुषों को ही ऐसा होना चाहिये।

इह त्या पुरुभूतमा देवा नमोभिरश्विना।
अर्वाचीना स्ववसे करामहे गन्तारा दाशुषो गृहम्॥ ३॥

भा०—(इह) यहां (दाशुषः) आतिथ्यादि देने वाले के (गृहं

गन्तारा) गृह पर जाने वाले, (पुरु-भूतमा) बहुतों के प्रति सद्भावना करने वाले, (देवा) उत्तम गुणों से अलंकृत (त्या) उन दोनों (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों को (अवसे) उत्तम रूप से तृप्त, प्रसन्न करने के लिये, (नमोभिः) अन्नों और आदरयुक्त वचनों से (सु करामहे) सत्कार करें।

युवो रथस्य परि चक्रमीयत ईर्मान्यद्वामिषण्यति।
अस्माँ अच्छा सुमतिर्वां शुभस्पती आ धेनुरिव धावतु ॥ ४ ॥

भा०—गृहस्थ रथ के दो चक्र। हे (ईर्मा) एक शरीर में लगे दो बाहुओं के समान (शुभः-पती) उत्तम व्रतों, कर्मों के पालक, एवं शोभा युक्त पति-पत्नी जनो ! (युवोः रथस्य चक्रम्) तुम दोनों के बने रथ अर्थात् रमणीय रथवत् गृहस्थ का एक 'चक्र' वत् कर्त्ता पुरुष, (परि ईयते) सर्वत्र बाहर जाता है, और (वाम् अन्यत्) तुम दोनों में दूसरा चक्र स्त्री, वह केवल (इषण्यति) चाहना करती है। (वां सु-मतिः) तुम दोनों की उत्तम बुद्धि (धेनुः इव) गौ के समान (अस्मान् अच्छ आ धावतु) हम को भली प्रकार प्राप्त होवे।

रथो यो वां त्रिवन्धुरो हिरण्याभीशुरश्विना।
परि द्यावापृथिवी भूषति श्रुतस्तेन नासत्या गतम् ॥५॥५॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय विद्वान् स्त्री पुरुषो ! (यः) जो (वां) तुम दोनों का (रथः) रथ के समान सुख देने वाला, उत्तम गृहस्थ रूप रथ है वह रथ के समान ही (त्रि-वन्धुरः) तीन ऋण रूप बन्धनों के समान कायिक, मानसिक और वाचिक तीनों बन्धनों से युक्त है, इसमें (हिरण्याभीशुः) हित रमणीय वचन वा सुवर्णादि ही अभीशु अर्थात् लगाम के समान है। वह (श्रुतः) विख्यात, एवं गुरूपदेशादि श्रवण करके विद्या से सम्पन्न होकर (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि के सदृश (परि भूषति) सुशोभित होता है। हे (नासत्या) कभी व्यभिचार आदि असत्याचरण

न करने वाले आप दोनों (तेन) उसी रथ से (आ गतम्) आओ, जाओ, संसार मार्ग की यात्रा किया करो । इति पञ्चमो वर्गः ॥

दशस्यन्ता मनवे पूर्व्यं दिवि यवं वृकेण कर्षथः ।
ता वामद्य सुमतिभिः शुभस्पती अश्विना प्र स्तुवीमहि ॥६॥

भा०—आप दोनों (दशस्यन्ता) दानशील होकर (मनवे) मनुष्यों के हितार्थ, (पूर्व्यं यवं) पूर्वों से उपदिष्ट यव आदि धान्य की (दिवि) भूमिपर (वृकेण कर्षथः) हल द्वारा कृषि करो । हे (शुभः-पती) शोभा-युक्त पति पत्नी ! हे (अश्विना) रथी सारथिवत् पति पत्नी ! (ता) उन (वाम्) तुम दोनों को हम (सु-मतिभिः) उत्तम बुद्धियों और ज्ञानों से (प्र स्तुवीमहि) उत्तम उपदेश करें । विवाह के अनन्तर वृद्धयर्थ जौ के खेत बुवाने की प्रथा की जाती हैं । वर वधू को उत्तम आसन पर विठला कर उनको जौं देकर बैठा दिया जाता है और अधीन कृषकों के प्रतिनिधि-भू त अन्य स्त्री पुरुष उनके चारों ओर घूमते हैं वे दोनों उनकोबोने के लिये जौ बांटते हैं ।

उप नो वाजिनीवसू यातमृतस्य पथिभिः ।
येभिस्तृक्षिं वृषणा त्रासदस्यवं महे क्षत्राय जिन्वथः ॥७॥

भा०—हे (वाजिनी-वसू) ज्ञानवाली, बलवती, और अन्नवती, बुद्धि, सेना और कृषि रूप धन के धनी स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (येभिः) जिन (ऋतस्य पथिभिः) सत्य, ज्ञान, और न्याय के प्राप्त कराने वाले उपायों से (त्रासदस्यवं) भयभीत शत्रुओं को उखाड़ने और दुष्टों को भय देने वाले सैन्य बल के नायक (तृक्षिं) विजिगीषु नायक को (महे क्षत्राय) बड़े भारी धन बल को प्राप्त करने के लिये (जिन्वथः) वढ़ा सकते हो, आप दोनों (वृषणा) बलवान् होकर उन ही (ऋतस्य पथिभिः) सत्य, न्या-यादि मार्गों से (नः उप यातम्) हमें प्राप्त होवो ।

अयं वामद्रिभिः सुतः सोमो नरा वृषण्वसू ।
आ यातं सोमपीतये पिबतं दाशुषो गृहे ॥ ८ ॥

भा०—हे (वृषण्वसू) उत्तम सुख की वर्षा करने वाले, बलवान् संघों के स्वामी जनो ! हे (नरा) उत्तम नायक नायिका जनो ! (वाम्) आप दोनों का (अयम्) यह (सुतः) उत्पादित ऐश्वर्य (अद्रिभिः) मेघों से उत्पादित वा पाषाणादि से पीस कर तैयार किये अन्न के समान (अद्रिभिः) अखण्ड शस्त्रों, बलों से उत्पन्न किया जाता है । आप दोनों (सोम-पीतये) ऐसे ऐश्वर्य के उपभोग और पालन के लिये (दाशुषः गृहम्) दानशील यज्ञकर्त्ता पुरुष के गृह पर (आ यातम्) आवो और (पिबतम्) उसका पालन और उपभोग करो ।

आ हि रुहतमश्विना रथे कोशे हिरण्यये वृषण्वसू ।
युञ्जाथां पीवरीरिषः ॥ ९ ॥

भा०—हे (अश्विना) वेगवान् साधनों के स्वामी जनो ! हे (वृष-ण्वसू) हे बलवान् पुरुषों के अधीन जनो ! या बलशाली पुरुषों के बीच बसने वाले ! आप दोनों (रथे) रथ के समान सुखजनक (हिरण्यये) सुवर्ण से पूर्ण (कोशे) कोश, खजाने पर (आरुहतम्) स्थिर होवो । और (पीवरीः इषः) सम्पन्न अन्नों, और अभिलाषाओं को (युञ्जाथाम्) प्रदान करो ।

याभिः पक्थमवथो याभिरध्रिगुं याभिर्बभ्रुं विजोषसम् ।
ताभिर्नो मक्षू तूयमश्विना गतं भिषज्यतं यदातुरम् ॥१०॥३॥

भा०—हे (अश्विना) वेगवान्, अश्व रथादि के स्वामी जनो ! आप दोनों (याभिः) जिन उपायों से (पक्थम् अवथः) पके अन्न की रक्षा करते हो, और (याभिः) जिन उपायों से (अध्रिगुं अवथः) अस्थिर रूप से गमन करने वाले, निर्बल बालकवत् दीन जन की रक्षा करते हो, और (याभिः) जिन उपायों और शक्तियों से (विजोषसम्) विशेष

प्रीति युक्त (वभ्रुं) भरण पोषणकारी माता पितावत् पालक एवं सेवक जन की रक्षा करते हो, (ताभिः) इन सब शक्तियों वा साधनों सहित (नः) हमें (मक्षु तूयम्) शीघ्रातिशीघ्र (आ गतम्) आओ और (यत् आतुरम्) जो पीड़ित जन हो उसके (भिषज्यतम्) दुःखों को दूर करो। इति षष्ठो वर्गः ॥

यदध्रिगावो अध्रिगू इदा चिदह्नो अश्विना हवामहे ।
वयं गीर्भिर्विपन्यवः ॥ ११ ॥

भा०—हे (अध्रि-गू) इन्द्रियों पर अधिकार करने वाले! हे (अश्विना) अश्ववत् वेगवान् मन पर वश करने वाले जनो! (यत्) जब हम (अध्रि-गावः) वाणियों पर वशी (विपन्यवः) स्तुतिकर्त्ता हो (अन्हः चित् इदा) दिन के उसी उत्तम समय में आप दोनों की (गीर्भिः हवामहे) वाणियों से स्तुति करें, आप दोनों को आदर से बुलावें। उत्तम वाणियों से आप दोनों को उपदेश करें।

ताभिरा यातं वृषणोप मे हवं विश्वप्सुं विश्ववार्यम्। इषा मंहिष्ठा पुरुभूतमा नरा याभिः क्रिविं वावृधुस्ताभिरा गतम् १२

भा०—हे (वृषणा) बलवान्, सुखों की वृष्टि करने वाले मेघ पवनवत् स्त्री पुरुषो! आप लोग (विश्व-प्सुं) नाना रूप के (विश्ववार्यं) सब साधनों से सम्पन्न, सब कष्टों के वारण करने वाले, (मे हवं) मेरे यज्ञ को आप (ताभिः) उन शक्तियों सहित (आयातम्) आवो (याभिः) जिनसे आप दोनों (इषा) इच्छावान्, (मंहिष्ठा) दानशील (पुरु-भूतमा) अधिक सामर्थ्यवान् (नरा) नायक होकर (क्रिविं वावृधुः) शत्रुनाशक स्वामी की वृद्धि करते हो, (ताभिः) उन सहित ही (आ गतम्) हमारे पास भी आवो।

ताविदा चिदहानां तावश्विना वन्दमान उप ब्रुवे।
ता ऊ नमोभिरीमहे ॥ १३ ॥

भा०—(अह्नां इदा चित्) दिनों के वर्त्तमान काल में, सब दिनों, (तौ) उन दोनों की मैं स्तुति करूं और (तौ अश्विनौ) उन दोनों जितेन्द्रिय पुरुषों को (वन्दमानः) नमस्कार करता हुआ (उप ब्रुवे) उनके समीप जाकर वचन कहूं। (नमोभिः) हम लोग आदर युक्त वचनों से (ता उ ईमहे) उनसे प्रार्थना करें।

ताविद्दोषा ता उषसि शुभस्पती ता यामन्रुद्रवर्तनी ।
मा नो मर्ताय रिपवे वाजिनीवसू परो रुद्रावति ख्यतम् ॥१४॥

भा०—(तौ इत् दोषा) वे दोनों रात्रि में, (ता उषसि) वे दोनों, प्रभात वेला में, (शुभः-पती) शुभ गुण, कर्म और शोभा और अन्न जलादि के पालक, एवं शोभा युक्त पति पत्नी हों। (यामन्) मार्ग में, वा नियम व्यवस्थाओं में (ता) वे दोनों (रुद्र-वर्त्तनी) दुष्टों को रुलाने और रोग दूर करने और उपदेष्टा आदि के समान उत्तम व्यवहार करने वाले हों। हे (वाजिनी-वसू) बल, ज्ञान, अन्नादि युक्त प्रजा के धनी जनो ! हे (रुद्रौ) दुष्टों को रुलानेवालो ! आप दोनों (नः) हमें (रिपवे मर्त्ताय) शत्रु या पापी मनुष्य के लाभ या वृद्धि के लिये (मा अति ख्यतम्) मत परि त्याग करें।

आ सुग्म्याय सुग्म्यं प्राता रथेनाश्विना वा सक्षणी ।
हुवे पितेव सोभरी ॥ १५ ॥ ७ ॥

भा०—हे (सक्षणी) एक साथ रहने वाले, (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (प्रातः) प्रातःकाल, (सुग्म्याय) सुख प्राप्त करने के लिये (सुग्म्यं) सुखपूर्वक (रथेन) रमण योग्य, सुख से सेवने योग्य, गृहस्थ रूप रथ से (आ) जीवन व्यतीत करो। मैं (सोभरी) उत्तम रीति से पोषण करने वाला (पिता इव) पिता के समान तुम दोनों को (हुवे) बुलाता हूं और उपदेश करता हूं। इति सप्तमो वर्गः ॥

मनोजवसा वृषणा मदच्युता मक्षुङ्गमाभिरूतिभिः ।
आरात्ताच्चिद्भूतमस्मे अवसे पूर्वीभिः पुरुभोजसा ॥ १६ ॥

भा०—हे (मनो-जवसा) ज्ञानपूर्वक एवं मन के वेग से जाने वाले, (वृषणा) बलवान्, एवं वीर्यसेचन में समर्थ, पूर्ण युवा, (मद-च्युता) हर्ष से जाने वाले, वा शत्रुओं के मद को दूर करने में समर्थ, और (पुरु-भोजसा) बहुतों की रक्षा करने वाले आप दोनों (अस्मे अवसे) हमारी रक्षा के लिये, (पूर्वीभिः) पूर्व विद्यमान, बल से पूर्ण (मक्षुं-गमाभिः) अति वेग से जाने वाली (ऊतिभिः) रक्षाकारिणी सेनाओं सहित (आरात्तात् चित्) हमारे अति समीप और दूर भी (भूतम्) होवो।

आ नो अश्वावदश्विना वर्तिर्यासिष्टं मधुपातमा नरा ।
गोमद्दस्रा हिरण्यवत् ॥ १७ ॥

भा०—हे (मधु-पातमा) मधुर अन्न जल, आदि हर्षदायक पदार्थ और ज्ञान के उपभोग और रक्षा करने वाले (नरा) उत्तम स्त्री पुरुषो ! हे (अश्विना) जितेन्द्रिय जनो ! आप दोनों (नः) हमारे (अश्वावत्) अश्वों, (गोमद्) गौओं और (हिरण्यवत्) सुवर्ण से समृद्ध (वर्त्तिः) गृह में (आ यासिष्टम्) आओ, और हमारा आतिथ्य स्वीकार करो ।

सुप्रावर्गं सुवीर्यं सुष्ठु वार्यमनाधृष्टं रक्षस्विना ।
अस्मिन्ना वामायाने वाजिनीवसू विश्वा वामानि धीमहि॥१८॥८॥

भा०—हे (वाजिनी-वसू) ज्ञान, बल, अन्न ऐश्वर्यादियुक्त, विद्या, सेना, कृषि, राज्यलक्ष्मी आदि के धनी स्त्री पुरुषो ! हम लोग (रक्षस्विना अनाधृष्टं) 'रक्षस्' अर्थात् नाना दुष्ट जनों के सर्दार द्वारा भी बलात्कार से न पराजित होने वाला (सुष्ठु) उत्तम (वार्यं) धन और (सु-प्रावर्गं) शत्रुओं को वर्जन करने वाला (सु-वीर्यं) उत्तम बल युक्त, सैन्य और (वाम् आयाने) आप दोनों के आजाने पर (अस्मिन्) इस राष्ट्र में (विश्वा

चामानि) समस्त उत्तम पदार्थ हम लोग (आ धीमहि) धारण करें।
इत्यष्टमो वर्गः ॥

[२३]

विश्वमना वैयश्व ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, १०, १४—१६, १९—२२, २६, २७ निचृदुष्णिक्। २, ४, ५, ७, ११, १७, २५, २९, ३० विराडुष्णिक्। ६, ८, ९, १३, १८ उष्णिक्। १२, २३, २८ पादनिचृदुष्णिक्। २४ आर्ची स्वराडुष्णिक्॥ त्रिंशदृचं सूक्तम्॥

ईळि॑ष्वा॒ हि प्र॑ती॒व्यं१॒॑ यज॑स्व जा॒तवे॑दसम्।
च॒रि॒ष्णुधू॑म॒मगृ॑भीतशोचिषम्॥ १॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि (प्रतीव्यः) प्रत्यक्ष में कान्तियुक्त (जातवेदाः) प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ में विद्यमान, (चरिष्णु-धूमः) फैलने वाले धूम वाला, (अगृभीत-शोचिः) न स्पर्श करने योग्य ज्वाला वाला होता है उसी प्रकार हे मनुष्य तू (प्रतीव्यं) प्रत्यक्षतः कान्तिमान् तेजोमय (जातवेदसम्) समस्त पदार्थों को जानने वाले, (चरिष्णु-धूमम्) विश्वभर में व्यापक सञ्चालक शक्ति वाले, (अगृभीत-शोचिषम्) अपरिचित वा प्रत्यक्ष चक्षुओं से न दीखने योग्य तेज वाले, प्रभु परमेश्वर की (हि) अवश्य (ईळिष्व) उपासना कर।

दा॒मानं॑ विश्वचर्षणे॒ऽग्निं वि॑श्वमनो गि॒रा।
उ॒त स्तु॒षे विष्प॑र्धसो॒ रथा॑नाम्॥ २॥

भा०—हे (विश्व-चर्षणे) संसार भर में प्रविष्ट, व्यापक एक ही महान् प्रभु को देखने वाले! हे (विश्व-मनः) उसी सर्वव्यापक, कामना न करने वाले, उसमें निमग्न मन वाले! तू (गिरा) वाणी से (वि-स्पर्धतः) विविध प्रकार की स्पर्द्धाएं करने वाले, नाना ऐश्वर्यों के इच्छुक जीव को

(रथानां) नाना रमण करने योग्य देहों के (दामानं) देने वाले (अग्निं) अग्निवत् तेजस्वी और व्यापक परमेश्वर की (उत) भी (स्तुषे) स्तुति कर।

येषामाबाध ऋग्मिय इषः पृक्षश्च निग्रभे।
उपविदा वह्निर्विन्दते वसु ॥ ३ ॥

भा०—(ऋग्मियः) वेदमन्त्रों से स्तुति करने योग्य, (वह्निः) जगत् को धारण करने वाला, (आ-बाधः) दुष्ट पुरुषों को सब प्रकार से पीड़ित करने वाला होकर (इषः पृक्षः च) उनकी इच्छा और अन्नादि को भी (नि-ग्रभे) रोक देता है, उन पर प्रतिबन्ध लगा देता है। वह (उप-विदा) विवेक पूर्वक (वसु विन्दते) धन प्राप्त कराता है। (२) राजा अग्रणी नायक होने से 'अग्नि' है। वह स्तुति योग्य, दुष्टों का बाधक होता, अन्न, सेनादि का निग्रह, व्यवस्था करता, प्रजा के साथ आमन्त्रणा करके करद्वारा ऐश्वर्य संग्रह करता है।

उदस्य शोचिरस्थाद्दीदियुषो व्य१जरम्।
तपुर्जम्भस्य सुद्युतो गणश्रियः ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार (अस्य शोचिः उत् अस्थात्) इस भौतिक अग्नि की ज्वाला ऊपर को उठती है, वह (वि-अजरम्) प्रत्येक पदार्थ को विच्छिन्न करके दूर २ तक फेंकती या फैला देती हैं, (तपुः-जम्भः) अग्नि का प्रताप ही मानो उसकी दाढ़ों के समान काष्ठादि को खाजाने का साधन है। वह (सु-द्युत्) उत्तम कान्ति युक्त (गण-श्रीः) गणनीय, दर्शनीय शोभा से युक्त होता है। इसी प्रकार (अस्य) इस (सु-द्युतः) उत्तम कान्तियुक्त, तेजस्वी, (गण-श्रियः) अनुयायी सैन्य गण का आश्रयणीय, उनके बीच में शोभावान् (दीदियुषः) देदीप्यमान, (अस्य) इस राजा वा प्रभु का (वि-अजरम्) विशेष रूप से अविनाशी वा विविध प्रकार से शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाला, (शोचिः) तेजः (उत् अस्थात्) सर्वोपरी उठता है और विराजता है। (तपुर्जम्भस्य) शत्रुसन्तापक शस्त्रास्त्र

बल ही उसकी जम्भ या दंष्ट्रा के समान दुष्टों शत्रुओं को हड़प जाने का साधन होता है। (३) इसी प्रकार प्रभु की अविनश्वर दीप्ति सर्वोपरि विराजती है। वह विकृति आदि गण में विराजता और उनका आश्रय है। दुष्टों का सन्तापक बल ही उसकी महान् दाढ़ है, जिनमें दुष्ट पिसते, नाना नरक भोगते हैं। वह स्वभावतः उत्तम कान्तिमान् है।

उदु तिष्ठ स्वध्वर स्तवा॑नो दे॒व्या कृपा।
अ॒भि॒ख्या भा॒सा बृ॑ह॒ता शु॑शु॒क्वनिः॑ ॥ ५ ॥ ९ ॥

भा०—हे अग्रणी नायक ! हे प्रभो ! राजन् ! विद्वन् ! हे (स्वध्वर) उत्तम अविनाशिन् ! उत्तम हिंसारहित ! प्रजापालक ! तू (देव्या कृपा) तेजोयुक्त प्रजा को सुख देने वाली राजशक्ति से और (अभि-ख्या) सब ओर स्पष्ट घोषणा करने वाली वा प्रसिद्ध वाणी और (भासा) कान्ति और (बृहता) बड़े भारी ज्ञान और बल से युक्त होकर (शुशुक्वनिः) निरन्तर अग्निवत् शुद्ध, कान्तिमान्, तेजस्वी, और (स्तवानः) स्तुति किया जाकर वा अन्यों को उपदेश वा आज्ञावचन कहता हुआ (उत् तिष्ठ) उत्तम आसन पर विराज। इति नवमो वर्गः ॥

अग्ने॑ या॒हि सु॑श॒स्तिभि॑र्ह॒व्या जुह्वा॑न आ॒नुषक्।
यथा॑ दू॒तो ब॒भूथ॑ हव्य॒वाह॑नः ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि (सुशस्तिभिः हव्या आनुषक् जुह्वानः) उत्तम वेद-स्तुतियों सहित उत्तम हव्यों का ग्रहण करता हुआ (दूतः) तापकारी होकर (हव्य-वाहनः भवति) हव्य, चरु आदि पदार्थों को दूर २ तक पहुंचाने में समर्थ होता है उसी प्रकार हे (अग्ने) राजन् ! विद्वन् ! तू भी (सु-शस्तिभिः) उत्तम शासनों द्वारा (आनुषक्) निरन्तर (हव्या जुह्वानः) राजा के ग्रहणयोग्य करों और विद्वानों के ग्राह्य उत्तम अन्नादि पदार्थों को लेता हुआ (दूतः यथा) दूत, संदेश हर के समान (हव्य-

वाहनः बभूथ) ग्राह्य वचन और ज्ञान को पहुंचाने वाला होता है। वह तू (याहि) हमें प्राप्त हो।

अ॒ग्निं वः॑ पू॒र्व्यं हु॑वे॒ होता॑रं चर्षणी॒नाम्।
तम॒या वा॒चा गृ॑णे॒ तमु॑ वः स्तुषे ॥ ७ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! मैं (वः) आप लोगों को (चर्षणीनां) ज्ञान को देखने वाले इन्द्रियों के (होतारं) बल देने वाले आत्मा के समान (चर्षणीनां) ज्ञानद्रष्टा ऋषियों के (पूर्व्यं) सब से पूर्व विद्यमान ज्ञान और शक्ति में परिपूर्ण (अग्निः) उस ज्ञानी प्रभु का (वः हुवे) तुमको ज्ञानोपदेश करता हूं। और (तम्) उस प्रभु की मैं (अया वाचा) इस व्यक्त वेदवाणी से (गृणे) स्वयं स्तुति करता हूं और (तम् उ वः स्तुषे) उसका ही मैं आप लोगों को उपदेश करता हूं।

य॒ज्ञेभि॒रद्भु॑तक्रतुं॒ यं कृ॒पा सू॒दय॑न्त॒ इत्।
मि॒त्रं न जने॒ सुधि॑तमृ॒ताव॑नि ॥ ८ ॥

भा०—(ऋतावनि जने) सत्य, वेदज्ञान एवं न्यायमार्ग का सेवन करने वाले मनुष्य के बीच (सुधितम्) उत्तम रीति से धारित एवं (मित्रं न) मित्र, स्नेही जन के समान, प्राणप्रद, प्राणरक्षक रूप से (कृपा) अपने दया एवं जगद्-रचनादि सामर्थ्य से (अद्भुत-क्रतुं) अद्भुत ज्ञान और कर्म वाले (यं) जिसकी ओर सब उपासकजन (यज्ञेभिः) यज्ञों, उपासनाओं से (सूदयन्त इत्) अति द्रवित, प्रेमार्द्र होकर जलोंवत् स्वभावतः बह ही जाते हैं मैं उसीका तुमको उपदेश करता हूं। उसीकी स्तुति करता हूं।

ऋ॒तावा॑नमृताय॒वो य॒ज्ञस्य॒ साध॑नं गि॒रा।
उपो॑ एनं जुजुषु॒र्नम॑सस्प॒दे ॥ ९ ॥

भा०—जिस प्रकार (ऋतायवः) अन्नार्थी (नमसः पदे) अन्न के पाने के लिये (ऋतावानं जुजुषुः) अन्न के स्वामी की सेवा करते हैं उसी

प्रकार (ऋतायवः) सत्य ज्ञान की आकांक्षा करने वाले, पुरुष (यज्ञस्य साधनम्) यज्ञ को साधने वाले, (ऋतावानम्) सत्य ज्ञान के दाता, (एनं) उसको ही (नमसः पदे) आदर नमस्कार के योग्य प्रतिष्ठा पद पर स्थापित (एनं) उसकी (गिरा) वेदवाणी से ही (उपो जुजुषुः) उपासना पूर्वक सेवन और प्रेम करें।

अच्छा नो अङ्गिरस्तमं यज्ञासो यन्तु संयतः।

होता यो अस्ति विक्ष्वा यशस्तमः ॥ १० ॥ १० ॥

भा०—(यः) जो (विक्षु) प्रजाओं में (होता) सब सुखों का दाता और (यशःतमः) कीर्त्ति और बल में सबसे अधिक (अस्ति) है। उसी (अंगिरस्तमं) सर्वश्रेष्ठ, ज्ञानी और तपस्वितम पुरुष को (अच्छा) प्राप्त कर (यज्ञासः) यज्ञ और संगठित दल भी (सं-यतः सन्तु) सुसम्बद्ध होकर आगे बढ़ें। इति दशमो वर्गः ॥

अग्ने तव त्ये अजरेन्धानासो बृहद्भाः।

अश्वा इव वृषणस्तविषीयवः ॥ ११ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक! स्वामिन्! हे (अजर) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने में समर्थ? हे अविनाशिन्! (तव) तेरे (त्ये) वे (इन्धानासः) देदीप्यमान (तविषीयवः) बलवान्, (वृषणः) मेघवत् सुखों की और शत्रुओं पर शस्त्रों की वर्षा करने वाले (बृहद्-भाः) बड़े २ प्रकाशों से चमकने वाले और (अश्वाः इव) अश्वों वा सूर्यों के समान सुदृढ़ हैं।

स त्वं न ऊर्जांपते रयिं रास्व सुवीर्यम्।

प्राव न स्तोके तनये समत्स्वा ॥ १२ ॥

भा०—हे (ऊर्जां पते) अन्नों और बलों के स्वामिन्! (सः त्वं) वह तू (नः) हमें (सुवीर्यं) उत्तम वीर्ययुक्त (रयिं) ऐश्वर्य (रास्व)

प्रदान कर। (समत्सु) संग्रामों में (नः तोके तनये) हमारे पुत्र पौत्रों के निमित्त हमारे धन की (प्र-अव) अच्छी प्रकार रक्षा कर।

यद्वा उ विश्पतिः शितः सुप्रीतो मनुषो विशि।
विश्वेदग्निः प्रति रक्षांसि सेधति ॥ १३ ॥

भा०—(यत् वै उ विश्पतिः) जब भी प्रजाओं का पालक (शितः) तीक्ष्ण, बलवान् (सुप्रीतः) अच्छी प्रकार तृप्त, प्रसन्न होकर (मनुषः विशि) मनुष्यों के प्रजाजन के बीच विराजता है वह (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी नायक (विश्वा इत् रक्षांसि प्रति सेधति) समस्त राक्षसों को उनका मुकाबला करके दूर करता है, उनका नाश कर देता है।

श्रुष्ट्यग्ने नवस्य मे स्तोमस्य वीर विश्पते।
नि मायिनस्तपुषा रक्षसो दह ॥ १४ ॥

भा०—हे (वीर विश्पते) शूरवीर प्रजा के पालक! (अग्ने) तेजस्विन्! तू (मे स्तोमस्य) मेरे स्तुत्य वचन को (श्रुष्टी) श्रवण करके शीघ्र (मायिनः रक्षसः) मायावी, राक्षस, दुष्ट पुरुष को (नि दह) भस्म कर।

न तस्य मायया चन रिपुरीशीत मर्त्यः।
यो अग्नये ददाश हव्यदातिभिः ॥ १५ ॥ ११ ॥

भा०—(यः) जो (अग्नये) अग्नि में (हव्य-दातिभिः) हव्य चरु की आहुतियों द्वारा (ददाश) प्रदान करता है उसी प्रकार जो प्रजाजन (अग्नये) अग्रणी, तेजस्वी नायक राजा को (हव्य-दातिभिः) ग्राह्य कर-आदि अंशों से (ददाश) उसको प्रदान करता है (तस्य) उस पर (रिपुः मर्त्यः) शत्रु मनुष्य (मायया चन) माया, कुटिल बुद्धि से भी (न चन ईशीत) कभी अधिकार नहीं कर सकता। इसी प्रकार जो विद्वानों को अन्नादि से पालता है शत्रु उससे बुद्धि बल से बढ़ नहीं सकता। परमेश्वर के प्रति स्तुत्य वचनों से जो अपने को सौंपता है शत्रु उस पर छल कपट से वश नहीं कर सकता है। इत्येकादशो वर्गः ॥

व्यश्वस्त्वा वसुविदमुक्षण्युरप्रीणादृषिः ।
महो राये तमु त्वा समिधीमहि ॥ १६ ॥

भा०—(उक्षण्युः) जलसेचक मेघ की इच्छा करने वाला, (ऋषिः) तत्वदर्शी पुरुष (वि-अश्वः) विशेष विद्वान् होकर (वसु-विदम्) जीवन को प्राप्त कराने वाले सूर्य या अग्नि को (अप्रीणात्) हव्यों से तृप्त करता है, उसी प्रकार (उक्षण्युः) समस्त संसार को वहन करने और सुखों के वर्षक प्रभु को चाहने वाला (वि-अश्वः) विशेष सुख आनन्द के भोगने या प्राप्त करने वाला (ऋषिः) तत्वदर्शी पुरुष (वसु-विदम्) समस्त ऐश्वर्यों के देने वाले प्रभु को (अप्रीणात्) प्रसन्न करे, उसकी प्रार्थना करे। हम भी (महः राये) बड़े भारी ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये (तम् उ त्वा) उस तुझको (सम् इधीमहि) अच्छी प्रकार अपने हृदय में, कुण्ड में अग्नि के समान प्रज्वलित करें।

उशना काव्यस्त्वा नि होतारमसादयत् ।
आयजिं त्वा मनवे जातवेदसम् ॥ १७ ॥

भा०—(काव्यः) कवि, विद्वान् क्रान्तदर्शी पुरुषों का पुत्र वा शिष्य अथवा स्वयं कवि, सर्वोपदेष्टा प्रभु का उपासक (उशनाः) कामनावान् जीव (मनवे) मनुष्यमात्र के कल्याण के लिये (होतारं) सर्व सुखदाता, (आयजिं) सब प्रकार से पूज्य (जात-वेदसं) सर्वज्ञानी, सर्वैश्वर्यवान् (त्वा) तुझे ही (वि-असादयत्) सर्वात्मना प्राप्त करे।

विश्वे हि त्वा सजोषसो देवासो दूतमक्रत ।
श्रुष्टी देव प्रथमो यज्ञियो भुवः ॥ १८ ॥

भा०—हे (देव) प्रकाशस्वरूप! ज्ञानैश्वर्य के देने वाले! (स-जोषसः) समान प्रीति से युक्त (विश्वे हि देवासः) सब विद्वान् तेरी कामना करने वाले और तुझे चाहने वाले जन (त्वा) तुझ को (दूतम् अक्रत) अपना संदेशहर, ज्ञानदाता स्वीकार करते हैं। हे (देव) देव ! तू ही

(श्रुष्टी) शीघ्र (प्रथमः) सब से प्रथम (यज्ञियः भुवः) सर्वोपास्य है। (२) इसी प्रकार विद्वान् लोग अग्नि, विद्युत् को एवं विद्वान् ज्ञानी को अपना संदेशहर दूत बनाते हैं। वह अग्नि ही प्रथम यज्ञ का साधन बनाया गया है।

इमं घा वीरो अमृतं दूतं कृण्वीत मर्त्यः।
पावकं कृष्णवर्तनिं विहायसम् ॥ १९ ॥

भा०—(वीरः मर्त्यः) विशेष विद्वान् मनुष्य (पावकं) पवित्र करने वाले (कृष्ण-वर्त्तनिम्) पापों के नाशक व्यवहार वाले वा चित्ताकर्षक मार्ग वाले, वा (कृष्ण-वर्त्तनिं) आकर्षणशील सूर्यादि लोकों को अपने २ मार्गों से संचालन करने वाले, (विहायसं) महान् आकाशवत्, व्यापक (इमं घ) इस प्रभु को ही (दूतं) उपास्य (कृण्वीत) बनावे। (२) अग्नि भी शोधक होने से पावक है, कृष्णधूम को उत्पन्न करता वा जहां से गुजरता है जलाकर काला करता है वा मनुष्य आकर्षण करने वाले व्यापक विद्युत् को संदेशहर दूत बनावे, टेलिफोन, तार, रेडियो आदि यन्त्रों में प्रयोग करे।

तं हुवेम यतस्रुचः सुभासं शुक्रशोचिषम्।
विशामग्निमजरं प्रत्नमीड्यम् ॥ २० ॥ १२ ॥

भा०—(सु-भासं) उत्तम कान्तिमान्, (शुक्र-शोचिषम्) शुद्ध प्रकाशवान्, अग्नि के समान प्रकाशस्वरूप, (तम्) उसी (विशाम् अग्निम्) प्रजाओं या देह में प्रविष्ट होने वाले जीवों को अग्रणी नायकवत् कर्म व्यवस्था में संचालक, (अजरं) अविनाशी, (प्रत्नम्) सदातन, (ईड्यम्) स्तुत्य प्रभु को हम (यत-स्रुचः) स्रुच् आदि यज्ञ साधनों के समान अपने प्राणों को संयम करके (हुवेम) उसकी उपासना करें। इति द्वादशो वर्गः॥

यो अस्मै हव्यदातिभिराहुतिं मर्तोऽविधत्।
भूरि पोषं स धत्ते वीरवद्यशः ॥ २१ ॥

भा०—(यः) जो (मर्तः) मनुष्य (अस्मै) इस अग्नि की (हव्य-दातिभिः) चरु की आहुतियों द्वारा (आहुतिं) आहुति, यज्ञ, (अविधत्) करता है, इसी प्रकार जो (अस्मै) उस प्रभु का (हव्य-दातिभिः) स्तुत्य वचनों द्वारा (आहुतिं) प्रार्थनोपासना (अविधत्) करता है, (सः) वह (भूरि-पोषं धत्ते) बहुत पुष्टिकारक अन्न, धन धारण करता है और (वीर-वद् यशः धत्ते) वीर पुत्रादि से युक्त यश भी प्राप्त करता है। वह पुत्रवान् यशस्वी, अन्नवान् और समृद्धिमान् हो जाता है।

प्रथमं जातवेदसमग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम्।
प्रति स्रुगेति नमसा हविष्मती ॥ २२ ॥

भा०—जिस प्रकार (यज्ञेषु अग्निं प्रति हविष्मती स्रुग् नमसा प्रति एति) यज्ञों में अग्नि को लक्ष्य कर हविष्य से युक्त स्रुक्, नमसा नमस्कार-युक्त मन्त्र से आता है उसी प्रकार (यज्ञेषु) समस्त उपास्य एवं सत्संग-योग्य पूज्य जनों में (पूर्व्यम्) पूर्व एवं ज्ञानशक्ति आदि में पूर्ण (प्रथमं) सबसे प्रथम विद्यमान (जातवेदसम्) ज्ञानवान्, सर्वैश्वर्यवान्, सर्वज्ञ (अग्निम्) प्रकाशस्वरूप प्रभु को लक्ष्य कर (हविष्मती) ज्ञान से युक्त (स्रुक्) बुद्धि, वाणी (नमसा) आदरपूर्वक (प्रति एति) उसी को प्राप्त होती और उसी का ज्ञान करती है।

आभिर्विधेमाग्नये ज्येष्ठाभिर्व्यश्ववत्।
मंहिष्ठाभिर्मतिभिः शुक्रशोचिषे ॥ २३ ॥

भा०—हम (शुक्र-शोचिषे) शुद्ध तेज वाले, प्रकाशस्वरूप (अग्नये) ज्ञानस्वरूप प्रभु के लिये (व्यश्ववत्) विशेष रूप से संयतेन्द्रिय वा ज्ञानवान् होकर (ज्येष्ठाभिः) सर्वश्रेष्ठ (मंहिष्ठाभिः) अतिपूज्य, ज्ञान-प्रद (आभिः) इन (मतिभिः) वाणियों और बुद्धियों से (विधेम) उपासना करें।

नूनमर्च विहायसे स्तोमेभिः स्थूरयूपवत् ।
ऋषे वैयश्व दम्याग्नये ॥ २४ ॥

भा०—हे (वैयश्व ऋषे) जितेन्द्रिय ज्ञानदर्शिन् मनुष्य ! तू (दम्याय अग्नये) गृह में स्थापन करने योग्य गार्हपत्याग्नि के समान (दम्याय अग्नये) सब संसार को दमन करने में समर्थ, ज्ञानवान् (विहायसे) महान् प्रभु को (स्थूर-यूपवत्) बड़े २ यूपों से युक्त यज्ञ के समान (नूनम्) अवश्य (स्तोमेभिः) वेदमन्त्रों से (अर्च) उपासना किया कर। अध्यात्म में—(स्थूरयूपवत्) स्थिर आत्मा वा सूर्य के समान सर्वप्रकाशक प्रभु की स्तुति किया कर।

अतिथिं मानुषाणां सूनुं वनस्पतीनाम् ।
विप्रा अग्निमवसे प्रत्नमीळते ॥ २५ ॥ १३ ॥

भा०—(मानुषाणाम्) मननशील विद्वानों के बीच (अतिथिम्) अतिथिवत् पूज्य (वनस्पतीनाम्) तेज के पालक, सूर्यों और वनस्पतियों के (सूनुं) सञ्चालक और उत्पादक (प्रत्नम् अग्निम्) सनातन ज्ञानवान् प्रभु की (विप्राः) विद्वान्, बुद्धिमान् पुरुष (अवसे) रक्षा और ज्ञान के लिये (ईडते) स्तुति करते हैं। (२) लौकिक अग्नि, मनुष्यों में जाठर रूप से व्यापक, और वनस्पति काष्ठादि से उत्पन्न होता है। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

महो विश्वाँ अभि षतोऽभि हव्यानि मानुषा ।
अग्ने नि षत्सि नमसाधि बर्हिषि ॥ २६ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन् ! स्वामिन् ! तू (महतः विश्वान् सतः) बड़े २ विश्वों और विद्यमान पदार्थों को (अभि सत्सि) व्यापता है। तू (मानुषा हव्या अभि सत्सि) मनुष्यों के वचनों को स्वीकार करता है। हे प्रभो ! तू (अधि बर्हिषि) इस महान् संसार में (नमसा) बड़े भारी बल के साथ (नि सत्सि) यज्ञ में अन्नसहित अग्नि के समान

विराजता है। (२) उसी प्रकार सब पर (नमसा) शस्त्र बल से राष्ट्र-प्रजाजन के ऊपर शासक रूप से विराजे।

वंस्वा नो वार्या पुरु वंस्व रायः पुरुस्पृहः।
सुवीर्यस्य प्रजावतो यशस्वतः ॥ २७ ॥

भा०—हे स्वामिन्! तू (नः) हमें (पुरु-वार्या) बहुत से उत्तमोत्तम धनादि (वंस्व) प्रदान कर। और तू हमें (प्रजावतः) प्रजा का उत्पादक (सु-वीर्यस्य) उत्तम वीर्य और (यशस्वतः) उत्तम यश, कीर्त्ति, बल और अन्न से सम्पन्न (नाना रायः वंस्व) अनेक ऐश्वर्य दे।

त्वं वरो सुषाम्णेऽग्ने जनाय चोदय।
सदा वसो रातिं यविष्ठ शश्वते ॥ २८ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानप्रकाशक! हे (वरो) वरण योग्य! हे (वसो) सब जगत् को बसाने और उसमें बसने वाले! हे (यविष्ठ) अतिशय बलशालिन्! हे सबसे बड़े दुःख दूर करने हारे! (त्वं) तू (सदा) सब कालों (शश्वते) बहुत से (सु-साम्ने) उत्तम साम गान करने वाले स्तुतिकर्त्ता उपासक (जनाय) मनुष्यों के हितार्थ (रातिं) दानराशि और उत्तम ज्ञान को (चोदय) प्रेरित कर, प्रदान कर।

त्वं हि सुप्रतूरसि त्वं नो गोमतीरिषः।
महो रायः सातिमग्ने अपा वृधि ॥ २९ ॥

भा०—हे (अग्ने) प्रकाशक! प्रकाशस्वरूप! उन्नति के मार्ग में लेजाने हारे! (त्वं हि) तू निश्चय से (सु-प्रतूः असि) उत्तम रीति से धन प्रदान करने हारा है। (त्वं) तू (नः) हमें (गोमतीः इषः) इन्द्रियों या वाणी से युक्त उत्तम इच्छाओं और भूमि, गवादि पशु समेत अन्न, (महः रायः सातिम्) बड़े भारी ऐश्वर्य के भाग को (अप वृधि) खोल, हमें प्रदान कर।

अग्ने त्वं यशा अस्या मित्रावरुणा वह ।
ऋतावाना सम्राजा पूतदक्षसा ॥ ३० ॥ १४ ॥

भा०—हे (अग्ने त्वं यशाः असि) ज्ञानवन्! हे तेजस्विन्! तू यशःस्वरूप, कीर्त्तिमान् है। तू (ऋतवाना) सत्यनिष्ठ, (सम्राजा) समान भाव से तेजोयुक्त, (पूत-दक्षसा) पवित्र बल और ज्ञान वाले, (मित्रावरुणा) सर्वस्नेही ब्राह्मण, और 'वरुण' अर्थात् श्रेष्ठ पुरुष क्षत्रिय दोनों को (महो रायः सातिम्) बड़े भारी धन का विभाग (वह) प्राप्त करा। प्रभु परमेश्वर विद्वानों को ज्ञान का और क्षत्रियों को बल का धन देता है। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[२४]

विश्वमना वैयश्व ऋषिः ॥ १—२७ इन्द्रः । २८—३० वरोः सौषाम्णस्य दानस्तुतिर्देवता ॥ छन्दः—१, ६, ११, १३, २०, २३, २४ निचृदुष्णिक्। २—५, ७, ८, १०, १६, २५—२७ उष्णिक्। ९, १२, १८, २२, २८ २९ विराडुष्णिक्। १४, १५, १७, २१ पादनिचृदुष्णिक्। १९ आर्ची स्वराडुष्णिक्। ३० निचृदनुष्टुप्॥ त्रिंशदृचं सूक्तम्॥

सखाय आ शिषामहि ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे ।
स्तुष ऊ षु वो नृतमाय धृष्णवे ॥ १ ॥

भा०—हे (सखायः) मित्रो ! (वज्रिणे) बलशाली, सर्वशक्तिमान (इन्द्राय) परमैश्वर्यवान्, सर्वद्रष्टा, सर्वप्रकाशक प्रभु के (आशिषामहि) आदरपूर्वक गुणों का वर्णन करें। मैं (धृष्णवे) दुष्टों को नाश करने, जगत् को धारण करने वाले (नृतमाय) परम पुरुषोत्तम, सर्वश्रेष्ठ नेता की ही (वः) आप लोगों के प्रति (ऊ सु स्तुषे) अच्छी प्रकार स्तुति करता हूं।

शवसा ह्यसि श्रुतो वृत्रहत्येन वृत्रहा ।
मघैर्मघोनो अति शूर दाशसि ॥ २ ॥

भा०—हे (शूर) दुष्टों के नाशक ! प्रभो ! तू (वृत्यहत्येन) प्रकृति के 'सरिर'मय स्वरूप में आघात या स्पन्द उत्पन्न करने वाले मेघ के आघात-कारी विद्युत् के समान (शवसा) वल से ही तू (वृत्र-हा) 'वृत्रहा' नाम से (श्रुतः असि) प्रसिद्ध है। हे प्रभो ! अथवा, तू (वृत्र-हत्येन शवसा) दुष्टों के नाशक वल से 'वृत्र-हा' दुष्टहन्ता प्रसिद्ध है। तू (मघैः) उत्तम २ ऐश्वर्यों से (मघोनः) वड़े २ धनवानों को भी पार कर। उनसे भी अधिक (अति दाशसि) वहुत वहुत दान देता है।

स नः स्तवान आ भर रयिं चित्रश्रवस्तमम्।
निरेके चिद्यो हरिवो वसुर्ददिः ॥ ३ ॥

भा०—हे (हरिवः) मनुष्यों वा जीवों के स्वामिन् ! (सः) वह तू (स्तवानः) हमें ज्ञान उपदेश करता हुआ, (चित्र-श्रवस्तमम्) ज्ञान-प्रद एवं गुरुपरम्परा से श्रवण करने योग्य ज्ञान रूप (रयिं) धन (नः आ भर) हमें प्रदान कर। (यः) जो तू (निरेके) सर्वातिशायी पद पर विराजमान (वसुः चित्) सम्पूज्य, सवको वसाने हारा और (ददिः) सवका दाता है।

आ निरेकमुत प्रियमिन्द्र दर्षि जनानाम्।
धृषता धृष्णो स्तवमान आ भर ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (जनानाम्) मनुष्यों के (प्रियम्) अति प्रीतिकारी (निरेकम्) सवसे उत्तम धन (आ दर्षि) प्रदान करता है। हे (धृष्णो) दुष्टों के धर्षक ! तू (धृषता) अपने दुष्ट-अज्ञान के नाशक वल से (स्तवमानः) जगत् भर को उपदेश करता हुआ, वा अन्यों से स्तुति किया जाता हुआ (नः आ भर) हमें भी प्रिय उत्तम धन प्रदान कर।

न ते सव्यं न दक्षिणं हस्तं वरन्त आमुरः।
न परिबाधो हरिवो गविष्टिषु ॥ ५ ॥ १५ ॥

भा०—हे (हरिवः) समस्त मनुष्यों के स्वामिन् ! हे समस्त सूर्यादि लोकों के स्वामिन् ! (गविष्टिषु) वाणी द्वारा तेरी उपासना करने के अवसर में (आमुरः) अभिमुख आकर मरने मारने वाले शत्रुजन भी (ते) तुझ महाबलवान् पुरुष के (न दक्षिणं न सव्यं हस्तं) न दायें और न बायें हाथ को (वरन्त) रोक सकते हैं । वे (गविष्टिषु न परिबाधः) वाणियों द्वारा करने योग्य यज्ञों में भी किसी प्रकार बाधा नहीं कर सकते । (२) निर्बल शत्रु बलवान् राजा के दायें बायें के सैन्य या प्रमुख नेतृ-बल को भी नहीं सह सकते । वे उसकी (गविष्टिषु) भूमियों के दान या ग्रहण में वा धनुषों द्वारा करने योग्य युद्धयज्ञों में भी बाधा नहीं कर सकते । इति पञ्चदशो वर्गः ॥

आ त्वा गोभिरिव व्रजं गीर्भिर्ऋृणोम्यद्रिवः ।
आ स्मा कामं जरितुरा मनः पृण ॥ ६ ॥

भा०—हे (अद्रिवः) मेघवत् उदार और पर्वतवत् दृढ़ पुरुषों के या शस्त्रबल के स्वामिन् ! (गोभिः व्रजम् इव) बैलों या अश्वों से जिस प्रकार कोई गन्तव्य मार्ग को प्राप्त करता है उसी प्रकार मैं (गीर्भिः) वाणियों द्वारा (व्रजं) प्राप्य एवं गन्तव्य परम शरणरूप (त्वा) तुझको ही (आ ऋणोमि) प्राप्त होजाता हूँ । तू (जरितुः) स्तोता प्रार्थी के (कामं आ पृण स्म) अभिलाषा को पूर्ण कर और (मनः आ पृण) उसके मन को पूर्ण कर वा उसे ज्ञान से भरपूर कर ।

विश्वानि विश्वमनसो धिया नो वृत्रहन्तम ।
उग्र प्रणेतरधि षू वसो गहि ॥ ७ ॥

भा०—हे (वृत्र-हन्तम) प्रकृति तत्व के संचालक, प्रवर्त्तक वा दुष्टों के नाशक, हे (उग्र) अति बलवन् ! हे (प्रणेतः) श्रेष्ठ नायक ! हे (वसो) जगत् को बसाने वाले ! तू (विश्व-मनसः नः) सबमें प्रविष्ट

विश्वात्मा प्रभु के दिये हम लोगों की (धिया) बुद्धि कर्मानुसार (नः अधि गहि) हमें प्राप्त हो और हम पर शासन कर।

वयं ते अस्य वृत्रहन्विद्याम शूर नव्यसः।
वसोः स्पार्हस्य पुरुहूत राधसः ॥ ८ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्) दुष्टों के नाशक ! प्रकृति तत्व के संचालक : प्रवर्त्तक ! हे (शूर) शक्तिशालिन् ! हे (पुरु-हूत) सबजनों से स्तुतियोग्य, सबों से नाना प्रकारों से स्तुत्यरूप में स्वीकृत ! (वयं) हम लोग (ते) तेरे (अस्य) इस (नव्यसः) अति नवीन वा स्तुतियोग्य (वसोः) सबको अपने भीतर बसाने वाले (स्पार्हस्य) मनोहर, अभिलषणीय (राधसः) धनैश्वर्य का (विद्याम) ज्ञान और लाभ करें।

इन्द्र यथा ह्यस्ति तेऽपरीतं नृतो शवः।
अमृक्ता रातिः पुरुहूत दाशुषे ॥ ९ ॥

भा०—हे (नृतो) सबको अपनी इच्छा पर नचाने या यथेच्छ संचालित करने वाले हे (पुरुहूत) बहुधा स्तुत्य ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्य-वन् ! (यथा) जैसा (ते) तेरा (शवः) बल (अपरीतं अस्ति) अवि-नाशित, तुझसे कभी पृथक् नहीं होता। उसी प्रकार (दाशुषे) दानशील उपासक के लिये भी तेरा (रातिः) दान भी (अमृक्ता) कभी नष्ट नहीं होता।

आ वृषस्व महामह महे नृतम राधसे।
दृळ्हश्चिद्दृह्य मघवन्मघत्तये ॥ १० ॥ १६ ॥

भा०—(महामह) बड़ों से बड़े ! महतो महीयान् ! सर्वपूज्य ! हे (नृ-तम) सर्वश्रेष्ठ नायक ! हे पुरुषोत्तम ! तू (महे राधसे) बड़े भारी ऐश्वर्य के लिये (आ वृषस्व) स्वयं बलवान् बन। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! तू (मघत्तये) ऐश्वर्य दान करने के लिये (दृढः चित्) दृढ़ से दृढ़ को (दृह्य) विदीर्ण कर। उसको दयार्द्र कर। इति षोडशो वर्गः ॥

नू अन्यत्रा चिदद्रिवस्त्वन्नो जग्मुराशसः ।
मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतिभिः ॥ ११ ॥

भा०—हे (अद्रिवः) अखण्ड शक्ति के स्वामिन् ! (नः आशसः) हमारी आशाएं (त्वत् अन्यत्र चित् जग्मुः) तुझ से अन्य में भला क्योंकर जावें । हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (तव ऊतिभिः) तेरी रक्षाकारिणी शक्तियों से तू (नः तत् शग्धि) हमें वही आशाएं या कामनाएं प्रदान कर।

नह्यं१ग नृतो त्वदन्यं विन्दामि राधसे ।
राये द्युम्नाय शवसे च गिर्वणः ॥ १२ ॥

भा०—हे (नृतो) सब के नायक ! (अंग) हे (गिर्वणः) वाणी द्वारा, प्रार्थनीय ! मैं (राधसे) आराधना करने और (राये) ऐश्वर्य प्राप्त करने लिये और (द्युम्नाय) तेज, यश और (शवसे) बल प्राप्त करने के लिये (त्वत् अन्यं) तुझ से दूसरे को (न विन्दामि) नहीं पाता हूं ।

एन्दुमिन्द्राय सिञ्चत पिबाति सोम्यं मधु ।
प्र राधसा चोदयाते महित्वना ॥ १३ ॥

भा०—जो परमेश्वर (राधसा) अपनी आराधना वा वशीकारक ऐश्वर्य से और (महित्वना) महान् सामर्थ्य से (प्र चोदयाति) समस्त जगत् को और जीव संसार को अच्छी प्रकार, ठीक राह पर प्रेरित करता है और जो (सोम्यं मधु) उत्पन्न होने वाले जगत् ,अन्न वा जल को जीव के सदृश (पिबाति) पी लेता वा खालेता, अपने भीतर लीन करलेता है, उस (इन्द्राय) महान् ऐश्वर्यवान् प्रभु परमेश्वर के लिये (इन्दुम्) इस प्रेमार्द्र आत्मा को उसकी ओर (आ सिञ्चत) प्रवाहित कर, आत्मा को उसी की ओर प्रवृत्त कर ।

उपो हरीणां पतिं दक्षं पृञ्चन्तमब्रवम् ।
नूनं श्रुधि स्तुवतो अश्व्यस्य ॥ १४ ॥

भा०—मैं (हरीणां पतिम्) सूर्य,चन्द्रादि लोकों, और मननशील पुरुषों के पालक, (दक्षम्) सब पापों के भस्म करने वाले, वा कर्म करने वाले (पृक्षन्तम्) सब के स्नेही, प्रभु को लक्ष्य करके (उप ब्रवम् उ) उपासना, प्रार्थना करता हूं। (नूनं) अवश्य, निश्चय करके (अश्व्यस्य) इन्द्रियों के द्वारा सुख दुःखों के भोक्ता, वा मन, इन्द्रियादि के स्वामी (स्तुवतः) स्तुतिकर्त्ता जीव की तू (श्रुधि) प्रार्थना को श्रवण कर।

नह्यं१ग पुरा च॒न ज॒ज्ञे वी॒रत॑र॒स्त्वत् ।
नकी॑ रा॒या नैवथा॑ न भ॒न्दना॑ ॥ १५ ॥ १७ ॥

भा०—(अंग) हे प्रभो ! (पुरा चन) पहले भी, और अब भी (त्वत्) तुझ से अधिक (वीरतरः) बड़ा वीर, जगत् संचालक, और विविध विद्याओं का उपदेष्टा, (नहि जज्ञे) नहीं पैदा हुआ, और (नकिः राया) न कोई ऐश्वर्य से (न एवथा) न ज्ञान, और रक्षण सामर्थ्य से और (न भन्दना) न जगत् के कल्याण और सुखदायक सामर्थ्य से तुझ से कोई बड़ा है, न होगा। इति सप्तदशो वर्गः ॥

एदु॒ मध्वो॑ म॒दिन्त॑रं सि॒ञ्च वा॑ध्वर्यो॒ अन्ध॑सः ।
ए॒वा हि वी॒रः स्तव॑ते स॒दावृ॑धः ॥ १६ ॥

भा०—(वीरः एव हि) वीर, विद्वान् (सदा-वृधः) सदा सबको बढ़ाने वाला ही (स्तूयते) स्तुति करने योग्य है। हे (अध्वर्यो) अविनाशिन् ! तू (अन्धसः) अन्न के समान प्राणपोषक (मध्वः) जलवद् शान्तिदायक आनन्द रस से (मदिन्तरं) अतिशय आनन्ददायक आत्मा को (आ सिञ्च इत्) आ, सेचन कर, उसकी वृद्धि कर।

इन्द्र॑ स्थातर्हरीणां॒ नकि॑ष्टे पू॒र्व्यस्तु॑तिम् ।
उदा॑नंश॒ शव॑सा॒ न भ॒न्दना॑ ॥ १७ ॥

भा०—हे (हरीणां स्थातः) मनुष्यों के बीच वा अश्व सेनाओं के बीच सेनापति के समान सर्वोपरि विराजमान ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ते

पूर्व्यं स्तुतिम्) तेरी पूर्व विद्यमान और पूर्ण स्तुति को (शवसा) बल या ज्ञान से भी (नकिः उत् आनंश) कोई भी नहीं प्राप्त कर सकता और (न भन्दना उत् आनंश) सुख, कल्याण और ऐश्वर्य से भी कोई नहीं बढ़ सकता।

तं वो वाजानां पतिमहूमहि श्रवस्यवः ।
अप्रायुभिर्यज्ञेभिर्वावृधेन्यम् ॥ १८ ॥

भा०—(अप्रायुभिः) आयु से रहित दीर्घायु वा अप्रमादी पुरुषों और (यज्ञेभिः) यज्ञों, उपासनादि सत्कर्मों से (वावृधेन्यम्) अति वृद्धिशील, (वाजानां पतिम्) आप सबके ज्ञान, ऐश्वर्यादि के पालक उसको (नः) हम (श्रवस्यवः) ज्ञान, कीर्त्ति और अन्नादि के इच्छुक होकर (अहूमहि) पुकारते, उसीकी उपासना करते हैं।

एतो न्विन्द्रं स्तवाम सखायः स्तोम्यं नरम् ।
कृष्टीर्यो विश्वा अभ्यस्त्येक इत् ॥ १९ ॥

भा०—हे (सखायः) मित्रजनो ! (एत उ नु) आप लोग आओ न भला, (स्तोम्यं नरं) स्तुति करने योग्य सर्वप्रणेता पुरुष की (स्तवाम) स्तुति करें, (यः विश्वाः कृष्टीः) जो समस्त मनुष्यों के प्रति (एक इत् अभि अस्ति) एक, अद्वितीय, सबके प्रति समान रूप से उपास्य है।

अगोरुधाय गविषे द्युक्षाय दस्म्यं वचः ।
घृतात्स्वादीयो मधुनश्च वोचत ॥ २० ॥ १८ ॥

भा०—हे विद्वान् लोगो (अगो-रुधाय) जो पुरुष आप लोगों की वाणी पर रोक न करे, और (गविषे) जो आपकी वेद वाणी को चाहे, उस (द्युक्षाय) तेजस्वी पुरुष के लिये (घृतात् स्वादीयः) घी से भी अधिक स्वाद, शान्तिप्रद, और (मधुनः च) मधु वा अन्न से भी अधिक मधुर, पुष्टिप्रद, बलप्रद (दस्म्यं वचः) दर्शनीय वा ज्ञान के नाशक वचन का (वोचत) उच्चारण करो। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

यस्यामितानि वीर्या३ न राधः पर्येतवे ।
ज्योतिर्न विश्वमभ्यस्ति दक्षिणा ॥ २१ ॥

भा०—(यस्य) जिसके (वीर्या अमितानि) वीर्य अपरिमित हैं और (राधः) जिसके धनैश्वर्य (पर्येतवेन) पूर्णतया जाने नहीं जा सकते और (यस्य दक्षिणा) जिसका बल और दान भी (ज्योतिः न) सूर्य प्रकाश के समान (विश्वम् अभि अस्ति) सबके प्रति समान रूप से प्राप्त है।

स्तुहीन्द्रं व्यश्ववदनूर्मिं वाजिनं यमम् ।
अर्यो गयं मंहमानं वि दाशुषे ॥ २२ ॥

भा०—उस (अनूर्मिम्) तरङ्ग या धारा से रहित प्रशान्त और अगाध, (वाजिनम्) ज्ञान और ऐश्वर्य के स्वामी, (यमम्) सर्वनियन्ता, (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान्, प्रभु को (वि-अश्ववत्) विविध अश्वों, इन्द्रियों से युक्त आत्मा के समान ही (स्तुहि) स्तुति कर और (दाशुषे) भक्त को (गयं मंहमानं) प्राण और देह, गृहादि देने वाले उस स्वामी की स्तुति कर जो (अर्यः) स्वामी (वि) विविध प्रकार से ऐश्वर्य प्रदान करता है।

एवा नूनमुप स्तुहि वैयश्व दशमं नवम् ।
सुविद्वांसं चर्कृत्यं चरणीनाम् ॥ २३ ॥

भा०—हे (वैयश्व) विविध अश्वों, अश्वसैन्यों वा भोक्ता शासकों से युक्त सेनापति के समान, विविध अश्वों, प्राणों के स्वामिन्! आत्मन्! तू (नूनम्) अवश्य (दशमं) नव प्राणों के बीच (दशमम्) दशवें और (चरणीनाम्) आचरण करने वालों में भी (सुविद्वांसं) उत्तम ज्ञानी विद्वान् और (चर्कृत्यं) कार्य करने वाले ज्ञानवान् कर्मवान् आत्मा की (उप स्तुहि) स्तुति वा उपदेश कर।

वेत्था हि निर्ऋतीनां वज्रहस्त परिवृजम् ।
अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव ॥ २४ ॥

भा०—(शुन्ध्युः) सर्वशोधक सूर्य जिस प्रकार (परिपदाम् निर्ऋतीनां) चारों ओर चलने वाली भूमियों के (परिवृजं वेत्ति) परिक्रमामार्ग को जानता है उसी प्रकार हे (वज्र-हस्त) बाहुवीर्य, राजन्, शक्तिशालिन् प्रभो! तू (अहरहः) दिन प्रतिदिन (परिपदाम्) निरन्तर चलने वाले (निर्ऋतीनां) लोकों के (परिवृत्रं) जाने योग्य मार्ग को (वेत्थ) जानता है और (शुन्ध्युः) सब दुःखों और पापों का सूर्य वा अग्निवत् शोधन करने वाला है।

तदि॑न्द्राव॒ आ भ॑र॒ येना॑ दंसिष्ठ॒ कृत्व॑ने ।
द्वि॒ता कुत्सा॑य शिश्नथो॒ नि चो॑दय ॥ २५ ॥ १९ ॥

भा०—हे (दंसिष्ठ) दुष्टों और दुःखों के नाशक! तू (येन) जिस रक्षा सामर्थ्य से (कृत्वने कुत्साय) कर्म करने में तत्पर स्तुतिकर्त्ता भक्तजन के (द्विता शिश्नथः) इस और उस दोनों लोकों के दुःखों को शिथिल कर देता है तू (तद्) उसी (अवः) रक्षा और ज्ञान को हमें (आभर) प्रदान कर। (नि चोदय) उसी से हमें नित्य सन्मार्ग में प्रेरित कर। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

तमु॑ त्वा नू॒नमी॑महे॒ नव्यं॑ दंसिष्ठ॒ सन्य॑से ।
स त्वं नो॒ विश्वा॑ अ॒भिमा॑तीः स॒क्षणिः॑ ॥ २६ ॥

भा०—हे (दंसिष्ठ) दुःखों के नाशक! (नूनं) निश्चय (त्वा तम् उ) उस पूज्य तुझ (नव्यं) स्तुति योग्य को ही (संन्यसे) सर्ववासना और बन्धनों के त्यागने के लिये, (ईमहे) हम याचना करते हैं। (सः त्वं) वह तू (सक्षणिः) सब दुःखों का नाशक, सबका पराजयकारी होकर (विश्वाः अभिमातीः) समस्त अभिमानी जीवों को पराजित करता है।

य ऋ॒क्षाद॑ंह॑सो मु॒चद्यो वार्या॑त्स॒प्त सिन्धु॑षु ।
वध॑र्दा॒सस्य॑ तुविनृम्ण नीनमः ॥ २७ ॥

भा०—(यः) जो प्रभु (ऋक्षात्) मनुष्यों के नाश करने वाले,

रीछ के समान भयंकर, एवं मनुष्यनाशक दुष्ट पुरुषवत् दुःखदायी (अंहसः) पाप से (मुचत्) मुक्त करता है (यः वा) और जो, (सप्त-सिन्धुषु) वेग से जाने वाले जलों में विद्युत्-बल वा जल को (अर्थात्) प्रेरित करता है, हे (तुवि-नृम्ण) बहुत से ऐश्वर्यों के स्वामिन्! तू (दासस्य) सूर्य या पवनवत् जलप्रद मेघ में, दुष्ट पुरुष के नाशार्थ (वधः नीनमः) हिंसाकारक अस्त्र का प्रहार कर।

यथा वरो सुषाम्णे सनिभ्य आवहो रयिम्।
व्यश्वेभ्यः सुभगे वाजिनीवति ॥ २८ ॥

भा०—हे (वरो) श्रेष्ठ पुरुष! (यथा) जिस प्रकार तू (सुषाम्ने) उत्तम साम द्वारा स्तुति करने वाले, उत्तम निष्पक्षपात और (सनिभ्यः) उत्तम दान पात्रों को (रयिम् आवहः) ऐश्वर्य प्राप्त कराता है उसी प्रकार हे (सुभगे) उत्तम ऐश्वर्यशालिन्! हे (वाजिनी-वति) ऐश्वर्य सम्पदा की स्वामिनी! वधू! तू भी (व्यश्वेभ्यः) विजितेन्द्रिय पुरुषों को (रयिम्) अन्नैश्वर्य (आ वहः) प्राप्त करा। वर वधू दोनों को चाहिये कि वे सत्पात्रों में दान दिया करें। इसी प्रकार परमेश्वर 'सुसामा' सम्यग् दृष्टि और समदर्शी तथा भक्तजनों को ऐश्वर्य देता है। और सुभगा प्रकृति भी अश्व अर्थात् विविध इन्द्रियों से सम्पन्न जीवों को अपनी विभूति देती है।

आ नार्यस्य दक्षिणा व्यश्वाँ एतु सोमिनः।
स्थूरं च राधः शतवत्सहस्रवत् ॥ २९ ॥

भा०—(नार्यस्य) मनुष्यों में श्रेष्ठ और उनके हितैषी (सोमिनः) ऐश्वर्यवान् पुरुष की (दक्षिणा) दान का द्रव्य (वि-अश्वान्) विविध विद्याओं में पारंगत एवं जितेन्द्रिय पुरुषों को (आ एतु) प्राप्त हो। वा (सोमिनः) पुत्र शिष्यादि के गुरुजनों को प्राप्त हो और उसका (स्थूरं) स्थायी (शतवत् सहस्रवत्) सौ, हज़ार संख्या वाला (राधः) धन भी ऐसे ही पुरुषों को प्राप्त हो। परमेश्वर नरों, जीवों का स्वामी होने से नर्य

वा 'नार्य' है। उसका दान विविध इन्द्रियोपभोगभूमियों में वर्त्तमान कर्मफल वाले जीवों को प्राप्त होता है।

यत्त्वा॑ पृ॒च्छादी॑जा॒नः कु॑ह॒या कु॑हयाकृते।
ए॒षो अप॑श्रितो व॒लो गोम॒तीमव॑ तिष्ठति ॥ ३० ॥ २० ॥

भा०—(कुहया-कृते) आत्मा वा प्रभु उपास्य कहां है ? इस प्रकार की जिज्ञासा करने वाली हे बुद्धे ! (ईजानः) देवोपासना करने वाला (यः) जो पुरुष (त्वा पृच्छात्) तुझ से पूछता है कि (एषः अपश्रितः) वह संसार-बन्धन से दूर देहादि में अनाश्रित (वलः = वरः) सब से वरणीय, सबको व्यापने वाला प्रभु (कुहया) कहां है तो इसका समाधान श्रवण कर। (एषः) वह (वलः) सर्वव्यापक प्रभु (गोमतीम्) इन्द्रिय और वाणी से युक्त इस चित्त भूमि को (अव) नीचे छोड़ कर, (तिष्ठति) उसके भी ऊपर परम अवर्णनीय रूप में विद्यमान है। इति विंशो वर्गः ॥

[२५]

विश्वमना वैयश्व ऋषिः ॥ १—६, १३—२४ मित्रावरुणौ। १०—१२ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, २, ५—६, १६ निचृदुष्णिक्। ३, १०, १३—१६, २०—२२ विराडुष्णिक्। ४, ११, १२, २४ उष्णिक्। २३ आर्ची उष्णिक्। १७, १० पादनिचृदुष्णिक् ॥ चतुर्विंशत्यृचं सूक्तम् ॥

ता वां॒ विश्व॑स्य गो॒पा दे॒वा दे॒वेषु॑ य॒ज्ञिया॑।
ऋ॒तावा॑ना यजसे पू॒तद॑क्षसा ॥ १ ॥

भा०—(ता वां) वे आप दोनों (विश्वस्य) समस्त विश्व के वा सबके (गोपा) पालक (देवेषु) विद्वान् मनुष्यों के बीच में (यज्ञिया देवा) पूजा सत्कार के योग्य, दानशील और तेजस्वी होवो। आप दोनों (ऋतावाना) सत्य न्यायवान्, (पूत-दक्षसा) पवित्र बल वा ज्ञान वाले जनों को हे मनुष्य ! तू (यजसे) पूजा कर।

मित्रा तना न र॒थ्या॒ वरु॑णो॒ यश्च॑ सु॒क्रतु॑ः ।
स॒नात्सु॑जा॒ता तन॑या धृ॒तव्र॑ता ॥ २ ॥

भा०—स्त्री पुरुष कैसे हों ? वे दोनों (मित्रा) स्नेहवान् ! (रथ्या न तना) रथ में लगे दो अश्वों वा रथ में विराजमान रथी सारथी के समान शरीर में सुशोभित और (वरुणः) वरण करने योग्य पुरुष भी ऐसा हो (यः च सुक्रतुः) जो स्वयं उत्तम क्रियावान्, बुद्धिमान् हो । वे दोनों (सनात्) सदा (सु-जाता) उत्तम वंश और गुणों में शिक्षित और (तनया) माता पिता के उत्तम पुत्र और (धृत-व्रता) व्रत को धारण करने वाले हों । अर्थात् तनया, कन्या स्वयं स्नेहवती, रथ में चढ़ने योग्य उत्तम कर्मकुशल, सुजाता, सुपुत्री व्रतधारिणी हो और वर भी स्नेही, गृहस्थ रथ के योग्य, सुकर्मा, सुजात और व्रती हो ।

ता मा॒ता वि॒श्ववे॑दसासु॒र्या॑य॒ प्रम॑हसा ।
म॒ही ज॑जा॒नादि॑तिॠ॒तावरी ॥ ३ ॥

भा०—(प्र-महसा) अति उत्तम तेजस्वी (विश्व-वेदसा) समस्त ज्ञानों और धनों के स्वामी (ता) उन दोनों (माता) उत्पन्न करने वाली (ऋतावरी) सत्य व्रत का वरण करने वाली, (अदितिः) अखण्ड व्रत-पालिनी (मही) पूज्या (माता) जननी ही (असुर्याय) बल पराक्रम के लिये (जजान) पैदा करता है ।

म॒हान्ता॑ मि॒त्रावरु॑णा स॒म्राजा॑ दे॒वावसु॑रा ।
ऋ॒तावा॑नावृ॒तमा घो॑षतो बृ॒हत् ॥ ४ ॥

भा०—वे दोनों (महान्ता) गुणों में महान्, (सम्राजा) अच्छी प्रकार दीप्तिमान्, तेजस्वी, (देवा) दानशील (असुरा) बलवान्, शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाले, (ऋतावानौ) सत्य ज्ञान से युक्त, दोनों (बृहत् ऋतम् आ घोषतः) बड़े भारी सत्य ज्ञान, वेद और न्याय की घोषणा किया करें, उसका पठन, पाठन और उपदेश किया करें ।

नपा॑ता॒ शव॑सो म॒हः सू॒नू दक्ष॑स्य सु॒क्रतू॑ ।
सृ॒प्रदा॑नू इ॒षो वास्त्वधि॑ क्षितः ॥ ५ ॥ २१ ॥

भा०—दोनों (महः शवसः नपाता) बड़े भारी बलके पालक और (महः दक्षस्य सूनू) बड़े भारी बल और धर्म के उत्पादक और परिचालक (इषः) अन्न के (सृप्रदानू) विस्तृत रूप से देने वाले होकर (वास्तु अधि) बड़े २ गृहों में (क्षितः) निवास करें । इत्येकविंशो वर्गः ॥

सं या दानू॑नि ये॒मथु॑र्दि॒व्याः पार्थि॑वी॒रिषः॑ ।
नभ॑स्वती॒रा वां॑ चरन्तु वृ॒ष्टयः॑ ॥ ६ ॥

भा०—(या) जो आप दोनों (दानूनि) दान योग्य वीर्यों, धनों का (सं येमथुः) संयमपूर्वक रक्षा करते रहे उन (वां) आप दोनों को (नभस्वतीः) आकाश की, (दिव्या) अन्तरिक्ष की (वृष्टयः) वृष्टियां और (पार्थिवीः इषः) पृथिवी पर उत्पन्न होने वाले अन्न (आचरन्तु) प्राप्त हों ।

अधि॒ या बृ॑ह॒तो दि॒वो॒३ऽभि यू॒थेव॒ पश्य॑तः ।
ऋ॒तावा॑ना स॒म्राजा॒ नम॑से हि॒ता ॥ ७ ॥

भा०—(अभि यूथा इव) जिस प्रकार गौओं के समूहों को उनके पालक जन देखते हैं उसी प्रकार (या) जो (बृहतः दिवः अधि पश्यतः) बड़े भारी कामनाओं वा अभिलाषाओं को देखते हैं वे दोनों (ऋतावाना) सत्य और धन वाले, (सम्राजा) उत्तम दीप्ति से दीप्तिमान् होकर (नमसे) अन्न और बल को प्राप्त करने के लिये (हिता) परस्पर हिताचरण करें वा स्थिर भाव से रहें ।

ऋ॒तावा॑ना॒ नि षे॑दतुः॒ साम्रा॑ज्याय सु॒क्रतू॑ ।
धृ॒तव्र॑ता क्ष॒त्रिया॑ क्ष॒त्रमा॑शतुः ॥ ८ ॥

भा०—(ऋतावाना) सत्य न्याय के स्वामी होकर (धृत-व्रता) व्रत, नियम के धारण करने वाले (क्षत्रिया) बल, और धन के स्वामी

(साम्-राज्याय) साम्राज्य पालनार्थ (सु-क्रतू) उत्तम कर्म वाले होकर (क्षत्रम् आशातुः) बल ऐश्वर्य को प्राप्त करें ।

अक्ष्णश्चिद्गातुवित्तरानुल्बणेन चक्षसा ।
नि चिन्मिषन्ता निचिरा नि चिक्यतुः ॥ ९ ॥

भा०—वे (अक्ष्णः चित् गातुवित्-तरा) आंख से भी अधिक मार्ग जानने वाले, वा आंखों वा इन्द्रियमात्र के भी इशारों को खूब समझने वाले हों । वे दोनों (अनुल्बणेन) सोम्य (चक्षसा) दृष्टि वा (अनुल्बणेन वचसा) कोमल, दुःख न देने वाले हृदयहारी वचन से (निमिषन्ता) नियम से व्यवहार करने वाले (नि-चिरा) खूब चिरायु होकर (नि चिक्यतुः) पूजा सत्कार योग्य होवें ।

उत नो देव्यदितिरुरुष्यतां नासत्या ।
उरुष्यन्तु मरुतो वृद्धशवसः ॥ १० ॥ २२ ॥

भा०—(उत) और (देवी अदितिः) उत्तम सुख देने वाली विदुषी स्त्री माता और (नासत्या) असत्य व्यवहार से रहित माता पिता (नः उरुष्यताम्) हमारी रक्षा करें । और (वृद्ध-शवसः) बड़े बली और अधिक ज्ञान वाले पुरुष (मरुतः) शत्रुओं को मारने वाले वा वायुवत् जीवनप्रद, दूरगामी विद्वान् क्षत्रिय और वैश्य जन (उरुष्यन्तु) हमारी रक्षा करें । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

ते नो नावमुरुष्यत दिवा नक्तं सुदानवः ।
अरिष्यन्तो नि पायुभिः सचेमहि ॥ ११ ॥

भा०—हे (सु-दानवः) उत्तम दानशील पुरुषो ! (ते) वे आप लोग (दिवा नक्तं) दिन और रात (नः नावम्) हमारी नौका वा प्रेरणा करने योग्य यान की (उरुष्यत) रक्षा करो । और हम (अरिष्यन्तः) विना पीड़ित हुए किसी का हिंसा न करते हुए (पायुभिः) पालन करने वालों के साथ (सचेमहि) सदा संघ बना कर रहें ।

अघ्नते विष्णवे वयमरिष्यन्तः सुदानवे ।
श्रुधि स्वयावन्त्सिन्धो पूर्वचित्तये ॥ १२ ॥

भा०—(वयम्) हम लोग (अरिष्यन्तः) किसी की हिंसा न करते हुए, स्वयं भी पीड़ित न होते हुए, (अघ्नते) अहिंसक (सु-दानवे) उत्तम दानशील, (पूर्व-चित्तये) पूर्ण ज्ञानी और सबसे पूर्व कर्मकर्त्ता, पूर्ण संसार के बनाने वाले परमेश्वर की स्तुति करें । हे (स्व-यावन्) अपने ही सामर्थ्य से संसार को चलाने हारे ! हे (सिन्धो) समुद्रवत् गम्भीर, आनन्द-रस के सागर ! तू (श्रुधि) हमारी प्रार्थना को श्रवण कर ।

तद्वार्यं वृणीमहे वरिष्ठं गोपयत्यम् ।
मित्रो यत्पान्ति वरुणो यदर्यमा ॥ १३ ॥

भा०—(यत्) जिस धन और बल की (मित्रः) स्नेहवान्, मृत्यु से रक्षक, (यत् वरुणः) जिसकी सबको वरण करने योग्य, सब-दुःखों का वारक, और (अर्यमा) शत्रु वा दुष्टों का नियन्ता पुरुष (पान्ति) रक्षा करते वा उपभोग करते हैं हम (तत्) उस (वार्यं) वरण करने; दुःखों को दूर करने वाले (वरिष्ठं) सर्वश्रेष्ठ, (गोपयत्यम्) सबके पालक धन वा बल की (वृणीमहे) याचना करते हैं ।

उत नः सिन्धुरपां तन्मरुतस्तदश्विना ।
इन्द्रो विष्णुर्मीढ्वांसः सजोषसः ॥ १४ ॥

भा०—(अपां सिन्धुः) जलों का बहने वाला प्रवाह, (मरुतः) शत्रुहन्ता बलवान् पुरुष और वैश्यगण, (अश्विना) अश्वारोही योद्धा और रथी, सारथी, (इन्द्रः) सेनापति, राजा, (विष्णुः) व्यापक सामर्थ्यवान् वा विविध विद्याओं में निष्णात ये सब (मीढ्वांसः) प्रजापर सुखों की वर्षा करने वाले और (स-जोषसः) एक समान सब से प्रीति रखने हारे होकर (नः तत् तत्) हमारे उन २ धनों की रक्षा करें और दें ।

ते हि ष्मा वनुषो नरोऽभिमातिं कयस्य चित् ।
तिग्मं न क्षोदः प्रतिघ्नन्ति भूर्णयः ॥ १५ ॥ २३ ॥

भा०—(ते हि) वे (भूर्णयः) जगत् के पोषक (नरः) नायक पुरुष, (वनुषः) शत्रुओं के नाशक और सेवा योग्य जन (कयस्य चित् अभिमातिं) किसी भी प्रतिद्वन्द्वी के अभिमान को (तिग्मं क्षोदः न) तीव्र वेग से जाने वाले जल के समान (प्रति घ्नन्ति) विनाश कर सकते हैं ।

इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

अयमेकं इत्था पुरूरु चष्टे वि विश्पतिः ।
तस्य व्रतान्यनु वश्चरामसि ॥ १६ ॥

भा०—(अयम् एकः) यह एक (पुरूः) पालक, सबकी अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाला, (विश्पतिः) प्रजाओं का पालक हो । (इत्था) इस प्रकार सत्य न्याय को वह (वः वि चष्टे उ) विविध या विशेष प्रकार से तुम सब के व्यवहारों को सूर्यवत् देखता है । (तस्य व्रतानि) इस प्रजापति के उपदिष्ट और कृत कर्मों का हम (अनु चरामसि) अनुकरण करते हैं ।

अनु पूर्वाण्योक्या साम्राज्यस्य सश्चिम ।
मित्रस्य व्रता वरुणस्य दीर्घश्रुत् ॥ १७ ॥

भा०—(साम्राज्यस्य) महान् साम्राज्य के मालिक प्रभु के (पूर्वाणि) पूर्व विद्यमान वा पूर्ण, त्रुटिरहित (ओक्या) भुवनों, या गृहों के व्यवस्थापक नियमों को (अनु सश्चिम) पालन करें । (मित्रस्य) सर्वस्नेही, (वरुणस्य) सर्वश्रेष्ठ (दीर्घ-श्रुतः) दीर्घदर्शी, बहुज्ञ, पुरुष के (व्रता) कर्मों का हम अनुकरण करें ।

परि यो रश्मिना दिवोऽन्तान्ममे पृथिव्याः ।
उभे आ पप्रौ रोदसी महित्वा ॥ १८ ॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर (रश्मिना) तेजोवत् व्यापक सामर्थ्य

से (दिवः पृथिव्याः अन्तान्) आकाश और भूमि इनकी परली सीमाओं को भी (परि ममे) मापता है। वही (महित्वा) अपने महान् सामर्थ्य से (उभे रोदसी) आकाश और भूमि दोनों लोकों को (आ पप्रौ) पूर्ण करता है।

उदु ष्य शरणे दिवो ज्योतिरयंस्त सूर्यः।
अग्निर्न शुक्रः समिधान आहुतः ॥ १९ ॥

भा०—(स्यः) वह (दिवः शरणे) प्रकाश को बखेर कर दूर २ तक फैलाने में (सूर्यः) सूर्य के समान (ज्योतिः) स्वयं प्रकाशस्वरूप प्रभु (शरणे) इस महान् विश्व में (उत् अयंस्त) सबके ऊपर विराज कर सब को वश करता है। वह (अग्निः न शुक्रः) अग्नि के समान देदीप्यमान, (समिधा आहुतः न) काष्ठ से आहुति युक्त चमकने वाले अग्नि के तुल्य ही (आहुतः) सबसे स्तुति किया जाता है।

वचो दीर्घप्रसद्मनीशे वाजस्य गोमतः।
ईशे हि पित्वोऽविषस्य दावने ॥ २० ॥ २४ ॥

भा०—जो (गोमतः वाजस्य) गौ, भूमि, वाणी और इन्द्रियों से युक्त (वाजस्य) ऐश्वर्य, ज्ञान और विभूति का (ईशे) स्वामी है और जो (अविषस्य) विषरहित (पित्वः) अन्न के (दावने) देने में (ईशे हि) निश्चय से सबका स्वामी है उस (दीर्घ-प्रसद्मनि) महा-भवन के समान सब के शरणदाता वा महाभवनवत् विश्व के स्वामी के विषय में (वचः) स्तुति वाणी का प्रयोग किया करो। (२) इसी प्रकार जो राजा बड़े भवन में रहता, भूमि पशु सम्पदा स्वामी, और शुद्ध अन्न को देने में समर्थ है उसी से प्रजा शरण की प्रार्थना करे। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

तत्सूर्यं रोदसी उभे दोषा वस्तोरुप ब्रुवे।
भोजेष्वस्माँ अभ्युच्चरा सदा ॥ २१ ॥

भा०—(दोषा वस्तोः) दिन और रात (उभे रोदसी) आकाश

वा सूर्य और पृथिवी, समस्त जगत् के (सूर्यम्) संचालक, प्रकाशक, सूर्यवत् तेजस्वी (तत्) उस प्रभु की मैं (उप ब्रुवे) स्तुति करता हूं। हे प्रभो! तू (सदा) सब काल, (अस्मान्) हमें (भोजेषु) पालक जनों और भोगैश्वर्य देने वाले लोकों में (अभि उत् चर) उन्नति की ओर ले जा।

ऋुज्रमु॑क्षण्याय॑ने रज॒तं हर॑याणे।
रथं॑ यु॒क्तम॑सनाम सु॒षाम॑णि॥ २२॥

भा०—जिस प्रकार (उक्षण्यायने) बलवान् बैल या अश्व से जाने योग्य, वा (हरयाणे) हरणशील वेगवान् अश्वों या यन्त्रों से जाने योग्य (सु-सामनि) उत्तम समभूमियुक्त मार्गों में (ऋज्रम्) ऋजु, वेग से, जाने वाले, (रजतं) सुन्दर, (युक्तं) अश्वों से जुते (रथं) रथ को (असनाम) उपयोग करते हैं इसी प्रकार हम लोग (सु-सामनि) सबके प्रति समान भाव से रहने वाले, सुखप्रद, (उक्षण्यायने) बलवान्, सुख-सेचक पुरुषों के भी आश्रय स्थान, (हरयाणे) दुःखों के हरने वाले, प्रभु के अधीन हम (युक्तं) इन्द्रियादि अश्वों से युक्त, रथवत् (ऋज्रम्) ऋजु, धर्म मार्ग से चलने वाले इस देह को (असनाम) प्राप्त करें और उसका सुख भोग करें।

ता मे॑ अश्व्या॑नां॒ हरी॑णां नि॒तोश॑ना।
उ॒तो नु कृत्व्या॑नां नृ॒वाह॑सा॥ २३॥

भा०—(ता) वे दोनों प्रधान स्त्री पुरुष (मे) मुझ राजा के अधीन (अश्व्यानां हरीणां) अश्वारोही जनों के बीच (नि-तोशना) शत्रुओं को नाश करने वाले, (उत नु) और (कृत्व्यानां) कर्मकुशल पुरुषों के बीच में (नृ-वाहसा) मनुष्यों को सन्मार्ग में लेजाने वाले हों।

स्मद॑भीशू॒ कशा॑वन्ता॒ विप्रा॒ नवि॑ष्ठया म॒ती।
म॒हो वा॒जिना॒वर्व॑न्ता॒ सचा॑सनम्॥ २४॥ २५॥

भा०—(स्मत्-अभीशू) शोभायुक्त अंगुलियों, धर्म-मर्यादाओं, व्यवस्थाओं से युक्त, (कशावन्ता) अर्थप्रकाशक, शुभ वाणी वाले, (विप्रा) मेधावी, बुद्धिमान् (नविष्ठया) अतिस्तुत्य (मती) बुद्धि से युक्त, (महः वाजिनौ) बड़े भारी ज्ञानी (अर्वन्ता) दुःखों का नाश करने वाले, सन्मार्गगामी, स्त्री पुरुषों को मैं दो अश्वों वा प्राणों के सदृश (सचा असनम्) सदा एक साथ प्राप्त करूं। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[२६]

विश्वमना वैयश्वो वाङ्गिरस ऋषिः ॥ १—१९ अश्विनौ। २०—२५ वायुर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ६, ७ उष्णिक्। २, ८, २३ विराडुष्णिक्। ५, ९—१५, २२ निचृदुष्णिक्। २४ पादनिचृदुष्णिक्। १६, १९ विराड् गायत्री। १७, १८, २१ निचृद् गायत्री। २५ गायत्री। २० विराडनुष्टुप् ॥ पञ्चविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

युवोरु षू रथं हुवे सधस्तुत्याय सूरिषु।
अतूर्तदक्षा वृषणा वृषण्वसू ॥ १ ॥

भा०—हे (वृषण्वसू) सुखप्रद, धन और बलवान् पुरुष रूप धन से धनी प्रधान नायक पुरुषो! राजा प्रजा वा पति पत्नी जनो! आप दोनों (वृषणा) बलवान्, उत्तम सुखों और वीर्यादि के सेक्ता और (अतूर्त-दक्षा) न नष्ट होने वाले स्थायी बल सामर्थ्य से युक्त होवो। (सूरिषु) विद्वान् पुरुषों के बीच में (सध-स्तुत्याय) एक साथ मिलकर स्तुति प्राप्त करने के लिये (युवोः) तुम दोनों को (रथं) उत्तम उपदेश, उत्तम आचार, उत्तम रमणकारी साधन रथादि (सु-हुवे उ) उत्तम रीति से प्रदान करूं।

युवं वरो सुषाम्णे महे तने नासत्या।
अवोभिर्याथो वृषणा वृषण्वसू ॥ २ ॥

भा०—हे (नासत्या) कभी असत्य भाषण और असत्याचरण न करने वाले, वा नासिकावत् प्रमुख पुरुषो ! हे (वृषणा) बलवान् ! वीर्यवान्, (वृषण्वसू) सुखप्रद, बलवान् धन, जन के स्वामियो ! हे (वरो) दोनों वरण करने योग्य, श्रेष्ठ जनो ! (युवं) आप दोनों (सुषाम्णे) सुखप्रदाता, निष्पक्षपात, सर्वोपरि विराजमान प्रभु के (महे तने) बड़े विस्तृत राज्य में (नवोभिः) रक्षासाधनों, ज्ञानों और रथादि से (याथः) गमनागमन करो !

ता वामद्य हवामहे हव्येभिर्वाजिनीवसू ।
पूर्वीरिष इषयन्तावति क्षपः ॥ ३ ॥

भा०—हे (वाजिनीवसू) ऐश्वर्ययुक्त भूमि, ज्ञानयुक्त विद्या और बलयुक्त सेना को बसाने, बसने और उनको धनवत् पालने वाले राजा प्रजा जनो ! (पूर्वीः) पूर्व की, नाना, वा पूर्ण, राज्यादि के पालक (इषः) सेना और नाना उत्तम अभिलाषाओं और पूर्ण अभिलाषा योग्य अन्नादि समृद्धियों को (इषयन्तौ) चाहते हुए (ता वाम्) उन आप दोनों का (अति क्षपः) रात्रि व्यतीत कर प्रातः, वा नाशकारिणी, शत्रु सेनाओं को पार करके बाद (हव्येभिः) उत्तम अन्नों और वचनों से (हवामहे) सत्कार करें ।

आ वां वाहिष्ठो अश्विना रथो यातु श्रुतो नरा ।
उप स्तोमान्तुरस्य दर्शथः श्रिये ॥ ४ ॥

भा०—हे (अश्विना) अश्व के स्वामी, रथी सारथीवत् राजा सचिव जनो ! वा स्त्री पुरुषो ! वा माता पिता गुरु जनो ! हे (नरा) सन्मार्ग से ले जाने वालो ! (वां) तुम दोनों का (वाहिष्ठः) ज्ञान प्राप्त कराने वाला (रथः) रमणीय (श्रुतः) श्रवण करने योग्य उपदेश हमें (रथः) रथवत् (आ यातु) प्राप्त हो । आप दोनों (तुरस्य) सर्वदुःखनाशक प्रभु के (स्तोमान्) उपदेश किये वेद मन्त्रों का (श्रिये) अपने आश्रय वा

शोभा, और ज्ञान धनादि समृद्धि के लिये (उप दशथः) गुरु देवादि की उपासना द्वारा ज्ञान किया करो ।

जुहुराणा चिदश्विना मन्येथां वृषण्वसू ।
युवं हि रुद्रा पर्षथो अति द्विषः ॥ ५ ॥ २६ ॥

भा०—हे (वृषण्वसू) बलवान् प्राणों वालो ! हे बलवान् पुरुषो ! और सुखप्रद धनों के स्वामियो ! हे (अश्विना) जितेन्द्रिय पुरुषो ! हे 'अश्व' अर्थात् राष्ट्र एवं बलवान् अश्व सैन्यादि के स्वामियो ! आप दोनों (जुहुराणा चित्) कुटिलता करने वालों को भी अच्छी प्रकार (मन्येथाम्) जानों, उनको दुष्टता करने से रोको । हे (रुद्रा) दुष्टों को रुलाने वाले, दुःखों को दूर भगाने वाले जनो ! (युवं हि) तुम दोनों अवश्य ही (द्विषः) द्वेष करने वाले, अप्रिय शत्रुओं और रोगादि, काम क्रोधादि को (अति पर्षथः) पराजित किया करो । इति षड्विंशो वर्गः ॥

दस्रा हि विश्वमानुषङ्मक्षूभिः परिदीयथः ।
धियञ्जिन्वा मधुवर्णा शुभस्पती ॥ ६ ॥

भा०—हे (दस्रा) दर्शनीय, रूपवान्, चरित्रवान्, दुष्टों के नाश करने वाले, (धियं-जिन्वा) अपने उत्तम कर्मों से सबको प्रसन्न करने वाले, (मधु-वर्णा) मधुर वर्ण, कान्तिमान् रूपवान्, वा मधु द्वारा एक दूसरे को वरने वाले वा मधुर शब्दों को बोलने वाले, (शुभस्पती) उत्तम शोभा-जनक अलंकार युक्त पति पत्नी एवं स्वामी जनो ! आप दोनों (आनुषक्) सदा साथ रहते हुए (मक्षुभिः) शीघ्रगामी रथों से (विश्वम् परि-दीयथः) समस्त संसार का, वा सब काल में परिभ्रमण करो ।

उप नो यातमश्विना राया विश्वपुषा सह ।
मघवाना सुवीरावनपच्युता ॥ ७ ॥

भा०—हे (अश्विना) अश्वादि सैन्यों, वा राष्ट्र के स्वामी जनो ! आप दोनों (विश्वपुषा राया सह) सबके पोषणकारी ऐश्वर्य के साथ

(नः उप यातम्) हमें प्राप्त होवो । तुम दोनों (मघवाना) उत्तम, पूज्य धन से युक्त, (सु-वीरौ) उत्तम, पूज्य वीर, बलवान् एवं विद्यावान्, और (अनपच्युतौ) दृढ़ एवं कुमार्ग में न जाने वाले होवो ।

आ मे अस्य प्रतीव्य१मिन्द्रनासत्या गतम् ।
देवा देवेभिरद्य सचनस्तमा ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र-नासत्या) ऐश्वर्ययुक्त एवं कभी असत्याचरण न करने वाले स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (देवा) एक दूसरे की सदा चाहना करने वाले, शुभ गुणयुक्त, विद्वान् (सचनस्तमा) परस्पर बहुत अधिक दृढ़ सम्बन्ध से सम्बद्ध होकर (मे) मुझ (अस्य) इस प्रियजन के (प्रतीव्यम्) पुनः रक्षण करने वाले गृह को (देवेभिः) अन्य प्रिय, विद्वान् जनों और शुभ गुणों सहित, सूर्य और वायु के समान (आ गतम्) आवो ।

वयं हि वां हवामह उक्षण्यन्तो व्यश्ववत् ।
सुमतिभिरुप विप्राविहा गतम् ॥ ९ ॥

भा०—जिस प्रकार (वि-अश्ववत्) विशेष अश्वसैन्य का स्वामी बलवान् स्त्री पुरुषों को राष्ट्र के शासनादि कार्य के लिये चाहता है उसी प्रकार (वयं हि) हम भी (उक्षण्यन्तः) उत्तम सन्तानोत्पादक, वीर्य से विजारों के समान दृढ़, हृष्टपुष्ट बलवान् पुरुषों को चाहते हुए, (वां हि) आप दोनों ऐश्वर्यवान्, असत्य व्यवहार से रहित स्त्री पुरुष वर्गों, वा प्रजा-राजवर्गों को (हवामहे) प्रार्थना करते हैं कि आप दोनों (विप्रौ) बुद्धिमान्, धनादि से विशेष पूर्ण होकर (सुमतिभिः) उत्तम बुद्धियों सहित (उप आगतम्) हमें प्राप्त होवो ।

अश्विना स्वृषे स्तुहि कुवित्ते श्रवतो हवम् ।
नेदीयसः कूळयातः पणीँरुत ॥ १० ॥ २७ ॥

भा०—हे (ऋषे) विद्वन् ! विद्या व्यवहारादि के द्रष्टा ! तू (अश्विनौ)

राष्ट्र, सेना के स्वामी वा जितेन्द्रिय स्त्री पुरुष वर्गों को (सुस्तुहि) अच्छी प्रकार उपदेश कर, उनकी अच्छी प्रशंसा कर। (ते) तेरे (हवम्) वचन को वे दोनों (कुवित् श्रवतः) बहुत बार श्रवण करते हैं। (उत) और दोनों (नेदीयसः पणीन्) समीपस्थ उपदेष्टा एवं व्यवहारवान् पुरुषों को (कूलयातः) तट के समान आश्रय और नदीवत् मर्यादा प्रजा को स्थापित करते हैं। इति सप्तविंशो वर्गः॥

वैयश्वस्य श्रुतं नरोतो मे अस्य वेदथः।
सजोषसा वरुणो मित्रो अर्यमा॥ ११॥

भा०—हे (नरा) उत्तम नेताओ! हे स्त्री पुरुषो! आप लोग (वैयश्वस्य) विविध अश्वों के स्वामी, विविध इन्द्रियों के साधक जितेन्द्रिय राजा वा विद्वान् के आज्ञा वा उपदेश वचन (श्रुतं) श्रवण किया करो। (उतो) और (मे अस्य) मुझ इस प्रिय प्रजाजन को भी (वेदथः) जाना करो। (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ मित्र, स्नेही और (अर्यमा) उत्तम जनों का स्वामी, उनका आदरकर्त्ता, दुष्टों का नियन्ता पुरुष (सजोषसा) समान प्रीति से युक्त हों। वे प्रजा के व्यवहार जानें।

युवादत्तस्य धिष्ण्या युवानीतस्य सूरिभिः।
अहरहर्वृषणा मह्यं शिक्षतम्॥ १२॥

भा०—हे (धिष्ण्या) स्तुतियोग्य, बुद्धियुक्त, उत्तम आसनार्ह के योग्य हे (वृषणा) उत्तम ज्ञान, सुख, धनैश्वर्य बल-वीर्यादि के वर्षण करने वाले, बलवान् एवं माता पितावत् पालक प्रबन्धकर्त्ता जनो! आप लोग (युवादत्तस्य) आप दोनों से देने योग्य, और (युवा-नीतस्य) आप दोनों से प्राप्त कराने और सिखाने योग्य ज्ञान और ऐश्वर्य (सूरिभिः) विद्वानों द्वारा (मह्यं) मुझ प्रजाजन को पुत्रवत् (अहरहः) दिन प्रति दिन (शिक्षत) दो और सिखाओ।

यो वां यज्ञेभिरावृतोऽधिवस्त्रा वधूरिव।
सपर्यन्ता शुभे चक्राते अश्विना॥ १३॥

भा०—हे (अश्विना) अश्व, व्यापक तेजस्वी किरणों वाले सूर्य चन्द्रवत् वा दिन रात्रिवत् पति पत्नी जनो ! (यः) जो पुरुष (अधिवस्त्रा वधूः इव) अधिक वा उत्तम वस्त्र धारण करने वाली नव-वधू के समान स्वयं भी (अधिवस्त्रः) ऊपर उत्तरीय वस्त्र धारण कर या उत्तम 'वस्त्र' अर्थात् रहने योग्य गृह का अधिकारी होकर (वां) आप दोनों के योग्य (यज्ञेभिः) दान, सत्संग, पूजा सत्कारादि से (आवृतः) अपने को ढकलेता है उस विद्वान् की (सपर्यन्ता) सेवा शुश्रूषा करने वाले आप दोनों (शुभे) शुभ कर्म या फल के लिये (चक्राते) यत्न करो।

यो वामुरुव्यचस्तमं चिकेतति नृपाय्यम्।
वर्तिरश्विना परि यातमस्मयू ॥ १४ ॥

भा०—हे (अश्विना) सूर्य चन्द्रवत् तेजस्वी पुरुषो ! (यः) जो (वाम्) आप दोनों के (नृ-पाय्यम्) मनुष्यों के पालक और नायक जनों से रक्षा करने योग्य (उरु-व्यचसम्) अति अधिक व्यापक (वर्तिः) व्यवहार को (चिकेतति) जानता है (अस्मयू) हमें चाहने वाले आप दोनों उसको (परि यातम्) प्राप्त होवो।

अस्मभ्यं सु वृषण्वसू यातं वर्तिर्नृपाय्यम्।
विषुद्रुहेव यज्ञमूहथुर्गिरा ॥ १५ ॥ २८ ॥

भा०—हे (वृषण्वसू) बलवान् पुरुषों के स्वामी जनो ! हे प्रजाजनों में बलवान् प्रबन्धक जनो ! आप दोनों (अस्मभ्यम्) हमारे हितार्थ ही (नृ-पाय्यं) मनुष्यों के पालन करने वाले (वर्त्तिः) व्यवहार को (सु-यातम्) अच्छी प्रकार प्राप्त करो। जिस प्रकार (वि-सु-द्रुहा, विषु = द्रुहा गिरा यज्ञम् इव) विविध अर्थदात्री या विविध वादप्रतिवाद वाली वाणी से जिस प्रकार (यज्ञम्) उपास्य प्रभु की तर्क द्वारा विवेचना की जाती है उसी प्रकार (वि-सु-द्रुहा इव) विविध प्रकार के परस्पर काटने वाली, विवादग्रस्त, एक दूसरे का प्रतिवाद करने वाली (गिरा) वाणी से

(यज्ञम्) प्राप्त करने योग्य, निर्णय रूप से देने योग्य सत्य तत्व को (ऊहथुः) तर्क वितर्क द्वारा प्राप्त करो। इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

वाहिष्ठो वां हवानां स्तोमो दूतो हुवन्नरा।
युवाभ्यां भूत्वश्विना ॥ १६ ॥

भा०—हे (अश्विना) सूर्य चन्द्रवत् तेजस्वी पुरुषो ! हे (नरा) नायक जनो ! (हवानां) ग्राह्य उपदेशों, ज्ञानों को (वाहिष्ठः) उत्तम रीति से अन्यों तक पहुंचाने वाला (स्तोमः) वेदमन्त्रों का समूह (वां) तुम दोनों को (दूतः हुवत्) उत्तम संदेशहर के समान ज्ञानप्रद हो, और वह सदा (युवाभ्यां) तुम दोनों के लिये हितकारी (भूतु) होवे।

यदुदो दिवो अर्णव इषो वा मदथो गृहे।
श्रुतमिन्मे अमर्त्या ॥ १७ ॥

भा०—हे (अमर्त्या) साधारण मनुष्यों से भिन्न असाधारण पुरुषो ! (यत्) जो आप दोनों (अदः) उस (दिवः) परम ज्ञानमय, तेजोमय प्रभु के (अर्णवे) सागरवत् आनन्द में वा (इषः) अन्न, और नाना कामना आदि के (गृहे) इस गृह या देह में (मदथः) प्रसन्न, सुखी, आनन्दवान् होवो तो भी (मे) मुझ आत्मा के विषय में, वा विद्वान् ज्ञानी का वचन अवश्य (श्रुतम् इत्) श्रवण किया करो।

उत स्या श्वेतयावरी वाहिष्ठा वां नदीनाम्।
सिन्धुर्हिरण्यवर्तनिः ॥ १८ ॥

भा०—(श्वेतयावरी नदीनां वाहिष्ठा) नदियों में से जिस प्रकार हिमाच्छादित पर्वत से चलने वाली नदी अति वेग से जाने वाली होती है, उसी प्रकार (नदीनां) उपदेश देने वाली वाणियों में से (उत) भी (स्या) वह, सब दुःखों को काटने वाली और (श्वेत-यावरी) श्वेत, शुक्ल, विशुद्ध प्रभु से आने वा उस तक पहुंचा देने वाली वेदवाणी ही (वां वाहिष्ठा) तुम को अतिशय सुख देने और उद्देश्य तक पहुंचा देने में सर्वश्रेष्ठ

है। (हिरण्य-वर्त्तनिः सिन्धुः) जिस प्रकार हिरण्य अर्थात् लोह के बने मार्ग पर चलने वाला रथ वेग से जाने वाला तुम्हें उद्देश्य तक अच्छी प्रकार पहुंचाने का उत्तम सवारी होता है उसी प्रकार (हिरण्य-वर्त्तनिः) हित रमणीय, व्यवहारवान् (सिन्धुः) समुद्रवत् गम्भीर पुरुष ही (वां वाहिष्ठः) तुम दोनों को उद्देश्य तक पहुंचाने में समर्थ होता है। (२) उसी प्रकार हे स्त्री पुरुषो ! (वां) तुम दोनों में से (श्वेत-यावरी) सर्वोत्तम विशुद्ध ज्ञानमार्ग वा सदाचार मार्ग से जाने वाली स्त्री (नदीनां वाहिष्ठा) सर्वश्रेष्ठ समृद्धियों को लाने वाली होती है और तुम में से जो पुरुष (हिरण्य-वर्त्तनिः) हित, रमणीय व्यवहार मार्ग से चलता, सुवर्णादि का व्यवहार-व्यापार करता है वह पुरुष (सिन्धुः) सम्पदाओं को बांधने और धारण करने वाला होता है। सिन्धुः—सिनाति दधाति च। षिञ् बन्धने।

स्मदे॒तया॑ सुकी॒र्त्याश्वि॑ना श्वे॒तया॑ धि॒या।
वहे॑थे शुभ्रयावाना ॥ १९ ॥

भा०—पूर्व मन्त्र में कहे 'श्वेतयावरी' को और स्पष्ट करते हैं। हे (शुभ्र-यावाना) शुभ्र, शुद्ध, शोभायुक्त, शिष्टसम्मत पवित्र मार्ग से जाने वाले (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (एतया) इस (श्वेतया) निर्दोष कलंकरहित (सु-कीर्त्या) उत्तम कीर्त्ति युक्त, (धिया) धी, वाणी, ज्ञानोपदेश, सन्मति और सत् कर्म, शक्ति से (स्मत्) उत्तम २ फलों को (वहेथे) प्राप्त करो।

यु॒क्ष्वा हि त्वं र॑थास॒हा यु॒वस्व॒ पोष्या॑ वसो।
आन्नो॑ वायो॒ मधु॑ पिबा॒स्माक॒ं सव॒ना ग॑हि ॥ २० ॥ २९ ॥

भा०—हे (वसो) वसु ! ब्रह्मचारिन् ! विद्वन् ! (त्वं) तू (हि) अवश्य (रथ-सहा) रथ को उठाने में समर्थ, अश्वों के समान अपने इन्द्रिय और मन दोनों को (युक्ष्व) सन्मार्ग में लगा। और (पोष्या) पोषण करने योग्य, दृढ़ अंगों को (युवस्व) कार्यों में योजित कर। इसी प्रकार

प्रजा का बसाने वाला विद्वान् वा राजा भी रथ में लगने योग्य अश्वों के समान ही स्त्री पुरुषों को राष्ट्रकार्य में वा गृहस्थ में जोड़े और उनको मिलावे। हे (वायो) वायुवत् बलशालिन्! वा ज्ञान के इच्छुक, ज्ञान देने वाले! (आत्) अनन्तर तू (नः) हमारे (मधु) मधुर जल, अन्न और मधुपर्क आदि का पान, उपभोग कर। और (अस्माकम्) हमारे (सवना) यज्ञों, गृहों और ऐश्वर्यों को (आ गहि) प्राप्त कर। इत्ये-कोनविंशो वर्गः ॥

तव॑ वायवृतस्पते त्वष्टु॑र्जामातरद्भुत ।
अवां॒स्या वृ॑णीमहे ॥ २१ ॥

भा०—हे (वायो) जलपालक! आकाश गतवायु के समान (ऋतः-पते) सत्यज्ञान, धन, यज्ञ और तेज के पालक! हे (अद्भुत) अभूतपूर्व आश्चर्यजनक! (जामातः) प्रजादि के उत्पन्न करने हारे! हे (वायो) वायुवत् प्राणप्रद! बलवन्! सर्वगत! हम (त्वष्टुः तव) सूर्यवत् देदीप्यमान, जगत् के कर्त्ता तेरे (अवांसि) ज्ञानों, रक्षाओं, तृप्ति आनन्द-दायक सुखों की (वृणीमहे) प्रार्थना याचना करते हैं। (२) हे ज्ञानवन् बलवन्! अभूतपूर्व जामातः! अविवाहितनवयुवक! हम तेरे (अवांसि) सुखदायक आगमनों को चाहते हैं। श्वशुर सदा कन्या के लिये अभूतपूर्व अविवाहित जमाई को ही चाहे, वही 'त्वष्टा', प्रजा का उत्पादक होवे।

त्वष्टु॒र्जामा॑तरं व॒यमीशा॑नं रा॒य ई॑महे ।
सु॒ताव॑न्तो वा॒युं द्यु॒म्ना जना॑सः ॥ २२ ॥

भा०—(वयं) हम (द्युम्नाः) धन, यश से सम्पन्न (सुतवन्तः, सुतावन्तः) पुत्र पुत्री वाले मनुष्य, (त्वष्टुः) समस्त कार्यसाधक, तेजोयुक्त (रायः ईशानं) धन के स्वामी, (जामातरं) नाती के उत्पादक जामाता, जंवाई को (ईमहे) प्राप्त करें। (२) हम यशस्वी, ऐश्वर्यवान् जन

उत्तम ऐश्वर्यादि के स्वामी (जामातरम्) सर्व जगदुत्पादक प्रभु से (ईमहे) याचना करें।

वायो याहि शिवा दिवो वहस्वा सु स्वश्व्यम्।
वहस्व महः पृथुपक्षसा रथे ॥ २३ ॥

भा०—हे (वायो) ज्ञानवन्! बलवन्! हे (शिव) कल्याणकारिन्! हे जगत् को सूत्रवत् गूंथने वाले प्रभो! तू (दिवः) समस्त सूर्यादि लोकों को (याहि) सञ्चालित कर, उनको प्राप्त कर और (सु-अश्व्यम्) उत्तम सूर्यादि युक्त जगत् को (वहस्व) धारण कर। और (रथे) रथ में (पृथु-पक्षसा = पृथु-वक्षसा) विस्तृत पार्श्वों वाले दो अश्वों को जैसे वीर हांकता है उसी प्रकार तू भी (पृथु-पक्षसा) महान् जगत् के वशकारक बल से (महः वहस्व) महान् संसार को धारण कर। लिङ्ग-विभक्ति-वचनादि श्लेपः। (२) इसी प्रकार हे बलवान् राजन्! तू (दिवः स्वश्व्यम्) भूमि के उत्तम अश्व सैन्य को सञ्चालित कर। बड़े वक्षःस्थल वाले अश्वों को रथ में जोड़।

त्वां हि सुप्सरस्तमं नृपदनेषु हूमहे।
ग्रावाणं नाश्वपृष्ठं मंहना ॥ २४ ॥

भा०—हे प्रभो! हम लोग (सुप्सरस्तमं) उत्तम, पूज्य रूप कान्ति वाले! वा कान्तियुक्त तेजस्वियों में सर्वश्रेष्ठ (त्वा हि) तुझ को ही (नृ-सदनेषु) सब मनुष्यों के सञ्चालन कार्यों में या मनुष्यों के गृहों में (हूमहे) तेरी ही स्तुति करते, तुझे ही पुकारते हैं। और तुझ को (अश्व-पृष्ठं) सूर्य के द्वारा सेचन समर्थ (मंहना) महान् सामर्थ्य से युक्त मेघ के सदृश, (अश्व-पृष्ठं) बड़े २ विद्वानों के ऊपर विद्यमान (ग्रावाणं न) सर्वोपदेष्टा गुरुवत् (हूमहे) स्वीकार करते हैं। (२) इसी प्रकार अश्वों के बल पर पुष्ट 'ग्राव' अर्थात् शस्त्रबलयुक्त राजा को हम मनुष्यों में से बसे राष्ट्रों में राजा रूप से स्वीकार करें।

स त्वं नो॑ देव मन॑सा वायो॑ मन्दानो अ॑ग्रियः ।
कृधि वाजाँ॑ अपो धियः॑ ॥ २५ ॥ ३० ॥

भा०—हे (देव) प्रभो ! सर्व सुखों के दातः ! हे (वायो) सर्वप्राण ! सर्वसंचालक ! (सः त्वं) वह तू (अग्रियः) सर्वश्रेष्ठ, (नः मनसा मन्दानः) हमें ज्ञान से तृप्त, आनन्दित करता हुआ, (वाजान् अपः धियः कृधि) अन्न, ऐश्वर्य, ज्ञान और कर्म प्रदान कर। इति त्रिंशो वर्गः ॥

[२७]

मनुर्वैवस्वत ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, ७, ९ निचृद् बृहती । ३ शङ्कुमती बृहती । ५, ११, १३ विराड् बृहती । १५ आर्ची बृहती ॥ १८, १९, २१ बृहती । २, ८, १४, २० पंक्तिः । ४, ६, १६, २२ निचृद् पंक्तिः । १० पादनिचृत् पंक्तिः । १२ आर्ची स्वराट् पंक्तिः । १७ विराट् पंक्तिः ॥ द्वाविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

अ॒ग्निरु॒क्थे पु॒रोहि॑तो ग्रावा॑णो ब॒र्हिर॑ध्व॒रे ।
ऋ॒चा या॑मि म॒रुतो॒ ब्रह्म॑ण॒स्पतिं॑ दे॒वाँ अवो॒ वरे॑ण्यम् ॥ १ ॥

भा०—(अध्वरे) अविनाशी (उक्थे) उत्तम वेदवचन और ईश्वरविषयक ज्ञानोपदेश प्राप्त करने के लिये (अग्निः) ज्ञानी पुरुष (पुरोहितः) आगे अग्रासन पर स्थापित हो, और (ग्रावाणः) उपदेष्टा जन और (बर्हिः) यज्ञ वा आकाश वा सूर्यवत् तेजस्वीजन भी अग्रासन पर स्थापित हों। मैं (ऋचा) वेदवचन, अर्चा सत्कार सहित, (मरुतः) विद्वान् पुरुषों और (ब्रह्मणः पतिम्) वेद और ब्रह्मज्ञान के पालक विद्वान् और (देवान्) ज्ञानप्रकाशक पुरुषों से (वरेण्यम्) वरण करने योग्य श्रेष्ठ (अवः) ज्ञान की (यामि) याचना करूं और उनसे उस ज्ञान को प्राप्त करूं।

आ पशुं गासि पृथिवीं वनस्पतीनुषासा नक्तमोषधीः ।
विश्वे च नो वसवो विश्ववेदसो धीनां भूत प्राविताराः ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वन् ! तू (पशुम्) पशु को, (पृथिवीम्) भूमि को और (वनस्पतीन्) बड़े २ वृक्षों को और (ओषधीः) अन्न लतादि को (उषासानक्तम्) दिन रात, प्रातः सायं (आ गासि) प्राप्त किया कर। हे (विश्व-वेदसः) सब प्रकार के ज्ञानों को जानने वाले (वसवः) राष्ट्र वासी ज्ञानी पुरुषो ! आप लोग (विश्वे) सब (नः धीनां) हमारी बुद्धियों और सत्कर्मों के (प्र-अवितारः भूत) उत्तम रीति से रक्षक होकर रहो।

प्र सू न एत्वध्वरो३ऽग्ना देवेषु पूर्व्यः ।
आदित्येषु प्र वरुणे धृतव्रते मरुत्सु विश्वभानुषु ॥ ३ ॥

भा०—(अध्वरः) जो हिंसारहित, नित्य, स्थायी यज्ञ (अग्ना) ज्ञानवान् पुरुष, अग्निवत् प्रकाशस्वरूप परमेश्वर और (देवेषु) अग्नि, भूमि, जलादि तत्वों, सूर्यादि लोकों और विद्वान् दाताजनों में (पूर्व्यः) पूर्व भी विद्यमान होता रहा, वह (नः प्र एतु) हमें अच्छी प्रकार, उत्तम फलदायक होकर प्राप्त हो। इसी प्रकार (आदित्येषु) १२हों महीनों में या पूर्ण ब्रह्मचारियों में (धृत-व्रते) व्रतों सत्-कर्मों के धारण व्यवस्थित करने वाले पुरुष के अधीन और (विश्व-भानुषु) सब तेजों, प्रकाशों को धारण करने वाले (मरुत्सु) विद्वान् और बलवान् पुरुषों में है वह भी (नः प्र एतु) हमें प्राप्त हो।

विश्वे हि ष्मा मनवे विश्ववेदसो भुवन्वृधे रिशादसः ।
अरिष्टेभिः पायुभिर्विश्ववेदसो यन्ता नोऽवृकं छर्दिः ॥ ४ ॥

भा०—(विश्वे) सब (विश्व-वेदसः) समस्त ज्ञानों और ऐश्वर्यों के स्वामी (रिशादसः) दुष्टों के नाशक लोग (मनवे वृधे हि भुवन्)

मनुष्य की वृद्धि के लिये ही हों। हे (विश्व-वेदसः) समस्त ज्ञानों के ज्ञाता, सब धनों के धनी जनो ! आप लोग (अरिष्टेभिः) हिंसादि से रहित, (पायुभिः) पालनकारक उपायों से युक्त (नः) हमें (अवृकं छर्दिः) चोरादि कष्ट बाधा से रहित गृह (यन्त) प्रदान करो।

आ नो॑ अ॒द्य सम॑नसो॒ गन्ता॒ विश्वे॑ स॒जोष॑सः।
ऋ॒चा गि॒रा मरु॑तो॒ देव्यदि॑ते॒ सद॑ने॒ पस्त्ये॑ महि ॥ ५ ॥ ३१ ॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान मनुष्यो ! आप लोग (विश्वे) सब (स-जोषसः) समान प्रीतियुक्त और (स-मनसः) समान चित्त होकर (नः अद्य आ गन्त) आज हमे प्राप्त होवो। हे (देवि) विदुषि ! हे (अदिते) मातः ! तू भी (ऋचा गिरा) अर्चना योग्य सत्कारयुक्त वेद-वाणी से युक्त होकर (सदने) सभा भवन और (महि पस्त्ये) बड़े भवन में आओ। इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

अ॒भि प्रि॒या म॑रुतो॒ या वो॒ अश्व्या॑ ह॒व्या मि॑त्र प्रया॒थन॑।
आ ब॒र्हिरिन्द्रो॒ वरु॑णस्तु॒रा नर॑ आ॒दि॒त्यासः॑ सदन्तु नः ॥ ६ ॥

भा०—हे (मरुतः) वीर, विद्वान् मनुष्यो ! हे (मित्र) स्नेहवान् जनो ! (वः या प्रिया) आप लोगों को जो प्रिय, (अश्व्या) अश्व आदि साधन और (हव्या) ग्रहण करने, दान देने और खाने योग्य, अन्न धनादि पदार्थ हैं उन सबको (अभि प्रयाथन) अच्छी प्रकार प्राप्त करो और अन्यों को प्राप्त कराया करो। (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (वरुणः) श्रेष्ठ राजादि और (तुराः नराः) शीघ्रगामी और नायक जन एवं (आदित्यासः) लेन देन करने में कुशल वा तेजस्वी विद्वान् लोग, (बर्हिः आ सदन्तु) उत्तम आसन और राष्ट्र पर आदरपूर्वक विराजें।

व॒यं वो॑ वृ॒क्तब॑र्हिषो हि॒तप्र॑यस आनु॒षक्।
सु॒तसो॑मासो वरुण हवामहे मनु॒ष्वदि॒द्धाग्न॑यः ॥ ७ ॥

भा०—हे (वरुण) श्रेष्ठ पुरुषो ! (वयम्) हम लोग (वृक्त-

बर्हिषः) दर्भ प्राप्त करके, (हित-प्रयसः) अन्न धारण करके (सुत-सोमासः) सोम का सवन करके (इद्धाग्नयः) अग्नियें प्रज्वलित करके (वः) आप श्रेष्ठ जनों को (मनुष्वत्) उत्तम मनुष्यों से युक्त यज्ञ में (हवामहे) आदरपूर्वक बुलावें। वा हे (वरुण) सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर तेरी उपासना, प्रार्थना करें।

आ प्र यात मरुतो विष्णो अश्विना पूषन्माकीनया धिया।
इन्द्र आ यातु प्रथमः सनिष्युभिर्वृषा यो वृत्रहा गृणे ॥ ८ ॥

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् और वीर जनो ! हे (विष्णो) व्यापक शक्तिशालिन् ! हे (अश्विना) रथीसारथिवत् जितेन्द्रिय पुरुषो ! आप लोग (माकीनया धिया) मेरे कर्म, बुद्धि और स्तुति आदि से (आ यात प्र यात) आया और जाया करो। (सनिष्युभिः) दान, वेतन ऐश्वर्यादि के इच्छुक लोग (यः) जिसे (वृषा वृत्रहा) बलवान्, सुखवर्षक मेघ के छेदक भेदक विद्युत्वत् दुष्टों का नाशक (गृणे) बतलाते हैं वह (इन्द्रः) सूर्य या विद्युत्वत् बलवान् तेजस्वी पुरुष (प्रथमः आ यातु) सबसे प्रथम, मुख्य होकर आवे।

वि नो देवासो अद्रुहोऽच्छिद्रं शर्म यच्छत।
न यद्दूराद्वसवो नू चिदन्तितो वरूथमादधर्षति ॥ ९ ॥

भा०—हे (देवासः) दानशील और उत्तम शुभ गुणों से युक्त, तेजस्वी, और विजयेच्छुक, एवं व्यवहारवान् पुरुषो ! आप लोग (अद्रुहः) द्रोहरहित होकर (नः) हमें (अच्छिद्रं) छिद्ररहित, त्रुटि दोषादि से रहित, अविच्छिन्न, निर्भय (शर्म) सुखप्रद, गृह वा शरण (वि यच्छत) विशेष रूप से प्रदान करो। हे (वसवः) प्रजा के बसने बसाने वालो ! मातृपितृवत् शासक जनो ! (यत्) जिसे (न दूरात्) न दूर से और (नु चिद् अन्तितः) न पास से ही कोई उस दुःखवारक गृह, नगर, प्रकोट आदि को (आ-दधर्षति) हमसे छीन सके और न उस घर पर आक्रमण कर सके।

अस्ति हि वः सजात्यं रिशादसो देवासो अस्त्याप्यम् ।
प्र णः पूर्वस्मै सुविताय वोचत मक्षू सुम्नाय नव्यसे ॥१०॥३२॥

भा०—हे (रिशादसः) हिंसकों को नाश करने हारे ! (वः) आप लोगों की (सजात्यं अस्ति हि) जाति, उद्भव स्थान समान हो । हे (देवासः) विद्वान् मनुष्यो ! (वः आप्यम् अस्ति हि) तुम लोगों की परस्पर बन्धुता भी हो । आप लोग (मक्षू) शीघ्र ही (पूर्वस्मै) पूर्ण, पूर्व विद्यमान (सुविताय) ऐश्वर्य प्राप्त करने तथा उत्तम मार्ग में चलने, सदाचार पालन करने और (नव्यसे) नये, उत्तम सुख प्राप्त करने के लिये (नः प्रवोचत) हमें अच्छा २ उपदेश किया करें । इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

इदा हि व उपस्तुतिमिदा वामस्य भक्तये ।
उप वो विश्ववेदसो नमस्युराँ असृक्ष्यन्यामिव ॥ ११ ॥

भा०—हे (विश्व-वेदसः) विश्व के धन के स्वामियो ! वा समस्त ज्ञानों और धनों को धारण करने वाले विद्वान् वीर पुरुषो ! मैं राजा (नमस्युः) 'नमस्' अर्थात् शत्रुओं को विनय की शिक्षा देने वाले दण्ड को अपने वश में करना चाहने वाला होकर (वः) आप लोगों को (वामस्य भक्तये) उत्तम ऐश्वर्य के सेवन करने के लिये (इदा हि वः) अब आप लोगों को (अन्याम् उप स्तुतिम् इव) नई से नई शिक्षा (आ उप असृक्षि) प्रदान करूं ।

उदु ष्य वः सविता सुप्रणीतयोऽस्थादूर्ध्वो वरेण्यः ।
नि द्विपादश्चतुष्पादो अर्थिनोऽविश्रन्पतयिष्णवः ॥ १२ ॥

भा०—हे (सु-प्र-णीतयः) पूज्य, उत्तम नीति और व्यवहार वाले पुरुषो ! (स्यः सविता) वह सबका उत्पादक परमेश्वर (वरेण्यः) सबसे वरण करने योग्य, सबको श्रेष्ठ मार्ग में ले चलने हारा, (ऊर्ध्वः) ऊपर (वः उत् अस्थात्) आप सबके ऊपर अधिष्ठाता रूप में विराजमान है । और (पत-यिष्णवः) वेग से जाने और ऐश्वर्यों के स्वामी बनना चाहने वाले

(द्विपादः चतुष्पादः) दो पाये और चौपाये भी (अर्थिनः) याचकवत् (नि अविश्रन्) उसके अधीन विराजते हैं।

देवन्देवं वोऽवसे देवन्देवमभिष्टये।

देवन्देवं हुवेम वाजसातये गृणन्तो देव्या धिया ॥ १३ ॥

भा०—हम लोग (देव्या धिया) उत्तम ज्ञानमय प्रकाश के देने वाली, सुखदायी (धिया) वाणी से (वः गृणन्तः) आप लोगों के प्रति उपदेश करते हुए (अवसे) अपनी रक्षा के लिये (देवं-देवम्) सर्व सुखदाता, सर्वप्रकाशक प्रभु को और (अभिष्टये) अभीष्ट सुखादि को प्राप्त करने के लिये भी (देवं-देवं) सर्व प्रकाशक, सर्वप्रद, अति कमनीय प्रभु की और (वाज-सातये) ऐश्वर्य, बल, अन्न और ज्ञान प्राप्त करने के लिये (देवं-देवं) सर्व सुखादि के दाता, ज्ञानप्रकाशक प्रभु की (हुवेम) प्रार्थना करें।

देवासो हि ष्मा मनवे समन्यवो विश्वे साकं सरातयः।

ते नो अद्य ते अपरं तुचे तु नो भवन्तु वरिवोविदः॥ १४ ॥

भा०—(समन्यवः देवासः) ज्ञानवान्, और दानशील और तेजस्वी और (विश्वे) समस्त (स-रातयः) धनादि सम्पन्न पुरुष (मनवे) मननशील व्यक्ति के उपकार के लिये ही (वरिवः-विदः भवन्तु) उत्तम धन को प्राप्त कराने वाले हों। और (ते) वे (अद्य) आज (नः) हमें भी (वरिवः-विदः भवन्तु) धनदाता हों। (अपरं तु) बाद में भी (नः तुचे) हमारे पुत्रादि के लिये भी (वरिवः-विदः भवन्तु) धनादि के दाता हों।

प्र वः शंसाम्यद्रुहः संस्थ उपस्तुतीनाम्।

न तं धूर्तिर्वरुण मित्र मर्त्यं यो वो धामभ्योऽविधत् ॥१५॥

भा०—हे (अद्रुहः) द्रोहरहित पुरुषो ! (संस्थे) एकत्र मिलकर बैठने के योग्य सभा आदि में (उप-स्तुतीनां) स्तुति योग्य (वः) आप लोगों की (प्र शंसामि) प्रशंसा करता हूं। (यः मर्त्यः) जो मनुष्य है (वरुण)

श्रेष्ठ, हे (मित्र) स्नेहवान् ! (धामभ्यः) उत्तम जन्म, स्थान और तेज को प्राप्त करने के लिये (वः अविधत्) आप लोगों की सेवा करता है (तं) उसको (धूर्त्तिः) किसी प्रकार की हिंसा या बाधा नहीं सताती।

प्र स क्षयं तिरते वि महीरिषो यो वो वराय दाशति ।
प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्पर्यरिष्टः सर्व एधते ॥ १६ ॥ ३३ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (यः) जो मनुष्य (वः) आप लोगों को (वराय) श्रेष्ठ कार्य के लिये (दाशति) दान करता है (सः) वह (क्षयं) अपने गृहादि और ऐश्वर्य को (प्र तिरते) बढ़ा लेता है, वह (महीः इषः प्र तिरते) बहुत उत्तम अन्नों और उत्तम, वा बड़ी अभिलाषाओं को भी पूर्ण कर लेता है, वह (सर्वः) सब प्रकार से ही (अरिष्टः) आबाधित, दुःखरहित होकर (धर्मणः परि) धर्म के द्वारा (प्रजाभिः प्र जायते) प्रजाओं से प्रजावान् होता और (परि एधते) खूब बढ़ता है। इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः ॥

ऋते स विन्दते युधः सुगेभिर्यात्यध्वनः ।
अर्यमा मित्रो वरुणः सरातयो यं त्रायन्ते सजोषसः ॥ १७ ॥

भा०—(अर्यमा) शत्रुओं वा दुष्ट पुरुषों का नियन्ता न्यायवान्, (मित्रः) स्नेहवान् और (वरुणः) श्रेष्ठजन (स-रातयः) दानशील, कृपालु और (स-जोषसः) प्रीतियुक्त होकर (यं त्रायन्ते) जिसकी रक्षा करते हैं (सः) वह राष्ट्रवासी जन (युधः ऋते) विना युद्ध के ही (विन्दते) ऐश्वर्य प्राप्त करता और (सु-गेभिः) उत्तम सुखप्रद यानों से (अध्वनः याति) मार्गों को जाता आता है।

अज्रे चिदस्मै कृणुथा न्यञ्चनं दुर्गे चिदा सुसरणम् ।
एषा चिदस्मादशनिः परो नु सास्त्रेधन्ती वि नश्यतु ॥ १८ ॥

भा०—आप लोग (अस्मै) इस राष्ट्र वा जनलोक के हितार्थ हे विद्वानो! वीर जनो! (अब्रे चित्) न पराजित होने योग्य, शत्रु सैन्य, वा शत्रु नगर में भी (नि-अय्नं कृणुथा) नित्य आया जाया करो। और (अस्मत्) इस रक्षा योग्य जन से (अशनिः) विद्युत्वत् घातक शस्त्र अस्त्रादि वा (अशनिः) मार कर खाजाने वाली क्षुधा, वा महामारी आदि फैलने वाली विपत्ति भी (सास्रेधन्ती) विनाश करती हुई बला, (परः विनश्यतु) दूर चली जाय।

यद॒द्य सूर्ये॑ उद्य॒ति प्रिय॑क्षत्रा ऋ॒तं द॒ध।

यन्नि॒म्रुचि॑ प्र॒बुधि॑ विश्ववेदसो॒ यद्वा॑ म॒ध्यन्दि॑ने दि॒वः ॥ १९ ॥

भा०—(यत्) जिस प्रकार (दिवः निम्रुचि) सूर्य के अस्त काल में, (प्रबुधि) प्रबोध या उदयकाल में (यद्वा) अथवा (मध्यंदिने) मध्यान्ह में भी सूर्य की किरणें (ऋतं दधे) तेज को धारण किये ही रहती हैं उसी प्रकार हे (विश्व-वेदसः) वा समस्त धनों और ज्ञानों के स्वामियो! हे विद्वानो और वीर पुरुषो! आप लोग भी (प्रियक्षत्राः) 'क्षत्र' अर्थात् बल वीर्य, जल अन्नादि के प्रिय, तदभिलाषी जनो! आप लोग भी (अद्य) आज (सूर्ये) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष के अधीन वा ज्ञान के सूर्यवत् प्रकाशक आचार्य के (उद्-यति) उदय होने वा उत्तम यत्नवान् होने पर आप लोग (नि-म्रुचि) निम्न गति, विनयशील होने पर सूर्यास्त होने के काल में (प्रबुधि) प्रबोध काल में, वा सूर्योदय काल में, (यद्वा) अथवा (मध्यन्दिने) मध्याह्न काल में (ऋतं दध) ऋत अर्थात् सत्य न्याय, वेद, तेज और अन्न को धारण करो।

यद्वा॑भिपि॒त्वे अ॑सुरा ऋ॒तं य॒ते छ॒र्दिर्ये॒म वि दा॒शुषे॑।

व॒यं तद्वो॑ वसवो विश्ववेदस॒ उप॑ स्थेयाम॒ मध्य॒ आ ॥ २० ॥

भा०—हे (असुरः) बलवान्, दुष्टों को उखाड़ फेंकने में समर्थ वीर पुरुषो! प्राणों के दाता वा प्राणों के अभ्यास में लगे विद्वानो! आप

लोग (अपिपित्वे) प्राप्त होकर (यत् वा ऋतं वियेम) जो भी सत्य ज्ञान है उसे हम प्रदान करें और (यते दाशुषे) यत्न शील वा शरणागत, दानशील वा सेवक जन को भी (छर्दिः) आश्रय और ज्ञान दीप्ति (वि-येम) विशेष रूप में प्रदान करें। हे (वसवः) विद्वान जनो ! हे (विश्व-वेदसः) समस्त धनों और ज्ञानों के स्वामि जनो ! हम लोग भी (वः) आप लोगों के (मध्ये) बीच में (तत् छर्दिः) उस गृह वा शरण में (उप स्थेयाम) सदा उपस्थित रहें।

यद्द्य सूर॒ उदि॑ते॒ यन्म॒ध्यन्दि॑न आ॒तुचि॑ ।
वा॒मं ध॒त्थ मन॑वे विश्ववेदसो॒ जुह्वा॑नाय॒ प्रचे॑तसे ॥ २१ ॥

भा०—(यत्) जिस प्रकार (उद्-इते) उदय, को प्राप्त करते हुए और (मध्यन्दिने) मध्य दिन में (आ-तुचि) सब ओर संतापित करने वाले (सूरे) सूर्य के किरणोंवत् उसके समान तेजस्वी पुरुष के अधीन (यत् यत् वामं धत्थ) जिस २ उत्तम ज्ञान और धन को धारण करो उसको आप लोग (विश्व-वेदसः) समस्त धनों और ज्ञानों के स्वामी होकर, (जुह्वानाय) दान देने वाले और (प्र-चेतसे) उत्तम चित्त और उत्तम ज्ञानी पुरुष के लिये (धत्थ) दे दिया करो।

व॒यं तद्वः॑ सम्राज॒ आ वृ॑णीमहे पु॒त्रो न ब॑हु॒पाय्य॑म् ।
अ॒श्याम॒ तदा॑दित्या॒ जुह्व॑तो ह॒विर्येन॒ वस्यो॑ऽन॒शाम॑हे ॥२२॥३४॥

भा०—हे (सम्-राजः) सम्मिलित होकर अतिदीप्ति से चमकने वाले किरणों वत् वीर पुरुषो ! (पुत्रः न) पुत्र के समान (वयं) हम लोग भी (वः) आप लोगों के (तत्) उस (बहु-पाय्यं) बहुतों के पालक, और बहुतों से भोग्य ऐश्वर्य की (आ वृणीमहे) याचना करते हैं ! हे (आदित्याः) सूर्य की किरणों वत् 'अदिति' भूमिमाता के सत्पुत्रो ! हम लोग (जुह्वतः) आहुति देने वाले यज्ञकर्त्ता की पवित्र

(हविः) अन्नवत् हम भी अपने दाता स्वामी के दिये (हविः) अन्न का (अदयना) भोग करें (येन) जिससे हम भी (वस्वः) उत्तम धन को (अनशामहै) प्राप्त करें । इति चतुस्त्रिंशो वर्गः ॥

[२८]

मनुर्वैवस्वत ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, २ गायत्री विराड् गायत्री । ४ विराडुष्णिक् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

ये त्रिंशति त्रयस्परो देवासो बर्हिरासदन् ।
विदन्नह द्वितासनन् ॥ १ ॥

भा०—(ये) जो (देवासः) तेजस्वी, उत्तम दानशील, और विजयेच्छुक, (त्रिंशति त्रयः) तीस ऊपर तीन अर्थात् संख्या में ३३ विद्वान् वीर जन, (बर्हिः आसदन्) यज्ञ, उत्तम आसन वा राष्ट्र के उत्तम पद प्राप्त करते हैं, वे (द्विता विदन्) सत् और असत् दोनों का ज्ञान करें । और (असनन्) निग्रह और अनुग्रह दोनों के देने वाले हों ।

वरुणो मित्रो अर्यमा स्मद्रातिषाचो अग्नयः ।
पत्नीवन्तो वषट्कृताः ॥ २ ॥

भा०—(वरुणः) दुष्टों को वारण करने वाला और सज्जनों से वरण करने योग्य (मित्रः) और सर्वस्नेही, (अर्यमा) दुष्टों को दमन करने वाला न्यायकारी जन ये तीनों (अग्नयः) अग्रणी, प्रधान तेजस्वी पुरुष (स्मद्-राति-षाचः) उत्तम कर वेतनादि धन का सेवन करने वाले और (पत्नी-वन्तः) प्रजापालक शक्ति और नीति से युक्त होकर (वषट्-कृताः) उत्तम सत्कार से युक्त हों ।

ते नो गोपा अपाच्यास्त उदक्त इत्था न्यक् ।
पुरस्तात्सर्वया विशा ॥ ३ ॥

भा०—(ते) वे उक्त अधिकारी जन (सर्वया विशा) समस्त प्रजा से युक्त होकर (नः) हमारे (अपाच्याः) पश्चिम से, (ते उदक्) वे उत्तर से (इत्था) और इसी प्रकार (ते) वे (न्यक् पुरस्तात्) नीचे से और आगे से भी (गोपाः) रक्षक हों।

यथा वशन्ति देवास्तथेदसत्तदेषां नकिरा मिनत्।
अरावा चन मर्त्यः ॥ ४ ॥

भा०—(देवाः यथा वशन्ति) विद्वान्, तेजस्वी, उत्तम जन जैसा चाहते हैं (तेषां) उनकी वह इच्छा (तथा इत् असत्) वैसी ही सफल होती है, (मर्त्यः अरावा चन) अदानशील, मूर्ख मनुष्य (तेषां नकिः आमिनत्) उनका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता।

सप्तानां सप्त ऋष्टयः सप्त द्युम्नान्येषाम्।
सप्तो अधि श्रियो धिरे ॥ ५ ॥ ३५ ॥

भा०—(सप्तानां) वेग से आगे बढ़ने वाले वीरों और विद्वानों के (ऋष्टयः सप्त) हथियार और दृष्टियें भी सर्पणशील, और दूर २ तक वेग से जाने वाली हों। (एषाम् द्युम्नानि सप्त) इनके धन और यश भी फैलने वाले हों। वे (सप्त उ श्रियः अधि धिरे) वे व्यापक सम्पदाओं को ही धारण करें। अथवा विद्वानों और वीरों के सात विभाग, उनके सात प्रकार के आयुध और सात प्रकार के दर्शन और सात प्रकार के धन, और सात प्रकार की शोभाएं हैं। अध्यात्म में—शरीर में सात प्राणों की सात प्रकार की शक्तियां, सात प्रकार के तेज, और वे सात प्रकार की ही शोभाएं हैं। इति पञ्चत्रिंशो वर्गः ॥

[२९]

मनुर्वैवस्वतः कश्यपो वा मारीच ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१, २ आर्ची गायत्री। ३, ४, १० आर्ची स्वराड् गायत्री। ५ विराड् गायत्री। ६—९ आर्ची भुरिग्गायत्री ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

ब॒भ्रुरेको॒ विषु॑णः सू॒नरो॒ युवा॒ञ्ज्य॑ङ्क्ते हिर॒ण्यय॑म् ॥ १ ॥

भा०—(बभ्रुः) सबका भरण पोषण करने में समर्थ, (वि-षुणः) सब ओर जाने में समर्थ, (सु-नरः) उत्तम नेता, (युवा) बलवान् (हिरण्यम्) सुवर्ण के समान दीप्तियुक्त, सुन्दर (अञ्जि) रूप को (अंक्ते) प्रकट करता है, वह विश्व में प्रभु, और देह में आत्मा है।

योनि॒मेक॒ आ स॑साद॒ द्योत॑नो॒ऽन्तर्दे॒वेषु॒ मेधि॑रः ॥ २ ॥

भा०—(एकः) एक अद्वितीय, (मेधिरः) सब शत्रुओं को हनन करने, सबके साथ संगति करने में समर्थ एवं उत्तम बुद्धिमान्, (द्योतनः) सब पदार्थों को प्रकाशित करने वाला, (देवेषु अन्तः) इन्द्रियों के बीच, आत्मा के तुल्य, समस्त पृथिव्यादि पदार्थों के बीच में, (योनिम्) सब संसार के मूलकारण भूत प्रकृति को, गृह को गृहपति के समान (आससाद) अध्यक्ष रूप से अपने वश करता है।

वाशी॒मेको॑ बिभर्ति॒ हस्त॑ आय॒सीम॒न्तर्दे॒वेषु॒ निध्रु॑विः ॥ ३ ॥

भा०—वह (एकः) अद्वितीय (देवेषु अन्तः) विद्वानों, विजयेच्छुकों के बीच सेनापतिवत्, प्राणों के बीच आत्मवत्, समस्त तेजोमय एवं पृथिव्यादि तत्वों के बीच (हस्ते) अपने हाथ में (आयसीम् वाशीम्) सुवर्णमयी वंशी को गायक के समान, एवं लोह की बनी बसौली को शिल्पियों के समान, (आयसीम्) सबको संचालन करने में समर्थ (वाशीम्) ज्ञान वाणी वेद को वा सर्वसंचालिका, वशकारिणी प्रभुशक्ति को (निध्रुविः) स्थिर होकर, सबका धारक होकर (बिभर्ति) धारण करता है।

वज्र॒मेको॑ बिभर्ति॒ हस्त॒ आहि॑तं॒ तेन॑ वृ॒त्राणि॑ जिघ्नते ॥ ४ ॥

भा०—वह (एकः) एक अद्वितीय (हस्ते आहितं वज्रम्) हाथ में पकड़े शस्त्र के समान स्वयं (वज्रम्) वीर्य, बल को (आहितं) सर्वत्र व्यापक रूप से (बिभर्त्ति) धारण करता है। (तेन) उससे वह (वृत्राणि)

मेघस्थ जलों को विद्युत् के तुल्य, प्रकृति के आवरणकारी परमाणुओं को (जिघ्नते) आघात करता, उनमें स्पन्द उत्पन्न करता और संचालित करता है।

तिग्ममेको बिभर्ति हस्त आयुधं शुचिरुग्रो जलाषभेषजः ॥ ५ ॥

भा०—वह (एकः) एक, अकेला, अद्वितीय, दूसरे की अपेक्षा न करने वाला, प्रभु (शुचिः) दीप्तिमान् शुद्ध पवित्र, (उग्रः) सबसे बलवान्, दुष्टों को भयदाता, (जलाष-भेषजः) जलवत् शान्तिदायक दुःखनाशक, सब बाधाओं को दूर करने में समर्थ, वैद्य के समान, ही (तिग्मम्) तीक्ष्ण (आयुधम्) शस्त्र को (हस्ते बिभर्त्ति) अपने हाथ में, उत्तम शल्यचिकित्सकवत् अपने वश में रखता है। वह उसका अत्यन्त विवेक से उपयोग करता है।

पथ एकः पीपाय तस्करो यथाँ एष वेद निधीनाम् ॥ ६ ॥

भा०—(यथा तस्करः निधीनां वेद) जिस प्रकार चोर ख़ज़ानों का पता लगा लेता है वह (पथः पीपाय) मार्ग रोक रखता है उसी प्रकार (एषः) वह (एकः) अद्वितीय प्रभु (पथः) सब जीवों से प्राप्त करने योग्य मार्गों की, (पीपाय) रखवारी करता, वा (पथः पीपाय) सब नाना मार्गों से जाने वाले जीवों को पुष्ट करता है। वह (यथा) यथावत् (तस्करः = तत्-करः) उन नाना सृष्टि रचन, पालन, संहारादि अद्भुत कर्मों के करने हारा, प्रभु (निधीनाम्) समस्त ऐश्वर्यों को (वेद) स्वयं जानने, प्राप्त और अन्यों को प्राप्त कराने हारा है।

त्रीण्येक उरुगायो वि चक्रमे यत्र देवासो मदन्ति ॥ ७ ॥

भा०—(यत्र) जिनमें (देवासः) नाना सुखों की कामना करने वाले जीवगण, प्रकाशमान सूर्यादि लोक और विद्वान् जन (मदन्ति) आनन्द लाभ करते हैं, उन (त्रीणि) तीन लोकों को (एकः) एक, अद्वितीय (उरु-गायः) विशाल वाणी, वेद का स्वामी, महान् लोकों में व्यापक,

महान् कीर्त्तिमान् प्रभु (वि-चक्रमे) विशेष रूप से बनाता और उनमें व्यापता है ।

विभिर्द्वा चरत एकया सह प्र प्रवासेव वसतः ॥ ८ ॥

भा०—(प्रवासा इव एकया चरतः) जिस प्रकार दो प्रवासी एक स्त्री के साथ (प्रवसतः) प्रवास करें उसी प्रकार (द्वा) दो जीवात्मा और परमात्मा (विभिः) अपनी विषयभोग साधन इन्द्रियों, प्राणों, और ईश्वर व्यापक सामर्थ्यों से (एकया सह) एक प्रकृति के साथ एक काल में ही (चरतः) अच्छी प्रकार विचरते और (प्र वसतः) रहते हैं । जीव तो उस प्रकृति का उत्तम गृहस्थवत् भोग करता है और दूसरा ईश्वर उसमें व्यापक होकर भी प्रवासगत विरही पथिकवत् उससे निःसंग रहता है । इससे दोनों प्रवासीवत् हैं ।

सदो द्वा चक्राते उपमा दिवि सम्राजा सर्पिरासुती ॥ ९ ॥

भा०—(द्वा) वे दोनों (उपमा) एक दूसरे के तुल्य होकर ही (दिवि) द्यौ अर्थात् जीव कामना में और प्रभु तेजोमय आनन्दमय मोक्ष में (सदः चक्राते) अपना स्थान बनाये रहते हैं । वे दोनों (सम्राजा) खूब दीप्तिमान्, (सर्पिः-आसुती) घृत आसेचन योग्य दो अग्नियों के तुल्य हैं । प्रभु (सर्पिः-आसुतिः) सर्पणशील सूर्यादि लोकों का उत्पादक, और उनका संचालक है । इसी प्रकार जीव भी प्राणों का संचालक है ।

अर्चन्त एके महि साम मन्वत तेन सूर्यमरोचयन् ॥१०॥३६॥

भा०—(एके) एक, विद्वान् जन (अर्चन्तः) उस प्रभु की अर्चना करते हुए (महि साम) बड़े भारी सर्वत्र समस्त, व्यापक बल को (मन्वत) जान लेते हैं और (तेन) उसी से वे (सूर्यम्) सर्वोत्पादक प्रभु को (अरोचयन्) सबसे अधिक चाहते हैं । इति षट्त्रिंशो वर्गः ॥

[३०]

मनुर्वैवस्वत ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवताः ॥ छन्दः—१ निचृद् गायत्री । २ पुर उष्णिक् । ३ विराड् बृहती । ४ निचृदनुष्टुप् ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

नहि वो अस्त्यर्भको देवासो न कुमारकः ।
विश्वे सतो महान्त इत् ॥ १ ॥

भा०—हे (देवासः) विद्वान् वीर पुरुषो ! हे जीवो ! (वः) आप लोगों में से कोई भी (अर्भकः नहि अस्ति) छोटा बच्चा नहीं, (न कुमारकः) न बालक है, वा (कुमारकः) कुत्सित उपायों से दूसरे को वा अपने आपको मारने वाला भी (न अस्ति) नहीं हो। आप (विश्वे) सब लोग (सतः महान्तः इत्) सत् प्रकृति से महान् वा विद्यमान बड़े २ गुणों से अधिक शक्तिशाली हो।

इति स्तुतासो असथा रिशादसो ये स्थ त्रयश्च त्रिंशच्च ।
मनोर्देवा यज्ञियासः ॥ २ ॥

भा०—(ये) जो आप लोग (मनोः) मननशील और राष्ट्र को अपने वश में करने वाले (यज्ञियासः) यज्ञ, पूजा, सत्संगादि के योग्य (देवाः) ज्ञानी, (रिशादसः) दुष्टों के नाशक (त्रयः च त्रिंशत् च स्थ) तेंतीस (३३) होते हो वे सब। (इति) इस प्रकार (स्तुताः असथ) स्तुति युक्त, प्रशंसित होवो।

ते नस्त्राध्वं तेऽवत त उ नो अधि वोचत ।
मा नः पथः पित्र्यान्मानवादधि दूरं नैष्ट परावतः ॥ ३ ॥

भा०—(ते) वे आप लोग (नः त्राध्वम्) हमारी रक्षा करो। (ते अवत) वे आप लोग हमें बचाओ। (ते उ नः) वे ही आप लोग हम पर (अधि वोचत) अध्यक्ष होकर आज्ञा या शासन करो और अधिकाधिक उपदेश किया करो। और आप लोग (नः) हमें (पराः

वतः) दूर, परम प्रभु से चले आए (पित्र्यात्) पालक पिता के (मानवात्) मनु, मननशील विद्वान् के बनाये (पथः) मार्ग से (दूरं मा नैष्ट) दूर मत लेजाओ, उससे हमें पथभ्रष्ट मत करो।

ये दे॑वास इ॒ह स्थन॒ विश्वे॑ वैश्वान॒रा उ॒त ।
अ॒स्मभ्यं॒ शर्म॑ स॒प्रथो॒ गवेऽश्वा॑य यच्छत ॥ ४ ॥ ३७ ॥ ४ ॥

भा०—(इह) इस लोक या राष्ट्र में (ये देवासः स्थन) जो विद्वान् विजयाभिलाषी वा ज्ञानादि के दाता हैं (उत) और जो (विश्वे) सब (वैश्वानराः) सब के संचालक प्रभु के भक्त, वा सब मनुष्यों के हितैषी हैं, वे (अस्मभ्यं) हमारे लिये और हमारे (गवे अश्वाय) गौ, घोड़े आदि पशुओं के लिये भी (सप्रथः शर्म) विस्तृत सुख और गृहादि (यच्छत) प्रदान करो। इति सप्तत्रिंशो वर्गः ॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

[३१]

मनुर्वैवस्वत ऋषिः ॥ १—४ इज्यास्तवो यजमानप्रशंसा च । ५—९ दम्पती १०—१८ दम्पत्योराशिषो देवताः ॥ छन्दः—१, ३, ५, ७, १२ गायत्री । २, ४, ६, ८ निचृद् गायत्री । ११, १३ विराड् गायत्री । १० पादनिचृद् गायत्री । ९ अनुष्टुप् । १४ विराडनुष्टुप् । १५—१७ विराट् पंक्तिः । १८ आर्ची भुरिक् पंक्तिः ॥

यो य॒जाति॒ यजा॑त॒ इत्सु॒नव॑च्च॒ पचा॑ति च ।
ब्र॒ह्मेदिन्द्र॑स्य चाकनत् ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो (यजाति) यज्ञ करता, दान देता, ईश्वरोपासना करता है (यजाते इत्) दान देता और पूजा ही करता चला जाता है, (सुनवत्) सोमरस का सम्पादन कर, उत्तम ऐश्वर्य लाभ करता, और (पचाति च) पाक यज्ञ करता, वा अपने आपको ज्ञानाग्नि, तप आदि में परिपक्व करता है। वह (इन्द्रस्य ब्रह्म) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु के महान् गुण-वचनों, वेद-वचनों को (चाकनत्) सदा चाहता है।

पुरोळाशं यो अस्मै सोमं ररत आशिरम्।
पादित्तं शक्रो अंहसः ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो परमेश्वर (अस्मै) इस समस्त संसार को (आशिरं) खाने योग्य (पुरोडाशं) पूर्व ही देने योग्य, अन्न (सोमं) ओषधि लतादि रूप में (ररते) प्रदान करता है वही (शक्रः) शक्ति शाली परमेश्वर (तं) उस संसार को (अंहसः) पाप, और नाश होने से भी (पात्) बचाता है। (२) (यः) जो प्रजाजन इस शक्तिमान् राजा को (सोमं) ऐश्वर्य (पुरोडाशं) अन्नवत् भोगने के लिये प्रदान करता है शक्तिशाली राजा उस प्रजाजन को पाप वा पापी जन से नाश होने से बचावे।

तस्य द्युमाँ असद्रथो देवजूतः स शूशुवत्।
विश्वा वन्वन्नमित्रिया ॥ ३ ॥

भा०—(सः) वह पूर्वोक्त शक्तिशाली स्वामी (विश्वा) सब प्रकार के (अमित्रिया) शत्रुओं के किये छल कपटादि के कार्यों को (वन्वन्) नाश करता हुआ (देव-जूतः) विद्वानों से सेवित होकर (शूशुवत्) बहुत वृद्धि को प्राप्त होता है। (तस्य) उसका (रथः) रथ भी (द्युमान्) कान्तियुक्त और (देव-जूतः) अग्नि, वायु, विद्युत् आदि पदार्थों से चलने वाला (असत्) होता है। (२) वह विद्वान् सब अमित्रभावों का नाश करता है, उसका (रथः) उपदेश (देव-जूतः) विद्याभिलाषियों से सेवित होकर (द्युमान्) अति तेजस्वी हो प्रसिद्ध हो जाता और वह वृद्धि को प्राप्त होता है।

अस्य प्रजावती गृहेऽसश्चन्ती दिवेदिवे।
इळा धेनुमती दुहे ॥ ४ ॥

भा०—(अस्य इडा) उसकी भूमि (प्रजावती) प्रजा से युक्त होकर (दिवे दिवे) दिनों दिन (गृहे असश्चन्ती) गृह में स्थिर रहने वाली

पत्नी वा गौ के समान (धेनुमती) गवादि पशु युक्त और वाणी, आज्ञा युक्त होकर (दुहे) नाना सुखों को प्रदान करती है।

या दम्पती समनसा सुनुत आ च धावतः।
देवासो नित्ययाशिरा ॥ ५ ॥ ३८ ॥

भा०—हे (देवासः) विद्वान् लोगो ! (या) जो (दम्पती) पति पत्नी, (सम्मनसा) समान चित्त होकर (सुनुतः) पुत्र उत्पन्न करते हैं और (नित्यया) नित्य (आशिरा) उपभोग करने योग्य दुग्ध आदि उत्तम द्रव्य से (आ धावतः च) उसे शुद्ध करते हैं और पालते हैं वे दोनों—

प्रति प्राशव्याँ इतः सम्यञ्चा बर्हिराशाते।
न ता वाजेषु वायतः ॥ ६ ॥

भा०—(प्राशव्यान्) उत्तम खाने योग्य पदार्थों को (प्रति इतः) प्रतिदिन प्राप्त करें। वे (सम्यञ्चौ) अच्छी प्रकार जीवन निर्वाह करते हुए (बर्हिः आशाते) उत्तम धान्य का उपभोग करें और (ता) वे दोनों (वाजेषु) अन्नों, बलों और ऐश्वर्यों से (न वायतः) वञ्चित नहीं रहते।

न देवानामपि ह्नुतः सुमतिं न जुगुक्षतः।
श्रवो बृहद्विवासतः ॥ ७ ॥

भा०—वे दोनों विवाहित पति पत्नी (देवानाम्) विद्वान् पुरुषों के बीच रहते हुए (अपि) भी, कभी भी (न ह्नुतः) कुटिलता का व्यवहार नहीं करें। और वे दोनों (सुमतिम्) अपनी उत्तम सम्मति, शुभ ज्ञान को (न जुगुक्षतः) कभी न छिपावें, प्रत्युत परस्पर हित के उत्तम ज्ञान देते रहा करें। वे दोनों नित्य (बृहत् श्रवः) बड़े भारी वेद-ज्ञान का (विवासतः) प्रकाश करें, उसका अभ्यास करें, और श्रवण करने योग्य महान् प्रभु की सेवा किया करें।

पुत्रिणा ता कुमारिणा विश्वमायुर्व्यश्नुतः ।
उभा हिरण्यपेशसा ॥ ८ ॥

भा०—वे दोनों स्त्री पुरुष, पति पत्नी (पुत्रिणा) पुत्रों वाले और (कुमारिणा) प्रथम वयस में वर्त्तमान कुमार अर्थात् नवयुवक सन्तानों के माता पिता होकर (विश्वम् आयुः) पूर्ण आयु का (वि अश्नुतः) भोग करें । और (उभा) दोनों (हिरण्य-पेशसा) सुवर्ण के उत्तम अलंकार धारण करने वाले हों ।

वीतिहोत्रा कृतद्वसू दशस्यन्तामृताय कम् ।
समूधो रोमशं हतो देवेषु कृणुतो दुवः ॥ ९ ॥

भा०—वे दोनों (वीति-होत्रा) विशेष ज्ञानयुक्त वाणी को बोलने हारे और (कृतद्वसू = कृत-वसू) उत्तम धन, गृह, बल, वीर्यादि प्राप्त करके (दशस्यन्ताम्) दान दिया करें । वे (अमृताय कम्) अमृत अर्थात् न मरने वाली जीवित सन्तान को प्राप्त करने के लिये (ऊधः रोमशं) उत्तम सन्तान आधान और धारण करने वाले, रोम युक्त अर्थात् यौवनयुक्त अंगों को (सं-हतः) संयोजित करें, उत्तम सन्तान उत्पन्न करें और (देवेषु) विद्वानों की (दुवः) सेवा (कृणुतः) किया करें ।

ये पांचों ऋचाएं गृहस्थ स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्यों का उपदेश करती हैं । पञ्चभिर्दम्पती प्रस्तूयेताम् इति सायणः ।

आ शर्म पर्वतानां वृणीमहे नदीनाम् ।
आ विष्णोः सचाभुवः ॥ १० ॥ ३९ ॥

भा०—हम लोग (पर्वतानां) पर्वतों, मेघों और पालन शक्ति से युक्त पुरुषों और (नदीनाम्) नदियों, वाणियों और समृद्ध प्रजाओं के (शर्म) सुख को (आवृणीमहे) प्राप्त करें । और हम (सचाभुवः) समवाय बनाकर रहने वाले (विष्णोः) व्यापक शक्ति वाले प्रभु वा स्वामी के (शर्म) सुख को भी प्राप्त करें । इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

ए॒तु पू॒षा र॒यिर्भगः॑ स्व॒स्ति स॑र्व॒धात॑मः ।
उ॒रुरध्वा॑ स्व॒स्तये॑ ॥ ११ ॥

भा०—(स्वस्तये) सुख, कल्याण की वृद्धि के लिये, (पूषा) सर्व-पोषक स्वामी, वा भूमि हमें (आ-एतु) प्राप्त हो (सर्व-धातमः) सबको उत्तम रीति से पालन पोषण करने में समर्थ (रयिः) ऐश्वर्य, (भगः) सम्पन्न और (उरुः अध्वा) बड़ा मार्ग प्राप्त हो । (२) परमेश्वर पोषक होने से 'पूषा', ऐश्वर्यवान् सेवनीय होने से रयि और भग है । वही महान् प्राप्तव्य होने से 'उरु अध्वा' है । वह हमें सुख-कल्याणकारक हो ।

अ॒रम॑तिरन॒र्वणो॒ विश्वो॑ दे॒वस्य॒ मन॑सा ।
आ॒दि॒त्याना॑मने॒ह इत् ॥ १२ ॥

भा०—(अनर्वणः) अहिंसक (देवस्य) सर्वदाता, सर्वप्रकाशक प्रभु के (मनसा) मनन और ज्ञान से (विश्वः) समस्त मनुष्य (अर-मतिः) बड़ा ज्ञानवान्, बुद्धिमान् हो जाते हैं और (आदित्यानाम्) आदित्य ब्रह्मचारी, तेजस्वी पुरुषों के (मनसा) ज्ञानोपदेश से सब कोई (अनेहः इत्) पाप रहित भी हो जाते हैं ।

यथा॑ नो मि॒त्रो अ॑र्य॒मा वरु॑णः॒ सन्ति॑ गो॒पाः ।
सु॒गा ऋ॒तस्य॒ पन्था॑ः ॥ १३ ॥

भा०—(यथा) जिस प्रकार (मित्रः) स्नेहवान् (अर्यमा) न्यायकारी और (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ, कष्टों के वारक जन (नः) हमारे (गोपाः सन्ति) रक्षक होते हैं उसी प्रकार (ऋतस्य) सत्य, न्याय और वेद का (पन्थाः) मार्ग (सु-गाः) सुख से गमन करने योग्य है ।

अ॒ग्निं वः॑ पू॒र्व्यं गि॒रा दे॒वमी॑ळे॒ वसू॑नाम् ।
स॒प॒र्यन्त॑ः पुरुप्रि॒यं मि॒त्रं न क्षे॑त्र॒साध॑सम् ॥ १४ ॥

भा०—हे विद्वान् जनो ! मैं (वः) आप लोगों के बीच (वसूनां देवम्) मनुष्यों में सर्व-सुखदाता, ऐश्वर्यों के देने वाले, वा ब्रह्मचा-

रियों में ज्ञानप्रद ज्ञानप्रकाशक को (पूर्व्यं अग्निं) पूर्ण ज्ञानवान् नायक-वत् 'अग्नि' तुल्य तेजस्वी होने से 'अग्नि' नाम से (ईपे) उसकी स्तुति करता हूं। और उसी (पुरु-प्रियं) सब के लिये, (क्षेत्र-साधसम्) निवास योग्य गृह वा देह के वशीकर्त्ता, आत्मवत् प्रिय (मित्रं न) मित्र के समान स्नेही प्रभु की (सपर्यन्तः) सेवा, परिचर्या और भजन करते हुए उसी प्रभु की स्तुति किया करें।

मक्षू देववतो रथः शूरो वा पृत्सु कासु चित्।
देवानां य इन्मनो यजमान इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत्॥१५॥

भा०—जिस प्रकार (कासु चित् पृत्सु शूरः वा) किन्हीं भी शत्रु सेनाओं में शूरवीर पुरुष निर्भय होकर प्रवेश कर जाता है उसी प्रकार (देववतः रथः) देव, सर्वप्रद, सर्वप्रकाशक प्रभु के भक्त जन का रथ के समान आनन्दप्रद उपदेश (मक्षु) शीघ्र ही (पृत्सु) मनुष्यों के बीच प्रवेश कर जाता है। (यः) जो (यजमानः) दानशील वा ईश्वर का उपासक, समर्थ पुरुष (देवानां मनः इत्) युद्धविजयी, वीरों और विद्वानों के चित्त को (इयक्षति) आदर पूर्वक सन्तुष्ट कर देता है वह (अयज्वनः) अदाता, कर न देने वाले वा अनीश्वरोपासकों को (अभि) परास्त करके (भुवत्) उनसे बढ़ जाता है।

न यजमान रिष्यसि न सुन्वान न देवयो।
देवानां य इन्मनो यजमान इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत् ॥ १६ ॥

भा०—हे (यजमान) दानशील ! हे यज्ञकर्त्ता ! हे ईश्वरोपासक ! तू कभी (न रिष्यसि) नष्ट वा पीड़ित न होगा। हे (सुन्वान) ऐश्वर्य उत्पन्न करने हारे ! हे पुत्र सन्तानादि के उत्पादक ! हे उपासना करने हारे (न रिष्यसि) तू कभी नाश को प्राप्त न हो। हे (देवयो) विद्वानों के इच्छुक ! हे (देवयो) शुभ गुणों के स्वामिन् ! तू कभी (न रिष्यसि)

दुःखित, पीड़ित न हो। क्योंकि (यः इत् देवानां मनः इयक्षति) जो उत्तम पुरुषों के मन को प्रसन्न रखता है वह (अयज्वनः अभि भुवत्) अदानशील अनीश्वरोपासकों को पराजित करता है।

नकिष्टं कर्मणा नशन्न प्र योषन्न योषति।
देवानां य इन्मनो यजमान इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत् ॥ १७ ॥

भा०—(यः इत्) जो मनुष्य अवश्य ही निश्चयपूर्वक (यजमानः देवानां मनः इयक्षति) विद्वान् पुरुषों के ज्ञान की उपासना करता है वह (अयज्वनः) ज्ञान की उपासना न करने वालों को (अभि भुवत् इत्) अवश्य ही परास्त करता है। (तं कर्मणा नकिः नशत्) उस तक कर्म के सामर्थ्य से भी कोई नहीं पहुंचता, न उसे नष्ट कर सकता है, और (न प्र योपत्) उसे कोई अपने स्थान से डिगा नहीं सकता। और वह स्वयं (न प्र योषति) पुत्र धनादि से वियुक्त नहीं होता।

असदत्र सुवीर्यमुत त्यदाश्वश्व्यम्। देवानां य इन्मनो यजमान इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत् ॥ १८ ॥ ४० ॥ २ ॥

भा०—(यत् इत् देवानां मनः) जो देव, उत्तम तेजस्वी विद्वान् पुरुषों के ज्ञान का (इयक्षति) आदर, सत्संग करता है, वह (अयज्वनः) सत्संग न करने वाले कदाचारी पुरुषों को (अभि भुवत् इत्) अवश्य परास्त करता है, क्योंकि उसका (अत्र) इस लोक में (सुवीर्यम् असत्) उत्तम वीर्य बल और विद्या सामर्थ्य हो जाता है और उसको (त्यत्) वह अलौकिक (आशु अश्व्यम्) शीघ्रगामी अश्वों से युक्त सैन्यादि और बलवान् इन्द्रिय-बल, सामर्थ्य प्राप्त होता है। इति चत्वारिंशो वर्गः ॥

इति षष्ठेऽष्टके द्वितीयोध्यायः समाप्तः ॥

तृतीयोऽध्यायः

[३२]

काण्वो मेधातिथिः ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ७, १३, १५, २७, २८ निचृद् गायत्री । २, ४, ६, ८—१२, १४, १६, १७, २१, २२, २४—२६ गायत्री । ३, ५, १६, २०, २३, २६ विराड् गायत्री । १८, ३० भुरिग् गायत्री ॥

प्र कृतान्यृजीषिणः कण्वा इन्द्रस्य गाथया ।
मदे सोमस्य वोचत ॥ १ ॥

भा०—हे (कण्वाः) विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (ऋजीषिणः) ऋजु, धर्मानुकूल इच्छा वाले पुरुष होकर (ऋजीषिणः) सत्य न्याय मार्ग पर प्रेरणा करने वाले (सोमस्य मदे) ओषधि, अन्न, ऐश्वर्यादि से खूब तृप्त, प्रसन्न होकर (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् प्रभु के (कृतानि) किये कार्यों और राजा के कर्त्तव्यों का (गाथया) गान करने योग्य वेदवाणी से (प्र वोचत) अच्छी प्रकार उपदेश करो ।

यः सृबिन्दमनर्शनिं पिप्रुं दासमहीशुवम् ।
वधीदुग्रो रिणन्नपः ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो तेजस्वी (सृबिन्दम्) आक्रमण करके प्रजा का धन हरण करने वाले (अनर्शनिं) अहिंसित बल के नेता (पिप्रुं) अपने ही पेट भरने वाले (दासम्) प्रजा के नाशक (अहीशुवम्) सर्प वा मेघवत् बढ़ने वाले दुष्टजन को (उग्रः) भयंकर होकर (वधीत्) विनाश या दण्डित करे वह ही (अपः) आप्त प्रजाओं और जलों को सूर्य वा विद्युत्वत् (रिणन्) मार्ग में चलाने में समर्थ होता है ।

न्यर्बुदस्य विष्टपं वर्ष्माणं बृहतस्तिर । कृपे तदिन्द्र पौंस्यम् ॥३॥

भा०—जिस प्रकार विजुली (अर्बुदस्य बृहतः विस्तपं वर्ष्माणं कृपे नि तिरति) बड़े भारी मेघ के तापरहित वृष्टिकारक रूप को छिन्न भिन्न करके कृषि के लिये दे देता है, उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् शत्रुहन्तः ! तू भी (अर्बुदस्य) प्रजा को दुःख देने वाले वा मेघवत् वा सहस्रों की संख्या में (बृहतः) बड़े भारी शत्रु सैन्य के (विस्तपं) विशेष तापकारी, (वर्ष्माणं) अस्त्रवर्षी प्रबल भाग को (नि तिर) विनाश कर, और हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! तू (तत् पौंस्यं) ऐसा ही बल पराक्रम (कृपे) किया कर ।

प्रति श्रुताय वो धृषत्तूर्णाशं न गिरेरधि । हुवे सुशिप्रमूतये ॥४॥

भा०—जिस प्रकार (गिरेः तूर्णाशं अधि धृषत्) विद्युत् मेघ से जल को बलपूर्वक गिरा देता है उसी प्रकार वह शत्रुहन्ता राजा (श्रुताय) प्रसिद्ध होने के लिये (वः) आप प्रजा जनों के (ऊर्णशं) हिंसा द्वारा नाश करने वाले दुष्ट दल को (गिरेः अधि) स्वयं पर्वतवत् उच्च पद से (प्रति अधि धृषत्) उसका मुकाबला करके खूब अधिक धर्षण करे उसे अधिकारपूर्वक दण्डित करे । जिससे वह फिर सिर न उठा सके । उसी (सुशिप्रम्) सुन्दर मुख, नासिका, वा मुकुट से सजे वा उत्तम वीर्यवान् राजा को मैं (ऊतये) प्रजागण अपनी रक्षा के लिये (हुवे) पुकारूं, उससे प्रार्थना करूं ।

स गोरश्वस्य वि व्रजं मन्दानः सोम्येभ्यः ।
पुरं न शूर दर्षसि ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—हे (शूर) वीर पुरुष ! तू (मन्दानः) प्रसन्न होकर अन्यों को भी प्रसन्न करता हुआ (सोम्येभ्यः) ऐश्वर्य के पालन करने में योग्य कुशल पुरुषों के लिये, (गोः व्रजं) वाणियों, भूमियों के समूह तथा (अश्वस्य) आशुगामी, अश्व सैन्य के (व्रजं) प्रयाणकारी बल को और (पुरं न वि दर्षसि) प्राकार या नगरी को विविध प्रकार से विदीर्ण कर ।

यदि॑ मे रा॒रणः॑ सु॒त उ॒क्थे वा॒ दध॑से॒ चनः॑ ।
आ॒रादुप॑ स्व॒धा ग॑हि ॥ ६ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! (यदि) यदि तू (मे सुते) मेरे उत्पन्न किये ऐश्वर्य में (रारणः) रमण करे, उसका उपभोग करे, और यदि (मे उक्थे) मेरे उत्तम वचन में ही (रारणः) प्रसन्न हो और (चनः दधसे) बहुत अन्न को धारण करे, तो तू (आरात्) दूर या समीप से भी (स्वधा) अपने धारण पोषण करने के नाना पदार्थों को (उप गहि) क्रय विक्रय या व्यापार द्वारा प्राप्त कर ।

व॒यं घा॑ ते॒ अपि॑ ष्मसि स्तो॒तार॑ इन्द्र गिर्वणः ।
त्वं नो॑ जिन्व सोमपाः ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (गिर्वणः) वाणी द्वारा याचना करने योग्य ! (वयं घ) हम अवश्य (ते स्तोतारः) तेरे स्तुति करने वाले (अपि स्मसि) हों । हे (सोमपः) ऐश्वर्य के पालक ! (त्वं नः जिन्व) तू हमें प्रसन्न और तृप्त कर, हमारी वृद्धि कर ।

उ॒त नः॑ पि॒तुमा भ॑र संररा॒णो अवि॑क्षितम् । मघ॑व॒न्भूरि॑ ते॒ वसु॑ ८

भा०—तू (सं-रराणः) समान भाव से प्रजासहित राष्ट्र में सुख भोग करता हुआ (नः) हमारे (अवि-क्षितम्) अविनष्ट (पितुम्) अन्न को (आ भर) प्राप्त करा । और हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हमें (ते) अपने (भूरि वसु आ भर) बहुत सा धन ऐश्वर्य भी प्राप्त करा ।

उ॒त नो॒ गोम॑तस्कृधि॒ हिर॑ण्यवतो अ॒श्विनः॑ ।
इळा॑भिः॒ सं र॑भेमहि ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! तेजस्विन् ! (उत) और तू (नः) हमें (गोमतः) गौ आदि पशु और भूमि आदि से सम्पन्न (कृधि) कर । तू हमें (हिरण्यवतः अश्विनः) उत्तम सुवर्ण धन और अश्वों का स्वामी (कृधि) कर । हम (इडाभिः) नाना उत्तम वाणियों

और अन्नों, भूमियों से (संरभे महि) अच्छी प्रकार जीवन का सुख प्राप्त करें। (२) हे (इन्द्र) आचार्य ! तू हमें (गोमतः) वाणी सम्पन्न (हिरण्यवतः अश्विनः) आत्मवान् जितेन्द्रिय कर, हम (इडाभिः) उत्तम वेदवाणियों से आनन्द लाभ करें।

बृहदुक्थं हवामहे सृप्रकरस्नमूतये।
साधु कृण्वन्तमवसे ॥ १० ॥ २ ॥

भा०—हम लोग (बृहदुक्थम्) वेद वाणी के उत्तम वचन जानने हारे, (ऊतये) रक्षा के लिये (सृप्रकरस्नम्) आगे बढ़े बाहु वाले, अन्यों दीनों को आगे हाथ बढ़ा कर बचाने वाले और (साधु कृण्वन्तम्) उत्तम काम करने वाले धर्मात्मा, पुण्यवान् पुरुष को (अवसे) रक्षा के निमित्त प्रार्थना करें।

यः संस्थे चिच्छतक्रतुरादीं कृणोति वृत्रहा।
जरितृभ्यः पुरूवसुः ॥ ११ ॥

भा०—(यः) जो (संस्थे चित्) संग्राम में भी (शतक्रतुः) नाना कर्म करने हारा, नाना प्रज्ञावान् (वृत्रहा) शत्रुहन्ता होकर (आत्) अनन्तर (ईं कृणोति) नाना शत्रुओं का नाश करता है। वह (जरितृभ्यः) विद्वानों के लिये (पुरु-वसुः) बहुत से ऐश्वर्यो का स्वामी हो। (२) अध्यात्म में पुरः इन्द्रियों में बसने वाला आत्मा इन्द्र है।

स नः शक्रश्चिदा शकद्दानवाँ अन्तराभरः।
इन्द्रो विश्वाभिरूतिभिः ॥ १२ ॥

भा०—(सः) वह (शक्रः) शक्तिशाली (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् राजा (दानवान्) नाना दान योग्य धनैश्वर्यवान् होकर (नः आ शकत्) हमें सब ओर से शक्तिमान् करे। और वह (विश्वाभिः ऊतिभिः) सब प्रकार की रक्षाओं से (नः अन्तः-आ-भरः) हमें अपने राष्ट्र के भीतर गर्भ में माता के समान धारण पोषण एवं पालन करने वाला हो।

यो रायो३ वनिर्महान्त्सुपारः सुन्वतः सखा।
तमिन्द्रमभि गायत ॥ १३ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (यः) जो प्रभु (रायः वनिः) ऐश्वर्य का देने हारा (महान्) गुण और शक्ति में महान् (सु-पारः) उत्तम रीति से पालन और पोषण करने और संकटों से पार उतारने हारा और (सखा) मित्र के समान स्नेही है (तम् इन्द्रं) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु स्वामी की (अभि प्रगायत) खूब स्तुति वा गुणों का गान करो।

आयन्तारं महि स्थिरं पृतनासु श्रवोजितम्।
भूरेरीशानमोजसा ॥ १४ ॥

भा०—(आयन्तारं) सब ओर से वश करने वाले, (महि स्थिरं) महान्, स्थिर, कूटस्थ, (पृतनासु) संग्रामों वा सेनाओं के बीच (श्रवः-जितम्) यश कीर्त्ति को विजय करने वाले और (ओजसा) पराक्रम से (भूरेः) बड़े भारी ऐश्वर्य वा जगत् के (ईशानम्) स्वामी की (अभि गायत) स्तुति करो।

नकिरस्य शचीनां नियन्ता सूनृतानाम्।
नकिर्वक्ता न दादिति ॥ १५ ॥ ३ ॥

भा०—(अस्य) इसकी (शचीनाम्) शक्तियों और (सूनृतानां) उत्तम सत्ययुक्त वाणियों का (नियन्ता) रोकने वाला (नकिः) कोई भी नहीं है। (न दात् इति वक्ता नकिः) वह नहीं देता ऐसा भी कहने वाला कोई नहीं। वह सबको श्रमानुरूप और कर्मानुरूप फल बड़े अनुग्रह से देता है।

न नूनं ब्रह्मणामृणं प्राशूनामस्ति सुन्वताम्।
न सोमो अप्रता पपे ॥ १६ ॥

भा०—(सुन्वताम्) ऐश्वर्य, अन्नादि उत्पन्न करने वाले, वा (सुन्वतां) उत्तम सन्तान उत्पन्न करने वाले, (प्राशूनां) उत्तम मार्ग

से जाने वाले, (ब्रह्मणां) विद्वान् ब्राह्मणों और ब्रह्मवेत्ताओं का (नूनं) निश्चय से कोई (ऋणं न अस्ति) ऋण शेष नहीं रहता। (सोमः) परम ऐश्वर्य वा यज्ञ में सोमरस, उत्तम अन्नादि का भोग भी (अप्रता) कोश न भरने वाले पुरुष को (न पपे) प्राप्त नहीं होता।

पन्य इदुप गायत पन्यं उक्थानि शंसत।
ब्रह्मा कृणोत पन्य इत् ॥ १७ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! आप लोग (पन्ये इत्) स्तुति योग्य परमेश्वर के निमित्त ही, उसको लक्ष्य करके ही (उप गायत) उपासना पूर्वक स्तुति गान करो। (पन्ये उक्थानि शंसत) उस स्तुत्य प्रभु के निमित्त ही उत्तम वेद-वचनों का उच्चारण करो। (पन्ये इत् ब्रह्म कृणोत) उस स्तोतव्य प्रभु के निमित्त ही वेद मन्त्रों का और यज्ञादि कर्मों का अनुष्ठान करो।

पन्य आ दर्दिरच्छता सहस्रा वाज्यवृतः।
इन्द्रो यो यज्वनो वृधः ॥ १८ ॥

भा०—(यः) जो (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्! प्रभु (यज्वनः) दानी, सत्संगी, यज्ञोपासक का (वृधः) बढ़ाने हारा है वही (पन्यः) स्तुति योग्य है वही (वाजी) ऐश्वर्यवान्, (अवृतः) मोहादि से अनावृत, नित्य मुक्त (शता सहस्रा) सैकड़ों हज़ारों बन्धनों को (आ दर्दिरत्) काट देता है।

वि षू चर स्वधा अनु कृष्टीनामन्वाहुवः।
इन्द्र पिब सुतानाम् ॥ १९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (सुतानां) जगत् में उत्पन्न जीवों का (पिब) पालन कर। तू (कृष्टीनाम्) समस्त मनुष्यों को (आ-हुवः) सब से आदरपूर्वक प्रार्थना करने योग्य और सब सुख देने वाला है तू (स्वधा अनु) अपनी शक्ति से जगत् का धारक होकर (वि सु चर)

अच्छी प्रकार सर्वत्र व्याप, (अनु चर) कर्मों के अनुसार उनको फल प्रदान कर। अथवा हे इन्द्र ! जीवात्मन् ! तु (कृष्टीनां) अपने आप कृष्टिवत्, परिश्रम से बोये बीजों की (स्वधाः अनु) स्वयं परिपुष्ट, स्वयं उत्पन्न के समान अपने किये कर्मों का (वि तु चर) उत्तम और विपरीत फल प्राप्त कर। (अनु आ हुवः) उनके अनुकूल ही सुख, दुःख प्राप्त कर (सुतानां) उत्पन्न फलों का ही (पिब) पालन कर।

पिब स्वधैनवानामुत यस्तुग्र्ये सर्चा। उतायमिन्द्र यस्तव २०।४

भा०—जिस प्रकार मनुष्य (स्व-धैनवानां पिबति) अपनी गौवों का दूध पीता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! आत्मन् ! तू (स्वःधैनवानान्) अपनी वाणियों द्वारा प्राप्त सत्-असत् फलों का उपभोग कर और (यः) जो पदार्थ (तुग्र्ये) पालन करने योग्य पुत्रादि में (सचा) विद्यमान है, (उत अयम्) और यह (यः तव) जो तेरा है तू उसे (पिब) पालन या उपभोग कर।

अतीहि मन्युषाविणं सुषुवांसमुपारणे। इमं रातं सुतं पिब ॥२१॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (मन्यु-साविनम्) मन्यु, क्रोध वा अभिमान से आधिपत्य करने वाले को (अति इहि) अतिलंघन कर। और (उप-अरणे) अरमणीय, कष्टदायी स्थान में (सुषुवांसम्) स्वामित्व करने वाले से भी (अति इहि) अधिक बढ़ जा। तू (इमं) इस (रातम्) अपने हाथ सौंपे (सुतं) उत्पन्न प्रजागण को (पिब) पालन कर।

इहि तिस्रः परावत इहि पञ्च जनाँ अति।
धेना इन्द्रावचाकशत् ॥ २२ ॥

भा०—तू (परावतः) दूर के (तिस्रः) तीनों प्रकार के उत्तम मध्यम, निकृष्ट प्रजाओं को (अति इहि) अपने वश कर। और (पञ्चजनान् अति इहि) चार वर्ण और पांचवें निषाद इन पाँचों को भी अपने वश

कर। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राजन्! तू (धेना) नाना वाणियों को (अव चाकशत्) देख। अथवा हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (परावतः) दूर से भी (तिस्रः) धेनाः (इहि) तीनों प्रकार के ऋग यजुः साम वाणियों को प्राप्त कर (अव चाकशत्) उनसे देख, न्याय और ज्ञान का दर्शन कर। पांचों जनों को अपने अधीन कर, उन इन्द्रियों पर आत्मावत् शासन कर।

सूर्यो रश्मिं यथा सृजा त्वा यच्छन्तु मे गिरः।
निम्नमापो न सध्र्यक् ॥ २३ ॥

भा०—(यथा सूर्यः रश्मि सृजति) जिस प्रकार सूर्य तेज और राष्ट्र को व्यापने और रक्षा करने वाला शासन करता है इसी प्रकार तू भी (रश्मि सृज) तेज और राष्ट्र को व्यापने और वश करने वाला शासन कर। (आपः न सध्र्यक् निम्नम्) जिस प्रकार जलधाराएं एकही साथ सब नीचे प्रदेश में आकर उसे घेर लेती हैं उसी प्रकार (मे गिरः) मेरी वाणियां भी (त्वा) तुझ सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष को (आयच्छन्तु) प्राप्त हों।

अध्वर्यवा तु हि षिञ्च सोमं वीराय शिप्रिणे।
भरा सुतस्य पीतये ॥ २४ ॥

भा०—हे (अध्वर्यो) यज्ञ करने हारे, यज्ञके स्वामिन्! तू (शिप्रिणे) मुकुट धारण करने वाले (वीराय) वीर पुरुष के लिये (सोमं आ सिञ्च) ओषधि रसवत् ऐश्वर्यवान् राष्ट्र का आसेचन कर, उसके ऐश्वर्य के पद की वृद्धि कर। (पीतये) पालन करने के लिये (सुतस्य) उत्पन्न राष्ट्रजन को पुत्रवत् (भर) पुष्ट कर।

य उद्न फलिगं भिनन्न्य१क्सिन्धूँरवासृजत्।
यो गोषु पक्वं धारयत् ॥ २५ ॥ ५ ॥

भा०—जिस प्रकार तीव्र विद्युत् (फलिगं भिनत्) मेघ का छेदन

भेदन करता और (उद्नः सिन्धून् न्यक् अव असृजत्) जल की धाराओं को नीचे फेंकता है और (गोषु पक्वं धारयत्) भूमियों में परिपक्व अन्न को पुष्ट करता है, उसी प्रकार जो राजा (फलिगं भिनत्) फलयुक्त सशस्त्र सैन्य से आक्रमण करने वाले शत्रु को छिन्न भिन्न करता, और राष्ट्र में (उद्नः सिन्धून् न्यक् अव असृजत्) जल की नाना नहरों को नीची भूमियों में प्रवाहित करता है और जो (गोषु) भूमियों में (पक्वम्) पके अन्न को लेता है वही भूमि का स्वामी (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् कहाता है।

अहन्वृत्रमृचीषम और्णवाभमहीशुवम् । हिमेनाविध्यदर्बुदम् २६

भा०—(ऋचीषमः) तेज से सर्वत्र समान भाव से प्रदीप्त होने वाला सूर्य जिस प्रकार (और्णवाभम्) ऊन से बने कम्बल के समान आच्छादक, (अहीशुवम्) मेघ से बढ़ने वाले (वृत्रम्) मेघस्थ जल को (अहन्) आघात करता है और (हिमेन) शीत से (अर्बुदम्) जलप्रद मेघ को (अविध्यत्) वेध देता है, उसी प्रकार (ऋचीषमः) तेज और आदर, प्रतिष्ठा वा शासन वाणी से सर्वत्र समान निष्पक्षपात राजा (और्णवाभम्) ऊन देने वाले भेड़ के समान टक्कर लेने वाले, (अहीशुवम्) सूर्य के समान क्रोध से बढ़ने वाले (वृत्रम्) शत्रु को (अहन्) नाश करता है, और वह (अर्बुदम्) शस्त्र बल से नाश करने वाले शत्रु को (हिमेन) अपने हनन साधन शस्त्र-बल से (अविध्यत्) वेधता, पीड़ित, ताड़ित करता है, वही बलवान् 'इन्द्र' है।

प्र वं उग्राय निष्टुरेऽषाळ्हाय प्रसक्षिणे । देवत्तं ब्रह्म गायत ॥२७॥

भा०—हे प्रजाजनो ! हे विद्वानो ! आप लोग (वः) अपने में से (उग्राय) शत्रु के प्रति उग्रस्वभाव वाले, (निःस्तुरे) शत्रु का सर्वथा नाश करने में समर्थ, (अषाढाय) और स्वयं कभी पराजित न होने और (प्र-सक्षिणे) पर पक्ष को अच्छी प्रकार पराजित करने वाले पुरुष को

और अधिक बलवान् करने के लिये (देवत्तं ब्रह्म) विद्वानों के द्वारा गुरु-परम्परा से प्रदत्त वा प्रभु से दिये वेद-ज्ञान का (गायत) उपदेश करो।

यो विश्वान्यभि व्रता सोमस्य मदे अन्धसः।
इन्द्रो देवेषु चेतति ॥ २८ ॥

भा०—(यः) जो (देवेषु) इन्द्रियों के बीच में (अन्धसः मदे) अन्न से तृप्ति लाभ करके जिस प्रकार आत्मा (विश्वानि व्रता अभि चेतति) सब कार्यों को जानता है उसी प्रकार (यः) जो पुरुष (देवेषु) विद्वानों और विजगीषु पुरुषों के बीच (सोमस्य मदे) ऐश्वर्य से तृप्त होने पर वा ऐश्वर्य युक्त राष्ट्र के शासन-कार्य में (विश्वानि व्रता अभि) सब कर्त्तव्यों को (चेतति) ठीक जानता है, वह (इन्द्रः) 'इन्द्र' है।

इह त्या सधमाद्या हरी हिरण्यकेश्या।
वोह्ळामभि प्रयो हितम् ॥ २९ ॥

भा०—(इह) यहां (त्या) वे दोनों (सध-माद्या) एक साथ आनन्द, वा अन्नादि की तृप्ति लाभ करने वाले, (हिरण्य-केश्या) सुवर्ण के समान केशों के तुल्य दीप्तियों को धारण करने वाले तेजस्वी, (हरी) राजा प्रजा, वा स्त्री पुरुष (हितम् प्रयः) हितकारी अन्न, ज्ञान (अभि वोढाम्) प्राप्त करावें। और सुवर्णवत् सुन्दर केशों से युक्त दो अश्व सेनापति को हित-मार्ग में ले चलें।

अर्वाञ्चं त्वा पुरुष्टुत प्रियमेधस्तुता हरी।
सोमपेयाय वक्षतः ॥ ३० ॥ ६ ॥

भा०—हे (पुरु-स्तुत) बहुतों से स्तुति योग्य ! (अर्वाञ्चं त्वा) साक्षात् प्राप्त तुझ को (प्रियमेध-स्तुता) यज्ञ सत्संगादि के प्रिय विद्वान् पुरुषों द्वारा उपदिष्ट, उत्तम विद्वान् स्त्री पुरुष (सोम-पेयाय) राष्ट्र के ऐश्वर्य के पालन और उपभोग के लिये (वक्षतः) सन्मार्ग से ले जावें वा उत्तम उपदेश करें। इति षष्ठो वर्गः ॥

[३३]

मेधातिथिः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१—३, ५ बृहती । ४, ७, ८, १०, १२ विराड् बृहती । ६, ९, ११, १४, १५ निचृद् बृहती । १३ आर्ची भुरिग् बृहती । १६, १८ गायत्री । १७ निचृद् गायत्री । १९ अनुष्टुप् ॥ एकोनविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

व॒यं घ॑ त्वा सु॒ताव॑न्त॒ आपो॒ न वृ॒क्तब॑र्हिषः ।
प॒वित्र॑स्य प्र॒स्रव॑णेषु वृत्रह॒न्परि॑ स्तो॒तार॑ आसते ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (आपः न) जलधाराएं (वृक्त-बर्हिषः) कुशा काशादि की वृद्धि करने वाली होकर (प्र-स्रवणेषु) निर्झरों में नीचे की ओर बहा करती हैं उसी प्रकार हे (वृत्र-हन्) शत्रुनाशक स्वामिन् ! (वयं घ) हम भी (सुत-वन्तः) उत्पन्न उत्तम प्रजावान् और अन्न ऐश्वर्यादिमान् (वृक्त-बर्हिषः) यज्ञ में आसनादिवत् विस्तीर्ण एवं प्रजाओं की वृद्धि करके (त्वा परि) तुझे प्राप्त हों (पवित्रस्य) शुद्ध पवित्र जल एवं ज्ञान के (प्र-स्रवणेषु) प्रवाहों के तटों पर विराजें और (स्तोतारः) स्तुतिकर्त्ता उपासक लोग भी (परि आसते) विराजते हैं ।

स्वर॑न्ति त्वा सु॒ते नरो॒ वसो॑ निरे॒क उ॒क्थिनः॑ ।
क॒दा सु॒तं तृ॑षा॒ण ओक॒ आ ग॑म॒ इन्द्र॑ स्व॒ब्दीव॒ वंस॑गः ॥ २ ॥

भा०—हे (वसो) समस्त जगत् को बसाने, सबकी रक्षा करने हारे हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (उक्थिनः नरः) उत्तम वेद-वचन को धारण करने वाले जन, (सुते) इस उत्पन्न जगत् में, (निरेके) एकान्त में भी (त्वा स्वरन्ति) तुझे लक्ष्य कर पुकारते हैं । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्, उत्तम गति से चलने हारा (सु-अब्दीव) गर्जते मेघवत् या महा वृषभवत् (तृषाणः) पिपासित के समान अति उत्कण्ठित होकर (सुतं कदा आगमः) इस उत्पन्न जीव संसार को कब प्राप्त हो ।

कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद्वाजं दर्षि सहस्रिणम् ।
पिशङ्गरूपं मघवन्विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ ३ ॥

भा०—हे (मघवन्) उत्तम धनसम्पन्न ! हे (विचर्षणे) विविध प्रजाओं के ऊपर द्रष्टः ! हे (धृष्णो) दुष्टों के दलन करने हारे ! हम (पिशङ्ग-रूपं) उज्वल, पीतरूप वाले और (गोमन्तं) भूमि से युक्त (वाजं) ऐश्वर्य की तुझ से (मक्षु) शीघ्र ही (ईमहे) याचना करते हैं और तू (कण्वेभिः) विद्वानों और वीरों द्वारा (सहस्रिणं वाजं दर्षि) सहस्रों सुखों, संख्याओं से युक्त ऐश्वर्य हमें दे । अथवा हे (विचर्षणे) विविध विद्याओं के द्रष्टः ! विद्वन् ! (पिशङ्ग-रूपं) तेजस्वी, (गोमन्तं) वेदवाणी के विद्वानों से (मक्षु) अति शीघ्र (वाजम् ईमहे) ज्ञान प्राप्त करें । और (कण्वेभिः) विद्वानों द्वारा (सहस्रिणं वाजं दर्षि) सहस्रों ऋचाओं से युक्त ज्ञान प्रदान कर ।

पाहि गायान्धसो मद इन्द्राय मेध्यातिथे ।
यः सम्मिश्लो हर्योर्यः सुते सचा वज्री रथो हिरण्ययः ॥४॥

भा०—हे (मेध्यातिथे) 'मेध' अर्थात् सत्संग और अन्नादि द्वारा सत्कार करने योग्य अतिथे ! विद्वन् ! तू (अन्धसः मदे) अन्न द्वारा तृप्ति और आनन्द लाभ करने पर (इन्द्राय) उस ऐश्वर्यवान् के सम्बन्ध में (गाय) उपदेश कर और (पाहि) उसका ज्ञान-रस पान कर । (यः) जो (हर्योः संमिश्लः) स्त्री पुरुष दोनों में समान रूप से व्यापक है, (यः सुते सचा) जो उत्पन्न हुए पुत्रवत् जगत् में भी सदा सत्य विद्यमान है जो (वज्री) बलवान् (रथः) रसरूप, रमणीय (हिरण्ययः) सुवर्ण-वत् तेजोमय है ।

यः सुषव्यः सुदक्षिण इनो यः सुक्रतुर्गृणे ।
य आकरः सहस्रा यः शतामघ इन्द्रो यः पूर्भिदारितः ॥५॥७॥

भा०—पुरुषोत्तम कैसा है ? (यः) जो (सु-सव्यः सु-दक्षिणः)

बायें और दायें दोनों हाथों से उत्तम कुशल, कर्म करने में समर्थ वा (सु-सव्यः) उत्तम रीति से पूजा करने योग्य वा जगत् को उत्पन्न करने, शासन करने और संचालन करने में समर्थ, और (सु-दक्षिणः) उत्तम धन दान, बल, बुद्धि से सम्पन्न, (इनः) सबका स्वामी, (यः) जो (सु-क्रतुः) उत्तम कर्म व प्रज्ञावान् (गृणे) स्तुति किया जाता है। (यः सहस्रा आकरः) जो सहस्रों उत्तम कर्मों का करने वाला, वा खनि के समान सहस्रों गुणों, ऐश्वर्यों को धरने वाला है, (यः शत-मघः) जो सैकड़ों ऐश्वर्यों का स्वामी, (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (यः पूर्भित्) शत्रु-नगरों को तोड़ने वाला, वा ज्ञानपूर्वक योगिजनों के देह-बन्धन का विच्छेदक, मुक्तिदाता और जो (आरितः) स्तुति द्वारा प्राप्त होता है। इति सप्तमो वर्गः ॥

यो धृ॑षि॒तो योऽवृ॑तो॒ यो अस्ति॒ श्मश्रु॑षु श्रि॒तः ।
वि॒भू॒तद्यु॑म्न॒श्च्यव॑नः पुरुष्टु॒तः क्रत्वा॒ गौरि॑व शा॒किनः॑ ॥ ६ ॥

भा०—(यः) जो (धृषितः) पराजय करने वाला, सबका वश कर्त्ता, (यः अवृतः) जो न घिरा, असंग, (यः) जो (श्मश्रुषु श्रितः) युद्ध कालों में आश्रय करने योग्य, वा (श्मश्रुषु = श्मसु शरीरेषु श्रूयन्ते इति श्मश्रवो जीवाः) शरीरों में विद्यमान जीवों या श्मश्रु अर्थात् मूछों वाले, वीर पुरुषों में (श्रितः) आश्रय करने योग्य, उन द्वारा सेवित, (विभूत-द्युम्नः) अति ऐश्वर्यवान्, तेजस्वी, (च्यवनः) शत्रुओं को विचलित करने वाला, वा सर्वव्यापक, (पुरु-स्तुतः) बहुतों से प्रशंसित, और (क्रत्वा) कर्मसामर्थ्य से (शाकिनः) शक्ति प्राप्त करने वाले जीव के लिये (गौः इव) गौ, भूमि के समान अनेक सुख उत्पन्न करने वाला है।

क ईं॑ वेद सु॒ते सचा॒ पिब॑न्तं॒ कद्वयो॑ दधे ।
अ॒यं यः पुरो॑ विभि॒नत्त्योज॑सा मन्दा॒नः शि॒प्र्यन्ध॑सः ॥ ७ ॥

भा०—(यः) जो (ओजसा) पराक्रम से (पुरः) शत्रु के पुरों, दुर्गों, प्रकोटों को (वि-भिनत्ति) तोड़ डालता है (अयं) वह (अन्धसः)

अन्न वा जीवनधारक पदार्थ से (मन्दानः) आनन्द लाभ करता हुआ रहे। (सुते) ऐश्वर्य के बल पर (पिबन्तं) राष्ट्र का पालन करते हुए (ईं) इसको (कः वेद) कौन जानता है, और कौन जनाता है कि वह (कत् वयः दधे) कितना बल धारण करता है। इसी प्रकार प्रभु परमेश्वर अपने बल से नाना ब्रह्माण्ड पुरों को संहार करता, (शिप्री) बलवान्, (अन्धसः मन्दानः) प्राणधारी जीवों को आनन्द देता रहता है। (वयः) वह उत्पन्न जगत् में व्यापक होकर सबका पालन करता है उसके अपार बल, आयु और ज्ञान को कौन जानता है?

दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे।
नकिष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महांश्चरस्योजसा॥ ८॥

भा०—(मृगः न वारणः) जिस प्रकार पशु हस्ती (पुरुत्रा दाना-दधे) बहुत से मदजल धारण करता है और (पुरुत्र चरथं दधे) बहुत से स्थानों पर विचरण करता है उसी प्रकार वह प्रभु, ऐश्वर्यवान् स्वामी (वारणः) सब दुःखों को वारण करने वाला, (मृगः) अति शुद्धस्वरूप वा योगी मुमुक्षुओं से खोजने योग्य (पुरुत्रा) पालनीय जीवों के निमित्त (दाना) दान देने योग्य नाना ऐश्वर्य प्रदान करता है और (पुरुत्रा चरथं दधे) बहुत से भोग्य कर्मफल भी प्रदान करता है। हे प्रभो! (सुते) इस जगत् में या ऐश्वर्य में (त्वा नकिः नियमत्) तुझे कोई भी रोकने में समर्थ नहीं है। तू (ओजसा) अपने महान् सामर्थ्य से (गमः) सर्वत्र व्यापक है और (महां) सब से महान् होकर (चरसि) सब में व्याप रहा है।

य उग्रः सन्ननिष्टृतः स्थिरो रणाय संस्कृतः।
यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत्॥ ९॥

भा०—(यः) जो (उग्रः सन्) दुष्टों के प्रति उग्र होकर (अनिस्तृतः) अहिंसित, अमर, (स्थिरः) स्थिर, कूटस्थ (रणाय)

रण के लिये सुसज्जित वा 'रण' परम आनन्द देने के लिये (संस्कृतः) सदा उपासित है। (यदि) यदि (मघवा) वह ऐश्वर्यवान्, (स्तोतुः हवं शृणवत्) स्तुतिकर्त्ता की प्रार्थना सुनले तो वह (इन्द्रः) ऐश्वर्य-वान् वीर (न योषति) कभी स्त्रीवत् भय नहीं करता, (आगमत्) आही जाता है, इसी प्रकार जल की प्रार्थना सुन कर प्रभु भी (न योषति) पृथक् न रहकर (आ गमत्) उसे प्राप्त ही होजाता है।

सत्यमित्था वृषेदसि वृषजूतिर्नोऽवृतः।
वृषा ह्युग्र शृण्विषे परावति वृषो अर्वावति श्रुतः ॥१०॥८॥

भा०—(इत्था) इस प्रकार (सत्यम्) सचमुच, (वृषा इत् असि) समस्त सुखों का वर्षाने वाला ही है। तू (नः) हमारे बीच (अवृतः) किसी से न घिरा, असंग, (वृषजूतिः) सुखवर्षक सूर्यादि को सञ्चालन करने में समर्थ सब का सारथिवत् नेता है। तू (परावति) दूर, परमार्थ में भी हे (उग्र) बलवन्! (वृषा हि शृण्विषे) बलवान् ही सुना जाता है, और (अर्वावति) समीप, इह लोक में भी (वृषः श्रुतः) जगत् का प्रबन्धक, बलवान्, सुखों का वर्षक ही प्रसिद्ध है। इत्यष्टमो वर्गः ॥

वृषणस्ते अभीशवो वृषा कशा हिरण्ययी।
वृषा रथो मघवन्वृषणा हरी वृषा त्वं शतक्रतो ॥ ११ ॥

भा०—जिस प्रकार वीर पुरुष की (अभीशवः कशा रथः हरी) रासें, चाबुक, रथ और घोड़े बलवान् हों तो वह युद्ध करने में समर्थ होता है उसी प्रकार हे (शतक्रतो) सैकड़ों बलों कर्मों और ज्ञानों वाले! स्वामिन्! तेरी (ते अभीशवः) सर्वत्र शासनकारिणी शक्तियां (वृषणः) बलवती और सुखों का वर्षण करने वाली हैं। (ते कशा) तेरी वाणी वेदमयी, (हिरण्ययी) हितकारिणी और सुन्दर सुखदायी है और (वृषा) सुख ज्ञान के देने वाली है। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! (ते रथः वृषा)

तेरा रमणीय रूप और उपदेश भी सुखप्रद है। (ते हरी) तेरे उपासक स्त्री पुरुष (वृषणा) बलवान् हैं। (त्वं वृषा) तू स्वयं बलवान्, सर्वसुखवर्षक है।

वृषा सोता सुनोतु ते वृषन्नृजीपिन्ना भर।
वृषा दधन्वे वृषणं नदीष्वा तुभ्यं स्थातर्हरीणाम् ॥ १२ ॥

भा०—हे (वृषन्) बलवन्! हे (ऋजीपिन्) ऋजु, सरल सत्य, धर्ममार्ग में मनुष्यों को प्रेरित करने हारे! (सोता) ऐश्वर्य की वृद्धि करने वाला (वृषा) बलवान् होकर (ते सुनोतु) तेरा अभिषेक करे। तू उसको (आ भर) सब ओर से पुष्ट कर। हे (हरीणां स्थातः) विद्वानों और वीर पुरुषों के बीच स्थिर रहने हारे! (तुभ्यं) तेरी ही वृद्धि के लिये (नदीषु) समृद्ध प्रजाओं में (वृषा) बलवान् वीरसमूह (वृषणं) उत्तम प्रबन्धक, प्रमुख तुल्य पुरुष को ही (दधन्वे) पुष्ट, धारण करे।

एन्द्र याहि पीतये मधु शविष्ठ सोम्यम्।
नायमच्छा मघवा शृणवद्गिरो ब्रह्मोक्था च सुक्रतुः ॥१३॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! वा आत्मन् तू (मधु) मधुर सुखप्रद (सोम्यं) उत्तम बलकारक ओषधि आदि रसवत् शिष्योचित विद्वानों के उपदेश को (पीतये) पान करने, ज्ञान श्रवण करने के लिये (आयाहि) आ। हे (शविष्ठ) उत्तम बलशालिन्! (अयम्) यह (सुक्रतुः) उत्तम कर्मकर्त्ता, (मघवा) केवल धनवान् पुरुष भी (ब्रह्म उक्था च) वेदज्ञान और 'उक्थ' उत्तम वचन और (गिरः) वाणियों को (न अच्छ शृणवद्) साक्षात् श्रवण नहीं कर सकता। वह भी ज्ञानश्रवणार्थ गुरु के समीप जाकर ही ज्ञान का श्रवण कर सकता है।

वहन्तु त्वा रथेष्ठामा हरयो रथयुजः।
तिरश्चिदर्य सवनानि वृत्रहन्नन्येषां या शतक्रतो ॥ १४ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्) विघ्नों के नाशक! हे दुष्टों के दण्डकर्त्तः!

हे (शतक्रतो) सैकड़ों कर्म करने हारे ! हे बहुयज्ञ ! (रथ-युजः) रथ में नियुक्त, (हरयः) अश्वों के समान, राष्ट्र में नियुक्त विद्वान् जन (रथे-ष्ठाम् त्वा) रथ पर अधिष्ठाता वा स्वामी के समान विराजमान तुझ को (या) जो (अन्येषां सवनानि) अन्यों के यज्ञ वा ऐश्वर्य हैं उनको भी (तिरः चित् आवहन्तु) उत्तम रीति से प्राप्त करावें ।

अस्माकमद्यान्तमं स्तोमं धिष्व महामह ।
अस्माकं ते सवना सन्तु शन्तमा मदाय द्युक्ष सोमपाः॥१५॥९

भा०—हे (महामह) बड़ों के भी पूज्य ! तू (अद्य) आज (अस्माकं) हमारे (अन्तमं) अति समीपतम (स्तोमं) स्तुति-वचन को (धिष्व) धारण कर । हे (द्युक्ष) तेजस्विन् ! हे (सोम-पाः) ऐश्वर्यादि के पालक ! (अस्माकं सवना) हमारे पूजा, उपचारादि वा ऐश्वर्य (ते मदाय) तेरे आनन्द वृद्धि के लिये और (ते शन्तमा) तुझे अति शान्तिदायक (सन्तु) हों । इति नवमो वर्गः ॥

नहि षस्तव नो मम शास्त्रे अन्यस्य रण्यति ।
यो अस्मान्वीर आनयत् ॥ १६ ॥

भा०—(यः वीरः) जो वीर वा विशेष विद्वान् (अस्मान्) हम सबको (आ अनयत्) आगे ले जाता है (सः) वह हे मित्र ! (नहि तव, नो मम अन्यस्य) न तेरे और न मेरे या किसी और सामान्य पुरुष के (शास्त्रे रण्यति) शासन में प्रसन्न होता है । वह हम सब से ऊपर सर्वोपरि है ।

इन्द्रश्चिद् घा तदब्रवीत्स्त्रिया अशास्यं मनः ।
उतो अह क्रतुं रघुम् ॥ १७ ॥

भा०—(इन्द्रः चित् घ) ज्ञानद्रष्टा विद्वान् भी (स्त्रियाः) 'स्त्री' अर्थात् संघात बनाकर रहने वाली प्रबल सेना के (तत् मनः) उस मन, या स्तम्भन बल को (अशास्यं अब्रवीत्) शासन न होने योग्य अति

प्रवल वतलाता है, (उतो) और उसके (रघुं) वेगयुक्त (क्रतुं) कर्म सामर्थ्य को भी (अशास्यं अह) अशास्य, अदम्य ही वतलाता है। पक्षान्तर में—उत्तम उपदेश और गुणों के ग्रहण करने वाली शिक्षिता स्त्री का चित्त विशेष शासन की अपेक्षा नहीं करता और उसका कर्मसामर्थ्य भी, 'रघु' अर्थात् कुशल होता है। स्त्यै ष्ट्यै शब्दसंघातयोः। स्त्यायतेर्ड्रट्। उ० १०४। १६६। स्त्री॥

सप्ती चिद्घा मदुच्युता मिथुना वहतो रथम्।
एवेद्धूर्वृष्ण उत्तरा॥ १८॥

भा०—स्त्री और पुरुष (मिथुना) दोनों मिलकर (मदच्युता) आनन्द को प्राप्त करते हुए (सप्ता चित्) दो अश्वों के समान ही (रथम् वहतः) गृहस्थ रूप रथ वा गृहस्थ के सुख को वहन करते और रथ में जिस प्रकार (धूः वृष्णः उत्तरा) धुरा वलवान् अश्व से अधिक ऊंची होती है उसी प्रकार (धूः) गृहस्थ या प्रजा को धारण करने में समर्थ स्त्री, (वृष्णः) वलवान्, वीर्यसेचक पुरुष की अपेक्षा (उत्तरा एव इत्) उत्कृष्ट गुणों से युक्त, अधिक आदर योग्य ही होती है। माता का मान पिता से अधिक है।

अधः पश्यस्व मोपरि सन्तरां पादकौ हर।
मा ते कशप्लकौ दृशन् स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ॥१९॥१०॥

भा०—स्त्री को उपदेश। हे स्त्रि! तू (अधः पश्यस्व) नीचे देख, विनयशील हो। (मा उपरि) ऊपर मत देख, उद्धत मत हो। (पादकौ) दोनों पैरों को (संहरतराम्) अच्छी प्रकार एकत्र कर रख, असभ्यता से पैर मत फैला। (ते) तेरे (कशप्लकौ मा दृशन्) टखनों को कोई भी न देखे। ऐसे विनयाचार से तू (स्त्री हि) स्त्री होकर भी अवश्य (ब्रह्मा बभूविथ) वेदवेत्ता वा पूज्य हो सकती है। इति दशमो वर्गः॥

[३४]

नीपातिथिः काण्वः । १६—१८ सहस्रं वसुरोचिषोऽङ्गिरस ऋषयः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ८, १०, १२, १३, १५ निचृदनुष्टुप् । २, ४, ६, ७, ६ अनुष्टुप् । ५, ११, १४ विराडनुष्टुप् । १६, १८ निचृद्गायत्री । १७ विराड् गायत्री ॥ अष्टादशर्चं सूक्तम् ॥

एन्द्र॑ याहि॒ हरि॑भि॒रुप॒ कण्व॑स्य सुष्टु॒तिम् ।
दि॒वो अ॒मुष्य॒ शास॑तो॒ दिवं॑ य॒य दि॑वावसो ॥ १ ॥

भा०—हे (दिवा-वसो) दिन को आकाश में रहने वाले सूर्य के समान (दिवावसो) ज्ञान प्रकाश से अपने अधीन शिष्यों को वसाकर उनको ज्ञानमय वस्त्र से आच्छादित करने हारे विद्वन् ! तू (अमुष्य) उस (शासतः) सबका शासन करने वाले (दिवः) सूर्य के समान तेजस्वी प्रभु के (दिवं) *ज्ञान प्रकाश को (यय) प्राप्त कर । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् !* तू (हरिभिः) विद्वानों द्वारा या हरणशील प्राणों, इन्द्रियादि अंगों सहित (कण्वस्य सुस्तुतिम् उप आ याहि) विद्योपदेष्टा के उत्तम उपदेश वाणी को प्राप्त कर, उसको समीप जाकर शिष्यवत् ग्रहण कर ।

आ त्वा॒ ग्रावा॒ वद॑न्नि॒ह सो॒मी घोषे॑ण यच्छतु ।
दि॒वो अ॒मुष्य॒ शास॑तो॒ दिवं॑ य॒य दि॑वावसो ॥ २ ॥

भा०—हे विद्याभिलाषिन् ! (इह) इस आश्रम में (सोमी) ज्ञानवान् शिष्यों का स्वामी (ग्रावा) उत्तम उपदेष्टा विद्वान् (त्वा) तेरे प्रति (वदन्) व्यक्त वाणी से उपदेश करता हुआ (घोषेण) वेद द्वारा (दिवः) परम तेजोमय (शासतः) परम शासक और शास्ता (अमुष्य) उस प्रभु के (दिवं यच्छतु) प्रकाशमय तेज को प्रदान करे । हे (दिवावसो) विद्या की कामना से गुरु के अधीन वसने हारे विद्यार्थिन् ! तू भी उसके (दिवं यय) ज्ञान को प्राप्त कर ।

अत्रा वि नेमिरेषामुरां न धूनुते वृकः।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ३ ॥

भा०—(वृकः उरां न) भेड़िया जिस प्रकार भेड़ को बल से (धूनुते) कंपा देता है। उसी प्रकार (एषां) इन विद्वानों का (वृकः) विशेष ज्योति को प्रकाशित करने वाला (नेमिः) अनुशासन (अत्र) इस लोक में (उराम्) अति विस्तृत वाणी को (विधूनुते) विशेष रूप से प्रदान करता है। (दिवः अमुष्य शासतः) अनुशासन करने वाले उस तेजस्वी ज्ञानी पुरुष के (दिवं) ज्ञानप्रकाश को हे विद्यार्थिन्! तू (यय) प्राप्त कर।

आ त्वा कण्वा इहावसे हवन्ते वाजसातये।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वन्! गुरो! (कण्वाः) विद्वान् बुद्धिमान् पुरुष (इह) इस आश्रम में (वाज-सातये) ज्ञान प्राप्त करने और (अवसे) रक्षा के लिये (त्वा आ हवन्ते) तुझे आदरपूर्वक प्रार्थना करते हैं। (दिवः अमुष्य०) इत्यादि पूर्ववत्।

दधामि ते सुतानां वृष्णे न पूर्वपाय्यम्।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ५ ॥ ११ ॥

भा०—(वृष्णे पूर्व-पाय्यम्) बलवान् पुरुष को जिस प्रकार पूर्व ही पालन करने का उचित आदर-भेंट दिया जाता है उसी प्रकार हे विद्वन्! (ते वृष्णे) बरसते मेघवत् निष्पक्षपात होकर प्रचुर ज्ञान देने वाले तुझे मैं (सुतानां) अपने पुत्रों का (पूर्व-पाय्यं) पूर्ण पालन वा पूर्व आयु का पालन रक्षण का भार (दधामि) प्रदान करता हूं। (दिवावसो) सूर्यवत् तेजस्विन्! वा विद्यार्थिन्! तू (शासतः) उस शास्ता के ज्ञान को प्राप्त कर। वा हे विद्वन्! तू उस परम प्रभु का ज्ञान विद्यार्थी को प्राप्त करा। इत्येकादशो वर्गः ॥

स्मत्पुरन्धिर्न आ गहि विश्वतोधीर्न ऊतये ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ६ ॥

भा०—हे विद्वन् ! हे वीर ! तू (स्मत्-पुरन्धिः) सर्वोत्तम बहुत से ज्ञानों को धारण करने और बहुतों का भरण पोषण करने में समर्थ उत्तम शासक, गृहणीवत् उत्तम प्रबन्धक और (विश्वतः-धीः) सब तरफ जाने वाली बुद्धि, वा सर्वगामी कर्मसामर्थ्य से सम्पन्न होकर (नः ऊतये) हमारी रक्षा और हमें ज्ञान प्रदान करने के लिये (नः आगहि) हमें प्राप्त हो । हे (दिवावसो) ज्ञान, प्रकाश और उत्तम व्यवहार शुभ कामना से रहने वाले तू (शासतः अमुष्य) शासन और विद्योपदेश करने वाले उस (दिवः) परम ज्ञानी और प्रकाश के (दिवं) ज्ञानप्रकाश और उत्तम कामना को (यय) प्राप्त कर ।

आ नो याहि महेमते सहस्रोते शतामघ ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ७ ॥

भा०—हे (महे-मते) महामते ! पूजनीय ज्ञानवन् ! हे (सहस्रोते) बलवान् रक्षा सामर्थ्य वा सहस्रों रक्षणों से युक्त ! हे (शतामघ) सैकड़ों उत्तम धनों के स्वामिन् ! तू (नः आ याहि) हमें प्राप्त हो । और हे (दिवा-वसो) ज्ञान दीप्ति से सबको आच्छादित करने वाले ! विद्वन् ! वा ज्ञान कामना से विद्वान् के अधीन ब्रह्मचर्यपूर्वक रहने हारे ब्रह्मचारिन् ! तू (अमुष्य दिवं शासतः) उस ज्ञान के अनुशासन करने वाले (दिवः) ज्ञान-प्रकाशक गुरु के समीप (यय) प्राप्त हो ।

आ त्वा होता मनुर्हितो देवत्रा वक्षदीड्यः ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ८ ॥

भा०—(दिवावसो) ज्ञान की कामना करने हारे ब्रह्मचारिन् ! (देवत्रा ईड्यः) विद्वानों के बीच स्तुति करने योग्य पूज्य, (मनुः) ज्ञानवान् (हितः) हितकारी (होता) ज्ञानादि के देने में समर्थ, कुशल

पुरुष (त्वा आवसत्) तुझे धारण करे और उत्तम उपदेश कहे। और तू भी (अमुष्य दिवं शासतः) आकाश और भूमि के शासक, (दिवः) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष को (यय) प्राप्त करा।

आ त्वा मदच्युता हरी श्येनं पक्षेव वक्षतः।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ९ ॥

भा०—(श्येनं पक्षा इव) जिस प्रकार बाज नामक पक्षी को दोनों पांख बल पूर्वक वहन करते हैं और जिस प्रकार (श्येनं) श्येन व्यूह से गमन करने वाले वीर योद्धा को (पक्षा इव) आजू बाजू के दोनों सेना दल (आ वक्षतः) सब तरफ से धारण करते हैं उसी प्रकार (त्वा श्येनं) तुझ उत्तम आचार-चरित्र से सम्पन्न पुरुष को (मद-च्युता) उत्तम आनन्द देने वाले (हरी) स्त्री और पुरुष (पक्षा इव वक्षतः) ग्रहण, करने वा अपनाने वाले बन्धु जनों के तुल्य (आवक्षतः) आदर पूर्वक आगे बढ़ावें और (आवक्षतः) उत्तम वचनोपदेश किया करें। (दिवोः अमुष्य० पूर्ववत्)

आ याह्यर्य आ परि स्वाहा सोमस्य पीतये।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १० ॥ १२ ॥

भा०—हे (अर्य) स्वामिन्! तू (सोमस्य पीतये) ऐश्वर्य को पालन करने के लिये (आयाहि) आ, और (स्वाहा) उत्तम वाणी, और उत्तम दान से तू (सोमस्य परि आयाहि) सोम, ऐश्वर्य, शासन, राष्ट्र, अन्न और जीवन गण के रक्षार्थ आ। (२) हे विद्वन् तू (सोमस्य) शिष्यगण के रक्षार्थ आ। (३) हे (अर्य) इन्द्रियों के स्वामिन्! तू (सोमस्य) वीर्य के रक्षार्थ उत्तम वाणी और क्रिया साधन से आगे बढ़। और (अमुष्य दिवं शासतः दिवः यय) उस ज्ञान के उपदेष्टा ज्ञानी गुरु के ज्ञानों को प्राप्त कर। इति द्वादशो वर्गः ॥

आ नो याह्युपश्रुत्युक्थेषु रणया इह।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ ११ ॥

भा०—हे (दिवावसो) ज्ञानप्रकाश के हेतु ब्रह्मचर्य वास करने हारे ! तू (नः) हम विद्वानों के (उप-श्रुति) समीप आकर ज्ञान श्रवण करने के निमित्त (आ याहि) प्राप्त हो और (उक्थेषु) वेद-वचनों और उपदेशों के निमित्त (इह) इस आश्रम में (नः रणय) हमें उपदेश कर। हे (दिवा-वसो) ज्ञानप्रकाश के हेतु उसके अधीन वास करने वाले ! शिष्य ! तू (अमुष्य दिवं शासतः दिवः) उस ज्ञान के अनुशासक तेजस्वी गुरु के ज्ञानों को (यय) प्राप्त कर।

सरूपैरा सु नो गहि संभृतैः सम्भृताश्वः।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १२ ॥

भा०—हे विद्वन् ! तू (सम्भृताश्वः) अश्वोंवत् विषयों को उपभोग करने वाले इन्द्रिय गण को अच्छी प्रकार अपने वश करके (संभृतैः) उत्तम रूप से पुष्ट और (सरूपैः) समान रूप कान्ति से युक्त अंगों वा सहयोगियों सहित (नः सु गहि) हमें सुख से प्राप्त कर। (दिवः अमुष्य०) इत्यादि पूर्ववत्।

आ याहि पर्वतेभ्यः समुद्रस्याधि विष्टपः।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १३ ॥

भा०—हे विद्वन् ! तू (पर्वतेभ्यः) पर्वतों या मेघों से जलों के समान और (समुद्रस्य) समुद्र के (विष्टपः) ताप रहित शीतल स्थान से मेघमाला या पवन के समान (आ याहि) हमें प्राप्त हो। (दिवः अमुष्य० इत्यादि पूर्ववत्)

आ नो गव्यान्यश्व्या सहस्रा शूर दर्दृहि।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १४ ॥

भा०—हे (शूर) वीर ! तू (सहस्रा) बलवान् वा सहस्रों (गव्यानि अश्व्या) गौओं और अश्वों की (नः आदर्दृहि) हमारे लिये वृद्धि

कर। वा हमारे ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय और प्राणों के (सहस्रा) अनेक ज्ञानों बलों को बढ़ा (दिवः अमुष्य०) इत्यादि पूर्ववत् ॥

आ नः सहस्रशो भरायुतानि शतानि च।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥ १५ ॥

भा०—हे विद्वन्! हे राजन्! शूर! तू (नः) हमें (सहस्रशः अयुतानि शतानि च) सैकड़ों, हज़ारों और लाखों की संख्या में (आ भर) पुष्ट कर, वा हमें अनेक ऐश्वर्य दे। (दिवः अमुष्य० इत्यादि पूर्ववत्) इति त्रयोदशो वर्गः ॥

आ यदिन्द्रश्च दद्वहे सहस्रं वसुरोचिषः।
ओजिष्ठमश्व्यं पशुम् ॥ १६ ॥

भा०—हम लोग और (इन्द्रः च) हमारा ऐश्वर्यवान् राजा, नेता, (वसु-रोचिषः) धन, प्रजादि की कान्ति से सम्पन्न होकर (ओजिष्ठं) अति पराक्रमशील, बलयुक्त, (अश्व्यं) अश्व बल से युक्त (पशुम्) पशु सम्पदा को (सहस्रं) सहस्र संख्या में (आ दद्वहे) प्राप्त करें।

यन्नृज्रा वातरंहसोऽरुपासो रघुष्यदः। भ्राजन्ते सूर्या इव ॥१७॥

भा०—(ये) जो (ऋज्राः) ऋजु, धर्म मार्ग से जाने वाले, (वात रंहसः) वायु के वेग से गमन करने वाले (अरुपासः) अति कान्तियुक्त, वा रोषरहित, अति शान्त, (रघु-स्यदः) वेगवान् रथ से जाने वाले, वीर पुरुष (सूर्याः इव) सूर्यों के समान (भ्राजन्ते) चमकते हैं।

पारावतस्य रातिषु द्रवच्चक्रेष्वाशुषु।
तिष्ठं वनस्य मध्य आ ॥ १८ ॥ १३ ॥

भा०—परम स्थान पर विराजमान, परम पालक प्रभु के (रातिषु) दिये ऐश्वर्यों के बीच में और (द्रवत्-चक्रेषु) अति शीघ्रता से चलने वाले, चक्रों से युक्त, (आशुषु) शीघ्रगामी अश्वों, सैन्यों के बीच में सुरक्षित रह-

कर (वनस्य मध्ये) जल के बीच कमलवत्, तेजों के बीच सूर्यवत् और ऐश्वर्यों के बीच मैं (आ तिष्ठम्) विराजूं। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[३५]

श्यावाश्व ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१—५, १६, १८ विराट् त्रिष्टुप् ॥ ७—९, १३ निचृत् त्रिष्टुप्। ६, १०—१२, १४, १५, १७ भुरिक् पंक्तिः। २०, २१, २४ पंक्तिः। १९, २२ निचृत् पंक्तिः। २३ पुरस्ताज्ज्योतिर्नामजगती ॥ चतुर्विंशत्यृचं सूक्तम् ॥

अ॒ग्निनेन्द्रे॑ण॒ वरु॑णेन॒ विष्णु॑नादि॒त्यै रु॒द्रैर्वसु॑भिः सचा॒भुवा॑।
स॒जोष॑सा उ॒षसा॒ सूर्ये॑ण च॒ सोमं॑ पिबतमश्विना ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विना) उत्तम जितेन्द्रिय विद्वान् स्त्री पुरुषो ! हे रथी सारथिवत् राजा सचिवादि जनो ! आप दोनों (अग्निना) अग्नि (इन्द्रेण) विद्युत्, (वरुणेन) जल, (विष्णुना) व्यापक, एवं विविध पदार्थों के शोधक, सूर्य (आदित्यैः) सूर्य की किरणों और (रुद्रैः वसुभिः) रोगनाशक और जीव के बसाने योग्य साधनों से और (उषसा सूर्येण) उषा, प्रभात की दीप्ति और सूर्य के समान (स-जोषसा) समान प्रीति युक्त होकर (सोमं पिबतम्) 'सोम' अर्थात् ऐश्वर्य का पालन, उत्पन्न जगत् और पुत्र राष्ट्रादि का पालन करो तथा ऐश्वर्य अन्न जलादि का उपभोग करो। इसी प्रकार वे दोनों (सचा-भुवा) सदा साथ, संगत, एवं समवाय से परस्पर सहयोगी रहकर (अग्निना) अग्रणी नायक, तेजस्वी विद्वान् (इन्द्रेण) ऐश्वर्यवान्, (वरुणेन) श्रेष्ठ, (विष्णुना) व्यापक बलशाली और (आदित्यैः रुद्रैः वसुभिः) सूर्य की किरणों, प्राणों और प्रजाजनों आदि से मिलकर ऐश्वर्यादि का उपभोग और पालन करो।

विश्वा॑भिर्धी॒भिर्भुव॑नेन वाजिना दि॒वा पृ॑थि॒व्याद्रि॑भिः सचा॒भुवा॑।
स॒जोष॑सा उ॒षसा॒ सूर्ये॑ण च॒ सोमं॑ पिबतमश्विना ॥ २ ॥

भा०—(उषसा सूर्येण च) सूर्य की प्रातःकालिक उषा, और 'सूर्य' के समान (स-जोषसा) समान प्रीतियुक्त होकर हे (अश्विनौ) रथी सारथिवत् उत्तम सहयोगी जितेन्द्रिय स्त्रीपुरुषो ! आप दोनों (वाजिना सचाभुवा) बल, ज्ञान, ऐश्वर्यादि के स्वामी और एक साथ संगत रहते हुए, (विश्वाभिः धीभिः) समस्त वाणियों, कर्मों और ज्ञानों से और (भुवनेन) उत्पन्न संसार और (दिवा पृथिव्या) सूर्य और पृथिवी और (अद्रिभिः) मेघों से उत्पन्न (सोमं) ऐश्वर्य, अन्नादि का (पिबतम्) उपभोग करो।

विश्वैर्देवैस्त्रिभिरेकादशैरिहाद्भिर्मरुद्भिर्भृगुभिः सचाभुवा ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं पिबतमश्विना ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्विना) उत्तम जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (सचा-भुवा) सदा एक साथ (स-जोषसा) प्रेमपूर्वक रहते हुए (उषसा सूर्येण च) उषा, सूर्य के सदृश सुशोभित रहकर (त्रीभिः एकादशैः) तीन ग्यारह, अर्थात् ३३ (विश्वैः देवैः) समस्त विद्वानों (अद्भिः) जल-वत् शान्तिदायक आप्त जनों, (मरुद्भिः) वातों के समान बलवान्, (भृगुभिः) दुष्टों के नाशकारी, तेजस्वी पुरुषों द्वारा (सोमं पिबतम्) ऐश्वर्य का पालन और उपभोग करो।

जुषेथां यज्ञं बोधतं हवस्य मे विश्वेह देवौ सवनाव गच्छतम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चेषं नो वोळ्हमश्विना ॥ ४ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (यज्ञं) यज्ञ, आदर-सत्कार, परस्पर सत्संग और दान धर्म का (जुषेथाम्) प्रेम-पूर्वक सेवन करो। और (मे हवस्य) मेरे उत्तम स्तुतियुक्त आह्वान वा देने योग्य उपदेश का (बोधतम्) अच्छी प्रकार ज्ञान करो। आप दोनों (देवौ) दानशील और उत्तम कामनायुक्त होकर (इह) इस जगत् में (विश्वा सवना अव गच्छतम्) समस्त ऐश्वर्यों को प्राप्त करो। आप दोनों

(उषसा सूर्येण च सजोषसा) उषा और सूर्य के समान प्रीति युक्त होकर (नः) हमारे लिये (इषं आ वोढम्) उत्तम अन्न प्राप्त कराओ।

स्तोमं जुषेथां युवशेव कन्यनां विश्वेह देवौ सवनाव गच्छतम्।
सजोषसा उषसा सूर्येण चेषं नो वोळ्हमश्विना ॥ ५ ॥

भा०—(युवशा इव) जिस प्रकार उत्तम युवा युवति दोनों (सजोषसा) समान प्रीतियुक्त होकर (कन्यनां स्तोमं जुषतः) कन्याओं वा गृह में विद्यमान मित्रों के स्तुति वचनों के पात्र होते हैं उसी प्रकार हे (अश्विना) दिन रात्रिवत् स्त्री पुरुषो ! आप दोनों भी (उषसा सूर्येण च) कामना युक्त स्त्री से पुरुष और सूर्यवत् तेजस्वी प्रजोत्पादन समर्थ पुरुष से स्त्री (स-जोषसा) समान प्रीतियुक्त होकर (देवौ) उत्तम व्यवहार, एवं कामनावान् दानशील होकर (इह) इस संसार से (विश्वा सवना) सब सवन, यज्ञ, प्रजाएं तथा ऐश्वर्यों को (अव गच्छतम्) प्राप्त करें। (च) और (नः) हमें (इषं वोढम्) हमारी इच्छाएं प्राप्त करावें। अथवा—(नः) हमारे बीच ऐसे पूर्वोक्त स्त्री पुरुष ही (इषं आवोढम्) उत्तम कामना को रखकर परस्पर विवाह करें।

गिरो जुषेथामध्वरं जुषेथां विश्वेह देवौ सवनाव गच्छतम्।
सजोषसा उषसा सूर्येण चेषं नो वोळ्हमश्विना ॥ ६ ॥ १४ ॥

भा०—हे (अश्विना) बलवान्, ऐश्वर्य भोगने और इन्द्रियों को वश करने वाले स्त्री पुरुषो ! आप लोग (गिरः जुषेथाम्) विद्वान् उपदेष्टा पुरुषों और वेद वाणियों का प्रेमपूर्वक सेवन करो। (देवौ) दानशील और कामना युक्त वा व्यवहारज्ञ होकर (अध्वरं जुषेथाम्) यज्ञ और अहिंसाव्रत का प्रेमपूर्वक सेवन करो (इह विश्वा सवना अव गच्छतम्) यहां जगत में समस्त ऐश्वर्यों, अधिकारों, ज्ञानादि को प्राप्त करो। (स-जोषसा उषसा) प्रीतियुक्त कान्तिमती प्रभात वेला वा दाहक शक्ति और (स-जोषसा सूर्येण च) प्रीतियुक्त सूर्यवत् परस्पर के साथ मिलकर

प्रीतियुक्त होकर (इषं वोढम्) अन्न, वृष्टि आदि के तुल्य अपनी उत्तम कामना को धारण करो । परस्पर विवाह करो। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

हारिद्रवेव पतथो वनेदुप सोमं सुतं महिषेवावं गच्छथः ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च त्रिर्वर्तिर्यातमश्विना ॥ ७ ॥

भा०—जिस प्रकार (हारिद्रवा इव वना) दो हरिद्रव नामक जल के पक्षी जलों में (पतथः) सुखपूर्वक गति करते हैं उसी प्रकार हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! आप दोनों भी (वना उप पतथः) सेवने योग्य ऐश्वर्यों को लक्ष्य कर आगे बढ़ो । उनको प्राप्त कर ऐश्वर्यवान् होवो । (महिषा इव सोमं) जिस प्रकार दो महिष, विशालकाय अरणा भैंसा वा भैंसी, (वना इव उपपतथः) वनों में विचरते, नाना भोग्य सुखों को समीप रहकर प्राप्त करते हैं उसी प्रकार तुम दोनों भी (महिषा) बड़े दानशील होकर (उप पतथः) नाना भोग्य पदार्थों को प्राप्त करो, (सुतं सोमं अव गच्छथः) उत्पन्न सोम्य, पुत्र वा शिष्य को प्राप्त करो । (सजोषसा, उषसा, सजोषसा सूर्येण च) प्रीतियुक्त, प्रभात वेलावत् कान्तियुक्त स्त्री से पुरुष और प्रीतियुक्त सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष से स्त्री समान प्रीतियुक्त होकर दोनों (त्रिः वर्तिः) तीन प्रकार के मार्ग को गमन करें । तीन मार्ग अर्थात् तीन आश्रमों का पालन करें ।

हंसाविव पतथो अध्वगाविव सोमं सुतं महिषेवाव गच्छथः
सजोषसा उषसा सूर्येण च त्रिर्वर्तिर्यातमश्विना ॥ ८ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (हंसौ इव) दो राजहंसों के समान और (अध्वगौ इव) दो पथिकों के समान (पतथः) गमन करो । (शेष पूर्ववत्—)

श्येनाविव पतथो हव्यदातये सोमं सुतं महिषेवाव गच्छथः ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च त्रिर्वर्तिर्यातमश्विना ॥ ९ ॥

भा०—हे (अश्विना) स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (हव्यदातये)

ग्राह्य पदार्थ वा उत्तम खाद्य पदार्थ के देने वा यज्ञ के लिये (श्येनौ इव) जो श्येनों के समान वेग से उत्तम विमान रथादि से जाते हुए वा उत्तम आचारवान् होकर (सुतं सोमं अव गच्छथः) यज्ञ में उत्पादित सोम ओषधि रस, तद्वत् आनन्द को प्राप्त करो। शेष पूर्ववत्।

पिबतं च तृप्णुतं चा च गच्छतं प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तम्।
सजोषसा उषसा सूर्येण चोर्जं नो धत्तमश्विना ॥ १० ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो! हे अश्वादि के स्वामी नायक वा सैन्य जनो! आप दोनों (पिबतं च तृप्णुतं च) पान करो, ऐश्वर्य का भोग करो और तृप्त भी होवो, (आ गच्छतं च) आओ और (प्रजां च आ धत्तम्) उत्तम सन्तान धारण करो, और (द्रविणं च आ धत्तम्) धन भी प्राप्त करो, और (नः ऊर्जं च धत्तम्) परस्पर प्रीतियुक्त होकर हमारे बीच बल और अन्न धारण करो। शेष पूर्ववत्।

जयतं च प्र स्तुतं च प्र चावतं प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तम्।
सजोषसा उषसा सूर्येण चोर्जं नो धत्तमश्विना ॥ ११ ॥

भा०—(जयतं च) दोनों आप जय प्राप्त करो, (प्र स्तुतं च) उत्तम रीति से स्तुति करो और (प्र अवतं च) अच्छी प्रकार रक्षा भी करो (प्रजां च धत्तं, द्रविणं च धत्तम्) प्रजा और धन को धारण करो। (शेष पूर्ववत्)

हतं च शत्रून्यततं च मित्रिणः प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तम्।
सजोषसा उषसा सूर्येण चोर्जं नो धत्तमश्विना ॥ १२ ॥ १५ ॥

भा०—(शत्रून् हतं च) और शत्रुओं को मारो। (मित्रिणः यततं च) स्नेहयुक्त जनों को यत्नपूर्वक प्राप्त करो, (शेष पूर्ववत्) इति पञ्चदशो वर्गः॥

मित्रावरुणवन्ता उत धर्मवन्ता मरुत्वन्ता जरितुर्गच्छथो हवम्।
सजोषसा उषसा सूर्येण चादित्यैर्यातमश्विना ॥ १३ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! वा सैन्य एवं नायक जनो ! आप दोनों (मित्रावरुण-वन्ता) स्नेहवान् एवं श्रेष्ठ पुरुषों, ब्राह्मण और क्षत्रिय राजाओं से युक्त, (धर्म-वन्ता) धर्मवान् और (मरुत्वन्ता) उत्तम प्राणों, नाना मनुष्यों और बलवान् पुरुषों के स्वामी होकर (जरितुः हवं गच्छथः) विद्वान्, उपदेष्टा पुरुष के उपदेश को प्राप्त करो। (उषसा सूर्येण सजोषसा) उषा सूर्यवत् समान परस्पर प्रीतियुक्त हो (आदित्यैः यातम्) किरणोंवत् तेजस्वी पुरुषों के साथ वा बारहों महीने (यातम्) जीवन मार्ग पर गमन करो।

अङ्गिरस्वन्ता उत विष्णुवन्ता मरुत्वन्ता जरितुर्गच्छथो हवम्।
सजोषसा उषसा सूर्येण चादित्यैर्यातमश्विना ॥ १४ ॥

भा०—आप दोनों (अंगिरस्वन्ता) उत्तम विद्वानों और देह में बलवान् प्राणों से युक्त (उत) और (विष्णुवन्ता) व्यापक सामर्थ्य से युक्त (मरुत्वन्ता) उत्तम पुरुषों वा प्राणों से युक्त होकर (जरितुः हवं गच्छथः) विद्वान् उपदेष्टा के यज्ञ, वा उपदेश को रणवत् प्राप्त करो। शेष पूर्ववत्।

ऋभुमन्ता वृषणा वाजवन्ता मरुत्वन्ता जरितुर्गच्छथो हवम्।
सजोषसा उषसा सूर्येण चादित्यैर्यातमश्विना ॥ १५ ॥

भा०—आप दोनों (ऋभु-मन्ता) सत्य ज्ञान से चमकने वाले पुरुषों से युक्त, (वृषणा) बलवान्, सुखों के दाता, (वाजयन्ता) ऐश्वर्य ज्ञानवान् (मरुत्वन्ता) प्राणों और पुरुषों के स्वामी होकर (जरितुः हवं गच्छथः) उपदेष्टा, विद्वान् के आह्वान वा उपदेश को प्राप्त करो। शेष पूर्ववत्। इसी प्रकार सैन्य एवं नायक भी शिल्पियों से युक्त, बलवान्, ऐश्वर्यवान् और मरने मारने वाले वीर भटों से युक्त होकर (जरितुः) राष्ट्र को जीर्ण करने वाले शत्रु के (हवम्) आह्वान, रण ललकार को प्राप्त करें (शेष पूर्ववत्)

ब्रह्म॑ जिन्वतमु॒त जि॑न्वतं॒ धियो॑ ह॒तं रक्षां॑सि॒ सेध॑त॒ममी॑वाः ।
स॒जोष॑सा उ॒षसा॒ सूर्ये॑ण च॒ सोमं॑ सुन्व॒तो अ॑श्विना ॥ १६ ॥

भा०—आप दोनों (ब्रह्म जिन्वतम्) ज्ञान, वेद और धन की वृद्धि करो, (धियः जिन्वतम्) बुद्धियों और सत्कर्मों की वृद्धि करो, (रक्षांसि) दुष्ट पुरुषों, विघ्न करने वालों को (हतम्) मारो। और (अमीवाः) रोगों को (सेधतम्) दूर करो। (सुन्वतः सोमम्) यज्ञ करने, सोम सवन करने वाले का सोम पान करें वा ऐश्वर्य उत्पादक प्रजा के (सोमं) ऐश्वर्य का उपभोग और रक्षण करें।

क्ष॒त्रं जि॑न्वतमु॒त जि॑न्वतं॒ नॄन्ह॒तं रक्षां॑सि॒ सेध॑त॒ममी॑वाः ।
स॒जोष॑सा उ॒षसा॒ सूर्ये॑ण च॒ सोमं॑ सुन्व॒तो अ॑श्विना ॥ १७ ॥

भा०—(क्षत्रं जिन्वतम्) आप दोनों धन और बल-वीर्य की वृद्धि करो। (नॄन् जिन्वतम्) नायक पुरुषों को बढ़ावो। शेष पूर्ववत्।

धे॒नूर्जि॑न्वतमु॒त जि॑न्वतं॒ विशो॑ ह॒तं रक्षां॑सि॒ सेध॑त॒ममी॑वाः ।
स॒जोष॑सा उ॒षसा॒ सूर्ये॑ण च॒ सोमं॑ सुन्व॒तो अ॑श्विना ॥ १८ ॥१६॥

भा०—(धेनूः जिन्वतम्) गौओं की वृद्धि करो, उनको अन्न, घास जलादि से खूब तृप्त, प्रसन्न कर रक्खो, और (विशः जिन्वतम्) प्रजाओं को बढ़ाओ, उनको तृप्त रक्खो। शेष पूर्ववत्। इति षोडशो वर्गः ॥

अत्रे॑रिव शृणुतं पू॒र्व्यस्तु॑तिं श्या॒वाश्व॑स्य सुन्व॒तो म॑द॒च्युता ।
स॒जोष॑सा उ॒षसा॒ सूर्ये॑ण॒ चाश्वि॑ना ति॒रोअ॑ह्न्यम् ॥ १९ ॥

भा०—हे (अश्विना) रथी सारथीवत् स्त्री पुरुषो! आप दोनों (अत्रेः इव) तीनों दुःखों, बन्धनों, आश्रमों से रहित संन्यासी पुरुष के समान ही (सुन्वतः) शासन करने वाले (श्यावाश्वस्य) रक्त श्याम अश्वों के स्वामी, राजा वा जितेन्द्रिय, विद्वान् की (पूर्व्य-स्तुतिं) श्रेष्ठ स्तुति या उपदेश को (मद-च्युता) तृप्त या हर्षित होकर (शृणुतं) श्रवण करो। (सूर्येण उषसा स-जोषसा) सूर्य और उषावत् परस्पर प्रीतियुक्त होकर

(तिरःअह्न्यम्) दिनावसान और दिन प्राप्ति के प्रातःसायं कृत्यों का भी पालन किया करो ।

तिरः सतः इति प्राप्तस्य । निरु० ॥

सर्गाँ इव सृजतं सुष्टुतीरुप श्यावाश्वस्य सुन्वतो मदच्युता ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चाश्विना तिरोअह्न्यम् ॥ २० ॥

भा०—आप दोनों शासन करने वाले (श्यावाश्वस्य) उत्तम अश्वों के स्वामी राजा वा जितेन्द्रिय विद्वान् की (सु-स्तुतीः) उत्तम स्तुतियों और उपदेशों को (सर्गान् इव उप सृजतम्) आभूषणों के समान धारण करो वा जलों के समान पान करो वा उत्तम पदार्थों के समान उत्तम उपभोग करो । शेष पूर्ववत् ।

रश्मीँरिव यच्छतमध्वराँ उप श्यावाश्वस्य सुन्वतो मदच्युता ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चाश्विना तिरोअह्न्यम् ॥ २१ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! रथी सारथिवत् राजा सचिवादि जनो ! आप दोनों (मद-च्युता) हर्षप्रद होकर (सुन्वतः) सवन, ऐश्वर्य वा शासन करने वाले (श्यावाश्वस्य) बलवान् उत्तम अश्वों वाले पुरुषों और (अध्वरान्) यज्ञों और न विनष्ट होने वाले, प्रबल जनों को (रश्मीन् इव) रश्मियों के समान (उप यच्छतम्) नियन्त्रित करो । शेष पूर्ववत् ।

अर्वाग्रथं नि यच्छतं पिबतं सोम्यं मधु ।
आ यातमश्विना गतमवस्युर्वामहं हुवे धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥२२॥

भा०—हे (अश्विना) अश्व के ऊपर वश करने वाले रथी सारथीवत् जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! आप लोग (रथं) रथ के तुल्य रमण या सुख के साधन अपने देह और आत्मा को (अर्वाक्) अपने समक्ष (नियच्छतं) नियम में रक्खो । और (सोम्यं मधु) ओषधिरस से मिश्रित अन्न, या मधु के समान आत्मा या परमेश्वर के मधुर सुख को (पिबतम्) पान

करो। (अहं अवस्युः वां हुवे) मैं रक्षार्थी आप दोनों को बुलाता हूं। आप दोनों (आयातम्) आवें (गतम्) जावें। आप दोनों (दाशुषे) दानशील पुरुष को नाना (रत्नानि) उत्तम रत्नादि, सुखप्रद पदार्थ (धत्तम्) प्रदान करें।

नमोवाके प्रस्थिते अध्वरे नरा विवक्षणस्य पीतये।
आ यातमश्विना गतमवस्युर्वामहं हुवे धत्तं रत्नानि दाशुषे॥२३॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय पुरुषो! (नरा) हे उत्तम नायक और नेय जनो! (अध्वरे) यज्ञ में (नमो-वाके प्रस्थिते) नमःयुक्त वचन प्रारम्भ होने पर (विवक्षणस्य) विशेष रूप से वहन करने योग्य, विशेष वचन योग्य पद या ज्ञान के (पीतये) रक्षा और पान करने के लिये आप लोग (आयातम्) आवें और (गतम्) जावें। मैं (अवस्युः) रक्षा और ज्ञान-तृप्ति चाहता हुआ (वां हुवे) आप दोनों को बुलाता, प्रार्थना करता हूं, आप (दाशुषे रत्नानि धत्तम्) दानशील, आत्मसमर्पक पुरुष को उत्तम २ पदार्थ प्रदान करें।

स्वाहाकृतस्य तृम्पतं सुतस्य देवावन्धसः।
आ यातमश्विना गतमवस्युर्वामहं हुवे धत्तं रत्नानि दाशुषे॥२४॥१७

भा०—हे (देवा) उत्तम विद्वान् दानशील पुरुषो! आप दोनों; (स्वाहा-कृतस्य) उत्तम रीति से आहुति किये वा उत्तम वचनों द्वारा प्रशंसित (सुतस्य) कूट, पीस, छान कर तैयार किये (अन्धसः) अन्न और जीवनप्रद ओषधि पदार्थ से (तृम्पतम्) क्षुधा की तृप्ति करो। शेष पूर्ववत्। इति सप्तदशो वर्गः॥

[३६]

श्यावाश्व ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ५, ६ शक्वरी। २, ४ निचृच्छक्वरी। ३ विराट् शक्वरी। ७ विराड् जगती॥ सप्तर्चं सूक्तम्॥

अ॒वि॒तासि॑ सुन्व॒तो वृ॒क्तब॑र्हिषः पिबा॒ सोमं॒ मदा॑य॒ कं श॑तक्रतो ।
यं ते॑ भा॒गमधा॑रय॒न्विश्वाः॑ सेहा॒नः पृत॑ना उ॒रु ज्र॒यः सम॑प्सु॒जि-
न्मरुत्वाँ॑ इन्द्र सत्पते ॥ १ ॥

भा०—हे (शतक्रतो) अनेक प्रज्ञानों और अनेक कर्म करने हारे! राजन् ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! विद्वन् ! प्रभो ! तू (सुन्वतः) उपासना करने वाले, यज्ञशील, (वृक्त-बर्हिषः) आसनार्थ कुशादि बिछाकर बैठे हुए विद्वान् जन का (अविता असि) रक्षा करने वाला है। तू (मदाय) आनन्द लाभ के लिये (सोमं पिब) सोम, उत्पन्न जगत्, पुत्रवत् प्रजा शिष्यादि का पालन कर। हे (सत्पते) सज्जनों के पालक ! (इन्द्र) शत्रुओं और दुष्ट पुरुषों के नाशक ! तू (मरुत्वान्) बलवान् पुरुषों का स्वामी होकर (अप्सु-जित्) आप्त प्रजाओं में सर्वातिशायी होकर (उरुज्रयः) बड़े भारी वेग और बल को तथा (विश्वाः पृतनाः) समस्त सेनाओं को (संसेहानः) अच्छी प्रकार पराजित करता हुआ तू उस (सोमं पिब) ऐश्वर्य का भोग कर (यं भागं) जिस सेवनयोग्य अंश को (ते) तेरे लिये (अधारयन्) निर्धारित कर दें।

प्राव॑ स्तो॒तारं॑ मघव॒न्नव॒ त्वां पिबा॒ सोमं॒ मदा॑य॒ कं श॑तक्रतो ।
यं ते॑ भा॒गमधा॑रय॒न्विश्वाः॑ सेहा॒नः पृत॑ना उ॒रु ज्र॒यः सम॑प्सु॒-
जिन्म॒रुत्वाँ॑ इन्द्र सत्पते ॥ २ ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! तू (स्तोतारं प्र अव) तू स्तुति-कर्त्ता, विद्वान् उपदेष्टा की अच्छी प्रकार रक्षा कर और (त्वां प्र अव) तू तृप्त हो। (पिबा सोमं० इत्यादि पूर्ववत्) त्वां। त्वं। छान्दसो दीर्घः। अथवा सोरमादेशः। विभक्तिव्यत्ययः।

ऊ॒र्जा दे॒वाँ अव॒स्योज॑सा॒ त्वां पिबा॒ सोमं॒ मदा॑य॒ कं श॑तक्रतो ।
यं ते॑ भा॒गमधा॑रय॒न्विश्वाः॑ सेहा॒नः पृत॑ना उ॒रु ज्र॒यः सम॑प्सुजि-
न्मरुत्वाँ॑ इन्द्र सत्पते ॥ ३ ॥

भा०—(त्वां=त्वं) तू (देवान्) सुख ऐश्वर्यादि के चाहने वाले विजिगीषु, एवं विद्वान् जनों को (ऊर्जा ओजसा) अन्न और बल पराक्रम से (अवसि) रक्षा करने में समर्थ है, अतः तू (हे शतक्रतो मदाय सोमं पिब०) इत्यादि पूर्ववत् ।

जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो। यं ते भागमधारयन्विश्वाः सेहानः पृतना उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ॥ ४ ॥

भा०—हे (शतक्रतो) सैकड़ों कर्म करने और सैकड़ों ज्ञानों के जानने हारे ! सहस्रों यज्ञ करने हारे ! प्रभो ! तू (दिवः जनिता) सूर्य, प्रकाश, महान् आकाश का (जनिता) उत्पादक और (पृथिव्याः जनिता) पृथिवी का भी उत्पादक है । हे (सत्पते इन्द्र) सज्जनों के पालक, दुष्टों के नाशक ! तू (मरुत्वान्) समस्त जीवों का स्वामी और (अप्सु-जित्) प्राणों, प्रकृति के परमाणुओं और समस्त लोकों में व्यापक रहकर सबको वश करने वाला, सब से महान्, (उरुज्रयः) महान् वेग, बलस्वरूप होकर उसी (यं) जिस (ते) तेरे दिये (भागम्) सेवनीय अन्न को वे (अधारयन्) धारण करते हैं उसीसे तू उन (विश्वाः पृतनाः संसेहानः) समस्त जीव प्रजाओं को अच्छी प्रकार तृप्त करता हुआ (मदाय) परमानन्द लाभ कराने के लिये (सोमं पिब) समस्त जगत् का पालन करता है । सेहानः—सह मर्षणे, सह चक्यर्थे । चक तृप्तौ प्रतिघाते च । भ्वादिः ।

जनिताश्वानां जनिता गवामसि पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो। यं ते भागमधारयन्विश्वाः सेहानः पृतना उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र सत्पते शतक्रतो) ऐश्वर्यवन्! सज्जनों के पालक सैकड़ों यज्ञों कर्मों के स्वामिन् ! तू (अश्वानां जनिता, गवां जनिता असि) अश्वों

और गौओं, सूर्यों और भूमियों का भोक्ता आत्मा और इन्द्रियों का भी उत्पन्न करने वाला है। शेष पूर्ववत्।

अत्रीणां स्तोममद्रिवो महस्कृधि पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो। यं ते भागमधारयन्विश्वाः सेहानः पृतना उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ॥ ६ ॥

भा०—हे (अद्रिवः) मेघों के स्वामिन् सूर्यवत् तेजस्विन्! वा अखण्ड शक्तियों के स्वामिन्! तू (अत्रीणां) तीनों दुःखों से रहित, जनों के (स्तोमं) स्तुति वचन को (महः कृधि) पूजित, पूर्ण कर। हे राजन् शक्तिशालिन्! तू (अत्रीणां) इस राष्ट्र में विद्यमान प्रजाओं की प्रार्थना का आदर कर। शेष पूर्ववत्।

श्यावाश्वस्य सुन्वतस्तथा शृणु यथाशृणोरत्रेः कर्माणि कृण्वतः। प्र त्रसदस्युमाविथ त्वमेक इन्नृषाह्य इन्द्र ब्रह्माणि वर्धयन्॥७॥१८

भा०—(कर्माणि कृण्वतः) कर्म करनेवाले (अत्रेः) 'अत्रि' अर्थात् त्रिविध दुःखों वा बन्धनों से रहित शुद्धात्मा जन की स्तुति को (यथा अशृणोः) जिस प्रकार श्रवण करता तथा उसी प्रकार (सुन्वतः) पूजा करने वाले (श्यावाश्वस्य) बलवान्, दृढ़, जितेन्द्रिय पुरुष के भी (स्तोमम् अशृणोः) स्तुति वचन को श्रवण करता है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (ब्रह्माणि वर्धयन्) अन्नों, ज्ञानों और धनों की वृद्धि करता हुआ (नृ-साह्ये) मनुष्यों और नायकों को वश करने में (त्वम् एकः इत्) तू अकेला ही (त्रसदस्युम्) दस्युओं को भय देने वाले सैन्य बल को वा दस्यु से भयभीत प्रजाजन को वा (त्रसद्-अस्युम्) भयभीत शत्रु को उखाड़ने वाले सैन्य को (प्र आविथ) उत्तम रीति से रक्षा कर। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[३७]

श्यावाश्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ विराडतिजगती। २—६ निचृज्जगती। ७ विराड् जगती ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

प्रेदं ब्रह्म वृत्रतूर्येष्वाविथ प्र सुन्वतः शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः। माध्यन्दिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः ॥ १ ॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार (वृत्र-तूर्येषु ब्रह्म प्र अवति) मेघ के आघातों या जलों के वेगवत् प्रवाहों पर अन्नों की रक्षा करता है और (सुन्वतः) उत्पन्न जीवों की रक्षा करता है वह (माध्यन्दिनस्य सवनस्य सोमस्य पिबति) मध्याह्न में तीव्र ताप से जल का पान करता वा जगत् की रक्षा करता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) शत्रुओं को नाश करने हारे! तू (वृत्र-तूर्येषु) शत्रुओं और विघ्नों को नाश करने के कार्यों के निमित्त (इदं ब्रह्म प्र आविथ) इस महान् ऐश्वर्य की खूब अच्छी प्रकार रक्षा कर। और (सुन्वतः प्र आविथ) सवन अर्थात् ऐश्वर्य उत्पन्न करने वाले वा तेरा अभिषेक करने वाले प्रजागण की भी उन अवसरों पर (विश्वाभिः ऊतिभिः अविथ) समस्त रक्षाकारिणी शक्तियों, सेनाओं द्वारा रक्षा किया कर। हे (अनेद्य) अनिन्दनीय! हे प्रशस्त स्तुति योग्य! हे (वज्रिवः) शक्तिशालिन्! हे (शचीपते) शक्ति और वाणी के पालक! तू (मध्यन्दिनस्य) दिन के मध्य काल में विद्यमान सूर्य के तेज के समान (सवनस्य) बलयुक्त शासन के (सोमस्य) ऐश्वर्य राष्ट्र आदि का हे (वृत्रहन्) दुष्टों के नाशक! (पिब) उपभोग और पालन कर।

सेहान उग्र पृतना अभि द्रुहः शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः। माध्यन्दिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः ॥२॥

भा०—हे (शचीपते इन्द्र) शक्तिशालिन्! मतिमन्! ऐश्वर्यशालिन्! तू (विश्वाभिः ऊतिभिः) समस्त शक्तियों से (द्रुहः पृतनाः) द्रोह करने वाले मनुष्यों को (अभि सेहानः) पराजित करके अथवा (द्रुहः अभि सेहानः) द्रोहियों को पराजित और (पृतनाः अभि सेहानः) सामान्य मनुष्य प्रजाओं को अन्नादि से तृप्त करता हुआ, हे (उग्र) बल-

वन्! हे (अनेद्य) अनिन्द्य! प्रशंसनीय! हे वज्रिवः शक्तिशालिन्! हे (वृत्रहन्) दुष्ट, विघ्नकर्त्ताओं के नाशक! तू (माध्यन्दिनस्य सवनस्य सोमस्य पिब) मध्य दिन के सूर्यवत् शासन और ऐश्वर्य का उपभोग और पालन कर।

एकराळस्य भुवनस्य राजसि शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः।
माध्यन्दिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः॥३॥

भा०—हे (शचीपते) सर्वशक्तिमन्! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! प्रभो! तू (अस्य भुवनस्य) इस भुवन, जगत् ब्रह्माण्ड के बीच (विश्वाभिः ऊतिभिः) समस्त रक्षक शक्तियों द्वारा (एकराट्) अद्वितीय प्रकाशमान होकर, एक छत्र सम्राट् के समान (राजसि) विराजता है, विश्व के राजा के समान शासन करता है। (माध्यन्दिनस्य०) इत्यादि पूर्ववत्।

सस्थावाना यवयसि त्वमेक इच्छचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः।
माध्यन्दिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः॥४॥

भा०—हे (शचीपते) शक्ति और वाणी के पालक! जिस प्रकार (सस्थावाना) समान बल से युद्धार्थ खड़े दो बलवान् राष्ट्रों को जिस प्रकार मध्यम राजा जुदा २ कर थामे रहता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! शत्रुहन्तः! तू भी (विश्वाभिः ऊतिभिः) सब शक्तियों से सम्पन्न होकर (सस्थावाना) समान बल से स्थिर सूर्य पृथिवी आदि लोकों को परस्पर के तुलित बल से (एकः त्वम्) अकेला ही (यवयसि) पृथक् २ थामे रहता है। शेष पूर्ववत्।

क्षेमस्य च प्रयुजश्च त्वमीशिषे शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः।
माध्यन्दिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः॥५॥

भा०—हे (शचीपते) शक्तिशालिन्! (त्वम्) तू (क्षेमस्य च ईशिषे) क्षेम अर्थात् प्रजाओं के रक्षा करने में समर्थ है और (प्रयुजः

च ईशिषे) उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त कराने और उनको प्राप्त हुए नाना ऐश्वर्यों का भी स्वामी है। शेष पूर्ववत्।

क्षत्राय त्वमवसि न त्वमाविथ शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः।
माध्यन्दिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः॥६॥

भा०—हे (शचीपते) तू (विश्वाभिः ऊतिभिः) अपनी समस्त रक्षक शक्तियों से धनैश्वर्य और बल की वृद्धि के लिये ही (अवसि) रक्षा करता है।

श्यावाश्वस्य रेभतस्तथा शृणु यथाशृणोरत्रेः कर्माणि कृण्वतः।
प्र त्रसदस्युमाविथ त्वमेक इन्नृषाह्य इन्द्र क्षत्राणि वर्धयन् ७।१९

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यथा कर्माणि कृण्वतः तथा) नाना कर्म करने वाले (अत्रेः) विविध बन्धनों से रहित या, इस संसार या राष्ट्र में विद्यमान मनुष्यों के समान ही (रेभतः श्यावाश्वस्य शृणु) स्तुति और उपदेश करनेवाले जितेन्द्रिय पुरुष के वचनों को भी श्रवण किया कर। अर्थात् राजा उद्योगी पुरुषों के समान विद्वान् जितेन्द्रियों की भी सुनकर उन पर ध्यान देवे। और (नृ-सह्ये) नायक पुरुषों द्वारा विजय करने योग्य संग्राम में (क्षत्राणि वर्धयन्) धनों और बलों की वृद्धि करता हुआ (त्वम् एकः इत्) तू एक, अद्वितीय ही सर्वोपरि, (त्रसदस्युम् प्र आविथः) दुष्टों को उखाड़ देने वाले बल की खूब रक्षा कर। इत्येकोनविंशो वर्गः॥

[३८]

श्यावाश्व ऋषिः॥ इन्द्राग्नी देवते॥ छन्दः—१, २, ४, ६, ९ गायत्री। ३, ५, ७, १० निचृद्गायत्री। ८ विराड् गायत्री॥ दशर्चं सूक्तम्॥

यज्ञस्य हि स्थ ऋत्विजा सस्नी वाजेषु कर्मसु।
इन्द्राग्नी तस्य बोधतम्॥१॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र, ऐश्वर्यवन् ! हे अग्ने ! ज्ञानवन् ! तुम दोनों विद्युत् और अग्नि के समान (यज्ञस्य ऋत्विजा) यज्ञ को ऋतु २ में अनुष्ठान करने वाले (वाजेषु) बलों, धनों और ज्ञानों में (सस्नी) निष्णात, शुद्ध और अन्यों को भी पवित्र और निष्णात करने वाले और (कर्मसु) कर्मों में भी (सस्नी) शुद्ध, पवित्र आचारवान् (हि स्थः) होवो। आप दोनों (तस्य बोधतम्) उस यज्ञ का ज्ञान करो, और अन्यों को उसका ज्ञान करावो।

तोशासा रथयावाना वृत्रहणापराजिता।
इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) विद्युत् और अग्नि, वा सूर्य और अग्निवत् शत्रुनाशक राजन् ! और ज्ञानवन् विद्वन् ! आप दोनों (तोशासा) शत्रुओं और अज्ञानों, दुष्टाचरणों का नाश करते हुए (रथ-यावाना) रथ, स्वयं वेगवान् रमण योग्य, वा उत्तम यान से जाने वाले, (वृत्र-हणा) बढ़ते शत्रु को दण्ड देने वाले, (अपराजिता) कभी न हारने वाले होवो। आप दोनों (तस्य बोधतम्) उस प्रजाजन को भली प्रकार जानो।

इदं वां मदिरं मध्वधुक्षन्नद्रिभिर्नरः। इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ३

भा०—हे (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्यवन् ! ज्ञानवन् ! वा शत्रुहन् ! नेतः ! (वां) आप दोनों के लिये (नरः) उत्तम नायक जन (इदं मदिरं) इस तृप्तिकारक हर्षदायक (मधु) मधुर रस, जल, अन्न, ज्ञानों और बल को (अद्रिभिः) मेघ, पर्वत और शस्त्रास्त्र बलों वा पाषाणादि से (अधुक्षन्) दोहें, प्राप्त करें। (तस्य बोधतम्) आप दोनों उस ज्ञान को भी भली प्रकार जानें। (अद्रिभिः मधु) मेघों से जल और अन्न, पर्वतों से, पाषाणों से निर्झर और ओषधिरस शस्त्रों से ऐश्वर्य और बल, तथा (अद्रिभिः) अखण्ड गुरुजनों से ज्ञान का दोहन किया जाता है।

जुषेथां यज्ञमिष्टये सुतं सोमं सधस्तुती। इन्द्राग्नी आ गतं नरा ४

भा०—हे (इन्द्राग्नी) विद्युत् और अग्नि के तुल्य (नरा) उत्तम नायक, स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (इष्टये) अभीष्ट सुख प्राप्त करने के लिये (यज्ञम्) यज्ञ, परस्पर सत्संग, दान का (जुषेथाम्) प्रेमपूर्वक सेवन करो, आप दोनों (सध-स्तुती) एक साथ स्तुति प्राप्त कर (सुतं सोमं) उत्पन्न पुत्र को, ऐश्वर्य को और ओषध्यादि रस को भी (जुषेथां) प्रेमपूर्वक प्राप्त करो । (आ गतम्) आप दोनों आदरपूर्वक आवो ।

इमा जुषेथां सवना येभिर्हुव्यान्यूहथुः । इन्द्राग्नी आ गतं नरा ५

भा०—हे (इन्द्राग्नी) सूर्य अग्निवत् तेजस्वी वा वायु, अग्निवत् परस्पर के सहायक ! एक दूसरे से चमकने, बढ़ने वाले (नरा) नायको, वा स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (आ गतम्) आओ ! (इमा सवना) ये नाना धन, ऐश्वर्य (जुषेथां) प्रेम से प्राप्त करो, (येभिः हव्यानि) जिनों से नाना उत्तम खाद्य पदार्थ भी (ऊहथुः) प्राप्त कर सकते हैं । (२) इसी प्रकार विद्युत् और अग्नि दोनों को नाना प्रकार के (सवना) प्रेरक यन्त्रों में लगाकर उनसे 'हव्य' ग्राह्य पदार्थ प्राप्त कर सकते और लेने देने योग्य व्यापार योग्य पदार्थों को ढो लेजा सकते हैं ।

इमां गायत्रवर्तनिं जुषेथां सुष्टुतिं मम । इन्द्राग्नी आ गतं नरा ६।२०

भा०—हे (इन्द्राग्नी नरा) अग्निवत् नायक जनो ! आप दोनों (आ गतं) आओ । (इमां) इस (गायत्र-वर्तनिं) गायत्री छन्द में विद्यमान (सु-स्तुतिं) उत्तम स्तुति वा उपदेश को (जुषेथाम्) प्रेमपूर्वक स्वीकार करो । अथवा—गायत्र वर्तनिं, गायत्री वा इयं पृथिवी श० । ४ । ३ । ४ । ९॥ गायत्रोऽयं भूलोकः । तां० ७ । ३ । प्राणः ।९। कौ०८।५॥ अग्निः । श० १ । ८ । २ । १३ ॥ इति विंशो वर्गः ॥

प्रातर्यावभिरा गतं देवेभिर्जेन्यावसू । इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥७॥

भा०—हे (जेन्यावसू) विजय करने योग्य धनों को प्राप्त करने हारे (इन्द्राग्नी) सूर्याग्निवत् तेजस्वी जनो ! आप दोनों (प्रातः-यावभिः)

प्रातःकाल वा जीवन के पूर्व भाग में ही प्राप्त होने वाले (देवेभिः) विद्वान् जनों से (सोम-पीतये) उत्तम ज्ञान ग्रहण करने और बलवीर्य की रक्षा करने के लिये आप (आ गतम्) आओ ।

श्यावाश्वस्य सुन्वतोऽत्रीणां शृणुतं हवम् । इन्द्राग्नी सोमपीतये ८

भा०—हे (इन्द्राग्नी) सूर्य, अग्निवत् तेजस्वी पुरुषो ! आप दोनों (सोम पीतये) उत्तम ज्ञान के दान करने और उत्तम वीर्य की रक्षा के लिये (सुन्वतः श्यावाश्वस्य) शासन करने वाले, जितेन्द्रिय विद्वान् और (अत्रीणां) त्रिविध दुःखों से रहित, तीन आश्रमों से रहित संन्यासियों के (हवम्) उत्तम उपदेश को (शृणुतम्) श्रवण करो ।

एवा वामह्व ऊतये यथाहुवन्त मेधिराः । इन्द्राग्नी सोमपीतये ९

भा०—(यथा) जिस प्रकार (मेधिरा) विद्वान् मतिमान्, मेधावी पुरुष (वाम्) आप दोनों को अपने पास (सोम-पीतये) ज्ञान ग्रहण और वीर्य पालन के लिये (आहुवन्त) बुलाते रहें । हे (इन्द्राग्नी) सूर्याग्निवत् तेजस्वी जनो ! (एवा) उसी प्रकार मैं भी (वाम्) आप दोनों को (सोम-पीतये) ऐश्वर्य और पुत्र प्रजादि के उपभोग और पालन के लिये बुलाता हूं ।

अहं सरस्वतीवतोरिन्द्राग्न्योरवो वृणे ।
याभ्यां गायत्रमृच्यते ॥ १० ॥ २१ ॥

भा०—(अहं) मैं (सरस्वतीवतोः) उत्तम वेदवाणी वाले (इन्द्राग्न्योः) ऐश्वर्य और तेज को धारण करने वाले ज्ञानी स्त्री पुरुषों के (अवः) ज्ञान और रक्षा की (वृणे) याचना करता हूं, (याभ्याम्) जिनके आदर्श (गायत्रम्) गायत्री मन्त्र वा गायत्र साम द्वारा (ऋच्यते) स्तुति की जाती है । उसी प्रकार प्रशस्त ज्ञानमयी विद्या और उत्तम स्त्री 'सरस्वती' कहाती है । उनके स्वामी ऐश्वर्यवान् और ज्ञानवान् पुरुषों के ज्ञान और रक्षा को चाहूं । (याभ्यां) वे गायत्री का उपदेश करें । इत्येकविंशो वर्गः॥

[३९]

नाभाकः काण्व ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ५ भुरिक् त्रिष्टुप् ॥ २ विराट् त्रिष्टुप् । ४, ६—८ स्वराट् त्रिष्टुप् । १० त्रिष्टुप् । ९ निचृज्जगती ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

अ॒ग्निम॑स्तोष्यृ॒ग्मिय॑म॒ग्निमी॒ळा य॒जध्यै॑ । अ॒ग्निर्दे॒वाँ अ॑नक्तु न उ॒भे हि वि॒दथे॑ क॒विर॒न्तश्चर॑ति दू॒त्यं१॒॑ नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे ॥ १ ॥

भा०—मैं (ऋग्मियम्) स्तुति योग्य (अग्निम्) ज्ञानवान् तेजस्वी प्रभु, विद्वान्, नेता की (अस्तोषि) स्तुति करता हूं, (यजध्यै) सत्संग करने और पूजा करने के लिये भी उसी (अग्निम्) अग्रणी, ज्ञानी की (ईडा) वाणी द्वारा स्तुति करूं। वह (अग्निः) अग्निवत् प्रकाशक (नः) हमारे (देवान्) किरणोंवत् दिव्य गुणों, काम्य पदार्थों वा विज्ञान के इच्छुक शिष्य जनों को (अनक्तु) प्रकट करे और ज्ञान द्वारा प्रकाशित करे। वह (कविः) क्रान्तदर्शी विद्वान् (विदथे) यज्ञ में अग्नि के तुल्य (विदथे) ज्ञान लाभ के कर्म में (उभे हि अन्तः) आकाश और भूमि के बीच सूर्य के समान तेजस्वी होकर (उभे अन्तः चरति) राजा प्रजा मित्र वा शत्रु दोनों वर्गों के बीच विचरता है। (समे अन्यके) अन्य समस्त शत्रुगण आप से आप (नभन्ताम्) नाश को प्राप्त हों।

न्य॑ग्ने॒ नव्य॑सा॒ वच॑स्त॒नूषु॒ शंस॑मेषाम् । न्यरा॑ती॒ ररा॑व्णां॒ विश्वा॑ अ॒र्यो अरा॑तीरि॒तो यु॑च्छन्त्वा॒मुरो॒ नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! तेजस्विन्! (एषां तनूषु) इनके शरीरों या आत्माओं में (नव्यसा वचः) अति नवीन, स्तुति वचन से (शंसं) उत्तम उपदेश (निधेहि) स्थापित कर, वे विद्वान् बनें। अथवा—(नव्यसा वचः तनूषु एषां शं नियुच्छ) अपने स्तुति वचन से हमारे शरीरों पर आने वाले इनके किये प्रहारों को दूर कर और (रराव्णां) दानशीलों

के बीच जो (अरातीः) अदानशील हैं उन (विश्वाः) सबको (अर्यः) स्वामी होकर तू निकाल, दण्डित कर। और (आमुरः) मूढ या सर्वत्र मारामारी करने वाले हिंसक (अरातीः) शत्रु लोग भी (इतः नि युच्छन्तु) इस राष्ट्र से दूर हो जावें। और (समे अन्यके) समस्त अन्य शत्रु दुष्ट जन (नभन्ताम्) नष्ट हों।

अग्ने मन्मानि तुभ्यं कं घृतं न जुह्व आसनि। स देवेषु प्र चिकिद्धि त्वं ह्यसि पूर्व्यः शिवो दूतो विवस्वतो नभन्तामन्यके समे॥३॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! (घृतं न आसनि जुह्वति) जिस प्रकार अग्नि के मुख अर्थात् ज्वाला में यज्ञकर्त्ता लोग घृत की आहुति देते हैं उसी प्रकार हे शिष्य वा विद्वन्! मैं शिष्य (तुभ्यं आसनि) तेरे हितार्थ तेरे मुख में (मन्मानि) मनन करने योग्य ज्ञानयुक्त वचनों को (जुह्वे) प्रदान करता हूं तू उनको मुख में धारण कर, (सः) वह तू (प्र चिकिद्धि) अच्छी प्रकार जान, (हि त्वं) क्योंकि तू (पूर्व्यः) पूर्ण ज्ञानी, उत्तम पद योग्य वा पूर्व ब्रह्मचर्यावस्था में विद्यमान (शिवः) कल्याणकारी, सौम्य, (विवस्वतः) विविध विद्यार्थी रूप वसुओं के स्वामी गुरु आचार्य का (दूतः) ज्ञानमय संदेश को दूर तक पहुंचाने में दूत के समान ही (असि) है। इस प्रकार ज्ञान धारण करते हुए के (समे अन्यके) समस्त अन्य तुच्छ विरोधी विघ्नकारक जन (नभन्ताम्) नष्ट हों। गुरु जिस प्रकार अपना वचन शिष्य में धारण कराता या आहुतिकर्त्ता घृत को अग्नि के मुख में देता है उसी प्रकार राजादि भी विद्वान् पुरुष के मुख में अपना सुविचारित वचन स्थापित कर अन्य प्रजा वा राजान्तर के प्रति संदेशार्थ भेजें।

तत्तदग्निर्वयो दधे यथायथा कृपण्यति। ऊर्जाहुतिर्वसूनां शं च योश्च मयो दधे विश्वस्यै देवहूत्यै नभन्तामन्यके समे॥४॥

भा०—(यथा यथा कृपण्यति) जिस २ प्रकार का बल वा अन्न याचक

चाहता है (अग्निः तत् तत् वयः दधे) गृहपति, तेजस्वी स्वामी जन वैसा २ ही बल वा अन्न उसे प्रदान करता है, उसी प्रकार शिष्य भी (यथा यथा कृपण्यति) जिस २ विज्ञान की याचना करता है (अग्निः तत् तत् वयः दधे) अग्नि उसी २ प्रकार का विज्ञान उसे धारण करावे इसी प्रकार प्रजाजन राजा वा नायक से जैसा (वयः) बल अन्नादि चाहे उसी २ प्रकार का वह धारण करे। (वसूनां ऊर्जाहुतिः) गुरु के अधीन वसने वाले शिष्यों को बल, ज्ञान, अन्नादि का दान (विश्वस्यै देवहूत्यै) समस्त प्रकार को शुभ गुणों को प्राप्त कराने के लिये (शं च योः च) शान्ति देता, दुःख दूर करता और (मयः दधे) सुख प्रदान करता है। इसी प्रकार प्रजा जिस २ बल की याचना करे तेजस्वी राजा उसी २ को स्वयं और प्रजा में भी धारण करे। (वसूनां ऊर्जाहुतिः विश्वस्यै देवहूत्यै) राष्ट्र में बसे प्रजाजनों की यह बल की प्राप्ति समस्त विजयेच्छुक सैनिकों और विद्वानों को वेतन भोजनादि देने के लिये होती है और उसे राजा शान्ति, दुःखनाश और सुख स्थापित करता और (अन्यके समे) और सब शत्रु गण (नभन्तां) नष्ट होते हैं।

स चिकेत सहीयसाग्निश्चित्रेण कर्मणा। स होता शश्वतीनां दक्षिणाभिरभीवृत इनोति च प्रतीव्यं१ नभन्तामन्यके समे ५।२२

भा०—(सः) वह (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी विद्वान् (सहीयसा) अत्यधिकसहन करने और प्रतिपक्ष रूप बाधक विघ्न को पराजित करने वाले (चित्रेण कर्मणा) अद्भुत, ज्ञानप्रद कर्म से बलवान् होकर (चिकेत) ज्ञान प्राप्त करता वा जाना जाता है। (सः) वह (दक्षिणाभिः) दक्षिणाओं से यज्ञाग्नि के समान दान, भिक्षाओं से (अभि-वृतः) पुष्ट होकर (शश्वतीनां होता) नित्य विद्याओं का ग्रहण करने वाला होकर (प्रतीव्यम् इनोति च) ज्ञेय तत्व को प्राप्त होता है। इसी प्रकार नायक भी (सहीयसा) शत्रुपराजयकारी (चित्रेण कर्मणा) अद्भुत कर्म से

(चिकेत) प्रसिद्ध हो। वह (दक्षिणाभिः) अपनी बलवती शक्तियों, सेनाओं से (अभि-वृतः) घिरा हुआ (शश्वतीनां होता) बहुत सी मौल प्रजाओं और सेनाओं को स्वीकार करने और उनको वेतन भोजनादि देने वाला होकर (प्रतीच्यं इनोति) आक्रमण करने योग्य शत्रु तक पहुंचता है और इस प्रकार (समे अन्यके नभन्ताम्) समस्त छोटे मोटे शत्रुगण नाश को प्राप्त होते हैं। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

अ॒ग्निर्जा॒ता दे॒वाना॑म॒ग्निर्वे॑द॒ मर्ता॑नामपी॒च्य॑म्। अ॒ग्निः स द्र॑वि॒णोदा॑ अ॒ग्निर्द्वारा॒ व्यू॑र्णुते॒ स्वा॑हुतो॒ नवी॑यसा॒ नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे ६

भा०—जिस प्रकार (अग्निः) अग्नि, या विद्युत्, वा जाठराग्नि, (नवीयसा) नये से नये अन्नादि द्वारा (सु-आहुतः) अच्छी प्रकार आहुति किया जाकर, उत्तम मन्त्र द्वारा गृहीत, या अन्नादि से तृप्त होकर (देवानां जाता वेद) देव अर्थात् प्रकाशक किरणों के स्वरूपों को प्राप्त करता वा जाठराग्नि अन्नाहुति प्राप्त कर देव अर्थात् इन्द्रियों के द्वारा ग्राह्य पदार्थों को ज्ञान प्राप्त कराता है और (मर्त्तानाम् अपीच्यं वेद) मनुष्यों को छुपे, गुप्त, अन्धकार से आवृत पदार्थ भी ज्ञात करादेता है, और जाठराग्नि, मनुष्यों के गुह्य बल और सुन्दर रूप को प्रकट कर देता है, उसी प्रकार (अग्निः) अग्रणी नायक (देवानां) विजिगीषु जनों के (जाता वेद) सब जन्मादि को जाने, (मर्त्तानाम् अपीच्यं वेद) मनुष्य प्रजाओं के गुह्य रहस्यों को भी जाने। (सः अग्निः द्रविणोदाः) वह अग्रणी नायक ऐश्वर्य का देने वाला हो। वह (अग्निः) तेजस्वी पुरुष द्वारा (व्यूर्णुते) प्रजाओं और सेनाओं के व्यवहार और रण के मार्गों को खोलता और प्रकाशित करता है। इस प्रकार (समे अन्यके नभन्ताम्) समस्त शत्रुगण नाश को प्राप्त होते हैं।

अ॒ग्निर्दे॒वेषु॒ संव॑सुः॒ स वि॒क्षु य॒ज्ञिया॒स्वा। स मु॒दा काव्या॑ पु॒रु विश्वं॒ भूमे॑व पुष्यति दे॒वो दे॒वेषु॑ य॒ज्ञियो॒ नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे॥७॥

भा०—जिस प्रकार (अग्निः देवेषु सं-वसुः) अग्नि समस्त सूर्यादि

तेजस्वी पदार्थों में उनको अच्छी प्रकार आच्छादित करता है वही अग्नि-तत्व (यज्ञियासु) यज्ञ योग्य प्रजाओं के बीच यज्ञाग्नि और जाठराग्नि रूप में विद्यमान रहता है उसी प्रकार (अग्निः) तेजस्वी विद्वान् और अग्रणी नायक भी (देवेषु) विद्वानों और विजिगीषु पुरुषों के बीच (सं-वसुः) अच्छी प्रकार रहने वाला और उत्तम रीति से ऐश्वर्य का स्वामी हो। (सः) वह (यज्ञियासु विक्षु) यज्ञ, परस्पर सत्संग करने वाली, यज्ञशील, प्रजाओं में (सं-वसुः) सम्यक् प्रकार से रहता, उनकी रक्षा करता हुआ, (आ) विद्यमान रहे। (सः) वह (मुदा) अति प्रसन्नतापूर्वक (पुरु काव्या) बहुत से विद्वानों के योग्य कार्यों को (पुष्यति) पुष्ट करता, उनको वृद्धि देता, और (भूम इव) भूमि के समान वा प्रभु के समान (विश्वं पुष्यति) सबका अन्नादि से पोषण करता है। वह (देवः) स्वयं तेजस्वी, दानशील, होकर (देवेषु यज्ञियः) विद्वान्, दानशील तेजस्वी पुरुषों में भी आदर सत्कार और सत्संगति के योग्य होता है। इस प्रकार भी उसके (समे अन्यके) समस्त शत्रु (नभन्ताम्) नाश को प्राप्त होते हैं वह अजात-शत्रु होजाता है।

यो अग्निः सप्तमानुषः श्रितो विश्वेषु सिन्धुषु। तमागन्म त्रिपस्त्यं मन्धातुर्दस्युहन्तममग्निं यज्ञेषु पूर्व्यं नभन्तामन्यके समे॥८॥

भा०—जिस प्रकार (अग्निः सप्त-मानुषः) अग्नि तत्व जीवन रूप से मनुष्य के सातों प्राणों में विद्यमान और (विश्वेषु सिन्धुषु श्रितः) समस्त रक्त-नाड़ियों या प्राणों में भी विद्यमान रहता है, वह (त्रि-पस्त्यं) भूमि, अन्तरिक्ष और द्यौ वा उदर, हृदय और मूर्धा तीनों स्थानों में विद्यमान रहता है वही शरीर के नाशकारी रोगादि कारणों का नाशक होता है उसी प्रकार (यः अग्निः) जो अग्नि, तेजस्वी अग्रणी, नायक राजा, (सप्त-मानुषः) सात मननशील विद्वानों के बीच स्वयं आठवां होकर (विश्वेषु सिन्धुषु) समस्त प्रजाओं के बीच (श्रितः) आश्रय करने योग्य है। और (मन्धातुः)

मुझको धारण या रक्षा करेगा इस प्रकार स्वीकृत प्रजागण के (दस्यु-हन्तमम्) नाशकारी दुष्ट पुरुषों के सर्वोपरि नाशक (यज्ञेषु पूर्व्यम्) यज्ञों, सत्संगों और दानों में सर्वश्रेष्ठ, पूर्ण (त्रि-पस्त्यं) त्रिभूमिक, तिमंजिले गृह में रहने वाले वा उत्तम, मध्यम, निकृष्ट तीनों प्रकार की प्रजाओं को गृहवत् बसाने वाले (तम् अग्निम्) इस अग्रणी, अग्निवत् तेजस्वी पुरुष को हम (आ गन्म) प्राप्त हों ।

अग्निस्त्रीणि त्रिधातून्या क्षेति विदथा कविः । स त्रीँरेकादशाँ इह यक्षच्च पिप्रयच्च नो विप्रो दूतः परिष्कृतो नभन्तामन्यके समे ९

भा०—जिस प्रकार (अग्निः त्रिधातूनि आ क्षेति) अग्नि तत्व तीनों तैजस रूप से धातुओं की तीनों प्रकारों में रहता है, और वह (त्रीन् एकादशान् यक्षत् पिप्रयच्च) ३३ (तेंतीस) पदार्थों को बल देता और तृप्त करता है उसी प्रकार (अग्निः) अग्रणी तेजस्वी पुरुष वात पित कफ़ के बनी तीनों कोटियों में (आ क्षेति) अपने आप विराजता है, वह (कविः) क्रान्तदर्शी होकर (विदथा) ज्ञान करता और प्राप्त करने योग्य पदार्थों को प्राप्त करता है । (सः) वह (इह) इस राष्ट्र में (त्रीन् एकादशान् यक्षत्) तीनों ग्यारह (तेंतीस) अधिकारियों को सुसंगत करता और (पिप्रयत् च) पूर्ण तृप्त करता, वह (दूतः) शत्रुओं का सन्तापक (परिष्कृतः) सुसज्जित, (विप्रः) विद्वान् पुरुष (नः यक्षत् पिप्रयत् च) हमें भी दे और पालन करे । इस प्रकार उसके (समे अन्यके नभन्ताम्) समस्त शत्रु नाश को प्राप्त होवें ।

त्वं नो अग्न आयुषु त्वं देवेषु पूर्व्य वस्व एक इरज्यसि । त्वामापः परिस्रुतः परि यन्ति स्वसेतवो नभन्तामन्यके समे १०।२३

भा०—जिस प्रकार अग्नि (देवेषु पूर्व्यः) सब मनुष्यों में भी जाठर रूप से विद्यमान है, उसको (परिस्रुतः स्वसेतवः आपः परि यन्ति) सब ओर से बहने वाली, स्वयं बद्ध जल धाराएं विद्युत् रूप अग्नि को प्राप्त होती

हैं उसी प्रकार हे (अग्ने) तेजस्विन् विद्वन् ! राजन् ! (त्वं) तू (नः) हमारे (आयुषु) सामान्य मनुष्यों और (देवेषु) विद्वानों, विजिगीषु, सर्व की कामना युक्त जनों में (पूर्व्यः) सर्वश्रेष्ठ है। तू (एकः) एक अद्वितीय होकर (वस्वः इरज्यसि) समस्त बसे प्रजाजन और ऐश्वर्य का स्वामी है। (स्व-सेतवः परिस्रुतः आपः) अपने ही बन्धों से बंधी सब ओर बहती जल-धाराओं के समान (आपः) आप्त प्रजाएं भी (परि-स्रुतः) सब ओर से प्राप्त होकर (स्व-सेतवः) स्वयं अपने आपको नियम मर्यादा में बांधे रखने वाली वा 'स्व' धन वेतनादि में वा स्वजनों के सम्बन्धों से बद्ध होकर (त्वाम् परि यन्ति) तुझे प्राप्त होती हैं, तेरी शरण आती हैं। (अन्यके समे नभन्ताम्) तेरे समस्त शत्रुगण नाश को प्राप्त हों। इति त्रयोविंशो वर्गः॥

[४०]

नाभाकः काण्व ऋषिः॥ इन्द्राग्नी देवते॥ छन्दः—१, ११ भुरिक् त्रिष्टुप्
३, ४ स्वराट् त्रिष्टुप्। १२ निचृत् त्रिष्टुप्। २ स्वराट् शक्वरी। ५, ७
६ जगती। ६ भुरिग्जगती। ८, १० निचृज्जगती॥ द्वादशर्चं सूक्तम्॥

इन्द्राग्नी युवं सु नः सहन्ता दासथो रयिम्।
येन दृळ्हा समत्स्वा वीळु चित्साहिषीमह्यग्निर्वनेव वात इ-
न्नभन्तामन्यके समे॥ १॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) इन्द्र, ऐश्वर्यवन् वा वायुवत् बलशालिन् ! हे (अग्ने) तेजस्विन् ! राजन् ! सेनापते ! (युवं) आप दोनों (सहन्ता) शत्रुओं को पराजय करते हुए (नः रयिम् दासथः) हमें वह ऐश्वर्य और बल प्रदान करो जिस प्रकार (अग्निः वाते वना इव) वायु के बहते समय अग्नि वनों को भस्म कर देता है उसी प्रकार (येन) जिस ऐश्वर्य के बल से हम लोग (समत्सु) संग्रामों में (वीडुचित्) बड़े २ बलशाली और (दृढा) दृढ, शत्रु सैन्यों को (साहिषीमहि) पराजित करते हैं

और जिससे (अन्यके समे नभन्ताम्) अन्य सब हमारे शत्रु नाश को प्राप्त हों। वायु और अग्निवत् ही इन्द्र और अग्नि परस्पर सहायक हों। अध्यात्म में—इन्द्र आत्मा और अग्नि आप दोनों मिलकर 'रयि' मूर्तिमान् इस देह को (दासथः) दास या भृत्यवत् संचालित करते हैं और समस्त विघ्न विनष्ट होते हैं।

नहि वां वव्रयामहेऽथेन्द्रमिद्यजामहे शविष्ठं नृणां नरम्।
स नः कदा चिदर्वता गमदा वाजसातये गमदा मेधसातये नभन्तामन्यके समे ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्राग्नी) ऐश्वर्यवत् शत्रुहन्तः! हे अग्ने विद्वन्! हम (वां नहि वव्रयामहे) आप दोनों से कुछ याचना नहीं करते। (अथ) प्रत्युत (नृणां) मनुष्यों के बीच (नरम्) नायक (शविष्ठं) सब से अधिक बलशाली, (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता ऐश्वर्यप्रद की (यजामहे) प्रतिष्ठा और सत्संगति करते हैं। (सः नः कदाचित्) वह कभी हमें (अर्वता आगमत्) अश्व, या शत्रुहन्ता सैन्यसहित, (वाज-सातये) ऐश्वर्य प्राप्ति के लिये प्राप्त हो और कभी (मेधसातये आगमत्) अन्न, यज्ञ और संग्रामादि के लिये प्राप्त हो। इस प्रकार उसके (समे अन्यके नमन्ताम्) समस्त शत्रु नाश को प्राप्त हों।

ता हि मध्यं भराणामिन्द्राग्नी अधिक्षितः।
ता उ कवित्वना कवी पृच्छ्यमाना सखीयते सं धीतमश्नुतं नरा नभन्तामन्यके समे ॥ ३ ॥

भा०—(ता हि इन्द्राग्नी) वे दोनों इन्द्र और अग्नि, वायु और अग्निवत् बलवान् और तेजस्वी विद्वान् जन (भराणां मध्यं) भरण पोषण योग्य जनों के बीच (अधि-क्षितः) अध्यक्ष होकर रहते हैं। (ता उ) वे दोनों (कवी) विद्वान्, क्रान्तदर्शी (पृच्छ्यमाना) अन्यों से आज्ञा ग्रहणार्थ एवं सन्देह निवारणार्थ प्रश्न किये जाते हुए (कवित्वना) अपनी

विद्वत्ता के कारण, (नरा) आप दोनों नायक (सखीयते) मित्रवदाचरण करने वाले पुरुष के लिये (धीतं) किये कर्म को (समश्नुतम्) अच्छी प्रकार प्राप्त होवो ।

अभ्यर्च नभाकवदिन्द्राग्नी यजसा गिरा । ययोर्विश्वमिदं जगदियं द्यौः पृथिवी मह्युपस्थे बिभृतो वसु नभन्तामन्यके समे ४:

भा०—(नभाकवत्) उत्तम प्रबन्धकर्त्ता जनों से युक्त (इन्द्राग्नी) उन इन्द्र, अग्नि और राजा; और नायक को तू हे विद्वन् ! (यजसा गिरा) उत्तम संगतिकारक वाणी से (अभि-अर्च) स्तुति कर, उनका आदर सत्कार कर । (ययोः) जिनके आश्रय पर (इयं द्यौः) यह सूर्य और (इयं महीः पृथिवी) यह बड़ी भारी पृथिवी जिस प्रकार (इदं विश्वं वसु) इस समस्त बसे जगत् और ऐश्वर्य को (बिभृतः) धारण करते हैं उसी प्रकार राजा, नायक दोनों के बलपर सूर्य पृथिवीवत् पुरुष स्त्री वा राजा प्रजावर्ग दोनों (इदं विश्वं वसु) इस समस्त राष्ट्ररूप ऐश्वर्य को अपने पास धारण करते हैं । (अन्यके समे नभन्ताम्) और विरोधी शत्रु नष्ट हो जाते हैं । वायु और अग्नि दो तत्वों पर ही समस्त प्राणी जीते हैं । वायु और अग्नि के बल पर ही समस्त शत्रुओं को नहीं सा कर सकते हैं । विद्वान् उन दोनों को 'नभाक' अर्थात् शत्रुनाशक जान कर उनका उत्तम प्रयोग करें ।

प्र ब्रह्माणि नभाकवदिन्द्राग्निभ्यामिरज्यत । या सप्तबुध्नमर्णवं जिह्मबारमपोर्णुत इन्द्र ईशान ओजसा नभन्तामन्यके समे ॥५॥

भा०—(या) जो इन्द्र और अग्नि, वायु और अग्नि या सूर्य और अग्नि (सप्तबुध्नम्) सात मूलों वाले (जिह्म-बारम्) गुप्त द्वार वाले; दुष्प्राप्य (अर्णवं) सागरवत् अपार ऐश्वर्य को (अपोर्णुतः) खोल देते हैं उन (नभाकवत् इन्द्राग्निभ्याम्) नभाक अर्थात् अदृश्य रूप से विद्यमान वा बंधनकारक, आकर्षक और आघातकारक (इन्द्राग्निभ्याम्)

विद्युत् और अग्नि तत्वों से (ब्रह्माणि) नाना ऐश्वर्यों को (इरज्यत) अपने वश करो और उनके बल से ही (इन्द्रः) सूर्य भी (ईशानः) सबका स्वामी है। उनके बल से ही (अन्यके समे नमन्ताम्) समस्त शत्रु नहींसे हो जावें।

अपि वृश्च पुराणवद्व्रततेरिव गुष्पितमोजो दासस्य दम्भय। वयं तदस्य सम्भृतं वस्विन्द्रेण विभजेमहि नभन्तामन्यके समे॥६।२४

भा०—जिस प्रकार (पुराणवत्) पुराने (व्रततेः गुष्पितम्) लता के शाखा पुञ्ज को कोई सुगमता से ही काट लेता है उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (दासस्य गुष्पितम् ओजः) प्रजा के नाशक दुष्ट पुरुष के गुप्त बल को (दम्भय) नष्ट कर। (अस्य तत् सम्भृतं वसु) उसके उस एकत्र किये धन को हम (इन्द्रेण) ऐश्वर्यवान् तेजस्वी राजा के द्वारा ही (विभजेमहि) विशेष प्रकार से सेवन करें। और (अन्यके समे नभन्ताम्) अन्य समस्त शत्रु भी नष्ट हों। इति चतुर्विंशो वर्गः॥

यदिन्द्राग्नी जना इमे विह्वयन्ते तना गिरा। अस्माकेभिर्नृभिर्वयं सासह्याम पृतन्यतो वनुयाम वनुष्यतो नभन्तामन्यके समे॥७॥

भा०—(इमे जनाः) ये मनुष्य (तना गिरा) धन और वचन से (यत्) जिन (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि, सूर्य अग्निवत् तेजस्वी नायकों को (विह्वयन्ते) विशेष रूप से बुलाते हैं, (अस्माकेभिः नृभिः) अपने ही आदमियों से सहायवान् होकर (वयं) हम लोग (पृतन्यतः सासह्याम) सेनाओं द्वारा युद्ध करने वाले शत्रुओं का पराजय करें और (वनुष्यतः वनुयाम) हिंसाकारियों को हम भी मारें। (अन्यके समे नभन्ताम्) हमारे अन्य समस्त शत्रु नष्ट हों।

या नु श्वेताववो दिव उच्चरात उप द्युभिः। इन्द्राग्न्योरनु व्रतमुहाना यन्ति सिन्धवो यान्त्सीं बन्धादमुञ्चतां नभन्तामन्यके समे॥८॥

भा०—(या नु) जो दोनों इन्द्र अग्नि, सूर्य और अग्नि, (श्वेतौ) श्वेत वर्ण के, तेजस्वी होकर (द्युभिः) किरणों से (दिवः उप उत् चरातः) आकाश और पृथिवी पर ऊर्ध्व मार्ग से गति करते हैं उन (इन्द्राग्न्योः अनु) सूर्य और अग्नि के अनुकरण में (व्रतम् उहानाः) उत्तम व्रतों को धारण करते हुए (सिन्धवः) नदी के समान वेग से जाने वाले वीर पुरुष व्रतबद्ध होकर (अनु यन्ति) उनके पीछे २ अनुगमन करते हैं (यान्) जिनको वे दोनों (सीम्) सब प्रकार से (बन्धात्) बन्धनों से (अमुञ्चताम्) मुक्त करें। और (अन्यके समे नभन्ताम्) अन्य समस्त विघ्नकारी भी नष्ट हों, बांधे जावें।

पूर्वीष्ट इन्द्रोपमातयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः सूनो हिन्वस्य हरिवः।
वस्वो वीरस्यापृचो या नु साधन्त नो धियो नभन्तामन्यके समे ९।

भा०—हे (हरिवः इन्द्र) किरणों से युक्त ऐश्वर्यवन् सूर्यवत् तेजस्विन्! हे (सूनो) सर्वैश्वर्यवन्! सर्वोत्पादक! सर्वप्रेरक! (वस्वः) सबको बसाने वाले, (आपृचः) सबसे प्रेम करने वाले (वीरस्य) शूरवीर (हिन्वस्य) सबको बढ़ाने वाले (ते) तेरी (उप-मातयः) उपमान (उत प्रशस्तयः) और तेरे उत्तम उपदेश (पूर्वीः पूर्वीः) सदा पूर्ण और उत्तम हैं। (याः) जो (नः धियः साधन्त) हमारी बुद्धियों और कर्मों को अपने वश करें और उन्नत करें। इस प्रकार (समे अन्यके नभन्ताम्) समस्त विघ्नकारी नष्ट हों।

तं शिशीता सुवृक्तिभिस्त्वेषं सत्वानमृग्मियम्।
उतो नु चिद्य ओजसा शुष्णस्याण्डानि भेदति जेषत्स्वर्वतीरपो नभन्तामन्यके समे ॥ १० ॥

भा०—(उतो नु चित्) और (यः) जो सूर्य या विद्युत्मय इन्द्र (शुष्णस्य) शोषणकारी ताप वाले सूर्य के (ओजसा) बल पराक्रम या तेज से (आण्डानि भेदति) रोगकारी संयोगी अंशों को छिन्न भिन्न करता है, अथवा—

वह (शुष्णस्य आण्डानि) शरीर के शोषण करनेवाले यक्ष्मादि के रोगांशों को छिन्न भिन्न करता है और (स्ववर्तीः अपः) शब्द, या गर्जन करने वाले मेघस्थ जनों को (जेषत्) विजय करता है (तं) उस (त्वेषं) अति तीक्ष्ण, तेजस्वी, (सत्वानम्) बलवान् (ऋग्मियम्) स्तुति योग्य पुरुष को (सुवृक्तिभिः) उत्तम योजनाओं स्तुतियों से (शिशीत) तीक्ष्ण करो। उसके बलको अधिक बढ़ावो। इसी प्रकार विद्युत्वत् तीक्ष्ण, तेजस्वी, बलवान् स्तुत्य पुरुष को भी बढ़ावें जो अपने शोषणकारी बल पराक्रम से दुःखदायक परसैन्यों को नाश करे, और सुखप्रद प्रजाओं को विजय करे। (अन्यके समे नभन्ताम्) समस्त अन्य, शत्रुगण नाश को प्राप्त हों।

अमन्ति रोगान् कुर्वन्ति इत्याण्डानि। अमेरौणादिको डः। १।११४॥

तं शिशीता स्वध्वरं सत्यं सत्वानमृत्वियम्।
उतो नु चिद्य ओहत आण्डा शुष्णस्य भेदत्यजैः स्वर्वतीरपो नभन्तामन्यके समे॥ ११॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य अपने (शुष्णस्य) शोषक ताप के बल से (आण्डा ओहते) रोगकारी जन्तुओं को नाश करता है (भेदति) छिन्न भिन्न करता है और (स्ववर्तीः अपः अजैः) गर्जना वा सुखप्रद जलों को अपने वश करता है उसी प्रकार जो पुरुष (शुष्णस्य आण्डा) शोषकवत् यक्षादि रोगों, शत्रु के अण्डों वा मर्मस्थलों को भेदता, और सुखप्रद आप्त जनों को अपने गुणों से अपने वश करता है (तं) उस (सु-अध्वरं) उत्तम अहिंसनीय (सत्यं) सत्याचरण से युक्त, सज्जनों में उत्तम, (सत्वानम्) बलवान् (ऋत्वियम्) ऋतुओं के स्वामी सूर्यवत् ऋतु अर्थात् ज्ञानी सदस्यों के स्वामी पुरुष को (शिशीत) तीक्ष्ण करो, उसके बल को बढ़ाओ। (नभन्तां०) पूर्ववत्।

एवेन्द्राग्निभ्यां पितृवन्नवीयो मन्धातृवदङ्गिरस्वदवाचि।
त्रिधातुना शर्मणा पातमस्मान्वयं स्याम पतयो रयीणाम् १२।२५

भा०—(एव) इस प्रकार (पितृवत्) माता पिताओं के तुल्य, पालक पोषक, (मन्धातृवत्) ज्ञानधारक उसके समान ज्ञानप्रकाशक (अंगिरस्वत्) अग्नि वा प्राणों के समान जीवनप्रद (इन्द्राग्नीभ्यां) इन्द्र विद्युत् और अग्नि वा ऐश्वर्यवान् और ज्ञानवान् पुरुषों के यह (नवीयः) अति स्तुत्य, वचन (अवाचि) उपदेश किया है। वे दोनों (त्रिधातुना शर्मणा अस्मान् पातम्) तीनों धातु के बने गृह एवं वात, पित्त, कफ़ से युक्त त्रिधातु गृह, इस देह से हमारी रक्षा करें। (वयं रयीणां पतयः स्याम) हम सब ऐश्वर्यों बलों के पालक स्वामी हों। इति पञ्चविंशो वर्गः॥

[४१]

नाभाकः काण्व ऋषिः॥ वरुणो देवता॥ छन्दः—१, ५ त्रिष्टुप्। ४, ७ भुरिक् त्रिष्टुप्। ८ स्वराट् त्रिष्टुप्। २, ३, ६, १० निचृज्जगती। ९ जगती॥ दशर्चं सूक्तम्॥

अस्मा ऊ षु प्रभूतये वरुणाय मरुद्भ्योऽर्चा विदुष्टरेभ्यः।
यो धीता मानुषाणां पश्वो गा इव रक्षति नभन्तामन्यके समे॥१

भा०—हे विद्वान् पुरुष! तू (अस्मै) इस (प्रभूतये) उत्तम भूति, जन्म, सामर्थ्य और यश वाले (वरुणाय) श्रेष्ठ पुरुष और (विदुष्टरेभ्यः) अपने से अधिक जानने वाले विद्वान्, (मरुद्भ्यः) बलवान् मनुष्यों का (अर्च) आदर सत्कार कर। और उसका भी आदर करो (यः) जो (धीता) सुविचारित (पश्वः गाः) गौ आदि पशुओं के समान ही (पश्वः गाः) ज्ञान दर्शाने वाली वाणियों की (मनुष्याणां) मनुष्यों के उपकारार्थ (रक्षति) रक्षा करता है। (अन्यके समे नभन्ताम्) समस्त हानिकारक जन नष्ट हों।

तमू षु समना गिरा पितॄणां च मन्मभिः। नाभाकस्य प्रशस्तिभिर्यः सिन्धूनामुपोदये सप्तस्वसा स मध्यमो नभन्तामन्यके समे॥२

भा०—(यः) जो (सिन्धूनाम्) स्यन्दनशील रक्तधाराओं के

वा गतिशील प्राणों के (उपोदये) ऊपर उठने में (सप्तस्वसा) सात स्वयं गतिशील मुख्य प्राणों से युक्त होने से सात भगिनियों वाला (सः) वह (मध्यमः) सबके मध्य में मुख्य रूप से स्थित राजा के समान है। (तम्) उसको (समना गिरा) मान सहित वा ज्ञान सहित वाणी से और (पितृणां च मन्मभिः) पालक उपदेष्टा गुरुओं के मनन योग्य वचनों से और (नाभाकस्य) साक्षात् द्रष्टा पुरुष की (प्रशस्तिभिः) उत्तम उपदेश वाणियों से (अर्च) अर्चना कर। राजा भी (सिन्धूनाम्) वेगवान् अश्वादि सैन्य नायकों के(उदये)उत्थान काल में (सप्तस्वसा) सर्पणशील सेनाओं को उत्तम रीति से संचालित करने में समर्थ (मध्यमः) मध्यस्थित प्रधान पुरुषवत् है उसको (समना गिरा) समान, अनुरूप वाणी और पालकों के वचनों और (नाभाकस्य) शत्रु हिंसक रक्षक की (प्रशस्तिभिः) उत्तमाधिकार शासन वाणियों से (उप) युक्त करो। (नभन्ताम् अन्यके समे) जिससे अन्य सब द्वेष बुद्धि वाले दुर्बुद्धि पुरुष (नभन्ताम्) बुराई करने में समर्थ न रहें।

स क्षपः परि षस्वजे न्यु१॒स्रो मायया दधे स विश्वं परि दर्शतः।
तस्य वेनीरनु व्रतमुषस्तिस्रो अवर्धयन्नभन्तामन्यके समे ॥३॥

भा०—(क्षपः परि सस्वजे) जिस प्रकार चन्द्रमा रात्रियों को प्राप्त होता है उसी प्रकार (सः) वह वरुण, सर्वश्रेष्ठ पुरुष भी (क्षपः परि सस्वजे) शत्रु पक्ष को नाश करने वाली सेनाओं को सदा अपने साथ संगत रक्खे। वह (उस्रः) उत्तम पद को प्राप्त होकर (मायया) अपनी बुद्धि और कर्म के द्वारा विश्व को प्रभु के समान ही (विश्वं नि दधे) समस्त राष्ट्र को नियम में स्थापित करे (सः) वह (दर्शतः) सबका द्रष्टा स्वामी होकर रहे। (तस्य व्रतम् अनु) उसके कर्म के अनुकूल ही रहकर (तिस्रः वेनीः) तीनों प्रकार की प्रजाएं उसे चाहती हुई (तम् अवर्धयन्) उसको बढ़ावें। इस प्रकार (समे अन्यके) उसके समस्त शत्रुगण (नभन्ताम्) नष्ट हों।

यः ककुभो निधारयः पृथिव्यामधि दर्शतः। स माता पूर्व्यं पदं तद्वरुणस्य सप्त्यं स हि गोपा इवेर्यो नभन्तामन्यके समे ॥४॥

भा०—(यः दर्शतः) जो दर्शनीय वा सर्वद्रष्टा स्वामी होकर (पृथिव्याम् अधि) भूमि पर (ककुभः) पार्थिव देह में प्राणों के समान, समस्त दिशाओं वा उनमें निवासिनी विनीत प्रजाओं को (नि धारयः) नियम में रखता है (सः) वह (वरुणस्य) सर्वश्रेष्ठ, प्रभु के (सप्त्यं) उस सर्पण योग्य, प्राप्य (पूर्व्यं पदम्) सर्वोपरि पद को (माता) बनाने वाला, माता के समान पूज्य है। (सः हि) वही (गोपाः इव) रक्षक के समान (इर्यः) रक्षक, स्वामी है। उसके द्वारा (अन्यके समे नभन्ताम्) समस्त अन्य दुष्ट संकल्प वाले पापी पुरुष नष्ट हों।

यो धर्ता भुवनानां य उस्राणामपीच्या३ वेद नामानि गुह्या। स कविः काव्या पुरुरूपं द्यौरिव पुष्यति नभन्तामन्यके समे॥५।२६

भा०—(यः) जो (भुवनानां धर्त्ता) समस्त लोकों को धारण करने वाला है, (यः) जो (उस्राणां) उत्तम, ऊपर के मार्ग से जाने वाले सूर्यादि के (गुह्या) बुद्धि से गम्य, (अपीच्या) अन्तर्हित, छुपे हुए (नामानि) नाम, स्वरूपों को (वेद) जानता है। (सः) वह (कविः) क्रान्तदर्शी, परम मेधावी, (द्यौः इव) सूर्य के समान (काव्या) विद्वान् मेधावी पुरुषों के अभ्यास करने योग्य ज्ञानों को (पुरुरूपं पुष्यति) बहुत प्रकार से पुष्ट करता है। उसके रहते हुए (अन्यके समे नभन्ताम्) समस्त द्वेषीजन नष्ट हो जाते हैं। इति षड्विंशो वर्गः॥

यस्मिन्विश्वानि काव्या चक्रे नाभिरिव श्रिता। त्रितं जूती सपर्यत व्रजे गावो न संयुजे युजे अश्वाँ अयुक्षत नभन्तामन्यके समे॥६॥

भा०—(चक्रे नाभिः इव) चक्र में नाभि के समान (यस्मिन्) जिस प्रभु में (विश्वानि काव्या) विद्वान् मेधावी पुरुषों के समस्त ज्ञान

और कर्म (श्रिता) आश्रित हैं, (त्रितं) तीनों लोकों में व्यापक उस परमेश्वर को आप लोग (जूती) अति शीघ्र, प्रेमपूर्वक (सपर्यत) उपासना करो। हे विद्वान् पुरुषो! (व्रजे गावः न) जिस प्रकार गोशाला में समस्त गौवें (संयुजे) एकत्र रहने के लिये आती हैं उसी प्रकार (व्रजे) परम गन्तव्य उस प्रभु में (सं-युजे) अच्छी प्रकार योग करने के लिये (गावः) समस्त वाणियों और ज्ञानेन्द्रियों को भी संयुक्त करो। और (युजे) उसी योग साधन के लिये (अश्वान् अयुक्षत) अश्वों के तुल्य कर्मेन्द्रियों और मन की वृत्तियों को भी उसी परम पद में एकाग्र करो। इस प्रकार (अन्यके समे नभन्ताम्) अन्य समस्त दुष्ट संकल्प उत्पन्न नहीं होते और विशेष प्रतिपक्ष के भाव भी प्रबल नहीं होते।

य आस्वत्क आशये विश्वा जातान्येषाम्। परि धामानि मर्मृशद्वरुणस्य पुरो गये विश्वे देवा अनु व्रतं नभन्तामन्यके समे ७

भा०—(यः) जो सर्वश्रेष्ठ प्रभु (आसु) इन समस्त दिशाओं में और प्रजाओं में (अत्कः) व्यापक होकर (आशये) सर्वत्र गुप्तरूप से विद्यमान है और जो (एषां विश्वा जातानि) इन समस्त लोकों के समस्त पदार्थों को और (धामानि) सब स्थानों को (परि मर्मृशत्) सब प्रकार से जानता है उस (वरुणस्य पुरः) सर्वश्रेष्ठ स्वामी के समक्ष (गये) उसके शासन में (विश्वे देवाः) समस्त विद्वान् गण और समस्त सूर्यादि पदार्थ आत्मा या प्राण के अधीन इन्द्रियों के तुल्य (व्रतम् अनु) अधीन रहकर कार्य करते हैं। (अन्यके समे) इससे विपरीत बुद्धि वाले द्वेषीजन (नभन्तां) नष्ट होते हैं।

स संमुद्रो अपीच्यस्तुरो द्यामिव रोहति नि यदासु यजुर्दधे। स माया अर्चिना पदास्तृणान्नाकमारुहन्नभन्तामन्यके समे ॥८॥

भा०—(सः) वह (समुद्रः) समुद्र के समान गम्भीर, अपार,

समस्त आनन्दों, सुखों का दाता, (अपीच्यः) पूज्य, अध्यय होने योग्य, प्राप्य एवं हृदयों में सुगुप्त, (तुरः) अति शीघ्रकारी है। वह (द्याम् इव) आकाश में सूर्यवत् (रोहति) सबसे ऊपर प्रकाशित होता है। (यत्) जो (आसु) इन समस्त प्रजाओं वा समस्त प्राकृतिक शक्तियों में (यजुः निदधे) नाना दान और संगति, परस्पर सामञ्जस्य स्थापित करता है। और वह (अर्चिना पदा) अर्चना करने योग्य, परम स्तुत्य 'पद' अर्थात् ज्ञान से (मायाः अस्तृणात्) सब कुटिल बुद्धियों का नाश करता है वह (नाकम् अरुहत्) परम सुखमय ,लोक को प्राप्त होता है। उसके (अन्यके समे नभन्ताम्) अन्य सब विरोधी नष्ट हो जाते हैं।

यस्य॑ श्वे॒ता वि॑चक्ष॒णा ति॒स्रो भूमी॑रधिक्षि॒तः ।
त्रिरुत्त॑राणि प॒प्रतु॒र्वरु॑णस्य ध्रु॒वं सदः॒ स स॑प्ता॒नामि॑रज्यति॒ नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे ॥ ९ ॥

भा०—(तिस्रः भूमीः) तीनों भूमि लोकों में (अधि-क्षितः) अध्यक्ष-वत् निवास करने वाले (यस्य) जिसके (विचक्षणा श्वेताः) विविध पदार्थों को दर्शाने वाले उज्वल तेज, सूर्य विद्युदादि, (उत्तराणि) उनसे भी उत्कृष्ट (त्रिः) तीन लोकों को पूर्ण करते हैं उस (वरुणस्य) सर्वश्रेष्ठ प्रभु का (ध्रुवं सदः) विराजना या सत्तारूप से विद्यमान रहना (ध्रुवम्) नित्य है। (सः) वह प्रभु (सप्तानाम् इरज्यति) सातों का भी स्वामी रहता और उनको वश करता है। (अन्यके समे नभन्ताम्) उसके शासन में समस्त दुष्ट पुरुष नाश को प्राप्त होते हैं। (२) राजा के श्वेत, तेजस्वी वीर और अश्व हैं। उसका सर्वोपरि (सदः) आसन स्थिर है। वह (सप्तानां) सातों प्रकृतियों पर वशी होता है।

यः श्वे॒ताँ अधि॑निर्णिजश्च॒क्रे कृ॒ष्णाँ अनु॑ व्र॒ता ।
स धाम॑ पू॒र्व्यं म॑मे॒ यः स्क॒म्भेन॒ वि रोद॑सी अ॒जो न द्याम॒धार॑यन्नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे ॥ १० ॥ २७ ॥

भा०—(यः) जो प्रभु, सबका स्वामी सूर्यवत् (अधिनिर्णिजः) अति शुद्ध, (श्वेतान्) श्वेत किरणों को वा सूर्यादि लोकों को भी (व्रता अनु चक्रे) नियमों के अनुकूल चलाता है, और जो (कृष्णान्) रात्रि कालों के समान अन्धकारमय या आकर्षणमय, प्रकाशशून्य पृथिवी आदि लोकों को भी (व्रता अनु चक्रे) नियमों के अनुसार ही अपने अधीन रखता है और (यः) जो (स्कम्भेन) सबको थामने वाले महान् बल से (रोदसी वि ममे) सूर्य और भूमि को आकाश में थामता है, (अजः न द्याम् अधारयत्) स्वयं अजन्मा होकर, सर्व संचालक के समान ही सूर्य या आकाश को धारण, स्थापन करता है, (सः) वह सर्वश्रेष्ठ वरुण (पूर्व्यं धाम) सबसे पूर्ण धारण सामर्थ्य या लोक वा तेज को (ममे) धारण करता है । (अन्यके समे नभन्ताम्) उसके द्वारा सब पापीजन नष्ट हो जाते हैं । इति सप्तविंशो वर्गः ॥

[४२]

नाभाकः काण्वोऽर्चनाना वा । अथवा १—३ नाभाकः काण्वः । ४—६ नाभाकः काण्वोऽर्चनाना वा ऋषयः ॥ १—३ वरुणः । ४—६ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१—३ त्रिष्टुप् । ४—६ अनुष्टुप् ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

अस्त॑भ्ना॒द्द्याम॑सु॒रो वि॒श्ववे॑दा॒ अमि॑मीत वरि॒माणं॑ पृथि॒व्याः ।
आसी॑द॒द्विश्वा॒ भुव॑नानि स॒म्राड्विश्वेत्तानि॒ वरु॑णस्य व्र॒तानि॑ ॥१॥

भा०—(असुरः) बलवान् (विश्व-वेदाः) समस्त ज्ञानों का भण्डार परमेश्वर (द्याम् अस्तभ्नात्) आकाशस्थ तेजोमय पिण्डों को थामे रहता है, वह ही (पृथिव्याः परिमाणं) पृथिवी के बड़े भारी परिमाण को (अमिमीत) मापता है, (सम्राड् विश्वा भुवना) सबका प्रकाशक परमेश्वर समस्त लोकों पर (आसीदत्) अध्यक्ष शासकवत् विराजता है । (विश्वा इत् व्रतानि) ये समस्त कार्य और नियम व्यवस्थाएं (वरुणस्य इत्) उस सर्वश्रेष्ठ स्वामी, सबसे वरण करने योग्य प्रभु परमेश्वर की ही हैं ।

एवा वन्दस्व वरुणं बृहन्तं नमस्या धीरममृतस्य गोपाम् ।
स नः शर्म त्रिवरूथं वि यंसत्पातं नो द्यावापृथिवी उपस्थे ॥२॥

भा०—हे मनुष्य ! तू (वरुणं एव) उस सर्वश्रेष्ठ, सर्वदुःखों के वारण करने वाले, सबसे वारण करने योग्य (बृहन्तं) महान् प्रभु की (वन्दस्व) स्तुति, वन्दना, प्रार्थना किया कर । और उसी (धीरम्) बुद्धि ज्ञान के दाता, कर्म के फलों के देने वाले, (अमृतस्य गोपाम्) अमृतमय मोक्ष के रक्षक को (नमस्य) नमस्कार किया कर । (सः) वह (नः) हमें (त्रिवरूथं शर्म) तीनों प्रकार के कष्टों से बचाने वाले गृहवत् देह का (वि यंसत्) विविध प्रकार से प्रदान करता है । (उपस्थे) समीप विद्यमान (द्यावापृथिवी) सूर्य भूमि माता पिता भी (नः पातम्) हमारी रक्षा करें ।

इमां धियं शिक्षमाणस्य देव क्रतुं दक्षं वरुण सं शिशाधि ।
ययाति विश्वा दुरिता तरेम सुतर्माणमधि नावं रुहेम ॥ ३ ॥

भा०—हे (देव) सब सुखों के दाता सब ज्ञानों के प्रकाशक ! हे (वरुण) सर्वश्रेष्ठ ! तू (इमां धियं) इस ज्ञान, और कर्म का (शिक्षमाणस्य) अनुष्ठान करने और अन्यों को उपदेश देने वाले की (क्रतुं दक्षं) बुद्धि और बल को (सं शिशाधि) सम्यक् प्रकार से तीक्ष्ण कर और अच्छे मार्ग में चला । (यया) जिससे हम (विश्वा दुरिता) सब दुष्कर्मों को (अति तरेम) पार कर जावें और (सुतर्माणं नावं) सुख से पार उतार देने वाली नौकावत् वेदवाणी पर (अधि रुहेम) चढ़ें, उसका आश्रय लें ।

आ वां ग्रावाणो अश्विना धीभिर्विप्रा अचुच्यवुः ।
नासत्या सोमपीतये नभन्तामन्यके समे ॥ ४ ॥

भा०—हे (नासत्या) सदा सत्य का आचरण करने और सदा सत्य ज्ञान का ही उपदेश देने वाले (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो !

(वां) आप दोनों (ग्रावाणः) उत्तम उपदेष्टा, (विप्राः) विद्वान् पुरुष (सोमपीतये) उत्तम ज्ञानरस का पान करने के लिये (धीभिः) बुद्धियों और सत्कर्मों सहित (अचुच्यवुः) प्राप्त होवें। (अन्यके समे नभन्ताम्) आप सब दुर्बुद्धि जन नष्ट होवें।

यथा वामत्रिरश्विना गीर्भिर्विप्रो अजोहवीत् ।
नासत्या सोमपीतये नभन्तामन्यके समे ॥ ५ ॥

भा०—हे (नासत्या) प्रमुख पद पर स्थित एवं सदा सत्याचरणशील जनो ! (यथा) जिस प्रकार (अत्रिः विप्रः) तीनों प्रकार के दुःखों से रहित विद्वान् पुरुष (गीर्भिः) उत्तम वेदवाणियों द्वारा (वाम्) आप दोनों को (सोम-पीतये) ओषधिरस के पान करने और वीर्य रक्षा करने का (अजोहवीत्) उपदेश करता है उस प्रकार से (अन्यके समे) समस्त अन्य दुःखदायी रोग और पापादि के संकल्प (नभन्ताम्) नष्ट हो जाते और फिर पैदा नहीं होते ।

एवा वामह्व ऊतये यथाहुवन्त मेधिराः ।
नासत्या सोमपीतये नभन्तामन्यके समे ॥ ६ ॥ २८ ॥ ५ ॥

भा०—व्याख्या देखो ८ । ३८ । ९ ॥ इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥ इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥ इत्यष्टाविंशो वर्गः । इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥

[४३]

विरूप आङ्गिरस ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ६—१२, २२, २६, २८, २९, ३३ निचृद् गायत्री । १४ ककुम्मती गायत्री । ३० पादनिचृद् गायत्री ॥ त्रयस्त्रिंशदृचं सूक्तम् ॥

इमे विप्रस्य वेधसोऽग्नेरस्तृतयज्वनः । गिरः स्तोमास ईरते ॥१॥

भा०—(इमे) ये (स्तोमासः) स्तुतियुक्त वेद के मन्त्रों द्वारा स्तुति करने वाले विद्वान् जन (विप्रस्य) विद्वान्, मेधावी, (वेधसः)

जगत् के कर्त्ता (अस्तृत-यज्वनः) दानशील, यज्ञ कर्त्ता के नाश न करने वाले (अग्नेः) ज्ञानमय प्रभु के विषय में (गिरः ईरते) वेदवाणियों का उच्चारण करते हैं।

अस्मैं ते प्रतिहर्यते जातवेदो विचर्षणे। अग्ने जनामि सुष्टुतिम् ॥२॥

भा०—हे (जात-वेदः) सर्वज्ञ ! सर्वैश्वर्य के स्वामिन् ! हे (विचर्षणे) (अग्ने) ज्ञानवन् ! सर्वप्रकाशक ! प्रकाशस्वरूप ! विशेष द्रष्टा ! (प्रतिहर्यते ते) प्रत्येक जीव को चाहने हारे तेरी मैं (सु-स्तुतिम् जनामि) उत्तम स्तुति प्रकट किया करूं।

आरोका इव घेदह तिग्मा अग्ने तव त्विषः। दद्भिर्वनानि बप्सति ॥३॥

भा०—(दद्भिः वनानि) जिस प्रकार पशुगण दांतों से जंगलों को खाते हैं और जिस प्रकार अग्नि की ज्वालाएं काष्ठों को मानो खा जाती हैं उसी प्रकार हे (अग्ने) अग्ने ! प्रकाशस्वरूप ! (तव त्विषः) तेरी कान्तियां (तिग्माः) तीक्ष्ण होकर, (आरोकाः इव) सब ओर चमकती हुई ज्वालाओं के समान (वनानि) जलों को सूर्य किरणोंवत् (वनानि) नाश करने योग्य दोषों को (बप्सति) मानो खायें डालती हैं, उनका नाश करती हैं। सब पापों को भस्म कर देती हैं।

हरयो धूमकेतवो वातजूता उप द्यवि। यतन्ते वृथगग्नयः ॥४॥

भा०—जिस प्रकार (अग्नयः) अग्नियें (हरयः) पीतवर्ण (धूम-केतवः) धूम की ध्वजाओं से युक्त होकर (वात-जूताः) वायु से प्रेरित होकर, (द्यवि) आकाश में (वृथक् = पृथक् उपयतन्ते) अलग २ प्रज्वलित होते हैं उसी प्रकार (अग्नयः) अग्नि के बने सूर्यादि लोक और (धूम-केतवः) धूम की ध्वजा से युक्त धूमकेतुगण, (वात-जूता) वायु वेग से प्रेरित होकर आकाश में अलग २ घूम रहे हैं इसी प्रकार (अग्नयः) अग्निवत्-स्वप्रकाश विद्वान्, (हरयः) जीवगण, (धूम-केतवः) पाप को दूर करने में समर्थ ज्ञान से सम्पन्न होकर (वात-जूताः) प्राण वायु से

प्रेरित होकर (यवि) उस प्रकाशस्वरूप प्रभु को लक्ष्य कर उसके आश्रय, पृथक् २ मोक्ष प्राप्ति का यत्न करते हैं। 'पृथगग्नयः' इति वाजसनेयिनां पाठः।

एते त्ये वृथग्ग्नय इद्धासः समदृक्षत। उषसामिव केतवः ॥५॥२९

भा०—(एते त्ये) ये वह (अग्नयः) अग्निवत् स्वयं प्रकाश जीवगण (इद्धासः) प्रदीप्त या प्रज्वलित अग्नियों के समान, और (उषसाम्-इव केतवः) उषा, प्रभात कालों के ज्ञापक ध्वजाओं वा किरणों के समान (उषसाम्) नाना कामनाओं (केतवः) प्रकट करने वाले (वृथक्) पृथक् २ ही (सम्-अदृक्षत) अच्छी प्रकार विवेकपूर्वक दिखाई देते वा देखते हैं। पूर्व मन्त्र में बतलाया था कि इन जीवों के सबके अपने यत्न पृथक् हैं, इसमें बतलाया कि इनकी इच्छाएं भी भिन्न हैं। वे एक महान् आत्मा के अंश नहीं प्रत्युत सम्यग् दर्शन द्वारा भी पृथक् २ ही हैं। इत्येकोनत्रिंशो वर्गः॥

कृष्णा रजांसि पत्सुतः प्रयाणे जातवेदसः। अग्निर्यद्रोधति क्षमि॥६

भा०—(अग्निः यत् क्षमि रोधति) अग्नि जब भूमि पर जाता है तब उसके (प्रयाणे रजांसि कृष्णा) जल जाने पर भूमि के धूलि भस्मादि कृष्ण वर्ण के हो जाते हैं, इसी प्रकार (यत्) जब (अग्निः) ज्ञानी जीव (क्षमि) क्षमा, सहनशीलता में वा योग की किसी भूमिपर अपने को (रोधति) निरोध करता है तब (पत्सुतः) ज्ञान में निष्णात, (जातवेदसः) ज्ञानवान् पुरुष के लिये (प्रयाणे) आगे बढ़ते हुए मार्ग में (रजांसि) समस्त राजस वस्तुएं नाना तेजोमय लोक (कृष्णा) अति आकर्षक होते हैं, वे उसे मार्ग में भ्रष्ट करने वाले होते हैं।

धासिं कृण्वान ओषधीर्बप्सदग्निर्न वायति। पुनर्यन्तरुणीरपि॥७॥

भा०—जिस प्रकार (अग्निः ओषधीः धासिं कृण्वानः बप्सत्) नाना ओषधियों को अपना अन्न बना २ कर खाता है, (न वायति) शान्त नहीं होता है और (पुनः तरुणीः अपि यन्) फिर बड़ी लताओं को भी प्राप्त करता है

उसी प्रकार यह (अग्निः) अग्नि के समान स्वप्रकाश जीव भी इस देह-भूमि में प्राप्त होकर (ओषधीः घासि कृण्वानः) नाना अन्नादि ओषधियों को अपने धारण पोषणकारी खाद्य पदार्थ बनाता हुआ (वप्सद्) उनका भक्षण करता है और वह (न वायति) शान्त नहीं होता, वह नहीं मरता, जीवित रहता है, और वह (पुनः) वार २ (तरुणीः अपि यत्) स्त्रादि भोगों वा तरुण अर्थात् यौवनादि दशाओं को प्राप्त होता हुआ भी (न वायति) भोगों से तृप्त नहीं होता। उन्हीं में लिप्त होजाता है।

जीर्यन्ति जीर्यतः केशाः दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः।
गात्राणि शिथिलायन्ते तृष्णैका तरुणायते॥

अर्थात् उस जीव को राजस भोग प्राप्त होकर इतने अधिक 'कृष्ण' अर्थात् आकर्षक होते हैं कि वह उनको साधन शिथिल होने पर भी नहीं त्यागता।

जि॒ह्वाभि॒रह॒ नन्न॑मद॒र्चिषा॑ जञ्ज॒णाभव॑न्। अ॒ग्निर्वने॑षु रोचते ॥८॥

भा०—जिस प्रकार (अग्निः) अग्नि (जिह्वाभिः) जिह्वाओं, ज्वालाओं से (अह) ही (नंनमत्) लपट मारता, और (अर्चिषा) दीप्ति से (जञ्जणाभवत्) खूब प्रज्वलित होता हुआ (वनेषु रोचते) काष्ठों में चमकता है उसी प्रकार यह (अग्निः) स्वयं प्रकाश जीव, (जिह्वाभिः अह) पदार्थों को ग्रहण करने वाले इन्द्रिय रूप जिह्वाओं से ही (नंनमत्) विषयों की ओर खूब वार २ झुकता है, और (अर्चिषा) अर्चि मार्ग से ही वार २ इस लोक में (जंजनाभवत्) उत्पन्न होता हुआ (वनेषु) सेवनीय पदार्थों या लोकों में, काष्ठों में अग्निवत्, वा जलों में सूर्यवत्, सेव्य लोकों में जीव (रोचते) रुचि अनुकूल विचरता है, उनमें ही रुचि करता है।

अ॒प्स्व॑ग्ने॒ सधि॒ष्टव॒ सौष॑धी॒रनु॑ रुध्यसे। गर्भे॒ सञ्जा॑यसे॒ पुनः॑॥९॥

भा०—जिस प्रकार इस अग्नि का (सधिः अप्सु) मेघस्थ जलों में

विद्युत् रूप से स्थित है, और (सः) वह (ओषधीः अनु रुध्यते) ओषधियों को प्राप्त होता है, और (गर्भे सन् पुनः जायते) पुत्रवत् उनके भीतर छुपा रहकर भी घर्षणादि से पुनः उत्पन्न होता है। इसी प्रकार हे (अग्ने) जीव (तव सधिः) तेरी समान रूप से स्थिति (अप्सु) वीर्यों में रहती है, (सः) वह तू (ओषधीः अनु) 'ओष' तेजोमय वीर्य को धारण करने में समर्थ माताओं को प्राप्त होकर वहां (रुध्यसे) ९ मास तक रुका रहता है, (गर्भे सन्) गर्भ में विद्यमान रहकर पुनः (जायसे) जन्म लेकर उत्पन्न होता है।

उद॑ग्ने॒ तव॒ तद् घृ॒ताद॒र्ची रो॑चत॒ आहु॑तम्। निंसा॑नं जु॒ह्वो॒३॒॑ मुखे॑॥१०॥३०॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि की (अर्चिः) ज्वाला या दीप्ति (जुह्वः मुखे) जुहू नाम चमस के मुखपर (निंसानं) चुम्बन करती हुई (आहुतम्) आहुति प्राप्त कर (घृतात् उत् रोचते) घृत के कारण ऊपर को उठकर चमकती है उसी प्रकार हे (अग्ने) स्वप्रकाश जीवात्मा (तव तद् अर्चिः) तेरा वह प्रकाशमय बीज (जुह्वः मुखे) आदान या शुक्र ग्रहण करने वाले मातृगर्भस्थ शुक्रधारक नाड़ी के मुख पर (निंसानं) चुम्बन या स्पर्श करता हुआ (आहुतं सत्) पुरुष द्वारा प्रदत्त होता है और उसी (घृतात्) क्षरित, तेजोमय शुक्र से (तद्वत्) तेरा वह रूप (उत् रोचते) उत्तम रीति से प्रकट होता है। इति त्रिंशो वर्गः॥

उ॒क्षान्ना॑य व॒शान्ना॑य॒ सोम॑पृष्ठाय वे॒धसे॑। स्तोमै॑र्विधेमा॒ग्नये॑॥११॥

भा०—हम (उक्षान्नाय) वीर्यसेचन में समर्थ अन्न खाने वाले और (वशान्नाय) यथेच्छ अन्न के भोगने वाले, (सोम-पृष्ठाय) वीर्य स्वरूप (अग्ने) अग्निवत् आकाशस्वरूप आत्मा का (स्तोमैः) वेद मन्त्रों द्वारा (विधेम) प्रतिपादन और ज्ञान करें। (२) 'उक्षाः' जल सेचक, नाना लोकों को वहन करने वाले, सूर्यादि और 'वशा' सर्व वशकारिणी शक्ति का अन्नवत् उपभोग करने वाले (सोम-पृष्ठाय) सर्व

प्रेरक, परमैश्वर्यवान् (वेधसे) जगत् विधाता (अग्नये) अग्निवत् तेजोमय परमेश्वर की हम (स्तोमैः) स्तुति वचनों से (विधेम) परिचर्या और स्तुति-उपासना करें।

उत त्वा नम॑सा व॒यं होत॒र्वरे॑ण्यक्रतो । अग्ने॑ स॒मिद्भि॑रीमहे ॥१२॥

भा०—(उत) और हे (होतः) सब सुखों के देने वाले ! हे (वरेण्य-क्रतो) सर्वश्रेष्ठ ज्ञानवन् ! वा हे (वरेण्य) सर्वश्रेष्ठ ! हे (क्रतो) जगत्कर्त्ता ! हे (अग्ने) ज्ञानप्रकाशमय ! (त्वा) तुझ को (वयं) हम (नमसा) विनय से (समिद्भिः) समिधाओं से आहवनीयाग्नि के तुल्य (समिद्भिः) उत्तम, उज्वल, दीप्तियुक्त ज्ञानों द्वारा (ईमहे) प्राप्त होते हैं।

उ॒त त्वा॒ भृगु॑वच्छुचे मनु॒ष्वद॑ग्न आहुत । अ॒ङ्गि॒र॒स्वद्ध॑वामहे १३

भा०—(उत) और हे (शुचे) प्रकाशस्वरूप ! शुद्ध ! पापों के दहन करने हारे ! हे (अग्ने) ज्ञानमय ! हे (आहुत) सर्वात्मना स्वीकृत हम लोग (भृगुवत्) पापों को दग्ध करने में समर्थ तपस्वी जनों के समान, और (मनुष्वत्) मननशील ज्ञानी पुरुषों के समान और (अंगिरस्वत्) देह में प्राणोंवत् अंगारों के समान तेजस्वी ज्ञानी पुरुषों के समान होकर (त्वा हवामहे) तुझ से प्रार्थना करते हैं।

त्वं ह्य॑ग्ने अ॒ग्निना॒ विप्रो॒ विप्रे॑ण॒ सन्त्स॒ता।सखा॒ सख्या॑ समि॒ध्यसे॑१४

भा०—जिस प्रकार (अग्निना अग्निः समिध्यते) एक अग्नि से दूसरी अग्नि मिलकर और अधिक दीप्तियुक्त होता है और जिस प्रकार (विप्रः विप्रेण समिध्यते) विद्वान् पुरुष विद्वान् से मिलकर और अधिक ज्ञान का प्रकाश करता है और जिस प्रकार (सन् सता) सज्जन सज्जन से मिलकर प्रसन्न होता है, (सखा सख्या समिध्यते) स्नेही मित्र से स्नेहवान्, जन मिलकर अधिक प्रसन्न होता है उसी प्रकार हे (अग्ने) ज्ञानस्वरूप सर्वप्रकाशक प्रभो ! तू भी (अग्निना) स्वप्रकाश आत्मा द्वारा

(समिध्यसे) अच्छी प्रकार प्रकाशित होता है, तू (विप्रः) विविध ज्ञानों से पूर्ण है, वह तू (विप्रेण) विशेष आत्मज्ञान से पूर्ण आत्मा द्वारा ही (समिध्यसे) अच्छी प्रकार प्रकाशित होता, जाना जाता है। तू (सन्) सत् स्वरूप (सता) सत् नित्य आत्मा से ही जाना जाता है। तू (सखा) आत्मा का परम स्नेही है, तू (सख्या) अपने मित्र आत्मा द्वारा ही जाना जाता है।

स त्वं विप्राय दाशुषे रयिं देहि सहस्रिणम्।
अग्ने वीरवतीमिषम् ॥ १५ ॥ ३१ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! विद्वन्! तेजस्विन्! (सः त्वं) वह तू (दाशुषे) ज्ञानादि देने वाले (विप्राय) मेधावी विद्वान् को (सहस्रिणं रयिं) सहस्रों की संख्या से युक्त ऐश्वर्य और (वीरवतीम् इषम्) वीरों और पुत्रों से युक्त अन्न, (देहि) प्रदान कर। इसी प्रकार वह परमेश्वर इस जीव को (सहस्रिणम्) सब सुखों और बलयुक्त प्राणों से युक्त 'रयिं' अर्थात् मूर्त्तदेह और (वीरवतीम् इषम्) प्राणों वाली इच्छा शक्ति प्रदान करता है। इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

अग्ने भ्रातः सहस्कृत रोहिदश्व शुचिव्रत।
इमं स्तोमं जुषस्व मे ॥ १६ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! हे (भ्रातः) भ्रातृवत् स्नेहकारिन्, समस्त जीवों के भरण पोषण करनेहारे! हे (सहस्कृत) सर्ववशकारी बल से सम्पन्न, हे (रोहित्-अश्व) रक्तवर्ण अश्व अर्थात् व्यापक तेज वाले, वेगवान् सूर्यादि पिण्डों के स्वामिन्! हे (शुचि-व्रत) शुद्धव्रत! नियमकारिन्! विद्वन्! तू (मे) मेरे (इमं स्तोमं जुषस्व) इस स्तुतिवचन को प्रेमपूर्वक स्वीकार कर।

उत त्वाग्ने मम स्तुतो वाश्राय प्रतिहर्यते।
गोष्ठं गाव इवाशत ॥ १७ ॥

भा०—हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप प्रभो ! (वाश्राय प्रतिहर्यते) पुकारने वाले और माता को चाहने वाले बछड़े के लाभ के लिये (गोष्ठं गावः इव) गोशाला में गौओं के समान (मम स्तुतः) मेरी स्तुतियां (त्वा) तुझ को (आशत) प्राप्त हों।

तुभ्यं ता अंङ्गिरस्तम विश्वाः सुक्षितयः पृथक् ।
अग्ने कामाय येमिरे ॥ १८ ॥

भा०—हे (अंगिरस्तम) प्राणों में मुख्य प्राणवत् वा आत्मवत् ! सर्वश्रेष्ठ ! हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (ताः विश्वाः सुक्षितयः) वे समस्त उत्तम प्रजाएं (कामाय तुभ्यं) कामना करने योग्य, कान्तिमान् तेरे लिये ही अपने को (पृथक्) पृथक् २ दलों में (नि येमिरे) नियंत्रित करते हैं, तुझे ही प्राप्त करने के लिये उत्तम जन अपने को वर्ण आश्रमादि की व्यवस्थाओं में बांधते हैं।

अग्निं धीभिर्मनीषिणो मेधिरासो विपश्चितः ।
अद्मसद्याय हिन्विरे ॥ १९ ॥

भा०—(मेधिरासः) अन्नादि के स्वामी, (मनीषिणः) मनों को सन्मार्ग में चलाने वाले, (विपश्चितः) ज्ञानवान् विद्वान् लोग (धीभिः) उत्तम ज्ञानों, कर्मों तथा धारण योग्य वेदवाणियों, स्तुतियों से (अद्म-सद्याय) कालाग्नि रूप से अन्नवत् खाने योग्य, समस्त विश्व में अधिष्ठातृ-वत् विराजने और व्यापने के अर्थ (हिन्वन्ति) तेरी स्तुति करते हैं। (२) यज्ञ में विद्वान् चरु ग्रहणार्थ अग्नि को बढ़ाते हैं। गृह में अन्न भोजनार्थ अतिथि विद्वान् को प्रार्थना करते हैं।

तं त्वामज्मेषु वाजिनं तन्वाना अग्ने अध्वरम् ।
वह्निं होतारमीळते ॥ २० ॥ ३२ ॥

भा०—लोग (त्वाम् तं) उस तुझे (वाजिनम्) बलवान्, ऐश्वर्य-वान् को, हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! (अज्मेषु) संग्रामों में भी

(अध्वरं) अविनाशी (वह्निं) कार्यवहन में समर्थ (होतारम्) दाता-रूप से (ईडते) स्तुति करते हैं। इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

पुरुत्रा हि सदृङ्ङसि विशो विश्वा अनु प्रभुः ।
समत्सु त्वा हवामहे ॥ २१ ॥

भा०—हे विभो ! प्रभो ! स्वामिन् ! तू (विश्वाः विशः अनु प्रभुः) समस्त प्रजाओं के अनुकूल, सबका स्वामी और (पुरुत्र हि) पालने योग्य इन्द्रियों में आत्मा के समान ही (सदृङ् असि) सबको समान भाव से देखने वाला तदनुरूप है। (समत्सु) संग्रामों और हर्षावसरों में भी (त्वा हवामहे) तेरी ही प्रार्थना करते हैं।

तमीळिष्व य आहुतोऽग्निर्विभ्राजते घृतैः ।
इमं नः शृणवद्धवम् ॥ २२ ॥

भा०—जिस प्रकार (आहुतः अग्निः) आहुति किया अग्नि (घृतैः) घृतों से (वि-भ्राजते) विशेष रूप से प्रकाशित होता है उसी प्रकार जो वह (अग्निः) तेजःस्वरूप, स्वप्रकाश प्रभु (घृतैः) तेजोमय आत्माओं से (आ-हुतः) बुलाया, पुकारा और प्रार्थित किया जाकर (वि-भ्राजते) विशेष रूप से हृदयों में प्रकाशित होता है (तम् ईडिष्व) तू उसकी ही स्तुति किया कर। क्योंकि वही (नः) हमारी (हवम् शृणवत्) उस स्तुति को श्रवण करता है।

तं त्वा वयं हवामहे शृण्वन्तं जातवेदसम् ।
अग्ने घ्नन्तमप द्विषः ॥ २३ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! ज्ञानप्रकाशक विद्वन् ! (जात-वेदसम्) ज्ञान में निष्णात, (शृण्वन्तं) श्रवण करने वाले और (द्विषः अप घ्नन्तम्) समस्त द्वेष करने वालों और समस्त द्वेष के भावों का विनाश करने वाले (त्वा तं) उस तुझ को (वयं) हम लोग (हवा-महे) पुकारते और स्तुति-प्रार्थना और उपासना करते हैं।

विशां राजानमद्भुतमध्यक्षं धर्मणामिमम् ।
अग्निमीळे स उ श्रवत् ॥ २४ ॥

भा०—(विशां राजानम्) प्रजाओं के बीच राजा के तुल्य, देह में प्रविष्ट आत्माओं के बीच प्रकाशित होने वाले (धर्मणाम्) समस्त धर्मों के (अद्भुतम् अध्यक्षं) अद्भुत अध्यक्ष, साक्षी द्रष्टा, (अग्निम्) उस तेजस्वी प्रभु की मैं (ईडे) स्तुति करूं, (सः उ श्रवत्) वह ही वस्तुतः सब कुछ सुनने वाला है ।

अग्निं विश्वायुवेपसं मर्यं न वाजिनं हितम् ।
सप्तिं न वाजयामसि ॥ २५ ॥ ३३ ॥

भा०—जिस प्रकार हम (विश्वायु-वेपसं मर्यं वाजयामसि) समस्त मनुष्यों को कंपाने वाले बलवान् पुरुष को अधिक बल ऐश्वर्य से युक्त करते हैं । वा (वाजिनं सप्तिं वाजयामसि) बलशाली वेग से जाने वाले अश्व को अधिक तीव्र वेग से जाने के लिये प्रेरित करते हैं उसी प्रकार हम (विश्वायु-वेपसं) समस्त मनुष्यों को चलाने वाले, (वाजिनं) ज्ञानैश्वर्यवान् बली, (हितम्) सर्वहितकारी (सप्तिं) प्रकृति के सातों विकृतियों के स्वामी, (अग्निम्) सर्वप्रकाशक को (वाजयामसि) समस्त गुणों से अलंकृत करते, उसकी स्तुति करते हैं । इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः ॥

घ्नन्मृध्राण्यप द्विषो दहन्रक्षांसि विश्वहा ।
अग्ने तिग्मेन दीदिहि ॥ २६ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! तू (मृध्राणि) हिंसक (द्विषः) द्वेष करने वालों को (घ्नन्) दण्डित करता और (रक्षांसि दहन्) विघ्न-कारियों को दग्ध या निर्मूल करता हुआ (तिग्मेन) तीक्ष्ण तेज से (दीदिहि) प्रकाशित हो ।

यं त्वा जनास इन्धते मनुष्वदङ्गिरस्तम ।
अग्ने स बोधि मे वचः ॥ २७ ॥

भा०—हे (अङ्गिरस्तम) अति तेजस्विन् ! (अग्ने) अग्रणी नायकवत् मार्गप्रकाशक ! (यं त्वा) जिस तुझ को (जनासः) मनुष्य (मनुष्वत्) ज्ञानी के समान होकर (त्वाम् इन्धते) तुझे ही प्रज्वलित करते हैं (सः त्वं) वह तू (मे वचः बोधि) मेरे वचन का ज्ञान कर।

यद॑ग्ने दि॒वि॒जा अस्य॑प्सु॒जा वा॑ सहस्कृत ।
तं त्वा॑ गी॒र्भिर्ह॑वामहे ॥ २८ ॥

भा०—अग्नि जिस प्रकार तीन प्रकार का है, (दिविजाः) आकाश में प्रकट सूर्य, (अप्सुजाः) जलों में प्रकट वा अन्तरिक्ष में उत्पन्न विद्युत्, और (सहस्कृतः) बल या मथन से उत्पन्न यह अग्नि, इसी प्रकार आत्मा भी तीन प्रकार से प्रकट होता है। (१) (दिविजाः) कामना रूप से प्रकट, (२) (अप्सुजाः) प्राणों में प्रकट, (३) (सहस्कृतः) प्रतिरोधी उष्ण शीतादि को सहन करने वाले बल रूप में प्रकट। इसी प्रकार परमेश्वर के तीन गुण, (दिविजाः) परम आकाश में सूर्यादि का उत्पादक, (अप्सुजाः) प्रकृति के सूक्ष्म परमाणुओं वा जलों में और अन्तरिक्ष में गत पदार्थों का उत्पादक, (सहस्कृत) सर्वातिशायी, सर्वव्यवस्थापक बल होकर विश्व के उत्पादक, हे (अग्ने) स्वयं प्रकाशस्वरूप आत्मन् प्रभो ! हे उक्त तीनों विशेषणों वाले ! (तं त्वा) उस तुझ को हम (गीर्भिः) नाना उत्तम वाणियों से (हवामहे) स्तुति करते हैं, तेरा गुण वर्णन करते हैं।

तुभ्यं॑ घेत्ते जना॑ इ॒मे विश्वा॑ः सुक्षि॒तय॒ः पृथ॑क् ।
धा॒सिं हि॑न्व॒न्त्यत्त॑वे ॥ २९ ॥

भा०—(अत्तवे धासिं) भोक्ता जन को जिस प्रकार अन्न देते हैं उसी प्रकार (इमे जनाः) ये उत्पन्न हुए प्राणि, या लोक और (विश्वाः सुक्षितयः) समस्त उत्तम मनुष्य (पृथक्) पृथक् २ (तुभ्यं अत्तवे व इव)

सब चराचर को अपने में लेने वाले तेरी ही (धासिं हिन्वन्ति) धारणा-सामर्थ्य की स्तुति करते हैं।

ते घेदग्ने स्वाध्योऽहा विश्वा नृचक्षसः।
तरन्तः स्याम दुर्गहा ॥ ३० ॥ ३४ ॥

भा०—हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप, (विश्वा अहा) सब दिनों, (नृ-चक्षसः) नायक प्रभु को देखने वाले और (ते घ इत्) तेरे ही (सु-आध्यः) सुख से ध्यान, उपासना करने वाले होकर हम (दुर्ग-हा) दुःख से पार करने योग्य संकटों को (तरन्तः स्याम) पार करने वाले हों।

अग्निं मन्द्रं पुरुप्रियं शीरं पावकशोचिषम्। हृद्भिर्मन्द्रेभिरीमहे ३१

भा०—हम (मन्द्रं) स्तुत्य, आनन्दप्रद (पुरु-प्रियं) बहुतों के प्रिय, इन्द्रियों को आत्मा के तुल्य प्रजाओं को प्रसन्न करने वाले (पावक-शोचि-षम्) पवित्रकारक तेज वाले, (शीरं) व्यापक, (अग्निं) अग्निवत् प्रकाशक को हम (मन्द्रेभिः) हर्षयुक्त (हृद्भिः) हृदयों से (ईमहे) प्रार्थना, स्तुति करें।

स त्वमग्ने विभावसुः सृजन्त्सूर्यो न रश्मिभिः।
शर्धन्तमांसि जिघ्नसे ॥ ३२ ॥

भा०—(सृजन् सूर्यः न) उगते हुए सूर्य के समान (विभा-वसुः) विशेष कान्ति से आच्छादन करने वाला, दीप्तिमान् होकर हे (अग्ने) प्रकाशक! (रश्मिभिः) अपने किरणों से (शर्धन्) बलवान् होकर (सः त्वं) वह तू (तमांसि जिघ्नसे) अन्धकारों को नाश करता है, दुःखदायी दुष्टों को दण्डित करता है।

तत्ते सहस्व ईमहे दात्रं यन्नोपदस्यति।
त्वदग्ने वार्यं वसु ॥ ३३ ॥ ३५ ॥

भा०—हे (सहस्व) सब से महान् प्रभो! बलवन्! (यत्) जो (ते) तेरा (वार्यं वसु) सर्वश्रेष्ठ ऐश्वर्य कभी (न उप-दस्यति) नष्ट

नहीं होता हम (तत् ते दात्रं) वह तेरा दातव्य दान हम (त्वत् ईमहे) तुझ से मांगते हैं । इति पञ्चत्रिंशो वर्गः ॥

[४४]

विरूप आङ्गिरस ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ६, १०, २२, २५, २६ गायत्री । २, ५, ७, ८, ११, १४—१७, २४ निचृद् गायत्री । ९, १२, १३, १८, २८, ३० विराड् गायत्री । २७ यवमध्या गायत्री । २९ ककुम्मती गायत्री । १९, २३ पादनिचृद् गायत्री ॥ त्रिंशदृचं सूक्तम् ॥

समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् ।
आस्मिन्हव्या जुहोतन ॥ १ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! (समिधा घृतैः अग्निं) जिस प्रकार यज्ञाग्नि को समिधा और घृताहुतियों से परिचरण करते और (हव्या जुहोतन) उत्तम हव्य चरु की आहुति देते हो उसी प्रकार आप लोग (अतिथिम्) अतिथिवत् पूज्य (अग्निं) ज्ञानवान् विद्वान् की (समिधा) समित्पाणि होकर (घृतैः) ज्ञानप्रकाशों और स्नेहों के निमित्त (दुवस्यत) उसकी सेवा परिचर्या करो। (अस्मिन्) उसके निमित्त (हव्या आ जुहोतन) उत्तम २ ग्रहण करने योग्य अन्न आदि पदार्थ प्रदान करो ।

अग्ने स्तोमं जुषस्व मे वर्धस्वानेन मन्मना ।
प्रति सूक्तानि हर्य नः ॥ २ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानप्रकाशक ! तू (मे स्तोमं जुषस्व) मेरी स्तुति को स्वीकार कर । और (अनेन मन्मना) इस मनन करने योग्य ज्ञान से (वर्धस्व) वृद्धि को प्राप्त हो । (नः सूक्तानि प्रति हर्य) हमारे सूक्तों, उत्तम वचनों को तू चाह और हमें उत्तम वचनों का उपदेश कर ।

अग्निं दूतं पुरो दधे हव्यवाहमुप ब्रुवे ।
देवाँ आ सादयादिह ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार कोई (अग्निं दूतं पुरो धत्ते) तप्त अग्नि को आगे स्थापित करता है और अग्नि (देवान् आसादयति) प्रकाशक किरणों को प्रदान करता है, उसी प्रकार मैं (पुरः) अपने समक्ष (दूतं) स्तुति योग्य (हव्य-वाहम्) स्तुत्य गुणों के धारक, ज्ञानप्रकाशक गुरु और प्रभु को धारण करूं और (उप ब्रुवे) उसकी स्तुति करूं। वह (इह) इस अन्तःकरण में (देवान् आसादयत्) शुभ गुणों, ज्ञानों को प्राप्त करावे।

उत्ते बृहन्तो अर्चयः समिधानस्य दीदिवः। अग्ने शुक्रास ईरते ४

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! तपस्विन्! हे (दीदिवः) कान्तियुक्त! हे उज्वल चरित्र, जिस प्रकार (समिधानस्य बृहन्तः शुक्रासः अर्चयः उत् ईरते) अच्छी प्रकार प्रदीप्त हुए अग्नि की बहुत बड़ी, २ प्रदीप्त ज्वालाएं ऊपर उठती हैं और जिस प्रकार सूर्य की उज्ज्वल कान्तियें ऊपर को उठती हैं और जिस प्रकार (शुक्रासः उत् ईरते) पृथिवीस्थ जल भी ऊपर को उठते हैं उसी प्रकार (समिधानस्य) अति तेजस्वी (ते) तेरे (बृहन्तः) प्रवृद्ध (अर्चयः) उत्तम कान्तिएं और (शुक्रासः) शुक्र अर्थात् वीर्य (उत् ईरते) ऊपर मस्तक की ओर जाते हैं।

उप त्वा जुह्वो३ मम घृताचीर्यन्तु हर्यत।
अग्ने हव्या जुषस्व नः॥ ५॥ ३६॥

भा—जिस प्रकार (घृताचीः जुह्वः अग्निं यन्ति) घृत वाली जुहू नाम स्रुचाएं यज्ञ-काल में अग्नि को प्राप्त होती हैं उसी प्रकार हे (अग्ने) विद्वन्! प्रभो! हे (हर्यत) कान्तियुक्त! उत्तम कामनावान्! (मम) मेरी (घृताचीः) स्नेहयुक्त (जुह्वः) वाणियां (त्वा उप यन्तु) तुझे प्राप्त हों! हे (अग्ने) तेजस्विन्! तू (नः हव्या) हमारे दिये अन्नादि दातव्य पदार्थों को (जुषस्व) प्रेमपूर्वक स्वीकार कर। इति षट्त्रिंशो वर्गः॥

मन्द्रं होतारमृत्विजं चित्रभानुं विभावसुम्।
अग्निमीळे स उ श्रवत्॥ ६॥

भा०—मैं (मन्द्रं) सुखजनक, (होतारम्) सुखों और ज्ञानों के देने वाले, (ऋत्विजं) ऋतु २ में यज्ञ करने वाले, (चित्र-भानुं) अद्भुत, सौम्य कान्तियुक्त (विभा-वसुम्) दीप्तियुक्त धन के स्वामी, (अग्निम् ईडे) प्रमुख तेजस्वी पुरुष की स्तुति करता हूं, उसको चाहता हूं। (सः उ श्रवत्) वह ही हमारी प्रार्थना श्रवण करे।

प्रत्नं होतारमीड्यं जुष्टमग्निं कविक्रतुम्।
अध्वराणामभिश्रियम् ॥ ७ ॥

भा०—मैं (प्रत्नं) पुराण, नित्य, सर्वश्रेष्ठ, (होतारम्) ज्ञानों, ऐश्वर्यों के देने वाले, (ईड्यं) स्तुत्य, (जुष्टं) सेवा करने योग्य, (कवि-क्रतुम्) दूरदर्शी विद्वान् के समान ज्ञान और कर्म से युक्त, विद्वानों को भी ज्ञान देने वाले, (अध्वराणां) यज्ञों के आश्रय, देवपूजा, सत्कार आदि के सत्पात्र की स्तुति करता हूं।

जुषाणो अङ्गिरस्तमेमा हव्यान्यानुषक्।
अग्ने यज्ञं नय ऋतुथा ॥ ८ ॥

भा०—हे (अंगिरःतम) प्राणों के प्राण ! हे (अग्ने) सबके नेतः ! तू (आनुषक्) निरन्तर (हव्यानि जुषाणः) उत्तम ग्राह्य, ऐश्वर्य, ज्ञान, स्तुतिवचन, अन्नादि का सेवन करता हुआ (ऋतुथा) ऋतु अनुसार (यज्ञं नय) यज्ञ को चला।

समिधान उ सन्त्य शुक्रशोच इहा वह।
चिकित्वान्दैव्यं जनम् ॥ ९ ॥

भा०—हे (सन्त्य) आदरसत्कार, सत्संगादि से सेवने योग्य ! हे (शुक्र-शोचे) शुद्ध कान्तियुक्त ! वीर्य की उज्ज्वल कान्ति से युक्त ब्रह्मचारिन् ! तू (चिकित्वान्) विद्वान् होकर (सम्-इधानः) अग्निवत् देदीप्यमान होकर (दैव्यं जनं) उत्तम विद्वान् जनों को (इह आ वह) यहां प्राप्त करा।

विप्रं होतारमद्रुहं धूमकेतुं विभावसुम् ।
यज्ञानां केतुमीमहे ॥ १० ॥ ३७ ॥

भा०—हम (विप्रम्) विद्वान् (होतारम्) ज्ञानप्रद, उत्तम उपदेष्टा, (अद्रुहं) द्रोहरहित, अहिंसापरायण, निर्द्वेष, (धूम-केतुम्) अज्ञान मोहादि के नाशक, सत् ज्ञान से युक्त, (विभा-वसुम्) विशेष कान्ति से युक्त, कान्ति से अन्यों को आच्छादित वा प्रभावित करने वाले, (यज्ञानां केतुम्) यज्ञों के जानने वाले विद्वान् वा प्रभु से हम (ईमहे) याचना करें । इति सप्तत्रिंशो वर्गः ॥

अग्ने नि पाहि नस्त्वं प्रति ष्म देव रीषतः ।
भिन्धि द्वेषः सहस्कृत ॥ ११ ॥

भा०—हे (देव) तेजस्विन् ! विजिगीषो ! कान्तियुक्त ! हे (अग्ने) अग्रणी ! (त्वं) तू (नः) हमें (रीषतः) हिंसक पुरुष से (नि पाहि) रक्षा कर, बचा और उसका (प्रति) मुकाबला कर । हे (सहस्कृत) बल से सम्पन्न ! तू (नः) हमारे (द्वेषः) शत्रुओं को (भिन्धि) छिन्न भिन्न कर, उनमें भेद नीति का प्रयोग कर ।

अग्निः प्रत्नेन मन्मना शुम्भानस्तन्वं स्वाम् ।
कविर्विप्रेण वावृधे ॥ १२ ॥

भा०—(अग्निः) अग्रणी वा ज्ञानी (कविः) क्रान्तदर्शी पुरुष (प्रत्नेन मन्मना) अनादि ज्ञान वेद से (स्वां तन्वं शुम्भानः) अपने देह, सुख आदि को सुशोभित करता हुआ (विप्रेण) विद्वान् पुरुष के संग से (वावृधे) बढ़ता है ।

ऊर्जो नपातमा हुवेऽग्निं पावकशोचिषम् ।
अस्मिन्यज्ञे स्वध्वरे ॥ १३ ॥

भा०—(अस्मिन् सु-अध्वरे यज्ञे) इस अविनाशी, प्रबल यज्ञ में, (पावक-शोचिषम्) पवित्रकारक दीप्ति वाले (ऊर्जः नपातम्) बल के

उत्पादक, बल पराक्रम को न गिरने देने वाले, (अग्निं) अग्रणी नायक पुरुष को (आहुवे) आदर पूर्वक बुलाऊं और प्रमुख रूप से स्वीकार करूं।

स नो मित्रमहस्त्वमग्ने शुक्रेण शोचिषा।
देवैरा सत्सि बर्हिषि ॥ १४ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक ! (त्वम्) तू (मित्रमहः) मित्रों का आदर करने वाला और मित्रों से स्वयं पूजित होकर (शुक्रेण शोचिषा) उज्ज्वल कान्ति से युक्त होकर (नः) हमारे (बर्हिषि) वृद्धिशील राष्ट्र और उत्तमासन पर (देवैः) विद्वान् विजय के इच्छुक पुरुषों सहित (आ सत्सि) आदरपूर्वक प्रतिष्ठित हो।

यो अग्निं तन्वो३ दमे देवं मर्तः सपर्यति।
तस्मा इदीदयद्वसु ॥ १५ ॥ ३८ ॥

भा०—(यः मर्त्तः) जो मनुष्य (दमे) गृह में अथवा (तन्वः दमे) शरीर के अंगों को दमन करने के लिये (अग्निं देवं) अग्निवत् तेजस्वी, ज्ञानप्रकाशक, (देवं) ज्ञानी, दाता, विद्वान् और प्रभु की (सपर्यति) सेवा शुश्रूषा करता है (तस्मै इत्) उसी के लिये वह (वसु दीदयत्) ज्ञानमय धन का प्रदान करता है। इत्यष्टात्रिंशो वर्गः ॥

अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्पतिः पृथिव्या अयम्।
अपां रेतांसि जिन्वति ॥ १६ ॥

भा०—(अयम्) यह (पृथिव्याः पतिः) पृथिवी का स्वामी (दिवः ककुत्) ज्ञान में श्रेष्ठ, आकाश में सूर्यवत् उन्नत, (मूर्धा) शिर के समान सर्वोपरि विराजमान, (अग्निः) अग्रणी विद्वान् (अपां) आप्त पुरुषों के बीच रहकर (रेतांसि जिन्वति) वीर्यों का पालन करे, ब्रह्मचर्य का पालन करे। (२) वीर पुरुष प्रजाओं के बीच धनों और बलों की वृद्धि करे। (३) सूर्य अपने तेज से अन्तरिक्ष के बलों को पूर्ण करता, और आकाशस्थ वायु को वर्षणार्थ तैयार करता है।

उद॑ग्ने॒ शुच॑य॒स्तव॑ शु॒क्रा भ्राज॑न्त ईरते ।
तव॒ ज्योतीं॑ष्य॒र्चयः॑ ॥ १७ ॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! (तव शुचयः) तेरे शुद्ध चरित्र, (शुक्राः) जलों या तेजों के समान (उत् ईरते) शुद्ध रूप से प्रकट होते हैं और (तव ज्योतींषि) तेरे तेज, (तव अर्चयः) तेरे आदरसत्कार भी अग्नि के प्रकाश में और ज्वालाओं के समान (उत् ईरते) उत्तम रीति से प्रकट होते हैं ।

ईशि॑षे॒ वार्य॑स्य॒ हि दा॒त्रस्या॑ग्ने॒ स्व॑र्पतिः ।
स्तो॒ता स्यां॒ तव॒ शर्म॑णि ॥ १८ ॥

भा०—(हि) क्योंकि हे (अग्ने) तेजस्विन् ! तू (स्वः पतिः) समस्त सुखों का पालक, स्वामी है और तू ही (वार्यस्य दात्रस्य) वरण करने योग्य श्रेष्ठ दातव्य धन का भी (ईशिषे) स्वामी है, अतः मैं (शर्मणि) सुखमय शरण में रहकर (तव स्तोता स्याम्) तेरी स्तुति करने वाला होऊं ।

त्वाम॑ग्ने मनी॒षिण॒स्त्वां हि॑न्वन्ति॒ चित्ति॑भिः ।
त्वां व॑र्धन्तु नो॒ गिरः॑ ॥ १९ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! (मनीषिणः) मन को सन्मार्ग में चलाने वाले, ज्ञान के अभिलाषी (त्वां) तुझे चाहते हैं । (त्वां चित्तिभिः हिन्वन्ति) तुझे कर्मों से प्रसन्न करते हैं । (नः गिरः) हमारी वाणियें भी (त्वां वर्धन्तु) तुझे ही बढ़ावें, तेरा ही गुणगान करें ।

अद॑ब्धस्य स्व॒धाव॑तो दू॒तस्य॒ रेभ॑तः॒ सदा॑ ।
अ॒ग्नेः स॒ख्यं वृ॑णीमहे ॥ २० ॥ ३९ ॥

भा०—(अदब्धस्य) विनाशरहित, (स्वधावतः) स्वयं जगत् को धारण करने वाली शक्ति से युक्त (दूतस्य) दुष्टों को संताप देने वाले,

(रेभतः) ज्ञान का उपदेश देने वाले, (अग्नेः) तुझ तेजस्वी, ज्ञानी पुरुष के (सख्यं) मैत्रीभाव की हम (सदा वृणीमहे) सदा याचना करें। इत्येकोनचत्वारिंशो वर्गः ॥

अग्निः शुचिव्रततमः शुचिर्विप्रः शुचिः कविः ।
शुची रोचत आहुतः ॥ २१ ॥

भा०—(शुचिव्रत-तमः) अत्यन्त शुद्ध पवित्र कर्मों वाला पुरुष, (विप्रः शुचिः) शुद्ध चरित्रवान्, विद्वान् (शुचिः कविः) शुद्ध चरित्रवान् , क्रान्तदर्शी, तत्व ज्ञानी पुरुष (शुचिः) शुद्ध, तेजस्वी (आहुतः) आहुति किये अग्नि के समान ही सत् दान प्राप्त कर (रोचते) प्रकाशित होते, और सबके मन को अच्छा लगता है ।

उत त्वा धीतयो मम गिरो वर्धन्तु विश्वहा ।
अग्ने सख्यस्य बोधि नः ॥ २२ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी, नायक ! हे विद्वन् ! (मम) मेरे (धीतयः) उत्तम कर्म, और (मम गिरः) मेरी वाणियां (त्वा विश्वहा वर्धन्तु) तुझे सदा बढ़ावें और तू (नः सख्यस्य बोधि) हमारे मित्रभाव को सदा जान ।

यदग्ने स्यामहं त्वं त्वं वा घा स्या अहम् ।
स्युष्टे सत्या इहाशिषः ॥ २३ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! हे प्रभो ! (यद्) यदि (अहं त्वं स्याम्) मैं तू हो जाऊं (त्वं वा घ अहम् स्याः) और तू मैं बन जावे, तब (इह) इस लोक में (ते आशिषः सत्याः स्युः) तेरी कामनाएं, वा तेरे विषय में मेरी भावनाएं सत्य हों ।

वसुर्वसुपतिर्हि कमस्यग्ने विभावसुः । स्याम ते सुमतावपि २४

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! तू (विभा-वसुः) दीप्तियुक्त, दीप्ति से जगत् भर को आच्छादित करने हारा, (वसुः) सर्वव्यापक और

(वसु-पतिः) समस्त वसु, जीवों का पालक, (असि) है। हम भी (ते सुमतौ स्याम) तेरी शुभ मति और उत्तम ज्ञान में रहें।

अग्ने धृतव्रताय ते समुद्रायेव सिन्धवः।
गिरो वाश्रास ईरते॥ २५॥ ४०॥

भा०—(धृत-व्रताय समुद्राय सिन्धवः इव) जल को धारण करने वाले समुद्र को प्राप्त होने के लिये जिस प्रकार नदी वेग से (ईरते) चलती हैं उसी प्रकार हे (अग्ने) ज्ञानस्वरूप (धृत-व्रताय) व्रतों कर्मों के धारक (ते) तेरे लिये ही (वाश्रासः गिरः) शब्दमय वाणियां (ईरते) निकलती हैं। तेरी स्तुतियां अनायास हृदय में उठती हैं। इति चत्वारिंशो वर्गः॥

युवानं विश्पतिं कविं विश्वादं पुरुवेपसम्।
अग्निं शुम्भामि मन्मभिः॥ २६॥

भा०—मैं (युवानं) बलवान्, (विश्पतिं) प्रजाओं के पालक, (कविं) विद्वान् मेधावी, (विश्व-अदं) समस्त जगत् को अपने भीतर लेने वाले, (पुरु-वेपसम्) नाना कर्म करने वाले, (अग्निं) तेजःस्वरूप, ज्ञान प्रकाशक प्रभु को (मन्मभिः) मन्त्रों से अलंकृत करता हूं।

यज्ञानां रथ्ये वयं तिग्मजम्भाय वीळवे। स्तोमैरिषेमाग्नये॥२७॥

भा०—(यज्ञानां) यज्ञों के बीच (रथ्ये) रथी के समान नायक, (तिग्म-जम्भाय) तीक्ष्ण वशकारी साधनों से सम्पन्न, (वीडवे) बलवान्, (अग्नये) अग्निवत् तेजस्वी प्रभु को हम (स्तोमैः इषेम) स्तुति योग्य वचनों से सदा चाहें।

अयमग्ने त्वे अपि जरिता भूतु सन्त्य। तस्मै पावक मृळय॥२८॥

भा०—हे (सन्त्य) उपास्य! (अग्ने) स्वप्रकाश! (अयम् जरिता) यह स्तुतिकर्त्ता (ते अपि-भूतु) तेरे में अप्यय या मग्नता को प्राप्त हो, हे (पावक) पवित्र करने हारे परम पावन! (तस्मै मृड) तू उसको सुखी कर॥

धीरो ह्यस्यंद्मसद्विप्रो न जागृविः सदा । अग्ने दीदयसि द्यवि २९

भा०—हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप ! तू (विप्रः न) विद्वान् पुरुष के समान (धीरः हि असि) कर्मों, ज्ञानों, और बुद्धियों का प्रेरक, (अद्मसत्) समस्त भोग्य ऐश्वर्यमय ब्रह्माण्ड में, गृह में दीपकवत् विराजमान (सदा जागृविः) सदा जागरणशील है । तू (द्यवि) आकाश में सूर्यवत् (दीदयसि) प्रकाश करता है ।

पुराग्ने दुरितेभ्यः पुरा मृध्रेभ्यः कवे ।
प्र ण आयुर्वसो तिर ॥ ३० ॥ ४१ ॥

भा०—हे (कवे) क्रान्तदर्शिन् ! हे (वसो) सबमें बसने वाले ! सबको बसाने हारे ! (दुरितेभ्यः) दुष्टाचारों और (मृध्रेभ्यः) हिंसकों के भी (पुरा) पूर्व ही (नः आयुः प्र तिर) हमारे जीवनों को बढ़ा । इत्येकचत्वारिंशो वर्गः ॥

[४५]

त्रिशोकः काण्व ऋषिः ॥ १ इन्द्राग्नी । २—४२ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३—६, ८, ९, १२, १३, १५—२१, २३—२५, ३१, ३६, ३७, ३९—४२ गायत्री । २, १०, ११, १४, २२, २८—३०, ३३—३५ निचृद् गायत्री । २६, २७, ३२, ३८ विराड् गायत्री । ७ पादनिचृद् गायत्री ॥

आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक् ।
येषामिन्द्रो युवा सखा ॥ १ ॥

भा०—(ये घ) जो मनुष्य (अग्निम्) अग्नि को (आ इन्धते) अपने सन्मुख प्रज्वलित कर लेते हैं और (येषाम्) जिनका (युवा इन्द्रः) बलवान् ऐश्वर्यवान् प्रभु (सखा) मित्र है, वे (आनुषक्) निरन्तर (बर्हिः)

यन्नवत् इस लोकस्थ प्रजा को (स्तृणन्ति) पृथिवी पर विस्तृत करते हैं। अर्थात् जो अपने सन्मुख विद्वान्, न्यायाधीश और ऐश्वर्यवान्, बलवान् राजा को अपने सन्मुख रखते हैं उनकी प्रजाएं यन्नवत् अविच्छिन्न रहती हैं।

बृहन्निदिध्म एषां भूरि शस्तं पृथुः स्वरुः।
येषामिन्द्रो युवा सखा॥ २॥

भा०—(येषाम् इन्द्रः युवा सखा) ऐश्वर्यवान्, बलवान् प्रभु, राजा, वा विद्युत् सूर्य आदि जिनका मित्र के तुल्य सहायक है (एषां इध्मः बृहन् इव) उनका तेज भी महान् होता है। (एषां शस्तं भूरि) उनका उत्तम ज्ञान भी बहुत अधिक होता है। (एषां स्वरुः पृथुः) उनका शब्द वा शत्रु को सन्ताप देने का बल भी बड़ा भारी होता है।

अयुद्ध इद्युधा वृतं शूर आजति सत्वभिः।
येषामिन्द्रो युवा सखा॥ ३॥

भा०—(येषाम् इन्द्रः युवा सखा) जिनका मित्र, बलवान्, शत्रुहन्ता है वह (शूरः) शूरवीर होकर (सत्वभिः) अपने बलों से ही (युधा-वृतं) योधा जन से घिरे, बड़े सैन्यवान् शत्रु को भी (आ अजति) उखाड़ डालता है और (अयुद्ध) उससे खूब युद्ध करता है।

आ बुन्दं वृत्रहा ददे जातः पृच्छद्वि मातरम्।
क उग्राः के ह शृण्विरे॥ ४॥

भा०—(जातः) अभिषिक्त हुआ, प्रसिद्ध (वृत्र-हा) दुष्ट पुरुषों का मेघों को विद्युत्वत् ताड़ित करने वाला वीर पुरुष जब (बुन्दं) वाण, दुष्ट के भेदन करनेवाले, भयप्रद आयुध या सैन्य आदि को (आ ददे) अपने हाथ में ले तो वह (मातरं) अपनी माता के समान भूमि, राष्ट्र-प्रजा वा विदुषी राजसभा से (पृच्छद्) पूछे, कि (के उग्राः) कौन दुष्ट उग्र होकर प्रजा को सताते हैं और (के ह) कौन (शृण्विरे) दुष्ट संतापकारी सुने जाते हैं। वह उनका पता लगा २ कर उनको दण्डित करे। बुन्दः—इषु-

भवति ब्रुन्दो वा, भिन्दो वा, भयदो वा, भासमानो द्रवतीति वा ॥ नि० ६ । ६ । ४ ॥

प्रति॑ त्वा शवसी व॑दद् गिरावप्सो न यो॑धिषत् ।
यस्ते॑ शत्रुत्वमा॑चके ॥ ५ ॥ ४२ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! (त्वा प्रति) तेरे प्रति (शवसी) बलवती सेना (अवदत्) कहे कि (यः) जो (ते शत्रुत्वम् आचके) तेरी शत्रुता चाहता है उससे तू (गिरौ) मेघ में विद्यमान (अप्सः न) रूपयुक्त तेजस्वी विद्युत् के समान (योधिषत्) प्रहार कर । इति द्वाचत्वारिंशो वर्गः ॥

उत त्वं म॑घवञ्छृणु यस्ते॒ वष्टि॑ व॒वक्षि॒ तत् ।
यद्वी॒ळया॑सि वी॒ळु तत् ॥ ६ ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (उत त्वं शृणु) और तू श्रवण कर, (यः ते वष्टि) जो तुझ से किसी पदार्थ की कामना करे उसे तू (तत् ववक्षि) वह पदार्थ प्रदान कर । तू (यद् वीडयासि) जिसको बलवान् करे (तत् वीडु) वह सैन्य भी बलवान्, दृढ़ हो जावे ।

यदा॒जिं यात्या॑जि॒कृदिन्द्रः॑ स्वश्व॒युरुप॑ । र॒थीत॑मो र॒थीना॑म् ॥७॥

भा०—(इन्द्रः) शत्रु-नाशकारी सेनापति (यत्) जब या जो (आर्जि याति) युद्ध के लिये प्रयाण करता है वह (इन्द्रः) शत्रुहन्ता पुरुष (आजिकृत्) युद्ध करने में कुशल, (सु- अश्वयुः) उत्तम अश्व सैन्यों का स्वामी और (रथीनाम् रथीतमः) रथवान् योद्धाओं के बीच सर्वश्रेष्ठ रथी, महारथी हो ।

वि षु विश्वा॑ अ॒भियुजो॒ वज्रि॒न्विष्व॒ग्यथा॑ वृह ।
भवा॑ नः सु॒श्रव॑स्तमः ॥ ८ ॥

भा०—हे (वज्रिन्) बलवीर्य से सम्पन्न, शस्त्रबल के स्वामिन् ! तू (विश्वा अभि-युजः) समस्त आक्रमणकुशल सेनाओं को (विष्वक् यथा) जिस प्रकार हो उसी प्रकार सब ओर (वि सु वृह) विविध प्रकार

से और अच्छी प्रकार उद्यमन कर, उनको सुसज्जित खड़ा रख। और तू (नः) हमारे बीच (सु-श्रवस्तमः भव) उत्तम यशस्वी, ज्ञानी और धनैश्वर्यादिवान् हो।

अस्माकं सु रथं पुर इन्द्रः कृणोतु सातये।
न यं धूर्वन्ति धूर्तयः॥ ९॥

भा०—(यं धूर्तयः) जिसको हिंसक जन (न धूर्वन्ति) नाश न कर सकें वह (इन्द्रः) शत्रुहन्ता सेनापति होकर (अस्माकं सातये) हमारे अभीष्ट लाभ के लिये (रथं पुरः सु कृणोतु) हमारे रथ सैन्य को आगे अच्छी प्रकार करे।

वृज्याम ते परि द्विषोऽरं ते शक्र दावने।
गमेमेदिन्द्र गोमतः॥ १०॥ ४३॥

भा०—हे (शक्र) शक्तिशालिन्! हम (ते द्विषः) तेरे शत्रुओं को (अरं) खूब (परि वृज्याम) दूर करें। (गोमतः ते) भूमि, वाणी [हुकूमत] और गवादि पशु सम्पन्न जितेन्द्रिय (ते दावने) तेरे दिये अन्न, भूमि, ज्ञान, शासन, वेतनादि प्राप्त करने के लिये (ते गमेम इत्) तुझे अवश्य प्राप्त करें।

शनैश्चिद्यन्तो अद्रिवोऽश्वावन्तः शतग्विनः।
विवक्षणा अनेहसः॥ ११॥

भा०—हे (अद्रिवः) बलवन्, शक्तिशालिन्! हम (शनैः चित् यन्तः) शनैः २ जाते हुए, (अश्वावन्तः) अश्वों वाले, (शतग्विनः) सौ २ भूमियों वा सौ २ गायों के स्वामी, वा शतवर्षजीवी, (अनेहसः) निष्पाप और (विवक्षणाः) राष्ट्र में विशेष अधिकार पद को धारण करने वाले होवें। युद्धादि में विशेष पराक्रमी लोग अवश्य बल, अधिकार और ऐश्वर्यादि चाहते हैं।

ऊर्ध्वा हि ते दिवेदिवे सहस्रा सूनृता शता।
जरितृभ्यो विमंहते॥ १२॥

भा०—(वि-मंहते) विविध ऐश्वर्य देने वाले (ते) तेरे लिये (जरितृभ्यः) स्तुतिकर्त्ता विद्वानों की (शता सहस्रा) सैकड़ों, हज़ारों (सूनृता ऊर्ध्वा) वाणियां ऊपर उठती हैं। उसी प्रकार विद्वानों के लिये तुझ दानशील के सैकड़ों हज़ारों उत्तम २ (सूनृता) धनैश्वर्य हों।

विद्मा हि त्वा धनञ्जयमिन्द्र दृह्ळा चिदारुजम्।
आदारिणं यथा गयम् ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः ! ऐश्वर्यवन् ! द्रष्टः ! हम (त्वा) तुझ को ही (धनं-जयम्) सब ऐश्वर्यों को जीतने वाला (दृढा चित् आरुजम्) शत्रु के दृढ़ से दृढ़ दुर्गों तक को तोड़ने वाला (विद्म हि) जानते हैं और (यथा गयं आदारिणम्) जिस प्रकार गृह उत्तम दारा अर्थात् धर्मपत्नी से युक्त होकर सुखप्रद होता है उसी प्रकार हम (त्वा) तुझ को भी (आदारिणम् विद्म) उत्तम गृहपतिवत् वा शत्रु जनों को आक्रमण कर छेदन भेदन करने में कुशल जानते हैं।

ककुहं चित्त्वा कवे मन्दन्तु धृष्णविन्दवः।
आ त्वा पणिं यदीमहे ॥ १४ ॥

भा०—हे (कवे) क्रान्तदर्शिन् ! विद्वन् ! हे (धृष्णो) शत्रुओं को पराजित करने हारे ! (ककुहं) विनीत, श्रेष्ठ (त्वा) तुझको (इन्दवः) नाना ऐश्वर्य (मन्दन्तु) सदा प्रसन्न, तृप्त, भरा पूरा किये रखते हैं। (यत्) जिससे हम (पणिं त्वां) उत्तम व्यापारी तुझ से (आ ईमहे) धनादि की याचना करते हैं। तू व्यापारी होकर ऐश्वर्य से भरपूर होकर खूब प्रसन्नता से दान दे।

यस्ते रेवाँ अदाशुरिः प्रममर्ष मघत्तये।
तस्य नो वेद आ भर ॥ १५ ॥ ४४ ॥

भा०—(यः) जो (रेवान्) धनवान् होकर भी (अदाशुरिः) दान, यज्ञादि नहीं करता और (ते मघत्तये) तेरे दिये पूज्य धन को लेने के लिये

(प्र समर्प) बलात्कार करता है, (तस्य वेदः) उसका धन (नः आभर) हमें लादे । इति चतुश्चत्वारिंशो वर्गः ॥

इम उ त्वा वि चक्षते सखाय इन्द्र सोमिनः ।
पुष्टावन्तो यथा पशुम् ॥ १६ ॥

भा०—(पुष्ट-वन्तः) उत्तम हृष्ट पुष्ट पशु के स्वामी (यथा पशुम्) जिस प्रकार अपने पशु को विशेष स्नेह से देखते हैं उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (सोमिनः सखायः) ऐश्वर्यवान् मित्रगण (इमे) ये (त्वा उ विचक्षते) तुझे विशेष आदर और स्नेह से देखते हैं । और विविध प्रकार की स्तुति करते हैं ।

उत त्वाऽवधिरं वयं श्रुत्कर्णं सन्तमूतये । दूरादिह हवामहे ॥१७॥

भा०—(उत) और (वयं) हम लोग (अवधिरम्) श्रोत्रेन्द्रिय की शक्ति से सम्पन्न (श्रुत्-कर्णं) श्रवण करने में समर्थ, बहुश्रुत एवं वैसे साधनों सहायकों वाले (सन्तं) सज्जन तुझ को हम (दूराद्) दूर रहते भी (ऊतये) रक्षार्थ वहां से (इह) यहां (हवामहे) बुलाते हैं ।

यच्छुश्रूया इमं हवं दुर्मर्षं चक्रिया उत । भवेरापिर्नो अन्तमः १८

भा०—(यत्) जब (उत) भी (इमं) इस (हवं शुश्रूया) आह्वान, ललकार को श्रवण करले तो तू (दुर्मर्षं) दुःसह्य (चक्रियाः) पराक्रम कर और (नः) हमारा (अन्तमः आपिः भवेः) निकटतम बन्धु हो ।

यच्चिद्धि ते अपि व्यथिर्जगन्वांसो अमन्महि ।
गोदा इदिन्द्र बोधि नः ॥ १९ ॥

भा०—(यत् चित् हि) जब भी (व्यथिः) दुःखित होकर हम (ते जगन्वांसः) तेरे शरण जाकर (अमन्महि) तेरा मनन करें, हे

(इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तब भी तू (नः) हमें (गो-दाः) उत्तम वाणी देने हारा होकर हमें (बोधि) ज्ञान प्रदान कर ।

आ त्वां रम्भं न जिव्रयो ररम्भा शवसस्पते ।

उश्मसि त्वा सधस्थ आ ॥ २० ॥ ४५ ॥

भा०—हे (शवसः पते) बल और ज्ञान के पालक ! (जिव्रयः रम्भं न) बूढ़े जिस प्रकार दण्ड का आश्रय लेते हैं उसी प्रकार हम (त्वा आ ररम्भ) तेरा आश्रय लेवें । (सधस्थे) सब स्थानों में हम (त्वा आ उश्मसि) तेरी ही सदा कामना करते हैं । इति पञ्चचत्वारिंशो वर्गः ॥

स्तोत्रमिन्द्राय गायत पुरुनृम्णाय सत्वने ।

नकिर्यं वृण्वते युधि ॥ २१ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! (यं) जिसको (युधि) युद्ध में (नकिः वृण्वते) कोई रोक नहीं सक्ता, उस (सत्वने) बलशाली, (पुरुनृम्णाय) बहुत धनों के स्वामी, (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् पुरुष के लिये (स्तोत्रं गायत) स्तुति-वचन, प्रशंसा का गान करो ।

अभि त्वां वृषभा सुते सुतं सृजामि पीतये ।

तृम्पा व्यश्नुही मदम् ॥ २२ ॥

भा०—हे (वृषभ) बलवन् ! (सुतं त्वा) अभिषिक्त (सुते) ऐश्वर्ययुक्त इस पद पर (पीतये) रक्षा करने के लिये (अभि सृजामि) तुझे नियुक्त करता हूं । तू (मदम् वि अश्नुहि) सुख आनन्द विविध प्रकार से प्राप्त कर और (तृम्प) तृप्तिकारक आनन्द का भोग कर ।

मा त्वां मूरा अविष्यवो मोपहस्वान आ दभन् ।

माकीं ब्रह्मद्विषो वनः ॥ २३ ॥

भा०—(अविष्यवः) हिंसाशील (मूराः) घातक लोग (त्वा मा आदभन्) तुझे नाश न करें और (मा उपहस्वानः) उपहास करने

वाले जन भी तुझे हानि न पहुंचावें। (ब्रह्म-द्विषः) वेद के, ब्राह्मण वर्ग के और तेरे धन के द्वेषी जनों का तू (माकीं वनः) संग मत कर।

इह त्वा गोपरीणसा महे मन्दन्तु राधसे।
सरो गौरो यथा पिब ॥ २४ ॥

भा०—हे राजन्! (इह) इस राष्ट्र में या हे विद्वन्! इस उत्तम पद पर (गो-परीणसा) भूमि या वाणी के महान् बल से (महे राधसे) बड़े भारी ऐश्वर्य के लिये (त्वा मन्दन्तु) तुझे हर्षित करें। (यथा गौरः सरः) तालाब के जल को मृग जिस प्रकार यथेच्छ पीता है उसी प्रकार तू भी (गौरः) पृथ्वी पर या ज्ञान-वाणी में रमण करता हुआ (सरः) प्रशस्त ज्ञानरूप जल का (पिब) पान कर।

या वृत्रहा परावति सना नवा च चुच्युवे।
ता संसत्सु प्र वोचत ॥ २५ ॥ ४६ ॥

भा०—(वृत्रहा) दुष्टों का नाशक सेनापति विघ्नादि का नाश करके सफल विद्वान् (परावति) दूर देश में भी (या) जिन (सना) सनातन से चले आये धनों और ज्ञानों को (नवा च) और नये ऐश्वर्यों और नये तत्वों को (चुच्युवे) प्राप्त करे (ता) उनको (संसत्सु) सभाओं, परिषदों में (प्र वोचत) अच्छी प्रकार उत्तम आदर से कहो, जिससे उनका यश हो, श्रोताओं को ज्ञान प्राप्त हो। राजा और विद्वान् के श्रम, संकटों, और विघ्नों को पार करके प्राप्त नये पुरानें अन्वेषणों की सभा आदि में चर्चा करते रहना चाहिये। इससे उत्साह की वृद्धि होती है। इति षट्चत्वारिंशो वर्गः ॥

अपिबत्कद्रुवः सुतमिन्द्रः सहस्रबाह्वे। अत्रादेदिष्ट पौंस्यम् ॥२६॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, दुष्टों का हन्ता वा सत्य ज्ञान का द्रष्टा पुरुष (कद्रुवः) उपदेष्टा विद्वान् के (सुतम्) प्रकट किये ज्ञान को भूमि से उत्पन्न ऐश्वर्य, अन्नादि के समान (सहस्र-बाह्वे) सहस्रों वा बल-

शाली बाहुबल की वृद्धि के लिये (अपिबत्) पान करे। (अत्र) इस प्रकार उसका इस लोक में (पौंस्यं अदेदिष्ट) पौरुष चमकता है।

कद्रूः—इयं पृथिवी (श० ३ । ६ । २ । २ ॥)। कद्रते उपदिशति असौ कद्रूः, उपदेष्टा ब्रह्मविद्या वा। उणादिपाठे जम्वादिषु निपातितः।

सत्यं तत्तुर्वशे यदौ विदानो अह्नवाय्यम्। व्यानट् तुर्वणे शमि॥२७

भा०—विद्वान् वा राजा पुरुष (तुर्वशे) चारों अर्थों को चाहने वाले यत्नवान् जन में (सत्यं) यथार्थ ज्ञान और (अह्नवाय्यं) दिन भर में करने योग्य कार्य की मात्रा को ठीक २ प्रकार से (विदानः) जानता हुआ (तुर्वणे) शीघ्र कार्य करने में कुशल पुरुष पुरुष पर (शमि) कार्य का (वि-आनट्) विभाग करे।

तरणिं वो जनानां त्रदं वाजस्य गोमतः। समानमु प्र शंसिषम्॥२८

भा०—मैं (जनानां वः) आप लोगों के बीच (तरणिं) संकटों से पार उतारने वाले (त्रदं) शत्रु के नाशक और (गोमतः वाजस्य) भूमि से युक्त ऐश्वर्य के दाता की भी (समानम् उ प्रशंसिषम्) समान रूप से, आदरपूर्वक प्रशंसा करता हूं।

ऋभुक्षणं न वर्तव उक्थेषु तुग्र्यावृधम्।
इन्द्रं सोमे सचा सुते॥ २९॥

भा०—(सोमे) सोम, अर्थात् पुत्रवत् शासन करने योग्य पुत्र के (सुते) अभिषेक कर देने पर (ऋभुक्षणं) महान् (न) और (तुग्र्या-वृधम्) शत्रु की हिंसा करने वाली, बल बढ़ाने वाली, राष्ट्र का पालन करने वाली, राजा प्रजा को आश्रय देने वाली, शक्ति को बढ़ाने वाले, (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् प्रभु वा राजा को (वर्त्तवे) वरण करने के लिये (उक्थेषु) उत्तम २ वचनों में उसकी (सचा) एक साथ मिलकर प्रशंसा करें, उसका गुणानुवाद करें।

यः कृन्तदिद्वि योन्यं त्रिशोकाय गिरिं पृथुम् ।
गोभ्यो गातुं निरेतवे ॥ ३० ॥ ४७ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य (योन्यं) जल से पूर्ण (पृथुम् गिरिम्) भारी मेघ को (वि-कृन्तत्) विविध प्रकार से छिन्न भिन्न करता और (गोभ्यः निरेतवे गातुं) किरणों के निकलने के लिये मार्ग बना लेता है, उसी प्रकार (यः) जो पराक्रमी पुरुष (त्रि-शोकाय) तीनों प्रकार के तेजों को प्राप्त करने के लिये, (योन्यं) जल से पूर्ण (पृथुम् गिरिम्) भारी पर्वत को, (विकृन्तत्) विविध स्थानों से काटता और (गोभ्यः निरेतवे) वेगयुक्त जलधाराओं के निकलने के लिये मार्ग, भूमि तैयार करता है वही राजा श्रेष्ठ है उसी की प्रशंसा करें । इसी प्रकार परमेश्वर भी (त्रि-शोकाय) जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति तीनों स्थानों में प्रकट होने वाले जीव के लिये (योन्यं) योनि अर्थात् गृहवत् देहमय (पृथुम् गिरिम्) भारी पर्वतवत् पिण्ड को (विकृन्तत्) विविध प्रकार से छेदन करता और (गोभ्यः) इन्द्रियों के (निरेतवे) बाहर निकलने के लिये चक्षु नाक आदि के (गातुं) द्वार बनाता है वही आत्मा प्रभु गुणगान करने योग्य है । अध्यात्म का इस पक्ष का स्पष्टीकरण देखो ऐतरेय उपनिषद् में इन्द्रिय-भेद प्रकरण । इति सप्तचत्वारिंशो वर्गः ॥

यद्दधिषे मनस्यसि मन्दानः प्रेदियक्षसि ।
मा तत्करिन्द्र मृळय ॥ ३१ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् (यत्) जिस जगत् वा देह को आत्मवत् तू (दधिषे) धारण करता है, (यत् मनस्यसि) जिसको तू मनन द्वारा संकल्प करता है और (मन्दानः) हर्षित होकर (यत् प्र इयक्षसि इत्) प्राप्त या व्याप्त होता है, (मा तत् कः) क्या तू उसको नहीं बनाता, अथवा हे प्रभो स्वामिन् ! तू (तत् मा कः) उसे तू नाश मत कर । (मृडय) उस जगत् को तू सुखी कर ।

दभ्रं चिद्धि त्वावतः कृतं शृण्वे अधि क्षमि।
जिगात्विन्द्र ते मनः ॥ ३२ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वावतः) तेरे जैसे स्वामी का (दभ्रं चित्) थोड़ा भी (कृतं) किया कार्य (अधि क्षमि) भूमि पर (शृण्वे) प्रसिद्ध सुना जाता है (ते मनः) तेरा मन (जिगातु) आगे बढ़े।

तवेदु ताः सुकीर्तयोऽसन्नुत प्रशस्तयः।
यदिन्द्र मृळयासि नः ॥ ३३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यत्) जो तू (नः मृडयासि) हमें सुखी करता है (ताः सुकीर्तयः) वे नाना उत्तम कीर्त्तियां और (उत प्रशस्तयः) उत्तम प्रशंसाएं भी (तव इत्) तेरी ही हैं।

मा न एकस्मिन्नागसि मा द्वयोरुत त्रिषु।
वधीर्मा शूर भूरिषु ॥ ३४ ॥

भा०—हे (शूर) शूरवीर ! (एकस्मिन् आगसि) एक अपराध पर (नः मा वधीः) हम प्रजाओं को पीड़ित मत कर, (मा द्वयोः) दो अपराधों पर भी हम सबको पीड़ित मत कर, (उत त्रिषु) और तीन अपराधों पर हम सब को पीड़ित मात कर (भूरिषु) बहुत अधिक अपराध होने पर भी हम सबको दण्डित मत कर, प्रत्युत जिसका अपराध हो उसी को न्यायानुसार दण्डित कर।

बिभया हि त्वावत उग्रादभिप्रभङ्गिणः।
दस्मादहमृतीषहः ॥ ३५ ॥ ४८ ॥

भा०—(ऋति-सहः) शत्रुकृत हिंसा वा हिंसक सेनाओं को पराजित करने में समर्थ, (अभि-प्र-भङ्गिणः) आगे आये शत्रु को अच्छी प्रकार विनाश कर देने वाले, (दस्मात्) शत्रुनाशक, (उग्रात् त्वावतः) तुझ जैसे बलवान् प्रचण्ड स्वामी से, (बिभया हि) मैं सदा भय करूं।

सब पीड़ाओं को मिटा देने से "ऋतीसह" और विश्व भर के सब संकटों को प्रलय करने में समर्थ होने से 'अभि-प्रभङ्गी' है। इत्यष्टाचत्वारिंशो वर्गः॥

मा सख्युः शूनमा विदे मा पुत्रस्य प्रभूवसो।
आवृत्वद्भूतु ते मनः॥ ३६॥

भा०—हे (प्रभु-वसो) प्रभूत धन के स्वामिन्! प्रचुर प्रजा के स्वामिन्! मैं (सख्युः शूनम् मा आ विदे) मित्र के सुखकारक धन को न अपहरण करूं। (पुत्रस्य मा) मैं पुत्र के धन को भी अपहरण न करूं। (ते मनः) तेरा मन (आवृत्वत् भूतु) हमारी ओर आने वाला, प्रेम अनुराग से युक्त हो।

को नु मर्या अमिथितः सखा सखायमब्रवीत्।
जहा को अस्मदीषते॥ ३७॥

भा०—हे (मर्याः) मनुष्यो! (कः सखा) कौन मित्र स्नेही (अमिथितः) विना अनादर युक्त वचन कहा जाकर ही (सखायम् अब्रवीत्) अपने मित्र को कह सकता है। (कः जहा) कौन किसको मारता है (क अस्मत् ईषते) कौन हम से विना ताड़ित हुए भयभीत होकर भागता है? जब कोई किसी का नहीं मारता तो कोई किसी से भय खा कर भी नहीं भागता और न कोई किसी पर उपालम्भ देता है।

एवारे वृषभा सुतेऽसिन्वन्भूर्यावयः। श्वघ्नीव निवता चरन् ३८

भा०—(श्वघ्नी इव) अपना द्रव्य नाश करने वाला, वा अपने आश्रित जन को मारने वाला, जिस प्रकार (निवता चरन्) लज्जा से नीचा मुख करके चलता है, हे (वृषभ) पुरुष (एवारे) आदरों से प्राप्त होने योग्य तेरे (सुते) ऐश्वर्य प्राप्त होजाने पर, (आवयः) नाना रक्षक जन (भूरि असिन्वन्) बहुत बांध लेते हैं और (निवता चरन्) नम्र शिर होकर आचरण करते हैं।

आ तं एता वंचोयुजा हरीं गृभ्णे सुमद्रंथा ।
यदीं ब्रह्मभ्य इद्ददंः ॥ ३९ ॥

भा०—(यत्) जो तू (ब्रह्मभ्यः) विद्वान् वेदज्ञ पुरुषों के हितार्थ (इं ददः) यह सब देता है इसलिये (ते) तेरे (एता) इन (वचोयुजा) वाणीमात्र से लगने वाले (सुमद्-रथा) उत्तम बल युक्त रथों वाले, (हरी) अश्वों के समान उत्तम देहवान् स्त्री पुरुषों को (आगृभ्णे) तेरे अधीन करता हूं ।

भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः ।
वसुं स्पार्हं तदा भंर ॥ ४० ॥

भा०—(विश्वाः द्विषः अप भिन्धि) सब शत्रुओं को छिन्न भिन्न करके दूर कर । (परि बाधः) पीड़ित कर और (मृधः जहि) हिंसकों का नाश कर । (तत् स्पार्हं वसु आ भर) वह नाना उत्तम चाहने योग्य ऐश्वर्य हमें प्राप्त करा ।

यद्वीळाविन्द्र यत्स्थिरे यत्पर्शाने पराभृतम् ।
वसुं स्पार्हं तदा भंर ॥ ४१ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यत् वसु) जो ऐश्वर्य वा ज्ञान (वीडौ) बलवान् पुरुष में, (यत् स्थिरे) जो स्थिर शासक में, (यत् पर्शाने) जो विचारशील पुरुष में (स्पार्हं) अभिलाषा करने योग्य (पराभृतम्) विद्यमान है, तू हमें (तत् आ भर) वह प्राप्त करा ।

यस्यं ते विश्वमानुषो भूरेर्दत्तस्य वेदति ।
वसुं स्पार्हं तदा भंर ॥ ४२ ॥ ४१ ॥ ३ ॥

भा—हे स्वामिन् ! (ते दत्तस्य) तेरे दिये (यस्य भूरेः) जिस बहुत से ऐश्वर्य को (विश्व-मानुषः) समस्त मनुष्य जानते और प्राप्त करते हैं तू वह (स्पार्हं वसु आ भर) चाहने योग्य उत्तम ऐश्वर्य हमें प्राप्त करा । इत्येकोनचत्वारिंशो वर्गः ॥

इति तृतीयोऽध्यायः ॥

चतुर्थोऽध्यायः

[४६]

वशोऽश्व्य ऋषिः ॥ देवताः—१—२०, २६—३१, ३३ इन्द्रः । २१—२४ पृथुश्रवसः कानीनस्य दानस्तुतिः । २५—२८, ३२ वायुः ॥ छन्दः—१ पादनिचृद् गायत्री । २, १०, १५, २६ विराड् गायत्री । ३, २३ गायत्री । ४ प्रतिष्ठा गायत्री । ६, १३, ३३ निचृद् गायत्री । ३० आर्ची स्वराट् गायत्री । ३१ स्वराड् गायत्री । ५ निचृदुष्णिक् । १६ भुरिगुष्णिक् । ७, २०, २७, २८ निचृद् बृहती । ६, २६ स्वराड् बृहती । ११, १४ विराड् बृहती । २१, २५, ३२ बृहती । ८ विराडनुष्टुप् । १८ अनुष्टुप् । १६ भुरिगनुष्टुप् । १२, २२, २४ निचृत् पंक्तिः । १७ जगती ॥ त्रयोदशर्चं सूक्तम् ॥

त्वावतः पुरूवसो वयमिन्द्र प्रणेतः । स्मसि स्थातर्हरीणाम् ॥१॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (पुरूवसो) बहुत से धनों और प्रजाओं के स्वामिन् ! हे (हरीणां प्रणेतः) मनुष्यों के उत्तम नायक ! उत्तम मार्ग से ले जाने वाले ! हे (स्थातः) अधिष्ठातः ! (वयं) हम (त्वावतः स्मसि) तेरे जैसे स्वामी की प्रजा होकर रहें ।

त्वां हि सत्यमद्रिवो विद्म दातारमिषाम् ।
विद्म दातारं रयीणाम् ॥ २ ॥

भा०—हे (अद्रिवः) शक्तिशालिन् ! मेघवत् उदार पुरुषों के स्वामिन् ! हम (त्वां हि) तुझ को ही (सत्यम्) सच्चा (इषां दातारम्) अन्नों और सकल इच्छाओं, कामनाओं का देने वाला, (विद्म) जानें और (त्वां रयीणां दातारं विद्म) तुझको ही समस्त ऐश्वर्यों का देने वाला जानें।

आ यस्य ते महिमानं शतमूते शतक्रतो ।
गीर्भिर्गृणन्ति कारवः ॥ ३ ॥

भा०—(यस्य ते) जिस तेरे (महिमानं) महान् सामर्थ्य को

(कारवः) विद्वान् जन (गीर्भिः) वाणियों से (गृणन्ति) बतलाते हैं हे (शतम्-ऊते) सैकड़ों रक्षाओं से सम्पन्न ! हे (शतक्रतो) सैकड़ों प्रजाओं और कर्म समार्थ्यों से युक्त उस तुझको ही हम सच्चा अन्नदाता, अभीष्ट-प्रद और ऐश्वर्यदाता जानें ।

सुनीथो घा स मर्त्यो यं मरुतो यमर्यमा । मित्रः पान्त्यद्रुहः ॥४॥

भा०—(यं) जिस मनुष्य को (मरुतः) विद्वान् लोग (यम् अर्यमा) जिसको न्यायकारी पुरुष और (मित्रः) स्नेहवान् जन (अद्रुहः) द्रोह रहित होकर (पान्ति) रक्षा करते हैं (सः मर्त्यः) वह मनुष्य (घ) अवश्य (सुनीथः) शुभ मार्ग में जाता है, उत्तम वाणी प्राप्त करता और उत्तम चक्षुष्मान् है । वही उत्तम यज्ञ करता है ।

दधानो गोमदश्ववत्सुवीर्यमादित्यजूत एधते ।
सदा राया पुरुस्पृहा ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—और वह पुरुष (गोमत्) गौ आदि पशुओं से समृद्ध (अश्व-वत्) अश्वादि साधनों से युक्त, (सु-वीर्यम्) उत्तम बल को (दधानः) धारण करता हुआ (आदित्य-जूतः) सूर्यवत् तेजस्वी विद्वान्, अखण्ड शक्ति के धारक और उपासक पुरुषों से प्रेरित (पुरु-स्पृहा राया) बहुतों से चाहने योग्य धनैश्वर्य से (एधते) वृद्धि को प्राप्त होता है । इति प्रथमो वर्गः ॥

तमिन्द्रं दानमीमहे शवसानमभीर्वम् । ईशानं राय ईमहे ॥ ६ ॥

भा०—हम (तम्) उस (रायः ईशानम्) धन के स्वामी, (शव-सानम्) बलशाली (अभीर्वम्) अभीरु, निर्भीक, किसी से भय न करने वाले (इन्द्रं) शत्रुनाशी, ऐश्वर्य वाले, सत्यदर्शी स्वामी पुरुष को प्राप्त कर उससे (दानम् ईमहे) दातव्य धन और ज्ञान की याचना करें ।

तस्मिन्हि सन्त्यूतयो विश्वा अभीरवः सचा ।
तमा वहन्तु सप्तयः पुरूवसुं मदाय हरयः सुतम् ॥ ७ ॥

भा०—(तस्मिन् हि) उसके अधीन, (विश्वाः ऊतयः) समस्त ऐसी रक्षक शक्तियां (सचा) सदा समवाय से रहतीं और (अभीरवः) भयरहित, अन्य से भय न करने वाली (सन्ति) हैं। (तम्) उस (पुरु-वसुम्) बहुत सी वसी प्रजा के अनेक धनों के स्वामी (सुतम्) अभि-षिक्त पुरुष को (सप्तयः हरयः) उसके शरणागत मनुष्य (मदाय) आनन्द प्राप्त करने के लिये (आ वहन्तु) सारथि को अश्ववत् अपने ऊपर धारण करें, उसे प्रमुख बनावें। अथवा—वे उसे बहुत ऐश्वर्य प्राप्त करावें।

यस्ते मदो वरेण्यो य इन्द्र वृत्रहन्तमः।
य आददिः स्वर्नृभिर्यः पृतनासु दुष्टरः ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यः) जो (ते) तेरा (मदः) हर्ष वा प्रसन्न होने का साधन शासन है (यः वृत्रहन्तमः) जो दुष्टों का अत्यन्त नाशकारी है, (यः) जो (नृभिः) उत्तम नायक पुरुषों द्वारा (स्वः) सुख और तेज को (आ ददिः) प्राप्त करने वाला, और (यः) जो (पृतनासु) संग्रामों में भी (दुस्तरः) शत्रुओं से पराजित न होने वाला है वह (वरेण्यः) सर्वश्रेष्ठ है।

यो दुष्टरो विश्ववार श्रवाय्यो वाजेष्वस्ति तरुता।
स नः शविष्ठ सवना वसो गहि गमेम गोमति व्रजे ॥ ९ ॥

भा०—हे (विश्व-वार) सबसे वरण करने योग्य ! हे सब दुःखों को वारण करने वाले ! (यः) जो (दुस्तरः) कभी पराजित न होने वाला, (वाजेषु) संग्रामों वा ज्ञानों में (श्रवाय्यः) श्रवण करने योग्य, सुप्र-सिद्ध, (तरुता अस्ति) सब शत्रुओं का हिंसक और समस्त प्रजा को पार उता-रने वाला है, (सः) वह तू हे (शविष्ठ) बलशालिन् ! हे (वसो) सब में बसे, सबको बसाने वाले ! (नः गहि) हमारे (सवना) ऐश्वर्यों को प्राप्त हो। और हम (गोमति व्रजे) उत्तम बैलों वाले रथ के समान इस

इन्द्रियों से सम्पन्न देह में बैठकर (सवना) समस्त ऐश्वर्यों, जन्मों और नाना लोकों को (गमेम) प्राप्त करें, संसार मार्ग पर गमन करें।

गव्यो षु णो यथा पुराश्वयोत रथया ।
वरिवस्य महामह ॥ १० ॥ २ ॥

भा०—हे (महामह) महा धनाधिपते प्रभो (यथा पुरा) पूर्व कल्पवत् तू (नः) हमें (गव्यो) गौओं (अश्वया रथया) अश्वों और रथों से (वरिवस्य) युक्त कर । इति द्वितीयो वर्गः ॥

नहि ते शूर राधसोऽन्तं विन्दामि सत्रा ।
दशस्या नो मघवन्नू चिदद्रिवो धियो वाजेभिराविथ ॥ ११ ॥

भा०—हे (शूर) शूरवीर ! दुष्टों के नाश करने हारे प्रभो ! (सत्रा) सचमुच मैं (ते राधसः अन्तं नहि विन्दामि) तेरे धनैश्वर्य के अन्त को नहीं पाता हूं । हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! हे (अद्रिवः) बल-शालिन् ! (नः) हमें (दशस्य) प्रदान कर (नू चित्) और शीघ्र ही, (वाजेभिः) बलों, ज्ञानों और ऐश्वर्यों से (नः आविथ) हमारी रक्षा कर ।

य ऋष्वः श्रावयत्सखा विश्वेत्स वेद जनिमा पुरुष्टुतः ।
तं विश्वे मानुषा युगेन्द्रं हवन्ते तविषं यतस्रुचः ॥ १२ ॥

भा०—(यः) जो (ऋष्वः) महान् (सखा) मित्रवत् स्नेही होकर (विश्वा इत्) समस्त ज्ञानों को (श्रवयत्) गुरुवत् उपदेश करता है, (सः) वह (इत्) वही (पुरुस्तुतः) बहुतों से स्तुति किया हुआ (विश्वा जनिमा) सब उत्पन्न पदार्थों को (वेद) जानता है, (तं इन्द्रं) उस ऐश्वर्यवान् को (विश्वे) समस्त मनुष्य (यत-स्रुचः) स्रुच्, जुहू आदि को हाथ में लिये ऋत्विजों के समान (यत-स्रुचः) इन्द्रियों को वश कर (मानुषा युगा) समस्त मनुष्योपयोगी युगों-वर्षों तक (तं) उस (इन्द्रं) प्रभु परमेश्वर की (हवन्ते) उपासना करते हैं ।

स नो वाजेष्वविता पुरूवसुः पुरःस्थाता ।
मघवा वृत्रहा भुवत् ॥ १३ ॥

भा०—(सः) वह (वाजेषु) संग्रामों, बलों में (पुरु-वसुः) बहुत धनों और प्रजाओं का स्वामी (पुरः स्थाता) अग्र पद पर स्थिर रहने वाला, (मघवा) धनैश्वर्य का स्वामी (वृत्रहा) दुष्टों और विघ्नों का नाशकारी (भुवत्) होता है ।

अभि वो वीरमन्धसो मदेषु गाय गिरा महा विचेतसम् ।
इन्द्रं नाम श्रुत्यं शाकिनं वचो यथा ॥ १४ ॥

भा०—हे मनुष्यो! (वः मदेषु) आप लोग अपने हर्ष और (अन्धसः) अन्नादि पदार्थों के द्वारा प्राप्त आनन्द के अवसरों में (वीरम्) वीर, (विचेतसम्) विविध चित्तों और ज्ञानों के स्वामी, (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् (श्रुत्यं) श्रुति-प्रसिद्ध, वेदगम्य, (शाकिनं) शक्तिशाली प्रभु की (यथा वचः) वाणी, के अनुसार ही, (महागिरा गाय) श्रेष्ठ वाणी से स्तुति गान करो ।

दुदी रेक्णस्तन्वे दुदिर्वसु दुदिर्वाजेषु पुरुहूत वाजिनम् ।
नूनमथ ॥ १५ ॥ ३ ॥

भा०—हे (पुरु-हूत) बहुतों से पुकारने योग्य बहु-स्तुत ! तू (तन्वे) हमारे शरीर के लिये (रेक्णः ददिः) धन देने वाला हो । (वाजेषु वसु ददिः) संग्रामों और ऐश्वर्यों के लिये नाना ऐश्वर्य देने वाला हो, (नूनम् अथ) और शीघ्र ही (वाजिनम् ददिः) अन्नादियुक्त ऐश्वर्य प्रदान कर । इति तृतीयो वर्गः ॥

विश्वेषामिरज्यन्तं वसूनां सासह्वांसं चिदस्य वर्पसः ।
कृपयतो नूनमत्यथ ॥ १६ ॥

भा०—(अथ) और (विश्वेषां वसूनां) समस्त प्रजाजनों के (इरज्यन्तम्) स्वामी और (अस्य) इस (कृपयतः) सामर्थ्यवान् (वर्पसः) रूपवान् , देहधारी वा तेज को (सासह्वांसं) अपने अधीन रखने वाले तेरी स्तुति करते हैं ।

म॒हः सु वो॒ अर॑मिषे॒ स्तवा॑महे मी॒ळ्हुषे॑ अरङ्ग॒माय॒ जग्म॑ये।
य॒ज्ञेभि॑र्गी॒र्भिर्वि॒श्वम॑नुषां म॒रुता॑मियक्षसि॒ गाये॑ त्वा॒ नम॑सा गि॒रा॥१७

भा०—हे विद्वान् लोगो! हम लोग (वः) आप लोगों के प्रति (अरंगमाय) प्राप्त होने योग्य (जग्मये) ज्ञानवान्, सर्वत्र गत, (मीढुषे) सुखों के वर्षक उस प्रभु की (यज्ञेभिः गीर्भिः) यज्ञों और वेद-वाणियों से (स्तवामहे) स्तुति करें, उसका उपदेश करें। वह हमें और हम उस (महः) पूज्य को ही (अरम्) बहुत अधिक (सु इषे) उत्तम रीति से चाहें। हे प्रभो! तू (विश्व-मनुषां मरुतां) सब मननशील मनुष्यों को (इयक्षसि) सब कुछ देता है। (त्वा) तेरी ही मैं (नमसा गिरा) विनययुक्त वाणी से (गाये) स्तुति करता हूं।

ये पा॒तय॑न्ते॒ अज्म॑भिर्गिरी॒णां स्नुभि॑रेषाम्।
य॒ज्ञं म॑हि॒ष्वणी॑नां सु॒म्नं तु॑वि॒ष्वणी॑नां॒ प्राध्व॒रे॥ १८॥

भा०—(ये) जो (स्नुभिः) बहने वाले (अज्मभिः) जलों से (पातयन्ते) आकाश-मार्ग में गमन करते हैं (एषाम्) उन (महि-स्वनीनां, तुवि-स्वनीनाम्) बड़े भारी घोर शब्दकारी, बहुत से शब्द करने वाले मेघों के (यज्ञं सुम्नं) दिये जल और सुख को (अध्वरे) अविनाशित यज्ञ के आश्रय पर प्राप्त करते हैं, इसी प्रकार (ये) जो शूरवीर वा महास्त्रगण अपने (स्नुभिः अज्मभिः) बहते या वर्षा धारावत् निकलते बलयुक्त अस्त्रों से (पातयन्ते) वेग से जाते, वे शत्रु बलों को मार गिराते हैं, (एषां गिरीणां) इन मेघवत् या पर्वतवत् महान्, (महि-स्वनीनाम्) घोर गर्जनाकारी और (तुवि-स्वनीनां) बहुत से ध्वनि करने वाले वीरों और महास्त्रों के (यज्ञं) संग लाभ और सुख को हम (अध्वरे) यज्ञ और युद्ध में (प्र) खूब प्राप्त करें।

प्र॒भ॒ङ्गं दु॑र्म॒ती॒नामिन्द्र॑ शवि॒ष्ठा भ॑र। र॒यिम॒स्मभ्यं॒
युज्यं॑ चोदयन्मते॒ ज्येष्ठं॑ चोदयन्मते॥ १९॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (शविष्ठ) बलशालिन् ! तू (अस्मभ्यम्) हमें (प्र-भङ्गं) नाना प्रकार के कष्टों को नाश करने वाला, (रयिम् आ भर) ऐश्वर्य प्राप्त करा । हे (चोदयन्-मते) सन्मार्ग में प्रवृत्त कराने वाली बुद्धि और वाणी वाले ! तू (प्रभङ्गं युज्यं आभर) शत्रुओं के बल तोड़ने वाले सहयोगी को प्राप्त करा वा, (युज्यं रयिम् आ भर) सहयोगी जनों के हितकारी ऐश्वर्य को प्राप्त करा। हे (चोदयन्मते) प्रेरक वाणी के स्वामिन् ! तू (ज्येष्ठं रयिम् आ भर) सर्वश्रेष्ठ ऐश्वर्य और (प्रभङ्गं ज्येष्ठं) सर्व-कष्टनाशक सर्वश्रेष्ठ पुरुष को हमें प्राप्त करा।

सनितः सुसनितरुग्र चित्र चेतिष्ठ सूनृत ।
प्रासहा सम्राट् सहुरिं सहन्तं भुज्युं वाजेषु पूर्व्यम् ॥२०॥४॥

भा०—हे (सनितः) दातः ! हे (सु-सनितः) उत्तम विभक्त करने हारे ! हे (उग्र) बलवन् ! हे (चित्र) अद्भुत ! हे (चेतिष्ठ) सर्वश्रेष्ठ ज्ञानिन् ! हे (सूनृत) उत्तम धनवान्, ज्ञानवान् ! हे (सम्राट्) सर्वोपरि विराजमान ! (सहुरिं) सबको पराजित करने वाले (सहन्तं) सहनशील (वाजेषु) संग्रामों में (पूर्व्यं) सबसे पूर्व विद्यमान, सर्वश्रेष्ठ, (भुज्युं) भोक्ता वा पालक तुम को (प्र-सहा) उत्कृष्ट बल से युक्त जान तेरी शरण लेते हैं । इति चतुर्थो वर्गः ॥

आ स एतु य ईवदाँ अदेवः पूर्तमाददे ।
यथा चिद्वशो अश्व्यः पृथुश्रवसि कानीतेऽस्या व्युष्याददे ॥२१॥

भा०—(यथा चित्) जिस प्रकार (अश्व्यः वशः) अश्वों, सैन्यों वा बलवान् पुरुषों की कामना करने वाला राष्ट्र (पृथु-श्रवसि) विस्तृत ज्ञानवान्, यशस्वी (कानीते) तेजस्वी पुरुष के अधीन रहकर (अस्याः वि-उषि) इस प्रजा की विशेष कामनानुसार ही (आददे) राज्य को वश करता है, उसी प्रकार (यः) जो (अदेवः) असाधारण पुरुष भी (ईवद्)

प्राप्त हुए (पूर्तम्) पूर्ण राज्य को (आददे) ग्रहण करने में समर्थ होता है। (सः) वह (आ एतु) हमें प्राप्त हो।

षष्टिं सहस्राश्व्यस्यायुतासनमुष्ट्राणां विंशतिं शता।
दश श्यावीनां शता दश त्र्यरुषीणां दश गवां सहस्रा ॥२२॥

भा०—(षष्टिं सहस्रा) साठ हज़ार और (अयुता) दश सहस्र (अश्वस्य) उत्तम अश्वों के और (उष्ट्राणां शता विंशतिं) ऊंठों के २० सौ, (श्यावीनां गवां दशशता) श्याव, काले लाल रंग वाली गौओं या भूमियों के सौ, और (त्रि-अरुषीणां) तीनों चमकने वाली शुभ्र रंग की (गवां दश दश सहस्रा) दस दस हज़ार गौएं (असनम्) मैं दान करूं और प्राप्त करूं।

दश श्यावा ऋधद्रयो वीतवारास आशवः।
मथ्रा नेमिं नि वावृतुः ॥ २३ ॥

भा०—(दश श्यावाः) दस श्याव अर्थात् लाल-काले वर्ण के (ऋधद्-रयः) अति वेग वाले (वीतवारासः) चमकते बालों वाले, (आशवः) शीघ्रगामी, (मथ्राः) शत्रुओं का मथन करने वाले, वीर (नेमिं) रथ चक्रवत् राष्ट्र को (नि वावृतुः) नियम से संचालित करें।

दानासः पृथुश्रवसः कानीतस्य सुराधसः।
रथं हिरण्ययं ददन्मंहिष्ठः सूरिरभूद्वर्षिष्ठमकृत श्रवः ॥२४॥

भा०—(पृथु-श्रवसः) अधिक ज्ञान वा यश वाले, (सु-राधसः) उत्तम ऐश्वर्य से सम्पन्न, उस स्वामी के (दानासः) उत्तम दान हैं। वह (मंहिष्ठः) अति पूज्य दानी, (हिरण्ययं रथं ददत्) हित, रमणीय, कान्तिमय रथ प्रदान करता है, और वह (सूरिः) विद्वान् सर्वोत्पादक (अभूत्) हो, (वर्षिष्ठम्) प्रभूत, प्रचुर (श्रवः) ज्ञान, अन्नादि (अकृत) उत्पन्न करता है।

आ नो वायो महे तने याहि मखाय पाजसे।
वयं हि ते चकृमा भूरि दावने सद्यश्चिन्महि दावने ॥ २५ ॥ ५ ॥

भा०—हे (वायो) वायुवत् बलशालिन्! तू (महे तने) बड़े भारी ऐश्वर्य और (मखाय पाजसे) उत्तम पूज्य, बल प्राप्त करने के लिये (नः) हमें (आयाहि) प्राप्त हो। (दावने ते) दानशील तेरे लिये (वयं) हम (हि) अवश्य (भूरि चकृम) बहुत कुछ करें और (दावने) ज्ञान के दाता गुरु के लिये हम (सद्यः चित् महि चकृम) काल के समान सदा ही आदर सत्कार किया करें। इति पञ्चमो वर्गः॥

यो अश्वेभिर्वहते वस्त उस्रास्त्रिः सप्त सप्ततीनाम्।
एभिः सोमेभिः सोमसुद्भिः सोमपा दानाय शुक्रपूतपाः॥२६॥

भा०—(यः) जो (अश्वेभिः वहते) अश्वारोही गणों के साथ मिलकर राष्ट्र के शासनादि कार्य को अपने कन्धों लेता है, (त्रिः सप्त सप्ततीनाम्) ७० के २१ गुणा अर्थात् १४७० (उस्राः) भूमियों, गौओं या किरणोंवत् प्रजाओं को (वस्ते) अपने अधीन करता है, हे (सोमपाः) ऐश्वर्य के पालक! हे (शुक्रपूतपाः) शुद्ध पवित्र रीति से प्राप्त ऐश्वर्य के पालक सूर्यवत् तेजस्विन्! वायुवत् शुद्ध जल के प्रदातः! तू (एभिः) इन (सोमसुद्भिः) सोम अर्थात् अभिषेक योग्य विद्वान् पुरुषों का अभिषेक करने वाले और (सोमेभिः) उत्तम विद्वान् शासकों सहित स्वयं भी (दानाय) दान देने के लिये प्रवृत्त रहता है, वह बड़ा आनन्द लाभ करता है। अत्र द्वात्रिंशत्तमन्त्रगत मदन्ति क्रियापदेन सर्वत्र सम्बन्धः।

यो म इमं चिदु त्मनामन्दच्चित्रं दावने।
अरट्वे अक्षे नहुषे सुकृत्वनि सुकृत्तराय सुक्रतुः॥ २७॥

भा०—(यः) जो राजा (मे) मुझ प्रजा के हित के लिये, (त्मना) स्वयं ही, (इमं) इस (चित्रं) अद्भुत, नाना धन राशि के (दावने) देने के लिये (अमन्दत्) प्रसन्न होता है वह (अरट्वे = अलट्वे) बालकपन से

मुक्त, युवा, (अक्षे) व्यवहारकुशल, (सुकृत्वनि) उत्तम कार्यकुशल (नहुषे) सुप्रबद्ध मनुष्य समाज के बीच स्वयं भी (सुकृत्तराय) उत्तम कार्य करने वाले के हितार्थ (सुक्रतुः) उत्तम कर्म करने वाला होता है वह सदा (अमन्दत्) सुख पाता है।

उचथ्ये३वपुषि यः स्वराळुत वायो घृतस्नाः ।
अश्वेषितं रजेषितं शुनेषितं प्राज्म तदिदं नु तत् ॥ २८ ॥

भा०—(यः) जो पुरुष (उचथ्ये) वचन योग्य, स्तुति पात्र (वपुषि) भव्य, बलवान् दर्शनीय शरीर में (घृत-स्नाः) जल से वा तेज से सदा स्नान करने वाला, नित्य शुद्ध, तेजस्वी (उत स्वराड्) और स्वयं अपने तेज से वा धन से चमकने वाला, शुद्ध पवित्र कान्तिमान् हो (तत्) वह (अश्वेषितं) अश्वों से प्राप्त होने योग्य, और (रजेषितं) गर्दभों या ऊंटों से वा लोक में बसे प्रजाजनों से प्राप्त होने योग्य और (शुनेषितम्) सुख से प्राप्त होने योग्य (इदं नु तत्) यह सब नाना प्रकार के उत्तम (अज्म) अन्न, बल और ऐश्वर्य (प्र) अच्छी प्रकार प्राप्त करता है।

अधं प्रियमिषिराय षष्टिं सहस्रासनम् ।
अश्वानामिन्न वृष्णाम् ॥ २९ ॥

भा०—मैं (इषिराय) इच्छा और प्रेरणा करने वाले विद्वान् वीर पुरुष के हितार्थ (वृष्णाम् अश्वानाम्) बलवान् घोड़ों के (इत् न) भी समान बलवान् आशुगामी, (षष्टिं सहस्रा) ६० हजार (असनम्) प्रदान करूं।

गावो न यूथमुप यन्ति वध्रय उप मा यन्ति वध्रयः ॥ ३० ॥

भा०—(गावः न यूथम्) गौएं जिस प्रकार अपनी रक्षा के लिये यूथ को प्राप्त होती हैं, अपने यूथ में आकर अपने को सुरक्षित समझती हैं उसी प्रकार (वध्रयः) निर्वीर्य, अल्पबल, भीरु जन भी (यूथम् उपयन्ति) अपने यूथ, समूह को प्राप्त होते, समूह बनाकर रहते और

अपने गोल में रहकर अपने को सुरक्षित समझते हैं वा (वध्रयः) निर्वीर्य, अल्पबल जन (मा उप यन्ति) मुझ बलवान् जन को अपना शरण जान प्राप्त होते हैं और रक्षा प्राप्त करते हैं। अथवा—(वध्रयः) शत्रुओं का वध करने वाली वीर सेनाएं संघ को प्राप्त हों और मुझ सेनापति को प्राप्त हों।

अध् यच्चारथे गुणे शतमुष्ट्राँ अचिक्रदत्।
अध् श्वित्नेषु विंशतिं शता ॥ ३१ ॥

भा०—(यत्) जो (चारथे गणे) विचरण करने वाले सैन्य गण के ऊपर (अध) और (उष्ट्रान् शतम्) शत्रु को संन्ताप देने वाले सौ जनों को (अचिक्रदत्) नियुक्त करता है (अध) और (श्वित्नेषु) श्वेत वर्ण के, शुद्ध चरित्र वाले वा तेजस्वी पुरुषों के अधीन (शता विंशतिं) सौ २ के २० दस्ते नियुक्त कर देता है वह शासक राज्य में सुख भोग करता है।

शृतं दासे बल्बूथे विप्रस्तरुक्ष आ देदे।
ते ते वायविमे जना मदुन्तीन्द्रगोपा मदन्ति देवगोपाः ॥३२॥

भा०—(तरुक्षः) वृक्ष के नीचे की भूमि के समान सब को आश्रय देने वाला, दुःखों से तारने, पार लगाने वाला (विप्रः) बुद्धिमान् राजा (बल्बूथे) बलशाली, (दासे) भृत्य जन के आधार पर ही (शतम् आददे) सैकड़ों को अपने कन्धे लेता है। (वायो) हे बलवन्! राजन्! (ते) तेरे वे नाना प्रकार के (इमे जनाः) वे जन (इन्द्र-गोपाः) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता नायक की रक्षा में रहते हुए (मन्दन्ति) प्रसन्न रहते हैं और (देव-गोपाः मदन्ति) विद्वानों की रक्षा में रहकर वे सदा सुखी रहते हैं।

अध् स्या योषणा मुही प्रतीची वशमश्व्यम्।
अधिरुक्मा वि नीयते ॥ ३३ ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार (योषणा) स्त्री (मही) बड़ी पूज्य (प्रतीची)

प्रिय के अभिमुखी होकर (अधि-रुक्मा) देह पर नाना सुवर्णादि के कान्ति-युक्त आभरणों को धारण करके (अश्व्यम् वशम्) अश्वारोही कान्तियुक्त वा कामना योग्य वर के प्रति (विनीयते) विशेष रूप से लेजाई जाती है (अध स्या) ठीक उसी प्रकार वह (मही) बड़ी भारी पृथिवी-निवासिनी प्रजा (प्रतीची) सन्मुख प्राप्त (अधि-रुक्मा) अधिकाधिक सुवर्ण रत्नादि से मण्डित होकर (अश्व्यम्) अश्व सैन्यादि के नायक वा राष्ट्रपति, (वशं) सर्व वश करने में कुशल पुरुष के अधीन (वि नीयते) विशेष रूप से प्राप्त करा दी जाती है, उसको शासन और उपभोग के लिये सौंप दी जाती है । इति षष्ठो वर्गः ॥

[४७]

त्रित आप्त्य ऋषिः ॥ १—१३ आदित्याः। १४—१८ आदित्या उषाश्च देवताः ॥ छन्दः—१ जगती । ४, ६—८, १२ निचृज्जगती । २, ३, ५, ९, १३, १६, १८ भुरिक् त्रिष्टुप् । १०, ११, १७ स्वराट् त्रिष्टुप् । १४ त्रिष्टुप् ॥ अष्टादशर्चं सूक्तम् ।

महि॑ वो म॒ह॒ताम॒वो वरु॑ण॒ मित्र॑ दा॒शुषे॑ । यमा॑दित्या अ॒भि द्रु॒हो रक्ष॑था॒ नेम॒घं न॑शदने॒हसो॑ व ऊ॒तयः॑ । सु॒ऊ॒तयो॑ व ऊ॒तयः॑ ॥ १ ॥

भा०—हे (वरुण) सर्वश्रेष्ठ राजन् ! प्रभो ! हे (मित्र) स्नेहवन् ! हे मृत्यु से बचाने हारे, वायुवत् प्राणवत् प्रिय ! हे (आदित्याः) सूर्यकिरण वा १२ मासों के समान अदिति अर्थात् भूमि या अखण्ड शासन के हितकारी जनो ! (वः महतां दाशुषे महि अवः) तुम महापुरुषों का दानशील, आत्मसमर्पक के लिये बड़ी भारी रक्षा वा कृपा रहती है । आप लोग (यं) जिसको (द्रुहः अभि रक्षथ) द्रोहकारी जन से बचा लेते हो (ईम् अघं न नशत्) उसको पाप, हत्यादि प्राप्त नहीं होता । (वः

ऊतयः अनेहसः) आप लोगों की रक्षाएं निष्पाप और (वः ऊतयः सु-ऊतयः) आप लोगों की रक्षाएं व रक्षा साधन उत्तम रक्षासाधन होते हैं।

विदा देवा अघानामादित्यासो अपाकृतिम्। पक्षा वयो यथोपरि व्य१स्मे शर्म यच्छतानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः २

भा०—हे (देवाः आदित्यासः) सूर्य किरणवत् प्रकाश, ज्ञान के देने वाले आदित्य ब्रह्मचारियो! तेजस्वी एवं पूज्यपुरुषो! आप लोग (अघानाम् अपाकृतिम्) पापों को दूर करना (विद) जानते हो। (यथा वयः पक्षा उपरि शर्म यच्छन्ति) जिस प्रकार पक्षी बच्चों के ऊपर दोनों पांखों को गृह के समान रक्षार्थ तान लेते हैं उसी प्रकार (अस्मे उपरि) हमारे ऊपर (शर्म वि यच्छत) सुख शरणादि विविध प्रकार से प्रदान करो। (अनेहसः वः ऊतयः, वः ऊतयः सु-ऊतयः) आप लोगों की रक्षा पापरहित और आप लोगों की रक्षा उत्तम रक्षाएं होती हैं।

व्य१स्मे अधि शर्म तत्पक्षा वयो न यन्तन। विश्वानि विश्ववेदसो वरूथ्या मनामहेऽनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः

भा०—(वयः पक्षा न) पक्षीगण जिस प्रकार दोनों पक्षों को अपने बच्चों पर शरणवत् प्रदान करते हैं उसी प्रकार आप लोग (अस्मे अधि हमारे ऊपर (शर्म वि यन्तन) सुख, शरण विविध प्रकार से देवें। (विश्व-वेदसः) समस्त ज्ञानों और धनों के स्वामी जनो! हम लोग आप लोगों से (विश्वानि वरूथ्या) समस्त गृहोचित धन धान्यादि सुख और समस्त, (वरूथ्या) दुःख वारण में समर्थ साधनों की (मनामहे) याचना करते हैं। उनको हम ज्ञानपूर्वक प्राप्त करें। (अनेहसो वः० इत्यादि) पूर्ववत्॥

यस्मा अरासत क्षयं जीवातुं च प्रचेतसः। मनोर्विश्वस्य घेदिम आदित्या राय ईशतेऽनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः॥४॥

भा०—(प्रचेतसः) उत्तम ज्ञान से वा चित्त से सम्पन्न जन (यस्मै) जिसको (क्षयं) ऐश्वर्य और (जीवातुं च) जीवन (अरासत)

प्रदान करते हैं (इमे आदित्याः) वे सूर्य के तुल्य ज्ञानी जन (विश्वस्य मनोः घ) समस्त मनुष्यों के उपयोगी (रायः ईशते) धनों के स्वामी हो जाते हैं। (अनेहसः वः० इत्यादि) पूर्ववत्।

परि णो वृणजन्नघा दुर्गाणि रथ्यो यथा। स्यामेदिन्द्रस्य शर्मण्यादित्यानामुतावस्यनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ५।७

भा०—(यथा रथ्यः दुर्गाणि) जिस प्रकार रथ में लगे अश्व दुर्गम स्थानों से बचाते हैं उसी प्रकार (रथ्यः) उत्तम उपदेश युक्त जन (नः अघा परि वृणजन्) हमारे पापों को दूर करें और हमारी पापों से रक्षा करें। हम लोग (इन्द्रस्य शर्मणि इत् स्याम) ऐश्वर्यवान् प्रभु के ही शरण में, उसके ही सुख में रहें (उत) और हम (आदित्यानाम् अवसि) सूर्य रश्मियों के तुल्य तेजस्वी पुरुषों की रक्षा में (स्याम) रहें। इति सप्तमो वर्गः॥

परिह्वृतेदना जनो युष्मादत्तस्य वायति। देवा अदभ्रमाशवो यमादित्या अहेतनानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः॥ ६॥

भा०—हे (देवाः) दानशील, (आशवः) शीघ्रगामी, (आदित्याः) सूर्य किरणवत् तेजस्वी जनो ! आप लोग (यम् अदभ्रम्) जिस अनल्प गुणवान्, अधिक बलशाली, वा अहिंसनीय, जन को (अहेतन) शासन करते, संचालित करते हो वह (जनः) जन (परिह्वृता इत् अना) कुटिलता से रहित ही जीवन से (युष्मा-दत्तस्य) आप लोगों के दिये ज्ञान और धन को (वायति) परम्परा से प्राप्त कर सकता है। (अनेहसः० इत्यादि पूर्ववत्)

न तं तिग्मं चन त्यजो न द्रासदभि तं गुरु। यस्मा उ शर्म सप्रथ आदित्यासो अराध्वमनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः॥

भा०—हे (आदित्यासः) विद्वान्, तेजस्वी पुरुषो ! आप लोग (स-प्रथः) सर्व प्रकार से महान्, सामर्थ्यवान् होकर (यस्मै उ शर्म अरा-

स्मन्) जिस किसी को भी सुख, शरण प्रदान करते हो, (तं) उस तक (तिग्मं चन त्यजः) तीक्ष्ण क्रोध या उसकी ओर फेंका हुआ अस्त्रादि भी (न द्रावत्) नहीं पहुंचता और (तं गुरु चन त्यजः न द्रावत्) उस पर किसी का भारी क्रोध वा दुर्वचन, बाण आदि भी कुटिल चाल से नहीं पहुंच पाता। (अनेहसः वः० इत्यादि पूर्ववत्)

युष्मे देवा अपि ष्मसि युध्यन्त इव वर्मसु। यूयं महो न एनसो यूयमर्भादुरुष्यतानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥ ८ ॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् जनो! (वर्मसु युध्यन्तः इव) योद्धा लोग जिस प्रकार कवचों के भीतर सुरक्षित रहते हैं उसी प्रकार हम लोग भी (युष्मे अपि स्मसि) आप लोगों के बीच सुरक्षित रहें। (यूयम्) आप लोग (नः) हमें (महः एनसः) बड़े भारी पाप, अपराध और (अर्भात् एनसः) छोटे से भी पाप से (उरुष्यत) बचाइये। शेष पूर्ववत्॥

अदितिर्न उरुष्यत्वदितिः शर्म यच्छतु। माता मित्रस्य रेवतो ऽर्यम्णो वरुणस्य चानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥९॥

भा०—(अदितिः) अखण्ड ब्रह्मचारिणी, वा माता, जो (रेवतः) ऐश्वर्यसम्पन्न (मित्रस्य) न्यायाधीश, ब्राह्मण वर्ग, (अर्यम्णः) न्यायकारी, शत्रुनियन्ता, और (वरुणस्य) सर्वश्रेष्ठ राजा की भी (माता) उत्पन्न करने वाली माता के तुल्य जननी, भूमि, वा प्रकृति है वह (नः उरुष्यतु) हमारी रक्षा करे और वह (अदितिः) अदीन व्रत की पालक, अखण्ड शक्ति (नः शर्म यच्छतु) हमें सुख शान्ति प्रदान करे।

यद्देवाः शर्म शरणं यद्भद्रं यदनातुरम्। त्रिधातु यद्वरूथ्यं तदस्मासु वि यन्तनानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः॥१०॥८॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् एवं विजय कामना वाले तेजस्वी पुरुषो! (यत् शर्म) जो गृह, (शरणं) शत्रुओं और दुःखों का नाशक, (यत्

भद्रं) जो सुख कल्याणकारक, (यत् अनातुरम्) जो रोगों-कष्टों से रहित, बाधाओं-पीड़ाओं से शून्य, (यत् त्रिधातु) जो वात पित्त कफ के बने देह के समान स्वर्ण, रजत, ताम्र आदि तीनों प्रकार की धातुओं से दृढ़, (यत् वरूथ्यम्) जो सुखप्रद, कष्टवारक और गृह होने योग्य है (तत् अस्मासु वि यन्तन) वह हमें प्रदान करो । (अनेहसः० इत्यादि पूर्ववत्) ।

आदित्या अव हि ख्यताधि कूलादिव स्पशः। सुतीर्थमर्वतो यथानु नो नेषथा सुगमनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ११

भा०—हे (आदित्याः) सूर्य किरणों के समान सब संसार से ग्रहण करने योग्य समाचार आदि के ले आने वाले और (स्पशः) सब पदार्थों के देखने वाले जनो! (कूलात् इव) तट पर से जिस प्रकार द्रष्टा निष्पक्ष होकर जल स्थित पदार्थों को सावधानी से देखता है इसी प्रकार निष्पक्ष, अनुद्विग्न और दयाशील विवेकी, (यथा अर्वतः सुतीर्थम्) जिस प्रकार अश्वादि को तीर्थ या उतरने की जगह से जल में उतार दिया जाता है उसी प्रकार आप लोग भी (अर्वतः नः) शत्रुहिंसक हम को (सुगम् सुतीर्थं नु) सुगम और उत्तम तीर्थ अर्थात् परपक्ष के राजभृत्यादि को वश कर सुखमय मार्ग से (अनु नेषथाः) लेजाओ । (अनेहसः० इत्यादि पूर्ववत्) ।

नेह भद्रं रक्षस्विने नावयै नोपया उत। गवे च भद्रं धेनवे वीराय च श्रवस्यतेऽनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः॥१२॥

भा०—(इह) इस लोक में (रक्षस्विने भद्रं न) दुष्ट पुरुषों के स्वामी को सुख ऐश्वर्य आदि न हो, (न अवयै उत न उपयै) और वह न दूर जा सके न समीप आ सके । वा विपरीत इसके (गवे च धेनवे भद्रं) दुधार बैल और गौ का कल्याण हो और (श्रवस्यते वीराय च भद्रं)

अन्न, बल, यश के इच्छुक वीर और ज्ञान के इच्छुक विद्वान् को सुख, कल्याण हो (अनेहसः० इत्यादि) पूर्ववत् ।

यदाविर्यदपीच्यं देवासो अस्ति दुष्कृतम् । त्रिते तद्विश्वमाप्त्य आरे अस्मद्दधातनानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥१३॥

भा०—हे (देवासः) विद्वान् पुरुषो ! (यद् दुष्कृतं आविः) जो बुरा काम प्रकट में है और (यत् दुष्कृतं अपीच्यं अस्ति) जो बुरा काम छुपा हुआ है, (त्रिते आप्त्ये) तीनों विद्याओं में निष्णात, आप्त जन के अधीन (अस्मत्) हम से (आरे दधातन) उस दुष्ट कर्म को दूर करो । (अनेहसः० इत्यादि पूर्ववत्) । सायण प्रोक्त 'मा' पद मन्त्र में नहीं है ।

यच्च गोषु दुःष्वप्न्यं यच्चास्मे दुहितर्दिवः । त्रिताय तद्विभावर्याप्त्याय परा वहानेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः ॥१४॥

भा०—हे (दिवः दुहितः) उषाकालवत् ज्ञानप्रकाश का दोहन पूरण, एवं प्रदान करने वाली ! (विभावरि) विशेष ज्ञान प्रकाश से वरण करने योग्य श्रेष्ठ ज्ञान को देने वाली (यत् च गोषु) जो भी हमारी वाणियों और इन्द्रियों में (दुःष्वप्न्यं) दुःस्वप्नों का बुरा प्रभाव हो । और (यत् च अस्मे) जो हममें बुरे स्वप्नों का दुष्परिणाम हो उसको (आप्त्याय त्रिताय) आप्त जनों के हितकारी, तीनों दुःखों से मुक्त जन के हितार्थ (परा वह) दूर कर । (अने० इत्यादि पूर्ववत्)

निष्कं वा घा कृणवते स्रजं वा दुहितर्दिवः । त्रिते दुःष्वप्न्यं सर्वमाप्त्ये परि दद्मस्यनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः॥१५॥९

भा०—हे (दिवः दुहितः) प्रकाशवत् ज्ञान और सद् व्यवहार के देने वाली ! उषावत् प्रकाश करने हारी प्रभु-मातः ! (वा) और (निष्कं कृणवते) स्वर्णादि मुद्रा बनाने या धारने वाले (वा स्रजं कृण्वते) अथवा माला बनाने या धारने वाले के लिये हुआ जो (दुःष्वप्न्यं) बुरा स्वप्न वा

विकार है (सर्व) उस सबको (त्रिते आप्त्ये) तीनों कष्टों वा एषणाओं से मुक्त विद्वान् के अधीन रहकर हम (परि दद्मसि) दूर करें। सुवर्णादि आभूषण, माला आदि बनाने वाले वा धारने वाले को देखकर चित्त में दुर्विचार आवें तो विद्वान् जन के अधीन रहकर उस विकार का नाश करें, दृढव्रती होकर सुवर्णादि देखकर वा अलंकृत स्रक् चन्दन वनिता आदि देखकर स्वप्न में भी प्रलुब्ध न हों। (अनेहसः० इत्यादि पूर्ववत्) इति नवमो वर्गः॥

तद॑न्नाय॒ तद॑पसे॒ तं भा॒गमु॑पसे॒दुषे॑। त्रि॒ताय॑ च द्वि॒ताय॒ चोषो॑ दुः॒ष्वप्न्यं॑ वहाने॒हसो॑ व ऊ॒तयः॑ सु॒ऊ॒तयो॑ व ऊ॒तयः॑॥ १६॥

भा०—(तदन्नाय) नाना प्रकार के भोज्यान्न प्राप्त करने वाले, (तद्-अपसे) नाना श्रेष्ठ कर्म करनेवाले, (तं भागम् उपसेदुषे) अपने उस उत्तम २ सेव्य अंश को प्राप्त करने वाले (त्रिताय) मन, वाणी, कर्म तीनों पर वशी और (द्विताय च) भीतर और बाहर वश करने वाले पुरुष के भी (दुःस्व-प्न्यं) बुरे स्वप्न के प्रभाव को हे (उषः) प्रभातवेला के समान अन्धकार के तुल्य पापों को दूर करने वाली मातः! तू (वह) दूर कर।

यथा॑ क॒लां यथा॑ श॒फं यथ॑ ऋ॒णं सं॒नया॑मसि। ए॒वा दुः॒ष्वप्न्यं॒ सर्व॑मा॒प्त्ये सं न॑याम॒स्यने॒हसो॑ व ऊ॒तयः॑ सु॒ऊ॒तयो॑ व ऊ॒तयः॑ १७

भा०—(यथा) जिस प्रकार हम (कलां सं नयामसि) काल की मात्रा को शनैः २ व्यतीत करते हैं, (यथा शफं) जिस प्रकार चरण को (सं नयामसि) समान रूप से आगे बढ़ाते हैं और (यथा ऋणं) जिस प्रकार अपने पर के ऋण या पराये धन को (संनयामसि) अच्छी प्रकार ईमान-दारी से चुका देते हैं, (एवा) इसी प्रकार हम लोग भी (आप्त्ये) आप्त पुरुष के अधीन रहकर वा आप्त जनों में विद्यमान रहकर शनैः २ (दुःस्वप्न्यं सं नयामसि) दुःस्वप्नादि बुरे प्रभावों को दूर करें। (अनेहसः० इत्यादि पूर्ववत्)

अजैष्माद्यासनाम चाभूमानागसो वयम्। उषो यस्माद्दुःष्वप्न्यादभैष्माप तदुच्छत्वनेहसो व ऊतयः सुऊतयो व ऊतयः॥८।१०

भा०—हम लोग (अजैष्म) विजय प्राप्त करें, (असनाम च) दान करें, (वयं अनागसः अभूम) हम निष्पाप, निरपराध होकर रहें। हे (उषः) प्रभात वेला, के समान ज्ञान को देने और पाप को वश करने वाली मातः! (यस्मात् दुःस्वप्न्यात् अभैष्म) हम जिस दुःस्वप्न के दुष्प्रभाव से भय करते हैं (तत् अप उच्छतु) वह दूर हो। (अनेहसः० इत्यादि पूर्ववत्) इति दशमो वर्गः॥

[४८]

प्रगाथः काण्व ऋषिः॥ सोमो देवता॥ छन्दः—१, २, १३ पादनिचृत् त्रिष्टुप्। १२, १५ आर्षी स्वराट् त्रिष्टुप्। ३, ७—६ विराट् त्रिष्टुप्। ४, ६, १०, ११, १४ त्रिष्टुप्। ५ विराड् जगती॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम्॥

स्वादोरभक्षि वयसः सुमेधाः स्वाध्यो वरिवोवित्तरस्य। विश्वे यं देवा उत मर्त्यासो मधु ब्रुवन्तो अभि सञ्चरन्ति॥१॥

भा०—मैं (सुमेधाः) उत्तम ज्ञान से युक्त, उत्तम बुद्धिमान्, सत्संगी होकर (स्वादोः) सुस्वादु (वयसः) अन्न का (अभक्षि) भोजन करूं। और (स्वाध्यः) उत्तम रीति से धारण करने योग्य (वरिवोवित्तरस्य) अति पूजनीय, उस धन का भी सेवन करूं, (यं विश्वे देवाः) जिसको सब उत्तम मनुष्य और (उत मर्त्यासः) साधारण मनुष्य (मधु ब्रुवन्तः) मधुर, आनन्दप्रद कहते हुए (अभि सं चरन्ति) प्राप्त होते और उपभोग करते हैं। इसी प्रकार मैं (सु-मेधाः) उत्तम बुद्धिमान् शिष्य, (सु-आध्यः) उत्तम अध्ययनशीलादि, (वरिवोवित्-तरस्य) उत्तम धन, आदर पूजादि लाभ करने वाले, (स्वादोः वयसः) उत्तम भोजन के भोक्ता, दीर्घायु, उस वृद्ध, प्रभु, पुरुष की सेवा करूं, जिसके प्रति सब विद्वान् जन (मधु ब्रुवन्तः) मधुर

वचन कहते हुए वा 'मधु' आनन्दप्रद, मधुर ज्ञान, प्रवचन करते हुए उसके समीप उसकी शरण आते हैं।

अन्तश्च प्रागा अदितिर्भवास्यवयाता हरसो दैव्यस्य ।
इन्दविन्द्रस्य सख्यं जुषाणः श्रौष्टीव धुरमनु राय ऋध्याः ॥२॥

भा०—हे (इन्दो) चन्द्रवत् आह्लादकारक सोम ! शिष्यजन ! तू (अन्तः च प्र अगाः) भीतर गुरुगृह में, माता के गर्भ में बालक के समान आ। तू (अदितिः भवासि) अखण्डित व्रत होकर पुत्रवत् रह। तू (दैव्यस्य हरसः) देव, विद्या चाहने वाले शिष्य जनों के उचित, (हरसः) क्रोध या तीक्ष्णता को (अव-याता) विनीत होकर प्राप्त कर। तू (इन्द्रस्य) ज्ञानी, तत्वदर्शी आचार्य के (सख्यं जुषाणः) मैत्री को प्राप्त करता हुआ, (श्रौष्टी इव धुरम्) जूए के नीचे क्षिप्रगामी अश्व या बैल के समान विनीत होकर (राये अनु ऋध्याः) दानयोग्य ज्ञान ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये अनुगामी होकर रह, और ज्ञान से सम्पन्न हो। (२) इसी प्रकार विद्वान्, अदीन हो, भीतर आवे, मनुष्यों के क्रोधादि को दूर करे, ऐश्वर्यवानों का मित्र होकर उनका कार्य करके स्वयं भी सम्पन्न हो। (३) इसी प्रकार (इन्दुः) इस देह में द्रुतरूप से विद्यमान वीर्य देह के भीतर रहे, अखण्ड रहे, (दैव्यस्य हरसः) इन्द्रियों के वेग को शान्त करे, आत्मा का सख्य लाभ कर ऐश्वर्य सुखादि से सम्पन्न हो।

अपाम सोमममृता अभूमागन्म ज्योतिरविदाम देवान् ।
किं नूनमस्मान्कृणवदरातिः किमु धूर्तिरमृत मर्त्यस्य ॥ ३ ॥

भा०—हम लोग (सोमम् अपाम) ओषधिरस को जिस प्रकार पान करते और (अमृताः अभूम) अमृत, सुखी, दीर्घायु होते हैं उसी प्रकार हम लोग (सोमम् अपाम) ऐश्वर्य, वीर्य और पुत्र शिष्यादि का पालन करें और 'अमृत' दीर्घायु, अमर होवें। हम लोग (ज्योतिः आगन्म) प्रकाश को प्राप्त हों। (देवान् अविदाम) शुभ गुणों, विद्वान्

पुत्रों, और वायु पृथिवी आदि पदार्थों को प्राप्त करें, जानें। हे (अमृत) अमृतस्वरूप ! (अरातिः) शत्रु (नूनम् अस्मान् किं कृणवत्) निश्चय से हमारे प्रति क्या कर सकता है ? कुछ नहीं। और (मर्त्यस्य धूर्तिः किमु) मनुष्य का हिंसा स्वभाव भी विद्वान् ब्रह्मचारी का कुछ नहीं कर सकता।

शं नो भव हृद आ पीत इन्दो पितेव सोम सूनवे सुशेवः ।
सखेव सख्य उरुशंस धीरः प्र ण आयुर्जीवसे सोम तारीः ॥४॥

भा०—(आपीतः हृदे शम्) जिस प्रकार पान किया हुआ सोम-रस, या ओषधिरस हृदय को शान्तिदायक होता है उसी प्रकार (आपीतः) सब प्रकार से पालित, रक्षित वीर्य, पुत्र और शिष्य भी (नः हृदे शं भव) हमारे हृदय को शान्तिकारक हो। हे (इन्दो) प्रेमरस से आर्द्र ! ऐश्वर्य-वन् ! हे (सोम) सोम ! (सूनवे पिता इव) पुत्र के लिये पिता के समान तू (सुशेवः) उत्तम सुखदायक हो। हे (उरुशंस) बहुत २ उत्तम उपदेश वचन करने हारे विद्वन् ! बहुत स्तुतियुक्त प्रभो ! बहुतसी विद्याओं के उपदेश योग्य शिष्य ! (सख्ये सखा इव) मित्र के लिये मित्र के तुल्य होकर (धीरः) बुद्धिमान् होकर (जीवसे) दीर्घ जीवन के लिये (नः आयुः प्र तारीः) हमारी आयु की वृद्धि कर।

इमे मा पीता यशस उरुष्यवो रथं न गावः समनाह पर्वसु ।
ते मा रक्षन्तु विस्रसश्चरित्रादुत मा स्रामाद्यवयन्त्विन्दवः ५।११

भा०—(इमे) ये (पीताः) पान किये ओषधिरसों के तुल्य पालन किये देह में वीर्य, और राष्ट्र में विद्वान्, गृह में पुत्र, शिष्य और वीर जन (यशसः) वीर्य, बल, और कीर्त्ति से युक्त (उरुष्यवः) रक्षा की कामना करते हुए (गावः रथं न) रथ को अश्वों के समान (पर्वसु) पर्व २, पोरु २, खण्ड २ पर (सम् अनाह) सुसम्बद्ध, सुदृढ़ हों और राष्ट्र के खण्ड को शरीर के पोरु २ के समान सुदृढ़ करें। (ते) वे (मा) मुझे (विस्रसः चरित्रात्) शिथिल आचरण से (रक्षन्तु) बचावें। वे (इन्दवः) दयार्द्र-

जन (मा) मुझे (स्रामात् यवयन्तु) व्याधि से भी ओषधिवत् पृथक् करें । इत्येकादशो वर्गः ॥

अग्निं न मा मथितं सं दिदीपः प्र चक्षय कृणुहि वस्यसो नः ।
अथा हि ते मद आ सोम मन्ये रेवाँ इव प्र चरा पुष्टिमच्छ ॥६॥

भा०—हे (सोम) अन्न ओषधि रसवत् वीर्य एवं विद्वन् ! वीर ! तू (मथितं अग्निं न) मथित अग्नि के समान (मा सं दिदीपः) मुझे अच्छी प्रकार तेजस्वी कर । (प्र चक्षय) उत्तम ज्ञान का दर्शन करा । (नः वस्यसः कृणुहि) हमें उत्तम धन सम्पन्न कर । (अथ) और (ते हि मदः मन्ये) मैं स्वीकार करता हूं कि तेरा ही यह सब सुख, हर्ष है । तू (रेवान् इव) धनसम्पन्न के समान (अच्छ पुष्टिम् प्र चर) उत्तम पुष्टि प्रदान कर ।

इषिरेण ते मनसा सुतस्य भक्षीमहि पित्र्यस्येव रायः ।
सोम राजन्प्र ण आयूंषि तारीरहानीव सूर्यो वासराणि ॥ ७ ॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! हे (राजन्) तेजस्विन् ! प्रभो ! (सुतस्य ते) अभिषिक्त हुए तेरा हम (पित्र्यस्य इव रायः) माता पिता के धन के समान (इषिरेण मनसा) इच्छायुक्त चित्त से (भक्षीमहि) भजन, सेवन करें । (सूर्यः वासराणि अहानि इव) जगत् को आच्छादन करने वाले दिनों को सूर्य के समान (नः आयूंषि प्र तारीः) हमारी आयुओं की वृद्धि कर ।

सोम राजन्मृळया नः स्वस्ति तव स्मसि व्रत्या३स्तस्य विद्धि ।
अलर्ति दक्ष उत मन्युरिन्दो मा नो अर्यो अनुकामं परा दाः ॥८॥

भा०—हे (सोम राजन्) ऐश्वर्यवन् राजन् ! तेजस्विन् ! देह में वीर्यवत् पोषक ! तू (नः मृडय) हमें सुखी कर, (स्वस्ति) हमारा कल्याण हो । हम (तव व्रत्याः स्मसि) तेरे व्रत का पालन करने वाले

हों, । (तस्य विद्धि) तू उस व्रत को जान । (दक्षः भलर्ति) बलवान् पुरुष आगे बढ़ता है (उत) और (मन्युः) ज्ञानी पुरुष भी आगे बढ़ता है, हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! तू (अर्यः) हमारा स्वामी होकर (नः) हमें (अनु-कामं) यथेच्छ होकर (मा परा दाः) मत त्याग कर । अथवा (अर्यः अनुकामं मा परादाः) शत्रु की इच्छानुसार हमें मत त्याग ।

त्वं हि नस्तन्वः सोम गोपा गात्रेगात्रे निषसत्था नृचक्षाः ।
यत्ते वयं प्रमिनाम व्रतानि स नो मृळ सुषखा देव वस्यः ॥९॥

भा०—हे (सोम) सर्व-शासक ! राजन् ! (त्वं) तू ही (नः तन्वः) हमारे शरीरों का (गोपाः) रक्षक है । (गात्रे-गात्रे) अंग २ में वा प्रत्येक शरीरधारी पर तू (नृ-चक्षाः) नेता जनों को देखने वाला सर्वसाक्षी के तुल्य (नि-ससत्थ) आसन पर विराज । (वयं) हम (यत्) जब २ (ते व्रतानि प्र-मिनाम) तेरे व्रतों को नाश करें तब २ हे (देव) तेजस्विन् ! (सः) वह तू (नः) हमें (मृड) सुधार और सुखी कर और तू (सु-सखाः) हमारा उत्तम मित्र होकर हमें (वस्यः) उत्तम बना ।

ऋदूदरेण सख्या सचेय यो मा न रिष्येद्धर्यश्व पीतः ।
अयं यः सोमो न्यधाय्यस्मे तस्मा इन्द्रं प्रतिरमेम्यायुः १०।१२

भा०—(यः) जो (पीतः) ओषधि रसवत् पान पालन किया जाकर (मा न रिष्येत्) मेरा विनाश न करे, हे (हर्यश्व) उत्तम मनुष्यों को अश्ववत् सन्मार्ग में चलाने वाले राजन् ! ऐसे (ऋदूदरेण) मृदु पेट वाले, भीतर कोमल, दयार्द्र स्वभाव वाले (सख्या सचेय) मैं मित्र से सदा संगत रहूं । (यः) जो (अयं) यह (सोमः) बलवान्, ऐश्वर्यवान् पुरुष (अस्मे) हमारे बीच (निअधायि) नियत किया जाता है, (तस्मै) उसके हितार्थ ही मैं (प्रतिरम् आयुः) सुदीर्घ आयु और (इन्द्रं ऐमि) ऐश्वर्य की याचना करूं ।

अप॒ त्या अ॑स्थुरनि॑रा अमी॑वा निर॑त्रस॒न्तमि॑षी॒चीर॑भैषुः ।
आ सोमो॑ अ॒स्माँ अ॑रुह॒द्विहा॑या॒ अग॑न्म॒ यत्र॑ प्रति॒रन्त॒ आयुः॑ ॥११

भा०—जिस प्रकार सोम ओषधि के पान करने पर (अनिराः) बल-रहित कर देने वाली वा जल अन्न न खाने देने वाली (त्याः अमीवाः) वे दुःखजनक रोगपीड़ाएं (अप अस्थुः) दूर हो जाती हैं उसी प्रकार राजा के अभिषेक कर देने पर समस्त दुःखदायी विपत्तियां भी (अप अस्थुः) दूर हो जाती हैं। (तमिषीचीः) अन्धकार ला देने वाली बाधाओं के समान बलवती सेनाएं भी उससे (निः-अत्रसन् अभैषुः) डरतीं और भय मानती हैं। वह (सोमः) सोम (विहायाः) आकाश के समान महान् होकर (अस्मान् आ अरुहत्) हम पर अध्यक्ष होकर रहे, (यत्र) जिसके आश्रय रह कर लोग (आयुः प्रतिरते) अपना जीवन बढ़ा लेते हैं हम उसी को (अगन्म) प्राप्त हों।

यो न॒ इन्दुः॑ पितरो हृ॒त्सु पी॒तोऽम॑र्त्यो॒ मर्त्याँ॑ आवि॒वेश॑ ।
तस्मै॒ सोमा॑य ह॒विषा॑ विधेम मृळी॒के अ॑स्य सुम॒तौ स्या॑म ॥१२॥

भा०—हे (पितरः) पालक गुरुजनो! (यः इन्दुः) जो ऐश्वर्यवान् आर्द्र स्वभाव, ओषधि रसवत् (पीतः) पान वा पालन किया जाकर (मर्त्यः) दुःखों वा दुष्टों का नाशक होकर आत्मा के तुल्य अमृत होकर (मर्त्यान् आविवेश) देहों वा मनुष्यों में प्रविष्ट है, (तस्मै) उस (सोमाय) सर्वप्रेरक ऐश्वर्यवान् की हम (हविषा) उत्तम अन्न वचनादि से (विधेम) परिचर्या करें। उसके (मृळीके) सुख और (सुमतौ) शुभ ज्ञान उत्तम वाणी में हम सदा (स्याम) रहें। इति द्वादशो वर्गः ॥

त्वं सो॑म पि॒तृभिः॑ संविदा॒नोऽनु॒ द्यावा॑पृथि॒वी आ त॑तन्थ ।
तस्मै॑ त इन्दो ह॒विषा॑ विधेम व॒यं स्या॑म॒ पत॑यो रयी॒णाम् ॥१३॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन्! (त्वा) तू (पितृभिः) पालक

शासक जनों से (संविदानः) संमति करता हुआ, (द्यावापृथिवी) सूर्य पृथिवीवत् स्त्री पुरुष, गुरु शिष्य और शास्य शासक दोनों वर्गों को (अनु आ ततन्थ) अपने वश करता है, हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! (वयं तस्मै ते) हम उस तेरे लिये उत्तम (हविषा) अन्न वचनादि से (विधेम) सेवा करें (वयं रयीणां पतयः स्याम) हम देह, प्राण, धनैश्वर्यादि के स्वामी हों ।

त्रातारो देवा अधि वोचता नो मा नो निद्रा ईशत मोत जल्पिः।
वयं सोमस्य विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमा वदेम ॥१४॥

भा०—हे (देवाः) ज्ञानप्रद विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (त्रातारः) हमारे रक्षक होकर (नः अधि वोचत) हमें सदा उपदेश करो कि जिससे (नः) हम पर (निद्रा) निन्दित कुत्सित गति, वा निद्रा, आलस्यादि (मा ईशत) अधिकार न करे (उत) और (जल्पिः मा ईशत) बकवास करने की बुरी आदत वा बकवासी पुरुष भी हम पर वश न करे । (विश्वहा) सदा, सब दिनों, (वयं) हम (सोमस्य प्रियासः) सोम, पुत्र, शिष्य, ऐश्वर्यवान् आदि के प्रिय और (सु-वीरासः) उत्तम वीर्यवान्, उत्तम पुत्रवान् और विद्वान् होकर (विदथम् आवदेम) ज्ञान का उपदेश और कथोपकथन किया करें ।

त्वं नः सोम विश्वतो वयोधास्त्वं स्वर्विदा विशा नृचक्षाः । त्वं न इन्द ऊतिभिः सजोषाः पाहि पश्चातादुत वा पुरस्तात् १५।१३।६

भा०—हे (सोम) विद्वन् ! वीर्यवत् पालक पोषक ! (त्वं नः विश्वतः वयोधाः) तू हमें सब प्रकार से ज्ञान, बल, आयु धारण कराने वाला, तू (स्वर्विद्) सुखदाता, ज्ञानप्रकाशक, सर्वज्ञ, तू (नृ-चक्षाः) सबका द्रष्टा, होकर (नः आविश) हमें प्राप्त हो । हे (इन्दो) ऐश्वर्यवन् ! (त्वं) तू (नः) हमें (सजोषाः) सप्रेम (ऊतिभिः पाहि) रक्षा साधनों

से सदा पालन कर । और तू (पश्चातात् उत वा पुरस्तात्) हमारी पीछे और आगे से भी रक्षा कर । इति त्रयोदशो वर्गः ॥

अथ वालखिल्यम्

[४६]

प्रस्कण्वः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ बृहती । ३ विराड् बृहती । ५ भुरिग्बृहती । ७, ९ निचृद् बृहती । २ पंक्तिः । ४, ६, ८, १० निचृत् पंक्तिः ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

अभि प्र वः सुराधसमिन्द्रमर्च यथा विदे ।
यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो (मघवा) उत्तम, पूज्य धन का स्वामी (पुरूवसुः) नाना धनों जनों का स्वामी होकर (जरितृभ्यः) स्तुतिकर्त्ता विद्वानों के हितार्थ (सहस्रेण इव) सहस्रों के समान (शिक्षति) दान देता है, उस (सुराधसम्) उत्तम धनवान्, सुखपूर्वक आराधना करने योग्य, सब कर्मों के साधक (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् को (यथा विदे) यथावत् ज्ञान और धन का लाभ करने के लिये (अभि प्र अर्च) उत्तम रीति से अर्चना करो और उसी को (प्र वः) उत्तम रीति से वरण करो ।

शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि दाशुषे ।
गिरेरिव प्र रसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः ॥ २ ॥

भा०—वह इन्द्र ऐश्वर्यवान्, शत्रुओं का नाश करने हारा (शत-अनीका इव) सैकड़ों सेनाओं और बलों का स्वामी, सेनापति के समान (प्र

[१] सर्वानुक्रमण्यां वालखिल्यसूक्तानामननुक्रमणदर्शनात् संहितान्तर्गतत्वम् । तानि च षष्ठाष्टकान्तर्गतान्येव ॥

जिगाति) सबका विजय करता है और (दाशुषे) दानशील, करप्रद राष्ट्र के हित के लिये (वृत्राणि) विघ्नकारी शत्रुओं का (धृष्णुया) अपनी धर्षणकारिणी शक्ति से (हन्ति) नाश करता है, (गिरेः इव रसा) पर्वत से झरने वाले जलों के समान (अस्य पुरुभोजसः) इस बहुतों के पालक, नाना भोग्य ऐश्वर्य के स्वामी के (दत्राणि) नाना प्रकार के दान (पिन्विरे) प्रजाओं को पुष्ट करते हैं।

आ त्वा सुतास इन्दवो मदा य इन्द्र गिर्वणः।
आपो न वज्रिन्नन्वोक्यं सरः पृणन्ति शूर राधसे ॥ ३ ॥

भा०—हे (गिर्वणः) वाणी द्वारा भजन करने योग्य ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ये) जो (मदाः) तृप्तिकारक (इन्दवः) ऐश्वर्यवान्, आर्द्र-हृदय (सुतासः) अभिषिक्त जन (त्वा आ पृणन्ति) तुझे हर्षजनक हैं हे (शूर) शूरवीर ! हे (वज्रिन्) वीर्यवन् ! वे सब (राधसे) धन को प्राप्त करने के लिये ही (ओक्यं सरः आपः न) अपने आश्रयभूत सरोवर को पूर्ण करने वाले जलप्रवाहों के समान (त्वा आपृणन्ति) तुझे ही पूर्ण करते हैं, तुझे ही प्रसन्न करते, तेरी सेवा करते, तुझ में ही आश्रय लेते हैं। उसी प्रकार ये समस्त उत्पन्न सूर्यादि लोक भी उसी परमेश्वर को पूर्ण करते, उसी में आश्रय पाते हैं।

अनेहसं प्रतरणं विवक्षणं मध्वः स्वादिष्ठमीं पिब।
आ यथा मन्दसानः किरासि नः प्र क्षुद्रेव त्मना धृषत् ॥ ४ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! तू (मध्वः) मधुर अन्न और ज्ञान का (अनेहसं) निष्पाप (प्र-तरणम्) दुःखों से पार उतारने वाला, (विवक्षणं) विविध वचनों से स्तुत्य, वा विविध हर्षदायक (स्वादिष्ठम्) अति स्वादु रस का (पिब) पान कर (यथा) जिस प्रकार (मन्दसानः) तृप्त होकर (क्षुद्रा इव) क्षुद्र मधु मक्खी के समान (त्मना धृषत्) स्वयं

अपने सामर्थ्य से शत्रुगण पर विजयी होकर (नः) हमें भी (प्र किरासि) नाना ऐश्वर्य यथायोग्य रूप से प्रदान कर।

आ नः स्तोममुप द्रवद्धियानो अश्वो न सोतृभिः।
यं ते स्वधावन्स्वदयन्ति धेनव इन्द्र कण्वेषु रातयः ॥५॥१४॥

भा०—हे (स्वधावन्) अन्नपते ! हे ऐश्वर्य को धारण करने वाली शक्ति के स्वामिन्! (ते) तेरे (कण्वेषु) विद्वान् पुरुषों के निमित्त (रातयः) दिये नाना दान ही (यं स्तोमम्) जिस स्तुतियोग्य पद को (धेनवः) वाणियों या गोरसों के समान (स्वदयन्ति) अधिक स्वादु, सुखद कर देते हैं तू उस (नः स्तोमम्) हमारे स्तुत्य वचन या पद को (सोतृभिः हियानः) अभिषिक्त वर्ग से प्रेरित होकर (अश्वः न) अश्व के समान (आ उप द्रवद्) प्राप्त हो। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

उग्रं न वीरं नमसोप सेदिम विभूतिमक्षितावसुम्।
उद्रीव वज्रिन्नवतो न सिञ्चते क्षरन्तीन्द्र धीतयः॥ ६ ॥

भा०—(उग्रं वीरं न) वीर के समान, उग्र, शत्रुओं के लिये भयंकर (विभूतिम्) विशेष शक्तिमान् (अक्षिता वसुम्) अक्षय धन से सम्पन्न पुरुष को हम (उप सेदिम) प्राप्त हों। हे (वज्रिन्) वीर्यशालिन्! (अवतः न उद्रीवः) ऊपर मुख किये कूप के समान तू भी अपने प्रजा के क्षेत्र को (सिञ्चते) सेचन करता है, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (धीतयः) नाना स्तुतियें (क्षरन्ति) तेरी ओर ही बहती हैं।

यद्ध नूनं यद्वा यज्ञे यद्वा पृथिव्यामधि।
अतो नो यज्ञमाशुभिर्महेमत उग्र उग्रेभिरा गहि ॥ ७ ॥

भा०—(यत् ह) चाहे जहां भी हो (यद् वा यज्ञे) चाहे यज्ञ में हो, (यद् वा पृथिव्याम् अधि) चाहे तू पृथिवी पर हो, हे (महे मते) महामतिमन्! हे (उग्र) बलवन्! तू (नः) हमारे (यज्ञम्) यज्ञ को

(उग्रेभिः आशुभिः) बलवान्, शीघ्रगामी अश्वों सहित (अतः) इस स्थान से (आ गहि) प्राप्त हो ।

अजिरासो हरयो ये त आशवो वाता इव प्रसक्षिणः ।
येभिरपत्यं मनुषः परीयसे येभिर्विश्वं स्वर्दृशे ॥ ८ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! (ते) तेरे (ये) जो (अजिरासः) कभी नाश को प्राप्त न होने वाले (हरयः) अश्व, (आशवः) शीघ्रगामी, (वाताः इव) वायु के झकोरों के समान (प्र-सक्षिणः) बलात् शत्रुओं को विजय करने वाले, हैं । (येभिः) जिनसे तू (मनुषः अपत्यं) मनुष्यों के समीप (परीयसे) आता है और (येभिः) जिनसे तू (स्वः-दृशे) सबको देखने के लिये (विश्वं परि ईयसे) समस्त जगत् में व्याप रहा है ।

एतावतस्त ईमह इन्द्र सुम्नस्य गोमतः ।
यथा प्रावो मघवन्मेध्यातिथिं यथा नीपातिथिं धने ॥९॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् (यथा) जिस प्रकार भी हो तू (मेध्यातिथिं) अन्नादि से सत्कार करने योग्य अतिथिवत् पूज्य पुरुष को (प्र अवः) उत्तम रीति से तृप्त एवं प्रसन्न करता है, और (यथा) जिस प्रकार और जितने (धने) धन में तू (नीपातिथिं) सन्मार्ग दिखाने वाले अतिथिवत् पूज्य पुरुष का (प्रावः) आदर सत्कार करता है हम भी (ते) तुझ से हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (एतावतः) इतने (गोमतः सुम्नस्य) गौ आदि पशुओं से समृद्ध सुखप्रद धन की (ईमहे) याचना करते हैं ।

यथा कण्वे मघवन्त्रसदस्यवि यथा पक्थे दशव्रजे ।
यथा गोशर्ये असनोर्ऋजिश्वनीन्द्र गोमद्धिरण्यवत् ॥१०॥१५॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (यथा) जैसे (कण्वे) मेधावी विद्वान्, (त्रसदस्यवि) दस्यु को भय देने वाले के निमित्त (यथा) जैसे (पक्थे दशव्रजे) दश मार्गयुक्त परिपक्व शरीर के निमित्त, (यथा

(गो-शर्ये) जैसे गो अर्थात् धनुष की डोरी और शर अर्थात् बाणों के चलाने में कुशल धनुर्धारी के निमित्त और (ऋजिश्वनि) अश्वों को ऋजु-मार्ग में चलाने हारे, अश्वसाधक जितेन्द्रिय पुरुष के निमित्त तू (गोमत् हिरण्यवत्) गवादि पशुयुक्त और सुवर्णादि युक्त चल अचल धन (असनोः) न्याय, एवं पात्रापात्र विवेक से प्रदान करता है उसी प्रकार का धन हम भी तुझ से चाहते हैं। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

[५०]

पुष्टिगुः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ५, ७ निचृद् बृहती। ९ विराड् बृहती। २, ४, ६, १० पंक्तिः। ८ निचृत् पंक्तिः ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

प्र सु श्रुतं सुराधसमर्चा शक्रमभिष्टये ।
यः सुन्वते स्तुवते काम्यं वसु सहस्रेणेव मंहते ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो (सुन्वते) उत्तम आदर सत्कार करने वाले, (स्तुवते) स्तुतिशील पुरुष को (काम्यं वसु) कामना करने योग्य धन (सहस्रेण-इव मंहते) सहस्रों संख्या में प्रदान करता है, उस (श्रुतं) जगत्-प्रसिद्ध (सु-राधसम्) सुख से आराधना करने योग्य, उत्तम धन-सम्पन्न (शक्रम्) शक्तिशाली परम पुरुष की (अभिष्टये) अभीष्ट कार्य के लिये (प्र सु अर्च) उत्तम रीति से पूजा, आदर सत्कार कर।

शतानीका हेतयो अस्य दुष्टरा इन्द्रस्य समिषो महीः ।
गिरिर्न भुज्मा मघवत्सु पिन्वते यदीं सुता अमन्दिषुः ॥ २ ॥

भा०—(अस्य इन्द्रस्य) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु की (शत-अनीका) सैकड़ों सैन्य, सैकड़ों बल, सैकड़ों मुख, (हेतयः दुस्तराः) हनन या दण्ड देने के साधन दुस्तर, अपार, अजेय हैं और इस की (महीः समिषः) समस्त भूमियां भी उत्तम अन्न सम्पदाओं से सम्पन्न हैं, (यदि) जब

(सुताः) नाना उत्पन्न पदार्थ एवं ऐश्वर्यगण (अमन्दिषुः) समस्त जीव प्रजागण को हर्षयुक्त, प्रसन्न करते हैं तब प्रतीत होता है कि वही (भुज्मा) सबका पालक परमेश्वर (गिरिः न) मेघ वा पर्वत के समान महान् उदार होकर (मघवत्सु) पूज्य धनवानों में (पिन्वते) ऐश्वर्य की मानो वर्षा किया करता है ।

यदीं सुतास इन्दवोऽभि प्रियममन्दिषुः ।
आपो न धायि सवनं म आ वसो दुघा इवोप दाशुषे ॥३॥

भा०—(सुतासः इन्दवः) उत्पन्न हुए, ये ऐश्वर्ययुक्त, वा आर्द्र, ओषधि रसवत् आनन्दमय जीवगण, (यदि) जब (प्रियम् अमन्दिषुः) अपने प्रिय प्रभु को प्रसन्न कर लेते हैं तब हे (वसो) सबको बसाने हारे ! (दाशुषे दुघाः इव) यज्ञशील वा घास आदि देने वाले स्वामी के लिये दुधार गौवों के समान वा (सवनं) अभिषेकार्थ (आपः न) जल-धाराओं के समान उन सबको (मे उप आ धायि) मेरे लिये प्राप्त कराओ ।

अनेहसं वो हवमानमूतये मध्वः क्षरन्ति धीतयः ।
आ त्वा वसो हवमानास इन्दव उप स्तोत्रेषु दधिरे ॥ ४ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! (वः) आप लोगों की (धीतयः) स्तुतियां और नाना कर्म (अनेहसं) पाप से मुक्त (हवमानम्) सब ऐश्वर्यों के देने वाले को उद्देश्य करके किये जाकर ही (ऊतये) तुम्हारी ही रक्षा, तृप्ति और सुख प्राप्ति के लिये (मध्वः क्षरन्ति) मधुर रसों, आनन्दयुक्त उत्तम फलों को उत्पन्न करते हैं । हे (वसो) सबमें बसने हारे ! सर्व-व्यापक प्रभो ! (हवमानासः) तेरी स्तुति करने वाले (इन्दवः) तेरी तरफ़ भक्तिप्रवाह व प्रेमरस में द्रवित जीवगण (त्वा आ) तुझे ही अपने (स्तोत्रेषु) स्तोत्रों, स्तुति वचनों में (उप दधिरे) वर्णन करते हैं ।

आ नः सोमे स्वध्वर इयानो अत्यो न तोशते।
यं ते स्वदावन्त्स्वदन्ति गूर्तयः पौरे छन्दयसे हवम् ॥ ५ ॥ १६ ॥

भा०—हे (स्वदावन्) उत्तम अन्न वा कर्म फल के देने हारे ! (यं) जिस (ते) तेरे दिये को (गूर्त्तयः) उद्यमी, स्तुतिकर्त्ता जन उत्तम रूप से सुखपूर्वक भोगते हैं हे ऐश्वर्यवन् स्वामिन् ! (तोशते) हिंसाकारी शत्रु को दमन करने के लिये (इयानः) गमन करने वाले (अत्यः) अश्वारोही के समान तू (नः स्वध्वरे सोमे) हमारे उत्तम यज्ञ वा हिंसा-रहित और अहिंसित ऐश्वर्य के निमित्त (पौरे) नाना प्रजाओं के समूह की (हवं छन्दयसे) स्तुति को प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण कर । इति षोडशो वर्गः ॥

प्र वीरमुग्रं विविचिं धनस्पृतं विभूतिं राधसो महः ।
उद्रीव वज्रिन्नवतो वसुत्वना सदा पीपेथ दाशुषे ॥ ६ ॥

भा०—हम (महः राधसः) बड़े भारी धनैश्वर्य के स्वामी (वीरम्) वीर, (उग्रं) बलवान्, (विविचिं) न्यायपूर्वक विवेक करने वाले (धन-स्पृतम्) धन से प्रजादि को पूर्ण और पालन करने वाले, (विभू-तिम्) विशेष सामर्थ्यवान्, परमेश्वर की हम सदा स्तुति करते हैं । हे वज्रिन्) वीर्यवन् ! तू (उद्रीव) गर्दन ऊपर उठाये पराक्रमी के समान (अवतः) जगत् की रक्षा करने हारा, (वसुत्वना) अपने बड़े ऐश्वर्य के द्वारा ही (दाशुषे पीपेथ) आत्मसमर्पक भक्त का पालन करता है ।

यद्ध नूनं परावति यद्वा पृथिव्यां दिवि ।
युजान इन्द्र हरिभिर्महेमत ऋष्व ऋष्वेभिरा गहि ॥ ७ ॥

भा०—(यत् ह नूनं परावति) जो तू परम दूर भी है, (यद्-वा पृथिव्यां) वा जो तू पृथिवी पर और (दिवि च नूनं) सूर्य या महान् आकाश में भी सर्वत्र व्यापक है तू भी हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् । हे (महे-मते) महाज्ञानिन् ! तू (ऋष्वः) सब से महान् है । हे (इन्द्र)

ऐश्वर्यवन्! (हरिभिः युजानः) विद्वान् मनुष्यों द्वारा और (ऋष्वेभिः) अपने महान् गुणों करके (युजानः) योग द्वारा चिन्तन किया जाकर हमें (नूनं) शीघ्र ही (आ गहि) प्राप्त होता है।

रथिरासो हरयो ये ते अस्रिध ओजो वातस्य पिप्रति।
येभिर्नि दस्युं मनुषो निघोषयो येभिः स्वः परीयसे॥ ८॥

भा०—(ये) जो (हरयः) मनुष्य, जीवगण बलवान् अश्वों के समान ही (रथिरासः) रथारोही वीर वा रमण योग्य देह-धारी (अस्रिधः) अविनाशी वा अहिंसक हैं वे भी (वातस्य) वातवत् बलवान् और जीवनों के जीवन रूप तेरे ही (ओजः) बल पराक्रम को (पिप्रति) धारण करते हैं। (येभिः) जिनसे तू (मनुष्यः) मननशील जीव के (दस्युं) विनाशकारी शत्रु, रोगादि को भी (नि घोषयः) नष्ट करता है और (येभिः) जिन्हों से तू (स्वः परि ईयसे) समस्त आकाशों को पूर्ण करता है।

एतावतस्ते वसो विद्याम शूर नव्यसः।
यथा प्राव एतशं कृत्व्ये धने यथा वशं दशव्रजे॥ ९॥

भा०—वे (वसो) सबको बसाने हारे! सब में बसने वाले प्रभो! स्वामिन्! हे (शूर) दुष्टों के नाशक! तू (यथा) जिस धन से या जितने ऐश्वर्य से (कृत्व्ये धने) करने योग्य संग्राम के अवसर पर (एतशं) अश्वसैन्यों को (प्रावः) अच्छी प्रकार रक्षा करता और (यथा दशव्रजे) जैसे दशों दिशाओं में दश मार्ग वाले नगर में जितना ऐश्वर्य (वशं) वशकारी नगर के अध्यक्ष राजा (प्रावः) सन्तुष्ट करे हम (नव्यसः ते) अति स्तुति योग्य तेरे (एतावतः) इतने भारी ऐश्वर्य का (विद्याम) लाभ करें।

यथा कण्वे मघवन्मेधे अध्वरे दीर्घनीथे दमूनसि।
यथा गोशर्ये असिषासो अद्रिवो मयि गोत्रं हरिश्रियम् १०।१७

भा०—हे (मघवन्) पूज्य धनसम्पन्न! हे (अद्रिवः) शक्ति-

शालिन्! (यथा) जितना ऐश्वर्य (कण्वे) विद्वान् जन में (अध्वरे) हिंसारहित (मेधे) पवित्र यज्ञ में, (दीर्घ-नीथे) दीर्घ काल तक और दीर्घ मार्ग में लेजाने वाले (दमूनसि) दान्त चित्त वाले, जितेन्द्रिय पुरुष में, (यथा) जितना ऐश्वर्य तू (गोशर्ये) धनुपवाण की शक्ति से सम्पन्न योद्धा में (असिपासः) प्रदान करता है, उतना ही (हरि-श्रियम्) नाना अश्वों, मनुष्यों और विद्वानों को आश्रय देने वाला (गोत्रं) भूमि, इन्द्रिय गण, वाणी और गवादि पशु सम्पदा की रक्षा करने वाला धन (मयि) मुझ में भी प्राप्त करा। इति सप्तदशो वर्गः ॥

[५१]

श्रुष्टिगुः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ९ निचृद्बृहती। ५ विराड् बृहती। ७ बृहती। २ विराट् पंक्तिः। ४, ६, ८, १० निचृत् पंक्तिः॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

यथा मनौ सांवरणौ सोममिन्द्रापिबः सुतम्।
नीपातिथौ मघवन्मेध्यातिथौ पुष्टिगौ श्रुष्टिगौ सचा ॥ १ ॥

भा०—(यथा) जितना और जिस प्रकार (सांवरणौ) उत्तम रीति से वरण करने योग्य (मनौ) प्रजा को थामने, उनको मर्यादा में स्थापित करने वाले राजा के पद पर विराज कर हे (मघवन्) उत्तम ऐश्वर्यवन्! तू (सुतम् सोमम्) उत्पन्न ऐश्वर्य, राष्ट्र का (अपिबः) भोग करता है उतना ही हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः! तू (नीपातिथौ) मार्गदर्शी के अतिथिवत् पूज्य पद पर और (मेध्यातिथौ) अन्न यज्ञादि से सत्कार योग्य अतिथिवत् पूज्य परिव्राजक के पद पर और (पुष्टिगौ) उतना ही पुष्टि अर्थात् पशु सम्पदायुक्त भूमि के स्वामी एवं अन्नादि से समृद्ध भूमि के स्वामी के पद पर (सचा) समवेत होकर भी भोग सकता है। अर्थात् क्षत्रिय राजा के ऐश्वर्य से परिव्राट् तथा सम्पन्न वैश्य का ऐश्वर्य भी कम नहीं है।

पार्षद्वाणः प्रस्कण्वं समसादयच्छयानं जिव्रिमुद्धितम् ।
सहस्राण्यसिषासद्गवामृषिस्त्वोतो दस्यवे वृकः ॥ २ ॥

भा०—(पार्षद्-वाणः) वाणी अर्थात् वेदवाणी का सेवन करने वाला विद्वान् (शयानम्) अन्धकार में सोते के समान (जिव्रिम्) जीर्ण, वा प्रसन्न करने वाले, (उद्-हितम्) उत्तम सम्बन्ध में बद्ध (प्रस्कण्वं) उत्तम तेजस्वी, शिष्य वर्ग को (सम् असादयत्) प्राप्त करे और (वृकः दस्यवे गवां सहस्राणि सिषासद्) हल जिस प्रकार भूमि के तोड़ने वाले किसान के लाभ के लिये सहस्रों अन्न प्रदान करता , उसी प्रकार (त्वा-उतः) तेरी रक्षा में रहने वाला (वृकः) तेजोमय ज्ञान को प्रकट करने वाला (ऋषिः) ज्ञानदर्शी पुरुष (दस्यवे) दानशील आत्मसमर्पक शिष्य के लाभ के लिये (गवां सहस्राणि) सहस्रों वेदवाणियों को (असिषासत्) प्रदान करे । अथवा वह ऋषि (दस्यवे वृकः) दस्यु, दुष्ट जन के लिये वृक के समान भयजनक होकर (गवां सहस्राणि असिषासत्) सहस्रों भूमियों का भोग करता है ।

य उक्थेभिर्न विन्धते चिकिद्य ऋषिचोदनः ।
इन्द्रं तमच्छा वद नव्यस्या मत्यरिष्यन्तं न भोजसे ॥३॥

भा०—(यः) जो (चिकिद्यः) जानने योग्य, सर्ववेद्य, (ऋषि-चोदनः) ऋषियों, साक्षात् तत्वदर्शी पुरुषों से उपदेश करने योग्य आत्मा (उक्थेभिः) नाना शास्त्र-वचनों से भी (न विन्धते) नहीं जाना जाता (तम्) उस (अरिष्यन्तं न इन्द्रम्) सर्वरक्षक के समान ऐश्वर्यवान् प्रभु को (भोजसे) रक्षा और ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये, (नव्यस्या मती) अति स्तुति वाणी, द्वारा (अच्छ वद) साक्षात् उपदेश कर ।

यस्मा अर्कं सप्तशीर्षाणमानृचुस्त्रिधातुमुत्तमे पदे ।
स त्वि१मा विश्वा भुवनानि चिक्रदादिज्जनिष्ट पौंस्यम् ॥ ४ ॥

भा०—इन्द्र विषयक उपदेश। (उत्तमे पदे) परम, उत्तम पद पर विद्यमान (यस्मै) जिस प्रभु के वर्णन करने के लिये (त्रि-धातुम्) तीनों प्रकार से धारित (सप्त-शीर्षाणम् अर्कं) सात शिरों वाले अर्चना योग्य मन्त्रगण की (आनृचुः) स्तुति करते हैं, (सः तु) वही परमेश्वर (इमा विश्वा भूतानि) इन समस्त भुवनों को (चिक्रदत्) शासन करता है और (पौंस्यं जनिष्ट) पौरुष, बल, महती शक्ति प्रकट करता है, वेद मन्त्र प्रभु की स्तुति करने योग्य होने से 'अर्क' है। ऋक् यजुः साम तीन रूप से धारण करने योग्य होने से 'त्रिधातु' और सात छन्द उसके प्राण हैं।

अथवा—(यस्मै उत्तमे पदे) उत्तम पद, पर विद्यमान जिसके लिये (सप्तशीर्षाणम् त्रिधातुम् आनृचुः) सात शिरों वाला, तीनों लोकों का धारक बतलाते हैं वही इन समस्त विश्वों का शासक और शक्तिप्रकाशक है। प्रभु के सात शिर सप्त भुवन वा सप्त विकृति हैं।

यो नो॑ दा॒ता वसू॑ना॒मिन्द्रं॒ तं हू॑महे व॒यम्।
वि॒द्मा ह्य॑स्य सुम॒तिं नवी॑यसीं ग॒मेम॒ गोम॑ति व्र॒जे ॥५॥१८॥

भा०—(यः) जो (नः) हम (वसूनां दाता) समस्त जीवों का दाता, वा समस्त ऐश्वर्यों और लोकों का देने वाला है (तम् इन्द्रम् हूमहे) हम उसी ऐश्वर्यवान् की पुकार वा उसी से प्रार्थना करें। (अस्य) उसी (नवीयसीं) अति स्तुत्य (सु-मतिं) उत्तम ज्ञानयुक्त वेदवाणी को हम (विद्म) जानें और (गोमति व्रजे) इन्द्रियों रूप अश्वों से युक्त गमन साधन रथवत् इस देह में ही हम उसे (गमेम) प्राप्त करें, जानें वा (गोमति व्रजे) गौओं से युक्त व्रजवत् ज्ञान वाणियों से युक्त उपगन्तव्य आचार्य वा गुरु के अधीन रहकर हम इस 'इन्द्र' प्रभु का ज्ञान वा प्राप्ति करें। आचार्यो ब्रह्मणो मूर्त्तिः। मनु०।

यस्मै॒ त्वं व॑सो दा॒नाय॒ शिक्ष॑सि॒ स रा॒यस्पोष॑मश्नुते।
तं त्वा॑ व॒यं म॑घवन्निन्द्र गिर्वणः सु॒ताव॑न्तो हवामहे ॥ ६ ॥

भा०—हे (वसो) सबको बसाने हारे, सबमें बसने हारे, सबको आच्छादन पालन करने हारे प्रभो ! (यस्मै दानाय शिक्षसि) जिस दान-शील पुरुष को तू दान करता है (सः) वह (रायः पोषम् अश्नुते) ऐश्वर्य की वृद्धि को प्राप्त करता है । हे (गिर्वणः) वेदवाणियों से सेवने योग्य, वा वाणियों के दातः ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (मघवन्) पूजित पद-युक्त ! (वयं) हम (सुतावन्तः) उत्पन्न अनित्य पदार्थों वाले (ते त्वा हवामहे) उस तेरी प्रार्थना करते हैं । हमें भी नाना ऐश्वर्य प्रदान कर।

कुदा चुन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे ।
उपोपेन्नु मघवन्भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! स्वामिन् ! प्रभो ! तू (कदा चन) कभी भी (स्तरीः न) हिंसक नहीं है, अथवा निर्दुग्ध गाय के समान अदानशील नहीं है । तू (दाशुषे सश्चसि) दानशील, यजमान आत्म-समर्पक के सदा साथ रहता है । (मघवन्) पूजित धन युक्त ! (देवस्य ते) दानशील तेरा (दानं) दिया धन (उप-उप इत् नु पृच्यते) बरा-बर प्राप्त होता है और (भूयः इत् नु) खूब अधिक मात्रा में प्राप्त होता है ।

प्र यो ननक्षे अभ्योजसा क्रिविं वधैः शुष्णं निघोषयन् ।
युदेदस्तम्भीत्प्रथयन्नमूं दिवमादिज्जनिष्ट पार्थिवः ॥ ८ ॥

भा०—(यः) जो (ओजसा) बलपूर्वक (शुष्णम्) मेघ के विद्युत् के समान प्रजा के शोषण करने वाले बलवान् शत्रु को (वधैः) आघात-कारी शस्त्रास्त्रों से (नि घोषयन्) विनाश करता हुआ (क्रिविं) जल से कूप तड़ागवत् इस समस्त संसार को अपने पराक्रम से (अभि प्र ननक्षे) पूर्ण करता, व्यापता है और (यद्) जो (अमूं दिवम् प्रथयन् अस्तम्भीत्) इस पृथिवी को विस्तृत करता हुआ उस आकाश वा सूर्य को भी स्थिर करता

है, और (आत् इत्) अनन्तर वह (पार्थिवः) समस्त पृथिवियों का स्वामी स्वयं पृथिवीवत् माता होकर (जनिष्ट) समस्त स्थावर जंगम संसार को उत्पन्न करता है।

यस्यायं विश्व आर्यो दासः शेवधिपा अरिः।
तिरश्चिदर्ये रुशमे पवीरवि तुभ्येत्सो अज्यते रयिः॥ ९॥

भा०—(यस्य) जिस प्रभु का (विश्वः आर्यः) समस्त श्रेष्ठ (अरिः) पुरुष (दासः) सेवकवत् (शेवधि-पाः) उसी के खज़ाने की रक्षा करने वाला है। उस (अर्ये) स्वामी (रुशमे) सर्व नियन्ता, (पवीरवि) पापनिवारक राजदण्डवत् परम तप रूप वज्र के धारक प्रभु के अधीन समस्त विश्व विद्यमान है। हे प्रभो! (सः रयिः तुभ्य इत् अज्यते) यह सब मूर्त्त संसार तेरे ही गुणों के दर्शन के लिये प्रकट है। अथवा (यस्यायं विश्वः आर्यः दासः) जिसका यह समस्त श्रेष्ठ जन सेवकवत् है जिसका स्वयं अपने खजाने को बचानेवाला शत्रुतुल्य है, जो धन (अर्ये रुशमे पवीरवि) वैश्य, शस्त्रधारी क्षत्रिय में (तिरः चित्) सुगुप्त है वह भी (तुभ्य इत् अज्यते) तेरे लिये ही प्रकट प्राप्त है।

तुरण्यवो मधुमन्तं घृतश्चुतं विप्रासो अर्कमानृचुः।
अस्मे रयिः पप्रथे वृष्ण्यं शवोऽस्मे सुवानास इन्दवः॥१०॥१९॥

भा०—(तुरण्यवः) क्षिप्रकारी, कर्मकुशल (विप्रासः) विद्वान् जन (घृत-श्चुतम्) जलदाता मेघ के तुल्य उदार तेजःप्रद सूर्यवत् प्रकाश स्वरूप (मधुमन्तं) जलयुक्त समुद्रवत् अपार अन्नयुक्त पृथिवीवत् पालक (अर्क) अर्चना करने योग्य प्रभु की (आनृचुः) स्तुति प्रार्थना उपासना करते हैं कि (अस्मे रयिः पप्रथे) हमारा ऐश्वर्य बढ़े, (अस्मे वृष्ण्यं शवः) हमारा सुखवर्षक बल बढ़े। (अस्मे सुवानासः इन्दवः) हमारे उत्पन्न होते हुए, वा उत्तम प्रजा उत्पन्न करने वाले ऐश्वर्य और वीर्य हों। इत्येकोनविंशो वर्गः॥

[५२]

आयुः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ७ निचृद्बृहती । ३, ५ बृहती । ९ विराड् बृहती । २ पादनिचृत् पंक्तिः । ४, ६, ८, १० निचृत् पंक्तिः ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

यथा मनौ विवस्वति सोमं शक्रापिबः सुतम् ।
यथा त्रिते छन्द इन्द्र जुजोषस्यायौ मादयसे सचा ॥ १ ॥

भा०—हे (शक्र) शक्तिशालिन् ! (यथा) जिस प्रकार और जितना (विवस्वति मनौ) विविध प्रजाओं के स्वामी, सुव्यवस्थापक राजा के पद पर विराज कर (सुतं सोमम्) उत्पन्न ऐश्वर्य को (अपिबः) तू उपभोग करता है, और (यथा) जिस प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् (त्रिते) तीनों विद्याओं में पारंगत विद्वान् के पद पर भी (छन्दः जुजोषसि) वेद वाणी का प्रेमपूर्वक सेवन करता है उसी प्रकार तू (आयौ) मनुष्यों के बीच में (सचा) वर्त्तमान रहकर भी (मादयसे) हर्ष लाभ करता और हर्ष प्रदान करता है । वह प्रभु ही राजा के राज्य और विद्वान् के ज्ञान और मनुष्य मात्र के हर्ष को पालता, स्वीकार करता और देता है ॥

पृषध्रे मेध्ये मातरिश्वनीन्द्र सुवाने अमन्दथाः ।
यथा सोमं दशशिप्रे दशोण्ये स्यूमरश्मावृजूनसि ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! आत्मन् ! तू (पृषध्रे) जलसेचक मेघ को धारण करने वाले (मेध्ये) उत्तम अन्न के हितकारी (सुवाने) उत्पादक (मातरिश्वनि) आकाशगामी वायु में आनन्द लाभ करता है । और (यथा) जिस प्रकार (दशशिप्रे) दशों प्राणों को मुकुटवत् धारण करने वाले वा (दशोण्ये) दश प्राण युक्त (स्यूम-रश्मौ) रश्मियों से युक्त तेजस्वी (ऋजु-नसि) सरल नासिका वाले, अभ्यासी पुरुष में (सोमं) परमानन्द रस का पान करता है ।

य उक्था केवला दुधे यः सोमं धृषितापिबत् ।
यस्मै विष्णुस्त्रीणि पदा विचक्रम उप मित्रस्य धर्मभिः ॥३॥

भा०—(यः) जो (केवला उक्था दुधे) केवल उत्तम स्तुत्य वचनों को स्वीकार करता है, (यः धृपिता) जो सब दुष्टों को धर्षण करने हारा (सोमं अपिबत्) सोम रस का पान करता, उत्पन्न जगत् वा ऐश्वर्य का पुत्रवत् पालन करता है, (मित्रस्य धर्मभिः) मित्रवत् सूर्य के धारणसामर्थ्यों से (विष्णुः) व्यापक वायु (त्रीणि पदा विचक्रमे) तीनों लोकों में व्यापता है वही 'इन्द्र' है।

यस्य त्वमिन्द्र स्तोमेषु चाकनो वाजे वाजिञ्छतक्रतो ।
तं त्वा वयं सुदुघामिव गोदुहो जुहूमसि श्रवस्यवः ॥ ४ ॥

भा०—हे (वाजिन्) ऐश्वर्यवन् ! बलवन् ! हे (शत-क्रतो) अनेक प्रज्ञा वाले ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वम्) तू (यस्य) जिसके (वाजे) यज्ञ में (स्तोमेषु) स्तुतिवचनों में (चाकनः) अभिलाषा करता है, (गोदुहः सुदुघाम् इव) गौ दुहने वाले उत्तम दुग्धदात्री गौ को जिस प्रकार बुलाते हैं उसी प्रकार (वयं) हम लोग (तं त्वा) उस तुझको (श्रवस्यवः) धन, ज्ञान, यश, अन्नादि के इच्छुक होकर (जुहूमसि) तुझे पुकारते हैं, तेरी प्रार्थना करते हैं।

यो नो दाता स नः पिता महाँ उग्र ईशानकृत् ।
अयामन्नुग्रो मघवा पुरूवसु गोरश्वस्य प्र दातु नः ॥५॥२०॥

भा०—(यः नः दाता) जो हमें देता है, (सः नः पिता) वही हमें पालन करता है। वह (महान् उग्रः) बड़ा भारी, बलवान् (ईशानकृत्) समस्त ऐश्वर्य को बनाने वाला शासक है। वह (उग्रः) बलवान् (मघवा) उत्तम धनाढ्य होकर (पुरूवसु अयामन्) बहुत धन प्रदान करता है और वह (गोः अश्वस्य नः प्रदातु) गौ अश्व आदि हमें देवे।
इति विंशो वर्गः ॥

यस्मै त्वं वसो दानाय मंहसे स रायस्पोषमिन्वति ।
वसूयवो वसुपतिं शतक्रतुं स्तोमैरिन्द्रं हवामहे ॥ ६ ॥

भा०—हे (वसो) सर्व व्यापक ! (त्वं यस्मै दानाय मंहसे) तू जिस दानशील को दान देता है (सः रायः पोषम् इन्वति) वह ऐश्वर्य की समृद्धि को प्राप्त करता है । हम (वसु-पतिं) सब लोकों और जीवों के पालक (शत-क्रतुं) अनेक कर्मों के कर्त्ता, (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् प्रभु को (वसूयवः) ऐश्वर्य के इच्छुक होकर (हवामहे) स्तुति प्रार्थना करते हैं ।

कदा च न प्र युच्छस्युभे नि पासि जन्मनी ।
तुरीयादित्य हवनं त इन्द्रियमा तस्थावमृतं दिवि ॥ ७ ॥

भा०—हे प्रभो ! तू (कदाचन प्रयुच्छसि) कभी भी प्रमाद नहीं करता । (उभे जन्मनी नि पासि) इह और पर दोनों लोकों को पालन करता है । हे (तुरीय) सबसे पार ! हे (आदित्य) सब विश्व के नियन्तः ! (ते) तेरा यह (हवनं इन्द्रियम्) देने योग्य ऐश्वर्य है जो (दिवि) मोक्ष में (अमृतं) अमृतस्वरूप (आ तस्थौ) विद्यमान है । (२) इसी प्रकार जगत् आदि तीनों अवस्थाओं से अतीत आत्मा के ही इन्द्रिय विभूति हैं जो (दिवि) शिरोरूप मस्तक में जीवित जागृत रूप में विद्यमान है ।

यस्मै त्वं मघवन्निन्द्र गिर्वणः शिक्षो शिक्षसि दाशुषे ।
अस्माकं गिर उत सुष्टुतिं वसो कण्ववच्छृणुधी हवम् ॥ ८ ॥

भा०—हे (मघवन् इन्द्र) उत्तम पूजित धन के स्वामिन् ! दुष्टों के नाश करने और ऐश्वर्य के देने हारे (गिर्वणः) वाणी द्वारा स्तुति करने योग्य प्रभो ! हे (शिक्षो) दानशील ! तू (यस्मै दाशुषे) जिस दानशील पुरुष को (शिक्षसि) दान करता है वह ही सम्पन्न हो जाता है । हे (वसो) सर्वस्वामिन् ! (उत) और तू (कण्ववत्) ज्ञानी के समान (अस्माकं गिरः) हमारी वाणियों को और (सु-स्तुतिं हवम्) उत्तम स्तुति और याचना को (श्रुणुधि) श्रवण कर ।

अस्तावि मन्म पूर्व्यं ब्रह्मेन्द्राय वोचत ।
पूर्वीर्ऋतस्य बृहतीरनूषत स्तोतुर्मेधा असृक्षत ॥ ९ ॥

भा०—(मन्म) मनन करने योग्य, ज्ञानमय (पूर्व्यं) सनातन ब्रह्म वेद का (अस्तावि) स्तवन करो और उसका (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् प्रभु की स्तुति के लिये (वोचत) उच्चारण करो । (ऋतस्य) सत्य ज्ञान की (पूर्वीः) सनातन वेदवाणियों की (अनूषत) स्तुति करो, और (स्तोतुः (मेधाः) स्तुतिकर्त्ता की वाणियों और बुद्धियां स्वयं (असृक्षत) उत्पन्न होती हैं ।

समिन्द्रो रायो बृहतीरधूनुत सं क्षोणी समु सूर्यम् ।
सं शुक्रासः शुचयः सं गवाशिरः सोमा इन्द्रममन्दिषुः १०।२१

भा०—(इन्द्रः) परमेश्वर ही (रायः) समस्त ऐश्वर्यों और (बृहतीः) जगत् की बड़ी २ शक्तियों को (सम् अधूनुत) अच्छी प्रकार संचालित करता है । वही (क्षोणीः सं सूर्यम् उ सम्) समस्त पृथिवियों और सूर्य को चलाता है, (शुचयः शुक्रासः) शुद्धाचारवान्, तेजस्वी पुमान् पुरुष और (गवाशिरः सोमाः) वेदवाणी का आश्रय लेने वाले जितेन्द्रिय पुरुष (इन्द्रम् सं सम् अमन्दिषुः) अच्छी प्रकार स्तुति करते, उसे प्रसन्न करते हैं । इत्येकविंशो वर्गः ॥

[५३]

मेध्यः काण्व ऋषिः ॥ छन्दः—१, ५, ७ विराड् बृहती । ३ आर्ची स्वराड् बृहती । २, ४, ६ निचृत् पंक्तिः । ८ विराट् पंक्तिः ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

उपमं त्वा मघोनां ज्येष्ठं च वृषभाणाम् ।
पूर्भित्तमं मघवन्निन्द्र गोविदमीशानं राय ईमहे ॥ १ ॥

भा०—हे (मघवन्) उत्तम, प्रशंसित धनसम्पन्न हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ऐश्वर्यप्रद ! (मघोनां उपमानं) धनवानों के आदर्श और (वृष-

नागां च) मेघवत् सुखों की वृष्टि करने वाले उदार दाताओं में (ज्येष्ठं) सबसे बड़े, सबसे उत्तम, (पुभिद्-तमं) शत्रुओं के दृढ़ दुर्ग भेदन करने में अति कुशल जीवों के पुर रूप देहबन्धनों को भेदन करनेवाले, (गो-विदम्) मन्त्र की वाणी को जानने वाले, (ईशानं) परमेश्वर से हम (रायः ईमहे) नाना ऐश्वर्यों की याचना करते हैं ।

य आयुं कुत्समतिथिग्वमर्दयो वावृधानो दिवेदिवे ।
तं त्वा वयं हर्यश्वं शतक्रतुं वाजयन्तो हवामहे ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो (दिवे-दिवे) दिनोंदिन (वावृधानः) निरन्तर बढ़ता हुआ (आयुम्) शरण में आने वाले (कुत्सम्) स्तुति करने वाले और (अतिथिग्वम्) अतिथिवत् परमेश्वर के प्रति उत्तम स्तुति वाणी का प्रयोग करने वाले पुरुष को (अर्दयः) प्राप्त होता वा सन्मार्ग में चलाता है (तं हर्यश्वं) उस तुझ मनुष्यों को अश्वों के तुल्य सन्मार्ग में संचालन करने वाले (शतक्रतुं त्वां) सैकड़ों कर्म और प्रज्ञाओं वाले तुझ प्रभु वा विद्वान् से (वाजयन्तः) बल, ज्ञान, ऐश्वर्य की कामना करते हुए हम (हवामहे) याचना किया करें ।

अर्दयः—अर्द गतौ याचने च । भ्वादिः । स्वार्थे णिच् ।

आ नो विश्वेषां रसं मध्वः सिञ्चन्त्वद्रयः ।
ये परावति सुन्विरे जनेष्वा ये अर्वावतीन्दवः ॥ ३ ॥

भा०—(ये) जो (इन्दवः) विद्वान् तेजस्वी जन (परावति) परम ब्रह्म में (सुन्विरे) अभिषिक्त होते हैं और (ये) जो (अर्वावति) इस लोक में भी (जनेषु) मनुष्यों के बीच (सुन्विरे) प्रतिष्ठा को प्राप्त होते हैं वे (अद्रयः) मेघ के समान (नः विश्वेषां) हम सब के हितार्थ (मध्वः रसं) मधुर ज्ञान का रस ओषधि-रसवत् ही (आसिञ्चन्तु) आसेचन किया करें, प्रदान करें ।

विश्वा द्वेषांसि जहि चाव चा कृधि विश्वे सन्वन्त्वा वसु ।
शीष्टेषु चित्ते मदिरासों अंशवो यत्रा सोमस्य तृम्पसि ॥४॥२२॥

भा०—(यत्र) जिस दशा में तू (सोमस्य तृम्पसि) ऐश्वर्य से तृप्त होता है, उसी दशा में तू (विश्वा द्वेषांसि) समस्त प्रकार के द्वेषों को और द्वेष करने वाले जनों को (जहि) विनष्ट कर और (अव कृधि च) नीचा कर । (चित्ते मदिरासः) चित्त में सुप्रसन्न (अंशवः) व्याप्त विद्या-वान् (विश्वे) समस्त जन (शिष्टेषु) शिष्टों, विद्वानों के वीच में (त्वा वसु सन्वन्तु) तुझे समस्त ऐश्वर्य प्रदान करें । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

इन्द्र नेदीय एदिहि मितमेधाभिरूतिभिः ।
आ शन्तम शन्तमाभिरभिष्टिभिरा स्वापे स्वापिभिः ॥ ५ ॥

भा०—हे (शन्तम) अति शान्तिदायक ! हे (स्वापे) उत्तम वन्धो ! तू (मित-मेधाभिः) परस्पर सत् संगतियुक्त, (ऊतिभिः) रक्षाओं, और (शं-तमाभिः) अति कल्याणकारक, शान्तिदायक (अभिष्टिभिः) अभीष्ट सुख देने वाले उपायों सहित हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू हमारे (नेदीयः इत्) सदा अति समीप ही (आ इहि) प्राप्त हो ।

आजितुरं सत्पतिं विश्वचर्षणिं कृधि प्रजास्वाभगम् ।
प्र सू तिरा शचीभिर्ये त उक्थिनः क्रतुं पुनत आनुषक् ॥ ६ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! (ये) जो (ते) तेरे (उक्थिनः) उत्तम वेद-वचनों के ज्ञाता जन (शचीभिः) उत्तम वाणियों द्वारा (ते क्रतुं) तेरे यज्ञ, बुद्धि वा ज्ञान को (आनुषक्) निरन्तर (पुनते) पवित्र करते रहते हैं वह तू (प्र सु-तिर) उनको अच्छी प्रकार वढ़ा । और (प्र-जासु) प्रजाओं में (आजि-तुरं) संग्राम में शत्रुओं का नाश करने वाले (सत्पतिं) सज्जनों के पालक (विश्व-चर्षणिं) सबके द्रष्टा (आ-भगम्) सब प्रकार से भजन सेवन करने योग्य को (कृधि) अधिकारवान् कर ।

यस्ते साधिष्ठोऽवसे ते स्याम भरेषु ते।
वयं होत्राभिरुत देवहूतिभिः ससवांसो मनामहे॥७॥

भा०—(यः) जो (ते) तेरी (साधिष्ठः) सबसे उत्तम साधना करने वाला है वह (अवसे) हमारी रक्षा करने वाला हो। हम (भरेषु) यज्ञों में भी (ते स्याम) तेरे ही होकर रहें। (वयं) हम लोग (देवहूतिभिः) विद्वान् पुरुषों द्वारा स्वीकृत (होत्राभिः) वाणियों और यज्ञ सत्क्रियाओं द्वारा (ससवांसः) तेरी स्तुति करते हुए ही (मनामहे) तेरा चिन्तन म-नन किया करें।

अहं हि ते हरिवो ब्रह्म वाजयुराजिं यामि सदोतिभिः।
त्वामिदेव तममे समश्वयुर्गव्युरग्रे मथीनाम्॥८॥२३॥

भा०—हे (हरिवः) अश्वों के तुल्य मनुष्यों पर वश करने हारे! (अहं हि) मैं (ते ब्रह्म यामि) तेरे स्तोत्र, ज्ञान और महान् ऐश्वर्य की याचना करता हूं। मैं (वाजयुः) बल की कामना करता हुआ, (सदा ऊतिभिः) सदा तेरी ही रक्षाओं और शक्तियों द्वारा (आजिं यामि) युद्धादि शत्रुगण को उखाड़ डालने वाले बल की याचना करता हूं। मैं (अश्वयुः गव्युः) अश्वों और गौवों की कामना करता हुआ (मथीनां अग्रे) शत्रुओं को मथन करने वाली सेनाओं के भी अग्रभाग में (त्वाम् इत् एव) तुझे ही (सं तमने) अच्छी प्रकार स्थापित करता हूं। इति त्रयोविंशो वर्गः॥

[५४]

मातरिश्वा काण्व ऋषिः॥ १, २, ५—८ इन्द्रः। ३, ४ विश्वेदेवा देवताः॥ छन्दः—१, ५ निचृद् बृहती। ३ बृहती। ७ विराड् बृहती। २, ४, ६, ८ निचृत् पंक्तिः॥

एतत्त इन्द्र वीर्यं गीर्भिर्गृणन्ति कारवः।
ते स्तोभन्त ऊर्जमावन्घृतश्चुतं पौरासो नक्षन्धीतिभिः॥१॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (कारवः) विद्वान् स्तुति कर्त्ता जन (गीर्भिः) वाणियों द्वारा (ते) तेरे (एतत् वीर्यं) इस महान् सर्व प्रत्यक्ष बल का (गृणन्ति) उपदेश करते हैं। (ते पौरासः) वे दृढ़ेन्द्रिय पुरुष (घृत-श्रुतं) तेज के देने वाले तुझ को ही (स्तोभन्तः) स्तुति करते हुए (ऊर्जम् आवन्) बल को प्राप्त करते हैं और (धीतिभिः) उत्तम कर्मों से तुझे (नक्षन्) प्राप्त करते हैं।

नक्षन्त इन्द्रमवसे सुकृत्यया येषां सुतेषु मन्दसे।
यथा संवर्ते अमदो यथा कृश एवास्मे इन्द्र मत्स्व ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (येषां) जिन के (सुतेषु) उत्पन्न किये उत्तम कर्मों वा ऐश्वर्यों पर (मन्दसे) प्रसन्न होता है वे अपने (सुकृत्यया) उत्तम कर्म-सामर्थ्य से (अवसे) रक्षा के निमित्त (इन्द्रम्) दुष्टों के नाशक उसी स्वामी को (नक्षन्त) प्राप्त करते हैं। हे प्रभो ! तू (यथा) जिस प्रकार (संवर्त्ते) सम्यक् दृष्टि से वर्त्तने वाले सम्यङ् व्यवहारवान् पुरुष पर (अमदः) प्रसन्न होता है, और (यथा) जिस प्रकार (कृशे) तपस्या द्वारा शरीर को कृश करने वाले त्यक्तभोगी पर या निर्बल पर प्रसन्न वा कृपालु होता है उसी प्रकार तू (एव अस्मे मत्स्व) हम पर भी प्रसन्न, कृपालु रह।

आ नो विश्वे सजोषसो देवासो गन्तनोप नः।
वसवो रुद्रा अवसे न आ गमञ्छृण्वन्तु मरुतो हवम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (विश्वे देवासः) समस्त विद्वान् पुरुषो ! आप (विश्वे) सब लोग (नः) हम से (सजोषसः) प्रीतियुक्त होकर (नः उप गन्तन) हमें प्राप्त होवें। (वसवः) रक्षक, (रुद्राः) दुष्टों को रुलाने वाले, प्राणवत् प्रिय पुरुष, (नः) हमें (अवसे) रक्षार्थ (आगमन्) प्राप्त हों। और (मरुतः) वे बलवान् पुरुष (नः हवम् शृण्वन्तु) हमारा आह्वान, हमारी पुकार सुनें।

पूषा विष्णुर्हवनं मे सरस्वत्यवन्तु सप्त सिन्धवः ।
आपो वातः पर्वतासो वनस्पतिः शृणोतु पृथिवी हवम् ॥४॥२४॥

भा०—(पूषा) सर्वपोषक, सूर्य (विष्णुः) व्यापक वायु, (सरस्वती) उत्तम ज्ञान से सम्पन्न वाणी, और (सप्त सिन्धवः) शरीरस्थ सातों गतिशील और शरीर को बांधने वाले प्राण, (आपः) जल, (वातः) वायु, (पर्वतासः) मेघगण (वनस्पतिः) वनस्पति वृक्षादि, ये सब (मे हवनं भवन्तु) मेरे यज्ञाहुति को प्राप्त हों । (पृथिवी मे हवम् श्रृणोतु) समस्त पृथिवी मेरे कथन या दान यज्ञादि को श्रवण करे । मेरी प्रसिद्धि हो।

यदिन्द्र राधो अस्ति ते माघोनं मघवत्तम ।
तेन नो बोधि सधमाद्यो वृधे भगो दानाय वृत्रहन् ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (मघवत्तम) पूज्य धन के स्वामियों में सर्वश्रेष्ठ ! (यत् ते राधः) जो तेरा धन (माघोनं) धन स्वामी बनाने वाला है, तू (सधमाद्यः) सब के साथ मिलकर प्रसन्न होने वाला होकर (तेन) उस धन से (नः) हमें भी (वृधे) बढ़ाने और (नः दानाय) हमें प्रदान करने के लिये (बोधि) जान, हे (वृत्रहन्) विघ्नों के नाशक ! तू (भगः) ऐश्वर्यवान्, सर्वसेवनीय है ।

आजिपते नृपते त्वमिद्धि नो वाज आ वक्षि सुक्रतो ।
वीती होत्राभिरुत देववीतिभिः ससवांसो वि शृण्विरे ॥ ६ ॥

भा०—हे (आजिपते) युद्धों के पालक ! हे (नृपते) मनुष्यों के पालक ! हे (सुक्रतो) उत्तम प्रज्ञावान् ! (त्वम् इत् हि नः) तू ही हमें (वाजे आवक्षि) संग्राम में धारण कर । (देव-वीतिभिः) विद्वानों या शुभ गुणों के प्रकाश करने वाली (वीती) ज्ञानयुक्त (होत्राभिः) वाणियों से (ससवांसः) स्तुति करते हुए विद्वान् जन (वि श्रृण्विरे) विविध प्रकार से सुने जावें ।

सन्ति ह्यर्य आशिष इन्द्र आयुर्जनानाम् ।
अस्मान्नक्षस्व मघवन्नुपावसे धुक्षस्व पिप्युषीमिषम् ॥७॥

भा०—(अर्ये) स्वामी के आश्रय ही (जनानाम्) मनुष्यों की सब (आशिषः सन्ति) आशाएं होती हैं और (इन्द्रे) उसी ऐश्वर्यवान् प्रभु के अधीन समस्त जनों का (आयुः) जीवन है। हे (मघवन्) प्रभो! तू (अस्मान् रक्षस्व) हमारी रक्षा कर और (अवसे) हमें तृप्त करने के लिये (पिप्युषीम्) पुष्टि और वृद्धिकारक (इषं उप धुक्षस्व) अन्न प्रदान कर।

वयं त इन्द्र स्तोमेभिर्विधेम त्वमस्माकं शतक्रतो ।
महि स्थूरं शशयं राधो अह्रयं प्रस्कण्वाय नि तोशय ॥८॥२५॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (वयम्) हम (ते) तेरा (स्तोमेभिः) उत्तम स्तुतियों द्वारा (विधेम) वर्णन करें। हे (शत-क्रतो) सैंकड़ों ज्ञान विज्ञानों से सम्पन्न! (त्वं) तू (अस्माकं) हमारा ही है। तू (प्र.स्कण्वाय) उत्तम विद्वान् को (महि स्थूरं) बहुत बड़ा भारी, स्थिर (शशयं) अति प्रशंसनीय, (अह्रयं) अक्षीण, अविनाशी, (राधः नि तोशय) धन प्रदान कर। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[५५]

कृशः काण्व ऋषिः ॥ प्रस्कण्वस्य दानस्तुतिर्देवता ॥ छन्दः—१ पादनिचृद् गायत्री। २, ४ गायत्री। ३, ५ अनुष्टुप् ॥ पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

भूरीदिन्द्रस्य वीर्यं१व्यख्यमभ्यायति । राधस्ते दस्यवे वृक ॥१॥

भा०—हे (दस्यवे वृक) प्रजा के नाशक, दस्यु, दुष्ट पुरुष के नाश करने के लिये वृक के समान भयप्रद! (इन्द्रस्य ते) ऐश्वर्यवान् दुष्ट हन्ता तेरे (वीर्यं भूरि इत्) बहुत अधिक बल को ही मैं (वि अख्यम्)

विशेष रूप से साक्षात् करता हूं और (ते भूरि राधः) तेरा बहुत अधिक धन हमारे सन्मुख आता है।

शतं श्वेतास उक्षणो दिवि तारो न रोचन्ते।
मह्ना दिवं न तस्तभुः ॥ २ ॥

भा०—(दिवि) आकाश में (शतं) सैकड़ों (श्वेतासः) शुभ्र वर्ण के, (उक्षणः) नाना पिण्डों, ग्रहों उपग्रहों को वहन करने वाले सूर्यगण (तारः न) तारों के समान ही (रोचन्ते) चमकते हैं। वह (मह्ना) महान् सामर्थ्य से (दिवं न) सूर्य के समान तेजस्वी पिण्डों को भी (तस्तभुः) थाम सकते हैं, वह सब उसी प्रभु का महान् बल है।

शतं वेणूञ्छतं शुनः शतं चर्माणि म्लातानि।
शतं मे बल्बजस्तुका अरुषीणां चतुःशतम् ॥ ३ ॥

भा०—(शतं वेणून्) सौ अर्थात् अनेक वीणाएं, (शतं शुनः) सौ, अर्थात् अनेक कुत्ते (शतं म्लातानि चर्माणि) सैकड़ों बनाये हुए चमड़े, और (शतं बल्बजस्तुकाः) सौ मूंज की सी गुच्छों वाली वनभूमियां और (अरुषीणां चतुःशतम्) दीप्तियुक्त चमकती कान्ति वाली भूमियों की ४ सौ संख्या। ये सब जिस प्रकार ऐश्वर्यवान् पुरुष के अधीन होती हैं वैसे (मे) मेरे भी हों। अर्थात् वह राजसी सैकड़ों बाजे, सैकड़ों कुत्तों के समानस्वामिभक्त प्रहरी वा सेवक, सैकड़ों रक्षार्थ ढालें, और सैंकड़ों वन भूमियें, और सैकड़ों चारों ओर पके खेत ये सब ऐश्वर्यवान् वीर राजा की विभूति हैं वे हमें प्राप्त हों।

सुदेवाः स्थ काण्वायना वयोवयो विचरन्तः।
अश्वासो न चङ्क्रमत ॥ ४ ॥

भा०—हे (सुदेवाः) उत्तम कामनावान् मनुष्यो ! जीवगण ! आप लोग (काण्वायनाः स्थ) विद्वान् पुरुषों के अधीन उसके आश्रय

उसके समीप जाने वाले होकर रहो। आप लोग (वयः वयः चरन्तः) एक के बाद दूसरी अवस्था को व्यतीत करते हुए, वा एक से एक, उत्तरोत्तर बल, ज्ञान, योग्यता आदि प्राप्त करते हुए, (अश्वासः न) अश्वों के समान वीरतापूर्वक (चङ्क्रमत) बराबर कदम बढ़ाते चलो।

आदित्साप्तस्य चर्किर॒न्नानू॑नस्य॒ महि॒ श्रवः॑।

श्यावी॑रति॒ध्वसन्प॒थश्चक्षु॑षा च॒न सं॒नशे॑ ॥ ५ ॥ २६ ॥

भा०—(साप्तस्य) सातों प्राणों वा सातों विकारों के स्वामी (अनूनस्य) अन्यून अर्थात् पूर्ण पुरुष का (महि श्रवः) महान् यश (चर्किरन्) सर्वत्र ही फैला रहे हैं। (श्यावीः पथः) राजस और तामस मार्गों को विद्वान् जन अतिक्रमण करता हुआ जीवगण (चक्षुषा न) चक्षु से भी उसकी विभूतियों को (सं नशे) अच्छी प्रकार साक्षात् करता है। इति षड्विंशो वर्गः ॥

[५६]

पृषध्रः काण्व ऋषिः ॥ १—४ प्रस्कण्वस्य दानस्तुतिः । ५ अग्निसूर्यौ देवते ॥ छन्दः—१, ३, ४ विराड् गायत्री। २ गायत्री। ५ निचृत् पंक्तिः॥ पञ्चर्चं सूक्तम्॥

प्रति॑ ते दस्यवे वृक॒ राधो॑ अदर्श्यह्र॑यम्।

द्यौर्न प्र॑थि॒ना शवः॑ ॥ १ ॥

भा०—हे (दस्यवे वृक) दुष्ट चोर-पुरुषों के विनाश के लिये प्रकृति सिद्ध, तेजस्वी वीर पुरुष! (ते राधः) तेरे ऐश्वर्य को मैं (अह्रयं प्रति अदर्शम्) प्रत्यक्ष रूप में अविनाशी रूप से देखता हूं। (ते शवः) तेरा महान् बल भी (द्यौः न प्रथिना) महान् आकाश के समान विस्तृत है।

दश॒ मह्यं॑ पौतक्र॒तः स॒हस्रा॒ दस्य॑वे॒ वृकः॑।

नित्या॑द्रा॒यो अ॑मंहत ॥ २ ॥

भा०—(दस्यवे वृकः) दस्यु सत्कर्मों के नाशकारी दुष्ट पुरुष

को नाश करने या दूर करने के लिये जिस प्रकार 'वृक' के समान कठोर स्वभाव वाला, बलवान् शस्त्रधारी पुरुष ही समर्थ होता है उसी प्रकार आत्मा की शक्तियों के नाशकारी काम, क्रोध, लोभ, मोहादि भीतरी चोर डाकुओं को नाश करनेवाला ज्ञान का प्रकाशक सूर्यवत् तेजस्वी, (पौतक्रतः) पवित्र ज्ञान और पवित्र कर्म करने वाला वह प्रभु (मह्यं) मुझे (नित्यात्) नित्य, सनातन ज्ञानकोश वेद से (दशसहस्रा वचः) दश सहस्र मन्त्र रूप वचन, (अंहत) प्रदान करता है। इसी प्रकार आचार्य भी शिष्य के अज्ञान दूर करने वाला हो; और वह नित्य वेद के दस सहस्र ऋचाओं का ज्ञान प्रदान करे। वृकश्चन्द्रमा भवति, विवृतज्योतिष्को वा, विकृतज्योतिष्को वा, विक्रान्तज्योतिष्को वा। आदित्योपि वृक उच्यते यदा वृङ्क्ते। श्वापि वृक उच्यते विकर्त्तनात्। निरु० ५।४।१॥ वृको लाङ्गलो भवति विकर्त्तनात्। निरु० ६।५।२॥ अत्र दस्युपक्षे विकर्त्तनात् वृकः। आदित्यपक्षे विद्वत्पक्षे ईश्वरपक्षे च विकृतज्योतिष्को विक्रान्तज्योतिष्कोः यदावृङ्क्ते इति वृक। इति विवेकः।

दस्युः—दस्युर्दस्यतेः क्षयार्थाद् उपदस्यन्त्यस्मिन्रसा, उपदासयति कर्माणि।

शतं मे गर्दभानां शतमूर्णावतीनाम्। शतं दासाँ अति स्रजः॥३॥

भा०—वह प्रभु (मे) मुझ प्रजाजन को (गर्दभानां शतम्) सौ गर्दभ अनेक जाति के जीव, (ऊर्णावतीनाम् शतम्) ऊन वाली भेड़ों की जाति के सौ, अनेक पशु (शतं दासान्) सौ दास, भृत्य, कर्मकर (अतिस्रजः) प्रदान करता है। जब भृत्यों ने भृति अर्थात् शरीरपोषण मात्र वेतन लेकर ही कार्य करना है तो उनका एक के यहां से दूसरे के यहां परिवर्त्तन हो जाना कोई असंगत नहीं है। एक राजा का एक विद्वान् की सेवा में सैकड़ों भृत्य नियुक्त करना क्या बुरा है? जब कि उनका वेतन वैसा का वैसा और कार्य भी वैसा ही है। क्या इसी प्रकार शत्रुनाशक सेनादि के सौ २ के दस्तों का परस्पर दान-आदान नहीं होता? क्या वह बुरा है?

तन्त्रो अपि प्राणीयत पूतक्रतायै व्यक्ता ।
अश्वानामिन्न यूथ्याम् ॥ ४ ॥

भा०—(अश्वानाम् यूथ्याम् इत् न) अश्वों या घुड़सवार सैनिकों की टुकड़ी या सेना के समान ही (तत्र उ अपि) वहां भी (पूत-क्रतायै) पवित्र ज्ञान और पवित्र कर्म करने वाले व्यक्ति की सेवा में उपकार के लिये (व्यक्ता) स्पष्टरूप से (प्रअनीयत) उक्त सैकड़ों पशु गधे, भेड़ और भृत्यों को कार्य में लगा दिया जावे ।

अचेत्यग्निश्चिकितुर्हव्यवाट् स सुमद्रथः । अग्निः शुक्रेण शोचिषा बृहत्सूरो अरोचत दिवि सूर्यो अरोचत ॥ ५ ॥ २७ ॥

भा०—(चिकितुः) ज्ञानवान् पुरुष (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी, अग्रनायक (हव्य-वाट्) उत्तम अन्न को ग्रहण करने वाला हो । (सः) वह (सुमद्-रथः) उत्तम स्वरूप, और उत्तम रथ वाला हो । वह (शुक्रेण शोचिषा) कान्तियुक्त तेज से (अग्निः) अग्नि के समान ही, (शुक्रेण शोचिषा) वीर्य और तेज, ब्रह्मचर्य और उसके प्रभाव से युक्त, (बृहत् सूरः) महान् सूर्य के समान (अरोचत) चमके, प्रकाशित हो, सबको प्रिय लगे । (दिवि सूर्यः) आकाश में सूर्य के समान वह (दिवि) ज्ञान विज्ञान वा उस पृथिवी पर (अरोचत) चमकता है । इति सप्तविंशो वर्गः॥

[५७]

मेध्यः काण्व ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप् । २, ३ निचृत् त्रिष्टुप् । ४ पादनिचृत् त्रिष्टुप् ॥ चतुर्ऋचं सूक्तम् ॥

युवं देवा क्रतुना पूर्व्येण युक्ता रथेन तविषं यजत्रा ।
आगच्छतं नासत्या शचीभिरिदं तृतीयं सवनं पिबाथः ॥ १ ॥

भा०—हे (नासत्या) सदा सत्याचरणशील स्त्री पुरुषो ! (युवं) आप दोनों (देवा) उत्तम दानशील, ज्ञान धनादि के दान देने में समर्थ

होकर (पूर्व्येण) अपने पूर्व के, वा शान्तिपूर्ण (क्रतुना) कर्म सामर्थ्य से (युक्ता) युक्त एवं सावधान, एकाग्रचित्त, (यजत्रा) यज्ञशील दानपरायण, ईश्वरोपासना में रत होकर (तविषं) बल या दृढ़तापूर्वक (आ गच्छतम्) और आगे बढ़ो। (शचीभिः) शक्तियों और वेदवाणियों द्वारा (इदं तृतीयं सवनं) इस तृतीयसवन, तीसरे आश्रम को भी (पिबथः) पालन करो।

अथ यान्यष्टाचत्वारिंशद् वर्षाणि तत् तृतीयं सवनं। अष्टाचत्वारिंशदक्षरा जगती। जागतं तृतीयं सवनं तस्यादित्या अन्वायत्ताः। प्राणा वा आदित्या एतेहीदं सर्वमाददते। तं चेदेतस्मिन् वयसि किञ्चिदुपतपेत्स ब्रूयात् प्राणा आदित्या इदं मे तृतीयसवनमनुसंतनुतेति माहं प्राणानामादित्यानां मध्ये यज्ञो विलोप्सीयेत्युद्धैव तत एत्यगदो हैव भवति॥ (छान्दोग्योपनिषद्। अ० ३। ख० १६॥

जीवन के ४८ वर्ष बीतने पर तीसरा सवन है। वह जगत् के उपकारार्थ होता है। उसका ज्ञापक जगतीछन्द है। जगतीछन्द के ४८ अक्षर होते हैं। उसको आदित्य प्राप्त होते हैं। प्राण आदित्य हैं, वे उसका ग्रहण करते हैं। इस अवस्था में तप करना यज्ञ में तृतीय सवन के समान है। जो यज्ञ का नाश न करे वह उन्नति को प्राप्त होता है और उसके सब दुःखों का नाश होता है।

युवां देवास्त्रय एकादशासः सत्याः सत्यस्य ददृशे पुरस्तात्।
अस्माकं यज्ञं सवनं जुषाणा पातं सोममश्विना दीद्यग्नी॥ २॥

भा०—(देवाः) दिव्य गुणों के धारण करने वाले (त्रयः एकादशासः) ११ × ३ = ३३ (सत्याः) सत् गुण से युक्त हैं। विद्वान् पुरुषों ने (सत्यस्य पुरस्तात् ददृशे) इस सत्य का पहले ही दर्शन किया है। हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो! (दीद्यग्नी) प्रज्वलिताग्नि होकर (युवां) आप दोनों (अस्माकं) हमारे (सवनं यज्ञं) यज्ञ

सवन का प्रेमपूर्वक सेवन करते हुए (सोमं पातम्) यज्ञ में ओषधि रसवत् देह में वीर्य का पालन और उसका ज्ञान-अर्जनादि में उपयोग किया करो।

पनाय्यं तदश्विना कृतं वां वृषभो दिवो रजसः पृथिव्याः।
सहस्रं शंसा उत ये गविष्टौ सर्वाँ इत्ताँ उप याता पिबध्यै ॥ ३ ॥

भा०—(दिवः) आकाश (रजसः) अन्तरिक्ष और (पृथिव्याः) भूमि का (वृषभः) मेघ, सूर्य अग्निवत् वर्षण करने वाला, विद्वान् पुरुष (वां) तुम दोनों के प्रति (पनाय्यं) स्तुत्य (कृतं) कर्त्तव्य कर्म का उपदेश करे। (ये) जो विद्वान् लोग (गविष्टौ) वेद-वाणियों के ज्ञान प्रज्ञान के निमित्त (सहस्रं शंसा) सहस्रों मन्त्रों का उपदेश करते हैं हे (अश्विना) जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो! (तान् सर्वान्) उन सब के (उप) पास (पिबध्यै) व्रत पालन और ज्ञान प्राप्ति के लिये (उप यातम्) प्राप्त होवो।

अयं वां भागो निहितो यजत्रेमा गिरो नासत्योप यातम्।
पिबतं सोमं मधुमन्तमस्मे प्र दाश्वांसमवतं शचीभिः ॥४॥२८॥

भा०—हे (नासत्या) असत्य का परित्याग कर सत्य व्रत का ही पालन करने की प्रतिज्ञा करने वाले स्त्री पुरुषो! आप दोनों (यजत्रा) यज्ञशील; दानशील होकर (इमा गिरः उप यातम्) इन वेद-वाणियों को प्राप्त करो। (अयं वां भागः निहितः) यह तुम दोनों का सेवन करने योग्य मार्ग निश्चित किया गया है। (अस्मे) हमारे इस (मधुमन्तम्) मधुर ज्ञान से युक्त (सोमं) उपदेश का (पिबतं) पान करो और (शचीभिः) उत्तम वाणियों, शक्तियों और सत्क्रियाओं से (दाश्वांसम् प्र अवतम्) ज्ञानदाता को उत्तम रीति से प्राप्त होवो और उसकी रक्षा करो। इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

[५८]

मेध्यः काण्व ऋषिः ॥ १ विश्वेदेवा ऋत्विजो वा । २, ३ विश्वेदेवा देवताः ॥
छन्दः—१ भुरिक् त्रिष्टुप् । २ निचृत् त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् ॥

यमृत्विजो बहुधा कल्पयन्तः सचेतसो यज्ञमिमं वहन्ति । यो अनूचानो ब्राह्मणो युक्त आसीत्का स्वित्तत्र यजमानस्य संवित् ॥ १ ॥

भा०—(यं) जिस (यज्ञं) पूजा, अर्चना, उपासना करने योग्य परमेश्वर की (बहुधा) बहुत से प्रकारों से (कल्पयन्तः) कल्पना करते हुए, (सचेतसः) ज्ञानवान्, तत्समान चित्त होकर (ऋत्विजः) प्रति ऋतु, प्रति मास, ज्ञानपूर्वक यज्ञोपासना करने वाले, विद्वान्जन (इमं) इस उपास्य यज्ञ को (वहन्ति) हृदय में ज्ञान और कर्मरूप से धारण करते हैं । (यः) जो (अनूचानः) विद्वान्, बहुश्रुत (ब्राह्मणः) ब्रह्म, वेद का ज्ञाता पुरुष (युक्तः आसीत्) इस यज्ञ वा उपासना कार्य में नियुक्त होता है (तत्र) उसमें (यजमानस्य का स्वित् संवित्) यजमान की किस प्रकार मनोभावना, वा पारमार्थिक प्राप्ति होती है ?

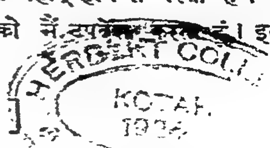
एक एवाग्निर्बहुधा समिद्ध एकः सूर्यो विश्वमनु प्रभूतः ।
एकैवोषाः सर्वमिदं वि भात्येकं वा इदं वि बभूव सर्वम् ॥२॥

भा०—उस उपास्य को यज्ञ द्वारा उपासना करने में यजमान की ऋत्विजों के साथ इस प्रकार की सम्यग् दृष्टि होनी चाहिये कि—जिस प्रकार (एकः एव अग्निः) एक ही अग्नि (बहुधा समिद्धः) आहवनीय, गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि आदि नाना प्रकार से संदीप्त किया जाता है, और जिस प्रकार (एकः सूर्यः) एक ही सूर्य (विश्वम् अनु प्रभूतः) समस्त विश्व के प्रति प्रकाश ताप देने और जगत् के गतिमान् पिण्डों को स्तम्भन करने में पर्याप्त समर्थ होता है और जिस प्रकार (एका एव उषाः) एक ही उषा (इदं सर्वं वि भाति) इस सब ब्रह्माण्ड को विशेष रूप से चमका देती

है, इसी प्रकार (इदं) यह (सर्वम्) सब भी (एकं वा वि बभूव) एक ही सत् पदार्थ नाना रूप से प्रकट होता है। समस्त विश्व में वही परमात्मा, अग्निवत् स्वप्रकाश, सूर्यवत् सर्वप्रकाशक और उषा वत् सर्व जगत् का प्रवर्तक है।

ज्योतिष्मन्तं केतुमन्तं त्रिचक्रं सुखं रथं सुषदं भूरिवारम्।
चित्रामघा यस्य योगेऽधिजज्ञे तं वां हुवे अति रिक्तं पिबध्यै ३।२९

भा०—विराट् रथ का वर्णन। (यस्य योगे) जिसके प्राप्त होने पर (चित्रा मघा अधिजज्ञे) अद्भुत ऐश्वर्य की विभूति उत्पन्न होती है (तं रिक्तम्) सर्वातिशायी, सब से बढ़ के शक्तिशाली उसका (पिबध्यै) आनन्द-रस पान करने के लिये (वां अति हुवे) आप दोनों को मैं उपदेश करता हूं। वह कैसा है। अग्नि के समान (ज्योतिष्मन्तं) ज्योतिष्मान् तेजोमय (केतुमन्तं) ज्ञानवान् (त्रिचक्रं रथं) रथ के समान तीन चक्रों वाला, (सुखं) सुखप्रद, उत्तम आकाशों, वा इन्द्रिय वा छिद्रों से युक्त, (सु-षदं) उत्तम रीति से सुखपूर्वक रहने योग्य, व सुख से जाने या गति करने वाला, (भूरि-वारम्) बहुतों से वरणीय, बहुत से कष्टों का वारक है, (तं वा हुवे) मैं उसका तुमको उपदेश करता हूं। विराट् प्रभु ईश्वर, ज्योतिस्वरूप, ज्ञानवान् है। प्रकृति के तीन गुण उसके तीन चक्र अर्थात् संसार के रचना करने के साधनवत् हैं वह आनन्दमय, सुख से प्राप्य, सहस्रों कष्टों का वारण करता है। सब से महान् होने से 'रिक्त' है। उस ब्रह्मरस का पान करने के लिये सबको मैं उपदेश करता हूं। इत्येकोनत्रिंशो वर्गः॥



[५९]

सुपर्णः काण्व ऋषिः॥ इन्द्रावरुणौ देवते॥ छन्दः—१ जगती। २, ३ निचृज्जगती। ४, ५, ७ विराड् जगती। ६ त्रिष्टुप्॥ सप्तर्चं सूक्तम्॥

इमानि वां भागधेयानि सिस्रत इन्द्रावरुणा प्र महे सुतेषु वाम्।
यज्ञेयज्ञे ह सवना भुरण्यथो यत्सुन्वते यजमानाय शिक्षथः ॥१॥

भा०—ओषधियों में जिस प्रकार विद्युत् तत्व, और रोगनिवारक जल तत्व दोनों ही पान करने वाले को बल देते और उसके रसों को पुष्ट करते हैं उसी प्रकार हे (इन्द्रा वरुणा) इन्द्र, ऐश्वर्यवन्! शत्रुहन्तः! हे वरुण, दुःखवारक सर्वश्रेष्ठ! सेनापति, राजन्! (सुतेषु) उत्पन्न ऐश्वर्यों के निमित्त (वाम्) तुम दोनों का (प्र महे) उत्तम आदर करता हूं। (इमानि) ये (वां भागधेयानि) आप दोनों के सेवनीय अंश (प्र सिस्रते) फैल रहे हैं। (यज्ञे यज्ञे ह) प्रत्येक यज्ञ में (यत्) जो आप दोनों (यजमानाय) यजमान, यज्ञकर्त्ता को (शिक्षथः) साहाय प्रदान करते हो और (सवना भुरण्यथः) नाना उत्तम ऐश्वर्यों को पुष्ट करते हो इसलिये तुम्हारे देने योग्य अंश हैं।

निः षिध्वरीरोषधीराप आस्तामिन्द्रावरुणा महिमानमाशत।
या सिस्रतू रजसः पारे अध्वनो ययोः शत्रुर्नकिरादेव ओहते ॥२॥

भा०—राष्ट्र में (इन्द्रा वरुणा) सेनापति और राजा वा सेनापति दोनों ही (आस्ताम्) विराजें, स्थिर आसन पर बैठें। और (ओषधीः आपः) विशेष तेज धारण करने वाली आप्त प्रजागण (निः-षिध्वरीः) शत्रुओं का निषेध, परिहार करने में समर्थ होकर (महिमानम् आशत) महान् सामर्थ्य को प्राप्त करें। (ययोः शत्रुः) जिन दोनों का का शत्रु (नकिः आत् एव ओहते) कोई भी समर्थ नहीं होता, और (या) जो दोनों (रजसः पारे अध्वनः) अन्तरिक्ष के पार के मार्ग में (सिस्रतुः) जाते हैं वे उत्तम आसन पर विराजें।

सत्यं तदिन्द्रावरुणा कृशस्य वां मध्व ऊर्मिं दुहते सप्त वाणीः।
ताभिर्दाश्वांसमवतं शुभस्पती यो वामदब्धो अभि पाति चित्तिभिः ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्रावरुणा) ऐश्वर्यवन्! हे वरण करने योग्य श्रेष्ठ जनो! (वां) आप दोनों के प्रति (कृशस्य) तपस्या द्वारा कृश हुए तपस्वी जन की (सप्त वाणीः) सातों छन्दों वाली वेद-वाणियां (सत्यं) सत्य ज्ञान और (मध्वः) मधुर, आनन्दप्रद ज्ञान के (ऊर्मिम्) तरंग को (दुहते) दोहन या प्रदान करता है, अथवा, आप दोनों की वा आप दोनों के विषयक वाणियां तपस्वी जन को सत्य ज्ञान और आनन्द प्रदान करती हैं। (ताभिः) उन वाणियों से आप दोनों (शुभः पती) शुभ, कल्याण मार्ग के पालक आप दोनों उस (दाश्वांसम् अवतम्) दानशील भद्र पुरुष की रक्षा वा ज्ञान दान करते हो। जो (अदब्धः) अबाधित होकर (वान्) आप दोनों के (चितिभिः) उत्तम ज्ञानों उत्तम विचारों द्वारा (अभिपाति) रक्षा करता है।

घृतप्रुषः सौम्या जीरदानवः सप्त स्वसारः सदन ऋतस्य। या ह वामिन्द्रावरुणा घृतश्चुतस्ताभिर्धत्तं यजमानाय शिक्षतम् ४।३९

भा०—हे (इन्द्रा वरुणा) ऐश्वर्यवन्! हे श्रेष्ठ पुरुष! आचार्य स्वयंवृत गुरो! (याः) जो (वाम्) आप दोनों की, (घृत-प्रुषः) जल बिन्दु-निषेकवत् शीतल सुखदायिनी, स्नेहयुक्त, (सौम्या) सौम्य, उत्तम शिष्यों के हितकारिणी, (जीर-दानवः) जीवन प्रदान करने वाली, (सप्त-स्वसारः) सात बहनों के समान सात छन्दोमयी स्वयं अनायास बाहर आने वाली, वा सुखपूर्वक अज्ञान का नाश करने वाली, (घृत-श्चुतः) तेजः प्रकाश के देने वाली वाणियां हैं (ताभिः) उन वाणियों से आप दोनों (यजमानाय) दानशील, आत्मसमर्पक जन को (ऋतस्य सदने) सत्य ज्ञान और न्याय के स्थान में (धत्तम्) स्थापित करो और (शिक्षतम्) उत्तम शिक्षा करो।

अवोचाम महते सौभगाय सत्यं त्वेषाभ्यां महिमानमिन्द्रियम्। अस्मान्त्स्विन्द्रावरुणा घृतश्चुतस्त्रिभिः साप्तेभिरवतं शुभस्पती ५

भा०—(महते सौभगाय) बड़े भारी सुखप्रद ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये (त्वेषाभ्याम्) दीप्तियुक्त, तेजस्वी, इन्द्र और वरुण, विद्युत् और जलवत् शत्रु नाशक और दुःखवारक जनों के (सत्यं महिमानम्) सच्चे महत्व और सच्चे (इन्द्रियम्) ऐश्वर्य की (अवोचाम) हम स्तुति करें। हे (शुभः-पती) शुभ गुणों और कर्मों के पालको ! आप दोनों (त्रिभिः सप्तेभिः) ३ × ७ = २१ तत्वों से (घृत-श्रुतः) जलप्रद, वा घृताहुति देने वाले (अस्मान्) हम लोगों का सूर्य जल, वा विद्युत् जल के समान (सु अवतम्) सदा अच्छी प्रकार रक्षा करो।

इन्द्रा॑वरुणा॒ यदृ॒षिभ्यो॑ मनी॒षां वा॒चो म॒तिं श्रु॒तम॑दत्त॒मग्रे॑ ।
यानि॒ स्थाना॑न्यसृजन्त॒ धीरा॑ य॒ज्ञं त॑न्वा॒नास्तप॑सा॒भ्य॑पश्यम् ॥६॥

भा०—हे (इन्द्रावरुणा) सत्य ज्ञान के साक्षात् दर्शन करने वाले 'इन्द्र' और गुरु, आचार्य रूप से वरण करने योग्य और पापों से निवारण करने हारे श्रेष्ठ जनो ! आप दोनों (यत्) जिस (मनीषाम्) ज्ञान की प्रेरणा, और (याः वाचः) जिन वाणियों और (याम् मतिम्) जिस बुद्धि और (यत् श्रुतम्) गुरु द्वारा श्रवण करने योग्य जिस वेदोपदेश को (अग्रे) सबसे प्रथम (अदत्तम्) प्रदान करते हो और या जिन (स्थानानि) स्थानों, पदों या गृहादि शालाओं, आश्रमों वा लोकों को (धीराः) बुद्धिमान् लोग (यज्ञं तन्वानाः) यज्ञ का विस्तार करते हुए (असृजन्त) बनाते हैं उन सब को मैं (तपसा अभि अपश्यम्) तप द्वारा साक्षात् करूं।

इन्द्रा॑वरुणा सौमन॒समदृ॑प्तं रा॒यस्पोषं॒ यज॑मानेषु धत्तम् ।
प्र॒जाम्पु॒ष्टिम्भू॑तिम॒स्मासु॑ धत्तं दीर्घायु॒त्वाय॒ प्र ति॑रतं न॒ आयुः॑ ॥७॥३१

भा०—हे (इन्द्रावरुणा) पूर्वोक्त इन्द्र वरुण ! हे तत्वदर्शिन् ! हे गुरो ! आप दोनों (यजमानेषु) सत्कार, मान, दान, यज्ञ, सत्संग आदि करने वाले जनों में (अदृप्तं सौमनसं) दर्प या गर्व से रहित उत्तम चित्त का भाव और (अदृप्तम् रायः पोषम् धत्तम्) गर्व से रहित धनैश्वर्य की समृद्धि

धारण कराओ और आप के सत्संगी लोगों में गर्वरहित शुद्ध चित्त और धनसम्पत्ति हो। (अस्मासु) हम में (प्रजां, पुष्टिम्, भूतिम् धत्तम्) उत्तम सन्तान, उत्तम पुष्टि और उत्तम धनसमृद्धि धारण कराओ। और (नः आयुः) हमारी आयु को (दीर्घायुत्वाय) दीर्घ जीवन प्राप्त करने के लिये (प्र तिरतम्) बढ़ाओ। इत्येकत्रिंशो वर्गः॥ इति षष्ठोऽनुवाकः॥

इति वालखिल्यं समाप्तम्॥ [1]

[६०]

भर्गः प्रागाथ ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१, ६, १३, १७ विराड् बृहती। ३, ५ पादनिचृद् बृहती। ११, १५ निचृद् बृहती। ७, १९ बृहती। २ आर्ची स्वराट् पंक्तिः। १०, १६ पादनिचृत् पंक्तिः। ४, ६, ८, १४, १८, २० निचृत् पंक्तिः। १२ पंक्तिः॥ विंशत्यृचं सूक्तम्॥

अग्न आ याह्यग्निभिर्होतारं त्वा वृणीमहे।
आ त्वामनक्तु प्रयता हविष्मती यजिष्ठं बर्हिरासदे॥ १॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन्! हे सर्वाग्रणी नायक! हे प्रकाशस्वरूप! तू (अग्निभिः) गार्हपत्यादि नाना अग्नियों सहित यज्ञाग्नि के समान वा अग्नियों सहित होता के समान तू (अग्निभिः) अन्य ज्ञानी पुरुषों तथा अग्रणी, ज्ञान-प्रकाशक तेजस्वी पुरुषों के साथ (आ याहि) प्राप्त हो। (होतारं त्वां वृणीमहे) अपने समीप प्रेम से बुलाने और ज्ञान ऐश्वर्यादि देने वाले तुझ को हम वरण करते, चाहते और तुझ से ही याचना करते हैं। (यजिष्ठं) अतिदानशील (त्वाम्) तुझ को (हविष्मती) दी हुई हवि वाली आहुति अग्नि को जैसे प्रकाशित करती है उत्तम हवि,

[1] वालखिल्यसूक्ते सायणीयं भाष्यं नास्ति। ऐतरेयभाष्येऽपि तेन अष्टावेव वालखिल्यानि स्वीक्रियन्ते। माक्समूलरादि सम्पादितायां तु ऋक्संहितायामेकादश सूक्तानि पठ्यन्ते। तान्येवात्र व्याकृतानि।

ग्राह्य ज्ञानादि से युक्त (प्रयता) अच्छी प्रकार सुसंयत, सुप्रवद्ध वाणी वा नीति (बर्हिः) आसनवत् वृद्धिशील राष्ट्र, वा प्रजाजनों वा लोकों पर (आसदे) शासनार्थ विराजने के लिये (आ अनक्तु) अच्छी प्रकार प्रकाशित करे, वह तेरे गुणों को दर्शावे।

अच्छा हि त्वा सहसः सूनो अङ्गिरः स्रुचश्चरन्त्यध्वरे।
ऊर्जो नपातं घृतकेशमीमहेऽग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ॥ २॥

भा०—हे (सहसः सूनो) वल, सैन्यादि के प्रेरक ! हे (अङ्गिरः) अंग में रसवत् राष्ट्र में वलवन् ! (त्वा हि अच्छ) तुझे लक्ष्य करके ही (अध्वरे स्रुचः) यज्ञ में स्रुचों के समान ही समस्त प्रजागण, (चरन्ति) चलते हैं। हम (ऊर्जः नपातं) वल, उत्तम अन्न और वृष्टि को सूर्यादि के तुल्य नष्ट न होने देने वाले वा शक्ति के पुत्रवत् उससे प्रजाओं को बांधने और उनको स्वयं प्रवद्ध करने वाले (घृत-केशम्) स्निग्ध केश वाले, सुकेश, एवं प्रदीप्त तेज को केशोंवत् धारण करने वाले (यज्ञेषु पूर्व्यम्) यज्ञों, सत्संगों में एवं यज्ञादि कार्यों के निमित्त, सबसे पूर्व, श्रेष्ठ, (अग्निम् ईमहे) अग्रणी, तेजस्वी ज्ञानादि के प्रकाशक पुरुष को ही हम प्राप्त हों और उससे ही (ऊर्जः ईमहे) वलों, अन्नों आदि की याचना करते हैं।

अग्ने कविर्वेधा असि होता पावक यक्ष्यः।
मन्द्रो यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यो विप्रेभिः शुक्र मन्मभिः ॥ ३ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी ! तेजस्विन् ! ज्ञानप्रकाशक विद्वन् ! प्रभो ! स्वामिन् ! तू (कविः असि) मेधावी, क्रान्तदर्शी विद्वान् हो तू (वेधाः असि) बुद्धिमान् कार्यकर्त्ता, फलों का सम्पादनकर्त्ता, जगत् का विधाता (असि) है। हे (पावक) पवित्र करने हारे ! तू (यक्ष्यः) पूज्य उपास्य (होता) सब ऐश्वर्यों का दाता है। तू (मन्द्रः) स्तुति योग्य, सबको हर्ष आनन्द का देने वाला, (यजिष्ठः) सबसे वड़ा दानी (अध्व-

रेषु) यज्ञों में (मन्मभिः) उत्तम मन्त्रों द्वारा और (विप्रेभिः) विद्वानों द्वारा (ईड्यः) स्तुत्य है ।

अद्रोघमा वहोशतो यविष्ठ्य देवाँ अजस्र वीतये ।
अभि प्रयांसि सुधिता वसो गहि मन्दस्व धीतिभिर्हितः ॥ ४ ॥

भा०—हे (यविष्ठय) बलवन् ! हे (अजस्र) अविनाशिन् ! नित्य ! तू (अद्रोघम्) द्रोहरहित मुझ को (उशतः देवान्) उत्तम कामना वा प्रीति करने वाले देव, विद्वान् पुरुषों के पास, वा मेरे प्रति उत्तम विद्यादि के इच्छुक शिष्यों, वा विद्वानों को (वीतये) ज्ञानप्रकाश करने, रक्षा करने और उत्तम अन्नादि खाने के लिये (आ वह) प्राप्त करा । हे (वसो) विद्वन् ! पितावत् सबको बसाने वाले ! तू (सु-धिता) उत्तम भाव से स्थापित (प्रयांसि) उत्तम अन्नों को, भावों को (अभि गहि) प्राप्त कर । तू (हितः) स्थापित वा समाहित होकर (धीतिभिः मन्दस्व) उत्तम कर्मों और स्तुति, उपदेश प्रद वाणियों से प्रसन्न और तृप्त हो ।

त्वमित्सप्रथा अस्यग्ने त्रातर्ऋतस्कविः ।
त्वां विप्रासः समिधान दीदिव आ विवासन्ति वेधसः ॥५॥३२॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! प्रकाशस्वरूप प्रभो ! (त्वम् इत्) तू ही (स-प्रथाः) सब से बड़ा, (असि) है । हे (त्रातः) रक्षक ! तू ही (ऋतः) सत्यस्वरूप, न्यायशील और तू ही (कविः) भूत भविष्यादि को लांघ कर सर्वोपरि द्रष्टा है । हे (सम्-इधान) समान भाव से सदा सर्वत्र देदीप्यमान ! हे (दीदिवः) तेजस्विन् ! (वेधसः) कर्त्ता, विद्वान्, (विप्रासः) कर्त्तव्य पुरुष ! (त्वाम् आविवासन्ति) यज्ञाग्निवत् तेरी ही सेवा करते हैं । इसी से सर्वोपरि नायक का भी वर्णन किया । इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

शोचा शोचिष्ठ दीदिहि विशे मयो रास्व स्तोत्रे महाँ असि ।
देवानां शर्मन्मम सन्तु सूरयः शत्रूषाहः स्वग्नयः ॥ ६ ॥

भा०—हे (शोचिष्ठ) अति तेजस्विन्, तू (शोचा) तेज से (दीदिहि) चमका। (स्तोत्रे विशे) स्तुति करने वाली प्रजा को (मयः रास्व) सुख प्रदान कर। (देवानां महान् असि) विद्वानों के बीच और सब गुणों में, प्रकाश युक्त किरणों में सूर्यवत् तू महान् है। राजा चाहे कि (मम शर्मन्) मेरी शरण में, मेरे गृह में (शत्रु-साहः) शत्रुओं को पराजय करने वाले वीर पुरुष (सूरयः) विद्वान् और (सु-अग्नयः) उत्तम अग्निवत् तेजस्वी नायक हों।

यथा चिद्वृद्धमंतसमग्ने संजूर्वसि क्षमि।
एवा दह मित्रमहो यो अस्मध्रुग्दुर्मन्मा कश्च वेनति ॥ ७ ॥

भा०—(यथा चित्) जिस प्रकार अग्नि (क्षमि) पृथिवी पर पड़े २ (वृद्धम् अतसम्) बड़े भारी लकड़ को भी जला देता है (एव) उसी प्रकार हे (अग्ने) तेजस्विन्! नायक! हे (मित्रमहः) मित्रों से पूज्य वा मित्रों में महान्! (क्षमि) भूमि पर विद्यमान (वृद्धम्) बढ़े हुए उसको आवश्य (दह) जला (यः) जो (अस्मध्रुक्) हमारा द्रोही (दुर्मन्मा) दुष्ट चित्त वाला, (कः च वेनति) कोई भी यज्ञ करता, शोभा पाता है, या अपने बाजे बजाता है या आदर चाहता है। वेनति—वेनृ गतिज्ञान चिन्तानिशामनवादित्रग्रहणेषु। अथवा वेनतिर्गतिकर्मा, कान्तिकर्मा, अर्चतिकर्मा च।

मा नो मर्ताय रिपवे रक्षस्विने माघशंसाय रीरधः।
अस्रेधद्भिस्तरणिभिर्यविष्ठ्य शिवेभिः पाहि पायुभिः ॥ ८ ॥

भा०—हे (यविष्ठ्य) अतिबलशालिन्! तू (नः) हमें (रिपवे मर्त्ताय) शत्रु मनुष्य और (रक्षस्विने) दुष्ट पुरुषों वाले के हित (मा रीरधः) मत पीड़ित कर और तू (अघ-शंसाय मा रीरधः) पाप की शिक्षा देने वाले के अधीन मत कर। तू (अस्रेधद्भिः) अहिंसक, (तरणिभिः) संकटों से पार उतारने में समर्थ दयाशील (शिवेभिः) शान्तिकारक, कल्याणकारी, (पायुभिः) पालनकर्त्ताओं द्वारा (पाहि) पालन कर।

पाहि नो अग्न एकया पाह्युत द्वितीयया।
पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जाम्पते पाहि चतसृभिर्वसो ॥ ९ ॥

भा०—हे (वसो) अपने अधीन प्रजाओं वा शिष्यगणों को बसाने वाले प्रजापते ! हे (ऊर्जाम्पते) नाना अन्नों, बलों के पालक ! तू (नः) हमें (एकया गिरा पाहि) एक वेदवाणी से पालन कर। (उत द्वितीयया गिरा पाहि) और दूसरी वेद वाणी से भी पालन कर। (तिसृभिः गीर्भिः पाहि) तीन वेद वाणियों से पालन कर। (चतसृभिः गीर्भिः पाहि) चारों वेद वाणियों से पालन कर।

पाहि विश्वस्माद्रक्षसो अराव्णः प्र स्म वाजेषु नोऽव।
त्वामिद्धि नेदिष्ठं देवतातय आपिं नक्षामहे वृधे ॥ १० ॥ ३३ ॥

भा०—हे राजन् ! प्रभो ! तू (नः) हमें (विश्वस्माद् रक्षसः अराव्णः) सब प्रकार के दुष्ट और शत्रु से (पाहि) बचा। और (नः) हमें (वाजेषु) संग्रामों में भी (प्र अव स्म) अच्छी प्रकार रक्षा कर। (देवतातये) विद्वान् वीर आदि जनों के हितार्थ (त्वाम् इत् हि नेदिष्ठं) तुझ को ही अति निकट का (आपिं) बन्धु जान कर (वृधे) अपनी वृद्धि के लिये (नक्षामहे) प्राप्त होते हैं। इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः ॥

आ नो अग्ने वयोवृधं रयिं पावक शंस्यम्।
रास्वा च न उपमाते पुरुस्पृहं सुनीती स्वयशस्तरम् ॥ ११ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! ज्ञानशालिन् ! हे (पावक) पवित्र करने हारे पतितपावन ! तू (नः) हमें (शंस्यं) प्रशंसनीय (वयोवृधं) आयु, बल का वर्धक (रयिम्) ऐश्वर्य (आ रास्व) सब ओर से प्राप्त करा। हे (उपमाते) अनुपम ! तू (नः) हमें (सुनीती) उत्तम नीति से (स्वयशस्तरम्) स्वजन, धन, कीर्त्ति को अधिक बढ़ाने वाला, (पुरुस्पृहं) सबको अच्छा लगने वाला धन (रास्व च) प्रदान भी कर।

येन॒ वंसा॑म॒ पृत॑नासु॒ शर्ध॑त॒स्तर॑न्तो अ॒र्य आ॒दिशः॑ ।
स त्वं नो॑ वर्ध॒ प्रय॑सो शचीवसो॒ जिन्वा॒ धियो॑ वसु॒विदः॑ ॥१२॥

भा०—(येन) जिस धन से हम (पृतनासु) संग्रामों में (आदिशः तरन्तः) दिशा उपदिशाओं तक पार करते हुए (शर्धतः) बलात्कार करने वाले, बलशाली शत्रुओं को भी (वंसाम) नाश करें। हे (शचीवसो) शक्ति के धनी ! (सः त्वं) वह तू (नः) हमें (प्रयसः वर्ध) अन्न सम्पदा और प्रयाणकारी बल से बढ़ा। और (वसुविदः धियः जिन्व) ऐश्वर्य और प्रजाओं को प्राप्त कराने वाले कर्मों की वृद्धि कर।

शिशा॑नो वृष॒भो य॑था॒ग्निः शृङ्गे॒ दवि॑ध्वत् ।
ति॒ग्मा अ॑स्य॒ हन॑वो॒ न प्र॑ति॒धृषे॑ सु॒जम्भः॒ सह॑सो य॒हुः ॥ १३ ॥

भा०—(यथा वृषभः) जिस प्रकार विजार सांड (शृङ्गे शिशानः) सींग तीक्ष्ण करता हुआ (दविध्वत्) शिर चलाता है, और जिस प्रकार (अग्निः) अग्नि स्वयं तीक्ष्ण होकर अपने शिखर कंपाता है उसी प्रकार (शिशानः) बलको तीक्ष्ण करता हुआ (अग्निः) तेजस्वी पुरुष, (शृङ्गे) शत्रु हनन के अस्त्र शस्त्रों को कंपावे। (अस्य) इसकी (हनवः) हनन-कारिणी सेनाएं (तिग्माः) तीखी दाढ़ों के समान (न प्रति-धृषे) कभी किसी से पराजित होने के लिये न हों, वह (सुजम्भः) दुष्टों को उत्तम रीति से दण्ड देने में समर्थ (सहसः यहुः) बल सैन्य को सुसंगत करने में समर्थ हो।

न॒हि ते॑ अग्ने वृषभ प्रति॒धृषे॒ जम्भा॑सो॒ यद्वि॒तिष्ठ॑से ।
स त्वं नो॑ होतः॒ सुहु॑तं ह॒विष्कृ॑धि॒ वंस्वा॑ नो॒ वार्या॑ पु॒रु ॥ १४ ॥

भा०—हे (अग्ने वृषभ) तेजस्विन् ! हे बलशालिन् ! (यद् वि-तिष्ठसे) जब तू विशेष रूप से शत्रु के विजयार्थ खड़ा हो जाता है तब (ते जम्भासः) तेरी दाढ़ों के समान शत्रु को कुचल डालने वाले तेरे शस्त्रादि

सैन्यगण (नहि प्रति-धृषे) कभी हारने के लिये नहीं हों। (सः त्वं) वह तू (नः) हमारे (होतः) दातः (सुहुतं हविः कृधि) उत्तम रीति से दिये करादि को उत्तम रीति से सफल कर। (नः पुरुवार्या वंस्व) हमें बहुत से उत्तम ऐश्वर्य, शत्रुवारक साधन प्रदान कर।

शेषे वनेषु मात्रोः सं त्वा मर्तास इन्धते।
अतन्द्रो हव्या वहसि हविष्कृत आदिद्देवेषु राजसि ॥१५॥३४॥

भा०—हे राजन् ! विद्वन् ! तू (वनेषु मात्रोः) काष्ठों में या दो उत्पादक अरणियों में अग्नि के समान (वनेषु) सेवने योग्य ऐश्वर्यों और (मात्रोः) माता पिता रूप विद्वान् अविद्वान् प्रजाओं के बीच बालकवत् (शेषे) सुख से रह। (त्वा मर्त्तासः सम् इन्धते) तुझे शत्रुमारक वीर जन प्रदीप्त, तेजस्वी बनाते हैं। तू (हविःष्कृतः) उत्तम अन्न उत्पन्न करनेवाले प्रजाजन के दिये करादि को (अतन्द्रः) अनालसी होकर (वहसि) धारण कर (आत् इत्) और विजयेच्छुक वीर पुरुषों के बीच किरणों में सूर्यवत् (राजसि) राजावत् प्रकाशित हो। इति चतुस्त्रिंशो वर्गः ॥

सप्त होतारस्तमिदीळते त्वाग्ने सुत्यजमह्रयम्।
भिनत्स्यद्रिं तपसा वि शोचिषा प्राग्ने तिष्ठ जनाँ अति ॥ १६॥

भा०—हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् ! (सप्त होतारः) सात अधिकाधिक बल आदि देने वाले प्रकृतिगण (सु-त्यजम्) उत्तमदाता (अह्रयम्) अक्षीण; (तं त्वा) उस तुझको (ईडते इत्) चाहते और तेरी प्रतिष्ठा करते हैं। वह तू (शोचिषा) अपने तेज से और (तपसा) प्रताप से (अद्रिं) प्रबल शत्रु सैन्य को (भिनत्सि) मेघ को सूर्य के समान भेदन करता है और हे (अग्ने) अग्निवत् तेजस्विन् नायक ! तू (जनान् अति प्र तिष्ठ) सब जनों से बढ़कर प्रतिष्ठा प्राप्त कर, सर्वोत्तमपद पर विराज।

अग्निमग्निं वो अध्रिगुं हुवेम वृक्तबर्हिषः ।
अग्निं हितप्रयसः शश्वतीष्वा होतारं चर्षणीनाम् ॥ १७ ॥

भा०—हे (वृक्त-बर्हिषः) कुशाओं के समान शत्रुगण को छिन्नभिन्न करने वाले वीर पुरुषो! हम लोग (वः) आप लोगों में से (अग्निम्-अग्निम्) अग्निवत् तेजस्वी और (अध्रिगुम्-अधिगुम्) भूमि पर का शासक सर्वोपरि वाणी का वक्ता आज्ञापक (हुवेम) स्वीकार करें। हम (हित-प्रयसः) अन्नादि धारण करने वाले होकर (शश्वतीषु) बहुत सी प्रजाओं में (चर्षणीनाम्) विद्वान् मनुष्यों को वृत्ति देने वाले (अग्निम्) अग्रणी पुरुष को ही (आ हुवेम) आदरपूर्वक स्वीकार करें।

केतेन शर्मन्त्सचते सुषामण्यग्ने तुभ्यं चिकित्वना ।
इषण्यया नः पुरुरूपमा भर वाजं नेदिष्ठमूतये ॥ १८ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! यह प्रजाजन (चिकित्वना) उत्तम ज्ञानयुक्त विद्वान् द्वारा (केतेन) ज्ञानपूर्वक (तुभ्यम्) तेरे ही (सु-सामनि) उत्तम समान भाव से युक्त निष्पक्षपात (शर्मन्) गृहवत् (इषण्या) इच्छापूर्वक (नः) हमें हमारी रक्षा के लिये (पुरु-रूपं) नाना प्रकार का (नेदिष्ठं) अति समीपतम, प्राप्य (वाजं) ऐश्वर्य (आ भर) प्राप्त करा ।

अग्ने जरितर्विश्पतिस्तेपानो देव रक्षसः ।
अप्रोषिवान्गृहपतिर्महाँ असि दिवस्पायुर्दुरोणयुः ॥ १९ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! हे (जरितः) उत्तम उपदेश करने हारे ! हे (देव) दानशील ! तू (रक्षसः) दुष्टों को (तेपानः) संतप्त, पीड़ित करता हुआ, (विश्पतिः) प्रजाओं का पालक है। तू (अप्रोषि-वान्) कभी प्रवास में न जाने वाले (गृह-पतिः) गृहस्वामी के समान (दुरोणयुः) गृहवत् राष्ट्रको दुःख से प्राप्त होने योग्य उत्तमपद की

अभिलाषा करने वाला और (दिवः महान् पायुः) ज्ञान, राजसभा, तेज, और भूमि का बड़ा पालक (असि) है।

मा नो रक्ष आ वेशीदाघृणी वसो मा यातुर्यातुमावताम्।
परोगव्यूत्यनिरामप क्षुधमग्ने सेध रक्षस्विनः॥ २०॥ ३५॥

भा०—हे (वसो) राष्ट्र के बसाने वाले राजन्! (नः) हम में (रक्षः) नाशकारी उपद्रवी (मा आवेशीत्) न आ घुसे। (यातुमा-वताम्) पीड़ादायक दुष्ट रोगों और पुरुषों के कारण (यातुः नः मा आवेशीत्) हममें पीड़ा, उनकी यातना भी न प्रवेश करे। हे (अग्ने) तेजस्विन्! (अनिराम् क्षुधम्) विना अन्न की भूख, मरी, और (रक्षस्विनः) दुष्टों को (परः गव्यूतिम्) हमसे कोसों (अप सेध) दूर कर। इति पञ्चत्रिंशो वर्गः॥

[६१]

भर्गः प्रागाथ ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ५, ११, १५, निचृद् बृहती। ३, ६ विराड् बृहती। ७, १७ पादनिचृद् बृहती। १३ बृहती। २, ४, १० पंक्तिः। ६, १४, १६ विराट् पंक्तिः। ८, १२, १८ निचृत् पंक्तिः॥ अष्टादशर्चं सूक्तम्॥

उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः।
सत्राच्या मघवा सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत्॥ १॥

भा०—(इन्द्रः) तत्वदर्शी पुरुष (नः) हमारे (इदं) इस (उभयं) पक्ष विपक्ष दोनों प्रकार के (वचः) वचन को (अर्वाक्) सबके सन्मुख (शृणवत् च) सुने, (सत्राच्या धिया) सत्य के निर्धारण करने वाली विवेक बुद्धि से (सोमपीतये) राष्ट्र के पालनार्थ ही (मघवा) पूज्य पद पर स्थिर होकर (शविष्ठः) सब से अधिक बलशाली होकर (नः आगमत्) हमें प्राप्त हो।

तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसे धिषणे निष्टतक्षतुः।
उतोपमानां प्रथमो नि षीदसि सोमकामं हि ते मनः॥ २॥

भा०—(तं) उस (वृषभं) 'वृष' अर्थात् धर्म, राष्ट्र के उत्तम प्रबन्ध सामर्थ्य से सामर्थ्यवान् (स्वराजं) स्व, अपने बल से तेजस्वी, स्वयं राजा, बलशाली पुरुष को (हि ओजसे) उसके बल पराक्रम के कारण (धिषणे) पृथिवी आकाशवत् शास्य शासक वर्गों की दोनों समितियां (निष्टतक्षतुः) राजा को बनावे और हे राजन्! सभापते! (हि) क्योंकि (ते मनः) तेरा चित्त भी (सोम-कामं) राष्ट्रैश्वर्य तथा अभिषेक योग्य पद को चाहता है। इस कारण तू (उपमानां) सर्वोपरि उपमान योग्य प्रस्तुत पुरुषों में (प्रथमः) सर्वश्रेष्ठ होकर (नि षीदसि) मुख्यासन पर विराज।

आ वृषस्व पुरूवसो सुतस्येन्द्रान्धसः।
विद्मा हि त्वां हरिवः पृत्सु सासहिमधृष्टं चिद्दधृष्वणिम्॥३॥

भा०—हे (पुरु-वसो) बहुत से प्रजाजनों को बसाने वाले! बहुत ऐश्वर्य के स्वामिन्! इन्द्रियों में शक्तिरूप से आत्मवत् प्रभो! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! शत्रुहन्तः! तू (अन्धसः सुतस्य) अन्न और ऐश्वर्य से (आ वृषस्व) सब प्रकार से प्रजा पर सुखों की वर्षा करने वाला और बलवान् हो। हे (हरिवः) अश्वों और मनुष्यों के राजन्! हम (त्वा) तुझ को (पृत्सु) संग्रामों में (सासहिम्) विजयी, (अधृष्टम्) अपराजित और (दधृष्वणिम्) शत्रुओं के पराजित करने हारा (हि) ही (विद्म) जानते हैं।

अप्रामिसत्य मघवन्तथेदसदिन्द्र क्रत्वा यथा वशः।
सनेम वाजं तव शिप्रिन्नवसा मक्षू चिद्यन्तो अद्रिवः॥ ४॥

भा०—हे (इन्द्र) यथार्थदर्शिन्! तू (क्रत्वा) अपनी बुद्धि और

कर्म के सामर्थ्य से (यथा वशः) जिस प्रकार भी चाहता है हे (मघवन्) पूजित विभूतिसम्पन्न ! हे (अप्रामि-सत्य) सत्यरूप महा व्रत का नाश न करने हारे ! (तथा इत् असत्) वैसा ही होता है। हे (शिप्रिन्) मुकुटधारिन् ! सत्यपालक ! हे (अद्रिवः) बलशालिन् ! हम लोग (मक्षु चित् यन्तः) बहुत शीघ्रता से आगे बढ़ते हुए (अवसा) ज्ञान और रक्षा, बल से (तव वाजं) तेरा ज्ञान, बल, ऐश्वर्य (सनेम) प्राप्त करें, वा तुझे अन्नादि प्रदान करें।

सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्। योग० सू० २। ३६। अमोघाह्यस्य वाग् भवति। व्यासभाष्यम्॥ तदस्य भगवतो वाचो भवति इति वाचस्पतिः।

शग्ध्यू३षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः।
भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि ॥ ५ ॥ ३६ ॥

भा०—हे (शचीपते) सत्य वाणी और शक्ति के पालक ! हे (इन्द्र) यथार्थदर्शिन् ! तू (विश्वाभिः ऊतिभिः) समस्त ज्ञानों और बलों से (सु शग्धि उ) उत्तम रीति से सब कार्य करने में समर्थ है। (भगं न) ऐश्वर्यवान् के समान ही (यशसं) यशस्वी (वसु-विदम्) ऐश्वर्य प्राप्त कराने वाला जान कर (हि) ही हे (शूर) शूरवीर ! (त्वा अनु चरामसि) हम तेरे कहे अनुसार आचरण करें, तेरा अनुगमन करें। इति षट्त्रिंशो वर्गः॥

पौरो अश्वस्य पुरुकृद्गवामस्युत्सो देव हिरण्ययः।
नकिर्हि दानं परिमर्धिषत्त्वे यद्यद्यामि तदा भर ॥ ६ ॥

भा०—हे (देव) दानशील ! हे तेजस्विन् ! हे व्यवहारज्ञ ! तू (पौरः) बहुतों का स्वामी, (अश्वस्य गवाम् पुरुकृत्) अश्वों और गौ आदि सम्पदा को बहुत संख्या में करने में समर्थ (असि) है। तू (हिरण्ययः उत्सः) सुवर्ण का उद्गमस्थान, निकास वा खान के समान है। (त्वे) तेरे (दानं) दिये ऐश्वर्य का (नकिः हि परि मर्धिषत्) कोई भी

नाश नहीं कर सकता । मैं (यद् यद् यामि) जिस २ पदार्थ की भी याचना करूं तू (तद् आभर) वह २ पदार्थ मुझे प्राप्त करा ।

त्वं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये ।
उद्वावृषस्व मघवन्गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये ॥ ७ ॥

भा०—हे (मघवन्) उत्तम धन के स्वामिन्! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (त्वं हि एहि) तू अवश्य आ और (चेरवे वसुत्तये) सेवा, परिचर्या करने वाले परिजन को जीवनोपयोगी वेतनादि धन प्रदान करने के लिये हो (भगं विद) ऐश्वर्य प्राप्त कर । (गविष्टये) गौ देने के लिये और (अश्वम् इष्टये) अश्व देने के लिये (उद् वावृषस्व) सर्वोत्तम दानशील हो और अधिक उदार हो ।

त्वं पुरू सहस्राणि शतानि च यूथा दानाय मंहसे ।
आ पुरन्दरं चकृम विप्रवचस इन्द्रं गायन्तोऽवसे ॥ ८ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! (त्वं) तू (पुरू सहस्राणि शतानि च यूथा) अनेक सैकड़ों और सहस्रों, यूथ, गौओं और अश्वादि के (दानाय मंहसे) दान के रूप में प्रदान कर । हम लोग (अवसे) रक्षा के निमित्त (विप्रवचसः) उत्तम वचनों को बोलते और (गायन्तः) तेरी स्तुति गान करते हुए (पुरन्दरं) शत्रु नगर को तोड़ने और अपने पुर की रक्षा करने वाले पुरुष को (इन्द्रं आ चकृम) ऐश्वर्य युक्त करें ।

अविप्रो वा यदविधद्विप्रो वेन्द्र ते वचः ।
स प्र ममन्दत्त्वाया शतक्रतो प्राचामन्यो अहंसन ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (शतक्रतो) सैकड़ों कर्म सामर्थ्य और प्रज्ञा से सम्पन्न जन! हे (प्राचामन्यो) सर्वोत्कृष्ट ज्ञान से ज्ञानशालिन्! हे (अहंसन) आत्मभाव, आत्मसम्मान के भाव को देनेहारे! (अविप्रः वा) चाहे अबुद्धिमान् हो और चाहे (विप्रः) विद्वान्

पुरुष भी (ते वचः अविधत्) तेरे कहे वचन के अनुसार कार्य करता वह भी (त्वाया) तेरे अधीन रहकर (प्र ममन्दत्) बहुत ही सुख, आनन्द प्राप्त कर लेता है।

उ॒ग्रबा॑हुर्म्रक्ष॒कृत्वा॑ पुरन्द॒रो यदि॑ मे शृ॒णव॒द्धव॑म् ।
व॒सू॒यवो॒ वसु॑पतिं श॒तक्र॑तुं॒ स्तोमै॒रिन्द्रं॑ हवामहे ॥ १० ॥ ३७ ॥

भा०—हे (वसूयवः) धनाभिलाषी जनो ! (यदि) जब २ (वसुपतिं) सब ऐश्वर्यों और जीवों के पालक, (शतक्रतुं) अनन्त ज्ञानों और कर्म सामर्थ्यों से पूर्ण, (इन्द्रं) ऐश्वर्यप्रद इस स्वामी को हम (स्तोमैः हवामहे) नाना स्तुति वचनों से प्रार्थना करें (उग्र-बाहुः) बलवान् बाहु वाला, (म्रक्ष-कृत्वा) शत्रुओं का नाशक, (पुरन्दरः) शत्रुपुरों को तोड़ने में समर्थ, (मे हवम् शृणवत्) मेरे स्तुति-वचन को श्रवण करे। इति सप्तत्रिंशो वर्गः ॥

न पा॒पासो॑ मनामहे॒ नारा॑यासो॒ न जल्ह॑वः ।
यदि॒न्न्विन्द्रं॒ वृष॑णं॒ सचा॑ सु॒ते सखा॑यं कृ॒णवा॑महै ॥ ११ ॥

भा०—(यत् इत् नु) जब २ भी हम हम लोग (इन्द्रं) ऐश्वर्य-वान्, (सखायं) सब के मित्र (वृषणं) बलवान् पुरुष को (सुते) ऐश्वर्य वा शासन मार्ग पर (सचा कृणवामहे) अपने साथ लेते हैं तब २ हम (पापासः न मनामहे) पापी होकर नहीं विचार करते, और (अरायासः न) तब हम दूसरे का अधिकार न देने वाले होकर भी नहीं विचारते, (न जल्हवः) और न ज्वलन या प्रकाश से रहित होते हैं। अर्थात् परमेश्वर या स्वामी के सदा साथ रहते हुए हममें पाप प्रवृत्ति, दूसरे के अधिकार हरण और अज्ञानीपन की दशा नहीं रह सकती है। परमेश्वर के सहयोग में हम निष्पाप, ईमानदार, और ज्ञान प्रकाश से युक्त हो जाते हैं। पापी, बेईमान, और प्रकाशहीन होकर प्रभु का मनन नहीं कर सकते।

उग्रं युयुज्म पृतनासु सासहिमृणकातिमदाभ्यम्।
वेदा भृमं चित्सनिता रथीतमो वाजिनं यमिदू नशत् ॥ १२ ॥

भा०—(यम् इत् उ) जिसको अवश्य (वाजिनं) ऐश्वर्यवान् बलवान् भी (नशत्) पावें, और जो (रथीतम) सब से उत्तम महारथी, (सनिता) दानशील हो और जिसको हम (भृमं चित्) भरण पोषण में समर्थ (वेद) पावें उस (सासहिम्) शत्रुपराजयकारी, (उग्रम्) सदा दण्डधारी, (ऋणकातिम्) धनोत्पादक, (अदाभ्यम्) अहिंसनीय, अवध्य, पुरुष को हम (पृतनासु) संग्रामों के कार्यों में (युयुज्म) नियुक्त करें। (२) इसी प्रकार हम परमेश्वर को इन २ गुण विशिष्ट रूप से (युयुज्म) योग द्वारा साक्षात् करें।

यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि।
मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतिभिर्वि द्विषो वि मृधो जहि ॥ १३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुनाशक ! भूमि के रक्षक ! अन्नादि दातः ! हम लोग (यतः भयामहे) जिस कारण से भी भय करें तू (ततः नः अभयं कृधि) हमें उस भय से रहित कर। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! तू (तव) अपना (नः) हमें (तत् शग्धि) वह सामर्थ्य दे और (ऊतिभिः) रक्षाकारिणी शक्तियों से (द्विषः वि जहि) शत्रुओं को दण्डित कर और (मृधः वि जहि) हिंसकों को दण्डित कर।

त्वं हि राधस्पते राधसो महः क्षयस्यासि विधतः।
तं त्वा वयं मघवन्निन्द्र गिर्वणः सुतावन्तो हवामहे ॥ १४ ॥

भा०—हे (मघवन्) पूज्य ऐश्वर्ययुक्त ! हे (गिर्वणः) वाणी द्वारा याचना करने योग्य ! हे (इन्द्र) शत्रुनाशक ! ऐश्वर्य के देने हारे ! (वयं) हम (सुतावन्तः) उत्पन्न, अन्नादि ऐश्वर्यों से युक्त होकर भी (त्वा) तुझ से (हवामहे) याचना करते हैं, क्योंकि हे (राधसः पते) धन के पालक स्वामिन् ! (त्वं हि) तू अवश्य (विधतः) कार्य करने वाले, सेवक के

(महः) बड़े भारी, (क्षयस्य) ऐश्वर्य और (राधसः) धन का भी बढ़ाने और देने वाला है ।

इन्द्र॑ स्पळु॒त वृ॑त्र॒हा प॑र॒स्पा नो॒ वरे॑ण्यः ।
स नो॑ रक्षिषच्चर॒मं स म॑ध्य॒मं स प॒श्चात्पा॑तु नः पु॒रः ॥१५॥३८॥

भा०—(इन्द्रः) शत्रुओं का नाशक, ऐश्वर्यों का दाता, प्रभु (स्पट्) सर्वद्रष्टा, (वृत्रहा) सब विघ्नों का नाशक (परः-पाः) परम पालक और (नः वरेण्यः) हमारा सर्वश्रेष्ठ वरण करने योग्य है । (सः) वह (नः) हममें से (चरमं) अन्तिम को, (सः मध्यमं) वह बीच के को, (सः पश्चात् पुरः नः पातु) वह हमारे पीछे और आगे से भी हमें बचा । इत्यष्टात्रिंशो वर्गः ॥

त्वं नः॑ प॒श्चाद॑ध॒राद॑त्त॒रात्पु॒र इन्द्र॒ नि पा॑हि वि॒श्वतः॑ ।
आ॒रे अ॒स्मत्कृ॑णुहि॒ दैव्यं॑ भ॒यमा॒रे हे॒तीरदे॑वीः ॥ १६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! (त्वं) तू (नः पश्चात् अधरात् उत्तरात् पुरः विश्वतः निपाहि) हमारे पीछे से, नीचे से, ऊपर से आगे से और सब ओर से अच्छी प्रकार रक्षा कर । (अस्मत् दैव्यं भयम् आरे कृणुहि) हम से देव, विद्वान्, विजयेच्छुक व्यवहार चतुरादि जनों से उत्पन्न होने वाला भय दूर कर और (अदेवीः हेतीः आरे कृणुहि) अविद्वान् दुष्ट जनों के शस्त्रों को भी दूर कर ।

अ॒द्याद्या॒ श्वःश्व॒ इन्द्र॒ त्रास्व॑ प॒रे च॑ नः ।
विश्वा॑ च नो जरि॒तॄन्त्स॑त्पते॒ अहा॒ दिवा॒ नक्तं॑ च रक्षिषः ॥१७॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हमें (अद्य अद्य) आज आज, आज कहाने वाले सब दिनों और (श्वः श्वः) कल कल, कल कहाने वाले सब दिनों में और (परे च) परले दिनों में भी (त्रास्व) रक्षा कर । हे (सत्पते) सज्जनों के पालक ! तू (नः जरितॄन्) प्रार्थना स्तुति करने वाले हम लोगों को (विश्वा च अहा) सब दिनों और (दिवा

नक्तं च) दिन और रात, प्रकाश में और अंधेरे में भी (रक्षयः) हमारी रक्षा कर।

प्रभङ्गी शूरो मघवा तुवीमघः सम्मिश्लो वीर्याय कम्।
उभा ते बाहू वृषणा शतक्रतो नि या वज्रं मिमिक्षतुः॥१८॥३९॥

भा०—हे (शतक्रतो) अनन्त कर्म और प्रज्ञा से युक्त स्वामिन्! (या) जो दो (ते बाहू) तेरी बाहुएं, (वज्रं नि मिमिक्षतुः) शस्त्र को धारण करती हैं (उभा) वे दोनों (वृषणा) बलवान् हों। (वीर्याय) वीर्य प्राप्त करने, वा वीरकर्म सम्पादन करने के लिये (शूरः) शूरवीर पुरुष, (प्रभङ्गी) शत्रु को अच्छी प्रकार तोड़ देने वाला, (मघवा) उत्तम आदरणीय धनाढ्य, (तुवीमघः) बहुत धनसम्पन्न और (सम्मिश्लः) सब से अच्छी प्रकार मिलने जुलने वाला, सर्वप्रिय हो। इत्येकोनचत्वारिंशो वर्गः॥

[६२]

प्रगाथः काण्व ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ३, ५, १०, ११ निचृत् पङ्क्तिः। २, ४ विराट् पङ्क्तिः। ६, १२ पङ्क्तिः। ७ निचृद् बृहती। ८, ९ बृहती॥ द्वादशर्चं सूक्तम्॥

प्रो अस्मा उपस्तुतिं भरता यज्जुजोषति। उक्थैरिन्द्रस्य माहिनं वयो वर्धन्ति सोमिनो भद्रा इन्द्रस्य रातयः॥ १॥

भा०—(यत् जुजोषति) जो प्रेमपूर्वक स्वीकार करता है (अस्मै) उसको (उप स्तुतिं प्र भरत) उत्तम स्तुति करो। (सोमिनः) वीर्य पालन करने वाले ब्रह्मचारी लोग ही (उक्थैः) उत्तम वचनों द्वारा (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान्, तत्वदर्शी स्वामी के (माहिनं वयः वर्धन्ति) बड़े भारी बल को बढ़ा देते हैं। (इन्द्रस्य रातयः भद्राः) उस परमेश्वर के दिये सब दान सुखकारी और कल्याणमय होते हैं।

अयुजो असमो नृभिरेकः कृष्टीरयास्यः । पूर्वीरति प्र वावृधे विश्वा जातान्योजसा भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ २ ॥

भा०—वह परमेश्वर (एकः) अकेला, अद्वितीय, (अयुजः) अन्य सहायक के विना, (असमः) अपने समान अन्य से रहित, (अयास्यः) अविनाशी, अपराजित, कभी न थकने वाला, अप्राप्य और मुख्य है । वह (नृभिः) जीवों द्वारा ही (पूर्वीः कृष्टीः) बहुत सी सनातन प्रजाओं को (प्र वावृधे) बढ़ाता है और (विश्वा जातानि) सभी उत्पन्न प्राणियों को भी इसी प्रकार (ओजसा) अपने बल-पराक्रम से (इति प्र वावृधे) इसी प्रकार बढ़ाता रहता है । (इन्द्रस्य रातयः भद्राः) ऐश्वर्यवान् प्रभु के सब दान अति सुखकारी होते हैं ।

अहितेन चिदर्वता जीरदानुः सिषासति । प्रवाच्यमिन्द्र तत्तव वीर्याणि करिष्यतो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ३ ॥

भा०—यह ईश्वर (जीर-दानुः) जीवन प्राण का देने वाला है । वह (अहितेन अर्वता चित्) विना बन्धे अश्व से, अर्थात् विना अश्व लगाये ही (सिषासति) सब को चलाता है । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! वीर्यवन् ! (करिष्यतः) जगत् निर्माण करने वाले (तव) तेरे ये सब (वीर्याणि) नाना प्रकार के सामर्थ्य हैं । (तत् तव प्रवाच्यम्) यह सब तेरी अति उत्तम रीति से स्तुति करने योग्य है । (इन्द्रस्य रातयः भद्राः) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु के सब दान बड़े सुखकारी हैं ।

आ याहि कृणवाम त इन्द्र ब्रह्माणि वर्धना । येभिः शविष्ठ चाकनो भद्रमिह श्रवस्यते भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (आ याहि) आ । (ते) तेरे (ब्रह्माणि) वेदवचनों को हम (वर्धना) अपने को बढ़ाने वाला (कृणवाम) करें । उनको हम अपनी वृद्धि के लिये उपभोग करें । हे

(शविष्ठ) अनन्त बलशालिन् ! (येभिः) जिनसे तू (इह) इस लोक में (अवस्यते) ज्ञान के इच्छुक जीवगण के लाभ के लिये (भद्रम् चाकनः) अति कल्याण करना चाहता है उन ही वेदों का हम अभ्यास करें। (इन्द्रस्य रातयः भद्राः) प्रभु के दिये दान अति सुखकारी होते हैं।

धृषतश्चिद्धृषन्मनः कृणोषीन्द्र यत्त्वम्। तीव्रैः सोमैः सपर्यतो नमोभिः प्रतिभूषतो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ५ ॥

भा०—(तीव्रैः सोमैः) तीव्र, बलकारक साधन से (सपर्यतः) सेवा करते हुए (नमोभिः प्रतिभूषतः) अन्नों, विनय वचनों और दुष्ट दमनकारी उपायों से अपने प्रतिपक्षी का साम्मुख्य करने वाले (धृषतः) प्रतिपक्ष का पराजय करने वाले के (मनः) मन को (चित्) भी हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यत् त्वम्) जो तू (धृषतः कृणोषि) दृढ़, सहनशील कर देता है यह तेरा ही सामर्थ्य है। (इन्द्रस्य रातयः भद्राः) ऐश्वर्यवान् इन्द्र, प्रभु के दान सब उत्तम सुखप्रद होते हैं।

अव चष्ट ऋचीषमोऽवताँ इव मानुषः। जुष्ट्वी दक्षस्य सोमिनः सखायं कृणुते युजं भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ६ ॥ ४० ॥

भा०—जिस प्रकार (मानुषः) पियासा मनुष्य (अवतान् अव चष्टे) कुओं के नीचे झांकता है, और (सोमिनः दक्षस्य जुष्ट्वी, युजं सखायं कृणुते) जलस्थान के रक्षक पुरुष को प्रेम करके उसको अपना साथी, मित्र बना लेता है उसी प्रकार (ऋचीषमः) स्तुति के अनुरूप यथार्थ गुणवान् दयाशील प्रभु (अवतान् अव चष्टे) रक्षा करने योग्य जनों को दया से देखता है और (सोमिनः दक्षस्य) बल वीर्यवान् कर्म करने में समर्थ पुरुष को (जुष्ट्वी) प्रेम करके, प्रभु उसको ही अपना (युजं सखायं कृणुते) संगी, मित्र बना लेता है। (भद्रा० इत्यादि पूर्ववत्) इति चत्वारिंशो वर्गः॥

विश्वे त इन्द्र वीर्यं देवा अनु क्रतुं ददुः।
भुवो विश्वस्य गोपतिः पुरुष्टुत भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥ ७ ॥

भा—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! वाणी द्वारा ज्ञान के देने हारे ! (देवाः) समस्त विद्याओं की कामना करने हारे जन (ते वीर्यम् अनु, ते क्रतुम् अनु) तेरे बल और ज्ञान के अनुसार ही (अनु ददुः) स्वयं भी बल और ज्ञान को धारण करें और अन्यों को भी प्रदान करें हे (पुरुस्तुत) बहुत जीवों के उपदेष्टः ! तू ही (विश्वस्य गोपतिः भुवः) समस्त वाणियों का पालक है । (भद्राः० इत्यादि पूर्ववत्)

गृणे तदि॑न्द्र ते॒ शव॑ उप॒मं दे॒वता॑तये ।
यद्धंसि॑ वृ॒त्रमोज॑सा शचीपते भ॒द्रा इन्द्र॑स्य रा॒तयः॑ ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन् ! हे (शचीपते) शक्ति और वाणी के स्वामिन् (देवतातये) वीरों और दानशील, उत्तम मनुष्यों के हितार्थ, (ते) तेरे (उपमं शवः) आदर्श बल की (गृणे) स्तुति करता हूं । (यत्) जिस (ओजसा) पराक्रम से तू (वृत्रम्) अज्ञान, वा बढ़ते शत्रु का (हंसि) विनाश करता है ।

सम॑नेव वपुष्य॒तः कृ॒णव॒न्मानु॑षा यु॒गा ।
वि॒दे तदिन्द्र॒श्चेत॑न॒मध॑ श्रु॒तो भ॒द्रा इन्द्र॑स्य रा॒तयः॑ ॥ ९ ॥

भा०—(समना-इव) समान चित्त वाली स्त्री जिस प्रकार (वपुष्यतः मानुषा युगा कृणवत्) उत्तम शरीर वाले पुरुष को जोड़ा बना देती है उसी प्रकार (इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान् प्रभु (वपुष्यतः) शरीर धारण करने की इच्छा करने वाले जीवों को (मानुषा युगा कृणवत्) मनुष्यों के (युग) जोड़े, स्त्री-पुरुष बना देता है । वही (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु (तत् चेतनं) उस चेतन जीव को (विदे) जानता वा शरीर में प्राप्त कराता है, (अध) और इसी प्रकार (श्रुतः) वेद में गुरुजनों द्वारा श्रवण किया जाता है । (भद्राः० इत्यादि पूर्ववत्)

उज्जा॒तमि॑न्द्र ते॒ शव॒ उत्त्वामुत्तव॒ क्रतु॑म् ।
भूरि॑गो॒ भूरि॑ वावृधु॒र्मघ॑व॒न्तव॒ शर्म॑णि भ॒द्रा इन्द्र॑स्य रा॒तयः॑ १०

भा०—हे (भूरिगो) बहुत भूमियों, पशुओं और वाणियों के स्वामिन्! हे (मघवन्) पूज्य, धन, ज्ञानादि सम्पन्न, प्रभो! गुरो! स्वामिन्! हे (इन्द्र) वाणी के मर्म के भेदन करने हारे! शत्रुभेदक! भूमिभेदक! (ते मावत् शवः) तेरे प्रकट हुए बल और ज्ञान को लोग (भूरि उत् वावृधुः) उत्तम रीति से पुत्रवत् खूब बढ़ावें। (उत् त्वाम्) तुझे भी बढ़ावें, अधिक बलवान्, करें। (तव क्रतुम् उत्) तेरे कर्म सामर्थ्य और ज्ञान की भी वृद्धि करें। (तव शर्मणि) तेरी शरण में रहें। (भद्राः० इत्यादि पूर्ववत्)

अहं च त्वं च वृत्रहुन्त्संयुज्याव सुनिभ्य आ।

अरातीवा चिदद्रिवोऽनु नौ शूर मंसते भुद्रा इन्द्रस्य रातयः ११

भा०—हे (वृत्र-हन्) विघ्नों और शत्रुओं के नाशक! (अहं त्वं च) मैं और तू दोनों (सनिभ्यः आ) उत्तम धनों, ऐश्वर्यों के प्राप्त करने के लिये (सं युज्याव) परस्पर मिल जावें। हे (अद्रिवः) सैन्यादि बल से सम्पन्न! हे (शूर) दुष्टनाशक! (अरातिवा चित्) अदानशील अबनी भी (नौ अनुमंसते) हम दोनों को मानेगा। (भद्राः० पूर्ववत्)

सुत्यमिद्वा उ तं वयमिन्द्रं स्तवाम नानृतम्। मुहाँ असुन्वतो वुधो भूरि ज्योतींषि सुन्वतो भुद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥१२॥४१॥

भा०—(वयम्) हम (तं) उस (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् प्रभु की (सत्यम् इत् वा स्तवाम) सत्य सत्य ही स्तुति करें। (अनृतं न) असत्य कभी न करें। (असुन्वतः) उपासना न करने वाले का (महान् वधः) बड़ा भारी नाश होता है। (सुन्वतः भूरि ज्योतींषि) उपासक को बहुत तेजोमय ज्ञान प्राप्त होते हैं। (भद्रा० इत्यादि पूर्ववत्)॥ इत्येकचत्वारिंशो वर्गः॥

[६३]

प्रगाथः काण्व ऋषिः ॥ १—११ इन्द्रः । १२ देवा देवताः ॥ छन्दः—१, ४, ७ विराडनुष्टुप् । ५ निचृदनुष्टुप् । २, ३, ६ विराड् गायत्री । ८, ९, ११ निचृद् गायत्री । १० गायत्री । १२ त्रिष्टुप् ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

स पूर्व्यो महानां वेनः क्रतुभिरानजे ।
यस्य द्वारा मनुष्पिता देवेषु धिय आनजे ॥ १ ॥

भा०—(सः) वह (महानां) पूज्य, बड़ों का भी बड़ा (पूर्व्यः) पूर्व, पूज्य, (वेनः) कान्तिमान्, तेजस्वी सूर्यवत् (क्रतुभिः) उत्तम प्रज्ञाओं द्वारा (आनजे) हमें प्रेरित करता वा प्राप्त होता है (यस्य धियः) जिसकी वाणियों, मतियों और कर्मों को, (देवेषु) विद्या के इच्छुक मनुष्यों में (पिता मनुः) पालक, शासक, मननशील विद्वान् वा राजा भी (द्वारा आनजे) प्रवेश योग्य द्वारों के समान प्रकट करे। अर्थात् ज्ञानी शास्ता विद्वान् और शासक राजा दोनों माता पिता हैं। वे प्रभुके दिये ज्ञानों, वेदों, यज्ञों द्वारा सबको नाना उपाय दर्शावें।

दिवो मानं नोत्सदन्त्सोमपृष्ठासो अद्रयः ।
उक्था ब्रह्म च शंस्या ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार (अद्रयः) मेघ (सोम-पृष्ठासः) जल वर्षण-कारी होकर भी (दिवः मानं न उत् सदन्ति) सूर्य का पैमाना नहीं पाते, वा ऊपर उठकर भी सूर्य तक नहीं जा सकते उसी प्रकार (सोम-पृष्ठासः) अभिषिक्त राजा वा नायक को अपनी पीठ पर रखने वाले, तदधीन (अद्रयः) सेना के जन (दिवः मानं नः उत् सदन्) तेजस्वी राजा के मान-प्रतिष्ठा को प्राप्त नहीं हो सकते, वे उससे उच्च पद नहीं पा सकते। इसी प्रकार (सोम-पृष्ठासः) सोम अर्थात् सर्वोत्पादक प्रभु के भक्त (अद्रयः) अविनाशी, धर्म मेवस्थ योगीजन वा 'सोम', वीर्य द्वारा पुष्ट, ऊर्ध्वरेता जन (दिवः मानं)

ज्ञानमय तेजोमय प्रभु के ज्ञान, वेद को (न दत् सदन्) नहीं छोड़ सकते। वह प्रभु का ज्ञान (उक्था) वचन योग्य उत्तम मन्त्र (ब्रह्म च) महान् वेद (शंस्या) स्तुति करने, उपदेश देने योग्य होते हैं।

स विद्वाँ अङ्गिरोभ्य इन्द्रो गा अवृणोदप।
स्तुषे तदस्य पौंस्यम् ॥ ३ ॥

भा०—(सः) वह (विद्वान्) ज्ञानवान् प्रभु आचार्य के समान (इन्द्रः) सत्य ज्ञान को साक्षात् करने वाला, सूर्यवत् ज्ञान का प्रकाशक, प्रभु (अंगिरोभ्यः) अंगारों के तुल्य तेजस्वी एवं देह में बलवीर्य के धारक ज्ञानी पुरुषों को (गाः अप अवृणोत्) वेद वाणियों का प्रकाश करता है। (अस्य तत्) उसके उस (पौंस्यं) परम पुरुष रूप की मैं (स्तुषे) स्तुति करूं। (२) इसी प्रकार (इन्द्रः) सूर्य या प्रभु ने सर्वत्र (अंगिरोभ्यः) जीवों, देहधारियों के लिये (गाः) भूमियों को प्रकट किया।

स प्रत्नथा कविवृध इन्द्रो वाकस्य वक्षणिः।
शिवो अर्कस्य होमन्यस्मत्रा गन्त्ववसे ॥ ४ ॥

भा०—(सः) वह (इन्द्रः) ज्ञानदर्शी, ज्ञान का प्रकाशक प्रभु, (प्रत्नथा) पहले पूर्व कल्पों में भी (कवि-वृधः) विद्वानों को आचार्यवत् बढ़ाने वाला, (वाकस्य वक्षणिः) प्रवचन योग्य वेद को धारण-प्रवचन करने और मनुष्यों तक पहुंचाने वाला हो। वही (शिवः) कल्याणकारी, सब में व्यापक (अर्कस्य होमनि) अर्चनीय वेद मन्त्र के उच्चारण वा होम-काल में (अस्मत्रा अवसे) हमें ज्ञान प्रदान करने वा रक्षा करने के लिये (आ गन्तु) प्राप्त हो।

आदू नु ते अनु क्रतुं स्वाहा वरस्य यज्यवः।
श्वात्रमर्का अनूषतेन्द्र गोत्रस्य दावने ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तेजस्विन्! (यज्यवः) तेरे उपासक, यज्ञशील, (अर्काः) अर्चना करने हारे जन (आत् उ नु) भी (वरस्य ते)

सबसे वरण करने, चाहने योग्य तेरे (क्रतुम् अनु) वेद ज्ञान के अनुसार (स्वाहा) उत्तम वाणी और आहुति द्वारा (गोत्रस्य) वाणियों के रक्षक तेरा ही (दावने) दान प्राप्त करने के लिये (श्वात्रम्) शीघ्र ही (ते अनूषत) तेरी स्तुति करें।

इन्द्रे विश्वानि वीर्या कृतानि कर्त्वानि च।
यमर्का अध्वरं विदुः ॥ ६ ॥ ४२ ॥

भा०—(अर्काः) स्तुतिकर्त्ता विद्वान् जन (यं) जिस प्रभु परमेश्वर को (अध्वरं) अहिंसक और अविनाशी, नित्य करुणा कर करके (विदुः) जानते हैं उसी (इन्द्रे) परमेश्वर में (विश्वानि वीर्याणि) समस्त वीर्य और समस्त (कृतानि) बने पदार्थ और (कर्त्वानि) करने योग्य कार्य आश्रित हैं। इति द्वाचत्वारिंशो वर्गः ॥

यत्पाञ्चजन्यया विशेन्द्रे घोषा असृक्षत।
अस्तृणाद् बर्हणा विपो३र्यो मानस्य स क्षयः ॥ ७ ॥

भा०—(पाञ्चजन्यया) पांचों जनों से बनी, (विशा) प्रजा (यत् इन्द्रे घोषाः असृक्षत) जिस, इन्द्र, ईश्वर वा राजा विषयक स्तुतियें करती हैं वही (बर्हणा) बड़े भारी सामर्थ्य से जगत् को विस्तारित करता है, (सः) वही (अर्यः) स्वामी (विपः मानस्य क्षयः) विद्वान् जन की पूजा, परिचर्या का निवासस्थान होता है।

इयमु ते अनुष्टुतिश्चकृषे तानि पौंस्या।
प्रावश्चक्रस्य वर्तनिम् ॥ ८ ॥

भा०—(इयम् ते अनु-स्तुतिः) यह तेरी स्तुति तेरे ही अनुरूप है, क्योंकि तू ही (तानि पौंस्या चकृषे) वे नाना पुरुष अर्थात् शक्तिमान् के करने योग्य पौरुष या बल के कार्य करता है और तू (चक्रस्य) जगत् के इस महान् चक्र, ब्रह्माण्ड चक्र वा ज्योतिश्चक्र के (वर्त्तनिं) वर्त्तन, निरन्तर

प्रभाग के कार्य को (प्र अवः) अच्छी प्रकार कराता है, उसको बराबर रथ के चक्र के तुल्य या यन्त्र के चक्र की तरह गति दे रहा है। (२) राजा नाना शौर्य करता और राजचक्र को चलाता है।

अस्य वृष्णो व्योदन उरु क्रमिष्ट जीवसे।
यवं न पश्व आ ददे ॥ ९ ॥

भा०—(वृष्णः व्योदने) बरसते मेघ के द्वारा उत्पन्न अन्न पर जिस प्रकार जीव संसार-जीवन के लिये कदम बढ़ाता है और पशुगण जौ आदि चरता है उसी प्रकार (अस्य वृष्णः) इस परम बलशाली, सब सुखों के वर्षक प्रभु के (वि-ओदने) विशेष दयार्द्र भाव से पूर्ण रसवत् सुख में यह जीव लोक (जीवसे) जीवन प्राप्त करने के लिये (उरु क्रमिष्ट) बहुत कदम बढ़ाता है, और (पश्वः यवं न) पशु जिस प्रकार जौ को भोजन के लिये ग्रहण करते हैं उसी प्रकार ये समस्त जीवगण उसी ब्रह्मरूप परम सुखद, रसस्वरूप पदार्थ को (आददे) प्राप्त करते हैं।

तद्दधाना अवस्यवो युष्माभिर्दक्षपितरः। स्याम मरुत्वतो वृधे १०

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! हम (दक्ष-पितरः) बल, अन्न, और प्रज्ञा के पालक होकर (अवस्यवः) अन्न और रक्षा, ज्ञानादि के इच्छुक होकर (युष्माभिः) तुम लोगों के साथ ही (तत्) उस परम ज्ञानमय ब्रह्म को (दधानाः) धारण करते हुए (मरुत्वतः) मरुत्वान्, प्राणों वाले देह वा आत्मा की (वृधे स्याम) वृद्धि में संलग्न रहें।

बळृत्वियाय धाम्न ऋक्वभिः शूर नोनुमः।
जेषामेन्द्र त्वया युजा ॥ ११ ॥

भा०—(बट्) सत्य ही, हम (ऋत्वियाय) ऋतु २ में आने वाले (धाम्ने) तेज को प्राप्त करने के लिये हे (शूर) शूरवीर ! हम (ऋक्वभिः) ऋचाओं, अर्चनादि सत्कारों से (नोनुमः) स्तुति करते

हैं और (त्वया युजा) तुझे सहयोगी बनाकर हम (जेषाम) विजय लाभ करें।

अस्मे रुद्रा मेहना पर्वतासो वृत्रहत्ये भरहूतौ सजोषाः।
यः शंसते स्तुवते धायि पज्र इन्द्रज्येष्ठा अस्माँ अवन्तु देवाः१२।४३

भा०—(यः) जो (शंसते) उत्तम प्रशंसा करते हुए और (स्तुवते) स्तुति करते हुए मनुष्य के लिये (पज्रः) बलवान् दृढ़ रूप से (धायि) सूर्यवत् स्थित है और (रुद्राः) गर्जना करने वाले (मेहना) वर्षाकारी, (पर्वतासः) मेघों के समान (रुद्राः) दुष्टों को रुलाने वाले (मेहनाः) मेरा इसमें कुछ स्वार्थ नहीं इस प्रकार की त्याग भावना वाले, निःसंग (पर्वतासः) पर्वतवत् अचल, प्रजापालक जन (वृत्र-हत्ये) दुष्टों के हनन करने और (भर-हूतौ) यज्ञ के आहुति वा पोषण के कार्य में योग देने के अवसर में (सजोषाः) सप्रेम होकर (देवाः) विद्वान् विजयेच्छुक जन (अस्मान्) हमें (अवन्तु) रक्षा करें। त्रिचत्वारिंशो वर्गः॥

[६४]

प्रगाथः काण्व ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ५, ७, ९ निचृद् गायत्री। ३ आर्ची स्वराड् गायत्री। ४ विराड् गायत्री। २, ६, ८, १०—१२ गायत्री। द्वादशर्चं सूक्तम्॥

उत्त्वा मन्दन्तु स्तोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः।
अव ब्रह्मद्विषो जहि॥ १॥

भा०—(स्तोमाः) वेद के सूक्त और उत्तम स्तुति-वचन (त्वा उत् मन्दन्तु) तुझे अति प्रसन्न करें। हे (अद्रिवः) बलवन्! तू (राधः कृणुष्व) ऐश्वर्य का सम्पादन कर। और (ब्रह्म-द्विषः) वेद, ईश्वर और ब्रह्म से द्वेष करने वालों को (अव जहि) दण्डित कर।

पदा पणीँरराधसो नि बाधस्व महाँ असि ।
नहि त्वा कश्चन प्रति ॥ २ ॥

भा०—(पदा) पैर से (पणीन् अराधसः) धनार्थ, दान पुण्यार्थ, धन या करादि से रहित केवल, धनव्यवहारियों को (नि बाधस्व) खूब पीड़ित कर। (महान् असि) तू सबसे बड़ा है। (प्रति कश्चन नहि) तेरे मुकाबले और कोई दूसरा नहीं है। राजा का कर्त्तव्य है कि सब धनव्यवहारियों पर राजा करादि दण्ड लगावे, जो राजकर या धर्मकर न दे उसे दण्डित करे और उसके व्यवहार में बाधा करे। अथवा जो व्यक्ति बिना धन के व्यापार करे राजा उस पर दण्ड करे। वह बहुतों का धन नाश कर बाद में दिवालिया होकर अन्यों को हानि करता है।

त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम् । त्वं राजा जनानाम् ॥३॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् (त्वम्) तू (सुतानाम्) अभिषेक प्राप्त पुरुषों का भी (ईशिषे) स्वामी है, (त्वम् असुतानां ईशिषे) तू अनभिषिक्तों का भी स्वामी है, (त्वं जनानां राजा) तू सब मनुष्यों का राजा है।

एहि प्रेहि क्षयो दिव्याघोषञ्चर्षणीनाम् ।
ओभे पृणासि रोदसी ॥ ४ ॥

भा०—हे राजन्! (आ इहि) आ। (क्षयः प्र इहि) अच्छी प्रकार अपने निवासस्थान या ऐश्वर्यपद को प्राप्त हो। (चर्षणीनाम्) सब प्रजाओं के बीच (दिवि) भूमि में, वा आकाश में (आघोषन्) अपनी घोषणा करता हुआ, तू (उभे रोदसी) दोनों लोकों को (आ पृणासि) पूर्ण कर।

त्वं चित्पर्वतं गिरिं शतवन्तं सहस्रिणम् ।
वि स्तोतृभ्यो रुरोजिथ ॥ ५ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य, पवन या विद्युत् (पर्वतं चित् रुजति)

मेघ को छिन्न भिन्न करता है, उसी प्रकार हे ज्ञानशालिन्! तू भी (त्वं) उस (पर्वतं) नाना पोरुओं से (गिरिं) ज्ञान का उपदेश करने वाले, (शत-वन्तं सहस्रिणं) सौ और हजार अध्यायों वा सूक्तादि से युक्त वेद ज्ञान को (स्तोतृभ्यः) यथार्थ वक्ताजनों के लिये (वरोजिथ) पृथक् २ कर व्याख्या कर।

वयमु त्वा दिवा सुते वयं नक्तं हवामहे।
अस्माकं काममा पृण ॥ ६ ॥ ४४ ॥

भा०—हे राजन्! विद्वन्! (सुते) ऐश्वर्ययुक्त अभिषेचनीय पद के लिये, (त्वा) तुझे (वयम् उ) हम (दिवा नक्तम्) दिन रात (हवामहे) प्रार्थना करते हैं (अस्माकं कामम् आपृण) हमारी कामना को पूर्ण कर। इति चतुश्चत्वारिंशो वर्गः॥

क्व१स्य वृषभो युवा तुविग्रीवो अनानतः।
ब्रह्मा कस्तं सपर्यति ॥ ७ ॥

भा०—(स्यः) वह (वृषभः) सुखों का वर्षण करने वाला, (युवा) बलवान्, (तुविग्रीवः) दृढ़, विस्तृत, बलशाली गर्दन वाला, भार उठाने में समर्थ, (अनानतः) कभी न झुकने वाला (क्व) कहां है (कः ब्रह्मा) कौन ब्रह्मवेत्ता, विद्वान् वेदज्ञ ऐसा है जो (तं सपर्यति) उसकी पूजा करता है।

कस्य स्वित्सवनं वृषा जुजुष्वाँ अव गच्छति।
इन्द्रं क उ स्विदा चके ॥ ८ ॥

भा०—(वृषा) सुखों का वर्षक, वह प्रभु (कस्य स्वित् सवनं) किस की उपासना को (जुजुष्वान् अव गच्छति) प्रेम से युक्त होकर स्वीकार करता है, (कः उ स्वित्) वह कौन सा पुरुष है जो (इन्द्रं आचके) उस परमैश्वर्यप्रद को चाहता है। ऐसा कोई ही विरला है।

कं ते दाना असक्षत वृत्रहन्कं सुवीर्या।
उक्थे क उ स्विदन्तमः ॥ ९ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्) विघ्नों के नाश करने हारे ! (ते दाना) तेरे दिये दान (कं असक्षत) कैसे व्यक्ति को प्राप्त होते हैं ? (कं सुवीर्या) उत्तम बल भी किस को मिलते हैं ? (क उ स्वित्) कौन ऐसा भाग्यवान् है जो (अन्तमः) तेरे अति समीपतम है ?

अयं ते मानुषे जने सोमः पूरुषु सूयते।
तस्येहि प्र द्रवा पिब ॥ १० ॥

भा०—(मानुषे जने) मननशील जनों में (ते) तेरे लिये (पुरुषु) इन्द्रियों में ज्ञान के समान (सोमः सूयते) सोम, ऐश्वर्यप्रद का अभिषेक किया जाता है, तू (प्र द्रव) उत्तम मार्ग से चल और (इहि) प्राप्त हो और (आ पिब) सब प्रकार से ओषधि रसवत् उपभोग और पालन कर।

अयं ते शर्यणावति सुषोमायामधि प्रियः।
आर्जीकीये मदिन्तमः ॥ ११ ॥

भा०—(अयं) यह तेरा अभिषेक हे राजन् (आर्जीकीये) ऋजु, सरल धर्ममार्ग में वर्त्तमान (शर्यणावति) शर अर्थात् वाण धनुषादि शस्त्रास्त्र में कुशल जनों से समृद्ध जनपद में (सु-सोमायां) उत्तम ऐश्वर्ययुक्त या उत्तम जल-अन्न से समृद्ध भूमि के ऊपर (प्रियः) अतिप्रिय और (मदिन्तमः) अतिहर्षजनक हो। *

---

* सरल समभूमि वाले प्रदेश में उत्तम जलयुक्त शरकाण्ड वाली भूमि में उत्पन्न सोमलता का रस अति आह्लादजनक, पौष्टिक, मनभावना होता है। यह वेद ने स्पष्ट कहा। आर्जिकीया नदी विपाशा नाम से प्रसिद्ध है ऐसा यास्क का मत है। सायण के मत से कुरुक्षेत्र के दक्षिणार्ध भाग में

तम॒द्य राध॑से म॒हे चारुं॒ मदा॑य॒ घृष्व॑ये।
एहीमि॑न्द्र॒ द्रवा॒ पिब॑ ॥ १२ ॥ ४५ ॥

भा०—(अद्य) आज हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (आ इहि) आ। (तम् चारुं) उस उत्तम वा चरण अर्थात् फल रूप में उपभोग योग्य ऐश्वर्य पद को (महे राधसे) बड़े भारी धन प्राप्ति के लिये और (घृष्वये मदाय) शत्रु-पराजयकारी, आनन्द लाभ के लिये (द्रव) प्राप्त हो और (आ पिब) पालन और उपभोग कर। इति पञ्चचत्वारिंशो वर्गः ॥

[६५]

प्रगाथः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ५, ६, ६, ११, १२ निचृद् गायत्री। ३, ४ गायत्री। ७, ८, १० विराड् गायत्री ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

यदि॑न्द्र॒ प्रागपा॒गुद॒ङ् न्य॑ग्वा हू॒यसे॒ नृभिः॑।
आ या॑हि॒ तूय॑मा॒शुभिः॑ ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! (यत्) जो तू (प्राक् अपाक्, उदक्, न्यक् वा नृभिः हूयसे) पूर्व पश्चिम, उत्तर वा नीचे कहीं से भी बुलाया जाय, तू (तूयम्) शीघ्र ही (आशुभिः) शीघ्रगामी अश्वों के तुल्य व्यापक गुणों से (आ याहि) प्राप्त हो।

यद्वा॑ प्र॒स्रव॑णे दि॒वो मा॒दया॑से॒ स्व॑र्णरे।
यद्वा॑ समु॒द्रे अन्ध॑सः ॥ २ ॥

वह स्थान है। प्रायः जहां भी हिमवती नदियां पर्वतों से निकल कर सम भूमि भाग में आती हैं वहां २ वेद के बतलाये उक्त लक्षण पाये जाते हैं उन्हीं स्थलों पर ब्राह्मी आदि गुणवती ओषधियां प्रचुर मात्रा में होती हैं। सोम का भी उन स्थानों में पाया जाना सम्भव है।

भा०—(यद्वा) चाहे तू (दिवः प्रस्रवणे) प्रकाश के निकास रूप (स्वः वरे) सुख के प्राप्त कराने वाले रूप में (यद्वा) अथवा (अन्धसः) अन्न के (समुद्रे) अपार उत्पादक, सेचक, मेघवत् सर्वजीवन प्रद के रूप में तू (मादयसे) सब को सुखी करता है।

आ त्वा गीर्भिर्महामुरुं हुवे गामिव भोजसे।
इन्द्र सोमस्य पीतये ॥ ३ ॥

भा०—(भोजसे गाम् इव) खाद्य पदार्थ, दुग्ध आदि के प्राप्त करने के लिये गौ के समान हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (सोमस्य पीतये) ज्ञान रस के पान और ब्रह्मचर्य, ऐश्वर्यादि के पालन करने के लिये (त्वा) तुझ (महाम् उरुं) बड़े ज्ञानी को (गीर्भिः) वाणियों द्वारा (हुवे) पुकारता हूं।

आ ते इन्द्र महिमानं हरयो देव ते महः। रथे वहन्तु बिभ्रतः॥४

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (देव) प्रकाशस्वरूप! (महिमानं बिभ्रतः) महान् सामर्थ्य को धारण करने वाले (ते) तुझे और (महः बिभ्रतः ते) तेज वा बड़े भारी जगत् को धारण करने वाले (रथे हरयः) रथ में लगे अश्वों के तुल्य (रथे हरयः) रमण योग्य इस देह में विद्यमान सब मनुष्य (आ वहन्तु) आदरपूर्वक धारण करें।

इन्द्र गृणीष उ स्तुषे महाँ उग्र ईशानकृत्।
एहि नः सुतं पिब ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (महान्) बड़ा, (उग्रः) बलवान्, दुष्टों को भयजनक, (ईशानकृत्) सर्वस्वामी होकर, सब जगत् पर शासन करने वाला, (गृणीषे) वर्णन किया और (स्तुषे उ) स्तुति भी किया जाता है, तू (नः आ इहि) हमें प्राप्त हो और (सुतं पिब) उत्पन्न जगत् का पालन कर

सुतावन्तस्त्वा वयं प्रयस्वन्तो हवामहे।
इदं नो बर्हिरासदे ॥ ६ ॥ ४६ ॥

भा०—(वयं सुतवन्तः) हम सुत अर्थात् उत्पन्न ज्ञान वाले, और (प्रयस्वन्तः) उत्तम अन्नादि से सम्पन्न होकर भी (त्वा हवामहे) तुझ से याचना करते हैं कि (नः) हमारे (इदं बर्हिः आसदे) इस हव्यासन पर विराज। (२) इसी प्रकार उत्तम ऐश्वर्य, अन्न, उद्योगादि से युक्त, प्रजाएं राजा से उत्तम (बर्हिः) राष्ट्र प्रजा के ऊपर शासनार्थ विराजने की प्रार्थना करें।

यच्चिद्धि शश्वतामसीन्द्र साधारणस्त्वम्।
तं त्वा वयं हवामहे ॥ ७ ॥

भा०—(यत् चित् हि) जिस कारण से (शश्वताम् साधारणः त्वम् असि) तू बहुतों में भी साधारण, समान रूप से सबके प्रति निष्पक्षपात होकर सबको धारण पोषण करने हारा है, इसलिये (तं त्वा) उस तुझ को (वयं हवामहे) हम आदरपूर्वक बुलाते, प्रार्थना करते हैं।

इदं ते सोम्यं मध्वधुक्षन्नद्रिभिर्नरः। जुषाण इन्द्र तत्पिब ॥८॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राजन्! (नरः) नायक लोग (अद्रिभिः) शस्त्रास्त्र बलों द्वारा (ते) तेरे लिये (सोम्यं मधु) ओषधि रसादि से युक्त अन्न को (अधुक्षन्) प्राप्त करते हैं। तू (जुषाणः) प्रेम से सेवन करता हुआ (तत् पिब) उसका उपभोग कर। (२) हे प्रभो! (ते सोम्यं मधु) तेरे ही जगत् के उत्पादन और संचालन करने वाले सर्वैश्वर्य युक्त (मधु) बल वा ज्ञान का गुरुओं से शिष्यवत् (नरः) उत्तम जन (अद्रिभिः) मेघों से जलवत्, अखण्ड तपों से दोहन करते हैं। तू (जुषाणः) प्रेमपूर्वक सेवा किया (अधुक्षन्) चाकर (तत् पिब) उसे हमें पिला, पान करा।

विश्वाँ अर्यो विपश्चितोऽति ख्यस्तूयमा गहि ।
अस्मे धेहि श्रवो बृहत् ॥ ९ ॥

भा०—तू (अर्यः) सबका स्वामी है । अतः तू (विश्वान् विपश्चितः) समस्त विद्वानों को (अति ख्यः) पार करके सबसे अधिक विवेचक दृष्टि से देखता है । तू (तूयम् आ गहि) शीघ्र ही हमें प्राप्त हो । (अस्मे बृहत् श्रवः धेहि) हमें बड़ा भारी ज्ञान, यश आदि प्रदान कर ।

दाता मे पृषतीनां राजा हिरण्यवीनाम् ।
मा देवा मघवा रिषत् ॥ १० ॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् जनो ! (हिरण्य-वीनां) हित रमणीय कान्तियों से (राजा) प्रकाशमान प्रभु, (मे) मुझे (पृषतीनां) आनन्द की वर्षणकारी वाणियों का (दाता) देने वाला परम गुरु (मघवा) उत्तम ज्ञान का धनी (मा रिषत्) दण्डित, व्यथित न करे । (२) राजा भी सुवर्ण युक्त रथ विमानादि का स्वामी, और उत्तम गौवों का दाता धनी मुझ प्रजाजन का नाश न करे ।

सहस्रे पृषतीनामधि श्चन्द्रं बृहत्पृथु । शुक्रं हिरण्यमा ददे ॥११॥

भा०—(पृषतीनाम् सहस्रे अधि) सहस्रों सुखवर्षक वाणियों या नाड़ियों के भी ऊपर सहस्र नाड़ियों से युक्त मूर्धा में (बृहत् पृथु) बड़े विस्तृत (चन्द्रं) आल्हादजनक (शुक्रम् हिरण्यं) हितकारी सुखप्रद कान्तियुक्त वीर्य को (आददे) धारण करूं, मैं ऊर्ध्वरेता होऊं ।

नपातो दुर्गहस्य मे सहस्रेण सुराधसः । श्रवो देवेष्वक्रत १२।४७

भा०—व्रत से न गिरने वाले (सहस्रेण दुर्गहस्य) हजारों से दुर्ग्राह्य, अविज्ञेय, (सु-राधसः) उत्तम ऐश्वर्ययुक्त (मे) मेरा (श्रवः) ज्ञान (देवेषु) ज्ञान की कामना करने वाले शिष्यों में (अक्रत) प्रदान करो । इति सप्तचत्वारिंशो वर्गः ॥

[६६]

कलिः प्रागाथ ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ बृहती । ३, ५, ११, १३ विराड् बृहती । ७ पादनिचृद् बृहती । २, ८, १२ निचृत् पंक्तिः । ४, ६ विराट् पंक्तिः । १४ पादनिचृत् पंक्तिः । १० पंक्तिः । ९, १५ अनुष्टुप् ॥

पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

तरौभिर्वो विदद्वसुमिन्द्रं सुबाध ऊतये ।

बृहद् गायन्तः सुतसोमे अध्वरे हुवे भरं न कारिणम् ॥१॥

भा०—हे विद्वान् जनो ! आप लोग (सबाधः) पीड़ित होकर (ऊतये) रक्षा के लिये (तरोभिः) तारण करने वाले ज्ञानों से (वः) आप लोगों को (विदद्-वसुम्) नाना ऐश्वर्यों के प्राप्त कराने वाले, (इन्द्रं) उस सर्वैश्वर्यवान् को (कारिणं भरं न) सर्वकर्त्ता सर्वपोषक पिता के समान जान कर (बृहत् गायन्तः) वेदवाणी का गान करते हुए (सुत-सोमे अध्वरे) सोम सवनयुक्त यज्ञ में, वा ज्ञानसम्पादन युक्त हिंसारहित विशुद्ध उपासना में प्रार्थना करो । मैं भी उसी को (हुवे) प्रार्थना करता हूं ।

न यं दुध्रा वरन्ते न स्थिरा मुरो मदे सुशिप्रमन्धसः ।

य आदृत्या शशमानाय सुन्वते दाता जरित्र उक्थ्यम् ॥ २ ॥

भा०—(यं सु-शिप्रम्) जिस उत्तम बलशाली को (दुध्राः न वरन्ते) दुर्धर अर्थात् बड़े २ बलशाली भी वारण नहीं कर सकते (न स्थिराः मुरः) स्थिर, अचल शत्रुनाशक बली भी जिसको वारण नहीं कर सकते, उसके किये को नहीं बदल सकते, (यः) जो (अन्धसः मदे) अन्नवत् ज्ञान-जीवन के आनन्द में (शशमानाय) प्रशंसा करते हुए, (सुन्वते) उपासना करते हुए, (जरित्रे) स्तोता जन के हितार्थ, (आदृत्य दाता) आदर करके प्रेमपूर्वक दान देता है, उस (उक्थ्यम्) स्तुत्य प्रभु की मैं उपासना करूं ।

यः शुक्रो मृक्षो अश्व्यो यो वा कीजो हिरण्ययः ।
स ऊर्वस्य रेजयत्यपावृतिमिन्द्रो गव्यस्य वृत्रहा ॥ ३ ॥

भा०—(यः) जो (शक्रः) शक्तिशाली, (मृक्षः) अति शुद्ध (अश्व्यः) सर्वव्यापक है, (यः वा) जो (कीजः) अद्भुत, (हिरण्ययः) हित रमणीयस्वरूप, तेजोमय है (सः) वह (ऊर्वस्य) बहुत बड़े (गव्यस्य) वाणीसमूह रूप वेद के (आवृतिम्) आवरण को (अप रेजयति) दूर करता है, वही (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान्, (वृत्रहा) सब दुष्टों और विघ्नों का नाश करने हारा है ।

निखातं चिद्यः पुरुसम्भृतं वसूदिद्वपति दाशुषे ।
वज्री सुशिप्रो हर्यश्व इत्करदिन्द्रः क्रत्वा यथा वशत् ॥ ४ ॥

भा०—(चित्) जिस प्रकार कोई (निखातं पुरु-सम्भृतं वसु उद्वपति) बहुत सा एक स्थान पर गड़ा ख़ज़ाना खोद लेता है उसी प्रकार (यः) जो (वज्री) शक्तिमान्, (सु-शिप्रः) उत्तम मुख नासिका वाले वा उत्तम मुकुट वाले के समान सुरूप, सुज्ञानी, (हर्यश्वः) मनुष्यों को अश्वोंवत् सन्मार्ग पर चलाने हारा (इन्द्रः) वह प्रभु (निखातं) गाड़े (पुरु-सम्भृतं) इन्द्रियों वा बहुत सी प्रजाओं द्वारा सम्यक् प्रकार से धारित (वसु) ऐश्वर्य को (दाशुषे) भूमि से अन्न के समान उत्पन्न कर प्रदान करता है वही (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु है, वह (यथावशत्) जैसा चाहता है वैसे ही (क्रत्वा) अपने ज्ञान और धर्मसामर्थ्य से (करत्) जगत् का निर्माण करता है ।

यद्वावन्थ पुरुष्टुत पुरा चिच्छूर नृणाम् ।
वयं तत्त इन्द्र सं भरामसि यज्ञमुक्थं तुरं वचः ॥ ५ ॥ ४८ ॥

भा०—हे (पुरुस्तुत) बहुतों से स्तुति योग्य ! हे (शूर) दुष्टों के नाशक ! तू (पुरा चित्) पूर्ववत् अब भी (नृणां यद् वावन्थ)

भेड़िये के समान (वारणः) शत्रु का वारण करने में समर्थ शूरवीर (अस्य वयुनेषु भूषति) इस राजा के कार्य में समर्थ होता है। (२) प्रभु पक्ष में—(वृकः चित् वरामथिः) हल के समान भूमि को खनने वाला, वा चन्द्र के समान रात्रि के अन्धकार का नाशक, वा वृक पशु के समान अच्छादक ज्ञान का नाशक और (वारणः) सब विघ्नों को दूर करने हारा ज्ञानी तेजस्वी पुरुष ही, (अस्य वयुनेषु) इस प्रभु के ज्ञानैश्वर्यों को प्राप्त करने में (आ भूषति) सफल होता है। अथवा, (अस्य) इस जीव को (वरामथिः वृकः चित्) भेड़ के नाशक वा भेड़िये के समान आवरक तम के नाशक, चन्द्रवत् (वृकः) ज्योतिष्मान् (वारणः) सर्वदुःखवारक प्रभु ही उसे (वयुनेषु आ भूषति) सब ज्ञानों में अलंकृत करता वा समर्थ बनाता है हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (सः) वह तू (नः) हमारे (इमं स्तोमं जुजुषाणः) इस स्तुतिवचन को प्रेम से स्वीकार करता हुआ, (चित्रया धिया) ज्ञानप्रद अद्भुत बुद्धि, ज्ञान, कर्म से (आ गहि) आ, हमें प्राप्त हो।

कदु न्वस्याकृतमिन्द्रस्यास्ति पौंस्यम्।
केनो नु कं श्रोमतेन न शुश्रुवे जनुषः परि वृत्रहा ॥ ९ ॥

भा०—(अस्य) इस (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् प्रभु का (कत् उ पौंस्यं नु अकृतम् अस्ति) कौन सा बल का कर्म नहीं किया हुआ है, सब बल के कर्म इसी के किये हैं। वह (वृत्रहा) सब विघ्नों और दुष्टों का वारक और दण्ड देने हारा, वह (वृत्रहा) आवरणकारी प्रकृतिमय सलिल को गति देने वाला, उसमें भी व्यापक (जनुषः परि) जन्मशील इस चराचर जगत् के ऊपर (केन उ श्रोमतेन) भला किस श्रवणीय, वेदगम्य गुण और कर्म से (न शुश्रुवे) श्रवण नहीं किया जाता? उसके सृष्टि, स्थिति संहारादि के सभी कार्य अद्भुत और शास्त्रगम्य हैं।

कदू महीरधृष्टा अस्य तविषीः कदु वृत्रघ्नो अस्तृतम्।
इन्द्रो विश्वान्बेकनाटाँ अहर्दृश उत क्रत्वा पणीँरभि ॥१०॥४९॥

भा०—अथवा (अस्य) इसकी (महीः) बड़ी, (तविषीः) शक्तियां (कत् उ) कितनी हैं ? अपरिमित हैं। (अस्य वृत्र-घ्नः) इस वृत्र अर्थात् मेघवत् प्रकृतिमय सलिल के विक्षोभक परमेश्वर का (अस्तृतम्) अहिं-सित, नित्य स्थायी बल वा स्वरूप (कत् उ) कितना और कैसा है ? यह नहीं कहा जा सकता है। वह (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् प्रभु (विश्वान् वेक-नाटान्) सब महाजनों वा विवेकी (उत) और (अहः-दृशः पणीन्) सूर्य को देखने वाले सब व्यवहारकुशलों को भी (क्रत्वा) अपने ज्ञान से (अभि) परास्त करता है, वह सर्वोपरि है ॥ वेकनाटाः—वे इति अपभ्रंशो द्विश-ब्दार्थे। एकं कार्षापणं ऋणिकाय प्रयच्छन् द्वौ मह्यं दातव्यौ नयेन दर्शयति। ततो द्विशब्देनैकशब्देन च नाटयन्तीति वेकनाटाः इति सायणः। एक २ के दो लेने का संकेत कर समझाने वाले सूदखोर महाजन लोग 'वेकनाट' कहाते हैं। अथवा वेकनाटः—न ते नासिकायाः सज्ञायां टीटच्नाटज्-भ्रट-जः ॥ पा० ५। २। ३१ ॥ इति नाटच्। वेकनाटा, वेकनासिकाः भेक नासिकाः विकटनासिका वा। अथवा विचिर पृथग्भावे, वेकः पृथग्भावः, वेकनाटाः छिन्ननासः, विनासिका, विवेकशीलनासिकाः कुशला वा इत्येकोनपञ्चाशत्तमो वर्गः ॥

व॒यं घा॑ ते॒ अपू॑र्व्येन्द्र॒ ब्रह्मा॑णि वृत्रहन् ।
पु॒रू॒तमा॑सः पुरुहूत वज्रिवो भृ॒तिं न प्र भ॑रामसि ॥ ११ ॥

भा०—हे (अपूर्व्य) सबसे पूर्व, एवं सबसे पूर्ण ! हे (वृत्रहन्) दुष्टों के नाशक ! हे (पुरुहूत) बहुतों से प्रशंसित ! हे (वज्रिवः) शक्ति-शालिन् ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (वयं घ पुरूतमासः) हम उत्तम जन, (ते) तेरे लिये (भृतिं न) वेतन के समान ही करादि नित्य नियम से (प्र भरामसि) प्रदान करें। इसी प्रकार प्रभु की भक्ति भी हम नियम से अपने भोजन के समान ही नित्य किया करें।

पुर्वीश्चिद्धि त्वे तुविकूर्मिन्नाशसो हवन्त इन्द्रोतयः ।
तिरश्चिदुर्यः सवना वसो गहि शविष्ठ श्रुधि मे हवम् ॥ १२ ॥

भा०—हे (तुविकूर्मन्) बहुत से कर्म करने हारे ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वे) तेरे अधीन (पूर्वीः चित् हि) पूर्ण, समृद्ध (आशसः) उत्तम स्तुतिशील प्रजाएं और (ऊतयः) रक्षक सेनाएं (हवन्ते) तेरी स्तुति करती हैं। तू (अर्यः) सबका स्वामी, (तिरः चित्) प्राप्त हुए (सवना गहि) ऐश्वर्य प्राप्त कर। हे (वसो) सबको बसाने हारे ! हे (शविष्ठ) अति शक्तिशालिन् ! तू (मे हवं श्रुधि) मेरे वचन, प्रार्थनादि श्रवण कर।

वयं घा ते त्वे इद्विन्द्र विप्रा अपि ष्मसि ।
नहि त्वदन्यः पुरुहूत कश्चन मघवन्नस्ति मर्डिता ॥ १३ ॥

भा०—(वयं घ ते) हम तो तेरे ही हैं, (त्वे इत्)तेरे ही अधीन हम (विप्राः) विद्वान् जन हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (अपि स्मसि) सदा रहें, तुझ में निमग्न हों, अप्यय अर्थात् मोक्ष प्राप्त करें। हे (पुरुहूत) बहुतों के स्तुतिपात्र ! (मघवन्) उत्तम स्वामिन् ! (त्वद् अन्यः कः चन) तेरे से दूसरा कोई और (मर्डिता नहि अस्ति) सुख देने वाला नहीं है।

त्वं नो अस्या अमतेरुत क्षुधोऽभिशस्तेरव स्पृधि ।
त्वं न ऊती तव चित्रया धिया शिक्षा शचिष्ठ गातुवित् ॥१४॥

भा०—हे (शचिष्ठ) शक्तिशालिन् ! तू (नः)हमें (अस्याः अमतेः) अज्ञान, दारिद्र और (क्षुधः) भूख, तृष्णा, (उत) और (अभिशस्तेः) निन्दा से (अव स्पृधि) मुक्त कर। हे (गातुवित्) मार्गवित् ! उपायज्ञ, वाणी के जानने और प्राप्त कराने हारे ! (त्वं) तू (नः) हमें (तव चित्रया ऊती) तेरी अपनी आश्चर्यकारी रक्षा और (धिया) ज्ञान, कर्मशक्ति से (शिक्ष) ज्ञान प्रदान कर।

सोम॑ इद्वः सु॒तो अ॑स्तु॒ कल॑यो॒ मा बि॑भीतन ।
अपेदे॒ष ध्व॒स्माय॑ति स्व॒यं घै॒षो अपा॑यति ॥ १५ ॥ ५० ॥

भा०—हे (कलयः) उक्त ज्ञानवान् कर्मशील पुरुषो ! (वः) आप लोगों का (सोमः) ज्ञान और ऐश्वर्य (सुतः अस्तु) सदा उत्पन्न होता रहे । आप लोग (मा विभीतन) भय मत करो । (एषः) यह ज्ञान के उदय होने पर तेज से अन्धकारवत् (अप ध्वस्मायति इत्) स्वयं नष्ट हो जाता है, (स्वयं घ एषः अपायति) वह आप ही दूर हो जाता है । इति पञ्चाशत्तमो वर्गः ॥

[६७]

मत्स्यः सांमदो मान्यो वा मैत्रावरुणिर्बहवो वा मत्स्या जालनद्धा ऋषयः ॥ आदित्या देवताः ॥ छन्दः—१—३, ५, ७, ९, १३—१५, २१ निचृद् गायत्री । ४, १० विराड् गायत्री । ६, ८, ११, १२, १६—२० गायत्री ॥

त्यान्नु क्ष॒त्रियाँ॒ अव॑ आदि॒त्यान्या॑चिषामहे ।
सु॒मृ॒ळी॒काँ अ॒भिष्ट॑ये ॥ १ ॥

भा०—हम (तान्) उन (क्षत्रियान्) धनवान् और बलशाली (सुमृडीकान्) उत्तम सुखप्रद, (आदित्यान्) किरणों वा बारह मासों के समान तेजस्वी दान, कर आदि लेने वाले, विद्वानों और क्षत्रियों को (अभिष्टये) अपने अभीष्ट सुख को प्राप्त करने के लिये (अवः याचिषामहे) विनय पूर्वक धन, ज्ञानादि की याचना करें ।

मि॒त्रो नो॒ अत्यं॑हतिं॒ वरु॑णः पर्ष॑दर्य॒मा ।
आ॒दि॒त्यासो॒ यथा॑ वि॒दुः ॥ २ ॥

भा०—(मित्रः) स्नेही जन (वरुणः) श्रेष्ठ पुरुष, (अर्यमा)

शत्रुओं का नियन्ता न्यायकारी जन, और (आदित्यासः) तेजस्वी ४८ वर्ष के ब्रह्मचर्य के पालक जन भी (यथा विदुः) जैसे अच्छा जानें वैसे (नः) हमें (अंहतिं अतिपर्षत्) पाप से पार करें।

तेषां हि चित्रमुक्थ्यं१ वरूथमस्ति दाशुषे। आदित्यानामरङ्कृते३

भा०—(तेषां आदित्यानां) उन विद्वान् तपस्वी जनों का (अरंकृते) अत्यन्त अधिक श्रम करने वाले (दाशुषे) दानशील जन के लिये (चित्रम्) अद्भुत (उक्थ्यम्) स्तुत्य (वरूथम्) दुःखवारक धन (अस्ति) है।

महि वो महतामवो वरुण मित्रार्यमन्। अवांस्या वृणीमहे ॥४॥

भा०—हे (वरुण मित्र अर्यमन्) श्रेष्ठ! स्नेहवन्! न्यायकारिन्! (वः महताम्) आप बड़ों का (महि अवः) ज्ञान और पालन सामर्थ्य भी बड़ा है। आप लोगों से हम (अवांसि वृणीमहे) नाना ज्ञानों, रक्षाओं की याचना करते हैं।

जीवान्नो अभि धेतनादित्यासः पुरा हथात्।
कद्ध स्थ हवनश्रुतः ॥ ५ ॥ ५१ ॥

भा०—हे (आदित्यासः) तेजस्वी पुरुषो! (पुरा हथात्) मृत्यु से पहले आप लोग (नः जीवान्) हम जीवित जनों को (अभि धेतन) सदा पालन पोषण करते रहो, हे (हवन-श्रुतः) आह्वान के सुनने वालो! आप (कत् ह स्थ) कहीं भी होवो, इस व्रत का पालन करो। इत्येकपञ्चाशत्तमो वर्गः ॥

यद्वः श्रान्ताय सुन्वते वरूथमस्ति यच्छर्दिः।
तेना नो अधि वोचत ॥ ६ ॥

भा०—हे उत्तम मनुष्यो! (यद् वरूथम्) जो तुम लोगों का दुःखादि वारण करने योग्य धन और (यत् छर्दिः) जो गृह है वह (श्रान्ताय)

श्रमशील तपस्वी, और (सुन्वते) उपासक भक्त जन के लिये हो। (तेन) उसी तपस्वी और उपासक भक्त जन द्वारा (नः अधि वोचत) हमें उत्तम उपदेश करो।

अस्ति देवा अंहोरुर्वस्ति रत्नमनागसः।
आदित्या अद्भुतैनसः ॥ ७ ॥

भा०—हे (देवाः) विद्वान् पुरुषो ! (अंहोः) हिंसक एवं पापकारी पुरुष का पाप या कष्ट भी (उरु अस्ति) बड़ा अधिक होता है। और (अनागसः) निरपराधी को (रत्नं उरु अस्ति) सुख भी बहुत होता है। हे (आदित्याः) अदिति अर्थात् उत्तम माता पिता के उत्तम पुत्रो ! एवं उत्तम विद्वान् व्रतधारी तेजस्वी पुरुषो ! आप लोग सदा (अद्भुत-एनसः) पापरहित, निरपराधी होवो।

मा नः सेतुः सिषेदयं महे वृणक्तु नस्परि।
इन्द्र इद्धि श्रुतो वशी ॥ ८ ॥

भा०—(सेतुः) बन्धन, वा बन्धनकारी अधिकारी (नः मा सिषेत) हमें बन्धन में न बांधे। (अयं) यह (नः) हमें (महते) बड़े उद्देश्य के लिये (परि वृणक्तु) बुरे काम से बचावे। (इन्द्रः इत् हि) इन्द्र ही (वशी श्रुतः) सबको वश करने वाला सुना जाता है, वेद में बतलाया गया है।

मा नो मृचा रिपूणां वृजिनानामविष्यवः।
देवा अभि प्र मृक्षत ॥ ९ ॥

भा०—हे (अविष्यवः देवाः) रक्षा करने के इच्छुक विद्वान् मनुष्यो ! (रिपूणां) शत्रुओं और (वृजिनानां मृचा) पापों के विनाशकारी साधन से (नः मा अभि प्र मृक्षत) हमारा नाश मत होने दो। अत्र मृक्षत इत्यपि हिंसार्थस्य मृचेरेव रूपम्।

उत त्वामदिते मह्यहं देव्युप ब्रुवे। सुमृळीकामभिष्टये ॥१०॥५२

भा०—हे (महि) पूज्ये ! हे (देवि) विदुषि ! हे (अदिते)

पृथिवि! मातः! (उत) और मैं (सुमृडीकाम्) उत्तम सुखदायिनी दयावती (त्वाम्) तुझ से (अभिष्टये) अभीष्ट पूर्त्ति के लिये (उप ब्रुवे) याचना करता हूं। इति द्वापञ्चाशत्तमो वर्गः॥

पर्षि दीने गभीर आँ उग्रपुत्रे जिघांसतः।
माकिस्तोकस्य नो रिपत्॥ ११॥

भा०—हे (उग्रपुत्रे) अर्थात् शत्रु को भय देने वाले पुत्रों की मातः! तू (जिघांसतः) हनन करने की इच्छा वाले, हिंसक भाव वाले पुरुष से हमारी (दीने) दीन दशा में और (गभीरे) गृह, जंगल, अन्धकारादि में भी (पर्षि) सब प्रकार से रक्षा कर। (नः तोकस्य) हमारे सन्तान को (माकिः) और कोई भी (नः रिपत्) मार सके। इसी प्रकार राष्ट्र, भूमि (State) स्वयं स्वतन्त्र अन्य किसी देश के अधीन न हों, उसकी इतनी शक्ति हो कि इसका प्रत्येक पुत्र दीन से दीनदशा और गंभीर से गंभीर जंगल, जल, एकान्तादि में भी निर्भय हो, उस पर कोई अन्य देश वाला अंगुली तक न उठा सके।

अनेहो न उरुव्रज उरूचि वि प्रसर्तवे।
कृधि तोकाय जीवसे॥ १२॥

भा०—हे (उरु-व्रजे) दूर २ तक जाने वाली! हे (उरूचि) बहुत वेग से जाने वाली! तू (नः) हम (अनेहः) निरपराधों को (वि प्रसर्तवे) विविध दिशाओं में जाने के लिये हो और (तोकाय) पुत्रादि के (जीवसे) जीवन के लिये (कृधि) उपाय कर। दूर देशों तक जाने वाली वैश्य-सभा वा उनकी संस्था और गमनागमन साधनों की व्यवस्था कारिणी संस्था 'उरुव्रजा' और 'उरूची' नाम से कही गई प्रतीत होती हैं।

ये मूर्धानः क्षितीनामदब्धासः स्वयशसः।
व्रता रक्षन्ते अद्रुहः॥ १३॥

भा०—(ये) जो (क्षितीनां) भूमियों में बसी ऐश्वर्ययुक्त प्रजाओं के (मूर्धानः) शिरोमणि, प्रमुख पुरुष हैं वे (अदब्धासः) अहिंसक (स्वयशसः) धन और यश से सम्पन्न हों और (अद्रुहः) द्रोह रहित होकर (व्रता रक्षन्ते) व्रत, उत्तम कर्मों, नियमों और अन्नों की रक्षा करें।

ते न॑ आस्नो वृकाणामादित्यासो मुमोचत ।
स्तेनं बद्धमिवादिते ॥ १४ ॥

भा०—(आदित्यासः) हे तेजस्वी पुरुषो ! हे (अदिते) अखण्ड शासनकारिणि ! मातृवत् पालिके ! प्रभुशक्ते ! तू (बद्धम्-इव स्तेनं) बंधे चोर के समान बन्धन में बद्ध (नः) हमें (वृकाणां आस्नः) भेड़ियों के तुल्य मुंह फाड़ कर खाने को आने वाले दुष्ट हिंसकों के मुखों से (मुमोचत) छुड़ाओ।

अपो षु ण॑ इयं शरुरादित्या अप॑ दुर्मतिः ।
अस्मदेत्वजघ्नुषी ॥ १५ ॥ ५३ ॥

भा०—हे (आदित्याः) मातृभूमि के हितकारी जनो ! हे विद्वान् तेजस्वी, अखण्ड ब्रह्मोपासक, अखण्ड व्रताचरण करने हारो ! (इयं शरुः) यह हिंसाकारी (नः अपो एतु) हम से दूर हो और (इयं दुर्मतिः) यह दुष्ट मति और दुष्ट शस्त्रादि (अजघ्नुषी) हमें पीड़ित न करती हुई (अस्मत् अप एतु) हम से दूर हो। इति त्रिपञ्चाशत्तमो वर्गः ॥

शश्वद्धि वः सुदानव आदित्या ऊतिभिर्वयम् ।
पुरा नूनं बुभुज्महे ॥ १६ ॥

भा०—हे (सुदानवः आदित्याः) उत्तम दानशील, दान-आदान करने वाले तेजस्वी जनो ! (वः) आप लोगों की (ऊतिभिः) रक्षाओं द्वारा (वयं शश्वत् हि) हम निरन्तर ही (पुरा नूनं) पहले के समान (बुभुज्महे) नाना ऐश्वर्यों का भोग करें।

शश्वन्तं हि प्रचेतसः प्रतियन्तं चिदेनसः।
देवाः कृणुथ जीवसे ॥ १७ ॥

भा०—हे (प्रचेतसः) उत्तम चित्त और उत्कृष्ट ज्ञानवान् पुरुषो! हे (देवाः) दानशील ज्ञानप्रकाशक पुरुषो ! (एनसः) पाप से दूर (प्रतियन्तं) विरुद्ध दिशा में जाने वाले, या पापों का मुकाबला करने वाले (शश्वन्तं) बहुत से जनसमाज को (जीवसे कृणुथ) दीर्घ जीवन के लिये तैयार करो।

तत्सु नो नव्यं सन्यस आदित्या यन्मुमोचति।
बन्धाद् बद्धमिवादिते ॥ १८ ॥

भा०—हे (आदित्याः) सूर्यवत् तेजस्वी गुरु के शिष्यो ! वा भूमि-माता के सत्पुत्रो ! और हे (अदिते) सूर्यवत् तेजस्वी, हे मातृवत् पूज्य ! (बद्धम् इव) बद्ध पुरुष के समान कर्मबन्धन में बँधे पुरुष को (यत्) जो ज्ञान (मुमोचति) मुक्त कर देता है (तत्) वह (नव्यं) स्तुत्य, उपदेष्टव्य ज्ञान (सु सन्यसे) अच्छी प्रकार सेवन करने के लिये हो।

नास्माकमस्ति तत्तर आदित्यासो अतिष्कदे।
यूयमस्मभ्यं मृळत ॥ १९ ॥

भा०—हे (आदित्यासः) ज्ञानवान् पुरुषो ! (अस्माकं तत् तरः न अस्ति) हमारे पास वह बल नहीं है जो (अति-स्कदे) सब बन्धनों और कष्टों से पार ले चलने में समर्थ हो। (यूयम्) तुम सब (अस्मभ्यं मृडत) हमें सुखी करो।

मा नो हेतिर्विवस्वत आदित्याः कृत्रिमा शरुः।
पुरा नु जरसो वधीत् ॥ २० ॥

भा०—हे (आदित्याः) तेजस्वी पुरुषो ! (विवस्वतः) विविध प्रजाओं के स्वामी राजा वा विविध किरणों वाले सूर्य की (कृत्रिमा)

शिल्पी आदि से बनाई गई वा गति से उत्पन्न (शरुः) प्राण या जीवन का नाश करने वाली (हेतिः) शस्त्रपीड़ा, वा कालगति, (नः) हमें (जरसः पुरा) वृद्धावस्था से पूर्व (मा वधीत्) न मारे ।

वि षु द्वेषो व्यंहुतिमादित्यासो वि संहितम् ।
विष्वग्वि वृहता रपः ॥ २१ ॥ ५४ ॥ ४ ॥

भा०—हे (आदित्यासः) विद्वान् तेजस्वी, अदीन शासक शक्ति के निर्माता जनो ! आप लोग (द्वेषः वि सु वृहत) शत्रुओं को विविध प्रकार से अच्छी प्रकार नष्ट कर दो । (अंहतिम् वि वृहत) पाप को समूल उखाड़ दो । (संहितम् वि वृहत) बन्धन को दूर करो । और (रपः विश्वक् वि वृहत) पाप को भी सब प्रकार से उखाड़ दो । इति चतुःपञ्चाशत्तमो वर्गः॥

इति चतुर्थोऽध्यायः ॥

पञ्चमोऽध्यायः

[६८]

प्रियमेध ऋषिः ॥ १—१३ इन्द्रः । १४—१९ ऋक्षाश्वमेधयोर्दानस्तुतिर्देवता ॥ छन्दः—१ अनुष्टुप् । ४, ७ विराडनुष्टुप् । १० निचृदनुष्टुप् । २, ३, १५ गायत्री । ५, ६, ८, १२, १३, १७, १९ निचृद् गायत्री । ११ विराड् गायत्री । ९, १४, १८ पादनिचृद् गायत्री । १६ आर्ची स्वराड् गायत्री ॥
एकोनविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्तयामसि ।
तुविकूर्मिमृतीषहमिन्द्र शविष्ठ सत्पते ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! सत्यदर्शिन् ! तेजस्विन् ! (यथा) जिस प्रकार (ऊतये) सुखार्थ और रक्षार्थ (तुविकूर्मिं ऋति-सहं

रथं वर्तयानः) बहुत तीव्र गति से चलने वाले, बहुत कार्यों में लाने वाले, गमनमें समर्थ रथ को प्रयोग में लाते हैं इसी प्रकार हे (शविष्ठ) अति बलशालिन्! हे (सत्-पते) सज्जनों के पालक! सत्, कारण पदार्थों के स्वामिन्! (तुवि-कूर्मिन्) बहुत से सृष्ट्यादि कर्मों के कर्त्ता, (ऋति-षह) दुःखदायी हिंसकों को पराजित करने वाले, (त्वा) तुझ को हम (सुम्नाय) सुख प्राप्त करने के लिये (आ वर्तयामसि) पुनः २ तेरा मनन, चिन्तन और शास्त्र द्वारा आवर्त्तन करें।

तुविंशुष्म तुविंक्रतो शचींवो विश्वंया मते ।
आ पंप्राथ महित्वना ॥ २ ॥

भा०—हे (तुवि-शुष्म) बहुत बलों से सम्पन्न, प्रचुर शक्तिमन्! हे (तुविक्रतो) बहुत प्रज्ञासम्पन्न! महामते। हे (शचीवः) शक्ति, वाणी के स्वामिन्! तू (महित्वना) महान् सामर्थ्य से हे (मते) मनन करने हारे ज्ञानमय! (विश्वया आ पप्राथ) समस्त विश्व को तू ही फैलाता है।

यस्यं ते महिना महः परिं ज्मायन्तमीयतुः ।
हस्ता वज्रं हिरण्ययंम् ॥ ३ ॥

भा०—(यस्य ते) जिस तेरे (हस्ता) दोनों हाथ (महिना) महान् शक्ति से युक्त होकर (महः) बड़े (ज्मायन्तं) भूमि तक व्यापने वाले (हिरण्ययं) तेजोमय (वज्रं) वीर्यवत् शस्त्र को (परि ईयतुः) वश करते हैं।

विश्वानंरस्य वस्पतिमनानतस्य शवंसः ।
एवैश्च चर्षणीनामूती हुवे रथांनाम् ॥ ४ ॥

भा०—हे वीर पुरुषो! (अनानतस्य) कभी न झुकने वाले (विश्वा-नरस्य) समस्त मनुष्यों के बने (शवसः) बलवान् सैन्य के (पतिम्)

उस स्वामी को (चर्षणीनाम्) मनुष्यों और (रथानाम्) रथों के (एवैः) गमनागमनों द्वारा (हुवे) बुलाता हूं।

अभिष्टये सदावृधं स्वर्मीह्ळेषु यं नरः।
नाना हवन्त ऊतये ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—(यं) जिस (सदावृधं) सदा बढ़ाने वाले, को (स्वः-मीढेषु) संग्रामों में (नाना नरः) नाना नायक जन (ऊतये) रक्षा और तृप्ति के लिये (हवन्ते) प्रमुख स्वीकार करते हैं। इति प्रथमो वर्गः ॥

परोमात्रमृचीषममिन्द्रमुग्रं सुराधसम्। ईशानं चिद्वसूनाम् ॥६॥

भा०—(परः-मात्रम्) सब परिमाणों से परे, अति सूक्ष्म और अनन्त, (ऋचीषमम्) ऋचा या स्तुति द्वारा सर्वत्र समान रूप से स्तुत्य (इन्द्रम् उग्रं सु-राधसम्) ऐश्वर्ययुक्त बलवान् धनादि सम्पन्न (वसूनां चित् ईशा॰ नम्) प्रजा के राजा के समान समस्त जीवों और लोकों के स्वामी को मैं (हुवे) स्तुति करता हूं।

तन्तमिद्राधसे मह इन्द्रं चोदामि पीतये।
यः पूर्व्यामनुष्टुतिमीशे कृष्टीनां नृतुः ॥ ७ ॥

भा०—(यः) जो (नृतुः) सबका नेता, सब विश्व का संचालक और (कृष्टीनाम्) सब कृषि योग्य भूमियों के स्वामिवत् समस्त योनियों, जीवों, मनुष्यों, और प्रजाओं का (ईशे) प्रभु है, (तं-तम् इत्) निश्चय उस ही (इन्द्रम्) परम ऐश्वर्यवान् और ऐश्वर्य के दाता प्रभु को लक्ष्य करके (पूर्व्याम्) पूर्व की, सर्वश्रेष्ठ, (अनु-स्तुतिम्) अनुरूप स्तुति को (पीतये) अपने पालन या रक्षा के लिये (चोदामि) करता हूं।

न यस्य ते शवसान सख्यमानंश मर्त्यः।
नकिः शवांसि ते नशत् ॥ ८ ॥

भा०—हे (शवसान) बलशालिन्! (यस्य ते) जिस तेरे (सख्यम्)

मित्रभाव को (मर्त्यः) मनुष्य (न आनंश) नहीं प्राप्त करता, उसको पूरी तरह से नहीं जान पाता, उन तेरे (शवांसि) बलों को भी (नकिः नशत्) कोई पा नहीं सकता। उनका भी पार कोई नहीं पाता। तेरी मित्रता और बल दोनों अपार और अनन्त हैं।

त्वोतासस्त्वा युजाप्सु सूर्ये महद्धनम्।
जयेम पृत्सु वज्रिवः ॥ ९ ॥

भा०—हे (वज्रिवः) वीर्यशालिन्! (त्वा उतासः) तेरे से सुरक्षित और (त्वा युजा) तेरे से सहायवान् होकर हम (अप्सु सूर्ये) अन्तरिक्ष और सूर्य के समान प्रजा और सूर्यवत् राजा के अधीन रहकर (पृत्सु) संग्रामों में (महद् धनम् जयेम) बड़ा धनलाभ विजय करें।

तं त्वा यज्ञेभिरीमहे तं गीर्भिर्गिर्वणस्तम।
इन्द्र यथा चिदाविथ वाजेषु पुरुमाय्यम् ॥ १० ॥ २ ॥

भा०—हे (गिर्वणस्तम इन्द्र) वाणी द्वारा अतिस्तुत्य प्रभो! (यथाचित् वाजेषु) जिस प्रकार संग्रामों में तू (पुरुमाय्यं) बहुत मतिमान् और बहुतों में आज्ञापक की (आविथ) रक्षा करता है, (तं त्वा) उस तुझ को (गीर्भिः यज्ञेभिः) वाणियों और यज्ञों द्वारा (ईमहे) स्तुति करें। इति द्वितीयो वर्गः ॥

यस्य ते स्वादु सख्यं स्वाद्वी प्रणीतिरद्रिवः।
यज्ञो वितन्तसाय्यः ॥ ११ ॥

भा०—(यस्य ते) जिस तेरा (सख्यं स्वादु) मित्रभाव अति सुख प्रद, और (प्रणीतिः स्वाद्वी) जिसकी उत्तम नीति भी अति सुख देने वाली है वह तू (यज्ञः) उपासना योग्य और (वितन्त-साय्यः) विशेष रूप से एकाग्र चित्त से ध्यान करने योग्य है।

उरु णस्तन्वे३ तने उरु क्षयाय नस्कृधि ।
उरु णो यन्धि जीवसे ॥ १२ ॥

भा०—हे प्रभो ! तू (नः तन्वे) हमारे शरीर के सुखार्थ, (तने) पुत्रादि के लिये और (क्षयाय) हमारे निवास और 'क्षय' अर्थात् ऐश्वर्य-वृद्धि के लिये, (नः उरु कृधि) हमारे लिये बहुत कुछ और (जीवसे उरु यन्धि) हमें जीवन के लिये बहुत कुछ प्रदान कर ।

उरुं नृभ्य उरुं गव उरुं रथाय पन्थाम् । देववीतिं मनामहे॥१३॥

भा०—हम लोग (नृभ्यः उरुं) मनुष्यों के हितार्थ बहुत बड़ा (पन्थाम्) मार्ग चाहते हैं (गवे) गवादि जन्तुओं के लिये भी (उरु पन्थाम्) बहुत बड़ा मार्ग और (रथाय उरुं पन्थाम्) रथ के लिये भारी मार्ग और (देव-वीतिं) विद्वानों का उत्तम ज्ञान, प्रकाश तथा देव, दान-वान् पुरुष की नीति रक्षा, बल, कान्ति की (मनामहे) याचना करते हैं ।

उप मा षड् द्वाद्वा नरः सोमस्य हर्ष्या ।
तिष्ठन्ति स्वादुरातयः ॥ १४ ॥

भा०—(द्वा-द्वा) दो दो करके (षड् नरः) छः नायक (सोमस्य हर्ष्या) ऐश्वर्य प्राप्ति के हर्ष से मानो सुप्रसन्न, (स्वादु-रातयः) सुखप्रद दानों से युक्त होकर (मा उप तिष्ठन्ति) मेरे पास उपस्थित होते हैं । अर्थात् 'सोम' वा वीर्य की रक्षा से उत्पन्न हर्ष, सुख, आनन्द से हृष्ट पुष्ट जोड़े जोड़े ६ नायक आंख, नाक, कान उत्तम सुस्वादु ज्ञान, बल प्रदान करते हुए मुझ आत्मा को प्राप्त हैं । दो दो के जोड़े मिलकर छः—आँखें, दो, नाकें दो, कान दो, ये उत्तम अन्न रस से पुष्ट होकर उत्तम ज्ञान देते हैं ।

ऋज्राविन्द्रोत आ ददे हरी ऋक्षस्य सूनवि ।
आश्वमेधस्य रोहिता ॥ १५ ॥ ३ ॥

भा०—(आश्वमेधस्य) अर्थात् अश्व, भोक्ता आत्मा के वा (आश्वमेधस्य) अश्व भोक्ता आत्मा वा अश्ववत् इन्द्रिय मन से संयुक्त (ऋक्षस्य) गतिशील, जंगम शरीर के (सूनवि) प्रेरक (इन्द्रोते) आत्मा से रक्षित इस शरीर रूप राष्ट्र में (ऋज्रौ) ऋजु मार्ग से जाने वाले, (रोहिता हरी) अन्न आदि से पुष्ट, दो अश्वोंवत् प्राण-आपान को मैं साध कर (आददे) वश करूं। (२) (आश्वमेधस्य ऋक्षस्य सूनवि इन्द्रोते ऋज्रौ रोहिता हरी आददे) अश्व मेध अर्थात् राष्ट्र का शासन करने वाले, ऋक्ष, अर्थात् पराक्रमी सैन्य के प्रेरक वा उत्पादक, राजा से सुरक्षित वा शत्रुहन्ता सैन्य-बल से सुरक्षित ऋजु, धर्म मार्ग में चलने वाले (रोहिता) वृद्धिशील, अनुरक्त, (हरी) स्त्री पुरुषों को मैं राजा (आददे) अपने अधीन लेता हूं। इति तृतीयो वर्गः॥

सुरथाँ आतिथिग्वे स्वभीशूँरार्क्षे। आश्वमेधे सुपेशसः॥ १६॥

भा०—(आतिथिग्वे) अतिथि के आदर सत्कारार्थ वाणी को विनय पूर्वक प्रयोग करने वाले, (आर्क्षे) शत्रुपर आक्रमण करने में कुशल, (आश्व-मेधे) अश्व-सैन्य से शत्रुओं का संग्राम रूप यज्ञ करने वाले, वीर नायक के अधीन (सुपेशसः) उत्तम रूपवान्, (सु-अभीशून्) उत्तम लगामों से युक्त (सु-रथान्) उत्तम रथ वाले अश्वों के समान, उत्तम रूप धनादि से सम्पन्न, (सु-अभीशून्) अंगुलि वा सुअवयवों से सम्पन्न, (सुरथान्) उत्तम रथारोही, वा उत्तम देहवान् वीर, दृढ़, योद्धा पुरुषों को मैं (आददे) अपने राष्ट्र में और शासन में नियुक्त करूं।

षळश्वाँ आतिथिग्व इन्द्रोते वधूमतः। सचा पूतक्रतौ सनम् १७

भा०—(आतिथिग्वे) पूज्य के सत्कारक, विनीत वाणी वाले (इन्द्रोते) ऐश्वर्य से युक्त, (पूत-क्रतौ) पवित्र कर्म और पवित्र ज्ञान वाले पुरुष के अधीन (वधूमतः षट् अश्वान्) 'वधू' अर्थात् शत्रु का वध करने, उनको कम्पित कर देने वाली सैन्य शक्ति से युक्त छः अश्वसैन्य के स्वामी सेना-

पतियों को मैं (सचा) एक साथ ही (सनम्) प्राप्त करूं। (२) अध्यात्म में– पवित्राचारवान् पावन-प्रज्ञ, सर्वोपरि वाणी के स्वामी आचार्य के अधीन रहकर मैं वहनकारिणी प्राण या चेतना शक्ति से युक्त चक्षु आदि पांच और छठा मन इन इन्द्रिय गण को मैं शिष्य वश करूं। अथवा मैं साधक, आत्मा से रक्षित, पवित्रकर्मा, व्यापक इन्द्रिय सम्पन्न देह में (वधूमतः) देहधारक शक्ति से युक्त पांच इन्द्रिय, मन, इन छः मुख्य प्राणों को धारण करूं।

एषु चेतद्वृषण्वत्यन्तर्ऋज्रेष्वरुषी। स्वभीशुः कशावती ॥ १८ ॥

भा०—(एषु ऋज्रेषु) इन ऋजु, धर्म मार्ग में चलने वाले विद्वानों के ऊपर या (वृषण्वती) बलवान् पुरुषों वा दृढ़ नायक सभापति वाली, (अरुषी) तेजस्विनी, (सु-अभीशुः) सुप्रबद्ध नियम व्यवस्था से सम्पन्न (कशावती) वाणी, वा आज्ञा की स्वामिनी राजसभा (आचेतत्) सब कुछ विचार किया करे। (२) अध्यात्म में–(एषु) इन (ऋज्रेषु) गतिशील प्राणों पर उनमें (वृषण्वती) बलवान् मन की स्वामिनी, (अरुषी) दीप्तिमती, (सु-अभीशुः) देह की संचालक ज्ञानतन्तुओं की स्वामिनी, (कशावती) वाणी की स्वामिनी (अचेतत्) देह में सर्वत्र चेतना को प्रकट करती है।

न युष्मे वाजबन्धवो निनित्सुश्चन मर्त्यः।
अवद्यमधि दीधरत् ॥ १९ ॥ ४ ॥

भा०—हे (वाजबन्धवः) राष्ट्र में ऐश्वर्य और अन्नादि वेतनों पर बंधे नियुक्त पुरुषो ! (युष्मे) तुम लोगों में से कोई भी (मर्त्यः निनित्सुः चन) निन्दा करने वाला होकर (अवद्यम् न अधि दीधरत्) निन्दनीय कार्य, दुष्ट फल को न धारण करे। अर्थात् कोई भी परस्पर की निन्दा वा बुरा काम न करे। इति चतुर्थो वर्गः ॥

[६९]

प्रियमेध ऋषिः ॥ देवताः—१—१०, १३—१८ इन्द्रः । ११ विश्वेदेवाः । ११, १२ वरुणः ॥ छन्दः—१, ३, १८ विराडनुष्टुप् । ७, ६, १२, १३ १५ निचृदनुष्टुप् । ८ पादनिचृदनुष्टुप् । १४ अनुष्टुप् । २ निचृदुष्णिक् । ४, ५ निचृद् गायत्री । ६ गायत्री । ११ पंक्तिः । १६ निचृत् पंक्तिः । १७ बृहती । १८ विराड् बृहती ॥ अष्टादशर्चं सूक्तम् ॥

प्रप्र वस्त्रिष्टुभमिषं मन्दद्वीरायेन्दवे ।
धिया वो मेधसातये पुरन्ध्या विवासति ॥ १ ॥

भा०—हे प्रजाजनो ! आप लोग (मन्दद्-वीराय) हृष्ट, पुष्ट, सुतृप्त वीर पुरुषों के स्वामी वा वीरों को हर्षित करने वाले, (इन्दवे) ऐश्वर्यवान् तेजस्वी पुरुष के लिये (त्रि-स्तुभम्) मन, वाणी, कर्म तीनों से स्तुति करने योग्य, तीनों दोषों के नाशक (इषं) अन्न और सैन्य को (प्र-प्र) उत्तम प्रकार से प्रदान करो। वह (पुरन्ध्या धिया) राष्ट्र या पुर को धारण करने वाली सद्-बुद्धि से (वः) आप लोगों की (मेध-सातये) अन्नादि ऐश्वर्य को प्राप्त करने और यज्ञ वा युद्ध के निभाने के लिये (आ विवासति) सब प्रकार से सेवा करें।

नदं व ओदतीनां नदं योयुवतीनाम् ।
पतिं वो अघ्न्यानां धेनूनामिषुध्यसि ॥ २ ॥

भा०—(ओदतीनां) स्तुति करती हुई (वः) आप प्रजाओं को (नदं) समृद्ध करने वाले और (योयुवतीनां) सर्वत्र मेल, सत्संग रखने वाली प्रजाओं के (नदं) आज्ञापक, (अघ्न्यानां) न मारने योग्य, रक्षा करने योग्य (धेनूनाम्) अपनी पालक पोषक, गौवत् अन्नदाता और (वः) आप प्रजाजनों के (पतिं) पालक को आप लोग चाहो। और हे राजन् ! तू भी इन (धेनूनां अघ्न्यानां ओदतीनां योयुवतीनां) गौओं के

तुल्य अहन्तव्य, रक्षणीय, स्तुति युक्त, तुझ से मेल रखने वाली प्रजाओं की (इपुध्यसि) बराबर कामना कर, उनको हृदय से चाह।

ता अस्य सूददोहसः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः।
जन्मन्देवानां विशस्त्रिष्वा रोचने दिवः ॥ ३ ॥

भा०—वे (पृश्नयः) मेघमाला के समान ऐश्वर्य का वर्षण करने वाली वा उससे स्पर्श अर्थात् सम्बन्ध रखने वाली (विशः) प्रजाएं (सूद-दोहसः) जल प्रदान करने वाले कूपों या मेघों के समान (अस्य) उसके (सोमं) अन्नवत् ऐश्वर्य को (श्रीणन्ति) प्राप्त कराती हैं। और (दिवः) सूर्य के समान तेजस्वी, (त्रिषु) तीनों लोकों में (रोचने) प्रकाश करने वाले सर्व-रुचिकर आकाशवत् उच्च और (देवानां जन्मनि) देव, विद्वानों के बीच नवजन्म लेने के लिये शुभ गुणों के आश्रय पद पर उसे स्थापित या प्राप्त करते हैं।

अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे।
सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥ ४ ॥

भा०—(यथा विदे) यथावत् ज्ञान वा ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये, (सत्पतिम्) सज्जनों के पालक, एवं सत् अविनाशी पदार्थों के स्वामी, (सत्यस्य सूनुं) सत्य के प्रेरक, सत्य के उत्पादक, उपदेशक (गोपतिं) जितेन्द्रिय, वाणी के पालक, भूमि के पालक (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् प्रभु की (अभि प्र अर्च) साक्षात् स्तुति कर।

आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि। यत्राभि संनवामहे ॥५॥५॥

भा०—(यत्र) जहां हम सब (अभि सं-नवामहे) ऐश्वर्यवान् की साक्षात् स्तुति करें, उस (बर्हिषि अधि) राष्ट्र, प्रजा वा उत्तमासन पर स्थित (हरयः) उत्तम विद्वान् गण (अरुषीः) उत्तम २ वाणियां (आ ससृज्रिरे) कहें। इति पञ्चमो वर्गः ॥

इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु। यत्सीमुपह्वरे विदत् ६

भा०—(गावः आशिरं मधु) गौएं जिस प्रकार खाने योग्य उत्तम मधुर दुग्ध प्रदान करती हैं उसी प्रकार (इन्द्राय वज्रिणे) सर्वशक्तिमान् परमेश्वर के (मधु) अति मधुर (आशिरं) सर्वव्यापक स्वरूप को (गावः) वेदवाणियां (दुदुह्रे) दोहन करती हैं, उसी का प्रतिपादन करती हैं, (यत्) जो (उपह्वरे) अति समीप एकान्त देश में (विदत्) जाना और प्राप्त किया जाता है।

उद्यद्ब्रध्नस्य विष्टपं गृहमिन्द्रश्च गन्वहि।
मध्वः पीत्वा सचेवहि त्रिः सप्त सख्युः पदे ॥ ७ ॥

भा०—मैं और (इन्द्रः च) ऐश्वर्यवान् प्रभु, स्वामी दोनों (ब्रध्नस्य) बन्धन में बांधने वाले आश्रयभूत स्वामी के (विष्टपं = वितपं) ताप-दुःखादि से रहित सुखपूर्ण (गृहम् उद् गन्वहि) गृह को उत्तम रीति से प्राप्त हों, और (मध्वः पीत्वा) मधुर पदार्थ दुग्धादि का पान या मधुपर्कादि ग्रहण करने के अनन्तर (त्रिः) मनसा, वाचा, कर्मणा (सख्युः सप्त पदे) मित्र या सखा के सातवें पद पर (सचेवहि) हम दोनों मिलकर रहें। इस प्रकार वधू वर से कहे। अथवा—(सख्युः त्रिः सप्त पदे सचेवहि) मित्र सखा के ३ × ७ = २१वें पद पर दोनों मिलें।* इसी प्रकार प्रजा भी राजा की उपभोग्यवत् होकर पालनीय होने से पत्नीवत् और राजा

* यह २१वां पद कौन सा है? इस सम्बन्ध में सायण ने ऐतरेय ब्राह्मण (१। ३०) का वचन उद्धृत किया है—त्रिःसप्तेत्यनेन देवलोकानामुत्तमनेकविंशस्थानमुच्यते। आदित्यस्यैकविंशत्वात्। तथा च ब्राह्मणम्। द्वादश मासाः पञ्चर्तवस्त्रय इमे लोकाः असावादित्य एकविंश इति। इसके अनुसार भी १२ मासों, पांचों ऋतुओं और तीनों लोकों में दोनों संग रहें यह अभिप्राय निकलता है।

उसका स्वामी है, वही प्रबन्धक होने से 'अन्न' है दोनों ही मधुर अन्न-जल का उपभोग कर मित्रपद पर मिलें, दोनों एक दूसरे के मित्र होकर रहें। (३) इसी प्रकार परमेश्वर 'अन्न' है, जीव इन्द्र प्रभु का पद तापरहित सुखमय होने से 'त्रिष्टप' है, वहां दोनों आत्मा, ज्ञानपा नकर मिलें, वे सखा होकर रहें।

द्वा सुपर्णा, सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते। उपनिषत्। सखा होने के सात चरण—१. इष्, २. ऊर्ज, ३. रायस्पोष, ४. मायोभव्य, ५. प्रजा, ६. ऋतु ७. सख्यभाव। (पारस्कर गृ०)

अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत।
अर्चन्तु पुत्रका उत पुरं न धृष्ण्वर्चत ॥ ८ ॥

भा०—हे (प्रिय-मेधासः) यज्ञ, अन्न, युद्ध वाणी, बुद्धि आदि के प्रिय जनो! हे (पुत्रकाः) बहुत जनों और ज्ञानों की रक्षा करने हारे वीर पुरुषो! आप लोग उस परमेश्वर को (अर्चत, प्र अर्चत, अर्चत) स्तुति करो, खूब स्तुति करो और स्तुति करते ही रहा करो। (उत अर्चन्तु) आप लोग अर्चना करो, उसको (धृष्णु पुरं न) शत्रु को पराजित करने में समर्थ दृढ़ दुर्ग के समान सब का पालक जानकर उसकी (अर्चत) पूजा करो। वह स्वामी ही हमारा बड़ा भारी गढ़ है।

अव स्वराति गर्गरो गोधा परि सनिष्वणत्।
पिङ्गा परि चनिष्कददिन्द्राय ब्रह्मोद्यतम् ॥ ९ ॥

भा०—(गर्गरः अव स्वराति) उत्तम उपदेष्टा अधीनों को उपदेश करता है, (गोधा) वाणी को धारण करने वाला जन भी ज्ञान को (परि सनिष्वणत्) सब ओर उपदेश करे। (पिङ्गा) उत्तम मनोहर शब्द बोलने में चतुर कविमण्डली वा वादित्रमण्डली भी (इन्द्राय) उस परमेश्वर की (उद्-यतम्) उत्तम (ब्रह्म) वेद-स्तुति का (परि चनिष्कत्) सर्वत्र वर्णन करे। (२) इसी प्रकार राजा का (गर्गरः) गड्गड़ शब्दकारी

नगारा, मेघवत् गर्जे (गोधा) हाथ पर बंधा चर्म, जहां डोरी बराबर आकर लगती है, वह 'हस्तघ्न' भी युद्धोपयोषक मेघवृष्टिवत् ध्वनि करे और (पिंगा) पीत वर्ण वा खन-खनाती डोरी विद्युत् के समान राजा के लिये (वद्न्यत) उत्तम रीति से विस्मयकृ (ब्रह्म) बृहद् राष्ट्र-धन को (परि जनिष्कृत्) शोभना करे।

आ यत्पतन्त्येन्यः सुदुघा अनपस्फुरः।
अपस्फुरं गृभायत सोममिन्द्राय पातवे॥ १०॥ ६॥

भा०—(यत्) जिस प्रकार (अनपस्फुरः) न बिदकने वाली (सुदुघाः) सुख से दोहन करने योग्य (एन्यः) शुद्ध श्वेत वर्ण की गौएं (आपतन्ति) आ जाती हैं तब (इन्द्राय सोमं पातवे) स्वामी के निमित्त दुग्ध-पान के लिये (अपस्फुरं) उद्वेगरहित शान्त गौ को ले लिया जाता है उसी प्रकार (एन्यः) शुद्ध वर्ण की, शुद्ध चरित्र वाली प्रजाएं (यत्) जो (अनपस्फुरः) सन्मार्गनार्ग वाली उलय में न जाने वाली और (सुदुघाः) धनादि से खूब पूर्ण, और राजा को भी धनादि से पूर्ण करने वाली हों। उनमें से भी (इन्द्राय सोमं पातवे) परमैश्वर्यवान् राजा को ऐश्वर्य उपभोग करने या राजा के ऐश्वर्य की रक्षा के लिये, (अप स्फुरं) उद्वेग, अराजकतादि से रहित, प्रजा को (गृभायत) वश करो। अथवा (अपस्फुरं) कुमार्ग में जाने वाले को (गृभायत) पकड़ो और कैद में धर दो। इति षष्ठो वर्गः॥

अपादिन्द्रो अपादग्निर्विश्वे देवा अमत्सत।
वरुण इदिह क्षयत्तमापो अभ्यनूषत वत्सं संशिश्वरीरिव ११

भा०—(इन्द्रः अपात्) ऐश्वर्यवान् शत्रुनाशक पुरुष प्रजा की रक्षा करे, (अग्निः अपात्) अग्रणी, तेजस्वी पुरुष भी प्रजा की रक्षा करे। (विश्वे देवाः) सब उत्तम विद्वान् जन (अमत्सत) खूब तृप्त, सन्तुष्ट होकर रहें, उनको दारिद्र्य न सतावे। (इह वरुणः इत् क्षयत्) यहां इस

राष्ट्र में वरुण, सबको वरण करने योग्य श्रेष्ठ पुरुष ही निवास करे वा (क्षयत्) वह सम्पत्ति का स्वामी हो। (तम्) उस की (आपः) आप्त प्रजाएं भी (वत्सं संशिश्वरीः इव) बछड़े को उत्तम शिशुओं वाली गौओं के समान, प्रेम से युक्त प्रजाएं, (संशिश्वरीः) शिशुवत् शरण में प्राप्त होकर (वत्सं) सबको बसाने वा रक्षा करने में समर्थ वा (वत्सं) अभिवादन योग्य पुरुष को पाकर (अभि अनूषत) उसकी साक्षात् स्तुति किया करें।

सुदे॒वो अ॑सि वरुण॒ यस्य॑ ते स॒प्त सिन्ध॑वः ।
अ॒नु॒क्षर॑न्ति का॒कुदं॑ सू॒र्म्यं॑ सुषि॒रामि॑व ॥ १२ ॥

भा०—हे (वरुण) वरण करने योग्य आचार्य ! (यस्य ते) जिस तेरे (काकुदं अनु) तालु के प्रति (सप्त) सातों छन्द (सिन्धवः) बहते नदधारों के समान (सुषिराम् सूर्म्यं) छिद्रवती लोह की नली में जल धारा के समान बहती हैं वह तू (सुदेवः असि) उत्तम ज्ञानदाता, ज्ञान का प्रकाशक है। (२) हे राजन्! तू उत्तम तेजस्वी है। (ते) तेरे (काकुदं अनु) सर्व-श्रेष्ठ ककुत्वत्, सर्वोपरि पद के अनुकूल (सप्त सिन्धवः) सातों प्रकार की प्रकृतियां समुद्र के प्रति नदियों के तुल्य वा तालु के प्रति सात प्राणों के तुल्य (अनु क्षरन्ति) दिनों दिन बहती आवें, स्वभावतः तेरा अनुसरण करें।

यो व्य॒तीँरफा॑णय॒त्सुयु॑क्ताँ॒ उप॑ दा॒शुषे॑ ।
त॒क्वो ने॒ता तदिद्वपु॑रुप॒मा यो अमु॑च्यत ॥ १३ ॥

भा०—(यः) जो विद्वान् पुरुष (दाशुषे) दाता के लाभार्थ (सुयुक्तान्) उत्तम पदों पर नियुक्त (व्यतान्) विशेष वेगवान्, बल युक्त साधनों वाले जनों को (अफाणयत्) संचालित करता है, (तद् इत) वही (तक्वः) शत्रुहन्ता, (नेता) नायक, (वपुः) शत्रु को उखाड़ने में समर्थ है (यः) जो (उपमा) सर्वोपमान योग्य आदर्श होकर (अमुच्यत) बन्धन से मुक्त होता और अन्य को भी मुक्त करता है। इसी प्रकार वह

प्रभु उत्तम योगिजनों को उपदेश करता और (वपुः अमुच्यत) देह-बन्धन से मुक्त करता है।

अतीदु शक्र ओहत इन्द्रो विश्वा अति द्विषः।
भिनत्कनीन ओदनं पच्यमानं परो गिरा ॥ १४ ॥

भा०—(इन्द्रः) सत्यदर्शी, तेजस्वी पुरुष वीर और विद्वान् (विश्वाः द्विषः अति) समस्त द्वेषों और द्वेषियों को अतिक्रमण कर, उनसे बढ़कर (शक्रः) शक्तिशाली, सर्ववशकारी होकर (अति इत् उ) अति अधिक ही (ओहते) बढ़ जाता है। जिस प्रकार (पच्यमानं ओदनं) पकते हुए चावल को कान्तियुक्त अग्नि (भिनत्) भेद देता है, उसका दाना दाना अलग कर देता है और जिस प्रकार (कनीनः) कान्तियुक्त सूर्य (पच्यमानं ओदनं) प्रकट हुए मेघ को (भिनत्) तेज से छिन्न भिन्न कर देता है उसी प्रकार गुरु से तत्वदर्शी विद्वान् (कनीनः) तेजस्वी कनिष्ठ शिष्य होकर (गिरा) वाणी द्वारा (पच्यमानं) प्रकट किये जाते हुए (ओदनं) प्रजापति के (परः) परम स्वरूप को (भिनत्) और अधिक खोले, उसको लक्ष्यवत् भेदे। पच्यमानं,—पचि विस्तारवचने।

अर्भको न कुमारकोऽधि तिष्ठन्नवं रथम्।
स पक्षन्महिषं मृगं पित्रे मात्रे विभुक्रतुम् ॥ १५ ॥

भा०—(अर्भकः कुमारकः न) जिस प्रकार छोटे शरीर का भी युवराज (नवं रथं अधि तिष्ठत) नये रथ पर बैठ कर (मात्रे पित्रे) माता पिता की प्रसन्नता के लिये (विभु-क्रतुम्) बड़े सामर्थ्यवान् (महिषं मृगं) बड़े अश्वों को (पक्षत्) वश कर लेता है। उसी प्रकार राजा भी (नवं रथं अधितिष्ठिन्) नये रथवत् नये रमणीय ऐश्वर्ययुक्त राज्य को अधिष्ठित होता हुआ (विभु-क्रतुम्) अधिक प्रज्ञावान् (महिषं) पूज्य (मृगं) शुद्ध चारित्रवान् पुरुष को (मात्रे पित्रे) माता पिता के योग्य पद के निमित्त अपने ऊपर (पक्षत्) स्वीकार करे। इसी प्रकार यह जीव भी

इस देह रूप रथ को प्राप्त कर महाप्रज्ञ एवं (महिषं) बड़े ऐश्वर्य के दाता (मृगं) शुद्ध स्वरूप सर्वशोधक परम पावन प्रभु को माता पिता रूप से स्वीकार करे वह उसे 'त्वमेव माता च पिता त्वमेव' समझे। (२) (सः) वह आचार्य शिष्य के प्रति महाप्रज्ञ प्रभु को ही माता पिता होने योग्य महान् ऐश्वर्यप्रद सब से नम्य, शुद्ध (पक्षत्) बतलावे। उसका विस्तार से उपदेश करे। अथवा वह शिष्य के प्रति भी (अर्भकः = अर्हकः) आदर भाव से यथा योग्य वर्तनेवाला हो। (न कु-मारकः) कुत्सित रूप में उसको मारने वाला न हो। अथवा नञर्थः। वह उसका योग्य आदर्त्ता और कुत्सित चेष्टाओं पर दण्ड देने और कुत्सित भावों को नाश करने वाला हो।

आ तू सुशिप्र दम्पते रथं तिष्ठा हिरण्ययम्।
अधं द्युक्षं सचेवहि सहस्रपादमरुषं स्वस्तिगामनेहसम् १६

भा०—हे (सु-शिप्र) उत्तम मुखनासिका वा हनू वाले ! हे उत्तम मुकुट धारिन् ! सुशोभन रूप ! हे (दम्पते) जाया के पालक गृहपते ! तू (हिरण्ययम्) हितकारी रमण योग्य (रथं) रथवत् गृहस्थ रथ पर (आतिष्ठ तु) मुख्य होकर विराज। पत्नी कहती है—(अध) और हम दोनों (द्युक्षं) अति दीप्तियुक्त (सहस्र-पादं) दृढ़ चरण या आधार वाले (अरुषं) रोष से रहित (स्वस्ति-गाम्) कुशल, सुख-शान्तिदायक वाणी से युक्त, (अनेहसम्) पाप चेष्टा से रहित, रथवत् गृह, या उत्तम व्यवहार को (सचेवहि) धारण करें। यहां गृहपति, जाया का पति और 'दम' अर्थात् गृह का पति होने से 'दम्पति' है। और पक्षान्तर में—राजा भी राष्ट्र के दमन शासन का पालक होने से 'दम्पति' है।

तं घेमित्था नमस्विन उप स्वराजमासते।
अर्थं चिदस्य सुधितं यदेतव आवर्तयन्ति दावने ॥ १७ ॥

भा०—जिस प्रकार राजा के (सु-धितम्) उत्तम रीति से धारित

(अर्थं) अभिप्राय या ऐश्वर्य को (एतवे) प्राप्त करने के लिये (दावने) दान देने के लिये (आवर्तयन्ति) पुनः २ आपस में लेते देते हैं। और इस प्रकार (नमस्विनः) अन्नादिवान् प्रजाजन (स्वराजम्) अर्थ धनादि से प्रकाशित धन के स्वामी राजा की (उपासते) उपासना करते हैं। उसी प्रकार (अस्य सुधितं अर्थं एतवे दावने) इस प्रभु के सुष्ठु धारित अभिप्राय को जानने और अन्य को उपदेशदान द्वारा जनाने के लिये भी (यत्) जो उसका (आवर्तयन्ति) पुनः अभ्यास करते हैं वे (घ) निश्चय से (इत्था) इस प्रकार (नमस्विनः) अति विनीत होकर (स्वराजम् उप आसते) स्वयं प्रकाशमान परमेश्वर की उपासना करते हैं।

अनु॑ प्र॒त्नस्यौक॑सः प्रि॒यमे॑धास एषाम्।
पूर्वा॒मनु॒ प्रय॑तिं वृ॒क्तब॑र्हिषो हि॒तप्र॑यस आशत ॥१८॥७॥७॥

भा०—जिस प्रकार(प्रिय-मेधासः हित-प्रयसः वृक्तबर्हिषः जनाः पूर्वाम् प्रयतिं अनु आशत) अन्न के प्रियजन अपने गृह में अन्नसंग्रह और क्षेत्र में अन्नवपन कर बाद धान्य काट कर अपने पहले किये प्रयत्न के अनुसार ही उसका उपभोग करते हैं उसी प्रकार (एषाम्) इन प्रजा जनों के जीवों में से (प्रिय-मेधासः) यज्ञ के प्रिय वा ज्ञान और सत्संग के प्रिय जन (प्रत्नस्य ओकसः अनु) अपने पुराने गृह, देह के अनुरूप, (हित-प्रयसः) उत्तम २ प्रयास करके वा उत्तम २ कर्मफल में बद्ध होकर (वृक्त-बर्हिषः) धान्यों वा कुशाओं के तुल्य अपने कर्म फलों को कृषिवत् काट कर, (पूर्वाम् प्रयतिम् अनु) पहले किये प्रयत्न के अनुरूप ही (आशत) कर्मफल, सुख दुःखादि का भोग करते हैं। इति सप्तमोऽनुवाकः॥

[७०]

पुरुहन्मा ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१ पादनिचृद् बृहती। ५, ७ विराड् बृहती। ३ निचृद् बृहती। ८, १० आर्ची स्वराड् बृहती। १२ आर्ची बृहती। ६, ११ बृहती। २, ६ निचृत् पंक्तिः। ४ पंक्तिः। १३ उष्णिक्। १५ निचृदुष्णिक्। १४ भुरिगनुष्टुप्॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम्॥

यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः ।
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठो यो वृत्रहा गृणे ॥ १ ॥

भा०—(यः चर्षणीनां राजा) जो सब मनुष्यों में से सूर्यवत् दीप्तिमान् (रथेभिः याता) रथों से आक्रमण या प्रयाण करने हारा, (अध्रिगुः) जिसके आगे बढ़ने को कोई न रोक सके, ऐसा सर्वोपरि नायक, (यः विश्वासां पृतनानां) जो समस्त सेनाओं का नाश करने वाला, (ज्येष्ठः) सबसे बड़ा, (वृत्रहा) विघ्नकारी दुष्टों को दण्ड देने वाला है मैं (गृणे) उसकी स्तुति करूं ।

इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्तरि ।
हस्ताय वज्रः प्रति धायि दर्शतो महो दिवे न सूर्यः ॥ २ ॥

भा०—हे (पुरु-हन्मन्) बहुत से शत्रुओं को नाश करने में समर्थ ! तू (अवसे) रक्षा करने के लिये (तं इन्द्रं) उस ऐश्वर्यपद को (शुम्भ) सुशोभित कर (यस्य) जिसके (वि-धर्तरि) विशेष रूप से धारण करने वाले के अधीन (द्विता) दो स्वरूप हैं, एक भीम जो (हस्ताय) शत्रुओं के हनन करने के लिये (वज्रः) बलवीर्य को (प्रतिधायि) धारण करता है और दूसरा कान्त जो (महः दर्शतः) बड़ा दर्शनीय और (दिवे सूर्यः न) आकाश में सूर्यवत् जो पृथिवी पर तेज प्रदान करने के लिये सूर्य के समान तेजस्वी है ।

नकिष्टं कर्मणा नशद्यश्चकार सदावृधम् ।
इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्णवोजसम् ॥ ३ ॥

भा०—(तं) उस को (कर्मणा) कर्म द्वारा (नकिः नशत्) कोई प्राप्त नहीं कर सकता (यः सदावृधम्) जो सदा बढ़ाने वाले (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् पुरुष को (यज्ञैः) यज्ञों, सत्संगों से (विश्व-गूर्त्तम्) सर्व स्तुत्य (ऋभ्वसम्) महान्, (अधृष्टं) अपराजित और (धृष्णु- ओजसम्) पराजयकारी बल से सम्पन्न (चकार) करता है वही उस तक पहुंचता है ।

अषाह्ळमुग्रं पृतनासु सासहिं यस्मिन्महीरुरुज्रयः ।
सं धेनवो जायमाने अनोनवुर्द्यावः क्षामो अनोनवुः ॥ ७ ॥

भा०—(यस्मिन् जायमाने) जिसके प्रादुर्भाव होते हुए (उरुज्रयः) अति वेग से युक्त, (महीः) बहुत सी भूवासिनी प्रजाएं वा सेनायें, (धेनवः) वत्स के प्रति गौवों के समान स्नेहयुक्त होकर, वा वाणियां उस (अषाढं) अपराजित, (उग्रं) बलवान् (पृतनासु सासहिं) संग्रामों में विजयकारी को (सं अनोनवुः) मिलकर स्तुति करती हैं, (द्यावः क्षामः) तेजस्वी सेनाएं वा कामनावान् प्रजाएं भी उसकी (सं अनोनवुः) मिलकर स्तुति करती हैं।

यद्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः ।
न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥५॥८॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ते शतं द्यावः) तेरी सैकड़ों, बहुत सी तेजस्विनी सेनाएं हों, (उत) और (शतं भूमीः स्युः) सैकड़ों भूमियें हों, हे (वज्रिन्) बलवीर्यशालिन् ! (त्वा) तुझे (सहस्रं सूर्याः) हज़ारों सूर्य भी (न अनु स्युः) तेरे बराबर नहीं, (जातं त्वा अनु रोदसी) उत्पन्न या प्रकट हुए तेरे समान दुष्टों को रुलाने वाली सेना भी (न अष्ट) तुझे नहीं व्याप सकती, तेरा स्थान नहीं पा सकती। (२) सैकड़ों सूर्य पृथिवी आदि लोक भी परमेश्वर के बराबर नहीं, न भूमि औरआकाश उसको व्याप सकते हैं। इत्यष्टमो वर्गः ॥

आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन्विश्वा शविष्ठ शवसा ।
अस्माँ अव मघवन्गोमति व्रजे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः ॥ ६ ॥

भा०—हे (वृषन्) बलवन् !प्रजा पर सुखों और शत्रु पर शस्त्रअस्त्रों की वर्षा करने हारे ! हे (शविष्ठ) सबसे अधिक शक्तिशालिन् ! तू (महिना शवसा) अपने महान् बल से (विश्वा) समस्त (वृषणा) बलयुक्त कार्यों और सैन्यों को (आ पप्राथ) विस्तारित कर। और हे

(वज्रिन्) बलशालिन् ! हे (मघवन्) धनशालिन् ! (चित्राभिः ऊतिभिः) नाना अद्भुत रक्षाकारिणी क्रियाओं, सेनाओं से (गोमति व्रजे) भूमियों से युक्त कार्य या समूह में (अस्मान् अव) हमारी रक्षा कर।

न सीमदेव आपदिषं दीर्घायो मर्त्यः ।
एतग्वा चिद्य एतशा युयोजते हरी इन्द्रो युयोजते ॥ ७ ॥

भा०—हे (दीर्घायो) आयुष्मन् ! दीर्घ जीवन वाले (अदेवः मर्त्यः) अदानशील वा दाता से रहित मनुष्य (सीम्) सब प्रकार की (इषं न आपत्) अन्न और शक्ति को नहीं प्राप्त करता। (यः) जो (एतग्वा चित्) शुद्ध श्वेत वर्ण के वा शुद्ध चरित्रयुक्त स्त्री पुरुषों को भी (एतशा युयोजते) उत्तम दो अश्वों के समान सन्मार्ग में चलाता है वही (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् शत्रुनाशक पुरुष (हरी युयोजते) समस्त स्त्री पुरुषों को वश करता है।

तं वो महो महाय्यमिन्द्रं दानाय सक्षणिम् ।
यो गाधेषु य आरणेषु हव्यो वाजेष्वस्ति हव्यः ॥ ८ ॥

भा०—(यः) जो (गाधेषु) प्रतिष्ठा के कर्मों में (यः आरणेषु) सब प्रकार के आनन्द प्रद अवसरों में (हव्यः) स्तुति करने योग्य है और जो (वाजेषु हव्यः अस्ति) संग्रामों में स्तुति करने योग्य है (तम्) उस (महः महाय्यं) महान् पूज्य (दानाय सक्षणिम्) दान प्राप्त करने के लिये प्राप्त करने योग्य, वा शत्रु के विनाशार्थ शक्तिशाली को (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् 'इन्द्र' जानो।

उदू षु णो वसो महे मृशस्व शूर राधसे ।
उदू षु मह्यै मघवन्मघत्तय उदिन्द्र श्रवसे महे ॥ ९ ॥

भा०—हे (वसो) माता पितावत् प्रजा को बसाने हारे ! हे (शूर) दुष्टों के नाशक ! तू (महे राधसे) बड़े भारी धन के लिये (न उत् सु मृशस्व उ) हमें उत्तम रीति से प्राप्त कर। हमें उन्नत कर और (मह्यै

मवत्तये) बहुत ऐश्वर्य देने के लिये (उत् उ सु) हमें उठा और हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (महे श्रवसे उत्) बड़े यश के लिये हमें उठा।

त्वं न॑ इन्द्र ऋत॒युस्त्वा॒निदो॒ नि तृ॑म्पसि।
मध्ये॑ वसिष्व तुविनृम्णो॒र्वोर्नि दा॒सं शि॑श्नथो॒ हथैः॑ ॥१०॥९॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे शत्रुहन्तः! (त्वं) तू (नः) हमारे (ऋत-युः) व्यवहार ज्ञान, यज्ञादि को चाहने वाला है। तू (त्वा-निदः) अपने निन्दकों को (नितृम्पसि) विनष्ट करता है। हे (तुवि-नृम्ण) बहुत ऐश्वर्य के स्वामिन्! तू (ऊर्वोः) अपनी जंघाओं पर हमें, बालक को पिता के तुल्य अथवा (ऊर्वोः) अपनी बड़ी विशाल बाहुओं के आश्रय पर (वसिष्व) बसा, और (दासं) विनाशक दुष्ट को (हथैः) शस्त्रों से (नि शिश्नथः) शिथिल कर। इति नवमो वर्गः ॥

अ॒न्यव्र॑तम॒मानु॑षम॒य॑ज्वान॒मदे॑वयुम्।
अव॒ स्वः सखा॑ दुधुवीत॒ पर्व॑तः सुघ्नाय॒ दस्युं॒ पर्व॑तः ॥ ११ ॥

भा०—(सखा) प्रजा का मित्र (पर्वतः) पालनकारक साधनों से सम्पन्न होकर, (पर्वतः) मेघवत् शस्त्रवर्षी और पर्वत के समान अचल होकर, (सु-घ्नाय) अच्छी प्रकार दण्ड देने के लिये (दस्युं) दुष्ट पुरुष को (स्वः) सुख से (अव दुधुवीत) कंपा कर गिरा दे। इसी प्रकार वह (अन्य-व्रतम्) शत्रु के समान कर्म करने वाले (अमानुषम्) मनुष्यों से भिन्न, उनके शत्रु, पशुवत् दुराचारी और निर्दय, (अयज्वानं) अदानशील, (अदेवयुम्) दाता, विद्वानों वा उत्तम गुणों को न चाहने वाले को भी (अव दुधुवीत) कंपा कर नीचे गिरा दे, उसे दण्डित करे।

त्वं न॑ इन्द्रासां॒ हस्ते॑ शविष्ठ दा॒वने॑।
धा॒नानां॒ न सं गृ॑भायास्म॒युर्द्विः सं गृ॑भायास्म॒युः ॥ १२ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद! (त्वं) तू (नः) हमें (दावने) देने के लिये (अस्मयुः) हमारा हितैषी होकर (आसां) इन (धानानां)

धाना अर्थात् लाजाओं के समान उज्ज्वल, एवं पुष्टिकारक गौवों और समृद्धियों को (संगृभाय) संग्रह कर। अच्छी प्रकार अपने (हस्ते संगृभाय) हाथ में, वश में रख, और (अस्मयुः) हमें चाहता हुआ, हमारा स्वामी होकर तू उनको (द्विः संगृभाय) दो वार या दुगुना भी कर संग्रह कर। राजा प्रजाओं से धनादि बराबर संग्रह करे और आवश्यकता पर प्रजा के हितार्थ ही दुगुना भी ले लेवे।

सखा॑यः क्रतु॑मिच्छत क॒था रा॑धाम श॒रस्य॑।
उप॑स्तुतिं भो॒जः सू॒रिर्यो अह्र॑यः॥ १३॥

भा०—हे (सखायः) मित्रगणो! आप लोग (क्रतुम् इच्छत) ज्ञान और कर्म की इच्छा करो और हम लोग (शरस्य) बाणवत् शत्रुनाशकारी वीर पुरुष या बल को (कथा) किसी प्रकार से भी (राधाम) अपने वश करें। और (यः) जो (भोजः) सबका पालक, रक्षक, भोक्ता, (सूरिः) विद्वान् (अह्रयः) अहीन, अपराजित है उसकी (उप-स्तुतिम् इच्छत) स्तुति करना चाहो।

भूरि॑भिः समह॒ ऋषि॑भिर्ब॒र्हिष्म॑द्भिः स्तविष्यसे।
यदि॒त्थमेक॑मेक॒मिच्छर॑ व॒त्सान्प॒रा दद॑ः॥ १४॥

भा०—हे राजन्! हे (समह) पूज्य! तू (बर्हिष्मद्भिः) आसनों, यज्ञों वा धन धान्यादि से सम्पन्न, (भूरिभिः) इस लोक वा प्रजा से युक्त बहुत से (ऋषिभिः) विद्वान् पुरुषों से भी तू (स्तविष्यसे) स्तुति किया जाता है। (यद्) जो तू (इत्थम्) इस प्रकार (एकम्-एकम्) एक २ करके (वत्सान्) वत्सों के समान इस लोक में बसे वा स्तुतिकारी नम्रजनों को (परा ददः) युक्त करे।

क॒र्ण॒गृह्या॑ म॒घवा॑ शौरदे॒व्यो व॒त्सं न॑स्त्रि॒भ्य आन॑यत्।
अ॒जां सू॒रिर्न धात॑वे॥ १५॥ १०॥

भा०—(सूरिः) विद्वान् पुरुष (धातवे) दुग्धपान कराने के

लिये जिस प्रकार (अजां कर्णगृह्य) बकरी के कान पकड़ कर (वत्सं प्रति आनयत्) बछड़े के पास लाता वा बच्चे को कान पकड़ कर दूध पिलाने के लिये बकरी के पास ले जाता है उसी प्रकार (शौर-देव्यः) शूर और विजीगीषु (मघवा) उत्तम ऐश्वर्यवान् राजा (सूरिः) उत्तम विद्वान् के समान (नः) हमारे (वत्सं) राष्ट्र में बसे प्रजाजन को और (अजां) शत्रु को उखाड़ देने वाली सेना को भी (कर्णगृह्य) कान से पकड़ कर अर्थात् कर्ण से श्रवण करने योग्य उपदेश, आज्ञा-वचन सुनाकर (त्रिभ्यः आनयत्) तीनों प्रकार के कष्टों से परे रक्खे। वा (त्रिभ्यः) तीनों प्रकार के सुखों के लिये सन्मार्ग से ले जावे। इति दशमो वर्गः ॥

[७१]

सुदीतिपुरुमीळ्हौ तयोर्वान्यतर ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ४, ७ विराड् गायत्री । २, ६, ८, ९ निचृद् गायत्री । ३, ५ गायत्री । १०, १३ निचृद् बृहती । १४ विराड् बृहती । १२ पादनिचृद् बृहती । ११, १५ बृहती ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

त्वं नो॑ अग्ने म॒होभि॑: पा॒हि विश्व॑स्या॒ अरा॑तेः ।
उ॒त द्वि॒षो मर्त्य॑स्य ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! अग्निवत् अग्रणीनायक ! (त्वं) तू (नः) हमारी (विश्वस्याः अरातेः) सब प्रकार की शत्रु सेना (उत) और (द्विषः मर्त्यस्य) शत्रु मनुष्य से भी (महोभिः) बड़े धनों द्वारा (पाहि रक्षा कर ।

न॒हि म॒न्युः पौरु॑षेय॒ ईशे॒ हि व॑: प्रियजात ।
त्वमिद॑सि॒ क्षपा॑वान् ॥ २ ॥

भा०—हे (प्रिय-जात) उत्पन्न बालकवत् प्रजाओं को तृप्त करने हारे राजन् ! (वः) तुझ पर (पौरुषेयः मन्युः) मनुष्यों का क्रोध भी

(नहि ईशे) नहीं वश कर सकता । (त्वम् इत् क्षपावान् असि) तू ही शत्रुओं का नाश कर देने वाली भारी सेनादि का स्वामी (असि) है ।

स नो विश्वेभिर्देवेभिरूर्जो नपाद्भद्रशोचे ।
रयिं देहि विश्ववारम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (ऊर्जः नपाद्) बल को न गिरने देने हारे ! हे (भद्रशोचे) कल्याणकारी कान्ति वा तेज से सम्पन्न ! (सः) वह तू (नः) हमें (विश्वेभिः देवेभिः) समस्त विद्वान् पुरुषों द्वारा (विश्व-वारं) सब से वरण करने योग्य (रयिं) धन (देहि) प्रदान कर ।

न तमग्ने अरातयो मर्तं युवन्त रायः । यं त्रायसे दाश्वांसम् ॥४॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! विद्वन् ! प्रभो ! तू (यं दाश्वांसं) जिस दानशील को (त्रायसे) रक्षा करता है (तं मर्तं) उस मनुष्य को (अरातयः) समस्त शत्रु भी (रायः) धन से (नः युवन्त) पृथक् नहीं कर सकते ।

यं त्वं विप्र मेधसातावग्ने हिनोषि धनाय ।
स तवोती गोषु गन्ता ॥ ५ ॥ ११ ॥

भा०—हे (विप्र) मेधाविन् ! हे (अग्ने) ज्ञानवन्, तेजस्विन् ! (मेध-सातौ) संग्राम वा यज्ञ में (त्वं) तू (धनाय हिनोषि) धन प्राप्त करने के लिये उत्साहित करता है। (सः) वह (तव ऊती) तेरी रक्षा में रहकर (गोषु गन्ता) वाणियों में और भूमियों पर भी वश करने वाला होता है । इत्येकादशो वर्गः ॥

त्वं रयिं पुरुवीरमग्ने दाशुषे मर्ताय । प्र णो नय वस्यो अच्छ ६

भा—हे (अग्ने) अग्रणीनायक ! (त्वं) तू (पुरु-वीरं) बहुत पुत्रों वा वीरों सहित (रयिं) ऐश्वर्य को (दाशुषे मर्त्ताय) दानशील मनुष्य के हितार्थ प्रदान करता है । वह तू (नः वस्यः अच्छ नय) हमें भी उत्तम धन प्रदान कर ।

उरुष्या णो मा परा दा अघायते जातवेदः। दुराध्ये मर्ताय॥७॥

भा०—हे (जातवेदः) ऐश्वर्यवन् ! तु (नः) हमें (दुराध्ये मर्त्ताय) दुष्ट चिन्तक मनुष्य के और (अघायते) पापकारी, हिंसक के हाथों (मा परा दाः) मत दे, उसके हितार्थ हमें मत त्याग।

अग्ने माकिष्टे देवस्य रातिमदेवो युयोत। त्वमीशिषे वसूनाम् ८

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् ! विद्वन् ! (ते देवस्य रातिम्) तुझ दाता के दिये दान को (अदेवः माकिः युयोत) अदानशील व्यक्ति हम से पृथक् न करे। (त्वम् वसूनां ईशिषे) तू सब ऐश्वर्यों और मनुष्यों का स्वामी है। अर्थात् हमारे पारस्परिक लेन-देन की न्यायपूर्वक व्यवस्था कर।

स नो वस्व उप मास्यूर्जो नपान्माहिनस्य।
सखे वसो जरितृभ्यः॥ ९॥

भा०—हे (ऊर्जः नपात्) बल को नष्ट न होने देने वाले ! हे (वसो) प्रजा को बसाने हारे ! न्यायकारिन् ! हे (सखे) स्नेहकारिन् ! मित्र ! तू (नः) हममें से (जरितृभ्यः) उत्तम स्तुतिशील विद्वान् जनों को (माहिनस्य वस्वः उपमासि) उत्तम धन, ज्ञान प्रदान कर।

अच्छा नः शीरशोचिषं गिरो यन्तु दर्शतम्।
अच्छा यज्ञासो नमसा पुरूवसुं पुरुप्रशस्तमूतये॥१०॥१२॥

भा०—(नः गिरः) हमारी वाणियां सदा (शीर-शोचिषं) व्यापक तेज वाले, (दर्शतम्) दर्शनीय को (अच्छ यन्तु) लक्ष्य करके प्रकट हों। और (ऊतये) रक्षा के निमित्त हमारे (यज्ञासः) समस्त यज्ञ, सत्संग, आदर-सत्कार भी (नमसा) विनयपूर्वक (पुरु-वसुं पुरु-प्रशस्तं) बहुत से ऐश्वर्यों से युक्त और बहुत से प्रशंसित स्वामी को ही प्राप्त हों। इति द्वादशो वर्गः॥

अग्निं सूनुं सहसो जातवेदसं दानाय वार्याणाम्।
द्विता यो भूदमृतो मर्त्येष्वा होता मन्द्रतमो विशि॥११॥

भा०—(सहसः सूनुं) बल के उत्पादक वा प्रेरक, (जातवेदसं) प्रज्ञावान्, ऐश्वर्यवान्, (अग्निं) अग्नि, नायक को मैं (वार्याणां दानाय) वरण करने योग्य श्रेष्ठ धनदान करने के लिये जानूं। (यः) जो (मर्त्येषु) मरणधर्मा मनुष्यों में भी (अमृतः) अमर (भूत्) होता है और (विक्षि) प्रजाओं में (मन्द्रतमः) अति हर्ष युक्त और (होता) ज्ञानादि का दाता होता है इस प्रकार (द्विता) उसके ये दो रूप होते हैं।

अ॒ग्निं वो॑ दे॒वय॒ज्यया॒ग्निं प्र॑य॒त्य॑ध्व॒रे ।
अ॒ग्निं धी॒षु प्र॑थ॒मम॒ग्निमर्व॑त्य॒ग्निं क्षैत्रा॑य॒ साध॑से ॥ १२ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! (वः) आप लोगों के प्रति मैं (देवयज्यया) परमेश्वर की पूजा के रूप में (अग्निं) अग्नि का उपदेश करता हूं। (प्रयति अध्वरे) यज्ञ के प्रवृत्त होने पर भी (अग्निं) अग्नि का आश्रय लो। (धीषु) सब कामों में (प्रथमम्) सर्व प्रथम (अग्निं) इस ज्ञानवान् प्रभु का स्मरण करो। (अर्वति अग्निं) वेगवान् अश्व इत्यादि के निमित्त भी अग्नि का प्रयोग जानो। (क्षैत्राय साधसे) क्षेत्र अर्थात् देह में रहने वाले आत्मा की प्राप्ति या ज्ञान करने के लिये भी (अग्निम्) अग्नि को ही दृष्टान्त रूप से जानें।

अ॒ग्निरि॒षां स॒ख्ये द॑दातु न॒ ईशे॒ यो वार्या॑णाम् ।
अ॒ग्निं तो॒के तन॑ये॒ शश्व॑दीमहे॒ वसुं॒ सन्तं॑ तनू॒पाम् ॥ १३ ॥

भा०—(यः वार्याणाम् ईशे) जो वरण करने योग्य धनों का स्वामी है वह (अग्निः) तेजस्वी प्रभु (सख्ये) अपने स्नेही मित्र को (इषां ददातु) अन्न दान करे। हम (वसुं) सबके भीतर बसे (सन्तं) सत्-स्वरूप (तनूपाम्) सब देहों के पालक (अग्निम्) अग्नि, व्यापक प्रभु को (तोके तनये शश्वत् ईमहे) पुत्र पौत्रादि के कल्याणार्थ भी सदा याचना करें।

अ॒ग्निमी॑ळि॒ष्वाव॑से॒ गाथा॑भिः शी॒रशो॑चिषम् ।
अ॒ग्निं रा॒ये पु॑रुमीळ्ह श्रु॒तं नरो॒ऽग्निं सु॑दी॒तये॑ छ॒र्दिः ॥१४॥

भा०—हे (पुरुमीढ) बहुत धनों के दातः ! बहुतों पर वर्षाने हारे ! तू (गाथाभिः) गान योग्य वेद वाणियों द्वारा (शीर-शोचिषम् अग्निम्) व्यापक तेज वाले अग्रणी, नायक, ज्ञानी प्रभु की ही (ईडिष्व) स्तुति कर । (राये) धनैश्वर्य की वृद्धि के लिये भी (श्रुतं) बहुश्रुत विद्वान् अग्नि की (ईडिष्व) स्तुति कर और (नरः) मनुष्यगण भी उसी (अग्नि) तेजस्वी की स्तुति करते हैं । वह (सुदीतये छर्दिः) उत्तम तेज वाले के लिये भी दीपक के लिये गृह के समान आश्रय है ।

अ॒ग्निं द्वेषो॒ योत॒वै नो॑ गृणीमस्य॒ग्निं शं योश्च॒ दात॑वे ।
विश्वा॑सु वि॒क्ष्व॑वि॒तेव॒ हव्यो॒ भुव॒द्वस्तु॑र्ऋ॒षूणा॑म् ॥ १५ ॥ १३ ॥

भा०—हम लोग (नः द्वेषः दातवे) अपने द्वेष भावों को दूर करने के लिये (अग्निं गृणीमसि) सर्वव्यापक सर्वज्ञ प्रभु की उपासना करें । और (शंयोः च दातवे) शान्ति और दुःख नाश करने के लिये भी उसी (अग्नि) तेजोमय का ध्यान करें । वह (विश्वासु विक्षु) समस्त विद्वान् ज्ञानी पुरुषों का आश्रय स्थान और (हव्यः भवत्) स्तुत्य है । इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[७२]

हर्यतः प्रागाथ ऋषिः । अग्निर्हवींषि वा देवता ॥ छन्दः—१, ३, ८—१०, १२, १६ गायत्री । २ पादनिचृद् गायत्री । ४—६, ११, १३—१५, १७ निचृद् गायत्री । ७, १८ विराड् गायत्री ॥ अष्टादशर्चं सूक्तम् ॥

ह॒विष्कृ॑णुध्व॒मा ग॑मदध्व॒र्युर्व॑नते॒ पुनः॑ । वि॒द्वाँ अ॑स्य प्र॒शास॑नम् १

भा०—हे विद्वान् लोगो ! (हविः कृणुध्वम्) हविष् ज्ञान आदि का सम्पादन अन्न वा साधन करो (अध्वर्युः आगमत्) अध्वर, हिंसा

भाव से रहित यज्ञ का संचालक आवे। और वह (विद्वान्) विद्वान् पुरुष ही (अस्य) इस स्वाध्यायादि यज्ञ के (प्र-शासनं वनते) उत्तम शासन का पद प्राप्त करे।

नि तिग्ममभ्यं१शुं सीदद्धोता मनावधि।
जुषाणो अस्य सख्यम् ॥ २ ॥

भा०—(तिग्मं अंशुं अभि) तीक्ष्ण, व्यापक ज्ञानवान् पुरुष के सम्मुख (होता) ज्ञान के ग्रहण कराने वाला पुरुष (मनौ अधि) मनन शील शिष्य के ऊपर (नि सीदत्) विराजे और वह (अस्य सख्यं जुषाणः) इसके प्रेम भाव को प्राप्त करने वाला हो।

अन्तरिच्छन्ति तं जने रुद्रं परो मनीषया।
गृभ्णन्ति जिह्वया ससम् ॥ ३ ॥

भा०—(जने अन्तः) प्रत्येक जन, उत्पन्न प्राणी के भीतर विद्यमान् (परः) चक्षु से परे (रुद्रं) दुःख में रोने वाले वा रोगादि के नाशक, आघात पीड़ादि के प्रतिबन्धक, अतीन्द्रिय विद्युत् अग्नि या तेजोरूप आत्मतत्व को भी (मनीषया) बुद्धि द्वारा जानना चाहते हैं। और (ससम्) प्रसुप्त रूप से व्यापकवत् विद्यमान (जिह्वया गृणन्ति) जिह्वा अर्थात् ज्वालावत् विद्युत् की धारा से जैसे अग्नि अर्थात् विद्युत् को ग्रहण करते उसी प्रकार जिह्वा अर्थात् वाणी द्वारा उस चेतन को ग्रहण करते, उसका ज्ञान करते और अन्यों को कराते हैं।

'ससं'—स्वपनमेतन्माध्यमिकं ज्योतिरनित्यदर्शनं। नि० ५।१।२॥ वह सुप्तज्योति विद्युत् है जो कभी २ दीखती है। उसको भी उसकी जिह्वा अर्थात् लपकती धार से ही ग्रहण करते हैं, उसको एक नोक पर ले लेते हैं।

जाम्यतीतपे धनुर्वयोधा अरुहद्वनम्। दृषदं जिह्वयावधीत् ॥४॥

भा०—अग्नि, विद्युत् (जामि) अति अधिक (अतीतपे) तप्त होता है और (धनुः) आकाश में ही (वयोधाः) बल को धारण करता हुआ, (वनम् अरुहत्) जल में रहता है, वह (दृषदं) मेघ को या शिला को भी (जिह्वया) अपनी जिह्वा, ज्वाला या धारा से ही (अव-धीत्) आघात करता है और तोड़ डालता है। इसी प्रकार यह सामान्य अग्नि भी अति तप्त होकर ही (धनुः वयोधाः) अरणी की ओविली में धनुष् या डोरी द्वारा बल पाकर काष्ठ को पकड़ लेता है और जिह्वा अर्थात् चिनगारी द्वारा शिला पर आघात करता है। वह पत्थर तक को फोड़ देता है। इसी प्रकार जब अग्निवत् तेजस्वी पुरुष (वयोधाः) बल और अपनी पर्याप्त यौवनावस्था को धारण कर (जामि अतीतपे) खूब तप्त होता, तपस्या कर लेता है, बल धारण करता है और धनुष के बल पर (वनम् अरुहत्) सैन्य बल का सर्दार बनता, उस पर शासन करता या ऊंचे आसन पर बैठता है, तब वह (जिह्वया) अपनी वाणी के बल से ही (दृषदं अव-धीत्) पाषाण के समान चकनाचूर कर देने वाले पर-पक्ष के सैन्य वा क्षत्रियगण को भी (अवधीत्) नाश कर सकता है। इति चतुर्दशो वर्गः॥

चरन्वत्सो रुशन्निह निदातारं न विन्दते।
वेति स्तोतव अम्ब्यम् ॥ ५ ॥ १४ ॥

भा०—जिस प्रकार (वत्सः) बछड़ा (रुशन् चरन्) उछलता कूदता हुआ अन्य (निदातारं न विन्दते) किसी रोकने वाले को न पावे उसी प्रकार यह अग्नि, विद्युत् जब (इह) इस अन्तरिक्ष में (रुशन्) श्वेत वर्ण में चमकता हुआ, (चरन्) विचरता है, किसी (नि दातारं) बाधक या पकड़ लेने वाले पदार्थ को नहीं प्राप्त करता तबतक वह (अम्ब्यम्) जल में उत्पन्न वा जल के उत्पादक प्रकाश को (स्तोतवे) अपने वर्णन करने के लिये (वेति) प्रकट करता है वा (अम्ब्यम्) शब्दमयी ध्वनि, को (वेति) प्रकट करता है। उसी प्रकार यह (वत्सः) स्तुति योग्य नायक

(रुशन् चरति) तेजस्वी, शुद्ध चरित्र होकर विचरता है तब किसी बाधक को नहीं पाता, स्तुति करने के लिये (अभ्व्यम्) हर्ष ध्वनिकारी प्रजाजन को प्राप्त करता है। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

उतो न्वस्य यन्महदश्वावद्योजनं बृहत्। दामा रथस्य ददृशे ॥६॥

भा०—(उतो नु) और (अस्य) इस विद्युत् रूप अग्नि को (रथस्य अश्ववत्) रथ के घोड़े के समान (यत्) जो (महत् योजनं) बड़ा बलपूर्वक जोड़ने का कार्य है उस को (बृहत् दामा) बड़ा भारी दमन करने वाला विद्वान् पुरुष ही (ददृशे) साक्षात् करता है। उसी प्रकार इस देह-रथ में आत्मारूप अग्नि के अश्ववत् जुड़ने को भी बड़ा दमनशील तपस्वी ही साक्षात् करता है।

दुहन्ति सप्तैकामुप द्वा पञ्च सृजतः। तीर्थे सिन्धोरधि स्वरे ॥७॥

भा०—(सप्त) सात मिलकर (एकाम् दुहन्ति) एक का दोहन करते हैं और (द्वा पञ्च) दो पांचों को (सिन्धोः स्वरे तीर्थे अधि) सिन्धु के स्वयं प्रकाशमान तीर्थ अर्थात् मार्ग में (उप सृजतः) प्रेरित करते हैं। अर्थात् अध्यात्म में—प्राण-अपान, ये दोनों पांच ज्ञानेन्द्रियों को (सिन्धु) अर्थात् प्राण या रक्त की नाड़ी के (स्वरे तीर्थे अधि) स्वयं प्रकाशमान मार्ग मेरुदण्ड में स्थित होकर प्रेरित करते हैं। वे सातों मिलकर (एकाम् दुहन्ति) एक आत्मा या चेतनारूप गौ या वाणी को दोहन करते हैं, उससे बल प्राप्त करते हैं।

आ दशभिर्विवस्वत इन्द्रः कोशमचुच्यवीत्।
खेदया त्रिवृता दिवः ॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार (इन्द्रः) सूर्य या विद्युत (त्रिवृता खेदया) तीन प्रकार के व्यापार वाली दीप्ति से (दशभिः) दसों दिशों से आघात कर (दिवः कोशं आच्यावयति) अन्तरिक्षस्थ कोश या मेघ से जल पातन कराता है उसी प्रकार (इन्द्रः) यह आत्मा या मुख्य प्राण (विव-

स्वतः कोशन्) विविध वसु, प्राणों वाले इस देहरूप अन्नमय कोश को (द्विवः) अपनी कामना या व्यवहार. दीप्ति की (त्रिवृतां) त्रिगुणात्मक (खेदया) रज्जु सदृश प्रेरणा से (अचुच्यवीत्) चलाता है ।

परि॑ त्रि॒धातु॑रध्व॒रं जू॒र्णिरे॑ति॒ नवी॑यसी । मध्वा॒ होता॑रो अञ्जते ९

भा०—यह (त्रि-धातुः) वात, पित्त, कफ़ तीनों धातुओं से धारित यह देह (परि-अध्वरं) अविनाशी आत्मा के वलपर, (नवीयसी) सदा नयी, शक्ति से (जूर्णिः) सदा वेगयुक्त होकर (परि एति) सर्वत्र गति करता है और (होतारः) अन्न को ग्रहण करने वाले देहधारी उस शक्ति को (मध्वा) अन्न जल द्वारा (अञ्जते) प्राप्त करते हैं ।

सि॒ञ्चन्ति॒ नम॑साव॒तमु॒च्चाच॑क्रं॒ परि॑ज्मानम् ।
नी॒चीन॑बार॒मक्षि॑तम् ॥ १० ॥ १५ ॥

भा०—जिस प्रकार (उच्चा-चक्रम्) जिस के ऊपर चक्र लगा हो और (परिज्मानम्) चारों ओर भूमि हो और (नीचीनबारम्) नीचे पानी के द्वार हों ऐसे (अक्षितम्) अक्षय जल के भण्डार रूप (अवतम्) कूप को (नमसा) अन्न के हेतु वा (नमसा) जल से (सिञ्चन्ति) सींचते हैं, वा उस कूप से 'अक्षित' अन्न को सींचते हैं, उससे खेत की सिचाई करते हैं । उसी प्रकार यह देह आत्मा की रक्षा के लिये होने से 'अवत' है, उसका व्यवस्थापक यन्त्र शिर सर्वोपरि लगा है इससे वह 'उच्चाचक्र' है, चारों ओर उसकी गति होने से 'परिज्मा' है । गुदा, मूत्रादि नीचे के द्वार हैं, वह हृष्ट-पुष्ट 'अक्षित' है उसको लोग (नमसा) अन्न से सींचते और बढ़ाते हैं । 'नमः' इत्युदक नाम । इसी प्रकार अभिषेक्ता जन उच्चचक्र, रथचक्र, वा सैन्य चक्र के स्वामी, (परिज्मानं) सर्वतो बलवान् (अवतं) रक्षक राजा का अभिषेक करते हैं । वह (अक्षितं) अक्षीण और शत्रुवारक सैन्य को अपने नीचे रखता है ।

अभ्यारमिदद्रयो निषिक्तं पुष्करे मधु। अवतस्य विसर्जने ॥११॥

भा०—(पुष्करे) अन्तरिक्ष में (अद्रयः) मेघगण (निषिक्तं) निषेचित (मधु) जल को (अभि आरम्) प्राप्त करके (अवतस्य) कूप के (विसर्जने) विशेष स्थान में जल को प्रदान करते हैं उसी प्रकार (पुष्करे) पुष्टि से युक्त राष्ट्र में (नि-सिक्तम्) खूब परिवृद्ध (मधु) मधुमय ऐश्वर्य को (अभि आरम्) प्राप्त करके (अद्रयः) मेघवत् बलवान् पुरुष (अवतस्य) पालक राजा के (विसर्जने) विशेष निर्माण में प्रयत्न करें।

गाव उपावतावतं मही यज्ञस्य रप्सुदा।
उभा कर्णा हिरण्यया ॥ १२ ॥

भा०—हे (गावः) वाणियो ! वा हे पशु, भूमि आदि सम्पदा वा उनमें बसी प्रजाओ ! आप लोग (अवतं उप अवत) रक्षक के समीप उसकी शरण में आवो। (यज्ञस्य) सत्संग और आदर-सत्कार के योग्य पुरुष को ये (मही) पूज्य आकाश और भूमि वा शास्य शासक वर्ग दोनों (रप्सुदा) उत्तम यश, बल देने वाले हों। इस पालक पुरुष के (उभा कर्णा) दोनों कान (हिरण्यया) सुवर्ण के अलंकारों से व हित रमणीय उपदेशों से सुशोभित हों।

आ सुते सिञ्चत श्रियं रोदस्योरभिश्रियम्।
रसा दधीत वृषभम् ॥ १३ ॥

भा०—(रोदस्योः) भूमि और आकाश के बीच (अभि-श्रियं) सर्वतः कान्तिमान्, आश्रयणीय सूर्य के समान शास्य-शासक वर्गों या स्वपक्ष पर-पक्ष दोनों सैन्यदलों के बीच में विशेष शोभा, लक्ष्मी के धारक या आश्रय लेने योग्य पुरुष को (सुते) अभिषेक योग्य पद या ऐश्वर्य पर (सिञ्चत) अभिषिक्त करें। (रसा) पृथिवी वा बलवती सेना (वृषभं दधीत) बलवान् पुरुष को अपने में धारण करे। इसी प्रकार भूमि, आकाश के

वीच कान्तिमान् अग्नि को घृतों से सेचन करो, जिससे यह रसा, पृथिवी-वर्षणशील मेघ को धारण कर।

ते जानत स्वमोक्यं१ सं वत्सासो न मातृभिः।
मिथो नसन्त जामिभिः ॥ १४ ॥

भा०—(वत्सासः मातृभिः न) बछड़े जिस प्रकार माताओं से (मिथः नसन्त) परस्पर मिल जाते हैं इसी प्रकार (ते) वे भी (वत्सासः) राष्ट्र में बसने वाले प्रजागण (स्वम् ओक्यं जानत) अपने देश या स्थान के वासी को जाना करें और वे (जामिभिः) अपने बन्धु जनों के साथ (मिथः नसन्त) परस्पर मिलकर रहें, परस्पर प्रेम से मिला करें।

उप स्रक्वेषु बप्सतः कृण्वते धरुणं दिवि।
इन्द्रे अग्ना नमः स्वः ॥ १५ ॥ १६ ॥

भा०—(स्रक्वेषु बप्सतः) देहावयवों के घटक पदार्थों पर भोजन करने वाले पुरुष के जिस प्रकार वीर्यांश (दिवि धरुणं कृण्वते) मूर्धा-स्थल में या मूलांग में स्थिति करते हैं और (इन्द्रे अग्ना नमः स्वः) आत्मा या प्राण और अग्नि के आधार पर अन्न और शक्ति निर्भर है इसी प्रकार पात्रों द्वारा घृतादि को खाते हुए अग्नि से दुग्ध घृत चरु के अंश (दिवि) आकाश में जाते और (इन्द्रे अग्ना नमः स्वः) सूर्य और अग्नि के आश्रय ही यह पृथिवी का अन्न और यह प्रकाश होता है। (२) इसी प्रकार राजा के उपभोग करते हुए ही सब जन (दिवि) भूमि पर सुख से आश्रय लेते हैं। इस-लिये (स्वः नमः) समस्त सुख और भूमि का बल, या शासक बल, और सैन्यादि सब (इन्द्रे) तेजस्वी ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता और (अग्ना) अग्नि-वत् तेजस्वी नायक पर ही निर्भर हैं। इति षोडशो वर्गः ॥

अधुक्षत्पिप्युषीमिषमूर्जं सप्तपदीमरिः।
सूर्यस्य सप्त रश्मिभिः ॥ १६ ॥

भा०—(अरिः) वेग से चलने वाला वायु जिस प्रकार (सूर्यस्य

सप्त रश्मिभिः) सूर्य के वेग से आने वाले सात किरणों द्वारा (पिप्युषीम्) पुष्टिकारक (इषम्) अन्न और (ऊर्जं) रस को (सप्तपदीम्) सर्पणशील चरण वाली अन्तरिक्षस्थ गौ रूप मेघ को (अधुक्षत्) दोहता है। इसी प्रकार (अरिः) स्वामी, (सूर्यस्य सप्त रश्मिभिः) तेजस्वी व्यवस्थापक के बनाये सात मर्यादाओं द्वारा, (सप्त पदीम्) सर्पणयुक्त पदों वाली, अर्थात् जनों से बसी भूमि से (पिप्युषीम् इषं ऊर्जं) पुष्टिकारक अन्न और पुष्ट बल का (अधुक्षत्) दोहन करता है। प्रजा में अन्न, बल की वृद्धि करता है।

सोमस्य मित्रावरुणोदिता सूर आ ददे। तदातुरस्य भेषजम् १७

भा०—हे (मित्रावरुणा) मित्र और वरुण, दिन और रात्रि, (उदिता सूरे) सूर्य के उदय होते २ में (सोमस्य आददे) सोम, बलकारक ओषधि रस का सेवन करूं, (तत् आतुरस्य भेषजम्) वही व्याधिपीड़ित के सब रोगों का नाश करता है।

उतो न्वस्य यत्पदं हर्यतस्य निधान्यम्।
परि द्यां जिह्वयातनत् ॥ १८ ॥ १७ ॥

भा०—(अस्य) इस (हर्यतस्य) कान्तिमान् अग्नि या सूर्य का (यत् पदं) जो पद या स्थान (नि-धान्यम्) भूमि पर विशेष धन वा धान्य के योग्य है, उसको अग्नि ही (द्यां परि) समस्त आकाश में अपनी (जिह्वया) ज्वालामयी जीभ से (परि तनत्) फैलाता है। इसी प्रकार जो इस राजा का ऐश्वर्ययोग्य पद है उसको यह नायक विद्वान् अपनी वाणी द्वारा विस्तृत कर। इति सप्तदशो वर्गः ॥

[७३]

गोपवन आत्रेयः सप्तवध्रिर्वा ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ४, ५, ७, ६—११, १६—१८ गायत्री। ३, ८, १२—१५ निचृद् गायत्री। ६ विराड गायत्री ॥ अष्टादशर्चं सूक्तम् ॥

उदीराथामृतायते युञ्जाथामश्विना रथम् ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ १ ॥

भा०—हे (अश्विना) विद्वान् जितेन्द्रिय पुरुषो ! आप दोनों (ऋतायते) सत्य ज्ञान और यज्ञ, अन्नादि के इच्छुक के लिये (उद् ईराथाम्) उत्तम उपदेश करो और (रथं युञ्जाथाम्) रथ के समान ही उत्तम उपदेश करो। यज्ञरक्षार्थ रथ और सत्य ज्ञान प्राप्त्यर्थ उपदेश को प्रयोग करो। (वाम्-अवः) आपका रक्षा और ज्ञान (सद् भूतु) सद्, सत्य और (अन्ति) हमारे सदा समीप रहे। रथो रमतेः निरु० ।

निमिषश्चिज्जवीयसा रथेना यातमश्विना ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ २ ॥

भा०—(नि-मिषः चित् जवीयसा) पलक की झंपक से भी अधिक वेग वाले (रथेन) रथ से हे (अश्विना) अश्व चालन में चतुर जनो! आप लोग (आ यातम्) आवो। (वाम् अवः सद् अन्तिभूतु) आप दोनों की सद् रक्षा हमें सदा प्राप्त हो।

उप स्तृणीतमत्रये हिमेन घर्ममश्विना। अन्ति षद्भूतु वामवः॥३॥

भा०—(अत्रये) विविध तापों से निवृत्त होने के लिये हे (अश्विना) सर्वोवत् इन्द्रियों के संयमी जनो! (घर्मम् हिमेन) दाह को शीतल जल से जिस प्रकार दूर किया जाता है उसी प्रकार सन्तप्त जन को शीतल वचन से (उप स्तृणीतम्) आच्छादित करो, उसका आदर सत्कार करो। (वां अन्ति अवः सद् भूतु) आप लोगों का सद् ज्ञान, व्यवहार हमें भी सदा प्राप्त हो।

कुह स्थः कुह जग्मथुः कुह श्येनेव पेतथुः ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ ४ ॥

भा०—(कुह स्थः) आप कहाँ रहो, (कुह जग्मथुः) कहाँ भी जाते

हा, (कुह श्येना इव पेतथुः) कहीं भी दो श्येनों के समान वेग से, उत्तम आचार चरित्रवान् होकर गमन करो। (वाम् अन्ति सद् अवः भूतु) तुम दोनों के समीप सदा सत् ज्ञान, रक्षा बल अवश्य हो।

यदुद्य कर्हि कर्हि चिच्छुश्रूयातमिमं हवम्।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ ५ ॥ १८ ॥

भा०—(यत् अद्य) आज के समान (कर्हि कर्हि चित्) कभी कभी आप दोनों (इमं हवं शुश्रूयातम्) इस आह्वान या उत्तम वचन को भी श्रवण कर लिया करो। (वाम् अन्ति सत् अवः भूतु) आपके पास सदा सत्य ज्ञान, सद् व्यवहार रहे।

अश्विना यामहूतमा नेदिष्ठं याम्याप्यम्।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्विना) उत्तम अश्वों के समान इन्द्रियों और मनों को भी वश करने वाले जनो! आप दोनों (याम-हूतमा) उत्तम संयम, परस्पर बन्धन को सर्वोत्तम रीति से स्वीकार करने वाले हो। आप दोनों के (नेदिष्ठं) अति समीपतम (आप्यम्) बन्धुत्व की मैं (यामि) प्रार्थना करता हूं।

अवन्तमत्रये गृहं कृणुतं युवमश्विना। अन्ति षद्भूतु वामवः ॥७॥

भा०—हे (अश्विना) उत्तम जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो! आप लोग (अत्रये) इस राष्ट्र आश्रम या गृह में रहने वाले के लिये या (अत्रये) तीनों दुःखों से निवृत्त होने के लिये (युवं अवन्तं गृहं कृणुतं) तुम दोनों रक्षा करने वाला घर बनाओ। (वाम् अवः सद् अन्ति भूतु) तुम दोनों के समीप उत्तम रक्षा साधन, ज्ञान, व्यवहार होवे।

वरेथे अग्निमातपो वदते वल्ग्वत्रये। अन्ति षद्भूतु वामवः ॥८॥

भा०—आप दोनों (वल्गु वदते) उत्तम वचन बोलने वाले (अत्रये)

तीनों दुःखों से निवृत्त जन के हितार्थ (ऊतयः) सब प्रकार के संताप और अग्नि के समान कष्टदायी कारण को भी (वरेथे) दूर करो। (वाम् सत् अवः अन्ति भूतु) आपका उत्तम ज्ञान और रक्षण सदा हमें प्राप्त हो।

प्र सुप्तवंध्रिराशसा धारामग्नेरशायत । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥९॥

भा०—(सप्त-वध्रिः) सातों प्राणों को शिथिल या दमन करने वाला विद्वान् (आ-शसा) उत्तम आशा से प्रेरित होकर (अग्नेः धाराम्) विद्वान् पुरुष की वाणी को (प्र अशायत) अच्छी प्रकार हृदय में धारण करे, उसी में नित्य रमण करे। (वाम् अवः सत् अन्ति भूतु) आप दोनों की रक्षा और सत्-ज्ञान सदा हमारे समीप रहे।

इहा गतं वृषण्वसू शृणुतं म इमं हवम् ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ १० ॥ १९ ॥

भा०—हे (वृषण्वसू) बलयुक्त प्राणापान वाले जनो! (इह आगतम्) यहां आवो। (मे इमं हवं शृणुतम्) मेरे इस आमन्त्रण को श्रवण करो। (वाम् अवः अन्ति सत् भूतु) उत्तम ज्ञान आप लोगों का हमारे समीप हो। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

किमिदं वां पुराणवज्जरतोरिव शस्यते ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ ११ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! (इदं वां पुराणवत् किम्) यह आप दोनों का पुरातन, सदातन का वेद-ज्ञान किस प्रकार का है ? जो (जरतोः इव) वृद्ध वा उपदेष्टा जनों के वचन के समान उपदेश किया जाता है, (अवः सत् वाम् अन्ति भूतु) आप लोगों के उत्तम ज्ञान सदा समीप रहे।

समानं वां सजात्यं समानो बन्धुरश्विना ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ १२ ॥

भा०—हे (अश्विना) दिन रात्रिवत् परस्पर संयुक्त स्त्री पुरुष

(वां सजात्यं समानः) आप दोनों का उत्पत्ति एक समान और (बन्धुः समान) आप दोनों का परस्पर बन्धुत्व भी एक समान हो। (वाम् अवः अन्ति सद् भूतु) तुम दोनों का परस्पर समीपतम, घनिष्ठ प्रीति, तृप्ति, परस्पर वाचन-श्रवण क्रिया, इच्छा, आलिङ्गन, दान-आदानादि सब सद् व्यवहार हों।

यो वां रजांस्यश्विना रथो वियाति रोदसी।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ १३ ॥

भा०—हे (अश्विना) वेगयुक्त साधनों और अश्वादि के ज्ञाता जनो! (यः) जो (वां) तुम दोनों का (रथः) रथ (रजांसि वि-याति) नाना लोकों को प्राप्त होता है, वही (रोदसि वि-याति) आकाश और पृथिवी पर भी विशेष रूप से जावे। (वाम् सद् अवः अन्ति भूतु) आप दोनों का उत्तम गमनागमन सदा होता रहे।

आ नो गव्येभिरश्व्यैः सहस्रैरुप गच्छतम्।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ १४ ॥

भा०—आप लोग (गव्येभिः अश्व्येभिः सहस्रैः) हजारों गौओं और हजारों अश्वों से (नः आ उप गच्छतम्) हमें प्राप्त होवो। (वाम् सद् अवः अन्ति भूतु) आप दोनों का उत्तम रक्षण सामर्थ्य सदा हमें प्राप्त होवे।

मा नो गव्येभिरश्व्यैः सहस्रेभिरति ख्यतम्।
अन्ति षद् भूतु वामवः ॥ १५ ॥

भा०—(सहस्रेभिः गव्येभिः अश्व्येभिः नः मा अति ख्यतम्) हमें सहस्रों, गौवों और अश्वों से वञ्चित मत करो। (वाम् सद् अवः अन्ति भूतु) आप लोगों का उत्तम दान सदा हमें प्राप्त हो।

अरुणप्सुरुषा अभूदकर्ज्योतिर्ऋतावरी। अन्ति षद्भूतु वामवः॥१६

भा०—जिस प्रकार (उषा) प्रभात वेला की सूर्य कान्ति (ऋत-वरी)

तेजस्विनी, (अरुण-प्सुः) अरुण प्रकाश वाली होती और (ज्योतिः अकः) प्रकाश करती है उसी प्रकार (ऋत-वरी) सत्य ज्ञान को धारण करने वाली (उषाः) कमनीय कान्ति से युक्त (अरुणप्सुः) अरुण वर्ण की सुन्दर रूपवती (अभूत्) हो वह (ज्योतिः अकः) सत्य ज्ञान का प्रकाश करे।

अश्विना सु विचाकशद्वृक्षं परशुमाँ इव।
अन्ति षद् भूतु वामवः ॥ १७ ॥

भा०—हे (अश्विना) सूर्य चन्द्रवत् ज्ञानी पुरुषो ! (परशुमान् इव वृक्षं) परशु वाला पुरुष जिस प्रकार वृक्ष को काटता है उसी प्रकार सूर्य चन्द्रवत् ज्ञान-ज्योति वाला पुरुष (सु वि-चाकशत्) प्रकाशमान हो, अज्ञान-तम को नाश करता है। (वाम् अवः सत् अन्ति भूतु) तुम्हारा तेज सदा तुम्हारे वा हमारे समीप हो।

पुरं न धृष्णवा रुज कृष्णया बाधितो विशा।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥ १८ ॥ २० ॥

भा०—हे (धृष्णो) शत्रु के पराजयकारिन् ! जिस प्रकार (कृष्णया बाधितः) रात्रि से बाधित सूर्य अन्धकार को छिन्न भिन्न कर देता है उसी प्रकार तू भी (कृष्णया) कर्षण या पीड़न करने वाली शत्रु सेना से बाधित होकर (विशा) अपनी प्रजा, शत्रु के दुर्ग में घुस जाने वाली तीक्ष्ण सेना की सहायता से (पुरं न आ रुज) दुर्ग के समान ही शत्रु को छिन्न भिन्न कर। हे (अश्विनौ) सभासेनापतियो ! आप दोनों को (अवः) शत्रु हिंसन का उत्तम बल सदा आप के पास प्राप्त रहे।

अव धातुः रक्षणं, गति, कान्तिः, प्रीतिः, तृप्तिः, अवगमः, प्रवेशः, श्रवणं, स्वाम्यर्थ,याचनं, क्रिया, इच्छा, दीप्तिः, अवाप्तिः, आलिंगनं, हिंसा, आदानं, भागो, वृद्धिश्चेत्येतेष्वर्थेषु वर्त्तते। प्रकरणानुसारं स सोऽर्थोऽवबोध्यः। इति विंशो वर्गः ॥

[७४]

गोपवन आत्रेय ऋषिः ॥ देवताः—१—१२ अग्निः । १३—१५ श्रुतर्वण आर्क्ष्यस्य दानस्तुतिः । छन्दः—१, १० निचृदनुष्टुप् । ४, १३—१५ विराडनुष्टुप् । ७ पादनिचृदनुष्टुप् । २, ११ गायत्री । ५, ६, ८, ९, १२ निचृद् गायत्री । ३ विराड् गायत्री ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

विशोविशो वो अतिथिं वाजयन्तः पुरुप्रियम् ।
अग्निं वो दुर्यं वचः स्तुषे शूषस्य मन्मभिः ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (वाजयन्तः) ज्ञान, बल की कामना से युक्त (पुरु-प्रियम्) आप में से बहुतों को प्रिय, (विशः-विशः अतिथिम्) समस्त प्रजाओं के अतिथि रूप (अग्निं) तेजस्वी, ज्ञानी पुरुष की (मन्मभिः) मन्त्रों द्वारा (शूषस्य) सुख प्राप्ति के लिये सेवा करें । और मैं भी (वः) आप लोगों को (दुर्यं वचः स्तुषे) उत्तम वचन का उपदेश करता हूं ।

यं जनासो हविष्मन्तो मित्रं न सर्पिरासुतिम् ।
प्रशंसन्ति प्रशस्तिभिः ॥ २ ॥

भा०—(हविष्मन्तः जनासः) हविष् उत्तम अन्न वाले मनुष्य जिस प्रकार (सर्पिः-आ सुतिम्) घृत से सेचन योग्य अग्नि को (प्रशस्तिभिः) उत्तम प्रशंसनीय मन्त्रों से (प्र शंसन्ति) प्रशंसा करते अर्थात् उस के गुणों का वर्णन करते हैं उसी प्रकार (यं) जिस को (मित्रं न) मित्रवत् (सर्पिः-आसुतिम्) घृतयुक्त अन्न द्वारा सत्कार के योग्य जानकर (हविष्मन्तः) अन्न आदि हाथ में लिये जन (प्रशस्तिभिः) उत्तम वचनों से (प्रशंसन्ति) प्रशंसा करते हैं, उस की तुम भी स्तुति और आदर करो ।

पन्यांसं जातवेदसं यो देवतात्युद्यता । हव्यान्यैरयद्दिवि ॥३॥

भा०—(यः) जो अग्नि (देवताति) यज्ञ में (हव्यानि दिवि-

ऐरयत्) हव्य पदार्थों को आकाश की ओर प्रेरित करता है, उस (जात-वेदस) ऐश्वर्य युक्त वा सर्वज्ञ, (पन्यांसं) स्तुतियुक्त अग्नि का गुण वर्णन करूं, उसे व्यवहार में लाऊं। इसी प्रकार (यः) जो विद्वान् पुरुष (उधता हव्यानि) उत्तम रीति से प्राप्त अन्नों और धनों को (दिवि) ज्ञान मार्ग और सत् कार्य में लगा देता है उस (जात-वेदसं पन्यांसं) ऐश्वर्य और ज्ञान से युक्त, स्तुत्य, व्यवहारकुशल पुरुष को हम प्राप्त करें।

आगन्म वृत्रहन्तमं ज्येष्ठमग्निमानवम्।
यस्य श्रुतर्वा बृहन्नार्क्षो अनीक एधते ॥ ४ ॥

भा०—(यस्य) जिस के (अनीके) सैन्य बल में (बृहन्) बड़ा भारी (आर्क्षः) शत्रु को भर्जन या पीड़न करने में समर्थ (श्रुतर्वा) प्रसिद्ध अश्वारोही जन (एधते) वृद्धि को प्राप्त होता है, उस (ज्येष्ठम्) सब में बड़े (आनवं) मनुष्यों के हितैषी (अग्निम्) तेजस्वी (वृत्रह-न्तमं) सबसे अधिक शत्रुहन्ता पुरुष को हम (आ अगन्म) प्राप्त करें।

अमृतं जातवेदसं तिरस्तमांसि दर्शतम्।
घृताहवनमीड्यम् ॥ ५ ॥ २१ ॥

भा०—(घृताहवनम्) तेज से देदीप्यमान अग्नि के तुल्य, वा जलों द्वारा आदर करने योग्य (ईड्यम्) स्तुति योग्य (तमांसि तिरः दर्शतं) अन्धकारों को दूर करके सत्य ज्ञान को दर्शाने वाले, (अमृतं) अमृत स्वरूप (जात-वेदसम्) ज्ञानमय प्रभु की हम उपासना करें। इत्येकविंशो वर्गः ॥

सबाधो यं जना इमे३ऽग्निं हव्येभिरीळते जुह्वानासो यतस्रुचः ॥६॥

भा०—जिस प्रकार (सबाधः) ऋत्विग् लोग (अग्निम्) अग्नि को (यत-स्रुचः) जुहू आदि साध कर (जुह्वानासः हव्येभिः ईडते) आहुति देते हुए चरु आदि से चाहते हैं उसी प्रकार (इमे) ये (सबाधाः) पीड़ा युक्त (जनाः) मनुष्य (यत-स्रुचः) प्राणों का निग्रह करके (जुह्वानासः) आत्म-समर्पण करते हुए (यम् अग्निम्) जिस तेजोमय,

पापनाशक ज्योति की (हव्येभिः) स्तुत्य वचनों से (ईळते) स्तुति करते उसे उत्तम भावों से चाहते हैं, उसी की उपासना करनी चाहिये।

इयं ते नव्यसी मतिरग्ने अधाय्यस्मदा ।
मन्द्र सुजात सुक्रतोऽमूर दस्मातिथे ॥ ७ ॥

भा०—हे (मन्द्र) स्तुत्य, हर्षजनक, आनन्दघन ! हे (सु-जात) सुख-स्वरूप ! हे (सु-क्रतो) शुभ कर्म और प्रज्ञा वाले ! हे (अमूर) अमूढ़ ! अहिंसक ! हे (दस्म) दर्शनीय दुष्टदलन ! हे (अतिथे) व्यापक, अतिथिवत् पूज्य ! हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! (ते) तेरी (इयं) यह नव्यसी) अतिस्तुत्य (मतिः) ज्ञानमयी बुद्धि (अस्मत् अधायि) हमारे में स्थिर हो ।

सा ते अग्ने शन्तमा चनिष्ठा भवतु प्रिया ।
तया वर्धस्व सुष्टुतः ॥ ८ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! तेजस्विन् ! (ते) तेरी (सा) वह (शं-तमा) शान्तिदायक (चनिष्ठा) उत्तम अन्नवत् भोग्य, सुखदात्री बुद्धि (प्रिया) प्रीतिकर हो । (तया) उससे तू (सु-स्तुतः) उत्तम स्तुतियुक्त होकर (वर्धस्व) वृद्धि को प्राप्त हो और हमें भी बढ़ा ।

सा द्युम्नैर्द्युम्निनी बृहदुपोप श्रवसि श्रवः । दधीत वृत्रतूर्ये ॥९॥

भा०—(सा) वह (द्युम्नैः द्युम्निनी) प्रकाशों से प्रकाश युक्त वाणी (वृत्र-तूर्ये) आवरणकारी अज्ञानान्धकार को नाश करने के निमित्त (बृहत् श्रवः) बड़ा भारी ज्ञान (श्रवसि) कान में (उप दधीत) धारण करावे ।

अश्वमिद् गां रथप्रां त्वेषमिन्द्रं न सत्पतिम् ।
यस्य श्रवांसि तूर्वथ पन्यम्पन्यञ्च कृष्टयः ॥ १० ॥ २२ ॥

भा०—हे (कृष्टयः) मनुष्यो ! आप लोग (पन्यम्-पन्यम्) अति-स्तुत्य २ कार्य, धन और (श्रवांसि) नाना ज्ञानों और आहार योग्य अन्नों

के समान ही (तुर्वथ) प्राप्त करो और उस को (गाम्) गौ के समान मातृतुल्य (अश्वम् इव) अश्व के समान बलवान् (रथप्राम्) महारथी के समान प्रभावशाली, (त्वेषं) सूर्य के समान तेजस्वी (इन्द्रं न) ऐश्वर्यवान् विद्युत् के समान तीक्ष्ण, (सत्पतिं) सज्जनों के पालक प्रभु की उपासना करो। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

यं त्वा गोपवनो गिरा चनिष्ठदग्ने अङ्गिरः।
स पावक श्रुधी हवम् ॥ ११ ॥

भा०—हे (पावक) पावक, पवित्र करने हारे! (यं त्वा) जिस तुझ को (गो-पवनः) वाणी द्वारा अपने को पवित्र करने वाला और (गोप-वनः) वाणी के पालक विद्वानों का सेवन करने वाला, पुरुष (गिरा) वाणी द्वारा (चनिष्ठव्) तेरा अन्न और वचन द्वारा सत्कार करता है। हे (अग्ने) ज्ञानवन्! हे (अंगिरः) तेजस्विन्! (सः) वह तू (हवम् श्रुधि) हमारे आह्वान को श्रवण कर।

यं त्वा जनास ईळते सबाधो वाजसातये।
स बोधि वृत्रतूर्ये ॥ १२ ॥

भा०—(यं त्वा) जिस तुझ को (स-बाधः) बाधा या पीड़ा सहित दुःखी जन (वाज-सातये) ज्ञान और ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये (ईडते) स्तुति करते हैं। (सः) वह तू (वृत्र-तूर्ये) विघ्नादि के नाश करने के कार्य में (बोधि) हमें ज्ञानवान् कर।

अहं हुवान आर्क्षे श्रुतर्वणि मदच्युति।
शर्धांसीव स्तुकाविनां मृक्षा शीर्षा चतुर्णाम् ॥ १३ ॥

भा०—(आर्क्षे) शत्रु को अपने प्रताप में भून देने वाले (श्रुत-र्वणि) प्रसिद्ध अश्व सैन्य के स्वामी (मदच्युति) शत्रु के मद को दूर करने में समर्थ वीर पुरुषों के अधीन (स्तुकाविनां) बालों की ग्रन्थि, फुन्दों वाले (चतुर्णाम्) चारों वर्णों वा चार घोड़ों के तुल्य या सेना के चारों अंगों

के वीरों के (मृक्षा) अति दीप्त, चमचमाते (शीर्षा) शिर वा प्रमुख नायक जन (शर्धांसि इव) मानो उनके मुख्य बल हैं। अर्थात् वीरों के शिरों के बाल और मूंछ, दाढ़ी आदि वीरत्व द्योतक चिन्ह हैं, मानो वे ही उनके बल हैं, वे बालों से सिंहों के समान भयानक प्रतीत होते हैं। केशान् शीर्षन् यशसे श्रियै शिखा सिंहस्य लोम त्विषिरिन्द्रियाणि। यजु० १९।९२॥ उनको (अहं) मैं (हुवानः) अन्न देने वा स्वीकार करने वाला होऊं। (२) इसी प्रकार (आर्क्षे = ऋचः सनोतिइति ऋक्षः स्वार्थेऽण्) विद्वान् वेदज्ञ (श्रुतर्वणि) विश्रुत, विद्वान् शिष्यों वाले (मद-च्युति) हर्षदायक गुरु के अधीन (स्तुकाविनां) बालों के गुच्छों वाले (चतुर्णाम्) चारों वर्णों के विद्यार्थियों के (मृक्षा) छुरे से मुंडे हुए नाना (शीर्षा) शिर अर्थात् शिरों वाले अनेक शिष्य गण उन के (शर्धांसि इव) सेना या फौज के समान हों। उनको मैं (हुवानः) अन्न भिक्षादि देने हारा होऊं। विद्वान् के अधीन सैंकड़ों शिष्य उसकी सेना के समान हैं। जैसे धौम्य के पांच सौ शिष्य थे। राजा आदि उन को पालें।

'वृक्षा शीर्षा' इति सायणाभिमतः पाठः।

मां चत्वार आशवः शविष्ठस्य द्रवित्नवः।
सुरथासो अभि प्रयो वक्षन्वयो न तुग्र्यम् ॥ १४ ॥

भा०—(शविष्ठस्य) अति बलशाली, सेनापति के (चत्वारः) चार (द्रवित्नवः) वेगवान् (आशवः) शीघ्रगामी, अश्वों के सामने वेग से आक्रमण करने वाले, (सु-रथासः) उत्तम महारथी लोग (तुग्र्यम् वयः न) शत्रुहिंसक बलवान् पुरुष को वेगवान् अश्वों के समान (प्रयः अभि वक्षन्) श्रेष्ठ यानवत् धारण करते हैं।

सत्यमित्वा महेनदि परुष्ण्यव देदिशम्।
नेमापो अश्वदातरः शविष्ठादस्ति मर्त्यः ॥ १५ ॥ २३ ॥

भा०—हे (महेनदि) महानदी के समान बड़ा भारी शब्द करने

वाली ! हे (परुष्णि) पोरु पोरु अर्थात् छोटी २ टुकड़ियों से बनी, वा पर्व २ पर उष्ण अर्थात् शत्रु को दग्ध करने वाली, तेजस्विनी वा कुटिलगामिनी सेने ! (त्वा) तुझ को मैं (सत्यम् इत्) सत्य ही (अव देदिशम्) कहता हूँ । हे (आपः) आप्त जनो, आप्त प्रजाओ ! सुनो (शविष्ठात्) अति बलशाली से दूसरा कोई (मर्त्यः) मनुष्य (अश्वदातरः न ईम् अस्ति) अश्व सैन्य को अन्न वस्त्र भृति आदि देने वा पालन करने वाला नहीं है। बलिष्ठ राजा ही सब से बड़ा अश्वादि सैन्य का पालक होता है। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[७५]

विरूप ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१,४,५,७,६,११ निचृद् गायत्री । २, ३, १५ विराड् गायत्री । ८ आर्ची स्वराड् गायत्री । षोडशर्चं सूक्तम् ॥

युक्ष्वा हि देवहूतमाँ अश्वाँ अग्ने रथीरिव ।
नि होता पूर्व्यः सदः ॥ १ ॥

भा०—(रथीः इव अश्वान्) रथी जिस प्रकार रथ में अश्वों को जोड़ता है, उसी प्रकार हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! तू (देव-हूतमान् युक्ष्व) शुभ गुणों को उत्तम रीति से धारण करनेवाले विद्वान् पुरुषों को, इन्द्रियों को साधकवत्, राष्ट्र में उचित पद पर नियुक्त कर । और तू (होता) सब को भृति-वेतन आदि देने वाला (पूर्व्यः) सब में पूर्ण, सब से मुख्य होकर विराज ।

उत नो देव देवाँ अच्छा वोचो विदुष्टरः ।
श्रद्विश्वा वार्या कृधि ॥ २ ॥

भा०—हे (देव) ज्ञानदातः! दानशील ! हे तेजस्विन् ! तू (विदुस्तरः) सब से उत्तम विद्वान् होकर (देवान् नः) विद्या की कामना करने वाले हम लोगों को (अच्छ वोचः) अभिमुख उपदेश कर । (उत)

और (विश्वा वार्या ऋत कृधि) समस्त वरण करने योग्य उत्तम ज्ञानों को सत्य रूप में प्रकट कर ।

त्वं ह यविष्ठ्य सहसः सूनवाहुत । ऋतावा यज्ञियो भुवः ॥३॥

भा०—हे (यविष्ठ्य) युवतम ! सब में अधिक जवान्, बलवान् पूज्य ! हे (सहसः सूनो) बल के सञ्चालक, उत्पादक ! हे (आहुत) सब से स्वीकृत, सब के द्वारा अपना २ अंश देकर समृद्ध किये हुए ! (त्वं ह) तू ही (ऋत-वा) सत्य न्याय का पालक और (यज्ञियः भुवः) सर्व-पूजार्ह, दान योग्य सत्पात्र हो ।

अयमग्निः सहस्रिणो वाजस्य शतिनस्पतिः ।
मूर्धा कवी रयीणाम् ॥ ४ ॥

भा०—(अयम् अग्निः) यह ज्ञानवान् और तेजस्वी पुरुष (सहस्रिणः वाजस्य) सहस्रों संख्या से युक्त ज्ञान, सैन्य और ऐश्वर्य का और (शतिनः वाजस्य) सैकड़ों की संख्या वाले ज्ञान, सैन्य और ऐश्वर्य का (पतिः) पालक और (कविः) क्रान्तदर्शी (रयीणाम् मूर्धा) ऐश्वर्यवानों का भी शिरःस्थानीय, प्रमुख हो । सहस्रों, सैकड़ों संख्या वाला ज्ञान, वेदादि शास्त्र, जिन की ग्रन्थ गणना शत कण्डिका, सहस्र मन्त्र वा श्लोकादि से होती है । सैन्य में भी शतपति, सहस्रपति के अधीन इतने २ सैन्य भट होते हैं । ऐश्वर्यों में ग्रामों की संख्या वा स्वर्णमुद्राओं की संख्या ली जाती है ।

तं नेमिमृभवो यथा नमस्व सहूतिभिः ।
नेदीयो यज्ञमङ्गिरः ॥ ५ ॥ २४ ॥

भा०—हे (अंगिरः) विद्वान् ! तेजस्विन् (ऋभवः यथा नेमिम्) विद्वान् शिल्पी लोग जिस प्रकार चक्र के समस्त अरों के चारों ओर नेमि या लोहपरिधि को नमाते हैं उसी प्रकार तू (सहूतिभिः) समान रूप से आह्वान करने योग्य वा समान वेतनादि देने हारे शासकों से (तं यज्ञम्)

उस यज्ञ, परस्पर संगत राष्ट्र को, (नेदीयः नमस्व) अति समीप २ झुका, अपने वश कर । इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

तस्मै॑ नू॒नम॒भिद्य॑वे वा॒चा वि॑रूप॒ नित्य॑या ।
वृष्णे॑ चोदस्व सुष्टु॒तिम् ॥ ६ ॥

भा०— हे (विरूप) विशेष रूपवान् ! मुमुक्षु ! हे विशेष रुचि वाले तु (नूनम्.) अवश्य ही (तस्मै) उस (अभि-द्यवे) तेजस्वी, (वृष्णे) बलवान् पुरुष के लिये (नित्यया वाचा) नित्य निश्चित वाणी द्वारा (सु-स्तुतिम् चोदस्व) उत्तम स्तुति को प्रस्तुत कर । परमेश्वर की स्तुति के लिये वेद वाणी का प्रयोग कर । अथवा षष्ठ्यर्थे चतुर्थी । तू उस ज्ञानवान् , सर्व-ज्ञानवर्षक प्रभु की नित्य वाणी वेद से (सु-स्तुतिं चोदस्व) उत्तम प्रार्थना वा, उपदेश किया कर ।

कमु॑ ष्विदस्य॒ सेन॑याग्नेरपा॑कचक्षसः । प॒णिं गोषु॑ स्तरामहे ॥७॥

भा०—(अस्य) इस (अपाक-चक्षसः) अनल्प दृष्टि वाले, परिपक्व बुद्धि वाले (अग्नेः) तेजस्वी ज्ञानी नायक पुरुष की (सेनया) सेना से हम (कं स्वित् उ पणिं) प्राण की शर्त्त धर कर बाजी लगाने वाले किस शत्रु को (गोषु) भूमियों के विजय के लिये (स्तरामहे) विनाश करें ।

मा नो॑ दे॒वानां॒ विशः॑ प्रस्ना॒तीरि॑वो॒स्राः ।
कृ॒शं न हा॑सु॒रघ्न्याः॑ ॥ ८ ॥

भा०—(उस्राः) सूर्य की किरणों के समान उन्नत पद की ओर जाने वाले लोग (देवानां) देव, विद्वान् पुरुषों के बीच (प्र-स्नातीः) अच्छी स्नान करती हुई, शुद्ध आचार से रहने वाली (नः विशः) हम प्रजाओं को (प्र-स्नातीः इव) शुद्ध पवित्र नारियों के समान (मा हासुः) परित्याग न करें । अर्थात् गृहस्थ लोग जिस प्रकार शुद्ध, स्नात, सच्चरित्रा नारियों का त्याग नहीं करते, उसी प्रकार उत्तम जन हम प्रजाओं का त्याग न करें। (अघ्न्याः कृशं न) जिस प्रकार गौवें अपने निर्बल बच्चे को नहीं त्याग

करतीं, प्रत्युत जब तक हृष्ट पुष्ट न हो जावे उसे दूध पिलाकर पुष्ट किया करती हैं उसी प्रकार तेजस्वी उत्तम जन हम निर्बल प्रजाओं को भी न त्यागें।

'उस्राः'–वसन्ति सह, यद्वा उत् ऊर्ध्वं सरन्ति वा उस्राः। उत्सृजन्ति वा दुग्धं पयो वा।

मा नः समस्य दूढ्यः परिद्वेषसो अंहतिः।
ऊर्मिर्न नावमा वधीत् ॥ ९ ॥

भा०—(ऊर्मिः नावं न) जलतरंग जिस प्रकार नौका का आघात करती है उस प्रकार (समस्य) समस्त (दूढ्यः) दुष्ट बुद्धि वाले (परिद्वेषसः) सब प्रकार से द्वेषी पुरुष की (अंहतिः) पाप बुद्धि वा आघात पहुंचाने की दुरभिसन्धि (नः) हमें (मा वधीत्) कभी न पीड़ित करे।

नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः।
अमैरमित्रमर्दय ॥ १० ॥ २५ ॥

भा०—हे (देव) दानशील! हे तेजस्विन्! (अग्ने) अग्निवत् शत्रु-संतापक! तू (ते ओजसे) तेरे पराक्रम के लिये (कृष्टयः) सब प्रजा के मनुष्य (नमः गृणन्ति) विनय युक्त वचन कहते हैं। तू (अमैः) सहायकों, बलों वा सैन्यों और दुःखदायी रोगों वा भटों से (अमित्रम् अर्दय) शत्रु को पीड़ित कर। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

कुवित्सु नो गविष्टयेऽग्ने संवेषिषो रयिम्। उरुकृदुरु णस्कृधि ॥ ११ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! तू (नः) हमें (गविष्टये) भूमियों को प्राप्त करने के लिये (कुवित् रयिम्) बहुत साधन (सं वेषिषः) प्राप्त कर। तू (उरुकृत्) बहुत धन को उत्पन्न करने वाला है। तू (नः उरु कृधि) हमारे धन और प्राप्तव्य फल को बहुत कर, उसे बढ़ा।

मा नो अस्मिन्महाधने परा वर्ग्भारभृद्यथा।
संवर्गं सं रयिं जय ॥ १२ ॥

भा०—(यथा भारभृत्) बोझा ढोने वाला जिस प्रकार थक कर अन्त में अपने बोझे को दूर फेंक देता है उसी प्रकार हे नायक कहीं (महावने) इस महासंग्राम में (नः मा परा वर्क्) हमें भार सा जान कर तू मत त्याग देना। अथवा (यथा भारभृत्) जिस प्रकार पालन पोषण योग्य स्त्रीपुत्र दासादि का पोषक स्वामी अपने इन पोष्य वर्ग को (महा-वने) अति सम्पन्नता में नहीं त्यागता उसी प्रकार तू भी संग्राम या अति ऐश्वर्य दशा में हमें मत त्याग। बल्कि तू (संवर्गं) उत्तम सहयोगी गण और (रयिं) ऐश्वर्य का गुणों और पराक्रमों से (जय) विजय कर।

अन्यमस्मद्भिया इयमग्ने सिषक्तु दुच्छुना।
वर्धा नो अमवच्छवः ॥ १३ ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन्! नायक सेनापते! (इयम्) यह (दुच्छुना) दुखदायिनी सेना (अस्मत् अन्यम्) हमारे से दूसरे शत्रु को (भिया सिषक्तु) भयभीत करे। (नः अमवत्) तू हमारे बलयुक्त (शवः) सैन्य-बल को (वर्ध) बढ़ा।

यस्याजुषन्नमस्विनः शमीमदुर्मखस्य वा। तं घेदग्निर्वृधावति १४

भा०—(यस्य) जिस (नमस्विनः) विनय, अन्न और शत्रु को नमाने वाले वज्र या वीर्य से सम्पन्न (अदुर्मखस्य) अदोषयुक्त यज्ञ, वा अदुःख-दायी, अच्छिद्र, निश्छिद्र कार्यकर्त्ता के (शमीम् अजुषत्) कर्म को प्रेमपूर्वक स्वीकार कर लेता है, (तं घ इत्) उसकी ही (अग्निः) वह उत्तम तेजस्वी नायक (वृधा अवति) वृद्धियुक्त सम्पदा से रक्षा करता है।

परस्या अधि संवतोऽवराँ अभ्या तर। यत्राहमस्मि ताँ अव १५.

भा०—(परस्याः संवतः अधि) शत्रु के सेना के उत्तम संगठनयुक्त बल के ऊपर (अवरान् अभि आतर) उनसे न्यून या डरे के हम लोगों को

सम्मुख, आगे बढ़ा, उनको विजयी कर। और (यत्र) जिनके बीच में, जिनके ऊपर (अहम् अस्मि) मैं हूं (तान् अव) उनकी रक्षा कर।

विद्मा हि ते पुरा वयमग्ने पितुर्यथावसः।
अधा ते सुम्नमीमहे ॥ १६ ॥ २६ ॥

भा०—हे (अग्ने) प्रतापशालिन्! (अवसः पितुः यथा) जिस प्रकार रक्षक पिता के सुख वा उत्तम धन को पुत्र चाहता है उसी प्रकार (पुरा) पूर्ववत् (अवसः) रक्षक (पितुः) पालक रूप (ते) तेरे (सुम्नम्) सुख को (हि) हम भी (विद्म) जानें और (अध ते ईमहे) तुझ से हम याचना करते हैं। इति षड्विंशो वर्गः ॥

[७६]

कुरुसुतिः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ५, ६, ८—१२ गायत्री। ३, ४, ७ निचृद् गायत्री ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

इमं नु मायिनं हुव इन्द्रमीशानमोजसा।
मरुत्वन्तं न वृञ्जसे ॥ १ ॥

भा०—मैं (इमं) इस (मायिनं) माया, बुद्धि-कौशलों से युक्त, (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान्, (ओजसा ईशानम्) बल पराक्रम से सबके स्वामी, (मरुत्वन्तं न) प्राणवान् आत्मा के समान, वायुवद् बलशाली पुरुषों के स्वामी पुरुष को (वृञ्जसे) शत्रु के नाश के लिये (हुवे नु) आह्वान करता, प्रार्थना करता हूं।

अयमिन्द्रो मरुत्सखा वि वृत्रस्याभिनच्छिरः।
वज्रेण शतपर्वणा ॥ २ ॥

भा०—(मरुत्सखा) वायु को सहायक लेकर (इन्द्रः) सूर्य (वज्रेण शत-पर्वणा) सैकड़ों किरणों वाले तेज से (वृत्रस्य शिरः अभिनत्) मेघ के ऊपरी भाग को छिन्न भिन्न करता है उसी प्रकार (अयम् इन्द्रः) यह

शत्रुनाशक वीर सेनापति (मरुत्-सखा) वीर पुरुषों का मित्र होकर, (शत-पर्वणा वज्रेण) सैकड़ों टुकड़ियों से बने सैन्य बल से (वृत्रस्य शिरः) बढ़ते शत्रु के शिर या मुख्य भाग को (अभिनत्) छिन्न भिन्न करे।

वावृधानो मरुत्सखेन्द्रो वि वृत्रमैरयत्। सृजन्त्समुद्रिया अपः ३

भा०—(मरुत्सखा इन्द्रः) वायु को सहाय लेकर इन्द्र, विद्युत् वा सूर्य, जिस प्रकार (वावृधानः) अधिक प्रबल होकर (समुद्रियाः अपः सृजन्) समुद्र अर्थात् अन्तरिक्षस्थ जलों को उत्पन्न करता हुआ (वृत्रं) मेघ को (वि ऐरयत्) विविध दिशाओं में प्रेरित वा छिन्न भिन्न करता है उसी प्रकार (मरुत्सखा) वीर पुरुषों और प्रजास्थ मनुष्यों का मित्र, उनसे सहायवान् होकर राजा अधिक शक्तिशाली होकर (समुद्रिया अपः) समुद्र के जलों के समान अपनी सेनाओं को उत्पन्न करता हुआ (वृत्रम्) बढ़ते शत्रु को छिन्न भिन्न करता है।

अयं ह येन वा इदं स्वर्मरुत्वता जितम्। इन्द्रेण सोमपीतये॥४॥

भा०—(येन वा इन्द्रेण) जो शत्रुहन्ता (मरुत्वता) मनुष्यों का सहाय लेकर (सोम-पीतये) ऐश्वर्य के पालन और उपभोग के लिये (इदं स्वः जितम्) आकाश को सूर्य के समान, इस समस्त भूलोक का विजय करता है (अयं ह) वही निश्चय से स्तुत्य है। (२) सोम जीवों के पालनार्थ प्रभु परमेश्वर इस समस्त जगत को वश करता है, वही स्तुति योग्य है।

मरुत्वन्तमृजीषिणमोजस्वन्तं विरप्शिनम्।
इन्द्रं गीर्भिर्हवामहे ॥ ५ ॥

भा०—वायुओं के बलों से सम्पन्न सूर्यवत् प्रतापी, प्रबल मनुष्यों के स्वामी (ऋजीषिणम्) ऋजु अर्थात् धर्ममार्ग पर औरों को चलाने वाले तथा (ऋजीषिणम्) शत्रुदल को भून डालने में समर्थ, तीक्ष्ण सैन्यबल को सञ्चालित करने वाले (ओजस्वन्तं) बल पराक्रमशील (विरप्शिनम्)

महान् (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् की हम (गीर्भिः) वाणियों से (हवामहे) प्रार्थना करें।

इन्द्रं प्रत्नेन मन्मना मरुत्वन्तं हवामहे।
अस्य सोमस्य पीतये॥ ६॥ २७॥

भा०—(अस्य सोमस्य पीतये) इस महान् ऐश्वर्य या जगत् के पालन करने के लिये हम (प्रत्नेन) अनादिसिद्ध (मन्मना) मनन करने योग्य स्तोत्र, वेद ज्ञान से हम (मरुत्वन्तं) प्रबल मनुष्यों के स्वामी, समस्त जीवों के पालक प्रभु की (हवामहे) प्रार्थना करते हैं।

मरुत्वाँ इन्द्र मीढ्वः पिबा सोमं शतक्रतो।
अस्मिन्यज्ञे पुरुष्टुत॥ ७॥

भा०—हे (शतक्रतो) अनेक प्रज्ञावाले हे (पुरुष्टुत) बहुतों के स्तुतिपात्र! हे (मीढ्वः) जगत् पर सुख की वर्षा करने हारे! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (अस्मिन् यज्ञे) इस यज्ञ में (मरुत्वान्) नाना वीर पुरुषों का स्वामी, सहायक होकर (सोमं पिब) इस ऐश्वर्य वा सोम, प्रजा युक्त राष्ट्र का पालन उपभोग कर। (२) प्रभु समस्त जीवों का स्वामी वा वायुओं का स्वामी हो। इस उत्पन्न जगत् में जीवगण का पालन करे। (६) अध्यात्म में आत्मा प्राण इन्द्रियों का स्वामी होने से मरुत्वान् है। वह शरीर में सोम, वीर्य का पालन और सुख प्राप्त करता है।

तुभ्येदिन्द्र मरुत्वते सुताः सोमासो अद्रिवः।
हृदा हूयन्त उक्थिनः॥ ८॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (अद्रिवः) बलवन्! (तुभ्य इत् मरुत्वते) मनुष्यों, बलवान् पुरुषों के तुझ स्वामी के लिये ही (उक्थिनः) उत्तम वेद को धारण करने वाले (सुताः सोमासः) ऐश्वर्यादि से पुरस्कृत और उत्तम पदों पर अभिषिक्त (सोमासः) ज्ञानवान्

बलवान् पुरुष (हृदा) हृदय से (हूयन्ते) बुलाये जाते, अपनाये जाते, और नाना ऐश्वर्य देकर सत्कार किये जाते हैं।

पिबेदिन्द्र मरुत्सखा सुतं सोमं दिविष्टिषु।
वज्रं शिशान ओजसा ॥ ९ ॥

भा०—तू (मरुत्सखा) मनुष्यों और वीर पुरुषों का सखा, मित्र होकर ही (दिविष्टिषु) सब दिनों हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (ओजसा) पराक्रम से (वज्रं शिशानः) अपने बल वीर्य और शस्त्रबल को तीक्ष्ण करता हुआ (दिविष्टिषु) अपनी कामनाओं को प्राप्त करने के निमित्त (सुतं सोमं) उत्पन्न जगत् या ऐश्वर्य का (पिब इत्) पुत्रवद् पालन और धनवत् उपभोग कर।

उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वी शिप्रे अवेपयः।
सोममिन्द्र चमूसुतम् ॥ १० ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (ओजसा सह) बल पराक्रम के साथ (उत्तिष्ठन्) ऊपर उठता हुआ (चमू-सुतम्) सेनाओं द्वारा प्राप्त (सोमम्) राष्ट्र के ऐश्वर्य को (पीत्वी) पालन करके (शिप्रे अवेपयः) जल पान करके तृप्त हुए मनुष्य के समान प्रसन्न होकर मुख नासिका वा ठोड़ियों को कंपा, प्रसन्न हो। अथवा (शिप्रे अवेपयः) अपनी बलयुक्त सेनाओं को संचालित कर।

अनु त्वा रोदसी उभे क्रक्षमाणमकृपेताम्।
इन्द्र यद्दस्युहाभवः ॥ ११ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुहन्! (यत्) जब तू (दस्युहा अभवः) दुष्ट पुरुषों का नाश करने हारा होता है तब (क्रक्षमाणं त्वा अनु) शत्रु का छेदन करते हुए तेरे साथ २ (उभे रोदसी) शास्य और शासक दोनों वर्ग (अनु कृपेताम्) बलवान् हो जाते हैं।

वाच॑म॒ष्टाप॑दीम॒हं नव॑स्रक्तिमृत॒स्पृश॑म् ।
इन्द्रा॒त्परि॑ त॒न्वं॑ ममे ॥ १२ ॥ २८ ॥

भा०—(अष्टापदीं) आठ पद वाली और (नव-स्रक्तिम्) नवस्रक्ति अर्थात् स्तुत्य रचना वाली, (ऋत-स्पृशम्) ऋत, सत्य का स्पर्श अर्थात् दर्शन कराने वाली (तन्वम्) विस्तृत वा व्यापक वाणी को (अहं) मैं (इन्द्रात्) सत्यदर्शी पुरुष से (परि ममे) यथार्थ रूप से जानूं । जो कानून या शासन वाणी राजा के आठ अमात्यों से उत्पन्न होती है वह आठ पद वाली और नवस्रक्ति अर्थात् इन्द्र वा मुख्य शासक के मुख से ही वह प्रचारित होती है । वेद-विद्या के आठ विद्यास्थान आठ पद हैं । अष्टाविंशो वर्गः ॥

[७७]

* कुरुसुतिः काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४, ७, ८ गायत्री ॥ २, ५, ६, ९ निचृद गायत्री । १० निचृद् बृहती । ११ निचृद् पंक्तिः । एकादशर्चं सूक्तम् ॥

ज॒ज्ञा॒नो नु श॒तक्र॑तु॒र्वि पृ॑च्छ॒दिति॑ मा॒तर॑म् ।
क उ॒ग्राः के ह॑ शृण्वि॒रे ॥ १ ॥

भा०—(जज्ञानः) उत्पन्न या प्रकट होता हुआ (शतक्रतुः) अनेक प्रज्ञावान् पुरुष (मातरं वि पृच्छत्) माता से बालक के समान विज्ञानवान्, सत्यज्ञानी पुरुष वा मातृतुल्य प्रजा से ही (इति) इस प्रकार से (वि पृच्छात्) विशेष रूप से प्रश्न किया करे कि (के उग्राः) राष्ट्र में कौन ऐसे बलवान् पुरुष हैं जिनसे लोग भय खाते हैं, और (के ह शृण्विरे) कौन ऐसे बलवान् लोग अभी तक सुने जाते हैं । अर्थात् देश में पहले भी ऐसे कौन २ बलवान् भयकारी, अत्याचारी हो चुके हैं । राजा

* पुरुहृतिरिति आमा.दिकः ।

का कर्त्तव्य है कि सबसे पहले यह प्रजा के त्रासकारी लोगों का पता लगा कर उनका नाश करे।

आदीं शवस्यब्रवीदौर्णवाभमहीशुवम्।
ते पुत्र सन्तु निष्टुरः ॥ २ ॥

भा०—(आत्) अनन्तर (शवसी) बलवती प्रजा (ईम् और्णवाभम्) उस और्णवाभ, तेजस्वी दण्डधर, राजा और (अमहीशुवम्) राष्ट्र की बाग-डोर संभालने वाले उस शासक पुरुष के प्रति (अब्रवीत्) कहे कि हे (पुत्र) बहुत से प्रजा जनों के त्राण करने वाले राजन्! (ते) वे अमुक २ नाम वाले बहुत से हैं जो (निःतुरः सन्ति) विनाश कर देने योग्य हैं वा, उनको (निःतुरः) अति तीव्र अश्वों को कोचवान् के समान बन्धन रज्जु और हन्टरों से दण्ड दे, वश करे।

और्णवाभः—उर्णां वहति इति उर्णवाभः। भत्वं छान्दसम्। स्वार्थिको ऽण्। अथवा उर्णाया वस्त्रं आहननार्थस्तोदो वा और्णं तद्वहति वा। विशेषपरिच्छदभूषितो दण्डधरो वा।

अहीशु=अभीशु। हत्वं छान्दसम्। प्रग्रहवान् उच्छृंखलानामिवाश्वानां नियन्ता।

समित्तान्वृत्रहाखिदत्खे अराँ इव खेदया।
अवृद्धो दस्युहाभवत् ॥ ३ ॥

भा०—तब वह (वृत्रहा) दुष्टों का नाश करने वाला वीर राजा प्रजा की अभ्यर्थना करने पर (तान्) उन दुष्ट पुरुषों को (खे) चक्र की नाभि में (अरान् इव) अरों के समान, (खेदया) रज्जु आदिवत् बन्धनकारिणी मर्यादा या ताड़ना से (खे) शून्य कारागारादि में (अखिदत्) धर कर पीड़ित करे और उनको दण्डित करके दीन बना दे, उनकी त्रासकारिणी उग्रता को दूर कर दे।

'खेदया'—खिद दैन्ये, रुधादिर्दिवादिश्च। खिद परिघातने। तुदादिः

खिनत्ति खिद्यति दैन्यभावमापादयति आपद्यते वा स्वयं अनया सा खेदा। रज्जुः प्रग्रहः, कशा वा परिचालनसाधनं वा। खेदा कशा। खेदया रश्मिना, (ऋ० ८।७२।८) रज्ज्वा, (८।७७।२) इति सायणः।

एक॑या प्रति॒धापि॑बत्सा॒कं सरां॑सि त्रिं॒शत॑म्।

इन्द्रः॒ सोम॑स्य काणु॒का ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार (इन्द्रः) सूर्य (एकया) एक ही (प्रतिधा) प्रति-धान अर्थात् अमावास्या या प्रतिपदा की विपरीत स्थिति से (सोमस्य) चन्द्र की (काणुका) कमनीय (त्रिंशतम् सरांसि) तीसों दिन रातों की किरणों को (साकम्) एक साथ ही (अपिबत्) पान कर लेता है, अपने भीतर ही ले लेता है, उसी प्रकार (काणुका इन्द्रः) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष भी (एकया प्रतिधा) एक ही प्रतिधान, अर्थात् विग्रह-पूर्वक आक्रमण से (सोमस्य) प्रति पक्ष के ऐश्वर्य युक्त राष्ट्र के (त्रिंश-तम्) तीसों (सरांसि) धनों को (साकं अपिबत्) एक साथ ही पान कर जाता है, अथवा (सोमस्य पूर्णानि सरांसि) ऐश्वर्य से पूर्ण पक्ष के तीसों रात दिन (साकम् अपिबत्) एक साथ उपभोग या पालन करे और (एकया प्रतिधा) एक समान सावधानता से प्रत्येक व्यक्ति का पालन पोषण करते हुए तीसों रात दिन एक साथ, लगातार पालन करता रहे, किसी दिन असावधान न हो।

'काणुका'—काणुका कान्तकानीति वा। क्रान्तकानि इति वा, कणे-घातः इति वा, कणेहतः कान्तिहतः। [इच्छाकृतकानि इति वा। इन्द्रः सोमस्य कान्त इति वा प्रतिघात इति यावत्] तत्रैतद् याज्ञिका वेदयन्ते त्रिंशदुक्थपात्राणि माध्यंदिने सवने एकदेवतानि तान्येतस्मिन् काले एकेन प्रतिधानेन पिबन्ति) तान्यत्र सरांस्युच्यन्ते। त्रिंशदपरपक्षस्याहोरा-त्राखिंशत् पूर्वपक्षस्य चेति नैरुक्ताः। तथा एताश्चान्द्रमस्या आगामिन्य

आपो भवन्ति रश्मयस्ताः अपर पक्षे पिबन्ति यमक्षितिमक्षितयः पिबन्ति। तं पूर्वपक्ष आप्याययन्ति तथापि निगमा भवन्ति यथा देवा अंशुमाप्याययन्ति इति। निरु० अ० ५। ११॥

काणुका का अर्थ है कान्तियुक्त, दूरगत, वा कृतक, कृत्रिम, अथवा काणुका सूर्य का विशेषण है वह सोम (चन्द्र) का 'कान्त' प्रिय, या कान्तिप्रद है। अथवा कणेघात, कणी काटने अर्थ में अर्थात् कान्ति, वा इच्छा प्रतिघात अर्थ में 'काणुका' शब्द है। इस सम्बन्ध में याज्ञिक बतलाते हैं कि माध्यन्दिन सवन में तीस उक्थ पत्र एक ही देवता के निमित्त होते हैं उनको इस अवसर पर एक ही वार में पीते हैं। वे पात्र 'सरस' कहाते हैं। नैरुक्तों का मत है कि कृष्णपक्ष के तीस और शुक्लपक्ष के तीस दिन रात्रि होते हैं चन्द्रमा की आने वाली रश्मियों का नाम 'आपः' है। क्योंकि वे दूसरे से प्राप्त होती हैं। उन को कृष्ण पक्ष में सूर्य की किरणें स्वयं अपने में पुनः ग्रहण कर लेती हैं मानों पी जाती हैं। इसी प्रकार पूर्व शुक्लपक्ष में फिर पूर्ण कर देती हैं जिस प्रकार वेद वाक्य है (यथा देवाः० इत्यादि)।

अभि गन्धर्वमतृणदबुध्नेषु रजःस्वा।
इन्द्रो ब्रह्मभ्य इद्वृधे॥ ५॥ २९॥

भा०—(इन्द्रः) सूर्य वा विद्युत् जिस प्रकार (अबुध्नेषु) रोक थाम न करने वाले, बन्धनरहित (रजःसु) अन्तरिक्ष के प्रदेशों में स्थित (गन्धर्वम् अभि अतृणत्) जल को धारण करने वाले जलधर मेघ को आघात करता है तो वह (ब्रह्मभ्यः) अन्नों की (वृधे इत्) वृद्धि के लिये ही होता है उसी प्रकार (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहनन में समर्थ राजा (अबुध्नेषु रजःसु) अप्रबद्ध, अनाश्रित, लोकों वा प्रजा जनों में विद्यमान (गन्धर्वम्) भूमि को अपने वश कर लेने वाले प्रबल शत्रु को (अभि अतृणत्) आक्रमण कर के नाश करे तो वह (ब्रह्मभ्यः

वृधे इत्) धनों, अन्नों और विद्वान् पुरुषों की ही वृद्धि के लिये होता है। इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

निराविध्यद् गिरिभ्य आ धारयत्पक्वमोदनम्।
इन्द्रो बुन्दं स्वाततम् ॥ ६॥

भा०—(इन्द्रः) सूर्य वा विद्युत् जिस प्रकार (गिरिभ्यः) मेघों से (निर् अविध्यत्) जल गिराने को उन्हें खूब ताड़ित करता है, और (ओदनं) अन्न, धान्य को (पक्वम्) परिपक्व रूप में (आ धारयत्) परिपुष्ट करता है और अपने (सु-आततम्) खूब विस्तृत (बुन्दं) चमकते प्रकाश को भी फेंकता है उसी प्रकार (इन्द्रः) शत्रुहन्ता राजा, (गिरिभ्यः) मेघवत् अन्यों का माल निगल जाने वाले दुष्ट पुरुषों को सुधारने और उन से सत्य निकलवाने या हड़पा हुआ माल निकलवाने के लिये (निर् अविध्यत्) उन को खूब ताड़ना दे और उनसे (पक्वम्) पक्क (ओदनम्) वचन, शपथ, (oath) (आधारयत्) धारा या पक्की जुबान के रूप में कानूनवत् करा लेवे कि फिर वे ऐसा न करेंगे। और वह (सु आततम्) खूब विस्तृत (बुन्दं) भयकारी, उन को भेदने फोड़ने वाला, अपना सैन्य बल भी (आ धारयत्) सर्वत्र स्थापित करले।

'बुन्दं'—बुन्दो वा भिन्दो वा भयदो वा भासमानो द्रवतीति वा निरु० ६ । ३४ ॥

शतब्रध्न इषुस्तव सहस्रपर्ण एक इत्। यमिन्द्र चकृषे युजम् ॥७॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रुहन् ! तू (यम् युजं चकृषे) जिसको अपना सहायक बनाता है वह (तव इषुः) तेरा बाण वा शस्त्र-बल वा आज्ञा (शतब्रध्नः) सैकड़ों आश्रयों और बन्धन मर्यादाओं वाला और (सहस्रपर्णः) सहस्रों बलशाली, पत्रों, रथों वा पालक जनों से सम्पन्न और (एकः इत्) एक अद्वितीय, सब से अधिक उत्तम हो। (२) इसी प्रकार उस प्रभु परमेश्वर की 'इषु' महान् इच्छा, वा संकल्प सैकड़ों

'ब्रह्म' अर्थात् आदित्यों और आकाशों तक फैला हुआ और सहस्रों पर्ण अर्थात् पालन शक्तियों, किरणों से युक्त सूर्यवत् सत्यमय तेज से युक्त है और एक अद्वितीय, सर्वोपरि शासन है, जिससे अनेकों ब्रह्माण्ड चल रहे हैं।

तेन॑ स्तो॒तृभ्य॒ आ भ॑र॒ नृभ्यो॒ नारि॑भ्यो॒ अत्त॑वे।
स॒द्यो जा॒त ऋ॑भुष्ठिर ॥ ८ ॥

भा०—हे (ऋभु-स्थिर) सत्य न्याय से प्रकाशित विद्वानों द्वारा स्थिर राजन्! तू (सद्यः जातः) अति शीघ्र राजा रूप से प्रसिद्ध होकर (तेन) उस पूर्वोक्त शासनबल से (स्तोतृभ्यः नृभ्यः नारिभ्यः) स्तुति करने वाले विद्वान् नरों और नारियों के लिये (अत्तवे) भोजनार्थ (आ भर) उत्तम अन्न प्रदान कर। तेरे उत्तम शासन में सब नर नारी सुख से भोजन करें। (२) प्रभु समस्त सूर्यादि लोकों में व्यापक होने से 'ऋभु-स्थिर' है।

ए॒ता च्यौ॒त्नानि॑ ते कृ॒ता वर्षि॑ष्ठानि॒ परी॑णसा।
हृ॒दा वी॒ड्व॑धारयः ॥ ९ ॥

भा०—(एता) ये (च्यौत्नानि) सब बलशाली और (वर्षिष्ठानि) सुख जलादि वर्षाने वाले, बलवान् सैन्य (ते कृता) तेरे ही बनाये हैं। और तू उन को (वीडु परीणसा) महान् स्थिरतापूर्वक (हृदा अधारयः) सद्-हृदय से धारण कर। इसी प्रकार ये सब गतिशील, वर्षाकारक सूर्य पवन आदि प्रभु ने बनाये हैं, उन को वह (हृदा) मन के संकल्प मात्र से धारण करता और चलाता है।

विश्वेत्ता विष्णु॒राभ॑रदुरुक्र॒मस्त्वेषि॑तः।
श॒तं म॑हि॒षान्क्षी॑रपा॒कमो॑द॒नं व॑रा॒हमिन्द्र॑ एमु॒षम् ॥ १० ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य के ताप या प्रकाश से प्रेरित वायु महान् आकाश में विचरता समस्त मेघादि को ले आता है उसी प्रकार हे ऐश्वर्य-वन्! शत्रुहन्! (त्वा इषितः) तेरे से प्रेरित होकर (उरुक्रमः) बड़ा

पराक्रमी, (विष्णुः) व्यापक सामर्थ्यवान् पुरुष (ता विश्वा इत) उन २ समस्त पदार्थों को (आ अभरत) प्राप्त कराता है। वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् ही मानो (शतं महिषान्) सैकड़ों बलवान् पुरुषों को (क्षीरपाकम् ओदनम्) दूधमें पके भात के समान सात्विक भाव से प्राप्त ऐश्वर्य और (एमुषं) सब तरफ से ज्ञान संग्रह करने वाले (वराहम्) उत्तम वचन के वक्ता वा यज्ञ को भी प्राप्त करे। सूर्य भी अपरिमित बड़े २ मेघ, (क्षीर-पाकं) पानी से सेचित होकर पकने वाले अन्नादि धान्य और जल को लाने वाली वायु को धारण करता है।

तुविक्षं ते सुकृतं सुमयं धनुः साधुर्बुन्दो हिरण्ययः।
उभा ते बाहू रण्या सुसंस्कृत ऋदूपे चिदृदूवृधा॥ ११ ॥ ३० ॥

भा०—हे राजन्! (ते) तेरा (धनुः) धनुष, शस्त्रबल, (सु-मयं) उत्तम सुखकारक, (सु-कृतं) उत्तम कर्म करने वाला, (तुवि-क्षं) दूर तक बाणों के फेंकने वाला, बहुत से शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाला हो। (ते बुन्दः) तेरा तेज और शत्रु को भयप्रद बाण, (साधुः) उत्तम, लक्ष्य पर लगने हारा, (हिरण्ययः) सुवर्णमय और हित, रम्य हो। (ते बाहू) तेरी बाहुएं, शत्रुबाधक सेनाएं दोनों (रण्या) रमणीय, सुन्दर एवं रण-कुशल (सु-संस्कृते) उत्तम संस्कार से युक्त, अलंकृत और उत्तम अभ्यस्त, (ऋदूपे) वेग से शत्रु को गिराने वाले और (ऋदूवृधा चित्) पीडक जनों को वेधने, उन को काटने छांटने वाली हों। इति त्रिंशो वर्गः॥

[७८]

कुरुसुतिः काण्व ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ३ निचृद् गायत्री। २, ६—९ विराड् गायत्री। ४, ५ गायत्री। १० बृहती॥ दशर्चं सूक्तम्॥

पुरोळाशं नो अन्धस इन्द्र सहस्रमा भर।
शता च शूर गोनाम्॥ १॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हमें (अन्धसः) अन्न और प्राण धारण कराने वाले पदार्थ का बना (सहस्रम्) हज़ारों की संख्या में, अपरिमित वा बलकारक, (पुरोडाशं) आदरपूर्वक देने योग्य उत्तम खाद्य पदार्थ (आ भर) प्राप्त करा और स्वयं भी उस को धारण कर। इसी प्रकार हे (शूर) शत्रुनाशक, शूरवीर ! (गोनां शता च) भूमियों, गौवों और वाणियों के सैकड़ों, अपरिमित हमें प्रदान कर, तू भी उनका पालन पोषण कर।

आ नो भर व्यञ्जनं गामश्वमभ्यञ्जनम्।
सचा मना हिरण्यया ॥ २ ॥

भा०—तू (नः) हमें (गाम् अश्वं) गौ, अश्व और (अभ्यञ्जनम्) शत्रु पर जाने के साधन सवारी रथ, हाथी, आदि और विशेष रूप से जाने के साधन उत्तम रथ विमान आदि वा (व्यञ्जनं) विशेष चमकने वाले प्रकाश के उपाय, ज्ञान, आदि और नाना खाद्य पदार्थ, उत्तम गुण (नः) हमें (आ भर) प्राप्त करा। और (सचा) साथ ही (मना) मनन करने योग्य (हिरण्यया) हित और मनोहर वचन भी श्रवण करा।

व्यञ्जनं अभ्यञ्जनं—अञ्जू व्यक्तिम्रक्षणकान्तिगतिषु। रुधादिः।

उत नः कर्णशोभना पुरूणि धृष्णवा भर।
त्वं हि शृण्विषे वसो ॥ ३ ॥

भा०—(उत) और हे (धृष्णो) शत्रुपराजयकारिन्। तू (नः) हमें (पुरूणि) बहुत से (कर्ण-शोभना) कानों को सजाने के साधन, उत्तम वचन और कर्णकुण्डल आदि अलंकरण (नः आ भर) हमें प्राप्त करा और हमारे लिये तू धारण कर। हे (वसो) उत्तम विद्वन् ! ब्रह्मचारिन् बसाने हारे ! (त्वं हि शृण्विषे) तू ही हमारे वचन सुन और अपने हमें सुना।

नकीं वृधीक इन्द्र ते न सुषा न सुदा उत ।
नान्यस्त्वच्छूर वाघतः ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे सत्यतत्त्वदर्शिन् ! राजन् ! विद्वन्! (ते अन्यः) तुझ से दूसरा (न कीं वृधीकः) कोई और न बढ़ाने हारा, (न ते सुषाः) न तुझ से दूसरा कोई उत्तम न्यायपूर्वक विभागकारी, (उत) और (न सुदाः) न उत्तम दाता है (उत) और हे (शूर) वीर ! हे अज्ञान, दुर्गुणादि के नाशक ! (त्वत् अन्यः वाघतः न) तुझ से दूसरा कोई और विद्वान् ज्ञानधारक वाग्मी भी नहीं है ।

नकीमिन्द्रो निकर्त्तवे न शुक्रः परिशक्तवे ।
विश्वं शृणोति पश्यति ॥ ५ ॥ ३१ ॥

भा०—(इन्द्रः) यह ऐश्वर्यवान् वा यथार्थदर्शी प्रभु, स्वामी (नकीम् निकर्त्तवे) कभी भी अनादर और हिंसा करने योग्य नहीं। (शुक्रः) यह शक्तिमान् (न परि-शक्तवे) बल द्वारा पराजय करने के भी योग्य नहीं । वह (विश्वं शृणोति) सब कुछ सुनता, (विश्वं पश्यति) सब कुछ देखता है । साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥सोऽस्याध्यक्षः परमे व्योमन् । उप० ॥ इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

स मन्युं मर्त्यानामदब्धो नि चिकीषते ।
पुरा निदश्चिकीषते ॥ ६ ॥

भा०—(सः अदब्धः) वह अविनाशी, किसी से न मारा जाने वाला, अदण्डनीय (मर्त्यानां) मनुष्यों के (मन्युं) क्रोध को (नि चिकीषते) तुच्छ करके जानता है और (निदः) निन्दकों को (पुरा) पहले ही (नि चिकीषते) नीचा दिखा देता है ।

क्रत्व इत्पूर्णमुदरं तुरस्यास्ति विधतः ।
वृत्रघ्नः सोमपाव्नः ॥ ७ ॥

भा०—उस (तुरस्य) शीघ्रकारी, शत्रुहिंसक (विधतः) प्रजाओं को विविध प्रकार से पालन पोषण करने वाले, जगत् के कर्त्ता, (वृत्रघ्नः) विघ्नों, दुष्टों और मेघों को नाश करने वाले और (सोम-पाव्नः) जगत्, ऐश्वर्य, पुत्र शिष्यादि के पालक का (उदरम्) पेट, हृदय (क्रत्वः इत्) ज्ञान और कर्म से ही (पूर्णम्) पूर्ण रहता है ।

त्वे वसू॑नि॒ सङ्ग॑ता॒ विश्वा॑ च सोम॒ सौभ॑गा ।

सु॒दात्वप॑रिह्वृता ॥ ८ ॥

भा०—हे (सोम) सर्वप्रेरक ! सर्व-उत्पादक प्रभो ! (त्वे) तुझ में और तेरे अधीन ही (विश्वा वसूनि विश्वा च सौभगा) समस्त ऐश्वर्य और समस्त सुखदायक कल्याणकारी धन, (सं-गता) एकत्र हैं । तू उनको (अपरि-हृता) अकुटिल, सुप्राप्य (सु-दातु) सुखदायक बना कर प्रदान कर ।

त्वामिद्य॑व॒युर्मम॒ कामो॑ ग॒व्युर्हि॑रण्य॒युः । त्वाम॑श्व॒युरेष॑ते ॥ ९ ॥

भा०—हे प्रभो ! (मम कामः) मेरा अभिलाष (यवयुः) अन्नादि का इच्छुक (गव्युः) भूमि, वाणी, इन्द्रिय, ज्ञान रश्मि गवादि पशु आदि का इच्छुक और (हिरण्ययुः) हित, मनोहर वचन और सुवर्णादि धन का इच्छुक होकर (त्वाम् इत् एषते) तुझ ही चाहने लगता है । और मेरा अभिलाष (अश्वयुः) अश्वों को चाहता हुआ भी (त्वाम् इत् एषते) तुझे ही प्राप्त करता है ।

तवेदि॑न्द्रा॒हमा॒शसा॒ हस्ते॒ दात्रं॒ च॒ना द॑दे ।

दि॒नस्य॑ वा मघव॒न्त्सम्भृ॑तस्य वा पू॒र्धि यव॑स्य का॒शिना॑ १०॥३२॥

भा०—हे (इन्द्र) अन्नों के देने हारे! हे अन्नों के काटने हारे, हे अन्नों के धारण करने हारे ! (तव इत् आशसा) तेरी ही आज्ञा, आशा और कामना से मैं (हस्ते) हाथ में (दात्रं चन आददे) अन्न धान आदि खेती काटने का साधन वा दान करने योग्य धन ग्रहण करता हूं । हे (मघवन्) पूज्य धन के स्वामिन् ! तू (दिनस्य) काटे हुए (वा) अथवा (संभृतस्य)

एकत्र किये (यवस्य) जौ अन्न की (काशिना) मुट्ठी से (पूर्धि) पूर्ण कर। अथवा—हे (इन्द्र) सूर्य विद्युत् मेघादि ! जलप्रदक शक्ते ! तेरी आज्ञा से हाथ में यह (दात्रं) दरांति आदि कृषि के साधन लेता हूं तू काटे वा एकत्र किये अन्न को अपने प्रकाश, दीप्ति से पूर्ण पालन, पुष्ट कर। (२) ईश्वरपक्ष में हे प्रभो तेरा दिया तेरी आज्ञा वा उपदेश से लेता हूं। तू (काशिना) अपने ज्ञान के प्रकाश से, दिन वा प्रजा को सूर्य के समान, सुख हीन हतोत्साह वा पोष्य सेवक को भी अपने ज्ञान प्रकाश से पूर्ण, पालन कर। इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

[७९]

कृतुर्भार्गव ऋषिः ॥ सोमो देवता ॥ छन्दः—१, २, ६ निचृद् गायत्री। ३ विराड् गायत्री। ४, ५, ७, ८ गायत्री। ९ निचृदनुष्टुप् ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

अयं कृतुरगृभीतो विश्वजिदुद्भिदित्सोमः।
ऋषिर्विप्रः काव्येन ॥ १ ॥

भा०—(अयं) यह (कृतुः) जगत् का कर्त्ता, (अगृभीतः) किसी इन्द्रिय से कभी न ग्रहण करने योग्य, चक्षुरादि साधनों से अग्राह्य, अविज्ञेय, (विश्वजित्) समस्त 'विश्व' जगत् और प्राणि-संसार को अधीन रखने वाला, (उद्भित्) समस्त स्थावरों को पृथ्वी फोड़कर उत्पन्न करने वाला, (सोमः इत्) सब का उत्पादक होने से 'सोम' है। वही (विप्रः) सब ज्ञानों, कर्मों का दाता, विद्वान्, मेधावी (काव्येन) वेद-ज्ञान से (ऋषिः) सब सत्य ज्ञानों को देखने हारा है। (२) इसी प्रकार राजा विद्वान् भी कर्मों का कर्त्ता, सब का विजेता, उत्तम कर्म फल का उत्पादक 'उद्भित्' शत्रुओं को उखाड़ने वाला, (सोमः) सब का सञ्चालक, सब ऐश्वर्यों का अधिपति, विद्वान् वेदद्वारा सत्य न्याय का द्रष्टा हो। शरीर में वीर्य

वा प्राण सोम है, वह कर्म का कर्त्ता, इन्द्रियजित् (उद्भित्)ऊर्ध्व मार्ग ब्रह्मरन्ध्र को भी भेदन करने में समर्थ है।

अभ्यूर्णोति यन्नग्नं भिषक्ति विश्वं यत्तुरम्।

प्रेमन्धः ख्यन्निः श्रोणो भूत् ॥ २ ॥

भा०—(यत्) जो वह पूर्वोक्त सोम, ऐश्वर्यवान् (नग्नं अभि ऊर्णोति) नग्न, वस्त्ररहित को वस्त्रादि से आच्छादित करता है। (यत) जो (तुरं विश्वम्) सब रोगी जन को ओषधि रसवत् (भिषक्ति) रोग से रहित करता है वह (अन्धः ईम् प्रख्यत्) सब के प्राण-जीवन का पोषण कारक होकर इस विश्व को अच्छी प्रकार देखता और उपदेश करता है, । श्रोणः (निः भूत्) सर्वश्रोता होकर सर्वत्र समर्थ रहता है। अथवा (अन्धः प्र ख्यत, श्रोणः निर्भूत्) अन्ध अर्थात् अचक्षु रह कर भी देखता, और पद आदि से पंगु होकर भी सर्वत्र जाता है। यह योजना ईश्वर पक्ष में ठीक है 'अपाणिपादो जवनो गृहीतः पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ॥-उपनिषत् ॥

अथवा वह नंगे को वस्त्र पहनाता, रोगी को चंगा करता है, इसी कारण (अन्धः प्रख्यत) यह दृष्टि-चेतनादि से रहित देह भी देखने में समर्थ होता है और यह प्राकृतिक जड़ जगत् वा देह (श्रोणः) पंगु अर्थात् शक्ति रहित होकर भी सर्वत्र जाने में समर्थ होता है। यह ईश्वर सोम या चेतन जीव की महिमा है।

त्वं सोम तनूकृद्भ्यो द्वेषोभ्योऽन्यकृतेभ्यः।

उरु यन्तासि वरूथम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (सोम) सर्वप्रेरक ! सन्मार्ग में संचालक ! ऐश्वर्यवन् ! (त्वं) तू (तनूकृद्भ्यः) राष्ट्र को क्षीण करने वाले और (अन्यकृतेभ्यः द्वेषोभ्यः) अन्य, शत्रुओं से किये, उन से प्रेरित द्वेषों से भी (वरूथं) बचाने वाले महान् बल का (उरु यन्तासि) विशाल गृहवत् नियन्ता है।

त्वं चित्ती तव दक्षैर्दिव आ पृथिव्या ऋजीषिन्।
यावीरघस्य चिद्द्वेषः ॥ ४ ॥

भा०—हे (ऋजीषिन्) प्रजा जनों को सन्मार्ग में चलाने हारे! हे शत्रुओं को भूनने, संतप्त करने वाले सैन्य के सञ्चालक! (त्वं) तू (तव) तेरे अपने (चित्ती) ज्ञान, बुद्धि और (दक्षैः) बलों से, (दिवः पृथिव्याः आ) आकाश और पृथिवी से आने वाले (अघस्य चिद् द्वेषः यावीः) शत्रु के सब द्वेष भावों को दूर कर।

अर्थिनो यन्ति चेदर्थं गच्छानिद्ददुषो रातिम्।
ववृज्युस्तृष्यतः कामम् ॥ ५ ॥ २३ ॥

भा०—(चेद्) यदि (अर्थिनः) धन के इच्छुक वा धन के स्वामी लोग (अर्थं यन्ति) धन को प्राप्त करते हैं तो उन को चाहिये कि वे (ददुषः रातिं गच्छान्) दानशील पुरुष के दानशीलता को भी प्राप्त हों, वे दान भी किया करें। अथवा यदि वे धन पाते हैं तो भी वे किसी दानी के दान को ही प्राप्त करते हैं, इसलिये भी उन को चाहिये कि वे भी (तृष्यतः कामम् ववृज्युः) किसी पियासे अर्थार्थी की अभिलाषा को पूर्ण किया करें। उस की प्यास को बुझाया करें। इसी प्रकार विद्यार्थी यदि विद्या प्राप्त करते हैं किसी विद्यादाता का दिया ज्ञान ही प्राप्त करते हैं, उन को चाहिये वे भी अन्य को ज्ञान पिपासा का शमन करें। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

विदद्यदी सरमा रुग्णमद्रेर्महि पाथः पूर्व्यं सध्र्यक्कः।
अग्रं नयत्सुपद्यक्षराणामच्छा रवं प्रथमा जानती गात् ॥ ६ ॥

भा०—(यद्) जो (पूर्व्यं नष्टम्) पहले के गुप्त या नष्ट हुए को (विदद्) पाता या जान लेता है, उसे चाहिये कि वह (ईम्) उस ज्ञान को (ऋतायुम्) सत्य ज्ञान के अभिलाषी पुरुष के प्रति (ईरयत्) उपदेश करे। वह मानो, (ईम्) उसको (अतीर्णम्) अमृत (आयुः) नया जीवन (प्रतारीत्) प्रदान करता है। विद्या दान करना भी नवजीवन देने के समान है।

सुशेवो नो मृळयाकुरदृप्तक्रतुरवातः। भवा नः सोम शं हृदे ॥७॥

भा०—हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः) हमें (सु-शेवः) उत्तम सुखदाता, (मृडयाकुः) दयाशील, (अदृप्त-क्रतुः) ज्ञान और कर्म पर भी गर्व न करने वाला और (अवातः) प्रचण्ड वायु के समान धक्के न लगाने वाला, होकर (नः हृदे शं भव) हमारे हृदय के लिये शान्तिदायक हो ।

मा नः सोम सं वीविजो मा वि बीभिषथा राजन्।

मा नो हार्दि त्विषा वधीः ॥ ८ ॥

भा०—हे (राजन्) तेजस्विन् शासन करने हारे राजन् ! हे (सोम) ऐश्वर्यवन् ! शासक ! तू (नः मा सं वीविजः) हमें मत उद्विग्न कर, न परस्पर एक दूसरे से भय करा । (मा वि बीभिषथाः) विविध प्रकार से भी भयभीत मत कर, और (त्विषा) कान्तियुक्त तीक्ष्ण शस्त्र वा तीक्ष्णता से ही (नः हार्दि मा वधीः) हमारे हृदयों पर आघात मत कर ।

अव यत्स्वे सधस्थे देवानां दुर्मतीरीक्षे ।

राजन्नप द्विषः सेध मीढ्वो अप स्रिधः सेध ॥ ९॥ ३४ ॥

भा०—(यत्) जब तू (स्वे) अपने और (देवानां) मनुष्यों के (सध-स्थे) एकत्र मिलकर बैठने के लिये विचार स्थल में (दुर्मतीः) दुष्ट चित्त वालों के दुर्व्यवहारों की (अव ईक्षे) न्यायपूर्वक विवेक दृष्टि से विवेचना करे तब हे (राजन्) राजन् ! तू (द्विषः अप सेध) द्वेष के भावों और द्वेषी जनों को दूर कर और (स्रिधः अप सेध) हिंसा के भावों और हिंसकों को भी दूर कर । इति चतुस्त्रिंशो वर्गः ॥

[८०]

एकद्यूर्नौधस ऋषिः ॥ १—९ इन्द्रः । १० देवा देवता ॥ छन्दः—१ विराड् गायत्री । २, ३, ५, ८ निचृद् गायत्री । ४, ६, ७, ९, १० गायत्री ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

नह्य१न्यं ब॒ळाक॑रं मर्डि॒तारं॑ शतक्रतो । त्वं न॑ इन्द्र मृळय ॥१॥

भा०—हे (शत-क्रतो) अपरमित ज्ञानवन् ! (अन्यं) तुझ से दूसरे को मैं (मर्डितारं नहि आकरम्) सुखदाता करके नहीं जानता (बळा) यह मैं सत्यपूर्वक कहता हूं। (अतः त्वं) तू (नः इन्द्र मृडय) हमें हे ऐश्वर्यवन् ! सुखी कर ।

यो नः॒ शश्व॑त्पु॒राविथामृ॑ध्रो॒ वाज॑सातये ।
स त्वं न॑ इन्द्र मृळय ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो (नः) हमें (शश्वत्) निरन्तर, सदा (पुरा) पूर्व भी, (अमृधः) स्वयं अन्यों की हिंसा न करने वाला और स्वयं अहिंसित होकर (वाज-सातये) ऐश्वर्य विभाग करने के लिये (नः आविथ) हमें प्राप्त होता है, (सः) वह (त्वं) तू हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् (नः मृडय) हमें सुखी कर ।

किम॒ङ्ग र॑ध्र॒चोद॑नः सुन्वा॒नस्या॑वि॒तेद॑सि ।
कु॒वित्स्वि॑न्द्र णः॒ शकः॑ ॥ ३ ॥

भा०—(अङ्ग) हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (रध्रचोदनः) अपने आराधक को सन्मार्ग पर चलाने हारा ही (किम्) क्यों बल्कि (सुन्वानस्य) उपासक का (अविता इत् असि) रक्षक ही है तू (नः कुवित् शकः) हमारा बहुत कुछ कल्याण करने में समर्थ है ।

इन्द्र॒ प्र णो॒ रथ॑मव प॒श्चाच्चि॒त्सन्त॑मद्रिवः । पु॒रस्ता॑देनं मे कृधि ४

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् तू (नः) हमारे (रथम् प्र अव) रमणकारक सुखप्रद रथवत् देह की अच्छी प्रकार रक्षा कर । (पश्चात् चित् सन्तम् मे एनं) पिछड़े हुए भी इस मेरे रथ को (पुरस्तात् कृधि) आगे कर। सफलता के मार्ग पर यदि मैं पिछड़ूं तो तू मुझे आगे बढ़ा ।

हन्तो॒ नु किमा॑ससे प्रथ॒मं नो॒ रथं॑ कृधि ।
उ॒प॒मं वा॑ज॒यु श्रवः॑ ॥ ५ ॥ ३५ ॥

भा०—(हन्तो नु) भला अब (किम् आससे) क्यों विलम्ब करता है ? (नः रथं) हमारे रथ को (प्रथमं कृधि) सबसे मुख्य कर। और तेरा (वाजयु श्रवः) ज्ञानयुक्त श्रवणयोग्य उपदेश (नः उप-मं) हमारे सदा समीप रहे। अथवा हमारे बलैश्वर्य की कामना से युक्त (श्रवः) अन्य प्रार्थना वचन तेरे समीप है। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

अवा॑ नो वाज॒युं रथं॑ सु॒करं॑ ते॒ किमित्परि॑।
अ॒स्मान्त्सु जि॒ग्युष॑स्कृधि ॥ ६ ॥

भा०—हे राजन् ! प्रभो ! स्वामिन् ! तू (नः) हमारे (वाजयुं) बल, वेग, वीर्य, ऐश्वर्य से युक्त (रथं) रथवत् देह की (अव) रक्षा कर। (इत् परि ते सुकरं किम्) इससे अधिक और तेरे लिये क्या उत्तम और सुखपूर्वक करने का कार्य है ? तू (अस्मान्) हमें (जिग्युषः सु कृधि) विजयी भली प्रकार कर।

इन्द्र॒ दृह्य॑स्व॒ पूर॑सि भ॒द्रा त॑ एति निष्कृ॒तम्।
इ॒यं धीर्ऋ॒त्विया॑वती ॥ ७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (दृह्यस्व) दृढ़ हो, और तू(भद्रा पूः असि) सुखदायी, पुर, प्रकोट या दुर्ग के समान पालक, रक्षक है। (ते) तेरा (इयं) यह (ऋत्वियावती) काल पर फल देने वाला (धीः) कर्म भी (निष्कृतं एति) सफलता को प्राप्त होता है।

मा सी॑मव॒द्य आ भा॑गु॒र्वी काष्ठा॑ हि॒तं धन॑म्।
अ॒पावृ॑क्ता अर॒त्नयः॑ ॥ ८ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् राजन् ! (सीम्) सब ओर से भी (अवद्ये) निन्दा योग्य बुरे कार्य में तू हमें (मा भाग्) मत डाल। (ऊर्वी काष्ठा) सीमा बहुत दूर है, वहां (धनं हितम्) धन अर्थात् प्राप्तव्य पदार्थ रक्खा है। (अरत्नयः) दुःखदायी शत्रु (अपावृक्ताः) दूर हों।

तुरीयं नाम यज्ञियं यदा करस्तदुश्मसि ।
आदित्पतिर्न ओहसे ॥ ९ ॥

भा०—(यदा) जब तू (तुरीयं) चतुर्थ, सर्वश्रेष्ठ, (यज्ञियं) सर्वोपास्य (नाम) स्वरूप को (करः) प्रकट करता है तब हम (तत् उश्मसि) उसी परम स्वरूप की कामना करते हैं । (आत् इत्) अनन्तर ही तू (नः पतिः) हमारा पालक होकर हमें (ओहसे) अपने में ले लेता है । जाग्रत्आदि दशा से परे आत्मा का तुरीय स्वरूप है, वह अमात्र है। उसी के दर्शन से परम कल्याण है ।

अवीवृधद्वो अमृता अमन्दीदेकद्यूर्देवा उत याश्च देवीः ।
तस्मा उ राधः कृणुत प्रशस्तं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् १०।३६।८

भा०—हे (अमृताः देवाः) अमृतस्वरूप, दीर्घायु विद्वान्गण, (उत) और (याः च देवीः) जो आप लोग विदुषी नारियां हो । आप सबको (एक-द्यूः) एकमात्र, अद्वितीय प्रकाशक प्रभु ही (अमन्दीत्) आनन्दित करता है और वही (वः अवीवृधत्) आप लोगों की वृद्धि करता है । (तस्मा उ प्रशस्तं राधः कृणुत) उस की ही सर्वोत्तम आराधना किया करो और (प्रातः) प्रभात में (मक्षु) शीघ्र ही, सबसे प्रथम (धियावसुः) ज्ञान और कर्म का धनी वही प्रभु (जगम्यात्) तुम्हें प्राप्त हो, उसी की प्रथम उपासना करो । इति षट्त्रिंशो वर्गः ॥ इत्यष्टमोऽनुवाकः ॥

[८१]

कुसीदी काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ५, ८ गायत्री । २, ३, ६, ७ निचृद् गायत्री । ४, ९ विराड् गायत्री ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

आ तू न इन्द्र क्षुमन्तं चित्रं ग्राभं सङ्गृभाय ।
महाहस्ती दक्षिणेन ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (महा-हस्ती) बड़े हाथ वाला

है। तू (दक्षिणेन) दायें हाथ से (नः) हमें (द्युमन्तं) कीर्त्तिजनक, अन्नादि से सम्पन्न (चित्रग्राभं) नाना प्रकार का ग्रहण करने योग्य धन (सं गृभाय) संग्रह कर।

विद्मा हि त्वा तुविकूर्मिं तुविदेष्णं तुवीमघम्।

तुविमात्रमवोभिः ॥ २ ॥

भा०—हम (त्वा) तुझे (अवोभिः) रक्षा, प्रीति आदि उत्तम गुणों करके (तुवि-कूर्मि) बहुत कर्म करने में समर्थ (तुवि-देष्णं) बहुत से धन देने वाला और (तुवि-मात्रम्) बहुत धन राशि का स्वामी भी (विद्महि) जानते हैं।

नहि त्वा शूर देवा न मर्तासो दित्सन्तम्।

भीमं न गां वारयन्ते ॥ ३ ॥

भा०—हे (शूर) शूरवीर! सब दुष्टों के दलन करने हारे! (गां न भीमं) बड़े बैल के समान भयंकर (न हि देवाः न मर्त्तासः) न दानशील विद्वान् और न साधारण मनुष्य ही (दित्सन्तम् वारयन्ते) दान देने की इच्छा वाले (त्वा) तुझको रोक सकते हैं। प्रत्युत जब देना चाहे तो तेरे को रोकने वाला कोई नहीं।

एतो न्विन्द्रं स्तवामेशानं वस्वः स्वराजम्।

न राधसा मर्धिषन्नः ॥ ४ ॥

भा०—(एत उ नु) आओ भाइयो! (वस्वः ईशानं) धन के स्वामी, (स्व-राजं) अर्थात् 'स्व' अपने ऐश्वर्य से दीप्तिमान्, धनाधिपति, (इन्द्रं) प्रभु की (स्तवाम) स्तुति करें। कोई भी (राधसा) धन के कारण (नः मर्धिषत्) हमें पीड़ित न करे।

प्र स्तोषदुप गासिषच्छ्रवत्साम गीयमानम्।

अभि राधसा जुगुरत् ॥ ५ ॥ ३७ ॥

भा०—वह प्रभु ही हमें (प्र स्तोषत्) उत्तम स्तुति कराता है (उप

गासिषत्) उपासना या गान कराता है और (गीयमानं साम श्रवत्) गाये गये साम को सुनता है। वही (राधसा) धनैश्वर्य द्वारा हमें (अभि-जुगुरत्) उद्यम कराता है। इति सप्तत्रिंशो वर्गः ॥

आ नो भर दक्षिणेनाभि सव्येन प्र मृश।
इन्द्र मा नो वसोर्निर्भाक् ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (नः) हमें (दक्षिणेन आ भर) दायें हाथ से ऐश्वर्य दान कर और (सव्येन अभि प्र मृश) बायें से भी उत्साहित कर। तू (नः) हमें (वसोः मा निर्भाक्) धन से वञ्चित मत कर।

उप क्रमस्वा भर धृषता धृष्णो जनानाम्।
अदाशूष्टरस्य वेदः ॥ ७ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! तू (उप क्रमस्व) उद्यम कर! हे (धृष्णो) शत्रु-पराजयकारिन्! तू (धृषता) शत्रु पराजय कारक बल से, (जनानां) मनुष्यों के बीच में (अदाशूः-तरस्य वेदः) अति अधिक कंजूस के धन को (आ भर) ले ले।

इन्द्र य उ नु ते अस्ति वाजो विप्रेभिः सनित्वः।
अस्माभिः सु तं सनुहि ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यः उ नु ते वाजः) जो तेरा धनैश्वर्य (सनित्वः अस्ति) दान देने योग्य है (तं) उसे तू (अस्माभिः विप्रेभिः) हम विद्वान् मेधावी पुरुषों के साथ मिलकर (सु सनुहि) उत्तम कार्य में लगा।

सद्योजुवस्ते वाजा अस्मभ्यं विश्वश्चन्द्राः।
वशैश्च मक्षू जरन्ते ॥ ९ ॥ ३८ ॥ ५ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! स्वामिन्! (ते वाजाः) तेरे ऐश्वर्य, (विश्व-चन्द्राः) सब संसार को आह्लादित करने वाले हैं। वे (अस्मभ्यं सद्यो-जुवः) हमें शीघ्र ही प्राप्त हों। सब लोग (वशैः च मक्षु जरन्ते) नाना

कामनाओं से प्रेरित होकर तेरी स्तुति करते हैं । इत्यष्टात्रिंशो वर्गः ॥ इति पञ्चमोऽध्यायः ॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

[८२]

कुसीदी काण्व ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ७, ९ निचृद् गायत्री । २, ५, ६, ८ गायत्री । ३, ४ विराड् गायत्री ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

आ प्र द्रव परावतोऽर्वावतश्च वृत्रहन् । मध्वः प्रति प्रभर्मणि ॥१॥

भा०—हे (वृत्रहन्) दुष्टों के नाश करने हारे ! तू (प्रभर्मणि) उत्तम ऐश्वर्य संग्रह करने वालों से युक्त इस राष्ट्र में या उत्तम २ पदार्थों के संग्रह करने के कार्य के निमित्त (मध्वः प्रति) मधुर, सुखकारी अन्नों को प्राप्त करने के लिये (परावतः अर्वावतः च) दूर और समीप के देशों से वा उन देशों को (आ द्रव प्र द्रव) आया और जाया कर । व्यापार से सब सुखकारी पदार्थों का आयात निर्यात किया कर ।

तीव्राः सोमास आ गहि सुतासो मादयिष्णवः ।
पिबा दधृग्यथोचिषे ॥ २ ॥

भा०—(तीव्राः) वेग में तीव्र, कर्मकुशल (सोमासः) उत्तम शासकगण, (मादयिष्णवः) प्रजा को अति प्रसन्न करनेवाले लोग (सुतासः) अभिषिक्त हों । तू (आगहि) आ और (यथा ओचिषे) जैसे भी समवाय बना सके वैसे (दधृक्) शत्रु को पराजय करके (पिब) अपने राष्ट्र का पालन कर उसका भोग कर । अथवा—(तीव्राः) क्षुधानिवर्त्तन में तीव्र गुणकारी, तृप्तिकारक ये अन्न के पदार्थ बने हैं उनको तू खा, पी ।

इषा मन्दस्वादु तेऽरं वराय मन्यवे । भुवत्त इन्द्र शं हृदे ॥३॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (इषा) अन्न से (मन्दस्व)

तृप्ति कर। क्योंकि (वराय मन्यवे) श्रेष्ठ ज्ञान के लिये यह अन्न ही (अरं) अति गुणकारी और उपयोगी है। हे ऐश्वर्यवन्! यह अन्न (ते हृदे शम्) तेरे हृदय को भी शान्ति देने वाला हो।

आ त्वशत्रवा गहि न्युक्थानि च हूयसे।
उपमे रोचने दिवः ॥ ४ ॥

भा०—हे (अशत्रो) अजातशत्रो! शत्रुरहित! तू (आगहि) आ। (दिवः उप-मे) सूर्य की उपमा योग्य (रोचने) अति तेजस्वी, पद पर तू (उक्थानि) नाना उत्तम स्तुति-वचनों द्वारा आह्वान और स्तवन किया जाता है।

तुभ्यायमद्रिभिः सुतो गोभिः श्रीतो मदाय कम्।
प्र सोम इन्द्र हूयते ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—(अद्रिभिः सुतः गोभिः श्रीतः सोमः मदाय) जिस प्रकार पाषाण खण्डों या कखल आदि से निकाला और गोरसों से मिला हुआ सोमादि ओषधि रस शरीर में हर्ष सुखादिजनक, रोग-नाशक होता है, उसी प्रकार (अद्रिभिः सुतः) आकाश में मेघों द्वारा उत्पादित वा चक्की, कखलादि से अन्न रूप से और भूमि में (अद्रिभिः) पर्वतों द्वारा उत्पादित रत्नादि रूप से और (गोभिः श्रीतः) भूमियों या सूर्य की किरणों के विशेष गुणों से परिपक्व या मिश्रित अन्न तथा (गोभिः श्रीतः) वाणियों से से प्रशंसित ज्ञान वा किरणों से युक्त मणि आदि भी (अयम्) यह (सोमः) अन्नादि वा रत्नादि ऐश्वर्य (मदाय) अधिक आनन्द या हर्ष के लिये ही (तुभ्यं प्र हूयते) तुझे आदरपूर्वक दिया जाता है। इति प्रथमो वर्गः॥

इन्द्र श्रुधि सु मे हवमस्मे सुतस्य गोमतः।
वि पीतिं तृप्तिमश्नुहि ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (मे हवम्) मेरी प्रार्थना वा उपदेश को भली प्रकार (सु श्रुधि) श्रवण कर। तू (अस्मे) हमारे (गोमतः

सुतस्य) गो-रस दुग्धादि से मिश्रित अन्न तथा भूमि सहित उत्पन्न ऐश्वर्य का (पीतिम्) पान, उपभोग आदि तथा (तृप्तिम्) तृप्ति को भी (वि अश्नुहि) विविध प्रकार से प्राप्त कर ।

य इन्द्र चमसेष्वा सोमश्चमूषु ते सुतः । पिबेदस्य त्वमीशिषे॥७॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (यः) जो (ते चमसेषु) तेरे पात्रों में या पात्रवत् प्रजाजनों में (सोमः) अन्न और उत्पन्न ऐश्वर्य (आसुतः) उत्पन्न होता है और जो (ते चमूषु) तेरी सेनाओं के आश्रय पर (आ सुतः) प्राप्त होता है, (अस्य त्वम्) इसका तू (ईशिषे) स्वामी है । इसलिये तू (अस्य पिब इत्) उसका अवश्य पालन या उपभोग कर । आध्यात्म में सोम वीर्य 'चमसों' अर्थात् देह के प्रति सैलों या कोष्ठों में या 'चमू' अर्थात् भोक्तृ रूप इन्द्रियों में होता है। उसका स्वामी आत्मा है।

यो अप्सु चन्द्रमा इव सोमश्चमूषु दद्दशे ।
पिबेदस्य त्वमीशिषे ॥ ८ ॥

भा०—(यः) जो (सोमः) शासन बल (अप्सु चन्द्रमाः इव) अन्तरिक्ष में चन्द्रमा के समान आह्लादक और (चमूषु) सेनाओं के ऊपर उनका (सोमः) शासक, आज्ञापक के समान (दद्दशे) दिखाई देता है है तू (अस्य पिब इत्) उसका अवश्य उपभोग कर, (त्वम् अस्य ईशिषे) तू ही उसका स्वामी है। अध्यात्म में चमू, ८ प्राण हैं। यज्ञ में ये चमू ८ ग्रह हैं।

यं ते श्येनः पदाभरत्तिरो रजांस्यस्पृतम् ।
पिबेदस्य त्वमीशिषे ॥ ९ ॥ २ ॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! (यम्) जिस सोम अर्थात् ऐश्वर्य को (श्येनः) बाज़ के समान आक्रमण करने वाला पराक्रमी सेनापति (रजांसि तिरः) समस्त शत्रु जनों को पराजित करके (अस्पृतम्) शत्रुओं से अछूते या अनुपयुक्त रूप में ही (पदा) पदाति सैन्य द्वारा (ते आ भरत्).

तेरे लिये ले आता है (अस्य त्वम् ईशिषे) उसका तू ही स्वामी है। तू ही उसका (पिब इत्) उपभोग कर। इति द्वितीयो वर्गः ॥

[८३]

कुसीदी काण्व ऋषिः ॥ विश्वे देवताः ॥ छन्दः—१, २, ५, ६, ९ गायत्री। ३ निचृद गायत्री। ४ पादनिचृद गायत्री। ७ आर्ची स्वराड गायत्री। ८ विराड गायत्री।

देवानामिदवो महत्तदा वृणीमहे वयम्। वृष्णामस्मभ्यमूतये १

भा०—(वयम्) हम लोग (वृष्णाम्) जलों के वर्षक (देवानाम्) दीप्तिमान् किरणों के समान (वृष्णाम्) बलवान्, सुखदायक और (देवानाम्) तेजस्वी, व्यवहारकुशल और विजयेच्छुक वीरों और ज्ञानप्रकाशक विद्वानों के (इत्) ही (महत् अवः) बड़े भारी ज्ञान, रक्षा बल, प्रेम आदि की (अस्मभ्यम् ऊतये) हमारी अपनी रक्षा के लिये (वृणीमहे) चाहते हैं, उसे ही सबसे अच्छा मानते हैं।

ते नः सन्तु युजः सदा वरुणो मित्रो अर्यमा।
वृधासश्च प्रचेतसः ॥ २ ॥

भा०—(वरुणः) वरण करने योग्य, वृत राजा वा सभापति, (मित्रः) प्रजा का स्नेही, (अर्यमा) दुष्टों का नियन्ता, न्यायशील ये सब (प्र-चेतसः) उत्तम चित्त वाले, उत्तम ज्ञानसम्पन्न और (वृधासः च) बढ़ाने और दुष्टों का मूलोच्छेद करने वाले (युजः सन्तु) सहायक हों।

अति नो विष्पिता पुरु नौभिरपो न पर्षथ। यूयमृतस्य रथ्यः॥३॥

भा०—हे (ऋतस्य रथ्यः) महारथियोंवत् सत्य ज्ञान और न्याय के प्राप्त कराने वाले जनो ! आप लोग (नः) हमें (नौभिः अपः न) नौकाओं से जलों के समान (विष्पिता) विविध रूपों से प्राप्त शत्रुओं के बलों वा कर्म-बन्धनों से (अति पर्षथ) पार करो।

वामं नो अस्त्वर्यमन्वामं वरुण शंस्यम् । वामं ह्यावृणीमहे ॥४॥

भा०—हे (अर्यमन्) दुष्टों के नियन्तः न्यायकारिन् ! हे (वरुण) सबसे वरणीय ! (नः वामं अस्तु) हमारा उत्तम धन हो । और (वामं शंस्यं अस्तु) हमारा धन प्रशंसनीय हो । और हम (वामं हि आवृणीमहे) उत्तम, सेवन करने योग्य धन वा सुख की ही याचना करते हैं ।

वामस्य हि प्रचेतस ईशानासो रिशादसः ।
नेमादित्या अघस्य यत् ॥ ५ ॥ ३ ॥

भा०—हे (प्रचेतसः) उत्कृष्ट चित्त वाले ! हे (रिशादसः) हिंसक जनों को उखाड़ फेंकने वाले वीर जनो ! आप लोग (वामस्य) उत्तम, सेवने योग्य धन के ही (ईशानासः) स्वामी हो । हे (आदित्याः) सूर्य के समान तेजस्वी राजा वा माता तुल्य भूमि के पुत्रवत् सेवक जनो ! (यत्) जो धन (अघस्य) पाप का है (न ईम् ईशानासः) आप लोग उसके स्वामी न हों । हम भी ऐसे धन की कामना नहीं करते । सदा पुण्य की कमाई हमें प्राप्त हो । इति तृतीयो वर्गः ॥

वयमिद्वः सुदानवः क्षियन्तो यान्तो अध्वन्ना ।
देवा वृधाय हूमहे ॥ ६ ॥

भा०—हे (सुदानवः) उत्तम दानशील (देवाः) नाना उत्तम कामनाओं वाले, व्यवहारकुशल पुरुषो ! (वयम् इत्) हम ही (क्षियन्तः) निवास करते हुए और (अध्वन् यान्तः) मार्ग में जाते हुए भी (वः) आप लोगों को (वृधाय) वृद्धि के लिये (हूमहे) बुलाते हैं ।

अधि न इन्द्रैषां विष्णो सजात्यानाम् । इता मरुतो अश्विना ॥७॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (विष्णो) व्यापक सामर्थ्य वाले ! हे (अश्विना) उत्तम अश्ववत् इन्द्रियों के स्वामियो ! हे (मरुतः) वायुवत् बलवान्, विद्वान् पुरुषो वा व्यापारी जनो ! (सजात्यानां एषां)

समान जाति वाले इन में से (नः) हमें भी (अधि इत्) जानो और अपने अधीन लेवो ।

प्र भ्रा॒तृ॒त्वं सु॑दानवोऽध॑ द्वि॒ता स॑मा॒न्या । मा॒तुर्गर्भे॑ भरामहे ॥८॥

भा०—हे (सु-दानवः) उत्तम कल्याणजनक दान देने वाले पुरुषो! हम लोग (मातुः गर्भे) माता के गर्भ में रहकर जिस प्रकार (भ्रातृत्वं) भाईपन और (समान्या द्विता) समान रूप से मान आदर करने योग्य 'द्विता' अर्थात् युगल भाव को प्राप्त करते हैं उसी प्रकार (मातुः) ज्ञानोपदेष्टा ब्रह्म-ज्ञान के दाता, विद्या जन्म द्वारा उत्पादक आचार्य और सर्वोत्पादक सर्वपोषक माता भूमि के (गर्भे) शासन, विद्या-ग्रहणकाल में रहते हुए परस्पर के (भ्रातृत्वं) भ्रातृत्व, और (समान्या द्विता) समानों के योग्य दो-पन या युगल भाव को (प्र भरामहे) उत्तम रीति से धारण करें ।

यू॒यं हि ष्ठा सु॑दानव॒ इन्द्र॑ज्येष्ठा अ॒भिद्य॑वः ।
अधा॑ चि॒द्व उ॒त ब्रु॑वे ॥ ९ ॥ ४ ॥

भा०—हे (सुदानवः) उत्तम दानशील पुरुषो ! (यूयं) आप लोग (इन्द्र-ज्येष्ठाः) अन्न देने वाले, शत्रु के नाशक, ऐश्वर्यवान् और सत्य ज्ञानदर्शी को अपना ज्येष्ठ मानने वाले और (अभि-द्यवः) स्वयं तेजस्वी, (स्थ हि) अवश्य होवो । (अध चित् उत) और भी मैं (वः ब्रुवे) आप लोगों को उपदेश करूं । इति चतुर्थो वर्गः ॥

[८४]

उशना काव्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ पादनिचृद् गायत्री । २ विराड् गायत्री । ३, ६ निचृद् गायत्री । ४, ५, ७—९ गायत्री ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

प्रेष्ठं॑ वो॒ अति॑थिं स्तु॒षे मि॒त्रमि॑व प्रि॒यम् । अ॒ग्निं रथं॒ न वेद्य॑म् १

भा०—मैं (वः) आप लोगों के प्रति और आप लोगों में से (प्रेष्ठं) सब से अधिक, सर्वप्रिय, (अतिथिम्) अतिथिवत् पूज्य (मित्रम्

इव) मित्र के समान (प्रियम्) प्रीतिकारक, (रथं न) रथ के समान (वेद्यम्) धन जन, देशान्तर प्राप्त करने के उत्तम साधन वा उपदेश वचन के समान रम्य और ज्ञानप्रद (अग्निं) अग्निवत् अग्रणी, नायक, विद्वान् पुरुष की (स्तुषे) स्तुति करता हूं। उक्त गुणों से युक्त पुरुष को नायक वा अग्नि पद के लिये प्रस्तुत करता हूं। अग्रणी नायक में इन गुणों का होना आवश्यक है कि वह सर्वप्रिय, पूज्य, सर्वस्नेही और लक्ष्य तक पहुंचाने में समर्थ हो।

क॒विमि॑व॒ प्रचे॑तसं॒ यं दे॒वासो॒ अध॑ द्वि॒ता। नि मर्त्ये॑ष्वाद॒धुः॥२॥

भा०—(यम्) जिस के (कविम् इव प्रचेतसम्) विद्वान् मेधावी पुरुष के समान उत्तम ज्ञानवान् पुरुष को (देवासः) विद्वान् जन (मर्त्येषु) मनुष्यों के बीच (द्विता नि आदधुः) दो प्रकार से स्थापित करते हैं। पूज्य रूप से और कार्यसञ्चालक रूप से। इसी प्रकार लोक में अग्नि को भी दो प्रकार आहित करते हैं गार्हपत्य और आवहनीय रूप से वा उसका दो कार्यों के लिये प्रयोग करते हैं एक ताप के लिये दूसरे प्रकाश के लिये। नायक को दो कार्यों के लिये स्थापित करते हैं मार्ग दर्शाने या ज्ञान देने और शासन करने के लिये।

त्वं य॑विष्ठ दा॒शुषो॒ नॄँः पा॑हि शृणु॒धी गिरः॑।
र॒क्षा तो॒कमु॒त त्मना॑॥ ३ ॥

भा०—हे (यविष्ठ) युवतम, उत्तम युवा पुरुष! बलवन्! (त्वं) तू (दाशुषः) जीवन, धन, ज्ञानादि देने वाले (नॄन्) मनुष्यों को (पाहि) पालन कर और उन की (गिरः) वाणियों को (शृणुधि) आदर से श्रवण कर (तोकम्) पुत्र आदि सन्तति की (त्मना) अपने आत्म सामर्थ्य से (रक्ष) रक्षा कर।

कया॑ ते अग्ने अङ्गिर॒ ऊर्जो॑ नपा॒दुप॑स्तुतिम्।
वरा॑य देव म॒न्यवे॑॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक! अग्निवत् ज्ञानप्रकाशक! तेजस्विन्! हे (अंगिरः) अंग अर्थात् देह में रसवत् बलशालिन्! (ऊर्जः नपात्) वीर्य से उत्पन्न, पुत्रवत् बल से उत्पन्न वा बल वीर्य का पतन या नाश न होने देने वाले! हम लोग (वराय) वरण करने योग्य (मन्यवे) तेजस्वी, मननशील (ते) तुझ पुरुष की (उपस्तुतिम्) उपस्तुति, गुणवर्णना (कया) भला किस प्रकार की जिह्वा या वाणी से करें। तू स्वयं इतने २ गुणसम्पन्न सर्वथा वरने योग्य है।

दाशेम कस्य मनसा यज्ञस्य सहसो यहो।
कदु वोच इदं नमः॥ ५॥ ५॥

भा०—हे (सहसः यहो) शत्रुविजयी बल सामर्थ्य से स्वयं उत्पन्न हम लोग (कस्य) किस (यज्ञस्य) पूज्य, दानी, सत्संगयोग्य के (मनसा) ज्ञान वा मन से युक्त होकर (दाशेम) दान करें, अपने को सौंपें। इति पञ्चमो वर्गः॥

अधा त्वं हि नस्करो विश्वा अस्मभ्यं सुक्षितीः।
वाजद्रविणसो गिरः॥ ६॥

भा०—(अध) और (त्वं ही) तू ही (नः) हम (विश्वाः सुक्षितीः) समस्त प्रजाओं को उत्तम (करः) बना, और (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (वाजद्रविणसः सुक्षितीः करः) अन्न और ऐश्वर्य उत्पन्न करने वाली ऐश्वर्यवती भूमियां कर। और हमारे उपकार के लिये (गिरः वाजद्रविणसः) ज्ञानसम्पन्न वाणियों का उपदेश कर, हमें भी उत्तम ऐश्वर्ययुक्त ज्ञानी और उपदेष्टा बना।

कस्य नूनं परीणसो धियो जिन्वसि दम्पते।
गोषाता यस्य ते गिरः॥ ७॥

भा०—हे (दम्पते) गृहपते! हे दमन, शासन, दण्ड व्यवस्थादि के पालक! (यस्य ते) जिस तेरी (गिरः) वाणियां (गोषाता) हमें

(नरा) उत्तम पुरुषो ! (अदाभ्यं छर्दिः यन्त) अहिंसक, सुखदायक गृह प्रदान करो। इति सप्तमो वर्गः ॥

गच्छतं दाशुषो गृहमित्थास्तुवतो अश्विना।
मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ६ ॥

भा०—(मध्वः सोमस्य पीतये) मधुर ज्ञान रस का पान करने और आनन्दकारी वीर्य की रक्षा के लिये हे (अश्विना) जितेन्द्रिय नर नारियो ! आप दोनों वर्ग (इत्था स्तुवतः) सत्य का उपदेश करने वाले विद्वान् (दाशुषः गृहम्) ज्ञानदाता गुरु के गृह को (गच्छतम्) जाओ।

युञ्जाथां रासभं रथे वीड्वङ्गे वृषण्वसू।
मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ७ ॥

भा०—हे (वृषण्वसू) बलवान् ब्रह्मचारी जनो ! (मध्वः सोमस्य पीतये) आनन्दकारक, सुखजनक 'सोम' विद्या माता के गर्भ में उत्पन्न होने वाले शिष्य रूप पुत्र के पालन और उस को ज्ञान रस पान कराने के लिये (वीडु-अंगे रथे) दृढांग रथ में (रासभं) उत्तम ध्वनि से अलंकृत अश्व के समान (वीडु-अंगे) दृढ़ अंगों को करने में समर्थ (रथे) उत्तम उपदेश प्राप्त करने के योग्य आश्रम, ब्रह्मचर्य काल में (रासभं) उत्तम उपदेश से अलंकृत आचार्य को (युंजाथाम्) नियुक्त करो।

त्रिवन्धुरेण त्रिवृता रथेना यातमश्विना।
मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ८ ॥

भा०—(अश्विना) जितेन्द्रिय जनो ! (मध्वः सोमस्य पीतये) मधुर वेदज्ञान के पान और वीर्य के पालन करने लिये (त्रि-वन्धुरेण) तीन बन्धनों वाले, (त्रिवृता) तीन बार बटे, तीन प्रकार से अभ्यस्त (रथेन) स्थिर होकर रहने योग्य, ब्रह्मचर्य-आश्रम के धर्म पालन से (आयातम्) आगे बढ़ो।

नू मे गिरो नासत्याश्विना प्रावतं युवम्।
मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ९ ॥ ८ ॥

दोनों, (मे हवम्) मेरे यज्ञ को (मध्वः सोमस्य पीतये) मधुर अन्न रस पान करने के लिये (आ गच्छतम्) आइये।

इमं मे स्तोममश्विनेमं मे शृणुतं हवम्।
मध्वः सोमस्य पीतये ॥ २ ॥

भा०—हे (अश्विना) विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (मे इमं स्तोमं हवम्) मेरा यह स्तुति योग्य आह्वान वा उपदेश को (मध्वः सोमस्य पीतये) मधुर ज्ञान के पान के लिये (शृणुतम्) श्रवण करो।

अयं वां कृष्णो अश्विना हवते वाजिनीवसू।
मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्विना) वेगवान् अश्वों वालो ! हे (वाजिनीवसू) बल-युक्त सेना के धनी सैन्य और सेनापते ! (मध्वः सोमस्य पीतये) बलयुक्त शत्रु को कंपाने में समर्थ 'सोम' ऐश्वर्य और बल के पालन करने के लिये (अयं) यह (कृष्णः) शत्रु को कर्षण या पीड़ित करने वाला राजा (वां हवते) तुम दोनों को अपने पास बुलाता है।

शृणुतं जरितुर्हवं कृष्णस्य स्तुवतो नरा।
मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ४ ॥

भा०—हे (नरा) नर-नारियो ! आप (मध्वः सोमस्य पीतये) सुखदायक सोम, बल वीर्य के पालन करने के लिये (स्तुवतः जरितुः) उपदेश करने वाले विद्वान्, (कृष्णस्य) संशयों के उच्छेदन में समर्थ विद्वान् के (हवं) आह्वान या वचन का (शृणुतं) श्रवण करो।

छर्दिर्यन्तमदाभ्यं विप्राय स्तुवते नरा।
मध्वः सोमस्य पीतये ॥ ५ ॥ ७ ॥

भा०—(मध्वः सोमस्य पीतये) मधुर, आनन्दप्रद ज्ञान रस के पान करने के लिये (स्तुवते विप्राय) उपदेश देने वाले विद्वान् को हे

ज्ञान वाणियों और भूमियों के विभाग या प्रदान करने के लिये हैं वह तू (कस्य परीणसः) किस महान् पुरुष के निमित्त (धियः जिन्वसि) नाना कर्म करता है वा किस के प्रति बहुत सी स्तुतियों, बुद्धियों को प्रेरित करता है।

तं मर्जयन्त सुक्रतुं पुरोयावानमाजिषु।
स्वेषु क्षयेषु वाजिनम् ॥ ८ ॥

भा०—(तं) उस (सु-क्रतुं) उत्तम कर्म और ज्ञान वाले (आजिषु) संग्रामों में (पुरः-यावानं) आगे प्रयाण करने हारे और (स्वेषु क्षयेषु) अपने ऐश्वर्यों वा गृहों में भी (वाजिनम्) बल, ज्ञान और वेग से अनालस्य होकर कार्य करने वाले को (मर्जयन्त) सादर अलंकृत करो।

क्षेति क्षेमेभिः साधुभिर्नकिर्यं घ्नन्ति हन्ति यः।
अग्ने सुवीर एधते ॥ ९ ॥ ६ ॥

भा०—(यः) जो (क्षेमेभिः) कल्याणकारी, (साधुभिः) उत्तम कार्यसाधक पुरुषों और उपायों सहित (क्षेति) रहता और ऐश्वर्य की वृद्धि करता है, (यं नकिः घ्नन्ति) जिसको कोई भी मार नहीं सकते हैं। वह हे (अग्ने) अग्निवत् ज्ञानिन्, तेजस्विन्, प्रतापशालिन्! तू (सुवीरः) उत्तम वीर्यवान् होकर (एधते) वृद्धि को प्राप्त करता है। इति षष्ठो वर्गः॥

[८५]

कृष्ण ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ६ विराड् गायत्री। २, ५, ७ निचृद् गायत्री। ३, ४, ६, ८ गायत्री ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

आ मे हवं नासत्याश्विना गच्छतं युवम्।
मध्वः सोमस्य पीतये ॥ १ ॥

भा०—हे (नासत्या) असत्य आचरणों से रहित, सदा सत्यभाषी हे (अश्विना) अश्ववत् इन्द्रियों के वशी स्त्रीपुरुषो! (युवम्) तुम

भा०—(मध्वः सोमस्य पीतये) मधुर ज्ञान के ग्रहण के लिये हे (नासत्या) सदा सत्य के धारण करने वाले ! हे (अश्विना) जितेन्द्रिय जनो (तू) शीघ्र ही (मे गिरः युवं प्रावतम्) मेरी उपदिष्ट वेदवाणियों का आप उत्तम रीति से ज्ञान प्राप्त करो । इत्यष्टमो वर्गः ॥

[८६]

कृष्णो विश्वको वा कार्ष्णिर्ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ३ विराड् जगती । २, ४, ५ निचृज्जगती ॥

उभा हि दुस्रा भिषजा मयोभुवोभा दक्षस्य वचसो बभूवथुः ।
ता वां विश्वको हवते तनूकृथे मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम् १

भा०—हे (दस्रा) रोगादि के नाशक (उभा) आप दोनों (भिषजा) भय से बचाने वाले, प्रेमपूर्वक मिलने जुलने वाले, वा रोगों को दूर करने वाले (मयः-भुवा) सुख के देने वाले, और (उभा) दोनों (दक्षस्य वचसः) बलयुक्त कर्म समर्थ वचन के बोलने वाले (बभूवथुः) होवो । (ता वां) आप दोनों को (विश्वकः) समस्त मनुष्य (तनू-कृथे) अपने देह के रक्षा के निमित्त (हवते) बुलाते हैं । आप दोनों (सख्या) मित्रता से (नः) हमें (मा वि यौष्टं) पृथक् न करो, सब से प्रेम रक्खो और (नः मा मुमोचत्) हमें त्याग न करो ।

कथा नूनं वां विमना उप स्तवद्युवं धियं ददथुर्वस्यइष्टये । ता
वां विश्वको हवते तनूकृथे मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम् २

भा०—(नूनं) निश्चय ही (वि-मनाः) विपरीत चित्त वा ज्ञान वाला वा अज्ञानी मनुष्य (वां) तुम दोनों की (कथा उपस्तुवत्) कैसे गुण स्तुति कर सकता है ? (युवम्) तुम दोनों (इष्टये) इच्छा पूर्त्ति के लिये (धियं वस्यः ददथुः) उत्तम बुद्धि और उत्तम धन प्रदान करते हो । (ता वां) उन आप दोनों की (तनू-कृथे विश्वकः हवते) अपने

देह के सुखार्थ सभी बुलाते हैं। तुम दोनों (नः सख्या मा वि यौष्टं) हमें मित्र भाव से पृथक् मत करो और (वि मुमोचतम्) विविध दुःखों से छुड़ाओ वा सखित्व से हमें (मा वि मुमोचतम्) मत त्याग करो।

युवं हि ष्मा पुरुभुजेममेधतुं विष्णाप्वे दुदथुर्वस्य इष्टये। ता वां विश्वको हवते तनूकृथे मा नो वि यौष्टं सुख्या मुमोचतम् ॥३॥

भा०—हे (पुरुभुजा) बहुतों को पालन करने में समर्थ पुरुषो! आप दोनों (विष्णाप्वे) व्यापक शक्तिमान् प्रभु को प्राप्त करने वाले को (इष्टये) यज्ञ के निमित्त (वस्यः) उत्तम धन और (एधतुं ददथुः स्म) वृद्धि के साधन देते रहो। (ता वां० इत्यादि पूर्ववत्)

उत त्यं वीरं धनुसामृजीषिणं दूरे चित्सन्तुमवसे हवामहे। यस्य स्वादिष्ठा सुमतिः पितुर्यथा मा नो वि यौष्टं सुख्या मुमोचतम् ॥ ४ ॥

भा०—(उत) और (त्यं वीरं) उस वीर, बलवान् और विद्यावान् (धनसा) धन के दानी और धन के प्राप्त करने में कुशल, (ऋजीषिणं) धर्ममार्ग में सञ्चालक और शत्रुनाशक सैन्य के चालक ऐसे (दूरे चित् सन्तं) दूर देश में रहते हुए पुरुष को भी हम (अवसे) रक्षा और ज्ञान लाभ के लिये (हवामहे) बुलावें। (यस्य) जिस की (स्वादिष्ठा सुमतिः) अति सुखदायिनी शुभ प्रज्ञा (यथा पितुः) पिता के समान हित में प्रवृत्त कराती हो, हे विद्वान् पुरुषो! (नः मा वियौष्टं) हमें अपने से पृथक् न करो (सख्या मा मुमोचतम्) अपने मित्रभाव से हमें परित्याग न करो।

ऋतेन देवः सविता शमायत ऋतस्य शृङ्गमुर्विया वि पप्रथे। ऋतं सासाह महि चित्पृतन्यतो मा नो वि यौष्टं सुख्या मुमोचतम् ॥ ५ ॥ ९ ॥

भा०—(देवः सविता) प्रकाशमान सूर्य के समान तेजस्वी, (सविता) सब का प्रेरक, सब का उत्पादक प्रभु (ऋतेन) सत्य ज्ञान-मय वेद से (शम् आयते) सब को शान्ति सुख प्रदान करता है। और वह (ऋतस्य शृङ्गम्) तेज के अन्धकारनाशक प्रकाश के समान असत्य, अविद्या के नाशक सत्य के प्रकाश को (उर्विया पप्रथे) बहुत अधिक फैलाता है। (ऋतं) सत्य ही (महि चित् पृतन्यतः) बड़े २ वा शत्रुओं को भी (सासाह) पराजित करता है। (नः मा सख्या वि यौष्टं) हमें मित्रता से वियुक्त न करो और (मा वि मुमोचतम्) हमें भी परित्याग मत करो। इति नवमो वर्गः ॥

[८७]

कृष्णो द्युम्नी धन्नीको वा वसिष्ठ आंगिरसः प्रियमेधो वा ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ३ बृहती । ५ निचृद् बृहती । २, ४, ६ निचृत् पंक्तिः ॥ षड्चं सूक्तम् ॥

द्युम्नी वां स्तोमो अश्विना क्रिविर्न सेक आ गतम् ।
मध्वः सुतस्य स दिवि प्रियो नरा पातं गौराविवेरिणे ॥ १ ॥

भा०—(सेके क्रिविः न) संचय करने के लिये प्रचुर जल वाला कूप जिस प्रकार (द्युम्नी) उत्तम अन्नोत्पादक होता है उसी प्रकार (वां) आप दोनों का (स्तोमः) स्तुति वचन वा उपदेश (द्युम्नी) अपरिमित ज्ञान का देने वाला होता है। हे (अश्विना) विद्यावान् स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (आ गतम्) आइये। (सः) वह (दिवि प्रियः) ज्ञान के प्राप्त करने के निमित्त अति पूर्ण है। हे (नरा) उत्तम पुरुषो ! दोनों (मध्वः सुतस्य) मधुर ज्ञान का (इरिणे गौरौ इव) जलाशय में दो गौर नाम मृग-युगल के समान (पातं) पान करो। अथवा (इरिणे) शुष्क भूमि में (गौरौ इव) सूर्य-मेघवत् मधुर जल के समान ज्ञान का पान कराओ।

पिर्वतं घर्मं मधुमन्तमश्विना बर्हिः सीदतं नरा ।
ता मन्दसाना मनुषो दुरोण आ नि पातं वेदसा वयः ॥ २ ॥

भा०—हे (अश्विना) अश्ववत् राष्ट्र के भीतर नियुक्त जनों के स्वामी जनो ! आप दोनों (नरा) नायक जन (बर्हिः) आसनवत् इस राष्ट्र प्रजाजन के ऊपर (आ सीदतम्) अध्यक्षवत् विराजो और (मधुमन्तं) बलयुक्त (घर्मं) तेज और रस का मधुयुक्त ओषधि-रसवत् पान, उपभोग और संरक्षण करो । (मनुषः दुरोणे) मनुष्य के आश्रय रूप गृह के समान उत्तम रक्षा स्थानवत् (मनुषः दुरोणे) सर्वसाधारण मनुष्य के लिये दुष्प्राप्य राजपद पर (मन्दसाना) अति हर्ष लाभ करते हुए (ता) वे आप दोनों (वेदसा) धन के द्वारा (वयः) राष्ट्र के बल, जीवन और अन्न समृद्धि की (निपातम्) रक्षा करो । इसी प्रकार प्रत्येक गृह में स्त्री पुरुष आसन पर बैठें, मधुर रस युक्त अन्न, ओषधि रस पान करें । सुप्रसन्न होकर धन और ज्ञान से जीवन की रक्षा करें ।

आ वां विश्वाभिरूतिभिः प्रियमेधा अहूषत ।
ता वर्तिर्यातमुप वृक्तबर्हिषो जुष्टं यज्ञं दिविष्टिषु ॥ ३ ॥

भा०—हे उत्तम नायको ! उत्तम जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषो ! (प्रिय-मेधाः) अन्न, सत्संग, यज्ञ, युद्ध आदि के प्रिय जन (विश्वाभिः ऊतिभिः) सब प्रकार की प्रीतियों तथा रक्षा-साधनों सहित (वां आ अहूषत) तुम दोनों को प्रेम से आह्वान करते हैं । (ता) वे दोनों आप, (वृक्त-बर्हिषः) कुशाओं के समान अन्य संशयों, और शत्रु जन वा मानसिक दुर्विचार काम, क्रोधादि रिपुओं को उच्छेद करने वाले के (वर्त्तिः) गृह पर (उप-यातम्) उपस्थित होवो, और (दिविष्टिषु) प्रति प्रातःकाल के अवसरों में वा (दिवः) उत्तम कामनाओं की पूर्त्ति के लिये (यज्ञं) देव-पूजन और यज्ञ सत्संगादि को (उप जुष्टं) नित्य सेवन करो ।

पिब॑तं॒ सोमं॒ मधु॑मन्तमश्विना॒ बर्हिः सी॑दतं सु॒मत्।
ता वा॑वृधा॒ना उप॑ सुष्टु॒तिं दि॒वो गन्तं॑ गौ॒रावि॒वेरि॑णम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय जनो ! आप दोनों (सुमत् बर्हिः सीदतम्) उत्तम आसन और प्रजा जन पर अध्यक्षवत् विराजो । और (मधुमन्तं सोमं पिबतम्) मधुर आनन्द युक्त ऐश्वर्य का अन्नवत् उपभोग करो । (ता) वे आप दोनों (ववृधाना) सदा वृद्धि प्राप्त करते हुए (दिवः सु-स्तुतिं) ज्ञान के उत्तम उपदेश, कीर्त्ति को (इरिणं गौरौ इव) जलाशय को मृगयुगल के समान (उप गन्तम्) प्राप्त होवो ।

आ नू॒नं या॑तमश्वि॒नाश्वे॑भिः प्रुषि॒तप्सु॑भिः ।
दस्रा॒ हिर॑ण्यवर्तनी शुभस्पती पा॒तं सोम॑मृतावृधा ॥ ५ ॥

भा०—हे (अश्विना) शीघ्र गमन करने वाले अश्वों और इन्द्रियों के स्वामी, नायक जनो ! आप दोनों (प्रुषित-प्सुभिः) स्निग्ध, पूर्ण वा जलादि से सिक्त अभिषेचित रूप वाले (अश्वेभिः) अश्वों और विद्यावान् पुरुषों सहित (नूनं आयातम्) अवश्य आवो । आप दोनों (दस्रा) बाह्य अन्तःशत्रुओं के नाशक (हिरण्य-वर्त्तनी) सुवर्ण के रथ वाले वा हित-रमणीय मार्ग के अवलम्बक (शुभः-पती) उत्तम शोभा वा कल्याण के पालक, (ऋत-वृधा) सत्य ज्ञान के वर्धक और सत्य के बल से बढ़ने वाले आप दोनों (सोमम् पातम्) ऐश्वर्य का पालन और उपभोग करो ।

व॒यं हि वां॒ हवा॑महे विप॒न्यवो॒ विप्रा॑सो॒ वाज॑सातये ।
ता व॒ल्गू द॒स्रा पु॑रु॒दंस॑सा धि॒याश्वि॑ना श्रु॒ष्ट्या ग॑तम् ॥ ६ ॥ १० ॥

भा०—हे (अश्विना) जितेन्द्रिय पुरुषो ! हे अश्वादि साधनों के स्वामी जनो ! (वां हि विपन्यवः) हम स्तुतिकर्त्ता और विविध व्यवहार-कुशल (विप्रासः) विद्वान् जन (वाज-सातये) ऐश्वर्य और ज्ञान के प्रदान और प्राप्ति के लिये (वां हि हवामहे) आप दोनों को बुलाते हैं । (ता) वे आप दोनों (वल्गू) कुशल आचरण वाले, (दस्रा) दुष्ट

कर्मों के नाशक (पुरु-दंससा) बहुत से उत्तम कर्मों को करने वाले हो कर (धिया) कर्म और ज्ञान के बल से (श्रुष्टी आगतम्) शीघ्र ही उद्देश्य को प्राप्त होवो। इति दशमो वर्गः ॥

[८८]

नोधा ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३ बृहती। ५ निचृद् बृहती। २, ४ पंक्तिः। ६ विराट् पंक्तिः ॥ षडृचं सूक्तम् ॥

तं वो दस्ममृतीषहं वसोर्मन्दानमन्धसः ।
अभि वत्सं न स्वसरेषु धेनव इन्द्रं गीर्भिर्नवामहे ॥ १ ॥

भा०—हे प्रजाजनो! (अन्धसः) अन्नवत् उपभोग्य (वसोः) राष्ट्र में बसे प्रजा जन और (वसोः) धन राशि से (मन्दानम्) अति हर्षित (तं) उस (दस्मम्) शत्रुनाशक और (ऋति-सहं) शत्रुओं के पराजयकारी (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् सेनापति की हम लोग (स्वसरेषु) स्वयं वा सुख से बीतने वाले दिनों में, गोष्ठों में (अभिवत्सं न धेनवः) बच्छे के प्रति गौओं के समान (स्वसरेषु) सब दिनों (गीर्भिः नवामहे) वाणियों से स्तुति करें।

द्युक्षं सुदानुं तविषीभिरावृतं गिरिं न पुरुभोजसम् ।
क्षुमन्तं वाजं शतिनं सहस्रिणं मक्षू गोमन्तमीमहे ॥ २ ॥

भा०—हम लोग (द्युक्षं) दीप्ति युक्त (सु-दानुं) उत्तम दानशील, (तविषीभिः आवृतं) नाना सेनाओं से घिरे (गिरिं न) मेघ के समान (पुरु-भोजसं) बहुतों के पालक, स्वामी से (क्षुमन्तं) अन्नादि से युक्त (शतिनं सहस्रिणं) सौ हजार-आदि से युक्त, (गोमन्तं वाजं) भूमि, पशु धनों आदि से समृद्ध ऐश्वर्य की याचना करें और प्राप्त भी करें।

न त्वा बृहन्तो अद्रयो वरन्त इन्द्र वीळवः ।
यद्दित्ससि स्तुवते मावते वसु नकिष्टदा मिनाति ते ॥ ३ ॥

भा०—(बृहन्तः) बड़े २ (वीडवः) बलशाली, (अद्रयः) मेघों

आक्रमणों को परे कर देता है, उनको संतप्त करता है, (अथ) और वह (द्युम्नी अभवत्) यशस्वी, ऐश्वर्यवान् होजाता है। हे (बृहद्-भानो) महान् तेजस्विन्! हे (मरुद्-गण) बलवान् गणों के स्वामिन्! (देवाः) विजयेच्छुक, दानशील जन (ते सख्याय येमिरे) तेरे सख्यभाव प्राप्त करने के लिये अपने को नियम में बांधते हैं।

प्र व इन्द्राय बृहते मरुतो ब्रह्मार्चत।
वृत्रं हनति वृत्रहा शतक्रतुर्वज्रेण शतपर्वणा ॥ ३ ॥

भा०—हे (मरुतः) बलवान् शत्रुहन्ता एवं परिमितभाषी जनो! आप लोग (बृहते इन्द्राय) बड़े २ ऐश्वर्यवान् प्रभु के (ब्रह्म अर्चत) महान् सामर्थ्य की स्तुति करो। वह (वृत्रहा) दुष्टों का हन्ता (शत-क्रतुः) अपरमित ज्ञानी, (शत-पर्वणा वज्रेण) सैकड़ों पर्वों से युक्त वज्र, बल, सैन्य वा ज्ञान से (वृत्रं) दुष्ट शत्रु और अज्ञान का (हनति) नाश करता है। 'वज्र'—अज्ञान का वर्जन करने से ज्ञान वज्र है।

अभि प्र भर धृषता धृषन्मनः श्रवश्चित्ते असद् बृहत्।
अर्षन्त्वापो जवसा वि मातरो हनो वृत्रं जया स्वः ॥ ४ ॥

भा०—हे (धृषन्-मनः) शत्रुओं को पराजय करने वाले मन और अन्तःशत्रुओं को पराजय करने में समर्थ मन वा ज्ञान वाले जन! (ते) तेरा (बृहत् श्रवः असत्) बड़ा भारी यश और ज्ञान हो। तू उस ज्ञान वा यश को (धृषता) बाह्य और अन्तःशत्रुओं को पराजय करने वाले बल से (अभि प्र भर) धारण कर। (मातरः) माताओं के समान, सर्वप्रिय (आपः) आप्तजन (वि अर्षन्तु) मेघ से जल धाराओं के समान विविध प्रकार से प्राप्त हों। और तू (वृत्रं हनः) दुष्ट का नाश कर और (स्वः जय) सबका विजय कर। हे ज्ञानिन्! तू अन्धकार रूप अज्ञान का नाश करके परम सुख पर विजय प्राप्त कर।

यज्जायथा अपूर्व्य मघवन्वृत्रहत्याय ।
तत्पृथिवीमप्रथयस्तदस्तभ्ना उत द्याम् ॥ ५ ॥

भा०—हे (मघवन्) तेजोमय ! ऐश्वर्यवन् ! हे (अपूर्व्य) सबसे पूर्व विद्यमान ! (यत्) जो तू (वृत्र-हत्याय) बढ़ते शत्रुवत् अज्ञान के नाश करने के लिये (अभि प्र जायथाः) समर्थ होता है, (तत्) वह तू (पृथिवीम् अप्रथयः) पृथिवी को विस्तृत करता है, (उत) और (द्याम् अस्तभ्नाः) आकाश वा सूर्य को दृढ़ वा स्थिर करता है। उसी प्रकार परमेश्वर जब प्रकृति के सलिलमय, तमोमय परमाणु रूप को आघात करता है उससे ही यह भूमि बनती और सूर्य आदि लोक भी उसी के बल से स्थिर हैं।

तत्ते यज्ञो अजायत तदर्क उत हस्कृतिः ।
तद्विश्वमभिभूरसि यज्जातं यच्च जन्त्वम् ॥ ६ ॥

भा०—तब ही हे प्रभो ! (ते यज्ञः अजायत) तेरा महान् यज्ञ होता है (तत् ते अर्कः) वही तेरा महान् स्तुति योग्य ज्ञान है। (उत हस्कृतिः) वही तेरा ब्राह्म दिनवत् हर्ष का विलास है। (तत्) वह तू (विश्वम् अभि भूः असि) समस्त विश्व का उत्पादक है (यत् जातं यत् जन्त्वम्) जो उत्पन्न हुआ और जो उत्पन्न होगा उस सबका उत्पादक तू ही है।

आमासु पक्वमैरय आ सूर्यं रोहयो दिवि ।
घर्मं न सामन्तपता सुवृक्तिभिर्जुष्टं गिर्वणसे बृहत् ॥ ७ ॥ १२ ॥

भा०—हे प्रभो ! तू (आमासु) कच्ची, मृदु भूमियों में (पक्वं) परिपाक योग्य, तेज, वीर्य को (ऐरयः) प्रदान करता है, और (दिवि) आकाश में (सूर्यं आरोहयः) सूर्य को स्थापित करता है। (गिर्वणसे) वाणी से सेवने योग्य उस प्रभु के (जुष्टं) प्रिय (बृहत्) बड़े भारी (घर्मं) तेज को (सामन्) सामस्तुति द्वारा (सुवृक्तिभिः)

और उत्तम स्तुतियों द्वारा (घर्मं न) सूर्य प्रकाशवत् (तपत) तपो, उसका सेवन कर तपश्चर्या करो। तपश्चर्या से उसके तेज को धारण करो। इति द्वादशो वर्गः ॥

[६०]

नृमेधपुरुमेधावृषी ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ निचृद् बृहती। ३ विराड् बृहती। ५ पादनिचृद् बृहती। २, ४ पादनिचृत् पंक्तिः। ६ निचृत् पंक्तिः ॥ षड्चं सूक्तम् ॥

आ नो विश्वासु हव्य इन्द्रः समत्सु भूषतु।
उप ब्रह्माणि सवनानि वृत्रहा परमज्या ऋचीषमः ॥ १ ॥

भा०—(हव्यः इन्द्रः) सबसे पुकारने, संकटों के समय बुलाने योग्य (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (नः) हमारे (विश्वासु समत्सु) समस्त संग्रामों में (आ भूषतु) सदा सज्ज रहे। वह (वृत्र-हा) बढ़ते शत्रु का नाशक, (परम-ज्याः) बड़ी प्रबल डोरी वाला, बड़े २ शत्रुओं का बड़ा नाशक और (ऋचीषमः) यथार्थ गुण-स्तुति के अनुरूप होकर वह (सवनानि) समस्त ऐश्वर्यों और (ब्रह्माणि) धनों वा अन्नों को भी (उप भूषतु) प्राप्त हो। (२) परमेश्वर सब आनन्दावसरों में हमें समर्थ करे, हमारे यज्ञादि उपासना कालों में वह विघ्न-हर्त्ता सदा स्मरण रहे।

त्वं दाता प्रथमो राधसामस्यसि सत्य ईशानकृत्।
तुविद्युम्नस्य युज्या वृणीमहे पुत्रस्य शवसो महः ॥ २ ॥

भा०—(त्वं) तू (राधसां प्रथमः दाता) समस्त ऐश्वर्यों का प्रथम एवं सर्वोत्कृष्ट दाता है, तू (सत्यः) सत्यस्वरूप, (ईशान-कृत्) सबका स्वामी, जगत् का कर्त्ता है। तू सब बड़े राजा, धनाधिपों का भी बनाने वाला है। (तुविद्युम्नस्य) बहुत से धनों, ऐश्वर्यों से सम्पन्न (महः शवसः पुत्रस्य) बड़े भारी बल के कारण बहुतों की रक्षा करने में समर्थ तेरे ही

(युज्या) सहयोगों, मित्रताओं और सहायताओं की (वृणीमहे) याचना करते हैं।

ब्रह्मा त इन्द्र गिर्वणः क्रियन्ते अनतिद्भुता।
इमा जुषस्व हर्यश्व योजनेन्द्र या ते अमन्महि ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (ते) तेरे लिये (अनतिद्भुता) यथार्थ गुणानुरूप (ब्रह्मा) धन और स्तुतिवचन वा अन्नादि सत्कार (क्रियन्ते) किये जावें। हे (गिर्वणः) वाणी द्वारा सेवनीय! वाणियों को प्रेमपूर्वक स्वीकार करने हारे! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे (हर्यश्व) अश्ववत् मनुष्यों के स्वामिन्! हम (या ते) तेरे लिये या जिन भी (योजना) उचित गुण भोगों की (अमन्महि) चिन्तना करते हैं तू (इमा जुषस्व) इन सबको स्वीकार कर।

त्वं हि सत्यो मघवन्ननानतो वृत्रा भूरि न्यृञ्जसे।
स त्वं शविष्ठ वज्रहस्त दाशुषेऽर्वाञ्चं रयिमा कृधि ॥ ४ ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! तू (अनानतः) किसी से भी नहीं झुकता, (त्वं हि सत्यः) तू ही सत्य स्वरूप है। तू (भूरि-वृत्रा) बहुत से विघ्नों और विघ्नकारी दुष्ट पुरुषों को (नि-ऋञ्जसे) अपने वश करने में समर्थ है। हे (शविष्ठ) अति बलशालिन्! हे (वज्र-हस्त) हाथ में बल, वीर्य और खड्ग धारण करने हारे! (त्वं) तू (दाशुषे) दानशील को (रयिम् अर्वाञ्चं कृधि) ऐश्वर्य प्राप्त करा।

त्वमिन्द्र यशा अस्यृजीषी शवसस्पते।
त्वं वृत्राणि हंस्यप्रतीन्येक इदनुत्ता चर्षणीधृता ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुओं के हन्तः! हे ऐश्वर्यप्रद! (त्वं यशाः असि) तू यशस्वी है। हे (शवसः पते) बलों के पालक! (त्वं ऋजीषी असि) तू सत्य मार्ग में सबको चलाने हारा और शत्रु को पीड़ित करने वाले सैन्यादि का शासक है। (त्वं) तू (अप्रतीनि) बे-मुकाबले के (वृत्राणि)

मेघस्थ जलोंवत् अति प्रबल दुष्टों और शत्रुओं को भी (एकः इत्) अकेला ही (हंसि) दण्डित करता है, और तू (चर्षणीधृता) समस्त मनुष्यों को धारण करने वाले बल से (अनुत्ता) अपराजित शत्रुओं को भी पराजित करता है।

तमु॑ त्वा नू॒नम॑सुर॒ प्रचे॑तस॒ राधो॑ भा॒गमि॑वेमहे ।
म॒हीव॒ कृत्तिः॑ शर॒णा त॑ इन्द्र॒ प्र ते॑ सु॒म्ना नो॑ अश्नवन् ॥६॥१३॥

भा०—हे (असुर) प्राण, जीवन के देने वाले! हे बलशालिन्! (प्र-चेतसं) उत्कृष्ट चित्त वाले (त्वा) तुझ से (भागम् इव राधः ईमहे) अपने पिता से प्राप्तव्य भाग के समान ही हम धन की याचना करते हैं। (ते) तेरा (कृत्तिः) श्रमपूर्वक काट कर संग्रह करने योग्य खेती (ते शरणा) तेरी शरणदायिनी सम्पदा (मही इव) यह बड़ी भारी भूमि है हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (ते सुम्ना नः प्राश्नवन्) तेरे दिये नाना सुख हमें खूब प्राप्त हों। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[९१]

अपालात्रेयी ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ आर्ची स्वराट् पंक्तिः। २ पंक्तिः। ३ निचृदनुष्टुप्। ४ अनुष्टुप्। ५, ६ विराडनुष्टुप्। ७ पाद-निचृदनुष्टुप् ॥ सप्तर्चं सूक्तम् ॥

क॒न्या॒३॒॑ वार॑वाय॒ती सोम॒मपि॑ स्रु॒ताऽवि॑दत् ।
अस्तं॒ भर॑न्त्यब्रवी॒दिन्द्रा॑य सुनवै त्वा श॒क्राय॑ सुनवै त्वा ॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार (स्रुता) बहती (अवयती) नीचे की ओर जाती (वाः) जल धारा (सोमम् अपि विदत्) ओषधि वर्ग को प्राप्त होती है उसी प्रकार (वाः) वरण करने वाली वरवर्णिनी, (अवयती कन्या) समझती बूझती हुई कन्या (सोमम्) पुत्रोत्पादन में समर्थ वीर्यवान् विद्याव्रत स्नातक पुरुष को (स्रुता) उस के प्रति प्रेमाकृष्ट होकर (अपि विदत्) पति रूप से प्राप्त करे।

वंश से विवाह करे। वह (अस्तं भरन्ती) गृह-आश्रम को भरण या धारण करती हुई (अब्रवीत्) कहे कि मैं (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान्, तेजस्वी स्वामी होने के लिये (त्वा सुनवै) तेरा आदर करती हूं, अथवा तुझे ही पुत्र रूप से उत्पन्न करने के लिये (त्वा) तुझे वरण करती हूं। इसी प्रकार (शक्राय) शक्तिशाली स्वामी प्राप्त करने के लिये (त्वा सुनवै) तेरा सवन, पूजन करती हूं।

असौ य एषि वीरको गृहङ्गृहं विचाकशत्।
इमं जम्भसुतं पिब धानावन्तं करम्भिणमपूपवन्तमुक्थिनम्॥२॥

भा०—(असौ) वह दूर देश का (यः) जो (वीरकः) वीर्य युक्त पुरुष (एषि) प्राप्त होता है वह तू (गृहं-गृहं) प्रत्येक गृह को (विचाकशत्) प्रकाशित करता है। हे विद्वन्! तू (इमं) इस (जम्भ-सुतं) जन्म से ही दीप्तियुक्त वा जाया, स्त्री और उसके भरणकर्त्ता पति दोनों से उत्पन्न (धानावन्तं) आधान संस्कार से युक्त (करम्भिणम्) क्रियाकुशल, शौर्ययुक्त और (अपूपवन्तं) गृह से दूर और गुरु आचार्य आदि के समीप जाने वाले (उक्थिनं) उत्तम बालक का (पिब) पालन कर।

करोतेरम्भच् प्रत्ययः (उणा०)

आ चन त्वा चिकित्सामोऽधि चन त्वा नेमसि।
शनैरिव शनकैरिवेन्द्रायेन्दो परि स्रव॥३॥

भा०—हे पुरुष (त्वा आ चिकित्सामः) हम तुझे जानना चाहते हैं। (त्वा चन न अधि इमसि) हम तुझे अभी नहीं पहचान रहे हैं। हे (इन्दो) गुरु के समीप से नवागत सौम्य! ऐश्वर्यवन् तेजस्विन् युवक! तू (शनैः इव शनकैः इव) शनैः शनैः (इन्द्राय) स्वामी या पति पद प्राप्त करने के लिये अधिक आगे बढ़, परिचित हो।

जिस प्रकार बालक को आचार्य मातावत् अपने गर्भ में रखता और स्वीकार करता है उसी प्रकार प्रथम माता भी 'इन्दु या सोम' अर्थात् द्रुत

वीर्य को अपने गर्भ में धारण करती है। वह भी 'इन्द्र' अर्थात् अपने पति के ही निमित्त उसे धारण करती है। वह भी गर्भाशय में शनैः शनैः परिस्रवण करता कमल तक पहुंचता है। यह आशय भी मन्त्र में उपमित रूप में निहित है। इसी मन्त्र पर शाट्यायन ब्राह्मण का वचन है—"सोमपीथ इह वा अस्य भवति य एवं विद्वान् स्त्रियमुपजिघ्रतीति।"

कुविच्छकत्कुवित्करत्कुविन्नो वस्यसस्करत्।
कुवित्पतिद्विषो यतीरिन्द्रेण सङ्गमामहै ॥ ४ ॥

भा०—वह पुरुष जो विवाह करना चाहता है (कुवित् शकत्) स्वयं भी बहुत समर्थ हो, हमें भी बहुत समर्थ करे वह स्वयं भी (कुवित् करत्) बहुत से कार्य करने में समर्थ हो। और वह (नः) हमें (कुवित्) बहुत प्रकार से (वस्यसः करत्) उत्तम धनादि ऐश्वर्य से सम्पन्न करे। (कुवित्) बहुतसी (पतिद्विषः) बन्धु आदि पालक जनों से प्रीति न करती हुई हम स्त्रियां (यतीः) घरों से पृथक् होकर (इन्द्रेण) ऐश्वर्यवान्, अन्न देने में समर्थ पुरुष से ही (संगमामहै) संगत, सम्बद्ध हो जाती हैं इसलिये स्त्रियों के साथ विवाह करने वाले को चाहिये कि वह अपनी पत्नी को अधिक समर्थ करे, स्वयं भी श्रमशील हो, स्त्रियों को उत्तम वस्त्र-आभूषणादि से भी सन्तुष्ट करे जिससे वह अपने पालक जन की निर्धनता से खिन्न होकर द्रव्यवानों के प्रलोभन में न जावें।

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैताः पतिभिर्देवरैस्तथा।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः।
यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।
तस्मादेता सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः।
भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च। मनु० अ० ३।श्लो० ५५,५६,५९॥

इमानि त्रीणि विष्टपा तानीन्द्र वि रोहय ।
शिरस्ततस्योर्वरामादिदं म उपोदरे ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् पुरुष ! स्वामिन् (इमानि) ये (त्रीणि) तीनों पदार्थ (वि-तपा) संताप से रहित या भयक हों, (तानि) उन तीनों को तू (वि रोहय) विशेष रूप से उन्नत एवं वृद्धियुक्त, सफल होने दे, (१) (ततस्य शिरः) पिता के शिर को ऊंचा कर । अर्थात् विवाह करने वाले को प्रथम अपने वा कन्या के माता पिता के शिर पर के भार को कम करना, उस की चिन्ता को दूर करने का यत्न करना चाहिये जिस से वह कन्या को ले वा देकर भी पश्चात्ताप न करे। (२)(उर्वराम् वि रोहय) जिस प्रकार 'इन्द्र', सूर्य या मेघ उर्वरा भूमि पर बरस कर उसे अन्नादि से सम्पन्न करता है इसी प्रकार विवाहित युवक को चाहिये कि उर्वरा कन्या के साथ विवाह करके सन्तान उत्पन्न करे । (३) (आत् इदं मे उप-उदरे) और यह जो मुझ कन्या के उदर या पेट के समीप अंग या पेट में स्थित बीज गर्भ रूप से विद्यमान हो । हे (इन्द्र) वपन योग्य भूमि रूप स्त्री के गर्भ में इरा अर्थात् अन्नवत् बीज आधान करने हारे पुरुष ! तू उस को भी (वि रोहय) विशेष रूप से पुष्ट कर, सन्तान को पोषित कर, उस को अधबीच में नष्ट न होने दे ।

असौ च या न उर्वरादिमां तन्वं मम ।
अथो ततस्य यच्छिरः सर्वा ता रोमशा कृधि ॥ ६ ॥

भा०—(असौ च) और वह (या) जो (नः) हम में से (उर्वरा) उत्तम अन्न-उत्पादक भूमिवत् सन्तान उत्पादक नारी हो उस को (रोमशा कृधि) पूर्ण यौवनचिह्नों से युक्त होने दे । (मम) और मेरे (इमां तन्वं) इस शरीर को (रोमशा) रोमाञ्चित, पुलकित, पूर्ण वा पुष्टांग युक्त (कृधि) कर । (अथो) और (ततस्य) पिता का (यत् शिरः) जो शिर इस समय चिन्ताग्रस्त, उदास है उस को (रोमशं कृधि) रोमाञ्चित, पुलकित, चिन्तारहित कर ।

अथवा (ततस्य शिरः) सन्तानोत्पादक वर के शिर अर्थात् मुख को भी (रोमशं कृधि) मूंछ दाढ़ी वाला वा पूर्णायु होने दे। विवाहेच्छुक पुरुष भी युवा हो। स्त्री भी युवती और उर्वरा हो।

खे रथस्य खेऽनसः खे युगस्य शतक्रतो।
अपालामिन्द्र त्रिष्पूत्व्यकृणोः सूर्यत्वचम् ॥ ७ ॥ १४ ॥

भा०—हे (शतक्रतो) अपरित ज्ञान और कर्म सामर्थ्य वाले! (रथस्य खे) रथ के अवकाश में, फिर (अनसः खे) शकट के अवकाश में और (युगस्य खे) युग नामक यान के मध्य में इस प्रकार क्रम से (अपालां) अप्राप्तपति, कुमारी कन्या को (त्रिः पूत्वी) तीन प्रकार से लाकर (सूर्यत्वचम् अकृणोः) सूर्य के समान उज्ज्वल रंग-विरंगे वस्त्रों से आच्छादित कर।

सूक्त-समीक्षा

इस सूक्त में कई समस्याएं हैं—(मन्त्र १ म०) 'अपाला' वह कन्या है जिसको पालक पति नहीं मिला इस प्रकार प्रत्येक कुमारी कन्या 'अपाला' है। इसी प्रकार ब्रह्मचारी युवा 'सोम' है। इसका स्पष्टीकरण अथर्व वेद में का० १—सू० ११ में देखो। 'स्रुता' वह कन्या है जो रजस्वला होकर स्नान कर लेती है। अथवा गुरुगृह में स्नातिका हो। इसी प्रकार 'सोम' शब्द वीर्यवान् पुरुष वा विद्या और व्रत द्वारा स्नातक दोनों अर्थों को कहता है।

'विदत्'—कन्या जब पति को प्राप्त करती है वह 'पति का वेदन' करती है। 'विदत्' पद उसी प्रकार के विवाह द्वारा पति के वेदन को बतलाता है। (अस्तं) 'अस्त' गृह-आश्रम का वाचक है। उसको धारण करती कन्या पुरुष का सवन करे, आदर करे। क्यों? उसको अपना स्वामी और अपना परम शक्तिमान् रक्षक बनाने के लिये। अर्थात् 'इन्द्र' और 'शक्र' ये दोनों 'पति' के पद की योग्यता को बतलाते हैं।

(मं० २) उसी पुरुष को 'वीरक' कहा है। वही गृह २ को उज्ज्वल करता हुआ प्राप्त होता है। अर्थात् वही पुत्र होकर कुलदीपकवत् प्राप्त होता है। आगे कन्या पति को उसका कर्त्तव्य बतलाती है कि वह दोनों से उत्पन्न पुत्र का पालन करे।

'जम्भसुतं'—जाया च पतिश्च जम्भौ। जायतेऽस्यां, जनयति इति वा जाया, विजति इति नः उभौ जम्भौ। ताभ्यामुत्पन्नो जम्भसुतः तं। (धानवन्तं) धानम् आधानं, गर्भाधानसंस्कारवन्तं। स्वयं विधिवद् आहितम्। 'करम्भिणं'—करम्यः, करम्भः। करोते रम्भन् प्रत्ययः। क्रियावान् कर्मकुशलः। (अपूपवन्तं) अप दूरे आचार्यगृहे उपवन्तं उपवीतवन्तं। मध्यमपदलोपः। 'उक्थिनं'—उक्थो वेदो गुरूपदेशो वा तद्वन्तम्।

(मं० ३) पहले दोनों अपरिचित होते हैं वे दोनों परिचय प्राप्त करें। शनैः २ कन्या का पुरुष और पुरुष का कन्या परिचय प्राप्त करे फिर वे पति-पत्नी होने योग्य हैं। 'इन्दुः'—जब स्नातक कन्या के प्रति प्रेमार्द्र हो तो उस दशा में वह 'इन्दु' है, ऐश्वर्यवान् होने से भी 'इन्दु' है। परिचित होकर बाद में वह उसका पति अर्थात् 'इन्द्र' होने के लिये आवे।

(मन्त्र ४) विवाहेच्छुक वर शक्तिमान् क्रियाकुशल हो, जो वधू को भी पर्याप्त वस्त्रालंकार दे सके। जिस की शक्ति, कमाई और धन-सम्पदा से आकृष्ट होकर कन्या अपने पालक माता पिता का मोह छोड़ 'इन्द्र' अर्थात् पति से संगत हो, उसी से दिल मिलाकर रहे।

(पति-द्विषः)—यहां पति शब्द लौकिक पति का वाचक नहीं, प्रत्युत सामान्य पालक (Gardian) का वाचक है। वह सब बन्धु बान्धवों के प्रेम या मोह को त्याग कर भी पति के साथ हो लेती है। ऐसी दशा में यदि माता पितादि बाधक होते हैं तो वह उनके प्रति प्रेम त्याग देती है और वर के साथ ही प्रेम बांधती है। वही 'अप्रीति' यहां 'द्विष' पद

का वास्तविक अर्थ है। 'द्विष् अप्रीतौ' द्विष् का अर्थ अप्रीति है। परन्तु वैर अर्थ में द्वेष पद रूढ़ हो गया है।

(मन्त्र ५) विष्टपा = वि-तपा । तप रहित या संतापरहित। तपरहित अपरिपक्व 'ततस्य शिरः' यहां 'तत' वा 'तात' शब्द प्रिय अर्थ में भी हैं। इसी से। 'पिता' 'पुत्र' दोनों के लिये भी प्रयुक्त होता रहा है। अथवा तनोति सन्ततिम् इति ततः। जो सन्तान उत्पन्न करे वह 'तत' है। इससे यहां प्रियपति का वाचक होकर वरने योग्य पुरुष के लिये कहा है। शिर शब्द मुख के लिये उपलक्षण है, उस का मूंछरहित मुख न होवे, विवाहेच्छुक के प्रति कन्या की तरफ से यह १ म शर्त्त है कि वह सम्बन्ध करने के पूर्व अपने मुख पर बाल आने दे, वेद में 'खलति' आदि शब्द नहीं हैं, अतः पिता का गंजा शिर अर्थ करना असंगत है। २सरी शर्त्त है 'उर्वरा' कन्या जिसमें अभी गर्भ ग्रहण की शक्ति नहीं आई है, उसे उस योग्य अर्थात् 'उर्वरा' होने दे। (उर्वरा = उरु-वरा विशालवराङ्गदेशा। नितम्बिनीत्यर्थः) अर्थात् स्त्री का नितम्ब भाग अच्छा पुष्ट हो। ३सरी शर्त्त है वधू के उदर के समीप के भाग में भी यौवन चिन्हरूप रोम (Pubes) उत्पन्न हो जावें। अंग्रेज़ी भाषा में स्त्री की यौवन दशा को 'Puberty' कहा जाता है। उन रोमों से ही यौवन की दशा को बतलाने का प्रकार वेद से लिया है।

अथवा—विवाह में बंधने वाली समझदार कन्या वर से तीन याचना करे, तीनों बातें 'विष्टप' दुःखरहित हों। (१) (ततस्य शिरः) पिता का शिर संताप रहित हो, कन्या के विवाह के कारण पिता का शिर ऋणादि से ग्रस्त न हो, वह चिन्तातुर न हो, बहुत ऋणादि ग्रस्त होने या आर्थिक आघात लगने को भी 'सिर गंजा होना' चांद पर जूते लगना' आदि भावों से कहा जाता है। वह आशय बाद के कथाकारों ने व्यङ्ग में ले लिया प्रतीत होता है। (२) 'उर्वरा' यदि पिता की भूमि उर्वरा नहीं

अर्थात् उस के गोत्र में कोई पुत्र नहीं तो अभ्रातृमती कन्या के पेट से उत्पन्न नाती ही उस के वंश का चलाने वाला हो। (मनु का पुत्र-पुत्रिका-विधान) (२) 'मे उपोदरे' मेरे उदर के पास गर्भाशय में रहे पुत्र का विशेष पालन करना पति का कर्त्तव्य हो अर्थात् जो कन्या का हाथ पकड़े उसे उसके गर्भस्थ सन्तान को पालना होगा, कन्या के माता पिता को नहीं। ऐसा बन्धन न हो तो बाद में पुरुषों में विलासिता और बढ़े। विवाहित स्त्रियां कष्ट में पड़ जावें और गर्भहत्याएं खूब हों। जहां ऐसा धार्मिक या नैतिक बन्धन नहीं वहां गर्भपात बहुत होते हैं।

(मन्त्र ६) ५ वें मन्त्र में कही बातों को ही पुनः कहा है, वे अत्यन्त आवश्यक होने से उन पर बल दिया गया है।

(मन्त्र ७) 'रथस्य खे', 'अनसः खे', 'युगस्य खे'—यहां रथ, अनस, और युग ये तीन प्रकार के यानों के नाम हैं। वेगवान् यान रथ है, शकट या बैलगाड़ी अनस् है और इन के साहचर्य में युग भी अवश्य कोई रथ है। पाणिनि ने भी 'युग्यं च पत्रे' रथ या वाहनार्थ में युग्य पद निपातन से साधा है। कदाचित् जिस में स्त्री पुरुष की जोड़ी ही बैठ सके वह रथ 'युग' कहाता हो। 'ख' का अर्थ छिद्र यहां नहीं। यहां 'ख' का अर्थ अवकाश भाग है। प्रथम पितृगृह से विदा होते समय कन्या रथ में चढ़े, फिर लम्बा रास्ता बैलगाड़ी में और पति-गृह के समीप आकर स्वागत पूर्वक तीसरे यान 'युग' में चढ़े। इस स्वागत के अवसर पर वधू को रंगा हुआ उज्ज्वल वस्त्र पहन कर ही बैठना होता था, इस प्रकार यान द्वारा वधू का आगमन इन्द्र द्वारा कुमारी कन्या का त्रिःपवन करना है।

अथवा—पुरुष स्त्री की तीन प्रकार की परीक्षा ले, तीनों में शुचि पवित्र अर्थात् निर्दोष हो तो ग्रहण करे। 'रथस्य खे' रमण योग्य इन्द्रिय के छिद्र, वे पवित्र हों उन में रोग न हो गुह्यांगों के रोग सिफ़िलिस, सुजाक, प्रमेह, प्रदर सोमरोगादि न हो, (२) 'अनसः ख'

अन प्राणधारणे धातुः। प्राण-ग्रहण के छिद्र नाक, मुंह, फेफड़ा, उन में पीनस रोग, मुखपाक, वैरस्य और अष्ट रोग की फुन्सियां और फेफड़ों में राजयक्ष्मा आदि न हो, (३) 'युगस्य खे' शरीर में जो युग अर्थात् जोड़ा जोड़ा इन्द्रिय हैं उन के छिद्रों में दोष, जैसे नाक दो हैं, उन में गन्धादि न होना या दुर्गन्ध होना या छोटी बड़ी टेढ़ी नाक न होना, आंखे दो हैं उन की विकृति न हो, काणी या छोटी, बड़ी, न हो, मुख के जबाड़े, हाथ पैर आदि विकृत लंगड़े लूले न हों। इस प्रकार तीनों में कन्या को पवित्र, शुचि जानकर वह पुरुष उसको सूर्य के समान उज्ज्वल, चमचमाते वस्त्र देता है मानो उज्ज्वल त्वचा अर्थात् आच्छादन वाला करता है।

'अपाला' अत्रिसुता कहाती है। उसका तात्पर्य यह है कि स्मृतियों में आत्रेयी पद रजस्वलार्थ में रूढ़ है। वस्तुतः 'अत्रि' ही आत्रेयी है। स्वार्थ में तद्धित है। जो प्रथम रजस्वला होकर जिस के वर प्राप्त्यर्थ तीन वर्ष व्यतीत न हुए हों वह 'अत्रि' है 'नवयौवना' रजोधर्म युक्त।

[९२]

श्रुतकक्षः सुकक्षो वा ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१ विराडनुष्टुप् २, ४, ८—१२, २२, २५—२७, ३० निचृद् गायत्री। ३, ७, ३१, ३३ पादनिचृद् गायत्री। ५ आर्ची स्वराड् गायत्री। ६, १३—१५, २८ विराड् गायत्री। १६—२१,२३,२४,२९,३२ गायत्री॥ त्रयस्त्रिंशदृचं सूक्तम्॥

पान्तमा वो अन्धस इन्द्रमभि प्र गायत।
विश्वासाहं शतक्रतुं मंहिष्ठं चर्षणीनाम्॥ १॥

भा०—आप लोग (वः) आप के (अन्धसः पान्तम्) खाद्य पदार्थों के रक्षक (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् की (अभि प्र गायत) अच्छी प्रकार स्तुति करो। और (विश्व-साहं) सब को जीतने वाले, (शत-क्रतुं) सैकड़ों

कर्मों वाले, (चर्षणीनां) मनुष्यों के बीच (मंहिष्टं) सब से अधिक दानी पुरुष की (अभि प्रगायत) अच्छी प्रकार स्तुति करो।

पुरुहूतं पुरुष्टुतं गाथान्यं१ सनश्रुतम्।
इन्द्र इति ब्रवीतन ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! (पुरु-हूतं) बहुतों से पुकारने योग्य, बहुतों से स्वीकृत (पुरु-स्तुतं) बहुतों से प्रस्तुत, प्रशंसित (गाथान्यं) गुण गान करने योग्य, वा 'गाथा' वेदवाणी में प्रसिद्ध, (सन-श्रुतम्) सनातन काल से श्रवण योग्य, वा सनातन ज्ञान वेद का बहुश्रुत विद्वान् वा सन अर्थात् दान के कारण प्रसिद्ध पुरुष को (इन्द्रः इति ब्रवीतन) 'इन्द्र' इस प्रकार कहो उसका नाम 'इन्द्र' रक्खो।

इन्द्र इन्नो महानां दाता वाजानां नृतुः। महाँ अभिज्ञ्वा यमत् ३

भा०—(इन्द्रः इत्) वह परम ऐश्वर्यवान् ही (नः महानां) बड़े पूज्य गुणों का और (वाजानां) ऐश्वर्यों वा, ज्ञानों का (दाता) देने वाला, और (महान् नृतुः) बड़ा भारी नेता, संचालक है वह (अभिज्ञु) उत्तम ज्ञानसम्पन्न होकर (नः आ यमत्) हमें सद् व्यवस्था में रक्खे। अथवा वह (अभिज्ञु) आगे गोडे किये, विनीत हमें प्राप्त हो।

अपादु शिप्र्यन्धसः सुदक्षस्य प्रहोषिणः।
इन्दोरिन्द्रो यवाशिरः ॥ ४ ॥

भा०—(शिप्री) मुकुट धारण करने हारा, मुख-नासिकादि में सुन्दर, (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् पुरुष (सु-दक्षस्य) उत्तम ज्ञान और बल से युक्त (प्र-होषिणः) उत्तम रीति से बलादि देने वाले, (यवाशिरः) यवादि अन्नों से मिलाकर पकाये, (इन्दोः) दीप्ति-तेजोदायक (अन्धसः) स्वादु अन्न को (अपात्) पान करे और उसकी रक्षा करे। इसी प्रकार वह (सु-दक्षस्य) उत्तम बलशाली (प्र-होषिणः) उत्तम दानी (इन्दोः)

आर्द्र हृदय, दयालु (यवाशिरः) शत्रुनाशक जनों के प्रमुख (अन्धसः) अन्नादि के भोक्ता, जन को (क्षपाद्-उ) वह ऐश्वर्यवान् पालन करे ।

तम्वभि प्रार्चतेन्द्रं सोमस्य पीतये ।
तदिद्ध्यस्य वर्धनम् ॥ ५ ॥ १५ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! आप लोग (सोमस्य पीतये) ऐश्वर्य अन्नादि के पान और पालन या रक्षा के निमित्त आप (तम् इन्द्रम् अभि प्रार्चत) उसी ऐश्वर्यवान् की स्तुति करो, (तत् इत् हि अस्य वर्धनम्) वह ही उस को बढ़ाने वाला है । इति पञ्चदशो वर्गः ॥

अस्य पीत्वा मदानां देवो देवस्यौजसा विश्वाभि भुवना भुवत् ६

भा०—(मदानां देवस्य) हर्ष, तृप्ति और सुख के देने वाले (अस्य) इस उत्तम अन्न, प्रजा जन व जगत् का (पीत्वा) पान, उपभोग और पालन करके (देवः) वह तेजस्वी पुरुष स्वामी (ओजसा) पराक्रम से (विश्वा भुवना अभि भुवत्) समस्त लोकों को अपने वश करता है ।

त्यमु वः सत्रासाहं विश्वासु गीर्ष्वायतम् । आ च्यावयस्यूतये ७

भा०—हे विद्वन् ! (त्यम् उ) उस ही (सत्रासाहं) समवाय और सत्य के बल से सब को पराजित करने वाले (विश्वासु गीर्षु) समस्त वाणियों वा विद्याओं में (आयतम्) प्रसिद्ध, कुशल, व्यापक पुरुष को (ऊतये) रक्षा, ज्ञान-प्राप्ति आदि के निमित्त (वः आच्यावयसि) आप लोगों को प्राप्त करो ।

युध्मं सन्तमनर्वाणं सोमपामनपच्युतम् ।
नरमवार्यक्रतुम् ॥ ८ ॥

भा०—(युध्मं) युद्धकुशल दुष्टों को ताड़ने हारे, (सन्तम्) सत्-स्वरूप, (अनर्वाणं) अद्वितीय, (सोमपाम्) जगत् के पालक, (अनप-च्युतम्) अविनाशी, ध्रुव, स्थिर, अपने स्वरूप या स्थान से च्युत न होने वाले, (अवार्य-क्रतुम्) अन्यों से न हटाये जाने योग्य, दृढ़ पराक्रम वाले,

वा अकाट्य युक्तिमान् (नरम्) सर्व नायक पुरुष को हे विद्वन्! तू प्राप्त करा ।

शिक्षा ण इन्द्र राय आ पुरु विद्वाँ ऋचीषम ।

अवा नः पार्ये धने ॥ ९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (ऋचीषम) यथार्थ गुण स्तुति वाले ! तू (नः) हमें (पुरु रायः शिक्ष) बहुत धन प्रदान कर । तू (विद्वान्) ज्ञानवान् होकर (नः) हमें (पार्ये धने) पालन योग्य धन, वा शत्रुओं के धन के निमित्त वा संग्राम में (अव) रक्षा कर, वहां तक पहुंचा ।

अतश्चिदिन्द्र ण उपा याहि शतवाजया ।

इषा सहस्रवाजया ॥ १० ॥ १६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (अतः) इसी कारण (नः) हमें तू (शत-वाजया सहस्र-वाजया) सैकड़ों, सहस्रों बल, ज्ञान, अन्न वेगादि से युक्त (इषा) इच्छा शक्ति, प्रेरणा और अन्न, सेनादि के साथ (उप-आ याहि) प्राप्त हो । इति षोडशो वर्गः ॥

अयाम धीवतो धियोऽर्वद्भिः शक्र गोदरे ।

जयेम पृत्सु वज्रिवः ॥ ११ ॥

भा०—हे (शक्र) शक्तिशालिन् ! अन्यों को शक्ति देने हारे ! हम (धीवतः) कर्म और ज्ञानवान् पुरुष के (धियः) कर्मों और ज्ञानों को (अयाम) प्राप्त करें । हे (गो-दरे) गौ भूमि के विदारण-कार्य में कुशल कृषि करने वाले ! हे (गो-दरे) वाणी के मर्मों को खोल २ कर बतलाने हारे, वा भूमि या वाणी के धारक ! हे (वज्रिवः) बलशालिन् शस्त्रधर ! हम (अर्वद्भिः) अश्वों, वीर सैनिकों द्वारा (पृत्सु जयेम) संग्रामों में विजय लाभ करें ।

वयमु त्वा शतक्रतो गावो न यवसेष्वा । उक्थेषु रणयामसि १२

भा०—हे (शत-क्रतो) अपरिमित ज्ञान और कर्म वाले! (वयम् उ) हम (त्वा) तुझे (उक्थेषु) उत्तम वचनों से (यवसेषु गावः न) सुख आदि के निमित्त गौ के समान (त्वा रणयामः) तुझे प्रसन्न करते हैं।

विश्वा हि मर्त्यत्वनानुकामा शतक्रतो।
अगन्म वज्रिन्नाशसः॥ १३॥

भा०—हे (शत-क्रतो) अमित ज्ञानवन्! अमित शक्तिशालिन्! हे (वज्रिन्) बल वीर्यवन्! शस्त्रबल के स्वामिन्! हम (विश्वा हि) समस्त (मर्त्यत्वना) मनुष्योचित (अनुकामा) कामनाओं और (आशसः) आशाओं को (अगन्म) प्राप्त करें।

त्वे सु पुत्र शवसोऽवृत्रन्कामकातयः।
न त्वामिन्द्राति रिच्यते॥ १४॥

भा०—(शवसः पुत्र) बल के द्वारा बहुतों के रक्षक! (काम-कातयः) अपने नाना अभिलाषाओं को कहने वाले लोग (त्वे सु अवृत्रन्) तेरे अधीन सुख से रहते हैं। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (त्वाम् न अति-रिच्यते) तुझ से कोई बढ़कर नहीं है।

स नो वृषन्त्सनिष्ठया सं घोरया द्रवित्न्वा।
धियाविड्ढि पुरन्ध्या॥ १५॥ १७॥

भा०—हे (वृषन्) बलशालिन्! उत्तम प्रबन्धक! (सः) वह तू (सनिष्ठया) उत्तम विभाजक, दानशील, (घोरया) शत्रु को भय देने वाली, (द्रवित्न्वा) वेग से जाने वाली (पुरन्ध्या) बहुतों की पालक (धिया) बुद्धि और क्रिया वा नीति से (नः अविड्ढि) हमारा पालन कर। इति सप्तदशो वर्गः॥

यस्ते नूनं शतक्रतविन्द्र द्युम्नितमो मदः।
तेन नूनं मदे मदेः॥ १६॥

भा०—हे (शत-क्रतो) अपरिमित बलशालिन्! हे (इन्द्र) ऐश्व-

र्यवन्! (नूनं) निश्चय ही (ते) तेरा (यः) जो (द्युम्नि-तमः) अति यशो-जनक (मदः) हर्ष है (तेन) उस से (मदे) सब को तृप्त प्रसन्न हर्षित करने में तू (मदेः) स्वयं हर्षित हो।

यस्ते॑ चि॒त्रश्र॑वस्तमो॒ य इ॑न्द्र वृत्र॒हन्त॑मः।
य ओ॑जो॒दात॑मो॒ मदः॑॥ १७॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यः) जो (ते) तेरा (चित्र-श्रवस्तमः) आश्चर्यकारक श्रवण करने योग्य अद्भुत और (यः वृत्रहन्तमः) शत्रुओं को खूब दण्डित करने वाला और (यः ओजो-दातमः) पराक्रम को देने वाला (मदः) आनन्द वा हर्ष है तू उससे हमें भी सुखी कर।

वि॒द्मा हि यस्ते॑ अद्रिव॒स्त्वाद॑त्तः सत्य सोमपाः।
विश्वा॑सु दस्म कृ॒ष्टिषु॑॥ १८॥

भा०—हे (अद्रिवः) मेघवत् उदार जनों और पाषाणवत् शत्रुनाशक जनों के स्वामिन्! हे (सत्य) न्यायनिष्ठ! हे (दस्म) शत्रुनाशन! हे (सोमपाः) प्रजावत् ऐश्वर्य के पालक! भोक्ता! अन्नोषधि के पान करनेहारे! (यः त्वादत्तः) जो तेरे द्वारा दिया हुआ (विश्वासु कृष्टिषु) समस्त मनुष्यों में ऐश्वर्य है हम (ते विद्महि) अवश्य उसे तेरा ही जानें।

इन्द्रा॑य म॒द्वने॑ सु॒तं परि॑ ष्टोभन्तु नो॒ गिरः॑।
अ॒र्कम॑र्चन्तु का॒रवः॑॥ १९॥

भा०—(मद्वने) हर्ष से युक्त (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् स्वामी के लिये (नः गिरः सुतं परि स्तोभन्तु) हमारी वाणी उसके ऐश्वर्य की स्तुति करे। और (कारवः) विद्वान् वाग्मी लोग (अर्कम् अर्चन्तु) उस पूज्य जन की अर्चना करें।

यस्मि॒न्विश्वा॒ अधि॒ श्रियो॒ रण॑न्ति स॒प्त सं॒सदः॑।
इन्द्रं॑ सु॒ते ह॑वामहे॥ २०॥ १८॥

भा०—(यस्मिन् अधि) जिसके आश्रय (विश्वाः श्रियः रणन्ति)

सब सम्पदायें वा आश्रित प्रजाएं शोभा पातीं और सुख प्राप्त करती हैं और जिसके अधीन (सप्त संसदः) साथ बैठने वाले सात सचिव (रणन्ति) उसको उत्तम ज्ञानोपदेश करते हैं उस (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् को (सुते) अभिषेक युक्त राज्य पर आह्वान करते हैं। अध्यात्म में (सप्त संसदः) सात प्राणगण। इत्यष्टादशो वर्गः॥

त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत तमिद्वर्धन्तु नो गिरः ॥२१॥

भा०—(त्रि-कद्रुकेषु) तीनों लोकों में (चेतनं यज्ञम्) सबको चेतना देने वाले पूज्य पुरुष को (देवासः अत्नत) विद्वान् गण, आत्मा को इन्द्रियों के समान प्राप्त करते हैं, (तम् इत् नः गिरः वर्धन्तु) उसको ही हमारी वाणियां बढ़ाती हैं, उसी का गुण गान करती हैं।

आ त्वा विशन्त्विन्दवः समुद्रमिव सिन्धवः।
न त्वामिन्द्राति रिच्यते ॥ २२ ॥

भा०—(समुद्रम् इव सिन्धवः) नदियां जिस प्रकार समुद्र में प्रवेश करती हैं उसी प्रकार (इन्दवः त्वा आविशन्तु) समस्त ऐश्वर्य और विद्वान् जीवगण प्रभो! तुझमें प्रवेश करें। हे (इन्द्र न त्वाम् अति रिच्यते) ऐश्वर्यवन्! तुझसे कोई बढ़ कर नहीं है।

विव्यक्थ महिना वृषन्भक्षं सोमस्य जागृवे।
य इन्द्र जठरेषु ते ॥ २३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यः) जो तेरे (जठरेषु) उदरों में, तेरे अधीन है, हे (जागृवे) जागरणशील! हे (वृषन्) बलशालिन्! तू उस (सोमस्य भक्षं) महान् ऐश्वर्य के सेवनीय अंश को (महिना) अपने महान् सामर्थ्य से (विव्यक्थ) व्याप्त है।

अरं त इन्द्र कुक्षये सोमो भवतु वृत्रहन्।
अरं धामभ्य इन्दवः ॥ २४ ॥

भा०—हे (वृत्र-हन्) पाप के नाशक! हे (इन्द्र) शत्रुहन्तः!

(सोमः) ऐश्वर्यं (ते कुक्षये अरं भवतु) तेरे कोश के लिये बहुत हो। (इन्दवः धामभ्यः अरं भवन्तु) ऐश्वर्य और वेगवान् सैन्य गण तेरे तेजों की वृद्धि के लिये बहुत हों।

अरमश्वाय गायति श्रुतकक्षो अरं गवे।
अरमिन्द्रस्य धाम्ने ॥ २५ ॥

भा०—(श्रुत-कक्षः) श्रुत, वेद को अवगाहन करने वाला, वा कक्षा अर्थात् वेदवाणी का श्रवण करने वाला विद्वान् जन, (अश्वाय गवे धाम्ने) उसके अश्व, गौ और तेज की (अरं अरं गायति) खूब खूब स्तुति करता है अर्थात् उस प्रभु का बल, वाणी और तेज बहुत है।

अरं हि ष्मा सुतेषु णः सोमेष्विन्द्र भूषसि।
अरं ते शक्र दावने ॥ २६ ॥ १९ ॥

भा०—(नः सुतेषु सोमेषु) हमारे उत्पन्न ऐश्वर्यों के आधार पर तू ही (अरं भूषसि हि ष्म) बहुत पर्याप्त समर्थ हो। हे (शक्र) शक्तिशालिन्! (ते दावने अरम्) तुझ दाता के लिये भी ऐश्वर्य बहुत अधिक प्राप्त हों। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

पराकात्ताच्चिदद्रिवस्त्वां नक्षन्त नो गिरः।
अरं गमाम ते वयम् ॥ २७ ॥

भा०—(पराकात्तात् चित्) दूर से भी दूर से हे (अद्रिवः) शक्तिमन्! (नः गिरः त्वां नक्षन्त) हमारी वाणियां तुझ तक पहुंचती हैं। (वयम् ते अरं गमाम) हम तुझ से बहुत कुछ प्राप्त करें।

एवा ह्यसि वीरयुरेवा शूर उत स्थिरः।
एवा ते राध्यं मनः ॥ २८ ॥

भा०—तू (वीर-युः एव हि असि) वीरों को चाहने वाला है। हे (शूर) शूरवीर! (उत त्वं स्थिरः एव हि असि) और तू स्थिर ही है। (ते मनः एव राध्यं) तुझे मन को भी वश करना चाहिये।

एवा रातिस्तुवीमघ विश्वेभिर्धायि धातृभिः ।
अधा चिदिन्द्र मे सचा ॥ २९ ॥

भा०—हे (तुवी-मघ) बहुत धन के स्वामिन् ! (रातिः एव) तेरा दान ही (विश्वेभिः धातृभिः धायि) सब पोषक जन धारण करते हैं । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (अधचित् मे सचा) और तू ही मेरा सहायक है ।

मो षु ब्रह्मेव तन्द्रयुर्भुवो वाजानां पते ।
मत्स्वा सुतस्य गोमतः ॥ ३० ॥

भा०—हे (वाजानां पते) ज्ञानों, ऐश्वर्यों, बलों, और सेनाओं के पालक ! हे ज्ञानों के पालक ! (ब्रह्मा इव) चतुर्वेदवित् ब्राह्मण विद्वान् यज्ञ के ब्रह्मा के समान तू (तन्द्रयुः मो सु भुवः) आलस्य से युक्त मत हो । तू (गोमतः सुतस्य) गो दुग्ध से युक्त अन्नादि से (मत्स्व) तृप्त हो ।

मा न इन्द्राभ्या३दिशः सूरो अक्तुष्वा यमन् ।
त्वा युजा वनेम तत् ॥ ३१ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रुहन्तः ! (नः) हमें (आदिशः) आदेष्टा शासक और (सूरः) विचरणशील तेजस्वी लोग (अक्तुषु) रात्रिकाल में (मा आयमन्) मत बांधें । (त्वा युजा) तुझ सहायक से हम (तत् वनेम) उन दुष्ट जनों का नाश करें ।

त्वयेदिन्द्र युजा वयं प्रति ब्रुवीमहि स्पृधः ।
त्वमस्माकं तव स्मसि ॥ ३२ ॥

भा०—(त्वया इत् युजा) तुझ सहायक से ही (वयं) हम (स्पृधः) स्पर्धा करने वालों का (प्रति ब्रुवीमहि) प्रति वचन वा उत्तर दे सकें। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! विद्वन् ! (त्वम् अस्माकम्) तू हमारा है और हम (तव स्मसि) तेरे हैं ।

त्वामिद्धि त्वायवोऽनुनोनुवतश्चरान् ।
सखाय इन्द्र कारवः ॥ ३३ ॥ २० ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (कारवः) स्तुतिकर्त्ता (सखायः) मित्रगण (त्वायवः) तुझे ही चाहते हुए, और (त्वाम् इत् हि अनु नो नुवतः) तुझे ही प्रतिदिन स्तुति करते हुए (व्रतान्) व्रताचरण करें। इति विंशो वर्गः॥

[९३]

सुकक्ष ऋषिः ॥ १—३३ इन्द्रः। ३४ इन्द्र ऋभवश्च देवताः॥ छन्दः—१, २४, ३३ विराड् गायत्री। २—४, १०, ११, १३, १५, १६, १८, २१, २३, २७—३१ निचृद् गायत्री। ५—९, १२, १४, १७, २०, २२, २५, २६, ३२, ३४ गायत्री। १९ पादनिचृद् गायत्री॥

उद्घेदभि श्रुतामघं वृषभं नर्यापसम्। अस्तारमेषि सूर्य॥१॥

भा०—हे (सूर्य) सूर्यवत् तेजस्विन्! तू (श्रुत-मघं) उत्तम धन में प्रसिद्ध, (वृषभं) बलवान् (नर्यापसं) मनुष्यों के हितकारी कार्य करने वाले, (अस्तारम्) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाले मनुष्य को तू (घ इत् उत् एषि) प्राप्त होकर अवश्य उदय को प्राप्त हो।

नव यो नवतिं पुरो बिभेद बाह्वोजसा। अहिं च वृत्रहावधीत्॥२॥

भा०—(यः) जो (बाह्वोजसा) बाहु के पराक्रम से (नव-नवतिं) ९९ (पुरः) प्रकोटों को (बिभेद) तोड़ने में समर्थ है वह (वृत्र-हा) शत्रुनाशक राजा (अहिं च अवधीत्) सूर्य को मेघ के समान सन्मुख आये शत्रु को नाश करे।

स न इन्द्रः शिवः सखाश्वावद्गोमद्यवमत्।
उरुधारेव दोहते॥३॥

भा०—(सः) वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् (शिवः) कल्याणकारक, सब में व्यापक, सब सुखों का दाता, (सखा) सब का मित्रवत् प्रिय (अश्वावत् गोमत्, यवमत्,) अश्व, गौ, और यव से सम्पन्न (उरु-धारा इव) बहुतों की पोषक भूमि, वा बहुत धारा वाली गौ के समान,

वा बड़ी विशाल वेद वाणी के समान (दोहते) हमें सुख ज्ञानादि प्रदान करे।

यद॒द्य कच्च॑ वृत्रहन्नु॒दगा॑ अ॒भि सू॑र्य । सर्वं॒ तदि॑न्द्र ते॒ वशे॑ ॥ ४ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्) विघ्नों के नाशक! (अद्य यत् कत् च अभि उत् अगाः) जिस किसी को भी लक्ष्य कर तू आज वा कभी उठ खड़े होने में समर्थ है वह जब चाहे, तू किसी भी पदार्थ को उत्तम रीति से प्राप्त कर सकता है। (तत् सर्वं ते वशे) वह सब कुछ तेरे ही वश में है।

यद्वा॑ प्रवृद्ध सत्पते॒ न म॑रा॒ इति॒ मन्य॑से ।
उ॒तो तत्स॒त्यमित्तव॑ ॥ ५ ॥ २१ ॥

भा०—हे (सत्-पते) सज्जनों एवं सत् अर्थात् नित्य पदार्थों के पालक स्वामिन्! हे (प्रवृद्ध) महान्! (यद् वा न मरै इति मन्यसे) जो तू समझता है कि मैं कभी नहीं मर सकता सो (तत्) वह समझना (तव सत्यम् इत्) तेरा सत्य ही है। तू अविनाशी, अमृत, अजर, नित्य आत्मा है। इत्येकविंशो वर्गः ॥

ये सोमा॑सः परा॒वति॒ ये अ॑र्वा॒वति॑ सुन्वि॒रे ।
सर्वां॒स्ताँ इ॑न्द्र गच्छसि ॥ ६ ॥

भा०—(ये) जो (परावति) दूर देश में और ये (अर्वावति) समीप देश में भी (सोमासः) अन्न, ओषधि वर्ग, रत्नादि ऐश्वर्य (सुन्विरे) उत्पन्न हों, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (तान् सर्वान् गच्छसि) उन सब को प्राप्त कर (२) पास और दूर के सब उत्पन्न बालकों को आचार्य पढ़ावे। (३) पास दूर सब जीव वा लोकगण प्रभु को प्राप्त हैं।

तमिन्द्रं॑ वाजयामसि म॒हे वृ॒त्राय॒ हन्त॑वे ।
स वृषा॑ वृष॒भो भु॑वत् ॥ ७ ॥

भा०—(तम् इन्द्रम्) उस शत्रुहन्ता, सूर्यवत् तेजस्वी को हम (वृत्राय हन्तवे) बड़े भारी, बढ़ते शत्रु वा [illegible] नाश करने के

लिये (वाजयामसि) अधिक बलवान् करते हैं। (सः वृषाः) वह बलवान् पुरुष ही (वृषभः भुवत्) सब सुखों, ऐश्वर्यों का दाता सर्वश्रेष्ठ है।

इन्द्रः स दामने कृत ओजिष्ठः स मदे हितः।
द्युम्नी श्लोकी स सोम्यः ॥ ८ ॥

भा०—(इन्द्रः) वह ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता, तेजस्वी पुरुष (ओजिष्ठः) सब से अधिक पराक्रमशाली होकर ही (दामने कृतः) सब को भृति-वृत्ति देने और प्रजा को दमन करने के कार्य पर नियुक्त होता है। (सः मदे हितः) वही सब को हर्षित करने के लिये स्थापित है, वह (द्युम्नी) यशस्वी, वह (श्लोकी) कीर्त्तिवान्, (सः सोम्यः) वह सोम अर्थात् अन्न, जल, ऐश्वर्यादि से सत्कार करने योग्य है।

गिरा वज्रो न सम्भृतः सबलो अनपच्युतः।
ववक्ष ऋष्वो अस्तृतः ॥ ९ ॥

भा०—(वज्रः न) शस्त्र के समान अति तीक्ष्ण (गिरा सम्भृतः) वाणी द्वारा अच्छी प्रकार धारित, एवं (स-बलः) बलशाली, (अनपच्युतः) शत्रुओं से अपराजित, (अस्तृतः) अबाधित, (ऋक्षः) महान् (ववक्ष) समस्त ऐश्वर्य पद को धारण करता है। (२) प्रभु (अनपच्युतः) अप्राप्य, अवाङ्मनसगोचर है। वह (ववक्ष) समस्त जगत् को धारण कर रहा है।

दुर्गे चिन्नः सुगं कृधि गृणान इन्द्र गिर्वणः।
त्वञ्च मघवन्वशः ॥ १० ॥ २२ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (गिर्वणः) वाणी द्वारा सेवनीय ! हे विद्वन् ! तू (गृणानः) स्तुति किया जाता हुआ, वा हमें उपदेश करता हुआ हे विद्वन् ! (नः) हमारे लिये (दुर्गे) दुर्गम स्थान में भी (सुगं कृधि) सुगम मार्ग कर। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (त्वं च नः वशः) और तू सदा हमें प्रेम से चाह और हमें अपने वश में रख। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

यस्य॑ ते॒ नू चि॑दा॒दिशं॒ न मि॒नन्ति॑ स्व॒राज्य॑म् ।
न दे॒वो नाध्रि॑गु॒र्जनः॑ ॥ ११ ॥

भा०—(यस्य ते) जिस तेरे (आदिशं) आदेश को और (स्वराज्यम्) तेरे अपने राज्य को (नूचित्) भी (न मिनन्ति) कोई भंग नहीं करते । (न देवः) न सूर्यवत् तेजस्वी और (न अध्रिगुः जनः) न वे रोक जाने वाला, पराक्रमी ही तेरे आदेश को भंग करता है ।

अधा॑ ते॒ अप्र॑तिष्कुतं दे॒वी शुष्मं॑ सपर्यतः । उ॒भे सु॑शिप्र॒ रोद॑सी १२

भा०—(अध) और हे (सुशिप्र) उत्तम बलशालिन् तेजस्विन् ! (उभे रोदसी) दोनों सूर्य पृथ्वीवत् , प्रबल निर्बल वा स्व, पर सेनाएं, (देवीः) विजयेच्छुक होकर भी (ते) तेरे (अप्रतिष्कुतं) अनुपम, (शुष्मं) बल की (सपर्यतः) सेवा, आदर करती हैं । (२) उस परमेश्वर के बल की यह आकाश और पृथिवी दोनों सेवा करती हैं ।

त्वमे॒तद॑धारयः कृ॒ष्णासु॒ रोहि॑णीषु च । परु॑ष्णीषु॒ रुश॒त्पयः॑ १३

भा०—(कृष्णासु) काली (रोहिणीषु च) और रक्त वर्ण की (परुष्णीषु) गौओं में (त्वम् एतत् रुशत् पयः अधारयः) तू ही इस चमकते दूध को धारण कराता है । अथवा—हे प्रभो ! तू (कृष्णासु) कृषि करने योग्य भूमियों में (रुशत् पयः) चमकता लहलाता अन्न, (रोहिणीषु) उगने वाली ओषधि में तेजोयुक्त तीक्ष्ण रस और (परुष्णीषु) कुटिलगामिनी नदियों में जल वा, पर्व २ पर उष्ण देह की नाड़ियों द्वारा उज्ज्वल रुधिर को तू ही वृष्टि द्वारा सूर्यवत् धारण कराता है ।

वि यद॒हेरध॑ त्वि॒षो विश्वे॑ दे॒वासो॒ अक्र॑मुः ।
वि॒दन्मृ॒गस्य॒ ताँ अमः॑ ॥ १४ ॥

भा०—(अध)-और (यद्) जब (विश्वे देवासः) सब विद्वान्, तेजस्वी लोग (अहेः त्विषः) मेघ की विद्युत् कान्तियों वा (अहेः त्विषः) सूर्य की कान्तियों के सदृश (अहेः त्विषः) आगे बढ़ते वीर के तेजों को

(भक्रमुः) प्राप्त करते हैं अब (तान्) उनको (मृगस्य) सिंह के समान वीर वा अति शुद्ध तेजस्वी प्रभु का (अमः) बल (विदत्) प्राप्त होता है।

आदु मे निवरो भुवद्वृत्रहादिष्ट पौंस्यम्।
अजातशत्रुरस्तृतः ॥ १५ ॥ २३ ॥

भा०—(भात् उ) अनन्तर ही वह (मे निवरः) मुझ प्रजागण के समस्त कष्टों का निवारण करने वाला, (भुवत्) होता है। वह (वृत्रहा) दुष्टों का नाशक वीर, मेघों के छेदक भेदक विद्युत् वा सूर्य के समान (पौंस्यम् अदिष्ट) बल पराक्रम को करता है। (अजात-शत्रुः अस्तृतः) तब उस का कोई शत्रु नहीं रहता और फिर वह विनष्ट नहीं होता। (२) प्रभु परमेश्वर सब कष्टों का निवारक, दुष्टनाशक है, वह हमें बल दे। उस का कोई शत्रु नहीं, वह अविनाशी है। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

श्रुतं वो वृत्रहन्तमम्प्र शर्धं चर्षणीनाम्।
आ शुषे राधसे महे ॥ १६ ॥

भा०—(वः) आप लोगों में से आपके (वृत्र-हन्तमम्) सब विघ्नों के नाशक (चर्षणीनां) मनुष्यों में (श्रुतं) प्रसिद्ध (शर्धं) बलवान् पुरुष को (शुषे) शत्रुओं के शोषण और (महे राधसे) बड़े भारी धन प्राप्त करने के लिये (प्र आ) अच्छी प्रकार प्राप्त करो।

अया धिया च गव्यया पुरुणामन्पुरुष्टुत।
यत्सोमेसोम आभवः ॥ १७ ॥

भा०—हे (पुरु-नामन्) बहुत से नामों वाले! बहुतों को नमाने हारे! हे (पुरु-स्तुत) बहुतों से स्तुति करने योग्य! (यत्) जो तू (सोमे-सोमे) प्रत्येक 'सोम', ऐश्वर्य प्रत्येक जीव और प्रत्येक बल पर (आभवः) सामर्थ्यवान् है उस तुझे हम (अया) इस (गव्यया धिया

च) वाणी से युक्त क्रिया द्वारा तेरी सेवा करते हैं। अर्थात् जैसी तेरी आज्ञा हो वा जैसी हमारी वाणी हो तदनुसार हम कार्य पूरा करें।

बोधिन्मना इदस्तु नो वृत्रहा भूर्यासुतिः।
शृणोतु शक्र आशिषम् ॥ १८ ॥

भा०—(वृत्र-हा) शत्रुओं और विघ्नों का नाशक (शक्रः) शक्तिशाली पुरुष (नः) हमारे बीच (बोधित्-मनाः) ज्ञान से युक्त चित्त वाला, और (भूरि-आसुतिः) बहुत से अन्नों का स्वामी (इत् अस्तु) हो। वह (नः आशिषम्) हमारी कामना और प्रार्थना को (श्रणोतु) श्रवण करे।

कया त्वन्न ऊत्याभि प्र मन्दसे वृषन्।
कया स्तोतृभ्य आ भर ॥ १९ ॥

भा०—हे (वृषन्) बलशालिन्! तू (नः कया ऊत्या) हमें किस प्रकार की रक्षण-नीति से (प्र मन्दसे) पालन करके अधिक हर्षित होता है? और (कया) किस नीति से (स्तोतृभ्यः आ भर) विद्वानों का सुख प्राप्त कराता है?

कस्य वृषा सुते सचा नियुत्वान्वृषभो रणत्।
वृत्रहा सोमपीतये ॥ २० ॥ २४ ॥

भा०—(नियुत्वान्) अश्व सैन्यों का स्वामी, (वृषभः) बलवान् (वृत्र-हा) शत्रुहन्ता, (वृषा) उत्तम प्रबन्धकर्त्ता, (कस्य सुते) किस के ऐश्वर्य पर (सचा) और किस के सहयोग में (सोम-पीतये) ऐश्वर्य के प्राप्ति और रक्षा के कार्य में (रणत्) रण करे और आनन्द लाभ करे। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

अभी षु णस्त्वं रयिं मन्दसानः सहस्रिणम्।
प्रयन्ता बोधि दाशुषे ॥ २१ ॥

भा०—(त्वं नः) तू हमें (मन्दसानः) अति हर्षित होकर (सह-

स्त्रिणं रयिम्) सहस्रों का धन (अभि सु) अच्छी प्रकार आदरपूर्वक (यन्ता) प्रदान करने हारा हो और तू (दाशुषे) दानशील के हित को भी (अभि सु बोधि) अच्छी प्रकार जान।

पत्नीवन्तः सुता इम उशन्तो यन्ति वीतये।
अपां जग्मिर्निचुम्पुणः ॥ २२ ॥

भा०—(अपां जग्मिः) जिस प्रकार समुद्र में समस्त नदी, जलधाराएं आकर मिलती हैं, वह जलधाराओं के प्राप्त होने का एकमात्र आधार है और जिस प्रकार वह समुद्र ही (निन्चुम्पुणः) जलों को अपने भीतर लेकर ही पूर्ण होता है, उसी प्रकार राजा भी (अपां जग्मिः) सब आप्त प्रजाओं का शरण जाने योग्य और (निचुम्पणः) समुद्रवत् उन से ही करादि लेकर तृप्त या पूर्ण होने वाला है। हे राजन्! (पत्नीवन्तः) पालनकारिणी शक्ति या नीति से वा पत्नीयुक्त वाले गृहस्थ जन और (सुताः) अभिषिक्त वा पुत्रवत् प्रजा रूप (इमे) ये (उशन्तः) धनादि कामनावान् जन, (वीतये) रक्षा प्राप्त करने के लिये (यन्ति) तुझे प्राप्त होते हैं। (२) इसी प्रकार परमेश्वर समुद्रवत् (अपां जग्मिः) समस्त जीवों का एकमात्र प्राप्तव्य है, वह पूर्ण है, वह सब विश्व को अपने भीतर लेकर भी पूर्ण है। ये उत्पन्न जीव उस पालक शक्ति से युक्त होकर भी सुख कामना से युक्त होकर रक्षार्थ भगवान् की शरण जाते हैं।

इष्टा होत्रा असृक्षतेन्द्रं वृधासो अध्वरे।
अच्छावभृथमोजसा ॥ २३ ॥

भा०—(ओजसा) बल पराक्रम और शौर्य से (अव-भृथम्) पूर्ण (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता पुरुष को (अध्वरे) हिंसारहित प्रजा पालन के कार्य में (इष्टाः) एकत्र संगत होकर (होत्राः) अधिकार देने वाले (वृधासः) उस के पद, बलादि के बढ़ाने वाले सहयोगी जन ही (अच्छ) सब के समक्ष (असृक्षत) इसे अपना प्रभु बनाते हैं।

इह त्या संधमाद्या हरी हिरण्यकेश्या।
वोह्ळामभि प्रयो हितम् ॥ २४ ॥

भा०—(इह) इस राष्ट्र में (त्या) वे दोनों (सध-माद्या) एक साथ आनन्द लाभ करने वाले, उस के हर्ष में हर्षित, (हिरण्य-केश्या) सुवर्ण के समान प्रदीप्त तेज को केशोंवत् धारण करने वाले, तेजस्वी (हरी) अश्वों के तुल्य अग्रगामी स्त्री पुरुष वा दो नेता जन (हितम् प्रयः) हितकारक गन्तव्य मार्ग की ओर (अभि वोढाम्) ले जावें।

तुभ्यं सोमाः सुता इमे स्तीर्णं बर्हिर्विभावसो।
स्तोतृभ्य इन्द्रमा वह ॥ २५ ॥ २५ ॥

भा०—हे (विभावसो) विशेष दीप्ति से युक्त ऐश्वर्य के स्वामिन्! (इमे सुताः सोमाः) ये उत्पन्न प्रजा जन और ऐश्वर्यवान् शासकगण (तुभ्यम्) तेरे ही हितार्थ हैं और (बर्हिः) यह बृहत् राष्ट्र वा उत्तम आसन भी (तुभ्यम्) तेरे लिये ही (स्तीर्णम्) विस्तृत है। तू (स्तोतृभ्यः) विद्वानों के लिये (इन्द्रम् आ वह) ऐश्वर्य को प्राप्त करा, उन को प्रदान कर। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

आ ते दक्षं वि रोचना दधद्रत्ना वि दाशुषे।
स्तोतृभ्य इन्द्रमर्चत ॥ २६ ॥

भा०—(दाशुषे ते) दानशील तेरा ही (दक्षं) तेज, बल, प्रताप और ज्ञानसामर्थ्य (आ) सब ओर है। वह इन्द्र, ऐश्वर्यवान् (रोचना रत्ना विदधत्) रुचिकर, तेजोयुक्त नाना उत्तम रत्न, धन, ऐश्वर्य (स्तोतृभ्यः) विद्वानों को विशेष रूप से देता वा उनके लिये स्वयं धारण कराता है। आप लोग हे विद्वानो! उसी (इन्द्रम् अर्चत) ऐश्वर्यवान् पुरुष की स्तुति करो।

आ ते दधामीन्द्रियमुक्था विश्वा शतक्रतो।
स्तोतृभ्य इन्द्र मृळय ॥ २७ ॥

भा०—हे (शतक्रतो) अपरिमित बल और ज्ञान से सम्पन्न स्वामिन्!

मैं (वे) तेरे लिये (विश्वा इत्था) समस्त स्तुति वचन और समस्त (इन्द्रियम्) राजादि से सेवनीय ऐश्वर्य (आदधामि) रखता हूं तुझे ही समर्पित करता हूँ। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (स्तोतृभ्यः मृडय) विद्वान् स्तोता, गुण प्रशंसकों को सुखी कर।

भद्रम्भद्रं न आ भरेषमूर्जं शतक्रतो। यदिन्द्र मृळयासि नः २८

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यत्) जो तू (नः मृडयासि) हमें सुखी करता है, वह तू हे (शतक्रतो) अपरिमित बलशालिन्! (नः भद्रं-भद्रम्) हमें अतिसुखकारक, (इषम् ऊर्जम्) अन्न और रस, बल, आदि (आ भर) प्राप्त करा।

स नो विश्वान्या भर सुवितानि शतक्रतो।
यदिन्द्र मृळयासि नः ॥ २९ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (यत् नः मृडयासि) जो तू हमें सुखी करता है। हे (शतक्रतो) अपरिमित ज्ञानवन्! (सः) वह तू (विश्वानि सुवितानि) समस्त प्रकार के सुखजनक पुण्य पदार्थ वा साधन (आ भर) प्राप्त करा। 'सुवितानि' सुख प्राप्ति के साधन, उत्तम आचरण, इस के विपरीत 'दुरितानि' दुःखदायी बुरे काम, २९, ३० मन्त्रों के साथ "विश्वानि देव सवित०" इस मन्त्र की तुलना करो।

त्वामिद्वृत्रहन्तम सुतावन्तो हवामहे।
यदिन्द्र मृळयासि नः ॥ ३० ॥ २६ ॥

भा०—(यत्) जो तू हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् (नः मृडयासि) हमें सुखी करता है, हे (वृत्रहन्तम) दुष्ट पुरुषों को अच्छी प्रकार दण्ड देने हारे! (सुतावन्तः) ऐश्वर्यवान् हम लोग (त्वाम् इत् हवामहे) तुझे ही रक्षार्थ प्रार्थना करते हैं। इति षड्विंशो वर्गः ॥

उप नो हरिभिः सुतं याहि मदानाम्पते।
उप नो हरिभिः सुतम् ॥ ३१ ॥

भा०—हे (मदानां पते) हर्षजनक और तृप्तिजनक, ऐश्वर्यों और अन्नों के पालक स्वामिन् ! तू (हरिभिः) विद्वान् प्रजास्थ मनुष्यों के द्वारा (नः) हमारे बीच (सुतं उप याहि) अभिषेक या ऐश्वर्य पद को प्राप्त हो और (नः हरिभिः सुतम् उप याहि) हमारे जनों के साहाय्य से ही उत्तम ऐश्वर्य को प्राप्त कर ।

द्विता यो वृत्रहन्तमो विद इन्द्रः शतक्रतुः ।
उप नो हरिभिः सुतम् ॥ ३२ ॥

भा०—(यः) जो (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता राजा (वृत्र-हन्तमः) दुष्ट पुरुषों को अति अधिक दण्ड देने और विनाश करने हारा, और (शत-क्रतुः) अपरिमित बलशाली इस प्रकार (द्विता) दो प्रकार का जाना जाता है, वह (हरिभिः) विद्वान् पुरुषों और अश्वादि सैन्य गणों सहित (नः सुतम्) हमारे ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र को (उप) प्राप्त हो ।

त्वं हि वृत्रहन्नेषां पाता सोमानामसि ।
उप नो हरिभिः सुतम् ॥ ६३ ॥

भा०—हे (वृत्रहन्) दुष्टों के नाशक ! (त्वं हि) तू निश्चय करके (एषां) इन (सोमानां पाता असि) ऐश्वर्यों और प्रजा जनों का पालक है । तू (नः सुतं हरिभिः उप याहि) हमारे इस ऐश्वर्य युक्त राष्ट्र को विद्वान् जनों और वीर पुरुषों सहित प्राप्त हो ।

इन्द्र इषे ददातु न ऋभुक्षणमृभुं रयिम् ।
वाजी ददातु वाजिनम् ॥ ३४ ॥ २७ ॥ ९ ॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता राजा वा सेनापति (नः) हमें (इषे) अन्न और बल सेना आदि प्राप्त करने के लिये (ऋभुक्षणं) सत्य ज्ञान से चमकने और 'ऋभु' उत्तम शिल्पी जनों को बसाने वाले महान् (ऋभुं) ज्ञान, सत्यादि से युक्त (रयिम्) ऐश्वर्य (नः ददातु) हमें दे । (वाजी) वह बलवान्, वेगवान् पुरुष (नः) हमें (वाजिनम्)

बलवान् सैन्य, और अश्वादि सैन्य (ददातु) प्रदान करे। इति सप्तविंशो वर्गः ॥ इति नवमोऽनुवाकः ॥

[९४]

बिन्दुः पूतदक्षो वा ऋषिः ॥ मरुतो देवता ॥ छन्दः—१, २, ८ विराड् गायत्री। ३, ५, ७, ९ गायत्री। ४, ६, १०—१२ निचृद् गायत्री ॥

गौर्धयति मरुतां श्रवस्युर्माता मघोनाम्। युक्ता वह्नी रथानाम् १

भा०—जब (रथानाम्) वेग से जाने वाले, बलवान् रथादि सैन्यों वा महारथी जनों के (वह्नी युक्ता) घोड़े वा बैल, युद्धरथ वा अन्न आदि-संग्रहार्थ युद्धार्थ जुत जाते हैं, तब (मघोनां मरुताम्) ऐश्वर्यवान् मनुष्यों की (माता) माता के समान पूज्य (श्रवस्युः) श्रवस्यु, अर्थात् अन्न बल और कीर्त्ति-प्रद होकर पृथिवी (गौः धयति) गौ के समान सब को अन्न प्रदान करती है।

यस्यां देवा उपस्थे व्रता विश्वे धारयन्ते।
सूर्यामासा दृशे कम् ॥ २ ॥

भा०—(यस्याः) जिस की (उपस्थे) गोद में, (विश्वे देवाः) सब मनुष्य (व्रता धारयन्ते) नाना कर्म, व्रत और नाना अन्न भी धारण करते, प्राप्त करते हैं, उसी के आश्रय पर (सूर्यामासा) सूर्य और चन्द्र दोनों ही (दृशे) प्रकाश द्वारा दर्शन कराने के लिये, उस के समीप विद्यमान रहते हैं।

तत्सु नो विश्वे अर्य आ सदा गृणन्ति कारवः।
मरुतः सोमपीतये ॥ ३ ॥

भा०—(विश्वे कारवः) सब कर्मकुशल (मरुतः) बलवान् मनुष्य एवं व्यापारी जन, (सोम-पीतये) स्वयं भी अन्नवत् ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये, (सदा) सदैव (तत् नः सु अर्यः) वह हमारा उत्तम

पूज्य स्वामी है।' इस प्रकार (आ गृणन्ति) कहते और उस की स्तुति करते हैं।

अस्ति सोमो अयं सुतः पिबन्त्यस्य मरुतः।
उत स्वराजो अश्विना ॥ ४ ॥

भा०—(अयं सोमः सुतः अस्ति) यह ऐश्वर्य उत्पन्न है, (अस्य मरुतः पिबन्ति) इस का बलवान् पुरुष और प्रजागण उपभोग करते हैं और (उत अस्य स्वराजः) इस का स्वयं दीप्तियुक्त तेजस्वी लोग उपभोग करते हैं और (अश्विना) जितेन्द्रिय लोग इस का उपभोग करते हैं। (२) यह अभिषिक्त जन पुत्रवत् सोम है इस का बलवान् तेजस्वी और माता पिता, स्त्री पुरुष आदि सब (पिबन्ति) पालन करें।

पिबन्ति मित्रो अर्यमा तना पूतस्य वरुणः।
त्रिषधस्थस्य जावतः ॥ ५ ॥

भा०—(तना पूतस्य) विस्तृत ऐश्वर्य वा यज्ञ से पवित्र, (त्रि-सधस्थस्य) तीनों स्थानों पर विराजमान (जावतः) जाया के तुल्य प्रजा या भूमि से युक्त राष्ट्र का (मित्रः) स्नेही जन, (अर्यमा) शत्रुओं का नियन्ता और (वरुणः) संकटनिवारक जन (पिबन्ति) उपभोग और पालन करते हैं।

उतो न्वस्य जोषमाँ इन्द्रः सुतस्य गोमतः।
प्रातर्होतेव मत्सति ॥ ६ ॥ २८ ॥

भा०—(उतो नु) और (अस्य गोमतः सुतस्य) इस भूमि से युक्त, ऐश्वर्य के साथ (जोषम्) प्रेम करके (इन्द्रः) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष (प्रातः) प्रातःकाल में (होता इव) आहुति दाता विद्वान् के समान (मत्सति) बड़ा आनन्द अनुभव करता है।

कदत्विषन्त सूरयस्तिर आप इव स्रिधः।
अर्षन्ति पूतदक्षसः ॥ ७ ॥

भा०—(सूरयः आप इव तिरः) सूर्य की किरणें जिस प्रकार मेघस्थ जलों को छिन्न भिन्न कर फिर चमकते हैं उसी प्रकार (पूत-दक्षसः) पवित्र ज्ञान और कर्म वाले, (स्त्रिधः) दुष्ट हिंसक अन्तःशत्रु-सैन्यों को (तिरः) दूर करके, (सूरयः) विद्वान् तेजस्वी जन (कत् अत्विषन्त) कितना चमकते हैं और (कत् अर्पन्ति) कितना और कैसे आगे बढ़ते हैं यह दर्शनीय है।

कद्वो अद्य महानां देवानामवो वृणे।
त्मना च दस्मवर्चसाम् ॥ ८ ॥

भा०—(त्मना च) अपने आत्मसामर्थ्य से (दस्म-वर्चसाम्) दर्शनीय और शत्रुनाशक तेज वाले, (महानां देवानां) पूज्य विद्वानों और (वः) आप विजिगीषु जनों के (अवः) रक्षा वा प्रीति को मैं (कत् वृणे) किस प्रकार प्राप्त करूं, यह बतलाइये।

आ ये विश्वा पार्थिवानि पप्रथन्रोचना दिवः।
मरुतः सोमपीतये ॥ ९ ॥

भा०—(ये मरुतः) जो बलवान् मनुष्य (सोम-पीतये) ऐश्वर्य के पालन और प्राप्ति के लिये (दिवः) आकाश या भूमि के (विश्वा) समस्त (पार्थिवानि रोचना) पृथिवी पर विद्यमान रुचिकर पदार्थों को (पप्रथन्) विस्तारित करते हैं—

त्यान्नु पूतदक्षसो दिवो वो मरुतो हुवे।
अस्य सोमस्य पीतये ॥ १० ॥

भा०—(अस्य सोमस्य पीतये) इस ऐश्वर्य की रक्षा के लिये मैं (पूत-दक्षसः) पवित्र कर्म वाले, आचारवान् (मरुतः) बलवान् (त्यान्) उन पुरुषों को (दिवः) उन की इच्छाओं के अनुसार (हुवे) स्वीकार करता हूं।

त्यान्नु ये वि रोदसी तस्तभुर्मरुतो हुवे।
अस्य सोमस्य पीतये ॥ ११ ॥

भा०—(ये मरुतः) जो वीर पुरुष (रोदसी तस्तभुः) आकाश पृथिवी के समान स्वपक्ष और परपक्ष वा स्त्री-पुरुष, शास्य-शासक दोनों वर्गों को (वितस्तभुः) विशेष रूप से थामते या वश करते हैं। उन को मैं (अस्य सोमस्य पीतये) इस ऐश्वर्य के पालन के लिये बुलाता और स्वीकार करता हूं।

त्यं नु मारुतं गणं गिरिष्ठां वृषणं हुवे।
अस्य सोमस्य पीतये ॥ १२ ॥ २९ ॥

भा०—और (अस्य सोमस्य पीतये) इस राज्य-ऐश्वर्य के पालन के लिये मैं (त्यं नु) उस (गिरिष्ठां) वाणी में स्थित वा कुशल (वृषणं) ज्ञानादि की वर्षा करने वाले वा बलवान् (मारुतं गणं) मनुष्यों के समूह को (हुवे) बुलाता हूं। इत्येकोनत्रिंशो वर्गः ॥

(९५)

तिरश्ची ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१—४, ६, ७ विराडनुष्टुप्। ५, ९ अनुष्टुप्। ८ निचृदनुष्टुप् ॥

आ त्वा गिरो रथीरिवास्थुः सुतेषु गिर्वणः।
अभि त्वा समनूषतेन्द्र वत्सं न मातरः ॥ १ ॥

भा०—(मातरः वत्सं न) माताएं जिस प्रकार अपने बच्चे को लक्ष्य कर (सम् अनूषत) अच्छी प्रकार उस की गुणस्तुति किया करती हैं उसी प्रकार हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (गिर्वणः) वाणियों को स्वीकार और वाणियों द्वारा स्तवन करने हारे ! (गिरः) उत्तम विद्वान् स्तुति-कर्त्ता जन (त्वा अभि सम् अनूषत) तुझे लक्ष्यकर तेरी ही स्तुति करते हैं। (रथीः इव) रथवान् क्षिप्रगामी पुरुष के समान (सुतेषु) ऐश्वर्यों वा अन्नादि के प्राप्त्यर्थ (त्वा) तेरी ओर ही (गिरः) सब विद्वान् एवं सब वाणियां (आ अस्थुः) आ रही हैं।

आ त्वा शुक्रा अचुच्यवुः सुतास इन्द्र गिर्वणः ।
पिबा त्वस्यान्धस इन्द्र विश्वासु ते हितम् ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (गिर्वणः) वाणी द्वारा स्तुति करने योग्य ! हे हमारी वाणियों को हर्षपूर्वक स्वीकार करनेवाले ! (शुक्राः सुतासः) शुद्ध, कान्तियुक्त, तेजस्वी, पदाभिषिक्त जन (त्वा आ अचुच्यवुः) तुझे सब ओर से प्राप्त हों । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् (ते) तेरे योग्य (विश्वासु हितम्) समस्त प्रजाओं में नियत भाग है । तू (अस्य अन्धसः) इस खाने योग्य पदार्थ का (पिबतु) उपभोग कर ।

पिबा सोमं मदाय कमिन्द्र श्येनाभृतं सुतम् ।
त्वं हि शश्वतीनां पती राजा विशामसि ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वं) तू (हि) निश्चय से, (शश्वतीनां विशाम्) बहुत सी प्रजाओं का (पतिः असि) पालक, स्वामी है । तू (मदाय) सुख, तृप्ति और आनन्द के लिये (श्येनाभृतं सुतं) श्येन के समान शत्रु पर आक्रमण करने वाले वा प्रशंसनीय आचार चरित्रवान् पुरुषों से प्राप्त किये हुए धन वा प्रदत्त सुखजनक, (सोमं) ज्ञान वा ऐश्वर्य को (पिब) प्राप्त कर ।

श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र यस्त्वा सपर्यति ।
सुवीर्यस्य गोमतो रायस्पूर्धि महाँ असि ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (यः त्वा) जो तेरी (सपर्यति) सेवा करता है उस (तिरश्च्याः) समीप प्राप्त शरणागत की (हवं श्रुधि) पुकार को तू सुन । और तू (महान् असि) महान् है । तू (सु-वीर्यस्य) उत्तम बलयुक्त (गोमतः) गवादि सम्पन्न, भूमि आदि वाले (रायः) धन को हमें (पूर्धि) पूर्ण कर ।

इन्द्र यस्ते नवीयसीं गिरं मन्द्रामजीजनत् ।
चिकित्विन्मनसं धियं प्रत्नामृतस्य पिप्युषीम् ॥ ५ ॥ ३० ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् प्रभो ! (यः) जो (ते) तेरी (नवीयसीं) अति स्तुतियोग्य, (मन्द्राम्) हर्षजनक (गिरम् अजीजनत्) वाणी को प्रकट करता है और जो तेरे लिये (चिकित्वित्-मनसं) विद्वानों के मनन करने योग्य, (प्रत्नां) अति पुरानी, और (ऋतस्य पिप्युषीम्) सत्य ज्ञान के बढ़ाने वाली (धियं) वेदमयी वाणी वा विद्या वा यज्ञ कर्म को करता है, तू उसको उत्तम बल, भूमि आदि से युक्त धन प्रदान कर ।

तमु ष्टवाम यं गिर इन्द्रमुक्थानि वावृधुः ।
पुरूण्यस्य पौंस्या सिषासन्तो वनामहे ॥ ६ ॥

भा०—(यं) जिस (इन्द्रम्) ऐश्वर्य के स्वामी को (गिरः ववृधुः) सब वाणियां बढ़ाती हैं हम भी (तम् उ स्तवाम) उसकी स्तुति करें । (अस्य पुरूणि) उसके बहुत से (पौंस्या) बलों, ऐश्वर्यों को (सिषासन्तः) प्राप्त करना चाहते हुए (वनामहे) हम उसका भजन करते हैं ।

एतो न्विन्द्रं स्तवाम शुद्धं शुद्धेन साम्ना ।
शुद्धैरुक्थैर्वावृध्वांसं शुद्ध आशीर्वान्ममत्तु ॥ ७ ॥

भा०—(एतो नु) हे विद्वान् जनो ! आओ । हम लोग (शुद्धेन) शुद्ध, (साम्ना) सामवेद गायन द्वारा (शुद्धं) शुद्ध (इन्द्रम्) परमेश्वर की (स्तवाम) स्तुति करें। (शुद्धैः उक्थैः वावृध्वांसं) शुद्ध वचनों से बढ़ने वाले उसको (शुद्धः आशीर्वान्) शुद्ध कामना वाला, शुद्ध हृदय होकर ही (ममत्तु) प्रसन्न करें ।

इन्द्र शुद्धो न आ गहि शुद्धः शुद्धाभिरूतिभिः ।
शुद्धो रयिं नि धारय शुद्धो ममद्धि सोम्यः ॥ ८ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! तू (नः) हमें (शुद्ध) शुद्ध स्वरूप (आ गहि) प्राप्त हो। और तू (शुद्धाभिः ऊतिभिः) शुद्ध ज्ञानवाणियों, रक्षाओं और प्रीतियों से (शुद्ध) शुद्धरूप से ही प्राप्त हो । तू (शुद्धः) शुद्ध रूप ही (रयिम्) बल, वीर्य और ऐश्वर्य को

धारण कर और तू (शुद्धः) शुद्धस्वरूप (सोम्यः) ऐश्वर्यवान् होकर (ममद्धि) आनन्द युक्त हो।

इन्द्र॑ शु॒द्धो हि नो॑ र॒यिं शु॒द्धो रत्ना॑नि दा॒शुषे॑।
शु॒द्धो वृ॒त्राणि॑ जिघ्नसे शु॒द्धो वाजं॑ सिषाससि ॥ ९ ॥ ३१ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! स्वामिन्! तू (शुद्धः हि) सदा शुद्ध रूप (नः रयिं सिषाससि) हमें ऐश्वर्य देना चाहता है। (दाशुषे रत्नानि) दानशील प्रजा जन को नाना सुखजनक पदार्थ प्रदान करता है। और (शुद्धः वृत्राणि जिघ्नसे) शुद्ध पवित्र, निष्पक्षपात होकर ही विघ्नों और दुष्टों को दण्डित करता और (शुद्धः वाजं सिषाससि) शुद्ध चित्त होकर ही ज्ञान, बल, वीर्य और ऐश्वर्य का भोग कर और अन्यों को प्रदान करता है। इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

[९९]

तिरश्चीर्द्युतानो वा मरुत ऋषिः ॥ देवताः—१–१४, १६–२१ इन्द्रः। १४ मरुतः। १५ इन्द्राबृहस्पती ॥ छन्दः—१, २, ५, १३, १४ निचृत् त्रिष्टुप्। ३, ६, ७, १०, ११, १६ विराट् त्रिष्टुप्। ८, ९, १२ त्रिष्टुप्। ?, ५, १८, १९ पादनिचृत् त्रिष्टुप्। ४, १७ पंक्तिः। २० निचृत् पंक्तिः। २१ विराट् पंक्तिः ॥ एकविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

अ॒स्मा उ॒षास॒ आति॑रन्त॒ याम॒मिन्द्रा॑य॒ नक्त॒मूर्म्याः॑ सु॒वाचः॑।
अ॒स्मा आपो॑ मा॒तरः॑ स॒प्त त॑स्थु॒र्नृभ्य॒स्तरा॑य॒ सिन्ध॑वः सुपा॒राः ॥ १ ॥

भा०—(अस्मै) इस (इन्द्राय) सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष के लिये (उषासः) नाना कामनायुक्त प्रजाएं (यामम् आतिरन्त) नियम व्यवस्था वा मर्यादा का पालन करती हैं और वे ही (ऊर्म्याः) उत्साहित और उत्कण्ठित होकर (नक्तम्) रात्रिकाल में (सुवाचः) उत्तम वाणियां बोलती हैं। (अस्मै) अथवा इस के शासन में रहकर कमनीय कन्याएं (यामं) विवाह करती और (नक्तं सुवाचः आतिरन्त) रात्रि में वे अपने पतियों के प्रति

उत्तम वाणी बोलती हैं। (अस्मै) इसी के प्रेम में (मातरः) माताओं के समान (सप्त आपः) सर्पणशील, शरण में प्राप्त प्रजाएं (तस्थुः) सदा आज्ञा पालनार्थ खड़ी रहती हैं और इसी के शासन में (सिन्धवः) बड़े २ महानद (नृभ्यः तराय) मनुष्यों के पार उतारने के लिये (सुपाराः) सुखपूर्वक पार जाने योग्य होते हैं। राजा के राज्य की महिमा देखो महाभारत शान्तिपर्व में भीष्म का उपदेश। सूर्यवत् प्रभु के शासन में उषा रात्रि आदि सब नियमित रूप में आती जाती हैं। नदियां चलती और महानद भी अलंघ्य नहीं रहते।

अतिविद्धा विथुरेणा चिदस्त्रा त्रिः सप्त सानु संहिता गिरीणाम्।
न तद्देवो न मर्त्यस्तुतुर्याद्यानि प्रवृद्धो वृषभश्चकार ॥ २ ॥

भा०—(विथुरेण चित् अस्त्रा) व्यथादायी आघातकारी और इतस्ततः प्रक्षेप या सञ्चालन में समर्थ शक्ति द्वारा (अतिविद्धा) खूब पीड़ित या ताड़ित होकर (सप्त त्रिः) इक्कीसों तत्व (गिरीणाम्) भस्मवत् एक दूसरे को निगल जाने वाले, इधर उधर वा पर्वत मेघादिवत् भारी और (सानु) स्वरूप (संहिता) एकत्र संबद्ध हो जाते हैं। (तत्) उनको (न देवः) न कोई अन्य तेजस्वी तत्व (न मर्त्यः) न जीव ही (तुतुर्यात्) इस प्रकार कर सकता है, (यानि) जिन को (प्रवृद्धः) बड़ा, शक्तिशाली और (वृषभः) बलवान् प्रभु (चकार) कर लेता है। (२) इसी प्रकार अकेला प्रबल राजा २१ सौ राजाओं को प्रबल सैन्य से पराजित करता है, ऐसा अन्य कोई नहीं कर पाता।

इन्द्रस्य वज्र आयसो निमिश्ल इन्द्रस्य बाह्वोर्भूयिष्ठमोजः।
शीर्षन्निन्द्रस्य क्रतवो निरेक आसन्नेषन्त श्रुत्या उपाके ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार राजा या सेनापति का (आयसः वज्रः) लोह का खड्ग होता है और (निमिश्लः) खूब कठोर होता है उसी प्रकार (इन्द्रस्य) उस महान् ऐश्वर्यवान् प्रभु का (वज्रः) बल (आयसः)

सर्वत्र ब्रह्माण्डों में यत्न अर्थात् सूर्यादि को भ्रमण कराने में समर्थ (निमिश्लः) और खूब सम्बद्ध होता है, और (इन्द्रस्य) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु के (बाह्वोः) बाहुओं में उसके शासन में भी (भूयिष्ठम् ओजः) बड़ा भारी बल पराक्रम है। (इन्द्रस्य) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु के (शीर्षन्) शिर में भी (क्रतवः) अनेक ज्ञान (निरेके) सब से बढ़कर विद्यमान हैं। और (आसन्) मुख में विद्यमान वाणियों को भी सुनने के लिये (उपाके) अति समीप बहुत से जन (ईषन्त) प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार राजा की बाहुओं में खड्ग रूप, बल, शिरःस्थानीय अनेक विद्वान् जन और मुख में श्रवणीय आज्ञाएं हों।

मन्ये॑ त्वा य॒ज्ञियं॑ य॒ज्ञिया॑नां॒ मन्ये॑ त्वा॒ च्यव॑न॒मच्यु॑तानाम् ।
मन्ये॑ त्वा॒ सत्व॑नामिन्द्र के॒तुं मन्ये॑ त्वा वृष॒भं च॑र्षणी॒नाम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! मैं (त्वा) तुझे (यज्ञियानां यज्ञियं मन्ये) दानियों में दानी, पूज्यों में पूज्य, सत्संग योग्यों में सर्वश्रेष्ठ करके जानता हूं। और (अच्युतानां च्यवनम्) स्वयं गतिरहित जड़ पदार्थों को चलाने वाला जानता हूं। (सत्वनां केतुं मन्ये) बलशालियों में ध्वजा के समान वा सत्वयुक्त चित्त वाले जीवों में ज्ञानप्रद, और (चर्षणीनां वृषभं त्वा मन्ये) मनुष्यों में सर्वश्रेष्ठ मैं तुझे जानता हूं।

आ यद्वज्रं॑ बा॒ह्वोरि॑न्द्र॒ धत्से॑ मद॒च्युत॒मह॑ये॒ हन्त॒वा उ॑ । प्र पर्व॑ता॒ अन॑वन्त॒ प्र गावः॒ प्र ब्र॒ह्माणो॑ अभि॒नक्ष॑न्त॒ इन्द्र॑म् ॥ ५ ॥ ३२ ॥

भा०—(यद्) जब हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्! तू (बाह्वोः) बाहुओं में (अहये) अभिमुख आये शत्रु को (हन्तवा) नाश करने के लिये (मदच्युतं वज्रं) शत्रुओं के मद को दूर करने वाले प्रजा के (मद-च्युतं) हर्ष प्रापक बल वीर्य को (धत्से) धारण करता है तब (पर्वताः) मेघवत् पालन शक्ति से युक्त शासक जन, और (गावः) भूमिवासी समस्त प्रजाएं (प्र अनवन्त) खूब हर्ष ध्वनि करते हैं। और (अभि-

नक्षन्तः अह्माणः) प्राप्त होते हुए विद्वान् जन (इन्द्रम् प्र अनवन्त) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता की स्तुति करते हैं। इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

तमु ष्टवाम य इमा जजान विश्वा जातान्यवराण्यस्मात् ।
इन्द्रेण मित्रं दिधिषेम गीर्भिरुपो नमोभिर्वृषभं विशेम ॥ ६ ॥

भा०—(तम् उ स्तवाम) उसी की स्तुति करें (यः इमा) जो इन (अस्मात्) उससे (अवराणि) पीछे (विश्वा जातानि) उत्पन्न, समस्त पदार्थों को जजान उत्पन्न करता है हम लोग (इन्द्रेण) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु के साथ (मित्रं दिधिषेम) मित्र भाव रक्खें। (नमोभिः गीर्भिः) नमस्कार युक्त विनीत वचनों से हम उस (वृषभं) सब सुखों के देने वाले को (उपो विशेम) प्राप्त होवें, उसकी उपासना करें।

वृत्रस्य त्वा श्वसथादीषमाणा विश्वे देवा अजहुर्ये सखायः ।
मरुद्भिरिन्द्र सख्यं ते अस्त्वथेमा विश्वाः पृतना जयासि ॥ ७ ॥

भा०—जैसे (वृत्रस्य श्वसथात् ईषमाणाः विश्वे देवाः सखायः अजहुः) बढ़ते शत्रु के श्वासमात्र से भी भय खाते हुए सब मित्र मनुष्य भी राजा को छोड़ देते हैं उसी प्रकार हे प्रभो! (विश्वे देवाः) समस्त जीवगण, (सखायः) तेरे मित्र समान आख्या वाले आत्मा होकर भी (वृत्रस्य) आवरणकारी देह के (श्वसथात् ईषमाणाः) श्वास-प्रश्वास द्वारा गति करते हुए (त्वा अजहुः) तुझे भूल जाते हैं हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (ते मरुद्भिः सख्यम् अस्तु) जीवगण से तेरा सदा सख्य, मित्रभाव रहे। (अथ) और तू (इमा विश्वाः पृतनाः जयासि) इन सब प्रजाओं को अपने वश कर।

त्रिः षष्टिस्त्वा मरुतो वावृधाना उस्रा इव राशयो यज्ञियासः ।
उप त्वेमः कृधि नो भागधेयं शुष्मं त एना हविषा विधेम ॥८॥

भा०—(त्रिः षष्टिः मरुतः) ६३ प्रकार के मनुष्य गण और देह में प्राण गण (ववृधानाः) बढ़ते हुए (उस्राः इव) सूर्य की किरणों वा गौवों के समान (राशयः) संघ होकर (यज्ञियासः) आदर पाने योग्य

हैं। वे हम (त्वा उप इमः) तुझे प्राप्त होते हैं। (नः भाग-धेयं कृधि) हमारा भी भाग नियत कर। हम (ते शुष्मं) तेरे शोषक बल को (एना हविषा) इस प्रकार के अन्नादि, कर और उपाय से (विधेम) बनावें। त्रिषष्टि गणों का परि-संख्यान यजुर्वेद अ० २२ में देखो।

तिग्ममायुधं मरुतामनीकं कस्त इन्द्र प्रति वज्रं दधर्ष।
अनायुधासो असुरा अदेवाश्चक्रेण ताँ अप वप ऋजीषिन्॥९॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (तिग्मम् आयुधम्) शत्रु पर प्रहार करने के तीक्ष्ण साधन, (मरुताम् अनीकम्) वीर पुरुषों की सेना रूप (ते वज्रं) तेरे महान् बलको (कः प्रति दधर्ष) कौन पराजित कर सकता है। (असुराः) बड़े बलशाली लोग भी (अनायुधासः) आयुधों से रहित और (अदेवाः) अतेजस्वी हों, (तान्) उन को हे (ऋजीषिन्) शत्रुनर्जक सेनाओं के स्वामिन्! तू (अप वप) दूर ही खण्डित कर डाल।

मह उग्राय तवसे सुवृक्तिं प्रेरय शिवतमाय पश्वः।
गिर्वाहसे गिर इन्द्राय पूर्वीर्धेहि तन्वे कुविदङ्ग वेदत्॥१०॥२३॥

भा०—(महे उग्राय) बड़े बलवान् (तवसे) शक्तिशाली, (शिवतमाय) अतिसुखदायक (पश्वः च शिवतमाय) समस्त पशु तक का कल्याण करने वाले (गिर्वाहसे) वाणियों और स्तुतियों को स्वीकार करने वाले (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् प्रभु के लिये (अङ्ग) हे विद्वन्! तू (सुवृक्तिं प्रेरय) उत्तम स्तुति कर। हे विद्वन्! तू उसी के लिये (पूर्वीः गिरः धेहि) पूर्व की नित्य वाणियों को धारण कर। वही (तन्वे) हमारे शरीर और वृहत् राष्ट्र के लिये (कुवित् वेदत्) बहुत सुखैश्वर्य प्रदान करता है। इति त्रयोविंशो वर्गः॥

उक्थवाहसे विभ्वे मनीषां द्रुणा न पारमीरया नदीनाम्।
नि स्पृश धिया तन्वि श्रुतस्य जुष्टतरस्य कुविदङ्ग वेदत्॥१॥

भा०—(उक्थ-वाहसे विभ्वे) उत्तम स्तुति-वचनों को स्वीकार करने वाले विभु, महान् उस परमेश्वर के लिये (मनीषां) अपने चित्त, बुद्धि को प्रेरित कर। हे प्रभो! तू (द्रुणा न नदीनाम्) नदियों के पार नौका के समान हमें (पारम् ईरय) पार ले चल। हे विद्वन्! (जुष्टतरस्य श्रुतस्य) अति सेवनीय श्रवण योग्य ज्ञान को (तन्वि) अपने पुत्र में धनवत् (निस्पृश) प्रदान कर। वह प्रभु (अङ्ग) हे मनुष्य! (कुवित् वेदत्) बहुत कुछ प्रदान करता है।

तद्विविड्ढि यत्त इन्द्रो जुजोषत्स्तुहि सुष्टुतिं नमसा विवास।
उप भूष जरितर्मा रुवण्यः श्रावया वाचं कुविदङ्ग वेदत् ॥१२॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् एवं ऐश्वर्य का देने वाला स्वामी (यत् जुजोषत्) जिस को प्रेम करे तू (तत् विविड्ढि) उसी पदार्थ को प्राप्त करा। तू उस को (सुस्तुतिं स्तुहि) उत्तम स्तुति कर। (नमसा) अति विनय से (विवास) उस की सेवा कर। हे (जरितः) विद्वन्! स्तुतिकर्त्ता! तू (उप भूष) सदा उस के समीप रह। और (मा रुवण्यः) कभी रो मत, गुनगुना मत। तू अपनी (वाचं) स्पष्ट वाणी को (श्रावय) उसे सुना दे और (अङ्ग कुविद् वेदत्) हे मनुष्य वह तुझे बहुत २ ऐश्वर्य देने वाला है।

अव द्रप्सो अंशुमतीमतिष्ठदियानः कृष्णो दशभिः सहस्रैः।
आवत्तमिन्द्रः शच्या धमन्तमप स्नेहितीर्नृमणा अधत्त ॥१३॥

भा०—(द्रप्सः) वेग से प्रयाण करने में समर्थ, (कृष्णः) प्रजा को कर्षण करने वाला, (दशभिः सहस्रैः) दस सहस्र सैन्यों सहित (अंशुमतीम्) अन्न वाली भूमि पर (अतिष्ठत्) स्थिर हो तो भी (शच्या धमन्तम्) अपनी शक्ति से प्रजा को पीड़ित करने वाले दुष्ट शत्रु को (इन्द्रः) ऐश्वर्य युक्त उत्तम राजा (शच्या आवत्) अपनी शक्ति से आक्रमण करे और वध करे और (नृमणाः) मनुष्यों के हित

में चित्त देकर वह (स्नेहितीः) हिंसक सेनाओं को (अप अधत्त) दूर करे। अध्यात्म में (सहस्रैः दशभिः) बलवान् दश प्राणों से युक्त होकर (कृष्णः) कर्त्ता जीव (द्रप्सः) देह से देहान्तर में जाने वाला होकर (अंशुमतीम्) सूक्ष्म प्राणों से युक्त लिंग देह को धारण करता हुआ वह (इयानः) देह से देहान्तर में जाता है। और (शच्या धमन्तम् तम् इन्द्रः आवत्) वाणी से प्रार्थना करने वाले जीव की परमेश्वर रक्षा करता है। उस की (स्नेहितीः) नाशकारिणी दुर्वासनाओं वा मोहमयी दुष्ट वृत्तियों को वह (अप अधत्त) दूर कर देता है।

द्रप्समपश्यं विषुणे चरन्तमुपह्वरे नद्यो अंशुमत्याः।
नभो न कृष्णमवतस्थिवांसमिष्यामि वो वृषणो युध्यताजौ १४

भा०—सेनापति सैन्यगण से कहे—मैं (अंशुमत्याः नद्यः) कर देने वाली, समृद्ध प्रजा के (उप-ह्वरे) समीप में (विषुणे चरन्तं) विस्तृत मैदान में विचरते (द्रप्सम्) द्रुतगामी शत्रु को (अपश्यम्) देखता हूं, और इसी प्रकार (अवतस्थिवांसम्) आसन पर बैठे हुए (कृष्णम्) प्रजा के पीड़क जन को (नभः) आकाश में मेघवत् व्यापक जानता हूं। हे (वृषण) बलवान् पुरुषो! मैं (इष्यामि) चाहता हूं कि (वः) आप लोग (आजौ युध्यत) संग्राम में शत्रु से युद्ध करो, मारो। अध्यात्म में पूर्वोक्त अंशुमती नदी लिङ्ग-देह उसके भीतर 'द्रप्स' अर्थात् द्रुत वेग से जाने वाला जीवात्मा (विषुणे चरन्तम्) सब तरफ जाने में समर्थ होता है। जब वह स्थिर होता है तब (नभः न कृष्णम्) आकाशवत् वा वायु-वत् निष्प्रभ वा आदित्यवत् तेजःस्वरूप होता है। हे (वृषणः) बलशाली साधक जनो! आप लोग (आजौ) उस को प्राप्त करने के लिये (युध्यत) बाधक कारणों से अवश्य संग्राम करो।

अध द्रप्सो अंशुमत्या उपस्थेऽधारयत्तन्वं तित्विषाणः।
विशो अदेवीरभ्याचरन्तीर्बृहस्पतिना युजेन्द्रः ससाहे १५।३४

भा०—(द्रप्सः) वेग से जाने वाला शत्रु (अंशुमत्याः उपस्थे) समृद्ध प्रजा के समीप, (तित्विषाणः) अति तेजस्वी होकर (तन्वं अधारयत्) विस्तृत शक्ति को धारण करता है, उस समय (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता राजा (युजा बृहस्पतिना) सहायक, बड़ी सेना के पालक सेनापति के सहाय से, (अदेवीः) अकरप्रद, (अभि आचरन्तीः) विपरीत आक्रमण करने वाली (विशः) प्रजाओं को (ससहे) पराजित करे । इति चतुस्त्रिंशो वर्गः ॥

त्वं ह॒ त्यत्स॒प्तभ्यो॒ जाय॑मानोऽश॒त्रुभ्यो॑ अभवः॒ शत्रु॑रिन्द्र ।
गू॒ळ्हे द्यावा॑पृथि॒वी अन्व॑विन्दो विभु॒मद्भ्यो॒ भुव॑नेभ्यो॒ रणं॑ धाः॥१६

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् (त्यत् त्वं) वह तू (जायमानः) प्रकट होकर ही (अशत्रुभ्यः सप्तभ्यः) शत्रुरहित स्वयं विचरने वालों का (शत्रुः अभवः) नाश करने में समर्थ हो । (गूढे द्यावापृथिवी) संवृत, सुरक्षित, आकाश पृथिवीवत् शासक-शास्य दोनों को (अनु अविन्दः) अपने अनुकूल करके वश कर । और (विभुमद्भ्यः भुवनेभ्यः) बड़े ऐश्वर्य से युक्त देशों को प्राप्त करने के लिये (रणं धाः) रण कर । (२) अध्यात्म में इन्द्र आत्मा, सप्त प्राणों का शासन करने वाला विभाजक है, वह सुगुप्त द्यौ पृथिवी, प्रभु प्रकृति का ज्ञान करे, और महान् सुखमय लोकों का (रणं) सुख भी प्राप्त करे ।

त्वं ह॒ त्यद॑प्रतिमा॒नमोजो॒ वज्रे॑ण वज्रिन्धृषि॒तो ज॑घन्थ ।
त्वं शुष्ण॒स्यावा॑तिरो॒ वध॑त्रै॒स्त्वं गा इ॑न्द्र॒ शच्येद॑विन्दः ॥ १७ ॥

भा०—हे (वज्रिन्) बलशालिन् ! (त्वं ह) तू ही (वज्रेण) अपने शस्त्रबल से (धृषितः) शत्रु को पराजय करने में समर्थ हो कर (अप्रतिमानम् यत् ओजः) उस निरुपम शत्रु के दल को (जघन्थ) विनाश कर अथवा (हन्तिर्गत्यर्थः । त्यत् अप्रतिमानम् ओजः जघन्थ) तू निरुपम, सर्वोपरि पराक्रम को प्राप्त कर । (त्वं) तू (वधत्रैः) वध करने के

साधनों से (शुष्णस्य अवातिरः) प्रजा के शोषक दुष्ट का नाश कर। और (त्वं) तू हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (शच्या इव) शक्ति और आज्ञा के बल से ही (गाः अविन्दः) सब भूमियों को अपने अधीन कर।

त्वं ह त्यद्वृषभ चर्षणीनाङ्घनो वृत्राणां तविषो बभूथ।
त्वं सिन्धूँरसृजस्तस्तभानान् त्वमपो अजयो दासपत्नीः ॥१८॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन्! हे (चर्षणीनां वृषभ) प्रजा वा लोकद्रष्टाओं के बीच में सर्वश्रेष्ठ! (त्वं ह) तू अवश्य (तविषः) बलवान् हो कर (वृत्राणां) दुष्टों और विघ्नों का (घनः) दण्ड देने और नाश करने वाला (अभवः) हो। और (त्वं) तू (तस्तभानान्) शत्रु का नाश करने वाले (सिन्धून्) वेग से जाने वाले वीरों और तट आदि के नाशक महानदों को भी (असृजः) सञ्चालित कर। और (त्वम्) तू (दास-पत्नीः) प्रजा के नाशक शत्रु के आधिपत्य में विद्यमान (अपः) भूमियों सेनाओं और प्रजाओं को भी (अजयः) जीत।

स सुक्रतु रणिता यः सुतेष्वनुत्तमन्युर्यो अहेव रेवान्।
य एक इन्नर्यपांसि कर्ता स वृत्रहा प्रतीदन्यमाहुः ॥ १९ ॥

भा०—(सः सुक्रतुः) वह उत्तम ज्ञान और कर्म सामर्थ्यवान् है। (यः) जो (सुतेषु) उत्पन्न पदार्थों और ऐश्वर्यादि अभिषेक कर्मों में (रणिता) रमने हारा और रणकुशल है। (यः) जो (अहा इव रेवान्) दिन वा सूर्य के समान तेज और बल से युक्त, धनाधिपति, और (अनुत्त-मन्युः) अप्रतिहत, अपराजित बल वाला, (यः एक इत्) जो अकेला ही (नरि अपांसि कर्त्ता) नायक पद पर रह कर भी नाना कर्मों को करने हारा है (सः) वह (वृत्रहा) शत्रु और विघ्नों का नाशक पुरुष हो, उस को ही (अन्यं प्रति इत् आहुः) शत्रु के प्रति प्रबल करके जानते और कहते हैं।

स वृ॑त्र॒हेन्द्र॑श्चर्षणी॒धृत्तं सु॑ष्टु॒त्या हव्यं॑ हुवेम।
स प्रा॑वि॒ता म॒घवा॑ नोऽधिव॒क्ता स वाज॑स्य श्रव॒स्य॑स्य दा॒ता २०

भा०—(सः वृत्रहा) वह दुष्टनाशक पुरुष ही (चर्षणीधृत्) मनुष्यों को धारण करता है। (तं हव्यम्) उस स्तुत्य पुरुष को हम (सु-स्तुत्या) उत्तम गुण स्तवन द्वारा (हुवेम) प्राप्त करें। (सः) वह (मघवा) ऐश्वर्यवान् (नः प्राविता) हमारा उत्तम रक्षक हो और (सः) वह (नः अधिवक्ता) हमारा अध्यक्ष, शासक और (सः वाजस्य श्रवस्यस्य दाता) कीर्त्ति, अन्नादिप्रद, ऐश्वर्य बल, और ज्ञान का दाता है।

स वृ॑त्र॒हेन्द्र॑ ऋभु॒क्षाः स॒द्यो ज॑ज्ञा॒नो हव्यो॑ ब॒भूव। कृ॒ण्वन्नपां॑सि॒ नर्या॑ पु॒रूणि॒ सोमो॒ न पी॒तो हव्यः॒ सखि॑भ्यः ॥ २१ ॥ ३५ ॥

भा०—(सः) वह (वृत्र-हा) दुष्टों और विघ्नों का नाशक, (ऋभु-क्षाः) बल और गुणों से महान्, वा सत्य से दीप्तियुक्त, विद्वान्, तेजस्वी, शिल्पी आदि जन को आश्रय देने वाला, (जज्ञानः) प्रकट होकर (सद्यः हव्यः बभूव) शीघ्र ही स्तुत्य, उपादेय हो जाता है। वह (पुरूणि नर्या अपांसि कृण्वन्) नायक योग्य वा प्रजाजन के हितार्थ बहुत से कर्मों को करता हुआ (पीतः सोमः न) पान वा पालन योग्य सोम रस, ऐश्वर्य वा पुत्रादि के समान ही (सखिभ्यः हव्यः) मित्रों के लिये स्तुत्य हो जाता है।

इस सूक्त में परमेश्वर के सृष्टि रचनाविषयक निदर्शन, आत्मा का शरीरग्रहण, रचना और वशीकरण, योग-साधनादि का भी निर्देश है। इति पञ्चत्रिंशो वर्गः ॥

[९७]

रेभः काश्यप ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ११ विराड् बृहती। २, ६, ९, १२ निचृद् बृहती। ४, ५, ८ बृहती। ३ भुरिगनुष्टुप्। ७ अनुष्टुप्। १० भुरिग्जगती। १३ अतिजगती। १५ ककुम्मती जगती। १४ विराट् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

या इन्द्र भुज आभरः स्वर्वाँ असुरेभ्यः ।
स्तोतारमिन्मघवन्नस्य वर्धय ये च त्वे वृक्तबर्हिषः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (स्वर्वान्) आदित्य के समान तेजस्वी पुरुषों का स्वामी होकर (असुरेभ्यः) प्राण वाले जीवों के हितार्थ (याः भुजः आभर) जिन योग्य पदार्थों को प्रदान करता है, (अस्य) इस धन से तू (स्तोतारम् इत्) स्तुतिकर्त्ता विद्वान् को ही हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन् ! (वर्धय) बढ़ा और उन को भी बढ़ा (ये च तव) जो तेरे लिये (वृक्त-बर्हिषः) उत्तम आसन बिछाते हैं या तेरे अधीन रहकर शत्रु को कुश-तृणवत् छेदन करते हैं ।

यमिन्द्र दधिषे त्वमश्वं गां भागमव्ययम् ।
यजमाने सुन्वति दक्षिणावति तस्मिन् तं धेहि मा पणौ ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वं) तू (यम् अश्वम्) जिस अश्व को, (गां) भूमि व पशु को और (अव्ययं भागम्) अक्षय सैन्य को (दधिषे) धारण करता है, (तं) उस के (सुन्वति) यज्ञ करने वाले और (दक्षिणावति) दान दक्षिणा देने वाले (तस्मिन् यजमाने धेहि) उस यजमान के निमित्त धर । (मा पणौ) धन के व्यवहारी के निमित्त मत दे । राजा विद्वान् याज्ञिकों, यज्ञशील जनों को भूमि, अश्व, गा आदि की सहायता करे और केवल धन बटोरने वालों को दान न दे ।

य इन्द्र सस्त्यव्रतोऽनुष्वापमदेवयुः ।
स्वैः ष एवैर्मुमुरत्पोष्यं रयिं सनुतर्धेहि तं ततः ॥ ३ ॥

भा०—हे (इन्द्र) दुष्टों को दण्ड देने हारे ! (यः अव्रतः) जो कर्महीन, व्रतहीन होकर (सस्ति) आलस्य में सोता है और जो (अनु-स्वापं) निद्रा आलस्य के साथ २ (अदेवयुः) अपनी इन्द्रियों को वश में नहीं रखता वा विद्वानों, शुभ गुणों को नहीं चाहता, (सः) वह (स्वैः एवैः) अपने ही आचरणों से (पोष्यं रयिं मुमुरत्) पोषण योग्य

जन और ऐश्वर्य का नाश करता है। (ततः) उस से हे ऐश्वर्यप्रद ! तू (तं रयिं) उस ऐश्वर्य को (अनुतः धेहि) कार्य और फल से वञ्चित कर।

यच्छक्रासि परावति यदर्वावति वृत्रहन्।
अतस्त्वा गीर्भिर्द्युगदिन्द्र केशिभिः सुतावाँ आ विवासति ॥४॥

भा०—हे (शक्र) शक्तिशालिन् ! हे (वृत्रहन्) शत्रु के नाशक ! (यत्) जो तू (परावति) दूर और (अर्वावति) समीप देश में भी (असि) होता है तो भी हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! (अतः) इस अपने स्थान से ही, (सुतवान्) उत्तम ऐश्वर्ययुक्त होकर तेरा प्रतिनिधि (द्युगत् केशिभिः) भूमि पर जाने वाले अश्वों और तेजस्वी पुरुषों द्वारा (त्वा आ विवासति) तेरी ही परिचर्या करता है।

यद्वासि रोचने दिवः समुद्रस्याधि विष्टपि।
यत्पार्थिवे सदने वृत्रहन्तम यदन्तरिक्ष आ गहि ॥ ५ ॥ ३६ ॥

भा०—(यद् वा) तू चाहे (दिवः रोचने) भूमि के किसी अति रुचिकर देश में भी (असि) हो, चाहे तू (समुद्रस्य अधि विष्टपि) वा समुद्र के किसी विस्तार प्रदेश में भी हो, चाहे तू (यत् पार्थिवे सदने) या पृथिवी के किसी गृह में वा (यत् अन्तरिक्षे) वा अन्तरिक्ष में भी हो तो भी हे (वृत्रहन्तम) विघ्नों के नाशक स्वामिन् ! तू (आ गहि) हमें प्राप्त हो। (२) परमेश्वर सूर्य, समुद्र, पृथिवी, अन्तरिक्ष आदि में सर्वत्र व्यापक है। वह हमें सर्वत्र प्राप्त हो। इति षट्त्रिंशो वर्गः ॥

स नः सोमेषु सोमपाः सुतेषु शवसस्पते।
मादयस्व राधसा सूनृतावतेन्द्र राया परीणसा ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! हे (शवसः पते) बल के पालक ! हे (सोमपाः) ऐश्वर्य के पालक ! तू (सोमेषु सुतेषु) ऐश्वर्यों के उत्पन्न होने पर (नः) हमें (सूनृतावता) अन्न और उत्तम वचन से युक्त

विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरं सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे।
क्रत्वा वरिष्ठं वर आमुरिमुतोग्रमोजिष्ठं तवसं तरस्विनम् १०।३७

भा०—(विश्वाः पृतनाः) समस्त मनुष्य, (अभि-भूतरं नरं) शत्रु को खूब पराजय करने वाले नायक (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् पुरुष को (सजूः) परस्पर प्रेमपूर्वक मिलकर (राजसे जजनुः) राज्य करने के लिये प्रधान पद पर स्थापित करते हैं और वे (क्रत्वा वरिष्ठं) ज्ञान और कर्म से श्रेष्ठ (आ-मुरिम्) शत्रुओं के नाश करने वाले, (उग्रम्) भयंकर, (ओजिष्ठं) अति पराक्रमी, (तरस्विनं) बलवान्, वेगवान्, (तवसं) शक्तिशाली, पुरुष को (इन्द्रम् जजनुः) सूर्यवत् तेजस्वी और ऐश्वर्यवान् राजा रूप से नियुक्त करें। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

समीं रेभासो अस्वरन्निन्द्रं सोमस्य पीतये।
स्वर्पतिं यदीं वृधे धृतव्रतो ह्योजसा समूतिभिः ॥ ११ ॥

भा०—(रेभासः) उत्तम स्तुतिकर्त्ता, उपदेष्टा जन (सोमस्य पीतये) ऐश्वर्य वा जगत् के पालन के लिये (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् (स्वः-पतिम्) सब सुखों के स्वामी की (ईम्) सब ओर से, सब प्रकार से (सम् अस्वरन्) मिलकर स्तुति, प्रार्थना करें और (यत् ईं वृधे सम् अस्वरन्) जब वे इसको अपनी वृद्धि के लिये प्रार्थना करें तब वह (ऊतिभिः) अपने रक्षा-साधनों और (ओजसा) बल पराक्रम से (धृत-व्रतः) व्रतों, कर्मों और नियमों को धारण करने वाला हो और उन को (सम् अस्वरन्) अच्छी प्रकार शासन करे। (२) परमेश्वर अपनी शक्तियों से जगत् के सब नियमों को धारता है, सब अपनी वृद्धि और जगत् के पालनार्थ उस की स्तुति करें।

नेमिं नमन्ति चक्षसा मेषं विप्रा अभिस्वरा।
सुदीतयो वो अद्रुहोऽपि कर्णे तरस्विनः समृक्वभिः ॥ १२ ॥

भा०—(विप्राः) विद्वान् पुरुष (नेमिम्) शत्रुओं के नमाने वाले

बलवान् (मेषं) समस्त सुखों के दाता, राजा को (चक्षसा) दर्शन कर (अभि-स्वरा) उत्तम स्वर से (नमन्ति) उस का आदर करते हैं। हे विद्वान् लोगो ! आप लोग भी (सु-दीतयः) उत्तम दीप्ति युक्त (अद्रुहः) द्रोह, परस्पर द्वेष, कलह से रहित और (कर्णे तरस्विनः) करने योग्य कर्त्तव्य कर्म में शीघ्रता करने वाले, अनालसी होकर (ऋक्वभिः) उत्तम ऋचाओं से उस स्वामी की (सं) मिलकर स्तुति करो।

तमिन्द्रं जोहवीमि मघवानमुग्रं सत्रा दधानमप्रतिष्कुतं शवांसि।
मंहिष्ठो गीर्भिरा च यज्ञियो ववर्तद्राये नो विश्वा सुपथा कृणोतु वज्री ॥ १३ ॥

भा०—मैं (तम्) इस (इन्द्रं) ऐश्वर्यवान् (मघवानम्) उत्तम धनों के स्वामी (उग्रम्) बलवान्, (सत्रा शवांसि) सच्चे बलों को (दधानम्) धारण करने वाले (अप्रतिष्कुतं) जिस के किये को कोई मेट न सके, जिस के बल को कोई रोकने वाला नहीं उस को (जोहवीमि) बुलाता हूं, उसी से प्रार्थना करूं। वही (मंहिष्ठः) सब से बड़ा दानी (यज्ञियः च) और पूज्य है। वह (गीर्भिः आववर्त्तत्) उत्तम वाणियों से शासन करता है। वह (वज्री) बलवान्, वीर्यवान्, शक्तिमान् स्वामी, (राये) ऐश्वर्य के प्राप्त करने के लिये (विश्वा) सब प्रकार के (सुपथा) उत्तम मार्ग (कृणोतु) करे।

त्वं पुर इन्द्र चिकिदेना व्योजसा शविष्ठ शक्र नाशयध्यै।
त्वद्विश्वानि भुवनानि वज्रिन्द्यावा रेजेते पृथिवी च भीषा ॥१४॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे (शविष्ठ) सब से अधिक शक्तिमान् ! हे (शक्र) शक्ति के देने हारे ! तू (ओजसा) अपने बल पराक्रम से (पुरः नाशयध्यै चिकित्) शत्रुओं नगरियों, गढ़ियों को विनाश करना भली प्रकार जान। हे (वज्रिन्) वीर्यवन् ! (विश्वानि भुवना

द्यावा पृथिवी च) समस्त भुवन, सूर्य और पृथिवी सब (त्वद् भीया रेजे-
-ते) तेरे भय से चल रहे हैं ।

तन्म॑ ऋ॒तमि॑न्द्र शूर चित्र पात्व॒पो न व॑ज्रिन्दुरि॒तार्ति॑ पर्षि॒ भूरि॑ ।
क॒दा न॑ इन्द्र रा॒य आ द॑शस्येर्वि॒श्वप्स्न्यस्य स्पृह॒याय्य॑स्य राजन् ॥ १५ ॥ ३८ ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! (तत् ऋतम्) वह सत्य ज्ञान (मे पातु) मेरी रक्षा करे । हे (चित्र) पूज्य ! हे अद्भुत गुण कर्म स्वभाव ! हे (वज्रिन्) बलवन् ! (अपः न) जलों के समान तू (भूरि दुरिता अति पर्षि) बहुत से दुःखों और पापों से पारकर । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (विश्वप्स्न्यस्य) सब प्रकार के (स्पृहयाय्यस्य) चाहने योग्य (रायः) धन का हे (राजन्) तेजस्विन् ! तू (नः कदा आ दशस्ये) हमें कब प्रदान करेगा । इत्यष्टात्रिंशो वर्गः ॥

इति षष्ठोऽध्यायः ।

अथ सप्तमोऽध्यायः

[९८]

नृमेध ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ५ उष्णिक् । २, ६ ककुम्मती उष्णिक् । ३, ७, ८, १०—१२ विराडुष्णिक् । ४ पादनिचृदुष्णिक् । ९ निचृदुष्णिक् ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्रा॑य॒ साम॑ गायत॒ विप्रा॑य बृह॒ते बृ॒हत् ।
ध॒र्म॒कृते॑ विप॒श्चिते॑ पन॒स्यवे॑ ॥ १ ॥

भा०—(बृहते) महान् (विप्राय) मेधावी, (धर्मकृते) समस्त धर्मों के धारण करने वाले, प्रबन्धों को करने वाले, (विपश्चिते) विद्वान्,

(पनस्यवे) स्तुति चाहने वाले, वा वाणी और सद्-व्यवहारों के पालक (इन्द्राय) ऐश्वर्यवान् प्रभु के निमित्त (बृहत् साम) बृहत् साम का (गायत) गान करो।

त्वमिन्द्राभिभूरसि त्वं सूर्यमरोचयः ।

विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असि ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वम्) तू (अभिभूः असि) सर्वत्र विद्यमान है (त्वम् सूर्यम् अरोचयः) तू सूर्य को प्रकाशित करता है। तू (विश्व-कर्मा) समस्त जगत् का बनाने वाला, और (विश्व-देवः) सब देवों का देव, सब का दाता, सब का प्रकाशक और (महान् असि) सब से बड़ा है ।

विभ्राजञ्ज्योतिषा स्व१रगच्छो रोचनं दिवः ।

देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे ॥ ३ ॥

भा०—तू (ज्योतिषा) तेज से (स्वः विभ्राजन्) समस्त विश्व को प्रकाशित करता हुआ (दिवः) सूर्य और आकाशस्थ समस्त प्रकाशमान पिण्डों को भी (रोचनं) तेज (आगच्छः) प्राप्त कराता है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (देवाः) सब देदीप्यमान लोक और सब विद्वान् हे (इन्द्र) देदीप्यमान ! (ते सख्याय) तेरे मित्र भाव के लिये (येमिरे) अपने को नियम-बन्धन में बांधते हैं, तेरी आज्ञा का पालन करते हैं ।

एन्द्र नो गधि प्रियः सत्राजिदगोह्यः ।

गिरिर्न विश्वतस्पृथुः पतिर्दिवः ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (नः प्रियः) हमारा प्रिय, (सत्राजित्) सत्य बल से सबको विजय करने वाला, (अगोह्यः) अगोप्य, सर्वत्र प्रकाशित, (गिरिः) मेघ वा पर्वत के समान (विश्वतः पृथुः) सब से बड़ा (दिवः पतिः) सूर्यादि तेजस्वी जगत् का और हमारी कामनाओं का भी स्वामी, पालक है। तू (नः आ गधि) हमें प्राप्त हो ।

अभि हि स॑त्य सोमपा उभे ब॑भूथ रोद॑सी ।
इन्द्रासि॑ सुन्व॒तो वृ॒धः पति॑र्दि॒वः ॥ ५ ॥

भा०—हे (सत्य) सत्यस्वरूप ! (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! तू (उभे रोदसी) आकाश और पृथिवी दोनों पर (अभि बभूथ) वश करता है । तू (सुन्वतः वृधः) उपासक का बढ़ाने वाला, (दिवः पतिः) कामनाओं और तेजों का स्वामी है ।

त्वं हि शश्व॑तीना॒मिन्द्र॑ द॒र्ता पु॒रामसि॑ ।
ह॒न्ता दस्यो॒र्मनो॑र्वृ॒धः पति॑र्दि॒वः ॥ ६ ॥ १ ॥

भा०—(त्वं) तू अवश्य (शश्वतीनां पुराम्) बहुत सी, अनादि काल से बनी (पुराम्) नगरियों का (दर्त्ता असि) तोड़ने हारा है । तू (दस्योः हन्ता) दुष्टों को दण्ड देने वाला और (मनोः वृधः) उपासक का बढ़ाने वाला और उसका (दिवः पतिः) कामनाओं का पालक, वा (दिवः पतिः) भूमि और आकाशादि का भी पालक है । इति प्रथमो वर्गः॥

अ॒धा ही॑न्द्र गिर्वण॒ उप॑ त्वा॒ कामा॑न्म॒हः स॑सृ॒ज्महे॑ ।
उ॒देव॒ यन्त॑ उ॒दभिः॑ ॥ ७ ॥

भा०—हे (गिर्वणः) वाणी द्वारा उपास्य ! स्तुत्य ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (अध हि) और हम (त्वा उप) तेरे ही समीप रह कर (महः कामान्) बड़ी २ अभिलाषाओं को (ससृज्महे) पूर्ण करें (उदा इव यन्तः उदभिः) जिस प्रकार नदी समुद्रादि से जाते हुए यात्री जल से ही अपनी समस्त आवश्यकताओं को पूर्ण करते हैं उसी प्रकार तुझ से उन्नत होकर हम तेरे द्वारा ही सब अभिलाषाएं पूर्ण कर लिया करें ।

वार्ण त्वा॑ य॒व्याभि॒र्वर्ध॑न्ति शूर॒ ब्रह्मा॑णि ।
वा॒वृ॒ध्वांसं॑ चिदद्रिवो दि॒वेदि॑वे ॥ ८ ॥

भा०—हे (शूर) शूरवीर ! (वाः न) जल जिस प्रकार

(यव्याभिः) नदियों द्वारा समुद्र को बढ़ाते हैं उसी प्रकार हे (अद्रिवः) शक्तिशालिन् (ब्रह्माणि) नाना ऐश्वर्य और स्तुतिवचन (दिवे दिवे) प्रति दिन (वावृध्वांसं) बढ़ते हुए (त्वा वर्धन्ति) तुझे बढ़ाते हैं।

युञ्जन्ति हरी इषिरस्य गाथयोरौ रथ उरुयुगे।
इन्द्रवाहा वचोयुजा ॥ ९ ॥

भा०—(इषिरस्य) बड़ी इच्छा वाले राजा के (उरुयुगे) बड़े जुए वाले, (उरौ रथे) बड़े रथ में जिस प्रकार विद्वान् जन (इन्द्र-वाहा) ऐश्वर्य प्राप्ति कराने वाले, (वचोयुजा) वाणी मात्र से जुड़ने वाले (हरी युञ्जन्ति) दो अश्वों को नियुक्त करते हैं उसी प्रकार (गाथया) गान करने योग्य स्तुति और गाथा अर्थात् वेद वाणी द्वारा (इषिरस्य) सब के सञ्चालक, प्रवर्त्तक उस के (उरौ) विशाल (उरु-युगे रथे) महान् योजनावान् रमणीय रूप में विद्वान् जन, (वचः-युजा) वाणीमात्र से उस में योग देने वाले (इन्द्र-वाहा) इन्द्र आत्मा को धारण करने वाले (हरी) स्त्री पुरुषों को वा (हरी) गतिमान् आत्मा और मन को (युञ्जन्ति) योग द्वारा समाहित करते हैं।

त्वं न इन्द्रा भरँ ओजो नृम्णं शतक्रतो विचर्षणे।
आ वीरं पृतनाषहम् ॥ १० ॥

भा०—हे (शत-क्रतो) अपरिमित ज्ञानवन्! हे (विचर्षणे) समस्त विश्व को देखने हारे! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (त्वं नः ओजः नृम्णं आ भर) तू हमें बल, पराक्रम और ऐश्वर्य प्रदान कर। और (पृतना-सहं वीरं आभर) संग्राम विजयी वीर को प्राप्त करा।

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ।
अधा ते सुम्नमीमहे ॥ ११ ॥

भा०— हे (वसो) सब के पिता, सबको बसाने हारे, सब में व्यापक! हे (शत-क्रतो) अपरिमित ज्ञान और कर्मों वाले! (त्वं हि नः पिता) तू

निश्चय से हमारा पिता और (त्वं माता बभूविथ) तू ही हमारी माता होती है। (अध) इसी कारण हम (ते सुम्नम् ईमहे) तेरे से सुख की याचना करते हैं।

त्वां शुष्मिन्पुरुहूत वाजयन्तमुप ब्रुवे शतक्रतो।
स नो रास्व सुवीर्यम् ॥ १२ ॥ २ ॥

भा०—हे (शुष्मिन्) बलशालिन्! हे (शतक्रतो) अपरिमित कर्म-सामर्थ्य से सम्पन्न! हे (पुरुहूत) बहुतों से प्रेमपूर्वक बुलाये गये! (वाजयन्तं त्वां) बड़े ऐश्वर्य और ज्ञान प्रदान की कामना करने वाले तुझ से मैं प्रार्थना करता हूं, (सः) वह तू (नः सुवीर्यम् रास्व) हमें उत्तम बल, वीर्य प्रदान कर। इति द्वितीयो वर्गः ॥

[९९]

नृमेध ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ आर्ची स्वराड् बृहती ॥ २ बृहती। ३, ७ निचृद् बृहती। ५ पादनिचृद् बृहती। ४, ६, ८ पंक्तिः ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

त्वामिदा ह्यो नरोऽपीप्यन्वज्रिन्भूर्णयः।
स इन्द्र स्तोमवाहसामिह श्रुध्युप स्वसरमा गहि ॥ १ ॥

भा०—हे (वज्रिन्) शक्तिशालिन्! (भूर्णयः) प्रजाओं के उत्तम पालनकर्त्ता (नरः) नायक जन (इदा ह्यः) अब तब, पूर्ववत् अब और आगे भी, (त्वाम् अपीप्यन्) तुझे ही बढ़ावें। (सः) वह (स्तोमवाहसाम्) स्तुति धारण करने वालों की प्रार्थना को (इह श्रुधि) इस अवसर में श्रवण कर और (स्वसरम् उप आ गहि) गृहवत् राष्ट्र को तू प्राप्त हो। (२) परमेश्वर, सबकी प्रार्थना श्रवण करता है और (स्वसरम्) अपने से व्याप्त विश्व को प्राप्त है।

मत्स्वा सुशिप्र हरिवस्तदीमहे त्वे आ भूषन्ति वेधसः।
तव श्रवांस्युपमान्युक्थ्या सुतेष्विन्द्र गिर्वणः ॥ २ ॥

भा०—हे (हरिवः) मनुष्यों के स्वामिन्! (त्वे) तेरे अधीन, तेरे आश्रय (वेधसः आ भूषन्ति) विद्वान् कर्त्ता जन सब ओर से आकर रहते हैं, (तत् ईमहे) इसी से हम भी तेरी याचना करते हैं। हे (सुशिप्र) सुमुख! हे सोम्य! तू (मत्स्व) आनन्द लाभ कर और सबको सुखी कर। हे (गिर्वणः) वाणियों से स्तवन करने योग्य! (सुतेषु) उत्पन्न पदार्थों और ऐश्वर्यों में (तव) तेरे (उक्थ्या उपमानि) प्रशंसनीय, उपमा योग्य, (श्रवांसि) यश और श्रवणयोग्य ज्ञान और कर्म हैं।

आयन्त इव सूर्यं विश्वेदिन्द्रस्य भक्षत।
वसूनि जाते जनमान ओजसा प्रति भागं न दीधिम ॥ ३ ॥

भा०—हे प्रजास्थ जनो! (आयन्तः) आश्रय लेते हुए आप लोग आश्रित जनों के समान ही (सूर्यम्) सूर्य के समान तेजस्वी, (इन्द्रस्य) ऐश्वर्यवान् प्रभु के (विश्वा वसूनि) सब प्रकार के ऐश्वर्यों को (भक्षत) सेवन करो, वा परस्पर विभक्त कर लिया करो। और (जाते) उत्पन्न और (जनमाने) आगे उत्पन्न होने वाले ऐश्वर्य में भी हम लोग (ओजसा) अपने बल पराक्रम के द्वारा (भागं) अपने प्राप्य अंश को (प्रति दीधिम) प्रत्येक व्यक्ति अपना २ ग्रहण करें।

मा गृधः कस्य स्विद्धनम्। यजु० अ० ४० ॥

अनर्शरातिं वसुदामुप स्तुहि भद्रा इन्द्रस्य रातयः।
सो अस्य कामं विधतो न रोषति मनो दानाय चोदयन् ॥ ४ ॥

भा०—हे मनुष्य! तू (अनर्श-रातिम्) निष्पाप, सात्विक, पवित्र दान देने वाले, (वसु-दाम्) ऐश्वर्य के दाता प्रभु की (उप स्तुहि) उपासना और प्रार्थना किया कर। क्योंकि (इन्द्रस्य रातयः) ऐश्वर्यवान् के सब दान (भद्राः) सुखदायक और कल्याणकारक हैं। (सः) वह (विधतः अस्य) परिचर्या करने वाले इस भक्त के (कामं न रोषति) अभिलाषा

को नष्ट नहीं करता, प्रत्युत (दानाय मनः चोदयन्) दान देने के लिये ही मन वा उत्तम ज्ञान की प्रेरणा किया करता है।

त्वमिन्द्र प्रतूर्तिष्वभि विश्वा असि स्पृधः ।
अशस्तिहा जनिता विश्वतूरसि त्वं तूर्य तरुष्यतः ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (त्वम्) तू (प्रतूर्त्तिषु) संग्रामों की (विश्वाः स्पृधः) सब स्पर्धालु पर-सेनाओं को (अभि असि) पराजित करने में समर्थ होता है। तू (अशस्ति-हा) निन्दकों का नाशक, (जनिता) सबका पितावत् जनक (विश्वतूः असि) सब शत्रुवर्ग का नाशक वा समस्त विश्व का चालक है। (त्वं) तू (तरुष्यतः) हिंसक, पीड़कों को (तूर्य) विनष्ट कर।

अनु ते शुष्मं तुरयन्तमीयतुः क्षोणी शिशुं न मातरा ।
विश्वास्ते स्पृधः श्नथयन्त मन्यवे वृत्रं यदिन्द्र तूर्वसि ॥ ६ ॥

भा०—(मातरा शिशुं न) माता पिता जिस प्रकार शिशु के समीप प्रेमपूर्वक प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार (ते) तेरे (तुरयन्तं शुष्मम् अनु) दुष्टनाशक एवं संचालक बल के पीछे २ आकृष्ट होकर (क्षोणी) आकाश-भूमि गत सब पदार्थ उसके पीछे चलते हैं। (ते मन्यवे) तेरे क्रोध के आगे (विश्वाः स्पृधः) समस्त स्पर्धाकारी अहंकारी भी (श्नथयन्त) शिथिल हो जाते हैं (यद् इन्द्र) जब तू हे शत्रुनाशक! (वृत्रं) दुष्ट, बाधक को (तूर्वसि) नाश करने को तैयार होता है।

इत ऊती वो अजरं प्रहेतारमप्रहितम् ।
आशुं जेतारं हेतारं रथीतममतूर्तं तुग्र्यावृधम् ॥ ७ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! आप लोग (अजरम्) अविनाशी (प्र-हेतारं) सबके प्रेरक, शत्रुओं के नाशक, और (अप्र-हितम्) स्वयं किसी से भी प्रेरित न होने वाले, (आशुम्) वेगवान्, व्यापक, (जेतारं) सर्वविजयी,

(हेतारं) दुष्टों के नाशक, (रथिन्तमम्) रथ वालों में सर्वोत्तम, विश्व-मात्र में महारथी के तुल्य, (अतूर्तम्) अहिंसित, अबाधित, (तुग्य-वृधम्) दुष्टों के नाश करने की शक्ति को बढ़ाने वाले, परमेश्वर को आप लोग (ऊती) अति प्रेमपूर्वक (इतः) आगे करो ।

इष्कर्तारमनिष्कृतं सहस्कृतं शतमूतिं शतक्रतुम् ।
समानमिन्द्रमवसे हवामहे वसवानं वसूजुवम् ॥ ८ ॥ ३ ॥

भा०—(इष्कर्त्तारम्) सबके संचालक, (अनिष्कृतं) अन्यों से अप्रेरित, (सहस्कृतम्) सब बलों के उत्पादक, (शतम्-ऊतिं) अपरिमित रक्षा साधनों से युक्त (शत-क्रतुम्) अपरिमित प्रज्ञावाले, (समानं) सबके प्रति समान, (वसवानं) सबको आच्छादित करने वाले, (वसू-जुवम्) सब जीवों, ऐश्वर्यों और लोकों के प्रेरक, दाता, (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् प्रभु को हम (अवसे) अपनी रक्षार्थ (हवामहे) प्रार्थना किया करें । इति तृतीयो वर्गः ॥

[१००]

नेमो भार्गवः । ४, ५ इन्द्र ऋषिः ॥ देवताः—१—९, १२ इन्द्रः । १०, ११ वाक् ॥ छन्दः—१, ४ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । २, ११ निचृत् त्रिष्टुप् । ३, ५, १२ त्रिष्टुप् । १० विराट् त्रिष्टुप् । ६ निचृज्जगती । ७, ८ अनुष्टुप् । ९ निचृदनुष्टुप् ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

अयं त एमि तन्वा पुरस्ताद्विश्वे देवा अभि मा यन्ति पश्चात् ।
यदा मह्यं दीधरो भागमिन्द्रादिन्मया कृणवो वीर्याणि ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! (ते पुरस्तात्) तेरे आगे (अयं) यह मैं (तन्वा एमि) अपने देहसहित आता हूं । और इसी प्रकार (मा पश्चात्) मेरे पीछे (विश्वे देवाः) समस्त कामनावान् जीवगण, मुझ इन्द्रादि के समान (त्वा पुरस्तात् अभियन्ति) तेरे समक्ष आते हैं । तू

(यदा) जब (मह्यं भागम् दीधरः) मेरे लिये सेवन करने योग्य अंश कर्मफल वा ग्राह्य विषय को रखता है, बनाता है, (आत् इत्) अनन्तर ही (मया) मुझ द्वारा (वीर्याणि कृणवः) नाना बलयुक्त कार्य करता है । जिस प्रकार स्वामी अधीनस्थ भृत्य जन के लिये उसका वेतनादि अंश प्रथम नियत कर देता है और उससे बड़े २, भारी काम भी करा लेता है उसी प्रकार परमेश्वर की व्यवस्था में भी सुकृतों के नाना उत्तम फल प्राप्त होने नियत हैं । उनको लक्ष्य कर जीव द्वारा नाना आश्चर्यजनक कर्म होते हैं ।

दधा॑मि ते॒ मधु॑नो भ॒क्षमग्रे॑ हि॒तस्ते॑ भा॒गः सु॒तो अ॑स्तु॒ सोमः॑ ।
अस॑श्च॒ त्वं द॑क्षिण॒तः सखा॒ मेऽधा॑ वृ॒त्राणि॑ जङ्घनाव॒ भूरि॑ ॥२॥

भा०—हे ऐश्वर्यवन् ! (ते) तेरे दिये (मधुनः भक्षम्) मधुर अन्न के भोग्य फल को मैं (अग्रे दधामि) सदा अपने आगे लक्ष्य रूप से रखता हूं । और (ते भागः) तेरा भाग (सुतः सोमः ते हितः अस्तु) यह उत्पादित ऐश्वर्य सब तेरा ही दिया, तेरे ही अर्पण हो । और तू (च मे) यदि मेरा (दक्षिणतः सखा असः) दायें ओर, सबसे बड़ा, प्रबल सखा, हो (अध) तो तू और मैं दोनों मिलकर (भूरि वृत्राणि) बहुत से विघ्नों को (जंघनाव) विनाश करें ।

'च' अत्र चण् इति णितः प्रयोगश्चेदर्थे वर्त्तते । 'निपातैर्यद्यदिहन्तकुविच्चे च्चेणकच्चिदयत्रयुक्तम्' इति तिङो निघाताभावः ॥ ईश्वर ही सबसे बड़ा सहायक है, उसके विना विघ्नों का नाश असम्भव है ।

प्र सु स्तोमं॑ भरत वाज॒यन्त॒ इन्द्रा॑य स॒त्यं यदि॑ स॒त्यमस्ति॑ ।
नेन्द्रो॑ अ॒स्तीति॒ नेम॑ उ त्व आह॒ क ईं॑ ददर्श॒ कम॒भि ष्ट॑वाम ॥३॥

भा०—हे मनुष्यो ! (वाजयन्तः) ज्ञान, ऐश्वर्य, और बल की कामना करते हुए आप लोग अब (इन्द्राय) उस ऐश्वर्यवान् की उपासनार्थ (स्तोमं प्र सु भरत) स्तुतियों का अच्छी प्रकार प्रयोग करो । (यदि सत्यं)

यदि संदेह है कि वह सत्य है तो जानो वह (सत्यम् अस्ति) अवश्य सत्य है। क्यों कि (उ त्वः नेमः) कोई २ मनुष्य (न इन्द्रः अस्ति इति आह) ऐश्वर्यवान् विघ्ननाशक प्रभु नहीं है ऐसा भी कहता है। (कः ईं ददर्श) उसको कौन देखता है ? फिर हम (कम् अभि स्तवाम) किसकी स्तुति करें ?

अयमस्मि जरितः पश्य मेह विश्वा जातान्यभ्यस्मि मह्ना।
ऋतस्य मा प्रदिशो वर्धयन्त्यादर्दिरो भुवना दर्दरीमि ॥ ४ ॥

भा०—इस प्रकार संदिग्ध हृदय वाले स्तोताजन के प्रति साक्षात् प्रभु का वचन सन्देह निवृत्यर्थ इस प्रकार है—हे (जरितः) स्तुतिकर्त्तः! (अयम् अस्मि) मैं यह हूं। (पश्य मा इह) मुझे तू यहां इस जगत् में इस रूप में देख। मैं (मह्ना) महान् सामर्थ्य से (विश्वा जातानि अभि अस्मि) समस्त पदार्थों को अपने वश किये हूं। (ऋतस्य) सत्य ज्ञान के (प्र-दिशः) उत्तम कोटि के दिखाने वा उपदेश करने वाले शास्ता गुरुजन (मा वर्धयन्ति) मुझे ही बढ़ाते, मेरी ही महिमा को विस्तार करते हैं। मैं ही (आदर्दिरः) सबको छिन्न भिन्न करने वाला हूं। (भुवना) समस्त उत्पन्न लोकों को भी (दर्दरीमि) प्रलय रूप से परमाणु २, छिन्न भिन्न करता हूं। जब तक जीव अर्थात् देह का नायक 'नेम' देह के सुखों में मग्न रहता है तब वह प्रभु को भूल जाता है। पर जब वह संकट या दुःखदशा में अपनी चलती नहीं देखता और बन्धु बान्धवों और अपने २ देह का भी नाश होता देखता है तब वह प्रभु की महती सत्ता को अनुभव करता है।

आ यन्मा वेना अरुहन्नृतस्यँ एकमासीनं हर्यतस्य पृष्ठे।
मनश्चिन्मे हृद आ प्रत्यवोचदचिक्रदञ्छिशुमन्तः सखायः ॥ ५ ॥

भा०—(हर्यतस्य) इस अति सुन्दर (ऋतस्य) गतिमान् सत् कारणरूप प्रकृतिरूप तत्व के (पृष्ठे) पीठ पर (आसीनं) विराजे हुए (एकम्) एक अद्वितीय (मा) मुझे (वेनाः) चाहने वाले विद्वान् जन (मा अरुहन्) मुझ तक पहुंचते हैं, तब (मनः) उन

का मननशील अन्तःकरण ही (मे हृदे आ प्रति अवोचत्) मेरे हृदय को प्राप्त करने के लिये आदरपूर्वक मेरे प्रति कहता है या मुझ हृदयस्थ सुहृद् के लिये वचन-प्रतिवचन किया करता है और वे (सखायः) मेरे मित्र होकर (अन्तः शिशुम्) भीतर अन्तःकरण में व्यापक मुझ को लक्ष्य करके (अचिक्रदन्) स्तुति किया करते हैं।

अथवा—वे (शिशु-मन्तः सखायः मे अचिक्रदन्) भीतर सुतवत् विद्यमान् मुझ व्यापक से युक्त होकर मुझे पुकारा करते हैं। जैसे कोई गोद में बच्चा लेकर उसी से घण्टों विनोद से बात किया करते हैं ठीक उसी प्रकार प्रभु को हृदय में सूक्ष्म रूप से विद्यमान अनुभव करके भक्त उसी के प्रति नाना वचन-प्रतिवचन कहा करते हैं।

विश्वेत्ता ते सवनेषु प्रवाच्या या चकर्थ मघवन्निन्द्र सुन्वते।
पारावतं यत्पुरुसम्भृतं वस्वपावृणोः शरभाय ऋषिबन्धवे ॥६।४॥

भा०—हे (मघवन्) पूजित धनयुक्त ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यप्रद ! हे तेजःस्वरूप ! सर्वद्रष्टः ! (सवनेषु) उपासना, स्तुति आदि के अवसरों में, या (सवनेषु) निर्माण किये लोकों में, (या) जो (प्र-वाच्या) उत्तम रूप से वर्णन करने योग्य (ता) उन नाना (विश्वा) समस्त कार्यों को (चकर्थ) करता है और उन को तू (सुन्वते) अपने उपासक के लिये (अप अवृणोः) स्पष्ट खोल देता है। और (यत्) जो (पारावतम्) परम रक्षास्थान, मोक्षमय लोक का (वसु) परमैश्वर्य (पुरु-सम्भृतम्) बहुत एकत्र है उस को भी (ऋपि-बन्धवे शरभाय) जगत्द्रष्टा के बन्धुस्वरूप एवं उस को प्राप्त होने वाले भक्त के सुखार्थ (अप अवृणोः) खोल देता है।

प्र नूनं धावता पृथङ् नेह यो वो अवावरीत्।
नि षीं वृत्रस्य मर्मणि वज्रमिन्द्रो अपीपतत् ॥ ७॥

भा०—हे विद्वान् उपासक जीवो ! (नूनं) तुम अवश्य निश्चयपूर्वक बहुत शीघ्र (प्र पृथक् धावत) उत्तम मार्ग पर पृथक्, स्वतन्त्र होकर चलो

और अपने आप को खूब स्वच्छ करो। (यः) जो परमेश्वर (इत्) इस जगत् में (वः) आप लोगों को (न अवावरीत्) नहीं रोकता वह ही (सीम्) सब प्रकार से (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रभु (वृत्रस्य) तुम्हें रोकने वाले, विघ्नकारी अज्ञान के (मर्मणि) मर्म पर या मूल भाग पर (वज्रम्) ज्ञान रूप वज्र को (नि अपीपतत्) गिराता है और उसका नाश करता है।

मनोजवा अयमान आयसीमतरत्पुरम्।
दिवं सुपर्णो गत्वाय सोमं वज्रिण आभरत् ॥ ८ ॥

भा०—(मनोजवा) मन के वेग वाला वा उत्तम ज्ञान, संकल्प के वेग से युक्त (अयमानः) आगे बढ़ता हुआ आत्मा (आयसीम्) लोहे की बनी (पुरम्) प्रकोट के समान प्राणों से बनी इस पञ्चकोशमय देह-पुरी को (अतरत्) पार कर जाता है। ज्ञान के बल से ज्ञानी देहबन्धन से मुक्त हो जाता है। वह (सुपर्णः) उत्तम ज्ञानी आत्मा (दिवं गत्वाय) तेजःस्वरूप प्रभु को प्राप्त होकर (वज्रिणे सोमम्) सर्वशक्तिमान् प्रभु के सर्वप्रेरक बल, आनन्द को (आभरत्) प्राप्त करता है। 'वज्रिणे' इति षष्ठ्यर्थे चतुर्थी।

समुद्रे अन्तः शयत उद्ना वज्रो अभीवृतः।
भरन्त्यस्मै संयतः पुरः प्रस्रवणा बलिम् ॥ ९ ॥

भा०—जिस प्रकार (वज्रः) विद्युत् रूप बल, (उद्ना अभीवृतः) जल से आवृत, जल में छिपा, (समुद्रे अन्तः शेते) समुद्र के भीतर व्याप रहा है (अस्मै बलिम्) उस बलशाली विद्युत् के बल को (संयतः) अच्छी प्रकार नियमित (प्रस्रवणाः) बहती जल-धाराएं (पुरः भरन्ति) पूर्व ही धारण किये रहती हैं। इसी प्रकार (वज्रः) अज्ञान का निवारक ज्ञान का प्रकाश और बल (उद्ना) उत्तम रीति से (अभि-वृतः) सर्वत्र विद्यमान (अन्तः समुद्रे) समुद्रवत् व्यापक, आनन्दमय प्रभु में

(शयते) व्यापक है। (पुरःप्रस्रवणाः) आगे उत्तम रीति से जाने वाले, विनीत जन (सं-यतः) संयम से रहते हुए, (अस्मै) उस प्रभु के (वलिम्) वलयुक्त ज्ञान को (भरन्ति) धारण करते हैं।

यद्वाग्वद॑न्त्यविचेत॒नानि॒ राष्ट्री॑ दे॒वानां॑ निष॒साद॑ म॒न्द्रा।
चत॑स्र॒ ऊर्जं॑ दुदुहे॒ पयां॑सि॒ क्व॑ स्विदस्याः पर॒मं ज॑गाम ॥ १० ॥

भा०—(यत्) जो (वाक्) वाणी (राष्ट्री) तेजस्विनी प्रभुशक्ति के समान (मन्द्रा) अति सुखप्रद, सबको प्रसन्न करने वाली, (देवानां) विद्वानों और सब भूतों के बीच में (अविचेतनानि) अविज्ञेय, निगूढ़ तत्वों को (वदन्ती) कहती या प्रकाश करती हुई (देवानां मध्ये नि-ससाद) विद्वानों के बीच विराजती है। वह (चतस्रः) चारों दिशाओं, चारों आश्रमों, चारों वर्णों की प्रजाओं के प्रति (पयांसि) मेघस्थ विद्युत् जैसे जलों को प्रदान करती है वैसे ही नाना ज्ञानों को (दुदुहे) प्रदान करती है, और (ऊर्जं दुदुहे) जैसे भूमि अन्न को उत्पन्न करती है वैसे वह भी बल को पूर्ण करती है। (अस्याः) इस वेदमयी वाणी का (परमं) परम रूप (क स्वित् जगाम) कहां विद्यमान है यह नहीं ज्ञात होता।

दे॒वीं वाच॑मजनयन्त दे॒वास्तां वि॒श्वरू॑पाः प॒शवो॑ वदन्ति।
सा नो॑ म॒न्द्रेष॒मूर्जं॒ दुहा॑ना धे॒नुर्वाग॒स्मानुप॒ सुष्टु॒तैतु॑ ॥ ११ ॥

भा०—(देवम्) अर्थों का प्रकाश करने वाली (वाचम्) वाणी को (देवाः) विद्वान् जन (अजनयन्त) प्रकट करते हैं और (तां) उसको (विश्व-रूपाः) सब प्रकार के (पशवः) ज्ञानद्रष्टा जीवगण, (वदन्ति) व्यक्त और अव्यक्त रूप से बोलते हैं। (सा) वह (मन्द्रा) सुख दायिनी (धेनुः) गौ के समान (इषम् ऊर्जं दुहाना) मध्यम लोक अन्तरिक्ष में मेघस्थ विद्युत् के तुल्य अन्न, जलवत्, प्रेरणा और सम्पदा प्रदान करती हुई (वाक्) वाणी (सु-स्तुता) उत्तम रीति से उपदेश की जाकर (अस्मान् आ एतु) हमें प्राप्त हो।

सखे विष्णो वितरं वि क्रमस्व द्यौर्देहि लोकं वज्राय विष्कभे ।
हनाव वृत्रं रिणचाव सिन्धूनिन्द्रस्य यन्तु प्रसवे विसृष्टाः १२।५

भा०—हे (विष्णो) व्यापक शक्तिशालिन् ! (सखे) मित्र ! तू (वितरं विक्रमस्व) खूब वायु के समान विक्रम कर । हे (द्यौः) पृथिवी हे मूर्धन्य राजसभे ! (वज्राय विष्कभे) वज्र, शस्त्र-बल, सैन्यादि के विशेष रूप से छावनी बनाकर बैठने के लिये (लोकं देहि) स्थान प्रदान कर । हम दोनों मिलकर (वृत्रं हनाव) बढ़ते शत्रु का मेघ को वायु-विद्युत्वत् नाश करें । और (सिन्धून् रिणचाव) मेघस्थ जलों के तुल्य शत्रु को वा अपने ही तीव्रगामी सैन्य पंक्तियों को स्वतन्त्र रूप से जाने दें । वे (इन्द्रस्य प्रसवे) सेनापति के शासन में (विसृष्टाः) विशेषरूप से गति करते हुए (यन्तु) जावें । इति पञ्चमो वर्गः ॥

[१०१]

जमदग्निर्भार्गव ऋषिः ।। देवताः—१—५ मित्रावरुणौ । ५, ६ आदित्याः । ७, ८ अश्विनौ । ९, १० वायुः । ११, १२ सूर्यः । १३ उषाः सूर्यप्रभा वा । १४ पवमानः । १५, १६ गौः ॥ छन्दः—१ निचृद् बृहती । ६, ७, ९, ११ विराड् बृहती । १२ भुरिग्बृहती । १० स्वराड् बृहती । ५ आर्ची स्वराड् बृहती । १३ आर्ची बृहती । २, ४, ८ पंक्तिः । ३ गायत्री । १४ पादनिचृत् त्रिष्टुप् । १५ त्रिष्टुप् । १६ विराट् त्रिष्टुप् ।। षोडशर्चं सूक्तम् ॥

ऋधगित्था स मर्त्यः शशमे देवतातये ।
यो नूनं मित्रावरुणावभिष्टय आचक्रे हव्यदातये ॥ १ ॥

भा०—(यः) जो (नूनं) शीघ्र ही (मित्रावरुणौ) मित्र और वरुण, प्राण और अपान दोनों को (अभिष्टये) अभिमत फल प्राप्त करने और (हव्य-दातये) उत्तम अन्न ग्रहण के लिये (आचक्रे) अपने अनुकूल कर लेता है, (सः मर्त्यः) वह मनुष्य (देव-तातये) इन्द्रिय गण को

वश करने के लिये (ऋधक् इत्था) सचमुच इस प्रकार से (शशमे) शम की साधना करता है ।

इसी प्रकार जो व्यक्ति यज्ञ द्वारा मित्र, वायु और वरुण, जल इन को अपने अनुकूल कर स्वास्थ्यप्रद और अन्नप्रद कर लेता है (देव-तातये) सब मनुष्यों के लिये जगत् में शान्ति उत्पन्न करता है, वह उत्तम कृषि से अन्न भी उत्पन्न कर लेता है ।

वर्षिष्ठक्षत्रा उरुचक्षसा नरा राजाना दीर्घश्रुत्तमा ।
ता बाहुता न दंसना रथर्यतः साकं सूर्यस्य रश्मिभिः ॥ २ ॥

भा०—वे दोनों मित्र और वरुण, (वर्षिष्ठ-क्षत्रा) अति बलशाली, प्रचुर वर्षा लाने वाले वीर्य जलादि से युक्त (उरुचक्षसा) विशाल दर्शन वाले (नरा) उत्तम दो नायकों के तुल्य (राजाना) तेजस्वी, (दीर्घ-श्रुत्तमा) बहुश्रुत हैं । (ता) वे दोनों (बाहुता न) दो बाहुओं के समान (दंसना) नाना कर्म (रथर्यतः) करते हैं । इसी प्रकार वायु और मेघ दोनों मित्र और वरुण हैं । वे (वर्षिष्ठ-क्षत्रा) दोनों प्रचुर वर्षा लाने वाले बल और जल से युक्त, (उरुचक्षसा) बहुत रूपों में दीखने वाले, (नरा) उत्तम सुख प्राप्त कराने वाले (राजाना) विद्युत् आदि से प्रदीप्त (दीर्घश्रुत्तमा) दूर से ही गर्जन रूप में सुनाई देने वाले हैं, वे मानो (बाहुता न) प्रजापति की दो बाहुओं के समान (सूर्यस्य रश्मिभिः साकं) सूर्य की किरणों के साथ (दंसना रथर्यतः) बहुत से कर्म करते हैं । उन दोनों से वृष्टि, अन्नोत्पत्ति और ऋतु परिवर्तन आदि होते हैं ।

राष्ट्र में वे दोनों अधिकारी न्याय-शासक और सैन्य-विभाग हैं । वे सूर्यवत् तेजस्वी राजा के रश्मिरूप मर्यादा, कानूनों या प्रणिधियों, गुप्तचरों के द्वारा या तेजस्वी आदि गुणों से बहुत से कार्य सम्पादन करते हैं ।

सूर्य रश्मियों की प्रणिधियों से तुल्यता—

न यस्य मण्डले राज्ञो न्यस्तप्रणिधिदीधितेः ।

अदृष्टमभवत् किञ्चिद् व्यभ्रस्येव विवस्वतः ॥ ४८ ॥

रश्मियों की गुणों से उपमा जैसे—

इन्दोरगतयः पद्मे सूर्यस्य कुमुदेंऽशवः ।
गुणास्तस्य विपक्षेऽपि गुणिनो लेभिरेऽन्तरम् ॥ ७५ ॥

(रघु० १७)

प्र यो वां मित्रावरुणा जिरो दूतो अद्रवत् ।
अयःशीर्षा मदेरघुः ॥ ३ ॥

भा०—हे (मित्रा-वरुणा) मित्र अर्थात् दिनवत् प्रजा के प्राणों के रक्षक और अर्थात् रात्रिवत् सब को सुख देने वाले राजा शासकादि जनो ! (यः) जो (वां) तुम दोनों का (अजिरः) वेग से जाने वाला, (दूतः) दूत (प्र|अद्रवत्) देश देशान्तर जाता हो वह (अयः-शीर्षा) लोहे के शिर वाला, दृढ़ विचार और (मदे रघुः) हर्षादि से प्रफुल्लगति हो । शिर लोहे का हो अर्थात् उस के विचार दृढ़ और रहस्यों के छिपाने में कठोर हों । अथवा-(अयः ते शीर्षा) उस के शिर पर स्वर्णीय मुकुट या पद का चिन्ह आदि हो ।

न यः संपृच्छे न पुनर्हवीतवे न संवादाय रमते ।
तस्मान्नो अद्य समृतेरुरुष्यतं बाहुभ्यां न उरुष्यतम् ॥४॥

भा०—(यः) जो (संपृच्छे न रमते) अच्छी प्रकार प्रश्न पूछने पर भी प्रसन्नतापूर्वक उत्तर नहीं देता, (न पुनः हवीतये रमते) न बुलाने पर ही प्रसन्न होता है और (न सं-वादाय रमते) न परस्पर संवाद के लिये ही हर्षपूर्वक अनुमति देता है, (तस्मात् सम्-ऋतेः) उस शत्रु के साथ संग्राम से (नः अद्य उरुष्यतम्) हमारी आज रक्षा करो और (बाहु-भ्यां नः उरुष्यतम्) उस के बाहुओं से हमें बचाओ ।

प्र मित्राय प्रार्यम्णे सचथ्यमृतावसो ।
वरूथ्यं वरुणे छन्द्यं वचः स्तोत्रं राजसु गायत ॥५ ॥६॥

भा०—हे (ऋत-वसो) सत्य के धनी ! तू (मित्राय) स्नेही जन, (अर्यम्णे) शत्रुओं के नियन्ता और (वरुणे) श्रेष्ठ जन के लिये (सचथ्यम्) सेवायोग्य, आदरणीय, मेल मिलाप के और (वरूथ्यम्) दुःखवारक तथा (छन्द्यं) चित्तवृत्ति के अनुकूल (वचः) वचन का (प्र) प्रयोग कर । और हे (मनुष्यो) आप लोग (राजसु) राजा, तेजस्वी जनों में उक्त प्रकार के (स्तोत्रं) स्तुति वचन का (गायत) गान करो ।

ते हि॑न्वि॒रे अ॑रु॒णं जेन्यं॒ वस्वेकं॑ पु॒त्रं ति॑सृ॒णाम् ।
ते धामा॑न्य॒मृता॒ मर्त्या॑ना॒मद॑ब्धा अ॒भि च॑क्षते ॥ ६ ॥

भा०—(ते) वे (अरुणं) तेजस्वी, अमित वीर्यवान्, (जेन्यं) विजयशील (वसु) सब को सुखपूर्वक बसाने वाले, (तिसृणां) तीनों लोकों के एक अद्वितीय सूर्य के समान उत्तम, मध्यम, निकृष्ट तीनों प्रकार की प्रजाओं के बीच (एकं) एक अद्वितीय (पुत्रं) बहुतों के रक्षक को (हिन्विरे) बढ़ावें । (ते) वे (अमृताः) कभी नाश न होने वाले, (अदब्धाः) किसी से भी न-मारे जाकर (मर्त्यानां धामानि) मनुष्यों के सब स्थानों का (अभि चक्षते) निरीक्षण करते हैं ।

आ मे॒ वचां॑स्यु॒द्य॑ता द्यु॒मत्त॑मानि॒ कर्त्वा॑ ।
उ॒भा या॑तं नासत्या स॒जोष॑सा॒ प्रति॑ ह॒व्यानि॑ वी॒तये॑ ॥ ७ ॥

भा०—हे (नासत्या) प्रमुख, असत्याचरण न करने वाले स्त्री-पुरुषो ! आप दोनों (मे) मेरे (उद्यता) उपस्थित (द्युमत्-तमानि) ज्ञानप्रकाश से युक्त (कर्त्वा) कार्य रूप से करने योग्य (वचांसि) वचनों को (आयातम्) प्राप्त करो । और (उभा सजोषसा) दोनों प्रेम से युक्त होकर (हव्यानि वीतये प्रति यातम्) उत्तम अन्न खाने के लिये लौट जाया करो । विद्वानों के उत्तम २ व्याख्यानादि सुनने के लिये स्त्री पुरुष वा शिष्य शिष्या जन विद्वानों के पास आया करें और भोजनार्थ पुनः घरों या आश्रमों पर चले जाया करें ।

रातिं यद्वामरक्षसं हवामहे युवाभ्यां वाजिनीवसू ।
प्राचीं होत्रां प्रतिरन्ताविंतं नरा गृणाना जमदग्निना ॥ ८॥

भा०—हे (वाजिनी-वसू) अन्न, बल आदि से युक्त कृषि सैन्यादि कार्यों से धनी सम्पन्न जनो ! (युवाभ्याम्) तुम दोनों के हम (अरक्षसं) दुष्ट पुरुषों से रहित (रातिम्) अविक्षित दान राशि की (वाम् हवामहे) आप दोनों से याचना करते हैं। आप दोनों (नरा) उत्तम नर नारी, (जमदग्निना गृणाना) प्रज्वलित अग्नि वाले विद्वान् आचार्य द्वारा उपदेश युक्त होकर (प्राचीं होत्रां) प्राकनी, प्रकृष्ट ज्ञान और आदर से युक्त वेद वाणी को (प्र-तिरन्तौ) बढ़ाते हुए (इतं) आओ।

आ नो यज्ञं दिविस्पृशं वायो याहि सुमन्मभिः ।
अन्तः पवित्र उपरि श्रीणानोऽयं शुक्रो अयामि ते ॥ ९ ॥

भा०—हे (वायो) ज्ञानवन् ! बलवन् ! विद्वन् ! तू (नः) हमारे (दिवि-स्पृशं) मनःकामनागत, वा ज्ञान सम्बन्धी, (यज्ञं) परस्पर के सत्संग को (सुमन्मभिः) उत्तम ज्ञानों सहित (आ याहि) प्राप्त हो। (अयं) यह मैं (पवित्रे उपरि श्रीणानः) पवित्र व्रत पर आश्रय लेता हुआ (शुक्रः) शुद्ध आचारवान् होकर (ते अन्तः अयामि) तेरे अन्तः-करण में स्थान प्राप्त करूं। वा (ते अन्तः अयामि) तेरे अन्तःकरण को बांधता हूं।

वेत्यध्वर्युः पथिभी रजिष्ठैः प्रति हव्यानि वीतये ।
अधा नियुत्व उभयस्य नः पिब शुचिं सोमं गवाशिरम् १०।७

भा०—हे (नियुत्वः) नियुक्त शिष्यों के स्वामिन् गुरो ! (अध्वर्युः) अपने अविनाश या रक्षा की कामना करता हुआ शिष्य (रजिष्ठैः) अति तेजस्वी (पथिभिः) सन्मार्गों से (हव्यानि) ग्रहण करने योग्य ज्ञानों को (वीतये) प्राप्त करने के लिये (प्रति वेति) तुझे प्राप्त होता है।

तू (नः) हम में से (उभयस्य) दोनों की (पिव) पालना कर। (शुचिं) शुद्ध, व्रतचारी और (गवाशिरं सोमम्) गौ, वाणी के ऊपर विद्याभ्यासी दोनों प्रकार के शिष्यों की पालना कर। (२) इसी प्रकार (अध्वर्युः) अहिंसा व्रत का इच्छुक जन अन्नों को भोग करने के लिये उत्तम २ मार्गों से जीवन व्यतीत करे। वह शुद्ध अन्नादि, वनस्पति और (गवाशिरम्) गौ आदि के दुग्ध और भूमिस्थ कन्द आदि फल का भोग करे इस प्रकार वनस्थ का धर्म पालन करे। इति सप्तमो वर्गः ॥

बण्म॒हाँ अ॑सि सूर्य॒ बळा॑दित्य म॒हाँ अ॑सि।
म॒हस्ते॑ स॒तो म॑हि॒मा प॑नस्यते॒ऽद्धा दे॑व म॒हाँ अ॑सि ॥ ११ ॥

भा०—हे (सूर्य) समस्त जगत् के उत्पादक, सूर्यवत् प्रकाशक और सञ्चालक ! तू (वट् महान् असि) सचमुच महान् है। हे (आदित्य) सब को अपने वश में लेने हारे। तू (वट् महान् असि) सचमुच महान् है। (ते महः सतः) तुझ महान् सत्स्वरूप का (महिमा पनस्यते) बड़ा भारी महान् सामर्थ्य वर्णन किया जाता है। हे (देव) सब सुखों के दातः ! तू (अद्धा महान् असि) सचमुच महान् है।

बट् सू॑र्य॒ श्रव॑सा म॒हाँ अ॑सि स॒त्रा दे॑व म॒हाँ अ॑सि।
म॒ह्ना दे॒वाना॑मसु॒र्यः॑ पु॒रोहि॑तो वि॒भु ज्योति॒रदा॑भ्यम् ॥ १२ ॥

भा०—हे (सूर्यवत्) तेजस्विन् ! सर्वप्रकाशक सूर्य ! परमेश्वर ! तू (वट्) सत्य ही (श्रवसा महान् असि) अपने ज्ञान, और यश से महान् है। हे (देव) प्रकाशस्वरूप तू (सत्रा) सत्य के बल से (महान् असि) महान् है। तू (मह्ना) अपने महान् सामर्थ्य से (असुर्यः) प्राणों में रमण करने वाले जीवों का हितकारी, बलवानों में सब से बड़ा बलशाली, (पुरोहितः) सब के समक्ष साक्षिवत् विराजमान है। तू (विभु) सर्वव्यापक, (अदाभ्यम्) कभी नाश न होने वाला (ज्योतिः) प्रकाशस्वरूप है।

इयं या नीच्यर्किणी रूपा रोहिण्या कृता ।
चित्रेव प्रत्यदर्श्यायत्य१न्तर्दशसु बाहुषु ॥ १३ ॥

भा०—(इयं) यह (या) जो (नीची) नीचे की ओर मुख किये, विनयशील कन्या के समान नीचे की ओर झुकी, (आकणी) स्तुति से युक्त, वा अर्क, मन्त्रादि को जानने वाली अर्किणी, सूर्यवत् तेजस्वी पुरुष की (रूपा) रूपवती (रोहिण्या) सूर्य की कान्ति के समान उज्ज्वल (कृता) उत्तम अलंकारों से सुसज्जित, (चित्रा इव) अद्भुत रूप वाली के समान (दशसु बाहुषु) दशों दिशाओं में (बाहुषु) बाहुओं के बल पर (आयती) विस्तृत राजशक्ति है वह (प्रति अदर्शि) सब को उत्तम रीति से दीखे ।

प्रजा ह तिस्रो अत्यायमीयुर्न्य१न्या अर्कमभितो विविश्रे ।
बृहद्ध तस्थौ भुवनेष्वन्तः पवमानो हरित आ विवेश ॥ १४ ॥

भा०—(तिस्रः प्रजाः) तीनों प्रकार की प्रजाएं (अति-आयम्) सब को अतिक्रमण करके विराजमान प्रभु को ही (ईयुः) प्राप्त होती हैं। अथवा—तीन प्रजाएं (अत्यायम् ईयुः) अतिक्रमण कर गति करती हैं जैसे—पक्षी गण, भूमि को छोड़कर आकाश से विचरते हैं वे तीन प्रकार के हैं, जैसे—गव, वगध और चेरपाद । और (अन्याः) दूसरी प्रजाएं (अर्कम् अभितः) सूर्यवत् अन्न का आश्रय लेकर (विविश्रे) स्थित हैं ! (भुवनेषु अन्तः) लोक में (बृहत् पवमानः) बड़ा भारी परम पावन, प्रभु (तस्थौ) विराजता है, वह ही (हरितः अविवेश) सब दिशाओं में वायुवत् व्यापक है ।

माता रुद्राणां दुहिता वसूनां स्वसादित्यानाममृतस्य नाभिः ।
प्र नु वोचं चिकितुषे जनाय मा गामनागामदितिं वधिष्ट ॥१५॥

भा०—(रुद्राणां माता) दुष्टों को रुलाने वाले वीर पुरुषों को दूध

पिलाकर पुष्ट करने वाली, रोगों को नाश करने वाले घृत, दुग्ध आदि पदार्थों की उत्पन्न करने वाली माता यह गौ है; और वीरों की उत्पादक और रोग नाशक ओषधियों की उत्पादक जननी यह गौ भूमि है, दुष्ट दलनकारी वीरों और प्राण युक्त जीवों की माता यह कन्यारूप मातृ शक्ति गौ है। वह (वसूनां दुहिता) राष्ट्र में वा जगत् में वसे समस्त जीवों को सब सुखों की देने वाली, (आदित्यानां स्वसा) दान-आदान करने वाले व्यापारी वैश्य जनों की (सु-असा) सर्व सुखदात्री, भगिनी के समान है और (अमृतस्य नाभिः) अमृत दीर्घ जीवन को देने वाली, मानो आश्रय है। मैं (चिकितुषे) इन समस्त तथ्यों को जानने वाले को (नु प्रवोचं) अवश्य यह बलपूर्वक कहता हूं कि ऐसी (अनागां गाम्) अपराध रहित गौ को और (अदितिम्) भूमिवत् माता-पितावत्, पुत्र-पुत्रिवत् गौ का (मा वधिष्ट) कभी हनन मत करो। वेद की यह ऐसी प्रबल अहिंसा प्रतिपादक अपील है जिस को सुनकर घोर हिंसक भी गौ पर उठाये हाथ को खींच ले।

वचोविदं वाचमुदीरयन्तीं विश्वाभिर्धीभिरुपतिष्ठमानाम्।
देवीं देवेभ्यः पर्येयुषीं गामा मावृक्त मर्त्यो दभ्रचेताः ॥१६॥ ८॥

भा०—(वचः-विदम्) वचन, परिभाषण, परस्पर बातचीत का ज्ञान कराने वाली, (वाचम् उदीरयन्तीम्) वाणी को उन्नत करने वाली, (विश्वाभिः धीभिः) समस्त कर्मों सहित (उपतिष्ठमानाम्) उपस्थित होती हुई (देवेभ्यः मा परि एयुषीम्) विद्वान् जनों से मुझ को प्राप्त होने वाली (देवीं गाम्) ज्ञान का प्रकाश देने वाली, ज्ञानमयी 'गौ' वाणी को (दभ्र-चेताः) अल्प चित्त वाला, अल्पज्ञानी (मर्त्यः) मनुष्य (परि आ अवृक्त) परित्याग किया करता है। और विशाल चित्त वाला बहुज्ञ पुरुष उस वेदवाणी का आश्रय लेता और ज्ञानरस का दोहन किया करता है। अथवा—(देवेभ्यः एयुषीं गां मा परि आ-अवृक्त) सब मनुष्यों के हितार्थ प्राप्त गौ को मत मारो। इत्यष्टमो वर्गः ॥

[१०२]

प्रयोगो भार्गवोऽग्निर्वा पावको वार्हस्पत्यः। अथवाग्नी गृहपतियविष्ठौ सहसः सुतौ। तयोर्वान्यतर ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१, ३—५, ८, ९, १४, १५, २०—२२ निचृद् गायत्री। २, ६, १२, १३, १६ गायत्री। ७, ११, १७, १९ विराड् गायत्री। १०, १८ पादनिचृद् गायत्री॥

त्वम॑ग्ने बृ॒हद्वयो॒ दधा॑सि देव दा॒शुषे॑। क॒विर्गृ॒हप॑ति॒र्युवा॑॥ १॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन्! तेजस्विन्! सर्वप्रकाशक! हे (देव) दानशील! (दाशुषे) देने वाले को (त्वम्) तू (बृहत् वयः) बहुत बड़ी आयु, प्रचुर अन्न और बहुत सा ज्ञान (दधासि) प्रदान करता है। तू (कविः) क्रान्तदर्शी, (गृहपतिः) गृह का स्वामी और (युवा) बलवान् है।

स न॒ ईळा॑नया स॒ह दे॒वाँ अ॑ग्ने दुव॒स्युवा॑। चि॒किद्वि॑भान॒वा व॑ह २

भा०—हे (विभानो) विशेष कान्तियुक्त! तू (चिकित्) ज्ञानवान् है। (नः) हमें (अनया इडा) इस स्तुति वा उत्तम इच्छा, (दुवस्युवा) परिचर्या, सेवा-शुश्रूषा के (सह) साथ २ (देवान् आ वह) शुभ गुणों और दानी, ज्ञानी, उत्तम विद्वान् जनों को हमें प्राप्त करा।

त्वया॑ ह स्विद्यु॒जा व॒यं चोदि॑ष्ठेन यविष्ठ्य।
अ॒भि ष्मो॒ वाज॑सातये॥ ३॥

भा०—हे (यविष्ठ्य) अति बलशालिन्! (त्वया युजा स्वित्) तुझ सहयोगी के साथ ही (वयम्) हम (वाज-सातये) ज्ञान, बल, ऐश्वर्यादि प्राप्त करने के लिये (अभि स्मः) सबको वश करें। (२) अग्नि, सूर्य द्वारा 'वाज' अर्थात् अन्न प्राप्त होता है; अग्नि विद्युत् द्वारा बल, वेग और ऐश्वर्य भी प्राप्त होते हैं।

औ॒र्व॒भृ॒गु॒वच्छुचि॑मप्न॒वा॒न॒वदा हु॑वे । अ॒ग्निं स॑मु॒द्रवा॑ससम् ॥४॥

भा०—(समुद्र-वाससम्) समुद्र को वस्त्र के समान धारण करने वाले (और्व-भृगुवत्) भूमि के भीतर सब पदार्थों को भर्जन करने वा परिपाक करने वाले तेज से युक्त और (शुचिम्) शुद्ध, पवित्र (अप्नवानवत्) जल के जाल से युक्त (अग्निम्) अग्नि के तुल्य बलवान् मैं भी (समुद्र-वाससम्) महान् अन्तरिक्ष में व्यापक प्रभुरूप (अग्निं) अग्नि, ज्ञानमय तेजस्वी को (और्व-भृगुवत्) भूमि के समस्त पदार्थों को संतप्त करने और परिपाक करने के सामर्थ्य से युक्त सूर्यवत् (शुचिम्) शुद्ध-पवित्र और (अप्नवानवत्) सुख प्राप्त करने के समस्त साधनों वाले सामर्थ्य से युक्त उस प्रभु को (आ हुवे) आदरपूर्वक बुलाता हूं । उसी की प्रार्थना करता हूं ।

'अप्नवानवत्'—अप्न इति रूप नाम, अपत्यनाम, पदनाम च । आपः कर्माख्यायां ह्रस्वो नुट् च वा । अप्नः । अपः । आपः । उणादि० ॥ आप्यते सुखं येन तत् अप्नः, अपत्यं सुकर्म वा ।

अथवा—(१) अग्नि कैसा है (और्व-भृगुवत्) भूमि के समान अर्थात् जो उसमें पड़ता निमग्न हो जाता है इसी प्रकार प्रभु और विद्वान् भी है जो उसके पास हो वह उसमें ही निमग्न होता है ।

(२) (अप्नवानवत्) अग्नि कैसा ? रूप जाल से युक्त, तेजोरूप, विद्वान् । गृहपति कैसा ? अपत्य पुत्र, शिष्यादि गण से युक्त, सुखद वा सुकर्मों से युक्त। पुण्यवान् प्रभु कैसा ? सुखप्रद ऐश्वर्यों से युक्त, वा जीवादि पुत्रों से युक्त ।

हु॒वे वात॑स्वनं क॒विं प॒र्जन्य॑क्रन्द्यं॒ सहः॑ ।
अ॒ग्निं स॑मु॒द्रवा॑ससम् ॥ ५ ॥ ९ ॥

भा०—(समुद्र-वाससम् अग्निम्) समुद्र के गर्भ में विद्यमान

भाग (वातस्वनः पर्जन्य-क्रन्द्यं) जिस प्रकार प्रचण्ड वात वा शब्दकारी मेघ के समान गर्जन करने वाला होता है उसी प्रकार (समुद्र-वाससम्) महान् आकाश में व्यापक, (वात-स्वनं) प्राण, वायु आदि द्वारा समस्त जीवों को प्राण देने वाले (कविं) क्रान्तदर्शी, (पर्जन्य-क्रन्द्यं) सब मेघों को भी गर्जन कराने वाले विद्युत् के समान वा सबका उत्पादक पिता कहाने योग्य, सब रसों और बलों का आश्रय कहाने योग्य (सहः) सब कुछ सहने वाले, सब के वशयिता, (कविं) विद्वान् क्रान्तदर्शी अन्तर्यामी प्रभु को (हुवे) स्मरण करता हूं।

(पर्जन्य-क्रन्द्यं) पर्जन्यः जनयिता वा प्रार्जयिता वा रसानाम्। निरुक्त०॥ विद्वान्, वक्ता भी वात और मेघ के समान गंभीर ध्वनि वाले वा मेघ के समान भोजनादि से तृप्तिदायक, शत्रुओं के जेता कहाने योग्य हो। इति नवमो वर्गः॥

आ स॒वं स॑वि॒तुर्य॑था॒ भग॑स्येव भु॒जिं हु॑वे। अ॒ग्निं स॑मु॒द्रवा॑ससम् ६

भा०—(सवितुः सवं यथा) सूर्य के प्रकाश के तुल्य सत्य का प्रकाश करने वाले और (भगस्य इव भुजिं) ऐश्वर्य के भोक्ता या पालक राजा के समान तेजस्वी, (समुद्र-वाससं अग्निं) बड़वानल के समान विशाल आकाश में व्यापक वा जगत् भर को समुद्रवत् आच्छादित करने वाले (अग्निम्) तेजोमय परमेश्वर की (हुवे) स्तुति करता हूं। इसी प्रकार राजा वा विद्वान् 'समुद्रवासाः' अर्थात् समुद्र के समान प्रजाओं का आच्छादित करने वाला रक्षक होता है।

अ॒ग्निं वो॑ वृ॒धन्त॑मध्व॒राणां॑ पुरू॒तम॑म्।
अच्छा॒ नप्त्रे॒ सह॑स्वते ॥ ७ ॥

भा०—(वः वृधन्तम्) आप सब मनुष्यों को बढ़ाने वाले, (अध्वराणां) यज्ञों, अविनाशी पदार्थों के बीच में (पुरु-तमम्) सबसे बड़े पालक पोषक, (अग्निं) प्रकाशस्वरूप को मैं (हुवे) पुकारता हूं (नप्त्रे)

सबको अपने साथ प्रेम से बांधने वाले और (सहस्वते) बलवान् प्रभु को प्राप्त करने के लिये मैं (अच्छ हुवे) साक्षात् उस की स्तुति करता हूं ।

अयं यथा न आभुवत्त्वष्टा रूपेव तक्ष्या ।
अस्य क्रत्वा यशस्वतः ॥ ८ ॥

भा०—(त्वष्टा तक्ष्या रूपा इव आभुवत्) बढ़ई जिस प्रकार छील छाल कर बनाने योग्य पदार्थों को बनाने में समर्थ होता है उसी प्रकार (अयं) यह प्रभु भी (त्वष्टा) सब जगत् का बनाने वाला, तेजस्वी (नः आभुवत्) हमें भी बनाता है । (अस्य यशस्वतः क्रत्वा) इसी बल, कीर्त्ति वाले प्रभु के ज्ञान और कर्मसामर्थ्य से हम भी बलयुक्त, ज्ञानवान् यशस्वी हों ।

अयं विश्वा अभि श्रियोऽग्निर्देवेषु पत्यते ।
आ वाजैरुप नो गमत् ॥ ९ ॥

भा०—(अयं) यह (अग्निः) अग्नि जिस प्रकार (देवेषु) सब भूतों के बीच में (श्रियः अभि पत्यते) समस्त शोभाओं, कान्तियों को धारण करता है उसी प्रकार यह (अग्निः) ज्ञानी, नायक, स्वामी, प्रभु (विश्वाः श्रियः) समस्त आश्रय लेने वालों का (अभि पत्यते) साक्षात् पालक होता है, और (देवेषु) सब दिव्य पदार्थों वा दाताओं में भी सबसे अधिक ऐश्वर्यवान् होता है । वह (वाजैः) बलों, ज्ञानों, अन्नों, और ऐश्वर्यों सहित (उप गमत्) हमें प्राप्त हो ।

विश्वेषामिह स्तुहि होतॄणां यशस्तमम् ।
अग्निं यज्ञेषु पूर्व्यम् ॥ १० ॥ १० ॥

भा०—(विश्वेषाम् होतॄणाम्) सब दाताओं में से (यशस्तमं) सबसे अधिक यशस्वी, (पूर्व्यम्) सबसे पूर्व विद्यमान, सबसे पूर्ण, प्रभु की, (इह यज्ञेषु) यहां यज्ञों, सत्संगों में (स्तुहि) स्तुति कर । इति दशमो वर्गः ॥

शीरं पावकशोचिषं ज्येष्ठो यो दमेष्वा। दीदाय दीर्घश्रुत्तमः ११

भा०—(यः) जो (दीर्घश्रुत्-तमः) दीर्घ काल तक गुरु-मुखों से खूब श्रवण करने योग्य, (ज्येष्ठः) सबसे बड़ा, प्रशंसनीय, (दमेषु) सब घरों में दीपक के समान, (आ दीदाय) सर्वत्र प्रकाशमान है, सब भुवनों में प्रकाश करता है, उस (शीरं) सर्वव्यापक (पावक-शोचिषं) अग्नि के समान पवित्रकारक ज्योति वाले प्रभु की यज्ञादि में स्तुति कर।

तमर्वन्तं न सानसिं गृणीहि विप्र शुष्मिणम्।
मित्रं न यातयज्जनम् ॥ १२ ॥

भा०—हे (विप्र) बुद्धिमान् मनुष्य! तू (तम्) उस (अर्वन्तम्) अश्व के समान (सानसिम्) जीवन मार्ग के परम सुखदायक, (शुष्मिणम्) उत्तम बलों से युक्त, (मित्रं) मित्र के समान (यातयत्-जनम्) समस्त मनुष्यों को प्रेम से प्रयत्न, उद्योग कराने वाले प्रभु की (गृणीहि) स्तुति कर।

उप त्वा जामयो गिरो देदिशतीर्हविष्कृतः।
वायोरनीके अस्थिरन् ॥ १३ ॥

भा०—(हविष्कृतः) हवि, चरु आदि देने वाले यज्ञशील पुरुष की (गिरः) वाणियां (त्वा देदिशतीः) तेरा वर्णन करती हुई (जामयः) बन्धु भगिनियों के समान (वायोः अनीके) वायु के समीप अग्निवत्, प्राणों के बल पर (त्वा अस्थिरन्) तुझको हृदय में स्थिर भाव से जागृत कर देती हैं। भगवत्-स्तुतियां ही परमेश्वर के भाव को हृदय में दृढ़ करती हैं।

यस्य त्रिधात्ववृतं बर्हिस्तस्थावसन्दिनम्।
आपश्चिन्नि दधा पदम् ॥ १४ ॥

भा—जिस प्रकार अग्नि तत्व के लिये (त्रिधातु-बर्हिः) तीनों प्रकार

के लोक आश्रय हैं, उसी प्रकार (त्रिधातु) तीनों प्रकार के (अवृतं) क्रिया रहित (बर्हिः) लोक (असंदिनम्) असम्बद्ध होकर (यस्य) जिसके आश्रय पर क्रियावान् और सम्बद्ध हैं और जिसमें (आपः चित्) समस्त प्रकृति आदि पदार्थ और जीवगण, प्रजावत् (पदं नि दध) स्थिति प्राप्त करते हैं उसको तू हृदय में स्थान दे।

पदं देवस्यं मीह्ळुषोऽनाधृष्टाभिरूतिभिः।
भद्रा सूर्य इवोपदृक् ॥ १५ ॥ ११ ॥

भा०—(मीढुषः देवस्य) सब सुखों के वर्षक, सब सुखों के दाता, सब ज्ञानों और लोकों के प्रकाशक प्रभु का (पदं) स्वरूप (अनाधृष्टाभिः ऊतिभिः) किसी से न पराजित होने वाली रक्षाकारिणी सेनाओं से राजा के पद के समान, अधर्षणीय शक्तियों से युक्त है। वह स्वयं भी (सूर्यः इव) सूर्य के समान (भद्रा) कल्याणकारक (उपदृक्) समीप स्थित देखने वाली चक्षु के समान सर्व ज्ञान का प्रकाशक है। इत्येकादशो वर्गः ॥

अग्ने घृतस्यं धीतिभिस्तेपानो देव शोचिषा।
आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥ १६ ॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य (घृतस्य धीतिभिः) तेज की धारण शक्तियें (देवान्) किरणों को धारण करता और (तपानः) तपता है और जिस प्रकार घृत की आहुतियों से अग्नि (देवान्) सुगन्ध दान आदि गुणों को धारण करता है उसी प्रकार हे (अग्ने) तेजस्विन् ! हे (देव) ज्ञान आदि के दातः ! (तपानः) तप करता हुआ तू (शोचिषा) तेज से (घृतस्य धीतिभिः) ज्ञान की वाणियों द्वारा (देवान्) ज्ञान के इच्छुक शिष्य जनों के प्रति (आ वक्षि) ज्ञान करा प्रवचन कर और (यक्षि च) उनको ज्ञान का दान दे, उनसे सत्संग कर।

तं त्वाजनन्त मातरः कविं देवासो अङ्गिरः।
हव्यवाहममर्त्यम् ॥ १७ ॥

भा०—(तं त्वा) उस तुझ को (मातरः देवासः) विद्वान् जन माता के तुल्य (कविं अजनन्त) कविवत् क्रान्तदर्शी रूप से प्रकट करते हैं। और (हव्यवाहं) ग्राह्य ज्ञान-वचनों को धारण करने वाले (अमर्त्यम्) अमरणशील तुझ को वे (मातरः अजनन्त) माता के समान उत्पन्न करते हैं।

प्रचेतसं त्वा कवेऽग्ने दूतं वरेण्यम्।
हव्यवाहं नि षेदिरे ॥ १८ ॥

भा०—हे (कवे) दीर्घदर्शिन, उपदेष्टा ! हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! (प्रचेतसं) उत्तम ज्ञान वाले, (दूतं) उत्तम ज्ञान देने वाले (वरेण्यम्) श्रेष्ठ (हव्यवाहं) उत्तम वचन श्रवण करने वाले (त्वा) तुझ को आदर-पूर्वक निषेदिरे आसन पर बैठाते हैं।

नहि मे अस्त्यघ्न्या न स्वधितिर्वनन्वति।
अथैतादृग्भरामि ते ॥ १९ ॥

भा०—(मे अघ्न्या नहि अस्ति) मेरे पास में, कभी न मारने योग्य अघ्न्या गौ भी नहीं, और (न) नहीं (स्वधितिः) कुल्हाड़ी काष्ठ (वनन्वति) काटती है, तो भी (एतादृग्) ऐसा (ते) तेरे निमित्त (भरामि) लाया हूं। तू इसे ही स्वीकार कर। अर्थात् हे पूज्यवर ! न तो मेरे पास दुग्ध देने वाली यज्ञ करने को गौ है, न काष्ठों को काटने की कुल्हाड़ी है, मैं यज्ञ के स्थूल साधन उपस्थित नहीं कर सकता तो भी भगवन्! भावनामय यज्ञ के साधन उपस्थित हैं यह चितिशक्ति अविनाशिनी होने से 'अघ्न्या' और यही 'स्व' आत्म रूप से धारण करने योग्य 'स्वधिति' है। यही तेरे प्रति उपहार रूप में देता हूं। इसी से तू प्रसन्न हो।

यदग्ने कानि कानि चिदा ते दारूणि दध्मसि ।
ता जुषस्व यविष्ठ्य ॥ २० ॥

भा०—हे (अग्ने) तेजस्विन् (यत्) जो हम (कानि कानिचित्) कई २ प्रकार के (दारूणि) नाना काष्ठ (आदध्मसि) आधान करते हैं हे (यविष्ठ्य) सर्वशक्तिमन्! तू (ता) उन २ को (जुषस्व) स्वीकार कर। जैसे अग्नि परशु से काटी हुई, छोटी २ समिधाओं को सुगमता से जला देता है उसी प्रकार विद्वान् आचार्य भी गर्भाधान आदि संस्कारों से संस्कृत आत्माओं को सहज ही ज्ञानवान् कर देता है, परन्तु यहां उसके पास सभी प्रकार के ('दारु' = धारु अर्थात् वत्स) बालक आवेंगे उनको विद्वान् गुरु प्रेमपूर्वक स्वीकार कर विद्या से उज्ज्वल करे।

यदत्त्युपजिह्विका यद्वम्रो अतिसर्पति ।
सर्वं तदस्तु ते घृतम् ॥ २१ ॥

भा०—(यद् उपजिह्विका अत्ति) जिस को दीमक खा जाती है और (यद् वम्रः अति सर्पति) जिसको वल्मीक लग जाता है वह काष्ठ भी अग्नि में पड़कर (घृतम् अस्तु) चमकने लगने लगता है उसी प्रकार हे विद्वन्! (यत्) जिस बालक को (उपजिह्विका) जीभ की चञ्चल प्रकृति (अत्ति) लग जाती है और (यद् वम्रः) वमनशील होकर जो पढ़े ग्रन्थ भूल जाय, ऐसा विद्यार्थी (अतिसर्पति) बहुत अवारा घूमता है (तद् सर्वं) वह सब भी (ते) तेरे समीप आकर तेरे लिये (घृतम् अस्तु) घृत के समान ज्ञान दीप्ति का साधन हो जाता है। (२) अथवा—हे प्रभो! जो भी (उप-जिह्विका) वाणी प्राप्त कर लेती है, और जो (वम्रः) मन में आये ज्ञान को उगल देने वाला, अन्यों को उपदेष्टा जन तेरे पास आ जाता है वह सब तेरी ज्ञानदीप्ति वा स्नेह का पात्र हो।

अग्निमिन्धानो मनसा धियं सचेत मर्त्यः ।
अग्निमीधे विवस्वभिः ॥ २२ ॥ १२ ॥

भा०—(अग्निम् इन्धानः मर्त्यः) अग्नि को प्रज्वलित करता हुआ मनुष्य (मनसा धियं सचेत) मन से वा ज्ञान से (धियं) बुद्धि वा कर्म को युक्त करे। इसी प्रकार मनुष्य (विवस्वभिः) विद्वानों द्वारा भी (अग्निम् इधे) उस ज्ञानवान् प्रभु को अपने हृदय में प्रज्वलित करे। इति द्वादशो वर्गः ॥

[१०३]

सोभरिः काण्व ऋषिः ॥ १—१३ अग्निः। १४ अग्निर्मरुतश्च देवताः ॥ छन्दः—१, ३, १३, विराड् बृहती। २ निचृद् बृहती। ४ बृहती। ६ आर्ची स्वराड् बृहती। ७, ६ स्वराड् बृहती। ९ पंक्तिः। ११ निचृत् पंक्तिः। १० आर्ची भुरिग् गायत्री। ८ निचृदुष्णिक्। १२ विराडुष्णिक् ॥

अदर्शि गातुवित्तमो यस्मिन्व्रतान्यादधुः।
उपो षु जातमार्यस्य वर्धनमग्निं नक्षन्त नो गिरः ॥ १ ॥

भा०—(गातुवित्-तमः) मार्ग, वाणी, ज्ञान आदि को जानने और अन्यों को जनाने हारा, भूमि को सूर्यवत् वेद वाणी का भली प्रकार प्रकाशित करने वाला प्रभु, गुरु (अदर्शि) सब को दर्शन करने योग्य है। (यस्मिन्) जिस के आश्रय या अधीन रहकर सब (व्रतानि आदधुः) व्रतों को धारण करते हैं। (आर्यस्य वर्धनम्) श्रेष्ठ जनों को बढ़ाने वाले (जातम्) सब को प्रकट, विदित, प्रसिद्ध (अग्निम्) पूज्य, तेजस्वी, ज्ञाता, ज्ञापक प्रभु, सर्व गुरु को (नः गिरः उपो सु नक्षन्त) हमारी स्तुति वाणियां अच्छी प्रकार प्राप्त हों।

प्र दैवोदासो अग्निर्देवाँ अच्छा न मज्मना।
अनु मातरं पृथिवीं वि वावृते तस्थौ नाकस्य सानवि ॥२॥

भा०—(दैवःदासः = दिवःदासः) तेज वा प्रकाश देने वाले सूर्य की

(अग्निः) अग्नि (देवान्) अपने किरणों वा प्रकाशों को (मातरं पृथिवीं अनु) सब जननी माता पृथिवी की (अच्छ) ओर (मज्मना न प्र वावृते) मानो बड़े बल से भेजता है, और (पृथिवीं मातरम् अनु) उत्पादक माता भूमि के रचनादि के अनुसार (वि वावृते) उस में विविध कार्य करता है। वह पत्रों को हरा, पुष्पों का नाना रंगों का, जड़ों को स्थूल दृढ़ इत्यादि जंगम स्थावरादि संसार को अद्भुत प्रकार से परिणत करता, नाना ऋतु आदि को प्रवृत्त कराता है। वह स्वयं (नाकस्य सानवि) आकाश के उच्च भाग पर (तस्थौ) स्थिर रहता है। इसी प्रकार वह सर्वज्ञ प्रभु भी (नाकस्य सानवि) सुख आनन्दमय दशा में स्थिर है, तो भी मातृवत् जननी विस्तृत प्रकृति को बहुत भारी बल से नहीं चलाता प्रत्युत बड़े अनायास ही उस में (प्र वावृते) प्रथम स्पन्द उत्पन्न करता है और (अनु वि वावृते) अनन्तर उसी प्रकृति को विविध रूपों में बनाकर जगत् रूप से बदल देता है। यही उसका वास्तविक 'विवर्त्त' है। न कि नवीन-वेदान्तसम्मत ब्रह्म का ही विकार। वह अग्नि परमेश्वर 'दैवोदासः' है (दिवः सूर्यादयो दासा इव यस्य) समस्त सूर्य आदि लोक उस के दास के समान हैं।

यस्माद्रेजन्त कृष्टयश्चर्कृत्यानि कृण्वतः।
सहस्रसां मेधसाताविव त्मनाग्निं धीभिः सपर्यत ॥ ३ ॥

भा०—(चर्कृत्यानि कृण्वतः यस्मात्) अपने अवश्य कर्त्तव्य, सर्ग, स्थिति, प्रलय वा मृत्यु आदि नाना कर्मों के सम्पादन करते हुए जिस से (कृष्टयः) समस्त मनुष्य मानो अपने देह में कर्म बीज की कृषि करते और कर्मफल का संचय और उपभोग करते हुए समस्त जीव गण (रेजन्ते) भयपूर्वक कांपते और सञ्चालित होते हैं मानो उस (मेधसाती इव) पवित्र अन्नवत् अवश्य प्राप्य फल प्राप्त करने के काल में (सहस्र-सां) एक सत् बीज का सहस्रों गुणा फल देने वाले (अग्निं) उस परम ज्ञानी

पूज्य प्रभु की (धीभिः सपर्यत) उत्तम कर्मों और ज्ञानों, स्तुतियों से शुश्रूषा किया करो।

प्र यं राये निनीषसि मर्तो यस्ते वसो दाशत्।
स वीरं धत्ते अग्न उक्थशंसिनं त्मना सहस्रपोषिणम् ॥ ४ ॥

भा०—हे (वसो) सब जगत् के रक्षक, आच्छादक, सब में वसने वाले सर्वव्यापक ! (यं) जिस को तू (राये निनीषसि) ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये सन्मार्ग से ले जाता है, और (यः मर्त्तः ते दाशत्) जो देहधारी मरणशील जीव अपने को तुझे सौंप देता है, हे (अग्ने) सर्वज्ञ ! सब के अग्रनायक ! मार्गप्रकाशक ज्योतिर्मय ! (सः) वह (त्मना) अपने आप, (उक्थ-शंसिनम्) उत्तम वेद वचनों के वक्ता (सहस्र-पोषिणं) सहस्रों के पोषक (वीरं) वीर पुत्र, एवं विविध विद्योपदेष्टा, तुम को (धत्ते) अपने हृदय से धारण करता है।

स दृळ्हे चिदभि तृणत्ति वाजमर्वता स धत्ते अक्षिति श्रवः।
त्वे देवत्रा सदा पुरूवसो विश्वा वामानि धीमहि ॥ ५ ॥ १२ ॥

भा०—(सः) वही पुरुष जो अपने आप को तुझ पर वार देता है, (दृढे चित्) दृढ़ शत्रु पर भी वाजं (अर्वता) अपने बल से (अभि वाजं) संग्राम में (तृणत्ति) शत्रु का नाश करता है, (सः अक्षिति श्रवः धत्ते) वह अक्षय यश, ऐश्वर्य अन्न, ज्ञान धारण करता है। हे (पुरूवसो) बहुत से धन के स्वामिन् ! (त्वं देवत्रा) तुझ परम दानी के आश्रय हम भी (विश्वा वामानि धीमहि) समस्त उत्तम २ धन प्राप्त करें।

यो विश्वा दयते वसु होता मन्द्रो जनानाम्।
मधोर्न पात्रा प्रथमान्यस्मै प्र स्तोमा यन्त्यग्नये ॥ ६ ॥

भा०—(यः) जो (विश्वा वसु दयते) समस्त जीव गणों को

रक्षा करता है, जो समस्त प्राणिसमूह पर दया कृपा करता, और उन को समस्त ऐश्वर्य प्रदान करता है। वह (होता) सब से बड़ा दानी, (जनानां आनन्दः) उत्पन्न जनों को आनन्द देने वाला है। (अस्मै अग्नये) उस ज्ञानमय, पूज्य के लिये (मधोः पात्रा न प्रथमानि) अन्न जल या मधुर पदार्थ से पूर्ण पात्रों के समान सर्वश्रेष्ठ (स्तोमाः प्रयन्ति) उत्तम स्तुति, मन्त्र बड़े आदर पूर्वक हृदय से वाहर आते हैं।

अश्वं न गीर्भी रथ्यं सुदानवो मर्मृज्यन्ते देवयवः।
उभे तोके तनये दस्म विश्पते पर्षि राधो मघोनाम् ॥ ७ ॥

भा०—(रथ्यम् अश्वम्) रथ योग्य उत्तम अश्व के समान देह के भोक्ता आत्मा को (सुदानवः) उत्तम दानशील, (देवयवः) देव, प्रभु के उपासक, परमेश्वर को चाहने वाले लोग (मर्मृज्यन्ते) सदा स्वच्छ करते रहते हैं, उस को अपने हृदय में चमकाते रहते हैं। हे (विश्पते) समस्त प्रजाओं के पालक! (हे दस्म) दर्शनीय! दरिद्रादि कष्टों के काटने हारे! (उभे तोके तनये) दोनों, पुत्र पौत्रादि के पालनार्थ (मघोनां राधः पर्षि) धनवानों का धन प्रदान कर।

प्र मंहिष्ठाय गायत ऋताव्ने बृहते शुक्रशोचिषे।
उपस्तुतासो अग्नये ॥ ८ ॥

भा०—हे (उप-स्तुतासः) उपासक स्तुतिकर्त्ता जनो! आप लोग (मंहिष्ठाय) अति दानशील, (बृहते) महान् (शुक्र-शोचिषे) शुद्ध तेजःस्वरूप (अग्नये) ज्ञानवान् सर्वपूज्य सर्वव्यापक (ऋताव्ने) सत्य ज्ञानमय प्रभु की (प्र गायत) उत्तम स्तुति करो।

आ वंसते मघवा वीरवद्यशः समिद्धो द्युम्न्याहुतः।
कुविन्नो अस्य सुमतिर्नवीयस्यच्छा वाजेभिरागमत् ॥ ९ ॥

भा०—(मघवा) पूजित ऐश्वर्य युक्त, (द्युम्नी) तेजस्वी, प्रभु (आहुतः) आदरपूर्वक प्रार्थित और (समिद्धः) हृदय में सुप्रकाशित होकर (वीरवत् यशः आ वंसते) पुत्रोंसे युक्त अन्न, यश आदि सब प्रकार से प्रदान करता है। (अस्य कुवित् सुमतिः) इस की बहुत उत्तम मति (नवीयसी) उत्तम उपदेशदात्री, (वाजेभिः) उत्तम ज्ञानों सहित (नः अच्छ आगमत्) हमें भली प्रकार प्राप्त हो।

प्रेष्ठमु प्रियाणां स्तुह्यासावातिथिम्।
अग्निं रथानां यमम् ॥ १० ॥ १४ ॥

भा०—हे (आसाव) आदरपूर्वक स्तुति करने हारे, अग्नि आदि के उत्पन्न करने में समर्थ ज्ञानवन्! तू (प्रियाणां प्रेष्ठम्) प्रियों में सर्व प्रिय, (अतिथिम्) सब से ऊपर विद्यमान, सर्वपूज्य, (रथानाम् यमम्) रथों के नियामक विद्युत् के समान सब देहों में वा सूर्यादि लोकों के नियन्ता (अग्निं) तेजस्वी संचालक आत्मा की (स्तुहि) स्तुति, उपदेश कर।

उदिता यो निदिता वेदिता वस्वा यज्ञियो ववर्तति।
दुष्टरा यस्य प्रवणे नोर्मयो धिया वाजं सिषासतः ॥ ११ ॥

भा०—(यः) जो (यज्ञियः) पूजने योग्य स्वामी, (उदिता) उन्नत और (निदिता) निन्दित अच्छे और बुरे सब का (वेदिता) ज्ञान कराने वाला होकर, (वसु आववर्तति) नाना ऐश्वर्य सर्वत्र प्रदान करता है, वा प्राणि जन को चलाता है। (धिया) ज्ञानपूर्वक, कर्मानुसार (वाजं सिषासतः) ऐश्वर्य, ज्ञान बल वेगादि को सब में विभक्त करने वाले (यस्य) जिस के (ऊर्मयः) शासन (प्रवणे ऊर्मयः न) नीचे की ओर जाते हुए बृहत् जल व रंगों के (दुस्तराः) अपार हैं, उसका उल्लेख नहीं किया जा सकता।

मा नो॑ हृणीतामति॑थि॒र्वसु॑र॒ग्निः पु॑रुप्रश॒स्त ए॒षः ।
यः सु॒होता॑ स्वध्व॒रः ॥ १२ ॥

भा०—(यः) जो (सु-होता) सुख देने वाला, उत्तम दानी, (सु अध्वरः) उत्तम मार्गप्रद, हिंसा से रहित दयालु है, वह (अतिथिः) सर्वोपरि पूज्य (वसुः) सब में बसा, (अग्निः) ज्ञानी, सर्वप्रकाशक, सन्मार्ग में प्रवर्त्तक है (एषः) वह (पुरु-प्रशस्तः) बहुत ही स्तुति करने योग्य सर्वश्रेष्ठ है ।

मोते रि॑प॒न्ये अ॒च्छोक्ति॑भिर्वसो॒ऽग्ने केभि॑श्चि॒देवैः ।
कीरि॑श्चि॒द्धि त्वमीट्टे॑ दू॒त्या॑य रा॒तह॑व्यः स्वध्व॒रः ॥ १३ ॥

भा०—हे (वसो) सब में बसे ! सब को बसाने हारे ! (अग्ने) ज्ञान के प्रकाशक ! (ये) जो (अच्छोक्तिभिः) उत्तम वचनों और (केभिः-चित् एवैः) किसी प्रकार के भी उत्तम साधनों से (त्वाम्) तेरी उपासना करते हैं (ते मो रिपन्) वे कभी पीड़ित नहीं होते । (कीरिः चित् हि) उत्तम स्तुति करने हारा ही (दूत्याय) तेरे स्तुति कर्म के लिये (रात-हव्यः सु-अध्वरः) अन्नादि चरु-देता और उत्तम यज्ञ करता हुआ (त्वाम् ईड़े) तेरी उपासना किया करता है ।

आग्ने॑ याहि म॒रुत्स॑खा रु॒द्रेभि॒ः सोम॑पीतये ।
सोभ॑र्या॒ उप॑ सुष्टु॒तिं मा॒दय॑स्व॒ स्व॑र्णरे ॥ १४ ॥ १५ ॥ १० ॥ ८ ॥

भा०—हे (अग्ने) सर्वज्ञ ! सर्वपूज्य ! तू (मरुत्सखा) विद्वान् जनों का मित्र होकर (रुद्रेभिः) दुष्टों को रुलाने वाले और समस्त प्रजाओं के दुःखों को दूर करने वाले, वायु जलादि पदार्थों द्वारा (सोम-पीतये) उत्तम आनन्द रस, अन्न, ऐश्वर्यादि कर्म फलों का उपभोग पानादि कराने वा उत्पन्न जगत् का पालन करने के लिये (आ याहि) तू हमें प्राप्त-

हो और (सोभर्याः) उत्तम पूजा-अर्चना करने वाले जन की (स्वः-नरे) सब के नायक तुझ में प्रयुक्त (सु-स्तुतिं) उत्तम स्तुति को श्रवण कर । (उप मादयस्व) स्वयं प्रसन्न हो, सब को प्रसन्न कर ।

प्रसीद देवेश जगन्निवास । गीता ॥

इति पञ्चदशो वर्गः ॥ इत्यष्टमे मण्डले दशमोऽनुवाकः ॥

॥ इति प्रागाथमष्टमं मण्डलं समाप्तम् ॥

इति श्री-विद्यालङ्कार-मीमांसातीर्थ-विरुदोपशोभित-श्रीपण्डित जयदेवशर्मणा विरचिते ऋग्वेदाऽऽलोकभाष्येऽष्टमं मण्डलं समाप्तम् ॥

